RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(कला–मानविकी–समाजविज्ञान–जनसंचार–विधी–वाणिज्य–विज्ञान, वैचारिकी की अन्तर्राष्ट्रीय द्विमासिक शोध पत्रिका)

Volume -11: Issue - 50 Nov. - Dec. 2022 Ghaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 7.01

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Asstt. Editor
Dr. MUKTA SONI

Art Editor
(MS) MANISHA VERMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Editor in Chief
Dr. HARI SHARAN VERMA

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH
Dr. SUBHASH SAINI

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard

Dr. Hari Sharan Verma
D.Litt
Editor in Chief

Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)

(व्यक्तिगत)	(आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत)	(आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षो के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
   F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
   harisharanverma1@gmail.com 09355676460
   WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
   SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन – 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P.o.Box 99846,Dubai,UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास) स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0ए0वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 किरण मिश्रा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राम गुलाम राय पी0 जी0 कालेज, देवरिया गोरखपुर–273001 मौ0 :7007018819
9. डॉ0 ऊषा रानी, हिन्दी–विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–5
10. विमला टोप्पो, एस0आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0ओ0 जंगली घाट–744103 साउथ अंडमान

संरक्षक मण्डल :

1. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपूर) उ0प्र0
2. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुधांशु कुमार शुक्ल** चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **डॉ0 तपन कुमार शण्डिल्य, कुलपति,** डॉ0 श्याम प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची, (झारखण्ड) 9431049871
7. **डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008 फोन : 09431595318
8. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० माया मलिक**,पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
6. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
7. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर,** (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गु: प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर
12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
23. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. **डॉ0 कंचन पुरी, विभागध्यक्ष,** रघुनाथ गर्ल्स पी0 जी0 कालेज मेरठ
26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
27. **डॉ0 राजपाल ,** सहायक प्रो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार
28. **डॉ0 प्रवेश कुमारी ,** सहायक प्रो0 टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** पूर्व रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
4. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपर
5. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
6. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)
7. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
8. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभागः

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द

भूगोल विभागः

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभागः

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ बिहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001** बिहार **Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभागः

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram

समाज शास्त्र विभागः

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभागः

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफ़ेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभागः

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
5. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभागः

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभागः

1 **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर

2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

कम्प्यूटर विभागः

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)

2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)

3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभागः

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

2. **डॉ० सुनीता सैनी,** एसो0 प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

5. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी** {प्रधानाचार्य} एल०पी०के०इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

6. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभागः

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभागः

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभागः

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभागः

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली

2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)

4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभागः

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभागः

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कषि विभाग

1. **डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य** सह–आचार्य (कृषि–प्रसार) श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा मो. 9460545836

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
   Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
   H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
   Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
   Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
   Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
   H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
   Mob. 9996363764

9. **Principal**
   Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
    Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
    H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
    Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
    H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Assistant Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

17. **Dr. Govind Prakash Acharya** F--63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, OppositeRamganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	स्वतंत्रता आन्दोलन का हिन्दी कविता पर प्रभाव	डॉ0 केशवदेव शर्मा	10—12
2.	कृषि एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएँ	डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य	13—18
3.	कृष्णदास अधिकारी के काव्य में लोकतत्त्व	डॉली गुप्ता	19—23
4.	राजस्थान में पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका एवं प्रभाव	डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य	24—30
5.	सुमित्रानंदन पंत का काव्य वैशिश्ट्य	डॉ0 निर्भय शर्मा	31—34
6.	साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास	सुमन देवी	35—37
7.	हिन्दी कथा साहित्य में मधुकांकरिया का योगदान	भुपिन्दर कौर	38—41
8.	आधुनिक साहित्य एवं लोकचेतना	कुसुम त्रिपाठी	42—44
9.	भरत और ब्रेख्त के सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन : अभिनय संदर्भ	अजीत कुमार सिंह	45—47
10.	अंत्योदय अन्न योजना (उत्तर प्रदेश राज्य के संदर्भ में) एक अध्ययन	वर्षा त्यागी	48—51
11.	'प्रवास में आस—पास' कहानी—संग्रह में भारतीय संस्कृति के सामाजिक प्रतिमान	दिलबाग सिंह	52—54
12.	हिंदी साहित्य की नव्यतर विधाएं	डॉ0 शर्मीला यादव	55—57
13.	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री का संघर्ष और द्वंद्व	अनु, ज्ञानी देवी गुप्ता	58—60
14.	महर्षि वाल्मीकि और राम काव्य के कालजयी रचनाकार	प्रियंका	61—63
15.	जनसंख्या का बढ़ता दबाव एवं कुपोषणता की समस्या एवं प्रभाव	Dr. Govind Prakash Acharya	64—68
16.	विवेकानन्द का आदर्श—राज्य : एक अध्ययन	सुरेन्द्र सिंह	69—73
17.	तुलसी और समन्वयवाद	डॉ0 सुधा रानी	74—76
18.	अंडमान तथा निकोबार में सादरी भाषा साहित्य की स्थिति	बिमला टोप्पो	77—79
19.	सांस्कृतिक तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन	डॉ0 सुधा रानी	80—82
20.	समकालीन हिंदी साहित्य और वृद्ध विमर्श	अनुप विद्यार्थी	83—86
21.	भारत में संविधान सभा की माँग, संरचना और भूमिका	Miss. Seema Kujur	87—88
22.	पण्डित लख्मीचंद के सांगों में भक्ति भावर्ना	अनुप विद्यार्थी	89—92
23.	भारत की सुरक्षा समस्याएं : आन्तरिक समस्या के विशेष सन्दर्भ में	Dr. Parveen Kumar	93—98

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
24.	न्यायदर्शन में अयुतसिद्ध—एक विवेचना	डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी, प्रो0 दानपति तिवारी	99—100
25.	आधे—अधूरे अंतर्विरोधों का दस्तावेजै	डॉ0 सुनीता कुमारी गुप्ता	101—102
26.	युद्ध के आर्थिक प्रभाव : एक समीक्षा	. Dr. Parveen Kumar	103—107
27.	मोहन राकेश के नाटकों के प्रमुख नारी पात्र ('आषाढ़ का एक दिन और आधे—आधूरे के संदर्भ में')	डॉ0 सुनीता कुमारी	108—110
28	विश्व में हिन्दी की स्थिति	डॉ0 प्रवेश कुमारी	111—113
29.	समस्यामूलक उपन्यासकार नासिरा शर्मा	डॉ० पूजा	114—117
30.	सूरदास का वात्सल्य वर्णन	नरेश कुमारी	118—121
31.	श्रीमद्भागवत का गीतात्मक स्वरूपे	डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल	122—124
32.	डॉ0 हरिशरण वर्मा के नाटक संग्रह 'शहीद' का	सुदेश	125—127
33.	तमस : कथ्य और लेखकीय परिप्रेक्ष्य	डॉ० अंजु देशवाल	128—131
34.	हिन्दी पत्रकारिता और महात्मा गांधी : एक विवेचना	डॉ0 नरेश कुमारी	132—137
35.	आत्मनिर्भर भारत : सुभाष की दृष्टि में	कल्याण कुमार	138—142
36.	रामचरितमानस की लोकप्रियता	निक्की कुमारी	143—146
37.	दिनकर का नारी के प्रति दृष्टिकोण	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	147—148
38.	भरत और ब्रेख्त के सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन	अजीत कुमार सिंह	149—151
39.	प्रगतिवादी — काव्य में दलित—वर्ग	डॉ0 रेखा रानी	152—154
40.	मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	155—158
41.	राष्ट्र—निर्माण में भारतीय नारी का योगदान	डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य	159—162
42.	अन्तर्द्वन्दों से मुक्ति : गीता के परिप्रेक्ष्य में	डॉ0 सुमन	163—165
43.	मैत्रेयी पुष्पा के निबन्धों में नारी अस्मिता	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	166—168
44.	वैदिककालः—नारी के परिप्रेक्ष्य में	डॉ0 सुमन	169—171
45.	विवेकानन्द नारी सशक्तिकरण एवं युवा शक्ति के सन्दर्भ में	श्रीमती दीप्ति शर्मा	172—174
46.	वर्णसमाम्नाय के दार्शनिक पक्ष	डॉ0 दिनेशचन्द्रशुक्ल	175—177
47.	हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं	अशोक कुमार	178—179
48.	विश्व पटल पर हिंदी	डॉ0 अनिता रानी	180—186
49.	भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण	दीपमाला	187—189

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय / लेखक	पृष्ठ स.
50.	भूमि उपयोग का वर्तमान प्रतिरूप : भिवानी जिले के सन्दर्भ में डॉ० रानी सिंह, सविता बाई	190—193
51.	ऐतिहासिक दृष्टि में भारतीय समाज का चित्रणै डॉ0 संगीता वर्मा	194—196
52.	भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की केंद्रस्थली काशी . सुवाति	197—200
53.	मानवमूल्य और धर्मसूत्र नीलम गुप्ता	201—203
54.	जलवायु परिवर्तन का परिदृश्य : इसके परिमाण, कारण तथा प्रभाव निशादेवी	204—209
55.	भारतीय संस्कृति और संगीत : पर्यावरण संरक्षण का आधार डॉ॰ संतोष कुमारी	210—212
56.	राजनीतिक व्यवस्था सिद्धांत : अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य डॉ0 ममता वालिया	213—216
57.	ओमप्रकाश गुप्त का कृतित्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन डॉ. कमलेश दूहन	217—223
58.	नागार्जुनः एक जनकवि कीर्ति खतरी	224—225
59.	आधुनिक नारी 'मल्लिका' के जीवन में चुनौतियाँ और संघर्ष(मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'मल्लिका' के संदर्भ में) डॉ. विवेक शंकर, पूजा शर्मा	226—229
60.	हिंदी साहित्य में मानव मूल्य रीना मलिक	230—231
61.	सामाजिक—राष्ट्रीय मूल्य एवं गिरते शैक्षिक मूल्य : शिक्षक—शिक्षा के सन्दर्भ में डॉ0 हनुमान प्रसाद मिश्र	232—234
62.	सामासिक—सांस्कृतिक एकता में हिंदी की भूमिका / योगदान डॉ0 चक्र धर त्रिपाठी कुलपति	235—237
63.	राजा राम की न्याय प्रियता डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय तारेश	238—240
64.	बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहा है? (लोकमंगल के महाकवि : गोस्वामी तुलसीदास) डॉ0 तारामणि पाण्डेय	241—242
65.	रामायण और महाभारत में मौलिक अंतर डॉ0 पुष्पा द्विवेदी	243—244
66.	धरती आबाःभगवान बिरसा मुण्डा 15.11.1875—9.6.1900 डॉ0 तपन कुमार शाण्डिल्य	245—249
67.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में जनवादी बोध पुनीत शर्मा	250—252
68.	झारखण्ड में बोकरो जिला के बिरहोर जनजाति का आर्थिक स्थिती हरिलाल यादव	253—254
69.	'संशय की एक रात' और आधुनिकताबोध पुनीत शर्मा	255—258
70.	Indo-Pacific and its importance for India Peeyush Phogat	259—262
71.	Export Performance of Indian Manufacturing Sector In Post Liberalization Period Dr. Upasana	263—267

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय / लेखक	पृष्ठ स.
72.	QUAD and its importance for India Peeyush Phogat	268—271
73.	Effects of Air Pollution on Crops/Plants Growth : Dr. Govind Prakash Acharya	272—277
74.	Effects of Air Pollution on Health Manju Mishra, Dr. Govind Prakash Acharya	278—283
75.	Effect of Education of Consumer Protection Laws On Rural Youth in Haryana Varishti, Dr. Renu Chaudhary	284—285
76.	Endangered Identity in Kahild Hosseni's Novel The Thousand Splendid Suns Dr. Naresh Rathee, Dr. Anu Rathee	286—289
77.	A Bend In The Ganges: A Trauma Of Partition Dr. Dinesh Kumar	290—291
78.	A Comparison of Parenting Stress Among Mothers And Fathers of Visually Impaired Children Pinki Rani, Dr. C K Singh and Rajpal	292—294
79.	How Education can be an effective tool in Gender Senitization and Women Empowerment Dr. Bhupinder	295—297
80.	Theme Of Partition In *Sun Light On A Broken Column* Dr. Dinesh Kumar	298—299
81.	Introducing Classroom Activities With The Help Of Newspapers Dr. Priya	300—304
82.	Challenges and Opportunities on the Educational System Dr. Govind Prakash Acharya	305—309
83.	Quest For Self Exploration: *The Dark Holds No Terror* Dr. Dinesh Kumar	310—311
84.	Soil Pollution : Effect on Plant and Human Dr. Govind Prakash Acharya, Manju Mishra	312—318
85.	Fusion of Tradition And Modernity In Second Thoughts Dr. Dinesh Kumar	319—320
86.	The Feministic approach in the novel Raj by Gita Mehta Prof(Dr.) Punita Jha Archana	321—324
87.	Psychological & Social Impact of Social Media Dr. Renu Kansal, Prof. Dr. Aruna Anchal, Dr. Sushila Saini	325—329
88.	Biblical Concerns in John Milton's *Paradise Lost*: An Appeal to Obey Your Elders for Salvation Dr. Arvind Kumar, Jyoti	330—331
89.	A Heap of Broken Images: Depiction of Modern World in Graham Greene's The Man Within. Dr. Sudhir Kumar Yadav	332—334
90.	Ecofeminine Sensibility In Tony Morrison's Novel Beloved Vipul Kumar Singh, Dr Sunita Rai	335—338
91.	Functions & Monetary Management Of Reserve Bank Of India Dr. Upasana	339—343

अनुक्रमणिका

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ स.
92. Crime Against Children In India: A Spatio-temporal Analysis	Dr. Vineet Bala	344–347
93. Planning : An Introduction	Dr. Anita Rani	348–351
94. Problems Faced By Milk Producers In Haryana: A Study of Sampla Block, Rohtak Distict (Haryana)	Dakshita, Dr. Pardeep Kumar Sharma	352–355
95. Renewable Energy In India: A Spatio And Temporal Variation	Dr. Vineet Bala	356–359
96. Self-concept of students who work along with formal education at senior secondary level in rural and urban areas of Sonipat	Miss Sonia Dahiya	360–363
97. A Study of Discrimination in the works of Mulk Raj Anand and Toni Morrison	Amardeep Singh, Dr. J. K. Sharma	364–369
98. Users Satisfaction with Library Information Service	Jai shree Sr. Librarian	370–371
99. Behaviour of P and SV Waves under the Effect of Magnetic and thermal Parameters at an interface between two viscoelastic solid half-spaces	Dr. Lakhbir Singh	372–376
100. Role Of Micro Finance Institution In Funding Small And Medium Enterprises	Komal Saini	377–381
101. Reflection of P and SV waves in a rotating Generalized Thermoelastic Solid Half-Space with Diffusion	Dr. Lakhbir Singh	382–384
102. Effect of Water pollution on aquatic Biodiversity	Dr. Manish Kumar Singh, Desh Deepak Srivasava	385–388
103. Reflection of plane waves in a temperature-dependent thermoelastic solid with diffusion under the effect of rotation	Dr. Lakhbir Singh	389–393
104. Total Quality Management Impact on Organizational Efficiency	Dr. Ankita Gupta	394–397
105. : महिला किसानों का कृषि में योगदानः	डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य	398–402
106. Women Empowerment And Social Work	Dr. Dinesh Kumar Singh	403–406
107. वाल्मीकि रामायण में कौसल्या का चरित (वाल्मीकि रामायण के आलोचनात्मक संस्करण के आधार पर)	डॉ० सुनीता सैनी	406–410

अनुक्रमणिका

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ स.

सम्पादकीय

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स शोध पत्रिका का 50 वां अंक अर्थात गोल्दन जुबली अंक को प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। इस शोध पत्रिका का प्रथम अंक अप्रैल 2011 में प्रकाशित हुआ था, जिसका विमोचन (स्वर्गीय) डॉ० रामसजन पाण्डे, अध्यक्ष (हिन्दी विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के कमलों द्वारा किया गया था। ग्यारहा वर्ष के अथक परिश्रम क उपरान्त आज इस पत्रिका का 50 वां (गोल्डन जुबली अंक आपके हाथों में है। इस पत्रिका वर्ष माध्यम से अनेक शोधार्थियो ने अपने शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालयों में जमा करके पीएचडी की उपाधि की है। अनगिनत प्रोफेसरों के पद पर नियुक्ति हुई है और अनेक शोध लेखकों ने पदोन्नति प्राप्त की है। हम उन सबके उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

भविष्य में आप से अनुरोध है कि आप इस शोध पत्रिका में अधिक से अधिक लाभ उठाकर अपना भविष्य उज्जवल बनाने का कष्ट करे।

राजनारायण शुक्ल
सम्पादक

डॉ0 हरिशरण वर्मा
प्रबन्ध सम्पादक

1 स्वतंत्रता आन्दोलन का हिन्दी कविता पर प्रभाव

डॉ0 केशवदेव शर्मा

सारांश

विश्व धरातल पर जय–पराजय, न्याय–अन्याय, छल–कपट, सत्–असत्, परतन्त्रता–स्वतंत्रता का आशा–निराशा भरा खेल युगों से चलता रहा है। एक स्थिति हो या एक भाव व्यवहार स्थिति; मानव समाज की परिवर्तनशीलता या प्रवहमान सतत् प्रक्रिया के लिए ठहराव सा ला देती है। मानव का स्वभाव है कि वह देश काल के भीतर और बाहर सृजन–संहार, क्रान्ति–शान्ति के द्वन्द्वात्मक संघर्ष में जीता है और आने वाली संतति के लिए सकारात्मक चिन्तन का मार्ग प्रशस्त करता है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन भी इसी चिन्तन प्रवृत्ति का सुपरिणाम कहा जा सकता है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य अर्थात् सन् 1857 की असफल क्रान्ति से माना जाता है लेकिन सच यह है कि इसकी चिंगारी भारतीय जन मानस में काफी लम्बे समय से भीतर ही भीतर सुलग रही थी। 08 अप्रैल सन् 1857 को मेरठ छावनी में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ मंगल पाण्डे के बलिदान ने स्वतंत्रता आन्दोलन को ऐसी हवा दी कि लगभग 90 वर्ष के अनवरत स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारतीयों द्वारा चलाए गए आन्दोलनों – सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन, काकोरी काण्ड, जलियॉवाला कांड, नमक आन्दोलन, चम्पारण सत्याग्रह, विदेशी वस्तु बहिष्कार, भारत छोड़ो आन्दोलन जैसे अनेक गर्म–नर्म विरोध के फलस्वरुप साम्राज्यवादी ताकतों की जड़ें हिल गयीं। एक तरफ राजनीतिक आन्दोलन समाज को एकता के सूत्र में बॉधकर स्वतंत्रता के लिए जगाने का प्रयास कर रहे थे, संघर्ष की भावना को तीव्र कर रहे थे, तो दूसरी तरफ साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से हताश–निराश भारतीय जनता में आशा, उत्साह और उमंग की अलख जगाने का निरन्तर प्रयास कर रहे थे। समाज के भीतर आशा निराशा भरी उथल–पुथल को लेकर रचनाकारों विशेषतः हिन्दी रचनाकारों ने स्वदेश, स्वधर्म, स्वभाषा को लेकर जनता में राष्ट्रीय भावों को जगाने का सार्थक प्रयास किया। रीतिकालीन कवि भूषण ने अपनी कविताओं के माध्यम से जिस राष्ट्रीय भावना को जगाने की कोशिश की, वह हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल, विशेषतः भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग और छायावाद के कालखण्ड में मुखर हो उठी।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में जिन हिन्दी कवियों ने अपनी ओजपूर्ण रचनाओं के माध्यम से अतीत के गौरवगान द्वारा जन मानस में न केवल राष्ट्रभक्ति, बलिदान और शौर्य के साथ उत्साह भाव जागृत किया वरन् मन में दृढ़ संकल्प और विश्वास जगाया। इन कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द तो अग्रणी थे ही, साथ ही बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृशण शर्मा 'नवीन' सुभद्रा कुमारी चौहान, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, रामधारी सिंह दिनकर, सोहन लाल द्विवेदी, श्यामनारायण पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

स्वदेश प्रेम की भावना को जगाने के लिए कवि भारतेन्दु ने लोगों की सोई पड़ी भावनाओं को जाग्रत करने के लिए लिखा–

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा! हा! भारत दुर्दशा देखी ना जाई।।[1]

तो राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी कविता 'कैदी और कोकिला' में ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलनकारियों के मनोबल को कमजोर करने के लिए बेड़ी और हथकड़ी जैसी यातनाओं से न घबराने के लिए प्रेरित करते हुए लिखा–

क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना
हथकड़ियॉ क्यों?यह ब्रिटिश राज का गहना।[2]

केवल इतना ही नहीं, 'एक फूल की चाह' शीर्शक कविता ने भारतीय जनमानस को राष्ट्र प्रेम पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए उस समय तो प्रेरित किया ही, आज तक कण्ठहार बनी हुई है–

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊॅ।
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊॅ।।
चाह नहीं सम्राटों के सर पर हे हरि! डाला जाऊॅ।
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊॅ।।

मुझे तोड़ लेना बनमाली! उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।[3]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचना 'भारत भारती' ने स्वतंत्रता आन्दोलन के चार किया। वे आन्दोलनकारी भी थे और कवि भी। जेलदौरान सम्पूर्ण भारतवर्ष के नवयुवकों में जोश और उमंग का अद्भुत सं यातनाओं को सहते हुए साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं को झंकृत किया। उन्होने लिखा–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।।[4]

इसी श्रृंखला में स्वतंत्रता सैनानी और ओजस्वी कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' के वीर चरित को लेकर लिखी कविता के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन में त्याग, वीरता और बलिदानी संघर्ष की लौ को मशाल में बदलने का प्रयास किया। एक अन्य 'पुरस्कार' शीर्षक कविता में भी उन्होंने देशवासियों को स्वतंत्रता के लिए प्राणों तक के बलिदान का आह्वान करते हुए लिखा–

आज तुम्हारी लाली ऐ मॉ के मस्तक पर हो लाली,
काली जंजीर टूटें, काली जमुना में हो लाली।
जो स्वतंत्र होने को हैं पावन दुलार उन हाथों का,
स्वीकृत है, मॉ की वेदी पर पुरस्कार उन हाथों का।।[5]

कहने का अभिप्राय है कि स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी कवियों की वाणी का स्वर राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत था, साथ ही जाति–धर्म–भाशा–मजहब के नाम पर फैली विविधतामयी भेदकारी सोच को एकता का भी मंघ प्रदान किया। उनका विश्वास था कि एकता के बल पर ही भारत माता को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराया जा सकता है। देशवासियों को एकता का सन्देश देते हुए स्पनारायण पाण्डेय ने परस्पर विश्वास, प्रेम, सेवा और त्याग–भावना की अभिव्यक्ति की है–

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई भाई।।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है, देश वही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं।।[6]

मोहम्मद इकबाल की नज्म तो आज तक भी हर भारतीय के मानस पर छाई रहती है, जिसमें उन्होंने भारतवासी लोगों को बुलबुला और भारत को सुरंगमयी गुलिस्तॉ बताते हुए लिखा–

सारे जहॉ से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा।
हम बुलबुले हैं इसके, यह गुलिस्तॉ हमारा।।[7]

इससे भी बढ़कर कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय जनमानस को शरीर और भारत को प्राण बताते हुए सर्वस्व बलिदान की प्रेरणा देने का प्रयास करते हुए अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं–

उठो त्याग दें द्वेष एक ही सबके मत हों।
सीख ज्ञान विज्ञान कला कौशल उन्नत हों।।
भारत की उन्नति सिद्धि से हम सबका कल्याण है।
दृढ़ समझो इस सिद्धान्त को हम शरीर यह प्राण है।।[8]

माखनलाल चतुर्वेदी की निम्न काव्य पंक्तियों में अभिव्यक्त राश्ट्र प्रेम की अदभुत स्वर लहरी उन्हें स्वतंत्रता का अनन्य भक्त बना देती है और बलिदान मार्ग का नेतृत्वकर्त्ता। कवि शब्दों में–

सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती, मुटठी में मन चाही।
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही।।[9]

'समर्पण' नामक कविता का ओजस्वी स्वर स्वतंत्रता आन्दोलन में जान फूॅकने का काम करता है–

तेरे कन्धों लहराएॅ, प्रतिभा की खेती,
तेरे हाथों चले नाव, जग संकट खेती।
तुझ पर पागल बने, आज उन्मन्त जमाना,
तेरे हाथों बुने सफलता ताना–बाना।
तू युग की हुंकार,
अमर जीवन की वाणी।
तेरी सांसे अमर हो उठें
युग कल्याणी।।[10]

बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा 'विप्लव गायन' नामक कविता में क्रान्ति के लिए किया गया आहवान आज तक भारतीय जन मानस पर प्रभाव जमाए हुए है। उग्रता, आक्रोश और नाश–सत्यानाश को शब्द रुप में चित्रित करते हुए लिखा है–

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए।

प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि त्राहि स्वर–नभ में छाए।
नाश और सत्यानाशों का, धुँआधार जग में छा जाए।।[11]

इसी प्रकार राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी ने भी उस दौर में अपनी कविताओं के माध्यम से भारतीय जनमानस की शिथिल धमनियों में उबाल लाने का प्रयास किया–

प्रण में मरने की जगा साख,
रण में मरकर मैं बनूँ राख,
उठ पड़े राख में लाख लाख
शर से भरकर खाली निशंग।।[12]

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में हिन्दी कवियों को हिंसक अहिंसक आन्दोलन को स्वर देने में पर्याप्त सफलता मिली, वहीं गांधीवाद को भी खूब बल मिला। उस समय की दुविधापूर्ण मनः स्थिति को लेकर भी कवियों ने अपनी लेखनी खूब चलाई। इसका उदाहरण राष्ट्रकवि दिनकर की 'आग की भीख' नामक कविता की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं–

बेचैन हैं हवाएँ, हर ओर बेकली है,
कोई नहीं बताता, किश्ती किधर चली है।
मँझधार है भँवर है, या पास है किनारा?
या नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?[13]

संदर्भ सूची

1. भारत दर्शन, भारतेन्दु हरिश्चन्द, पृष्ठ संख्या – 598
2. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृष्ठ संख्या–325 से उद्घृत
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृष्ठ संख्या–326–327 से उद्घृत
4. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ. जयकिशन प्रसाद, पृष्ठ संख्या–325
5. पुरस्कार (कविता) सुभद्रा कुमारी चौहान
6. आधुनिक काव्यधारा, डॉ0 केसरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ संख्या–112 से उद्घृत
7. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ0 जयकिशन प्रसाद, पृष्ठ संख्या–324 से उद्घृत
8. आधुनिक काव्यधारा, डॉ0 केसरीनारायण शुक्ल, पृष्ठ संख्या–112 से उद्घृत
9. चुने हुए कवि और लेखक, डॉ0 वेदभानु आर्य, पृष्ठ संख्या–109 से उद्घृत
10. युगचरण, माखनलाल चतुर्वेदी, समर्पण कविता, पृष्ठ संख्या–48–49
11. आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ0 देवीशरण रस्तोगी, पृश्ठ–13 से उद्घृत
12. जयहिन्द काव्य, सम्पादक–श्रीचन्द, पृश्ठ संख्या–25 दिनकर, सम्पादिका – सावित्री सिन्हा, पृष्ठ संख्या–19 से उद्घृत

डॉ0 केशवदेव शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एस0डी0 कॉलेज, पलवल
(हरियाणा)
Kd_sharma64@yahoo.in
M. No. : 9991101864

2

कृषि एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएँ

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य

सारांश

किसी भी देश में स्त्रियाँ समाज का महत्त्वपूर्ण घटक है। भारत की संस्कृति महिला–पुरुष समानता पर बल देती है। स्त्री को शक्ति स्वरूप माना गया है, परन्तु सदियों से पितृसत्तात्मक सामन्तवादी सामाजिक ढ़ाँचे में स्त्रियाँ धर्म, मान्यताओं, परम्पराओं और रुढ़ियों के नाम पर उत्पीड़न और शोषण का शिकार रही है। सामाजिक, आर्थिक ओर राजनीतिक क्षेत्र में पुरुष वर्ग ने योजनाबद्ध तरीके से स्त्रियों को पीछे रखने का षड्यंत्र किया है सात वचन, सात फेरे, साथ जनम, वाली कहावत कहकर उसे छला गया। स्वतंत्रता पूर्व स्त्रियों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन के प्रर्वतकों, राष्ट्रवादी विचारकों तथा ब्रिटिश प्रशासन के सुधारवादी प्रशासकों ने समाज में जागरूकता उत्पन्न कर तथा कानून बनाकर स्त्रियों को शोषण तथा उत्पीड़न से बचाने और उनके कल्याण के प्रयास किये। स्वतंत्रता पश्चात् कानूनी स्तर पर पुरुष तथा महिलाएँ समान अधिकारी है, परन्तु आज भी स्त्रियाँ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अपने अधिकारों की पहचान के लिए संघर्षरत है।

कृषि क्षेत्र की इस चतुर्मुखी उन्नति के पीछे हमारी महिलाओं का बहुत बड़ा हाथ है। हमारे कृषि प्रधान देश में आज भी हमारी अर्थव्यवस्था का लगभग 70 प्रतिशत भाग कृषि या उससे सम्बन्धित उद्योगों पर निर्भर है। हमारे देश की कुल जनसंख्या का लगभग 48 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है, जिसमें से लगभग 75 प्रतिशत महिलायें ग्रामीण अंचलों में निवास करती हैं। आज भी ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन तथा उससे सम्बन्धित उद्योग ही ग्राम्य अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार हैं। हमारे देश में कुल कृषि कार्य का लगभग 70 प्रतिशत कार्य महिलाओं के द्वारा किया जाता है। वे फसल उगाने से पूर्व खेत की तैयारी खाद में बीजों की बुवाई, पौधों की रोपाई, खरपतवार नियंत्रण, फसल की कटाई, निंदाई, गुड़ाई आदि समस्त कार्यों में अपना पूर्ण योगदान देती हैं। अपनी स्वयं की जमीन पर कृषि कार्य करने वाली अथवा खेतिहर मजदूर के रूप में कार्य करने वाली से महिला शक्ति चूंकि असंगठित, अशिक्षित शोषित, रूढ़िवादी तथा सामाजिक परम्पराओं से जकड़ी हुई है, अतः इनके कार्यों का मूल्यांकन न इनका परिवार करता है, न समाज और न राष्ट्र।

Introduction :

भारतीय समाज मूलतः पुरुष प्रधान समाज है। प्रत्येक स्तर पर पुरुष महिलाओं पर अपनी श्रेष्ठता का दावा करते रहे हैं। महिलाएं कठिन परिस्थितियों में जीवन–यापन करती रही हैं। वे विभिन्न संसाधनों जैसे आर्थिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक अभावों के साथ जीवन जीने को बाध्य होती रही हैं। अधिकांशतः महिलाएं सम्पत्तिहीनता, निरक्षरता, शिक्षा, कला–कौशल की कमी के चलते सामाजिक–आर्थिक विकास से कोसों दर हैं। जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं को पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिस कारण वे विकास के दौर में भी खुलकर आगे नहीं आ सकी हैं।

18वीं एवं 19वीं सदी के सामाजिक परिवेश में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं की प्रस्थिति को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परिणामस्वरूप महिलाओं में आर्थिक आत्मनिर्भरता पनपी है। वे पुरुषों की आर्थिक दासता से मुक्त होकर घर की चहारदीवारी से निकलकर बाह्य जगत से परिचित हुई हैं। महिलाएं स्वयं विभिन्न उद्योगों एवं अन्य व्यवसायों में कार्य करने लगी हैं। वर्तमान समय में महिलाएं सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान कार्य करने लगी हैं।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज में श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ। जिसमें संगठित एवं असंगठित श्रमिक वर्ग थे। संगठित श्रमिक वे हैं, जो अपने रहन–सहन का स्तर सुधारने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर संगठित होकर प्रयास करते रहते हैं जबकि असंगठित श्रमिक, जो अपनी आर्थिक दशा सुधारने हेतु संगठित होकर अपने नियोक्ताओं से अपने अधिकारों की बात नहीं कर पाते हैं। जिससे वह अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक वे श्रमिक हैं जो कारखाना अधिनियम 1948 के प्रमुख प्रावधानों जैसे स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध आदि की परिधि से बाहर हैं। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट 2002 में यह उल्लेख किया है कि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए 19 या इससे कम संख्या में कर्मकारों को नियोजित करने वाली इकाइयों को असंगठित क्षेत्र एवं इसके विपरीत नियोजित करने वाली इकाइयों को संगठित क्षेत्र माना जाय। इसी प्रकार राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम (NCMP) में उल्लेख किया गया है कि "सरकार सभी कामगारों, विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र के, जो कि हमारे कार्यबल का 93 प्रतिशत है, कल्याण और अच्छी स्थिति को सुसंगठित करने के लिए दृढ़ता से प्रतिबद्ध है।"

भारतीय समाज में, औद्योगीकरण की प्रक्रिया द्वारा महिलाओं में संगठित एवं असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में एक उद्यमी श्रमिक के रूप में घर से बाहर कार्य करने की प्रवति विकसित हुई है। यद्यपि उद्यम करने वाली महिलाओं का एक बड़ा भाग असंगठित क्षेत्रों में एक उद्यमी के रूप में संलग्न है। भारत की कुल श्रमशक्ति में महिला श्रमिकों का महत्वपूर्ण भाग है। भारत में लगभग 40 करोड़ लोग (काम करने वाले लोगों का 85 प्रतिशत से ज्यादा) असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं। जिसमें लगभग 12 करोड़ महिलाएं कार्यरत हैं, जो असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले पुरुषों का लगभग दो चौथाई हैं।

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुसार असंगठित क्षेत्र के श्रमिक वे श्रमिक हैं, जो घरेलू कार्य, स्वरोजगार एवं वेतन पर कार्य कर रहे हैं तथा जिनको अधिनियम की अनुसूची–II में शामिल नहीं किया गया है। जबकि व्यक्तिगत या स्वरोजगार के स्वामित्व वाले व्यवसाय जो उत्पादन, वस्तुओं की बिक्री या सेवाएं उपलब्ध कराने के कामों में संलग्न हैं और जहां श्रमिकों की संख्या दस से कम हो, असंगठित क्षेत्र कहलाता है। इसके अतिरिक्त असंगठित क्षेत्रों में वे श्रमिक हैं जो गाँव अथवा शहरों में मजदूरी पर अस्थायी रूप से काम करते हैं। चूँकि यह श्रमिक वर्ग मुख्यतया बिखरा हुआ होता है अतः इनका परस्पर संगठन नहीं हो पाता है।

भारतीय श्रमशक्ति के आधार पर महिलाओं का अधिकांश भाग असगंठित क्षेत्र में कार्य करता है। परन्तु रोजगार के स्तर एवं गुणवत्ता की दृष्टि से वे पीछे रह जाती हैं। भारत की जनगणना (2011) के अनुसार महिला श्रमिकों की संख्या 25-60% है। अर्थात देश में महिलाओं की कुल संख्या 49 करोड़ 60 लाख में से 12 करोड़ 72 लाख 20 हजार महिलाएं श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। अधिकांशतः असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों से हैं। जिसमें 87% खेतीहर मजदूर है। जबकि शहरी क्षेत्रो में 80% श्रमिक महिलाएं घरेलू उद्योगों, छोटे–मोटे व्यवसायां और नौकरी तथा भवन निर्माण जैसे असंगठित क्षेत्रों में काम कर रही हैं। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, भारत में कुल जनसंख्या का लगभग 48-46% महिलाएं हैं तथा जिनमें लगभग 25-67% महिलाएं श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं।

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएं अज्ञान, परम्परागत दृष्टिकोण, निरक्षरता, रोजगार की सामयिक प्रकृति, विभिन्न प्रकार के शारीरिक शोषण, नौकरी का अस्थायी स्वरूप, कानूनी ज्ञान की कमी इत्यादि के कारण संगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाती हैं। इस संदर्भ में जे. भगवती तथा टी. एन. श्रीनिवास (1993) ने स्पष्ट किया है कि विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की संख्या अधिक है और उन्हें संगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की भांति रोजगार, वेतन इत्यादि की सुरक्षा नहीं मिल पाती है। अतः वे संगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की भांति विकास का लाभ नहीं ले पाती हैं, इसलिए वे पिछड़ने को बाध्य होती हैं।

विकास की वर्तमान श्रमशक्ति में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के मूलभूत पक्षों का विश्लेषण एवं निदान अति आवश्यक है। इन्हीं तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए असंगठित क्षेत्र में मुख्यतः भारतीय महिलाएं कई वर्षों से खेतों, लघु एवं कुटीर उद्योगों में काम करती आई हैं परन्तु औद्योगीकरण के प्रसार द्वारा उन्हें कारखानों, खानों, कार्यालयों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों अथवा दुकानों तथा कई प्रकार की सेवाओं में रोजगार के प्रचुर अवसर प्राप्त हुए हैं। परन्तु भारतीय सामाजिक परिवेश में महिलाओं को घर एवं कार्यक्षेत्र में अभी भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ :

कम मजदूरी की समस्या – अधिकांशतः महिलाओं को कुछ चुने हुए कार्यो में ही रोजगार के अवसर मिलते हैं, जैसे शिक्षा, खेती, हस्तशिल्प तथा अन्य कार्य, जो उनकी शारीरिक क्षमता या शिक्षा से सम्बन्धित होते हैं। इन सीमित व्यवसायों में रोजगार की इच्छुक महिलाओं की संख्या अधिक होती है। कई नियोजक प्रसूति की स्थिति में अवकाश तथा प्रसूति–हितलाभ, शिशुगह की स्थापना की अनिवार्यता तथा महिलाओं के रात्रि में कार्य करने तथा खतरनाक कामों पर कानूनी प्रतिबंधों के कारण महिलाओं को नियोजित नहीं करना चाहते। इन कारणों से महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है। राष्ट्रीय सार्वजनिक वित्त एवं नीति संस्थान के अध्ययन में ज्ञात हुआ कि पुरुषों की औसत मजदूरी शहरी क्षेत्रों में 80 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 60 प्रतिशत रही है। निम्न मजदूरी को दृष्टिगत रखते हुए चेतन, कृष्णा बी. (2006) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि लघुवित्तीय कार्यक्रमों की महिलाएं परिवार में एक उत्पादक इकाई की भांति कार्य करती हैं तथा उनकी अधिकांश आय परिवार के भोजन व बच्चों के पालन–पोषण में खर्च हो जाती है, जिससे महिलाओं के कार्य करने से परिवार का कल्याण होता है और उनके पारिवारिक सम्बन्धों में भी घनिष्ठता आती है।

कार्य की कठिन दशा – असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों को कई घंटों तक कार्य करना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें कार्यस्थल पर तनाव का सामना करना पड़ता है। कई कारखानों में उन्हें खतरनाक मशीनों या प्रक्रियाओं में नियोजित किया जाता है। कार्यस्थल पर उन्हें विश्राम के अभाव, अपर्याप्त प्रकाश, असुरक्षा, रोग इत्यादि समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक सुरक्षा – सामाजिक सुरक्षा से समाज द्वारा आधुनिक जीवन की उन आकस्मिकताओं, जैसे– बीमारी, बेरोजगारी, वार्धक्य–पराश्रितता, औद्योगिक दुर्घटनाओं तथा

अशक्तता के विरुद्ध सुरक्षा के कार्यक्रम का बोध होता है जिनके लिए व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के सामर्थ्य या दूरदर्शिता से अपनी या अपने परिवार की रक्षा की आशा नहीं की जा सकती है। असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत अधिकांश महिला कार्मिकों को कार्यस्थल पर अपने कार्यसम्बन्धी सामाजिक सुरक्षा जैसे स्वास्थ्य, कर्मचारी क्षतिपूर्ति कानून, बेरोजगारी–बीमा आदि नहीं मिल पाती है। महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धित समस्याओं के लिए LLO की रिपोर्ट में स्पष्ट है कि कर्मकार क्षतिपूर्ति (व्यावसायिक रोग) अभिसमय, संख्या 18, 1925 तथा संशोधित अभिसमय, संख्या 42, 1934 के अनुसार कुछ विशेष प्रकार के नियोजनों में हो सकने वाले रोगों की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना जरूरी है। इन अभिसमयों के उपबन्धों को कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 में शामिल किया गया है।

प्रसूति से उत्पन्न समस्याएँ – महिला कार्मिकों को प्रसूति की अवधि में अवकाश, वेतन या प्रसूति–हितलाभ की आवश्यकता होती है। जबकि अधिकांश नियोजक प्रसूति की अवस्था में महिला श्रमिकों को काम से हटा देते हैं और उन्हें इस अवधि में मजदूरी भी नहीं देते हैं। कई प्रकार के व्यवसायों में उन्हें गर्भावस्था में किसी प्रकार की चिकित्सा सुविधा भी नहीं मिल पाती है।

आवास और यातायात – असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं को अपने घर से काफी दूर स्थित कार्यस्थल पर जाना पड़ता है। साथ ही महिला कार्मिकों को अन्य क्षेत्रों में आवास की समस्या का भी सामना करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप उन्हें मानसिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी तनाव का सामना करना पड़ता है।

मनोरंजन – इन महिलाओं को कार्यस्थल पर कई घंटों तक कार्य करना पड़ता है। कार्यस्थल पर मनोरंजन का अभाव होता है और वे घर व बाहर के कामों के बोझ से दबी रहती है। अत्यधिक काम और मनोरंजन के अभाव का उनके स्वास्थ्य व स्वभाव पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

नियोक्ता सम्बन्धी समस्या – सामान्यतः यह समझा जाता है कि नियोक्ता अपने श्रमिकों के लिए ऐसी दशाओं का निर्माण करेंगे, जिससे उन्हें अधिक से अधिक उत्पादन करने के अवसर एवं काम में अभिरुचि बनी रहे। इस कारण कई नियोजक स्वयं श्रमिकों की मजदूरी, कार्य के घंटों, विश्राम– अंतराल, सुरक्षा, स्वास्थ्य की रक्षा, कार्यस्थल पर सुख–सुविधाओं, मजदूरी भुगतान आदि पर जोर देते रहते हैं। परन्तु नियोजकों का अपने श्रमिकों के प्रति दृष्टिकोण सही नहीं होता। मुख्यतया श्रमिकों को अपने नियोक्ता सम्बन्धित समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

लैंगिक असमानता एवं भेदभाव – भारतीय समाज में पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम वेतन तथा पारिश्रमिक दिया जाता रहा है। चाहे वह कृषि का क्षेत्र हो, उद्योग–धन्धे हों या कोई अन्य क्षेत्र हो। इसके अतिरिक्त महिलाओं को एक समस्या महिला–पुरुष की भूमिका में विभेद करने की है। यद्यपि भारतीय संविधान में महिला–पुरुषों के बीच अधिकारों की समानता पर जोर दिया गया है, फिर भी कुछ क्षेत्रों में उनकी सेवाएं नहीं ली जाती है। जिससे महिलाओं को आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है।

कार्य की सामयिक प्रकृति – असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों की प्रमुख समस्या उनके कार्य की सामयिक प्रकृति का होना है। इस प्रकृति के कारण महिला श्रमिकों को यह भय बना रहता है कि कभी भी उनको यह व्यवसाय छोड़ना पड़ सकता है।

श्रम कानून की चेतना का अभाव – श्रम कानून एवं अधिनियम मुख्यतः श्रम समस्या को नियंत्रित करने के लिए पारित किये जाते हैं। जब किसी देश में कम मजदूरी, लम्बी कार्यावधि, महिला तथा बाल श्रमिकों का शोषण जैसी समस्याएं उत्पन्न होने लगें तो उन समस्याओं को दूर करने के लिए जो कानून एवं अधिनियम पारित किये जाते हैं, उसे ही श्रम कानून कहा जाता है। लेकिन असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएं श्रम कानूनों की चेतना के अभाव में उनका लाभ नहीं ले पातीं।

दोहरी भूमिका एवं संघर्ष की समस्या – समाज में व्यक्ति को दो भिन्न परिस्थितियों की भूमिका एक साथ निभानी पड़ती है। यदि उनमें विरोधाभास हो तो उसे हम भूमिका संघर्ष कहते हैं। भूमिका संघर्ष के लिये समाज के सांस्कृतिक मूल्य भी उत्तरदायी हैं। आधुनिक एवं परिवर्तनशील समाज में भूमिका संघर्ष अधिक पाया जाता है क्योंकि यहां नवीन एवं पुराने मूल्य साथ–साथ पाये जाते हैं। समाज में मनुष्य विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करता है। एक व्यक्ति जिस प्रकार से एक परिस्थिति से सम्बन्धित विशेषाधिकारों एवं सुविधाओं का उपभोग करता है, उसे ही भूमिका संघर्ष कहते हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाएं विभिन्न भूमिकाओं का एक साथ निभाना आसान नहीं होता है। अतः व्यक्ति भूमिका संघर्ष को स्थिति में प्रभावी भूमिका का चयन कर एक या दो भूमिका छोड़ देता है।

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओ से सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि इन क्षेत्रों में कार्यरत महिलाएं सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से जूझ रही हैं। रोजगार में प्रतिस्पर्धा के कारण इन क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं को उनकी मजदूरी या वेतन से वंचित होना पड़ता है। सरकार द्वारा चलाई जा रही नीतियों के फलस्वरूप भी इन क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं को समान वेतन, रोजगार, सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि लाभ नहीं मिल पाते हैं। अतः श्रम कानूनों में किए जा रहे संशोधनों में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, विशेषकर महिला श्रमिकों के हितों पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। यह सही है कि इतने व्यापक असंगठित क्षेत्र को नियंत्रित करना सरकार के लिए सरल नहीं है। इसलिए सरकार द्वारा इन

महिला श्रमिकों के लिए स्वास्थ, शिक्षा, बीमा जैसी योजनाएं तथा उद्योगों में महिला श्रमिकों को समान वेतन देने तथा उनके लिए अतिरिक्त सुविधाएं देने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के साथ भेदभाव और अन्याय पर नजर रखने के लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों की समितियां गठित की जा सकती हैं, जिनमें विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिष्ठित महिलाएं भी शामिल हों। आशा की जाना चाहिए कि सरकार इस दिशा में आवश्यक कदम उठाएगी ताकि असंगठित क्षेत्र को महिला श्रमिक अपनी क्षमताओं का करते अपने परिवार की खुशहाली कें साथ देश के विकास में सक्रिय भुमिका निभा सकेंगी।

सरकार के द्वारा किये गए प्रयास

राष्ट्रीय महिला कोष – महिलाओं के लिए राष्ट्रीय ऋण निधि के रूप में जाने वाले इस कोष की स्थापना, डेयरी, कृषि, दुकानदारी, फेरी तथा हस्तशिल्प जैसी आय उत्पादक गतिविधियाँ शुरू करने के लिए गरीब महिलाओं को ऋण सहायता तथा लघु–वित्त की सहायता प्रदान करने की दृष्टि से सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत एक पंजीकृत संस्था के रूप में 30 मार्च, 1993 को की गई। 2003–04 में, राष्ट्रीय महिला कोष के माध्यम से 32, 765 महिलाओं को लाभान्वित करते हुए 25 करोड़ रुपये की राशि स्वीकृत की गई। इसके अलावा केन्द्र सरकार द्वारा विकास की निम्न योजनाएँ भी समय–समय पर चलाई जाती रही हैं जो किसी न किसी रूप में महिलाओं से ही सम्बंधित है।

केन्द्र सरकार की योजनाएँ :

सरकार ने हाल में ग्रामीणी महिलओं की बेहतरी के लिए कई योजनाओं की शुरूआत की है जैसे कि – उज्ज्वला योजना, अंत्योदय योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी), राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना (डीडीयूजीकेवाई), प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण आर्थिक परिवर्तन परियोजना (एनआरईटीपी), प्रधानमंत्री मातृवंदना योजना (पीएमएमवीवाई), कुछ अन्य योजनाऐं। इस तरह की योजनाओं से साफ है कि ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण केन्द्र सरकार की प्राथमिकता सूची में काफी अहम है ताकि आत्मनिर्भर भारत के सपने को पूरा किया जा सके।

राष्ट्रीय महिला आयोग – राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना जनवरी 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 संख्या 20 के तहत एक संविधिक निकाय के रूप में की गई थी, जिसका उद्देश्य था, महिलाओं के लिए संवैधानिक तथा कानूनी उपायों का पुनरीक्षण करने, उपचार के रूप में विधाई उपायों की संस्तुति करने, शिकायतों के निवारण को सुविधाजनक बनाने तथा महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत मामलों में सरकार को सलाह देना। राष्ट्रीय महिला आयोग के अंतर्गत राज्य महिला आयोग भी स्थापित किए गए हैं, जो अब अधिकांश राज्यों में काम कर रहे हैं।

आयोग के प्रमुख कार्यक्षेत्र

महिला आयोग के प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं –

(1) महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण।

(2) अल्पसंख्यक और मानसिक रूप से विकलांग महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तीरण।

(3) महिलाओं पर वैश्वीकरण ग्लोबलाइजेशन के प्रभाव की जांच।

(4) सेक्स टूरिजम और ट्रैफिकिंग जिसमें देवदासी प्रथा भी शामिल है की समस्याएं।

(5) बाल विवाह विरोधी अभियान।

(6) महिलाओं के प्रति बढ़ती हुई हिंसा के मुद्दे को पीड़ितों गैर सरकारी संगठनों तथा अधिकारियों के साथ पारंपरिक बैठकों में उठाना, शिकायतें सुनना और स्त्रियों के कानूनी अधिकारों को प्रभावित करने वाले गंभीर मामलों की जांच।

(7) विशेष वर्ग की मुस्लिम महिलाएँ जनजातीय महिलाएँ अनुसूचित जाति की महिलाएँ व उनकी विशेष समस्याएं।

(8) कारागारों, रिमाँड होम या संरक्षण गृहों में महिलाओं की समस्याएँ।

(9) पारिवारिक न्यायालयों का संस्थागत अध्ययन व सुधारात्मक सुझाव देना।

(10) कार्यस्थतों पर महिलाओं के उत्पीड़न व यौन उत्पीड़न की समस्या पर कार्य करना।

(11) सती प्रथा, डायन प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों का उन्मूलन ।

(12) दहेज प्रथा का विरोध समस्या सामने आने पर उसमें हस्तक्षेप भी।

(13) मीडिया में महिलाएँ।

(14) कृषि में महिलाओं का तकनीकी सशक्तीकरण।

(15) कन्या–भ्रूण–हत्या एवं शिशु हत्या के विरुद्ध सामाजिक जागरूकता लाना।

(16) महिला स्वास्थ।

(17) मद्य निषेध आंदोलन।

(18) स्वयं सहायता वर्गों के माध्यम से चुनौतियों का सामना करना।

(19) लिंग संवेदनशील।

(20) नेटवर्क का निर्माण।

(21) विधवा समस्याएं।

(22) विकलांग महिलाओं की समस्याएँ।

इन समस्याओं के निवारण और महिलाओं के संवैधानिक रक्षा उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अन्वेषक परीक्षा सरकार को सिफारिश करने, महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनों के

पूर्व प्रावधानों की समीक्षा कर, कमियों और त्रुटियों को दूर करने के लिए सरकार को सिफारिश करने, शिकायतों की जाँच के अलावा स्वप्रेरणा से भी महिला अधिकार वंचन पर ध्यान दें, कानूनी सुरक्षा के उपायों का उलंघन करने संबंधी मामलों को संबंधित अधिकारियों के समक्ष उठाने, महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेने और प्रगति का मूल्यांकन करने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य इस आयोग के जिम्मे हैं। इसके अलावा महिला सुधार गहों कारागारों तथा अन्य स्थानों जहाँ स्त्रियों को बंदी रूप में रखा जाता है निरीक्षण करना तथा उनके पुनर्वास के उपायों की सिफारिश करना भी महिला आयोग का एक प्रमुख काम है।

पंचायती संस्थाएं –संविधान के 73 एवं 74वें संशोधन सन् 1993 द्वारा महिलाओं को राजनीतिक जीवन संरचना में पहुँचाने एवं उनकी अधिक भागीदारी को सुनिश्चित करने की पहल की गई है। पंचायती राज संस्थाएं सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी स्थानीय स्वशासी शासन महिलाओं की राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन एवं प्रसार में सक्रिय भागीदार निभाएगी।

स्वैच्छिक क्षेत्र के संगठनों की भागीदारी – स्वैच्छिक संगठनों, एसोसिएशनों, फेडरेशनों, ट्रेड यूनियन, अशासकीय संगठनों, महिला संगठनों, शिक्षा ट्रेनिंग एवं रिसर्च संस्थाओं की महिलाओं से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं पुनरीक्षण के कार्यक्रमों में भागीदारी हेतु साथ ही ली जाएगी। इन्हें इसके लिए उचित सहायता, संसाधन एवं शक्ति प्रदान की जाएगी ताकि वह महिलाओं को सशक्त बनाने में सक्रिय भागीदारी निभा सके।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग – नीति का लक्ष्य महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अंतरराष्ट्रीय कृतज्ञता–वचनबद्धता को महिला सशक्तिकरण के सभी क्षेत्रों जैसे महिलाओं के विरुद्ध सभी स्तरों पर भेदभाव मिटाना (सी.डी.ए.डब्ल्यू.), बच्चों के अधिकारों का अभिसयम (सी.आर.सी.), जनसंख्या एवं विकास पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन (सी. पी.डी.5) एवं अन्य दस्तावेज आदि में लागू करना होगा। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रीय एवं उपक्षेत्रीय सहयोग महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करने, अनुभवों की हिस्सेदारी, विचारों का आदान–प्रदान टेक्नोलॉजी, संस्थाओं एवं संगठनों के साथ नेटवर्क जोड़ने और पारस्परिक एवं बहुआयामी भागीदारी निभाने हेतु जारी रहेगा ताकि महिलाओं को हर स्तर पर सशक्त बनाया जा सके।

विवाह पंजीकरण :

महिलाओं को उनके हक दिलाने के लिए विवाह पंजीकरण अनिवार्य किया जाना जरूरी है। विवाह पंजीकरण अनिवार्य करने के अपने करीब डेढ़ साल पुराने निर्देश पर अमल में कतिपय राज्यों द्वारा बरती जा रही टाल–मटोल पर सुप्रीम कोर्ट का कड़ा रूख स्वाभाविक है। दुर्भाग्य है कि कुछ राज्यों की सरकारें देश की सर्वोच्च अदालत के महत्वपूर्ण निर्देशों को गंभीरता से नहीं लेती हैं और नाहक ही उसकी कोपभाजन बनती है।

राष्ट्रीय महिला नीति, 2016 – महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने 18 मई 2016 की टिप्पणियों और परामर्श हेतु राष्ट्रीय महिला नीति 2016 का मसौदा जारी किया। पन्द्रह वर्षों बाद इस नीति की समीक्षा की जा रही है। पिछली नीति 2001 के बाद आए बदलाव, खासतौर से महिलाओं की अपने प्रति जागरूकता और जीवन से उनकी आकांक्षाएं उसमें शामिल हो गई हैं, इसी को ध्यान में रखकर नया मसौदा तैयार किया गया है। इस नीति का लक्ष्य महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण और उनके लिए सामाजिक–आर्थिक वातावरण तैयार करना है। जिससे वे अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकें और संशाधनों पर उनका नियंत्रण हो। लैंगिक समानता तथा न्याय के सिद्धांतों को स्थापित किया जा सके। नीति का लक्ष्य है कि महिलाओं के लिए एक ऐसा सकारात्मक सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक माहौल तैयार हो सके जिसमें महिलाएं अपने मूल अधिकारों को प्राप्त कर सकें। खाद्य सुरक्षा एवं पोषण सहित स्वास्थ्य महिलाओं के प्रजनन अधिकारों पर फोकस महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं को हल किया जाएगा। परिवार नियोजन योजनाओं के दायरे में पुरुषों को भी रखा गया है। किशोरावस्था के दौरान पोषण, स्वच्छता, स्वास्थ्य बीमा योजना इत्यादि को शामिल किया गया है। शिक्षा–किशोर बालिकाओं की प्राथमिक पूर्व शिक्षा पर ध्यान दिया गया है। बालिकाओं हेतु स्कूल तक पहुंचना सुगम्य बनायी जाएगी और असमानताओं को दूर किया जाएगा। आर्थिक उपायों में महिलाओं के प्रशिक्षण और कौशल विकास हेतु व्यवस्था की जाएगी। व्यापार समझौतों और भृस्वामित्व के डेटा बेस की महिलाओं के अनुकूल बनाना, श्रम कानूनों और नीतियों की समीक्षा करना। मातत्व और बच्चों की देखभाल संबंधी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उचित लाभ प्रदान करना। समान राजगार अवसर प्रदान करना तथा महिलाओं की तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करना शामिल है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा नियमों और कानूनों क माध्यम से महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को रोकना, प्रभावी नियम बनाना और उनकी समीक्षा करना। बाल लिंग अनुपात को सुधारना, दिशा निर्देशों इत्यादि को कड़ाई से लागू करना, मानव तस्करी को रोकना शामिल है। इस नीति के तहत महिलाओं के लिए सुरक्षित साइबर स्पेस बनाना संविधान के प्रावधानों के तहत व्यक्तिगत और पारंपरिक नियमों की समीक्षा भी करने का प्रावधान है। वैवाहिक दुष्कर्म को अपराध की श्रेणी में रखने की भी समीक्षा की जाएगी ताकि महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा हो सके। परिचालन रणनीतियों में ये बिन्दु शामिल हैं महिलाओं की सुरक्षा– वन स्टॉप केंद्रों, महिला हेल्पलाइन, महिला पुलिस स्वयं सेवक, पुलिस बलों में महिलाओं के लिए आरक्षण,

मोबाइल फोन में पैनिक बटन के जरिए महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करना, यातायात और आम स्थानों पर निगरानी प्रणाली स्थापित करना। महिलाओं में उद्यमशीलता के संवर्धन के लिए ईको प्रणाली बनाना महिला ई–हाट, समर्पित विषय वस्तु आधारित प्रदर्शनियों के जरिए महिलाओं में उद्यमशीलता को बढ़ावा देना, महिला उद्यमशीलता के जरिए महिलाओं को सलाह देना तथा आसान और सस्ता ऋटा उपलब्ध कराना। कार्यस्थलों में महिलाओं को सुविधा कार्यस्थलों को महिलाओं के अनुकूल बनाने, कार्यअवधि को लचीला बनाने, मातृत्व अवकाश को बढ़ाने, कार्यस्थलों में बच्चों के लिए क्रेच का प्रावधान करने के जरिए महिलाओं को सुविधाएं प्रदान की जाएंगी।

सारांश :

महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में वातावरण संरक्षण एवं पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं को शामिल किया जाएगा, ताकि उनके जीवन–यापन में इन तत्वों को शामिल किया जा सके। वातावरण संरक्षण एवं वातावरण का विघटन रोकने में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी। गाँवों में रहने वाली अधिकांश महिलाएं अभी तक गैर–व्यावसायिक ऊर्जा स्त्रोतों जैसे – गोबर, फसल का कूड़ा एवं करकट एवं लकड़ी के ईंधन पर निर्भर रहती हैं। ऊर्जा के इन स्त्रोतों का पर्यावरण से संदर्भ में प्रभावशाली उपयोग को सुनिश्चित किया जाएगा। ऊर्जा के गैर–परंपरागत क्षेत्रों के लक्ष्य को बढ़ावा देने के कार्यक्रम बनाए जाएंगे। सोलर ऊर्जा, बायोगैस, धुआँरहित चूल्हे एवं अन्य ग्रामीण सामग्री के प्रचार–प्रसार में महिलाओं को भागीदार बनाया जाएगा, ताकि ग्रामीण महिलाओं की जीवन–शैली में परिवर्तन हो सके एवं इकोसिस्टम तंत्र प्रभावशाली बन सके। महिलाओं को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के कार्यक्रम में शामिल कर एवं अधिक शक्तिशाली बनाया जाएगा। लड़कियों को उच्च शिक्षा में विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी पढ़ने हेतु प्रेरित किया जावेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि महिलाएं वैज्ञानिक एवं टेक्नोलॉजी की विकास योजनाओं की सफलता में सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक विषयों में महिलाओं की जागरुकता बढ़ाने से संबंधित प्रयास किए जाएंगे। विशेषतः संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में महिलाओं की विशेष कौशल दिखाने हेतु उन्हें खास अवसर प्रदान किए जाएंगे। महिलाओं की आवश्यकतानुसार उचित टेक्नोलॉजी का विकास उनकी कठिनाइयों को कम करने को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा।

संदर्भ :

1. Ch. Victoria Devi and Sagar Mondal 2012. Emerging Trends of NGOs in Providing Livelihood Security and Empowering the Rural Women in Manipur. In Sustainability and Economic Development in Hill Agriculture (Eds) Kalita D.C. and Mishra B.K. BIOTECH Books.
2. Ch. Victoria Devi 2009. Joint Liability Groups in the Empowerment of rural Women in Manipur. M.Sc. (Ag.) Thesis, Department of Agricultural Extension, BCKV.
3. Damyanty Shridharan 1997. Encourage Self-Help Groups, Social Welfare, Vol 44(7).
4. Government of India 1999. Swarnjayanti Gam Swarozgar Yojana. Ministry of Rural Development.
5. Handy F. and Kasam M. 2004. Women's Empowerment in Rural India, Paper presented a the ISTR Conference Toronto, Canada, July.
6. Kalarani M.K. 2011. Gender Analysis and Issues in Agriculture. In Gender Mainstreaming through Technology Empowerment (Edn.) Ganesan R, and Premavathi R. Agrotech Publishers, Udaipur.
7. Landis Paul H. 1940. Rural Life in Process. McGraw Hill Book Company, New York.
8. Purnima K.S. 2004. Women Self-Help Group Dynamics in the North Central Zone of Andhra Pradesh, Unpublished Ph.D. Thesis ANGRAU, Hyderabad.
9. Sriram N. 2011. Gender Responsive Budgeting. In Gender Mainstreaming through Technology Empowerment (Edn.) Ganesan R., and Premvathi R. Agrotech Publisher, Udaipur.
10. Tekale V.S. 2012. Participation of Rural Women in Decision Making Process in Agriculture. International Journal of Extension Education. Vol.8, November.

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य

सह–आचार्य (कृषि–प्रसार)

श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा

मो. 9460545836 / Email : gpacharya.6@gmail.com

3 कृष्णदास अधिकारी के काव्य में लोकतत्त्व

डॉली गुप्ता

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से अष्टछाप के प्रमुख कवि कृष्णदास अधिकारी के काव्य में लोकतत्त्व का निरूपण करना ही मेरे लेखक का ध्येय है। कृष्णदास अधिकारी ने अपने काव्य में लोकतत्त्व का सुंदर समावेश किया है। कृष्णदास जी ने ब्रज के पर्व–उत्सव, रीति–रिवाज़, संस्कार, लोकरीति इत्यादि तत्त्वों का सुंदर समाहार अपने काव्य में कर लोकतत्त्व को बखूरी उभारा है। **कृष्णदास अधिकारी का जीवन परिचय**भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा में अष्टछाप के कवियों का प्राधान्य रहा है। विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना 1565 ई॰ में की जिन्हें 'कृष्णसखा' भी कहा जाता है। इनमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य हैं – कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास। चार विट्ठलनाथ के शिष्य हैं – नंददास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास।

कृष्णदास अष्टछाप के प्रथम चार कवियों में अंतिम थे। अष्टछाप के प्रमुख कवि श्री कृष्णदास जी परम भगवद्भक्त, सेवाव्रती, उच्चकोटि के कवि, संगीत शास्त्र के ज्ञाता एवं कुशल प्रबंधक थे। कृष्णदास का जन्म संवत् 1552 ई॰ में माना जाता है, परंतु प्रभुदयाल मीतल ने 1553 में गुजरात के चिलोतरा गाँव में माना है। हरिराय जी की भावप्रकाश वाली 84 वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास अधिकारी का जन्म 'कुनबी' पटेल कुल में हुआ था। 'कुनवी' शूद्र जाति है, क्योंकि वार्ता में कई स्थानों पर कृष्णदास को शूद्र कहा गया है।

तीर्थयात्रा करते हुए कृष्णदास ब्रज में आ गए। उन दिनों श्रीनाथ जी के कार्य से महाप्रभु वल्लभाचार्य भी अड़ैल से ब्रज आए हुए थे। इसी समय संवत् 1567 ई. के लगभग अपनी 13 वर्ष की आयु में कृष्णदास वल्लभाचार्य जी के शिष्य हुए। कृष्णदास में असाधारण बुद्धिमत्ता, व्यवहार, कुशलता और संगठन की योग्यता थी। पहले उन्हें वल्लभाचार्य ने भेंटिया के पद पर रखा और फिर उन्हें श्रीनाथजी के मंदिर के अधिकारी का पद सौंप दिया। अपने इस उत्तरदायित्व का कृष्णदास ने बड़ी योग्यता से निर्वाह किया यहीं से इनके नाम के साथ 'अधिकारी' जुड़ने लगा

कृतित्व

कृष्णदास अधिकारी के नाम से कहीं जाने वाली जुगलमान चरित्र, भक्तमाल की टीका, भ्रमरगीत, प्रेम सत्व निरूप, भागवत–भाषानुवाद, वैष्णव वन्दन, कृष्णदास की बानी, प्रेम रस–रास मानी गई है। जिनमें से वल्लभ संप्रदायी केंद्रों में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन रूप में पाये जाने वाले पद संग्रह ही कवि की प्रामाणिक रचनाएँ मानी गई हैं। कांकरौली से छपे 200 कीर्तन पदों को ही कृष्णदास अधिकारी का प्रामाणिक व सुलभ साहित्य माना गया है। इसी अध्ययन में इसी निजी 200 पद संग्रह का आधार लिया गया है।

लोकतत्त्व : अर्थ और स्वरूप

'लोक' शब्द संस्कृत की 'लोकृ दर्शने' धातु से 'धञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है 'देखना' जिसका लट्लकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जनसमुदाय, जो इस कार्य को संपन्न करता है, लोक कहलाएगा। लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में सामान्य जनता के अर्थ में इसका अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। वहाँ लोक शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद के प्रसिद्ध सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है। उदाहरणार्थ –

"नाभ्यां आसीदंतरिक्षं शीषर्णो द्यौः समवर्तत।
पदम्यां भूमिर्दिशःश्रोत्रातथा लोकान्
कल्पयत्।।"

भगवद्गीता में लोक तथा लोकसंग्रह आदि अनेक शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। यहाँ लोक का तात्पर्य संसार, तीनों लोक आदि से है, किंतु लोकसंग्रह का अर्थ है – साधारण जनता का आचरण एवं व्यवहार। हिंदी साहित्य कोश में लोक के संसार, जनसामान्य दोनों अर्थ लिए गए हैं – 1. इहलोक, परलोक और त्रिलोक, तथा 2. जनसामान्य।

लोक शब्द यद्यपि अत्यंत प्राचीन है किंतु इसका प्रयोग आधुनिक काल में बहुत कुछ अंग्रेज़ी शब्द फोक के अर्थ में किया जाता है। फोक का तात्पर्य है – जनसामान्य। फोक के इसी अर्थ को ध्यान में रखकर 1887 ई॰ में यूरोपीय विद्वान जॉन आब्रे ने सर्वप्रथम सर्वसाधारण जनता के रीति–रिवाज, रहन–सहन, अंधविश्वास आदि

का अध्ययन प्रारंभ किया। पं॰ रामनरेश त्रिपाठी ने फोक के लिए लोक शब्द के स्थान पर ग्राम शब्द का प्रयोग किया है और इसी के आधार पर अपनी पुस्तक का नाम ग्राम–साहित्य रखा। डॉ॰ मोतीचंद्र ने लोक के लिए 'जन' शब्द को उपयुक्त ठहराया है। इसके विपरीत, डॉ॰ हजारीप्रसाद लोक शब्द को 'काम' और 'जन' से पृथक् करते हुए कहते हैं, "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि संपन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते है।" हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने समाज तथा संस्कृति को ध्यान में रखकर अनेक स्थानों पर लोक शब्द का प्रयोग किया है, कहीं संसार के अर्थ में तो कहीं जनसामान्य के अर्थ में। अपने निबंध संग्रह 'चिंतामणि' में शुक्ल जी ने लोकसामान्य, लोकसत्ता, लोकव्यवहार, लोकधर्म, लोकमंगल आदि शब्दों का प्रयोग स्थान–स्थान पर किया है।

इस प्रकार, लोकतत्त्व के लिए प्रयुक्त उक्त अभिधानों पर विचार करने पर कहा जा सकता है कि लोकवार्ता में लोक की प्रत्येक अभिव्यक्ति चाहे वाणी, शरीर, आचरण के माध्यम से हो अथवा अन्य लोककथाओं, लोकगीतों, लोकनाट्यों के माध्यम से, उसके विश्वास एवं प्रथाएँ सभी आ जाते हैं। अर्थात् लोकवार्ता में लोकमानस की संपूर्ण अभिव्यक्ति समाहित रहती है और यह लोकमानस केवल किसी विशेष वर्ग अथवा जाति विशेष की धरोहर नहीं है अपितु यह गाँव, शहर के सर्वत्र मानव मात्र के मानसिक जगत् (अवचेतन) में देशकाल की बाधाओं, सभ्यताओं के आवरण को तोड़ता हुआ विद्यमान रहता है। वास्तव में, लोकवार्ता को लोक का विश्वकोश कहा जा सकता है।

कृष्णदास अधिकारी के काव्य में लोकतत्त्व का निरूपण

ब्रज क्षेत्र और उसकी संस्कृति लोक संस्कृति है। कृष्णदास इसी भूमि के ऐसे महत्त्वपूर्ण कीर्तनकार, रचनाकार एवं भक्त हैं जिन्होंने इसके लोकतत्त्व को अपनी रचना धर्मिता का मूलाधार बनाया। ब्रज की लोक भूमि, उत्सव धर्मिता और भक्ति–भावना में लोक को समाहित किए हुए है। कृष्णदास के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशिष्टा है – लोकतत्त्व का समावेश। लोक तात्त्विक दृष्टि से उनकी रचनाओं का अनुसंधान किया जाए तो पर्व–उत्सव, रीति–रिवाज, संस्कार, लोकरीति इत्यादि तत्त्वों का समाहार उनके काव्य में मिलता है।

कृष्णदास अधिकारी के काव्य में पर्व, उत्सव और त्यौहार

कृष्णदास ने अपने परमाराध्य श्रीकृष्ण के माध्यम से जीवन के बहुविध रूप को बहुत सुंदर ढंग से स्पष्ट किया है। वेश–भूषा, भोज्य पदार्थ, आभूषण, त्यौहार एवं आमोद–प्रमोद के दूसरे साधनों के बीच में काव्य को उपस्थापित करके उन्होंने ब्रज के तात्कालिक सांस्कृतिक जीवन को अभिद्योतित किया दीपावली के अवसर पर दीपमालिका का जगमगाता प्रकाश, होली के अवसर पर हो, हो, हो, होरी की प्रत्यक्ष ध्यनि करता हुआ उल्लसित, जनसमाज, रक्षाबंधन के अवसर पर कृष्ण का रक्षा–सूत्र बँधाकर प्रसन्न होना, कृष्ण जन्माष्टमी पर गोकुल में आनंद व उल्लास, गोधनोत्सव पर पशु–धन के प्रति ब्रजवासियों की महान आस्था ब्रज की लोक परंपरा व संस्कृति की महत्त्वपूर्ण अविच्छिन्न परंपरा है। कृष्णदास के काव्य में अनेकानेक पर्वों, उत्सवों और त्यौहारों का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह युगानुकूल परंपरागत विश्वासों, आस्थाओं, नैतिक मान्यताओं एवं चिरकालीन धार्मिक भावनाओं का पूर्ण चित्र है। कृष्णदास ने फूल मंडली, हिण्डोरा रास का सुंदर वर्णन अपने पदों में किया है। देव प्रबोधिनी एकादशी में तुलसी की महिमा, ब्रज–गोकुल के लोगों द्वारा व्रत करने व देव जगाने के गीत गाने का सुंदर चित्रण इन पदों में किया है –

"प्रबोधिनी ब्रज कीजै नीकौ।
जागे देव जगत–हित कारन सबै ब्रतनि कौ टीकौ।।"

"देव जगावति जसोदा मैया।"

जन्माष्टमी जो कृष्ण जन्म–लीला का उत्सव है। कृष्णदास के पदों में श्रीकृष्ण के जन्म पर ब्रज में आनंद व बधाइयाँ गायी जा रही है –

"गोकुल बाजत आज बधाई।
नन्द महर घर ढोटा जायौ तीन लोक
सुखदाई।।"
"सखी री! आजु भयौ ब्रज–आनंद।
नृत्यत गोपी ग्वाल सबै मिलि प्रगटै
परमानंद।।"

इसी प्रकार पवित्रा एकादशी, अक्षय तृतीया, गणगौर, सावन तीज, राखी बंधन इत्यादि का भी सुंदर चित्रण कृष्णदास जी ने अपने पदों में किया है। उदाहरणार्थ –

"दच्छिना देति हिजनि को ठाढ़ी धन
खरचाति न अघानी।

लै आरती वारति हरि–मुख पर अंग–
अंग बिकसानी।।"

उपरोक्त मन में कृष्णदास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के राखी बांधने पर द्विजों को दान करने एवं लाल का आरता करने का उल्लेख किया है।

"अक्षया तृतीया अक्षय लीला गिरिधर नवरँग
पहिरत चंदन।"

कृष्णदास ने अपने पदों में गनगौर के दिन प्रातःकाल के समय छोटी–छोटी लड़कियों द्वारा दूब व पुष्पों द्वारा सोत्साह गनगौर की पूजा करने व विभिन्न पकवानों के बनाने का वर्णन किया है –

"देखि गनगौर पिय प्यारी नवकुंज में, आय
बैठे ब्यारू
करन दोऊ मिलि साथ।
विविध पकवान व्यंजन नहों भाँति के, ठाडी
भरि लै
ललित हाथ।"

दीपावली के दिन कृष्णदास के पदों में लोग घरों को दीपक से सजाते हैं, मंगलाचार बधाई गाते हें। घरों में थापे लगाते हैं, वंदनमाला से देहरी सजाते हैं, लोक नए–नए पकवान बनाते है, सजते–सँवरते है, खुशियों के गीत गाते हैं, नाचते हैं –

"ब्रज घर–घर सब दीपक साजत मंगलचार बधाई बाजत।
घर–घर थापा वंदन–माला देखि–देखि मन मोद बढ़ावत।।"

गोवर्द्धन–पूजा के अवसर पर कृष्णदास की स्त्रियाँ गोवर्धन पर्वत की पूजा करती है। चंदन, कपूर, कुमकुम, दूध, दही, शहद इत्यादि से पूजा करती है, धृत–दीप जलाती है –

"गोवर्द्धन पर्बत पूजिये।
चंदन मृगमद कपूर कुंकुम दूध वही मधु
सींजिये।।"

कृष्णदास अधिकारी के विभिन्न पदों में पर्व, उत्सव व त्यौहार लोक तत्त्व को उजागर करते नज़र आते है।

कृष्णदास अधिकारी के काव्य में संस्कार वर्णन

कृष्णदास ने अपने काव्य में जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रमुख संस्कारों का विशद वर्णन किया है। जातकर्म संस्कार के माध्यम से शिशु के कल्याण के लिये मानवेतर प्रबल शक्तियों, ब्राह्मणों, वृद्धजनों आदि के प्रति एक प्रकार के उपास्य भाव की अभिव्यंजन होती है। नामकरण संस्कार पौरोहित्य संस्कार है जिसके द्वारा तात्कालिक बहुत–सी प्रथाओं का अभिद्योतन होता है। अन्न–प्राशन संस्कार के द्वारा बालक को बलिष्ठ बनाने लिये विविध व्यंजन खिलाने की भावना बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त होती है। विवाह संस्कार के द्वारा तात्कालिक अनेकानेक कुलाचारों, मान्यताओं, मांगलिक अनुष्ठानों, सामाजिक व्यवहारों तथा चलनों का कृत्य आ जाते हैं जो जन–समाज के द्वारा मृतात्मा से भय और स्नेह की भावना से संवलित होने के कारण पूरे किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त छठी और वर्षगाँठ के अंतर्गत मिलकर उत्सव मनाने की विशिष्ट सामूहिक भावना का ज्ञान होता है। निश्चय ही इन संस्कारों के द्वारा तात्कालिक रीति–रिवाजों, खान–पान, वेशभूषा, रूढ़ियों और प्रथाओं, कुलाचारों, मांगलिक अनुष्ठानों, सामाजिक व्यवहारों और चलनों, मिलकर उत्सव मनाने की सामूहिक भावना आदि का पूर्ण परिज्ञान हो जाता है। कृष्णदास ने जन्मोत्सव के समय जातकर्म और नामकरण संस्कार न ऐसे संस्कार है जिनको संपन्न करते समय अनेक बार बधावा गया जाता है, कुल की रीति के अनुसार अनेक कृत्य किये जाते हैं, लोगों को दान–दक्षिणा दी जाती है, नेग पाने वालों को नेग दिया जाता है तथा प्रियजनों को भोज आदि भी कराया जाता है। इस संदर्भ में कृष्णदास जी का पद उल्लेखनीय है –

"आजु बधायौ नंदमहन–घर फूले फिरत नर नारी।
इक गावत इक मृदंग बजावत, नांचत दै कर तारी।।
इक अद्‌भुत गति लेत मगन मन, गावत गीत रसारी।
तान तरंगनि रंग जम्यौ अति देत हैं हार उतारी।।"

"बंदीजन सब निकट बुलाए देत दान बाबा नंद।"

कर्ण छठी पूजन संस्कार पर श्री राधा के जन्म पर और कृष्ण जन्म पर बधाईयाँ गायीं। कर्णवेध संस्कार पर आपने छेदने वाले नाऊ को डाँटा और कहा कि–

"रोवत देखि जनजि अकुलानी दियौ तुरत नउवा क्रोधु
रकी।"

विवाह से पूर्व हल्दी चढ़ाकर और उबटन लगाकर कृष्ण के स्नान का उल्लेख कृष्णदास जी ने किया है –

"हरद चढ़ावै हृदय लगावैं, उलट न्हवावैं सब ब्रजनारी।
कृष्णदास गिरिधरन छबीले रंग रंगीले की बलिहारी।।"

विवाह के अवसर पर हल्दी हाथ की प्रथा को गाया है –

"हरद चढ़ावै हृदय लगावै उबटिन्हवावै सब नारी।"

इस प्रकार कृष्णदास ने विवाह संस्कार, हल्दी संस्कार, कर्ण छठी पूजन संस्कार इत्यादि के माध्यम से अपने काव्य में लोक तत्त्व को दर्शाया है।

कृष्णदास अधिकारी के काव्य में वर्णित समाज

कृष्णदास ने अपने काव्य में जिस समाज की अभिव्यंजना हुई है वह

जाति–पांति के बंधनों में जकड़ा हुआ था। समान जाति के लोगों में परस्पर बहुत मेल–मिलाप था। नंद का परिवार समाज की प्रत्येक गतिविधि का मुख्य केंद्र रहा। शिशु (बालक कृष्ण) इस समाज की धुरी है। प्रत्येक पात्र किसी न किसी रूप में बालक कृष्ण के साथ अपना संबंध बनाये हुए है। शुभ अवसरों पर सभी एक–दूसरे को आमंत्रित करते और भेंट आदि देते। एक ही जाति के लोगों में छोटे–बड़े का कोई भाव नहीं था। पारस्परिक सहयोग, संगठन एवं सौहार्द्र इस समाज के मूलाधार थे। ग्रामीण महिलाएं दूध, दधि अथवा लवनी बेचने पास के किसी बड़े नगर में जाया करती थीं। संकट टलने पर सभी का मिलकर पर्व मनाना, शुभ अवसरों पर मिलकर बधाई गाना, यथाशक्ति सभी को दान देना, खुशियाँ मनाना आदि कार्य ऐसे है जो इस समाज में पूरे हुए संगठन के प्रबल तंतुओं का ज्ञान कराते हैं। कृष्णदास के कई पदों में इसका वर्णन है –

"गोपी ग्वाल सवै मिलि हरषित फूले अँग न समाई।
लै–लै भेट सामग्री उत्तम गृह–गृह तें उठि धाई।।
आए सकल नंदजू के द्वारै देखे मोहनराई।"

कृष्णदास ने अपने पदों के माध्यम से उस समय में (समाज में) पुत्र के जन्म की तरह पुत्री के जन्म पर भी समाज के आनंद व उल्लास को दर्शाया है, बधाईयाँ दी जा रही है, विप्रों को दान दिया जा रहा है –

"श्री वृषभानु राइजू के आँगन बाजत आजु बधाई।
भादौ सुदि आठें उजियानी आनँद की निधि आई।।"

समाज में गोचारण का मुख्य महत्त्व कृष्णदास जी के काव्य में देखने को मिलता है। कृष्णदास ने अपने परमाराध्य को गाय चराने भेज कर ग्वाले के स्वाभाविक अकृत्रिम जीवन, गाय घेरने की संपूर्ण प्रक्रियाओं आदि का सविस्तार विवेचन किया है –

"आजु हरि आनन्दै दुहत है गैयां।
श्रीदामा आदि सखा सब, लीने पीत
मथि–मथि धैयां।"

निष्कर्ष

इस प्रकार, कृष्णदास जी ने पर्व, उत्सव, त्यौहार, विभिन्न संस्कार, समाज व्यवस्था इत्यादि के माध्यम से अपने पदों में लोकतत्त्व को उभारा है। ब्रज की लोकभूमि उत्सव धर्मिता और भक्ति–भावना में लोक को समाहित किए हुए है।

संदर्भ

1. भगवतीप्रसाद देवपुरा, अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, साहित्य–मण्डल, श्रीनाथ द्वारा, प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ–68
2. दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 2004, पृष्ठ–311
3. प्रभुदयाल मीतल, अष्टछाप परिचय, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, 2006 वि॰, पृष्ठ–218
4. वही, पृष्ठ–219
5. भगवतीप्रसाद देवपुरा, अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, पृष्ठ–553
6. दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ–315
7. वही, पृष्ठ–324
8. सिद्धांत कौमुदी, पृष्ठ–417
9. ऋग्वेद 3 / 53 / 12
10 वही, 10 / 90 / 14
11. श्रीमद्भागवत पुराण, 3 / 3,3 / 22, 3 / 24
12. धीरेन्द्र वर्मा (संपा॰), हिंदी साहित्य कोश, (भाग–1), ज्ञानमण्डल लि॰ वाराणसी, द्वितीय सं॰, संवत् 2020, पृष्ठ–747
13. डॉ॰ शशि शर्मा, प्रगतिशील कविता में लोकतत्त्व, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–35
14. जनपद (त्रैमासिक) अंक 1, काशी
15. पं॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी विचार और वितर्क, पृष्ठ–196
16. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि (भाग–1), पृष्ठ–148, 146
17. वही, पृष्ठ–40–41
18. भगवतीप्रसाद देवपुरा (संपा॰), अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, पृष्ठ–414, पद 770
19. वही, पृष्ठ–414, पद 769
20. वही, पृष्ठ–400, पद 720
21. वही, पृष्ठ–403, पद 727
22. डॉ॰ हरगुलाल, मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृष्ठ–251
23. भगवतीप्रसाद देवपुरा (संपा॰), अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, पृष्ठ–451, पद 342
24. वही, पृष्ठ–533, पद 1254
25. वही, पृष्ठ–411, पद 756
26. वही, पृष्ठ–412, पद 760
27. वही, पृष्ठ–332
28. भगवतीप्रसाद देवपुरा (संपा॰), अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, पृष्ठ–399, पद 716
29. वही, पृष्ठ–399, पद 717

30. वही, पृष्ठ–112

31. डॉ॰ हरगुलाल, मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृष्ठ–312

32. वही, पृष्ठ–399, पद 414

33. भगवतीप्रसाद देवपुरा (संपा॰), अष्टछाप के कलित कवि और कीर्तनकार अधिकारी श्रीकृष्णदास, पृष्ठ–400, पद 419

34. वही, पृष्ठ–408, पद 741

35. वही, पृष्ठ–350, पद 492

शोधार्थी

डॉली गुप्ता

हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली–110007

चलभाष सूत्र : 9560577906

ई–मेल :

कवससलहनचजं334 ⁄ हउंपसण्बवउ

निवास : पल्ला, दिल्ली–1100036

राजस्थान में पंचायती राज में महिलाओं की भूमिका एवं प्रभाव

4

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य

सारांश

आज भी महिलाओं का देश के निम्न सदन में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व है। सरकार, समाज, नागरिकों, गैर सरकारी संगठनों और नीति निर्माताओं के लिये आज भी यह यक्ष प्रश्न बना हुआ है कि महिलाओं, जिन्हें आधी आबादी के नाम से संबोधित किया जाता है, उसका उचित प्रतिनिधित्व सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं में कैसे हो। यद्यपि बुद्धिजीवियों एवं विचारकों ने गहन अध्ययन के बाद निष्कर्ष में पाया है कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं घरेलू लैंगिक असमानताओं एवं बन्धनों के चलते महिलाओं को आज भी भारतीय राजनीति में हाशिये पर रखा। घनबल, बाहुबल तथा हिंसा के राजनीति में बढ़ते चलन के कारण महिलायें राजनैतिक दलों तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं में भागीदारी करने में पिछड़ रही है। पारिवारिक बाध्यताओं एवं बन्धनों के कारण राजनीतिक दल महिलाओं को आगे लाने में हिचकते है। प्राकृतिक तौर पर महिलाओं को पुरुष प्रत्याशियों की तुलना में कमजोर माना जाता है, फलस्वरूप दल टिकट देने से परहेज करते है। हालांकि सभी दल अपने चुनावी घोषणा–पत्रों में महिलाओं को लेकर बड़े–बड़े वादे और घोषणायें करते हैं, लेकिन उनकी जमीनी हकीकत बिल्कुल अलग है। संविधान निर्माताओं ने स्वस्थ एवं संतुलित लोकतन्त्र की अवधारणा की कल्पना इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर की थी कि देश की आधी आबादी को पर्याप्त एवं उचित प्रतिनिधित्व मिलेगा। महिला अधिकारिता को मजबूत बनाने हेतु सभी सम्बन्धित पक्षों को महिलाओं का आनुपातिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने हेतु आगे आना चाहिये। पुरुष आधिपत्य वाली देश की सर्वोच्च लोकतांत्रिक संस्थाओं को पहल करनी चाहिये ताकि पुरुषों के वर्चस्व को तोड़ा जा सके।

परिचय (Introduction):

आधुनिक भारत के तत्कालीन प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले के बगधरी गांव से 02 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज व्यवस्था का शुभारम्भ किया गया था। 73वें संविधान संशोधन के तहत राज्य में पंचायती राज संस्थाओं को सृदृढ़ करने हेतु त्रिस्तरीय व्यवस्था के साथ पंचायती राज अधिनियम, 1994 लागू किया गया था, जिसमें स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ग्राम पंचायतों को योजनाओं का निर्माण करने की शक्ति प्रदान की गई। कालान्तर में 11वीं अनुसूची मे वर्णित 29 विषयों को पंचायती राज संस्थाओ को हस्तांतरित कर उन्हें सशक्त व मजबूत किया गया है। साथ ही पंचायतो को उनकी स्थानीय विकेन्द्रीकृत योजना के नियोजन हेतु राशि की उपलब्धता के लिए केंद्रीय वित्त आयोग तथा राज्य स्तर पर राज्य वित्त आयोग का गठन कर उनकी सिफारिशों के अनुसार वित्तीय प्रावधान किये गए हैं।

पंचायती राज के जरिये सत्ता शासन का निचले स्तर तक विकेन्द्रीकरण किया गया है, जिससे पंचायती राज संस्थाओं के जरिये हम समुदाय के सबसे गरीब, कमजोर परिवार तक अपनी पहुंच बनाकर उनकी पात्रतानुसार केंद्रीय एवं राजकीय योजनाओ से लाभान्वित कर उनके जीवन स्तर में सुधार का कार्य कर रहे हैं। साथ ही ऐसे परिवारों के सदस्यों को विभिन कौशल विकास योजनाओं से जोड़कर उनके लिए रोजगार के अवसर पैदा कर पंचायती राज संस्थाए अंत्योदय के साधन के रूप में भलिभांति अपना कार्य कर रही हैं। मेरा मानना है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ है और इस इकाई के अंतिम व्यक्ति को सशक्त करके ही सामाजिक–आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

पंचायती राज में गांधी की विचारधारा :

वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति एवं विश्वशांति के लिए जरूरी है कि गांधीवादी मूल्यों को प्रतिष्ठापित कर उनका जन–जन तक व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाए। गांधीजी द्वारा पूरी धरती को ही ट्रस्ट मानते हुए दिया गया ट्रस्टीशिप सिद्धांत (Gandhi's Trusteeship Principle) उल्लेखनीय है। इसमें उन्होंने कहा था कि जंगलों, नदियों, पहाड़ों व खनिज संसाधनों का इष्टतम उपयोग–उपभोग होना चाहिए। इसी दिशा में गांधी जी गांव–गांव के विकास और गांवों की आत्मनिर्भरता के लिए पंचायती राज की संकल्पना के भी पक्षधर थे।

भले ही देश में पंचायती राज का आगाज 1959 से, प्रथम प्रधानमंत्री स्व जवाहरलाल नेहरू के कर कमलों से गांधीजी के देहावसान के बाद हुआ था लेकिन पंचायती राज का मूल तत्व गांधीजी के आदर्शों से ही प्रेरित था। गांधी की दृष्टि में पंचायतें ग्रामीण विकास की सशक्त वाहक बन सकती थीं। गांधी पंचायतों को आदर्श गणतंत्र की स्थापना के लिए माध्यम व पद्धति दोनों मानते थे। वे पंचायतों में सत्य, अहिंसा, समरसता व व्यक्ति की आजादी,

छुआछूत विहीन समाज के सिद्धांतों का अनुपालन चाहते थे। बापू गांवों की राजनैतिक सत्ता चाहते थे एवं साथ ही आत्म–निर्भर व आत्म–निर्णय कर सकने वाले गांवों में आर्थिक प्रजातंत्र की इच्छा रखते थे। ग्राम स्वराज्य को लेकर उनकी विविध अपेक्षाएं रहीं। वे ग्राम स्वराज्य में व्यक्ति और ग्रामसभा दोनों को महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनकी अपेक्षा थी कि ग्राम सभाओं में गांव का आमजन सक्रियता से भाग लेगा तथा वहीं गांव की प्राथमिकतायें व जरूरतें पहचानी जायेंगी। गांधी ग्राम पंचायतों में विधायिका, न्यायपालिका व प्रशासकीय इकाई का समवेत रूप देखना चाहते थे। निस्संदेह बापू अपने समय में किसी गलतफहमी में नहीं थे। वे मानते थे कि आदर्श ग्राम पंचायतें बनाना या उनके लिए अभियान चलाना आसान नहीं होगा। एक गांव को ही आदर्श ग्राम पंचायत बनाने में पूरा जीवन खप सकता है। सुशासन के लिए सकारात्मक वातावरण बनाना ग्राम सुराज और स्वराज दोनों के लिए आवश्यक है। गांधी जी के शब्दों में प्रत्येक गांव को एक आत्मनिर्भर स्वायत्त इकाई के रूप में स्थापित करना ही ग्राम स्वराज की अवधारणा का मुख्य लक्ष्य है। गांधी जी के अनुसार ग्राम स्वराज का वास्तविक अर्थ आत्मबल से परिपूर्ण होना है। गांवों की स्वायत्तता (autonomy of villages) के लिए यह आवश्यक है कि ग्राम पंचायतों के पास अपने संसाधनों के साथ विकास का खाका व अधिकार हो व मानवीय अस्मिता के साथ हर ग्रामवासी अपने विकास के लिए, बिना भेद–भाव एवं भय के पारदर्शी सुराज व स्वराज के लिए गांवों के विकास कार्यक्रमों व सभाओं में सहभागिता कर सके। राज्य सरकारें पंचों व पंचायतों को वे सभी अधिकार, विभाग, वित्तीय अधिकार व कर्मचारी दे रही हैं, जिनकी वे संवैधानिक हकदार हैं। स्वयं के उपयोग, उपभोग के लिए स्वयं का उत्पादन, शिक्षा और आर्थिक संपन्नता ही ग्राम स्वराज एवं वास्तविक आत्मनिर्भरता की कुंजी है। आज ग्राम सभाओं के माध्यम से ही ग्रामीण जन सहभागिता द्वारा विभिन्न विकास कार्यों को अमलीजामा पहनाया जा रहा है।

संविधान में महिला के अधिकार :

महिलाओं की गरिमा, प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए हमारे देश में स्वतन्त्रता से पूर्व और इसके पश्चात् बहुत से कानूनों का निर्माण किया गया। इन विधानों एवं कानूनों के बावजूद भी महिलाओं की स्थिति में अपेक्षित सुधार अब भी प्रतीक्षित है। संविधान निर्माताओं ने भी महिलाओं की स्थिति को समझा तथा उन्होंने देश के सामाजिक ढाँचे में महिलाओं को उचित, उपयुक्त एवं समानता का स्थान दिलाने के प्रयासों में संविधान में समुचित प्रावधान किये। संविधान की समस्त उद्देशिका नागरिकों को प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा की प्रत्याभूति प्रदान करती है। "अनुच्छेद 14 में समानता के अधिकार का प्रावधान' है, इसमें महिलाओं के साथ कोई विभेद नहीं किया गया है, जिसकी पुष्टि उच्चतम न्यायालय द्वारा एयर इण्डिया बनाम नरगिस मिर्जा के मामले में की गई।"

अनुच्छेद 15 और 16 धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद को वर्जित करते हैं। अनुच्छेद 15(3) में स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने के लिए राज्यों को अधिकृत किया गया है। "अनुच्छेद 39 (क) और (घ) में राज्य को पुरुष और स्त्रियों सभी को जीविका के लिए समान वेतन निर्धारण के निर्देश हैं।

अनुच्छेद 42 में कार्य की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता का उपबंध करने के लिए राज्यों को निर्देश हैं। "अनुच्छेद 51–क (ड) में प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूल कर्तव्य है कि वे ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।"

सरकार ने संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन करते हुए एक नया अधिनियम पंचायती राज अधिनियम 1993 लागू किया। जिसमें पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर महिलाओं के पद आरक्षित कर विकास की प्रक्रिया में जनप्रतिनिधियों के रूप में महिलाओं की सीधी भागीदारी सुनिश्चित की गई है। यहाँ पर यह उल्लेख करना भी समीचीन है कि पंचायती राज की नींव राजस्थान राज्य से लगी तथा इसको सम्पूर्ण भारत देश में अपनाया जाकर ग्रामीण विकास में विकेन्द्रीकरण की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया।

"73वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग 9 (पंचायत), अनुच्छेद–243 तथा 11वीं अनुसूची जोड़ते हुए कतिपय प्रमुख प्रावधान किये गये।" इन प्रावधानों में ग्रामसभा को कानूनी मान्यता, पंचायती राज का त्रिस्तरीय ढांचा, महिलाओं, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति तथा जनजाति हेतु आरक्षण व्यवस्था, 5 वर्ष का कार्यकाल निश्चित्, कार्य तथा शक्तियों के कानूनी प्रावधान, राज्य वित्त आयोग का गठन, राज्य निर्वाचन आयोग का गठन आदि सम्मिलित हैं। पंचायती राज्य संस्थाओं में लेखा व अंकेक्षण के सम्बन्ध में प्रावधान एवं पंचायती राज्य संस्थाओं में शक्तियाँ प्राधिकार और उत्तरदायित्वो का प्रावधान कर लगाने व कोष एकत्रित करने की शक्तायाँ तथा संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दिया जाना लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा शक्तियाँ का विकेन्द्रीकरण करने की दिशा में सशक्त कदम है।

"इस संविधान संशोधन को राज्य स्तर पर मूर्त रूप प्रदान करने हेतु राजस्थान सरकार ने राजस्थान पंचायती राज अधिनियम,

1994 बनाया तथा 23 अप्रेल, 1994 से इसे राज्य में लागू कर दिया गया।

73वें संविधान संशोधन के पश्चात् ही देश की आधी दुनिया (महिला शक्ति) के लिए 33.33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान पंचायतराज संस्थाओं में लागू किया गया। राजस्थान सरकार ने महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए एक कदम आगे बढ़ते हुए पंचायतीराज संस्थाओं में यह आरक्षण 50 प्रतिशत कर दिया। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने यह प्रावधान संविधान संशोधन के माध्यम से सम्पूर्ण देश में लागू करने का निर्णय 27 अगस्त, 2009 को लिया।

"पंचायती राज का सही रूप संविधान के 73वें संशोधन के बाद ही लोगों के सामने एक मूर्त रूप में आया है। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् राजस्थान सरकार ने नया राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 राजस्थान पंचायती राज नियम 1996 तथा राजस्थान पंचायती राज (निर्वाचन) नियम 1994 राज्य में लागू किये।"

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज :

पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत बनाने का कार्य आजादी के बाद भारत सरकार पर आ गया। यह स्पष्ट था कि लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए ग्राम पंचायतों को मज़बूत करना आवश्यक था क्योंकि भारत एक गाँवों का देश था। ग्रामीण भारत की समस्या से निपटने का पहला प्रयास 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम और 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा के दौरान किया गया।

बलवंतराय मेहता समिति के अनुसार पंचायती राज :

सन 1957 में स्थापित की गयी बलवंतराय मेहता समिति स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की समस्याओं पर गौर करने के लिए पहली समिति थी । लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और ग्रामीण पुनर्निमाण की दिशा में इसने काफी काम किया तथा 1 अप्रेल 1958 को इसके सिफारिशें प्रभाव में आईं।

पंचायती राज से संबंधित विभिन्न समितियां :

- बलवंत राय मेहता समिति (1956–57)
- अशोक मेहता समिति (1977–78)
- पी वी के राव समिति (1985)
- डॉ. एल एम सिन्घवी समिति (1986)
- पी के थुंगन समिति (1988)

संविधान के अनुच्छेद 40 के अंतर्गत ग्राम पंचायतों के गठन और शक्तियां प्रदान करने की बात की गई है, लेकिन संवैधानिक दर्जा नही दिया गया। कालान्तर में 73 वें संविधान संशोधन द्वारा 24 अप्रैल, 1993 को पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देकर लागू किया गया । इसलिए वर्ष 2010 में 24 अप्रेल को पहला पंचायतीराज दिवस मनाया गया था। तब से भारत में प्रत्येक वर्ष 24 अप्रैल को राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस मनाया जाता है।

राजस्थान में पंचायती राज का उद्भव एवं विकास :

आजादी से पूर्व राजस्थान में सबसे पहले सन 1928 में बीकानेर पहली देशी रियासत थी जहां ग्राम पंचायत अधिनियम बनाया गया। स्वतंत्र भारत में राजस्थान पंचायती राज विभाग की स्थापना 1949 में हुई। इसी प्रकार राजस्थान ग्राम पंचायत अधिनियम 1953 बनाया गया था, उसके पश्चात सन 1959 में राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं का उद्घाटन पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर में किया गया। उस समय राजस्थान के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया थे।

राजस्थान के राजनीतिक एकीकरण के पश्चात राजस्थान जिला परिषद अधिनियम 1959 और राजस्थान पंचायत समिति अधिनियम में 1959 में बनाए गए और पहली बार इनके चुनाव 1960 हुए। पंचायत सुधार हेतु 1964 में सादिक अली समिति का गठन किया गया। इस समिति के द्वारा ग्राम सेवकों के प्रशिक्षण पर अपनी अनुशंसा की थी। इसके पश्चात 1973 में गिरधारी लाल व्यास समिति का गठन किया गया, इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय मजबूती के लिए सुझाव दिए थे।

वर्ष 1984 में जयपुर में इंदिरा गांधी ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान की स्थापना की गई, यह पंचायती राज संस्थाओं के जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों को प्रशिक्षण देने वाला राजस्थान का सर्वोच्च संस्थान है। राजस्थान विकास नाम से राजस्थान के ग्रामीण और पंचायती राज विभाग द्वारा एक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार के ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग की पत्रिका का नाम कुरुक्षेत्र है। पंचायती राज संस्थाओं के सुधार हेतु वर्ष 1988 में हरलाल सह खर्रा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था, इस समिति की अनुशंसा पर ही जिला ग्रामीण विकास प्राधिकरण (डीआरडीए) का विलय जिला परिषद में कर दिया गया था। वर्ष 2011 में गुलाब चंद कटारिया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जिसमें 11वीं अनुसूची में उल्लिखित सभी 29 कार्य पंचायत राज संस्थाओं को देने की अनुशंसा की।

सरकार एवं पंचायतीराज :

राजस्थान सरकार पंचायतीराज को सुदृढ़ करने की दिशा में अनवरत प्रयत्नशील है। में महात्मा गांधी नरेगा योजना ने गांव–गांव तक रोजगार देकर शहरों की ओर पलायन करते ग्रामीणों को रोक पाने में सफलता हासिल कर उन्हें रोजगार दिया है। 73वें संविधान संशोधन के प्रावधानों के 1993 से लागू होने पर देशभर में

पहली बार 24 अप्रैल, 2010 को पंचायती राज दिवस मनाया जाना आरम्भ किया गया था। तब से गांवों के विकास में स्थापित किये गए इस कदम को मील के पत्थर की भांति लगातार 24 अप्रेल को पंचायतीराज दिवस के रूप में मनाया जा रहा है।

पंचायतें क्षेत्र में उपेक्षित व वंचित समुदायों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएं पंचायती राज अधिनियम में वर्णित सेवाओं से सभी वर्गों व समुदायों को बिना किसी भेदभाव के लाभान्वित कर रही हैं। क्षेत्र में आवश्यक आधारभूत सुविधाओं जैसे सड़क, बिजली, पेयजल की व्यवस्था, स्कूल, चिकित्सालय, अनाज मंडी इत्यादि के साथ सामाजिक सुरक्षा, खाद्य आपूर्ति, कृषि योजनाओं, कौशल विकास, ग्रामीण स्वच्छता, आवास तथा महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) योजनाओं का लाभ पारदर्शिता के साथ प्रदान कर प्रदेश में सुशासन के लक्ष्य की प्राप्त की ओर सहायक एवं अग्रसर हैं।

पंचायती राज के जरिये सत्ता, शासन का निचले स्तर तक विकेन्द्रीकरण किया गया है, जिससे लोकतंत्र की भावना के अनुरूप सत्ता–शासन में स्थानीय लोगों की निर्णय में भागीदारी बढ़ी है। स्थानीय ग्रामीण समुदाय अपनी आवश्यकताओं की प्राथमिकतानुसार उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग कर पंचायत क्षेत्र के समग्र विकास में अपना सहयोग प्रदान करते हैं। स्थानीय स्तर पर समस्याओं को बेहतर तरीके से समझ कर उनका सफल निराकरण करने में सहयोग प्रदान करते हैं एवं ग्राम एवं पंचायत स्तर पर पात्र लाभार्थियों के चयन में सभी को साथ लेकर व उन्हें योजनाओ का लाभ पहुंचाकर सभी के विकास में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं।

प्रदेश में पंचायती राज अपने लक्ष्यों में काफी हद तक सफल रहा है लेकिन सुधार की गुंजाइश हर सिस्टम में रहती है। पंचायती राज संस्थाएं पंचायती राज अधिनियम अंतर्गत वर्णित सेवाओं को सहज एवं गुणवत्तापूर्वक रूप से समुदाय के सभी लोगो तक पंहुचाने में सक्षम हैं। ये संस्थाए अपने क्षेत्र मे विकसित की गयी परिसम्पतियों की जिओ–टेगिंग कर डाटा का संधारण डिजिटल पोर्टल पर कर रही हैं। स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर शत् प्रतिशत पंचायत विकास योजनाओं का निर्माण कर उनका क्रियान्वयन एवं पर्यवेक्षण का कार्य ई–ग्राम स्वराज पोर्टल अनुसार किया जा रहा है।

समस्त पंचायतो में आधारभूत संरचनात्मक ढ़ांचे का विकास किया जा रहा है जैसे–सड़क, नाली, बिजली एवं पानी इत्यादि। साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सामाजिक सुरक्षा जैसी योजनाओं का लाभ पात्र लाभार्थियों तक पहुंचाया जा रहा है। पंचायत बैठकों, सभाओं एवं विषेश सभाओं के माध्यम से विकास के सभी सेक्टरों की समीक्षा उनके अधिकारियों के साथ की जा रही है। पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित 29 विषयों से संबंधित कार्यों का क्रियान्वयन चरणबद्ध तरीके से किया जाना है।

पंचायतों की भूमिका :

स्वयं सहायता समूहों की महिलाओ को आरसेटी एवं अन्य संस्थाओं के माध्यम से प्रशिक्षित कर योग्य उत्पादों का चयन एवं निर्माण किया जाता है। इन उत्पादों को विक्रय हेतु राज्य में जिला मुख्यालयों पर मॉल, सरस मेले, ऑनलाइन मार्केटिंग पर विक्रय हेतु प्लेटफार्म उपलब्ध कराया जाता है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना के तहत प्रदेश में से करवाए जा रहे हैं। मनरेगा योजना ग्रामीण जन के लिए रोजगार प्रदान सर्वाधिक 42.43 करोड़ मानव कार्य दिवस सृजित किये गये हैं जो पूरे देश में सर्वाधिक है। इसके साथ ही राज्य मद से 25 दिवस का अतिरिक्त रोजगार अर्थात कुल 125 दिवस का रोजगार प्रति परिवार का प्रावधान किया गया है जिसे इसी वित्तीय वर्ष 2022–23 में लागू किया गया है। योजना के अन्तर्गत ग्राम सभा द्वारा प्रस्तावित एवं त्रिस्तर पर वार्षिक कार्य योजना में कार्य करवाए जाते हैं जिनमें नर्सरी विकास कार्य, पोषण वाटिका, कार्यशाला निर्माण, पशुशाला निर्माण, निर्माण शाला, फॉर्म पोण्ड, टांका, डिग्गी निर्माण, पौधारोपण आदि कार्य प्राथमिकता से करवाए जा रहे हैं।

बजट घोषणा 2021–22 के तहत नरेगा अन्तर्गत जलग्रहण विकास बजट योजनाओं से समन्वय कर कृषकों की आय बढ़ाने हेतु आगामी 2 वर्षों में 50 हजार फार्म पॉण्ड, डिग्गी एवं टांकों का निर्माण लगभग 600 करोड़ की लागत से करवाये जाने का प्रावधान किया गया है। इसमें लगभग 10 हजार हैक्टेयर भूमि में सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो सकेगी। योजना के तहत पात्र लाभार्थियों की भूमि पर 7.5 करोड़ रुपये लागत से लगभग 5 लाख उद्यानिकी पौधों का रोपण किया जाएगा।

राजनीति में महिलाओं की भूमिका :

73वां संविधान संशोधन मुख्य रूप से दो कारणों की वजह से एक मील का पत्थर कहा जा सकता है। इसने स्थानीय स्वशासन को सुगम बनाया और उसमें महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया। महिलाओं के लिए पंचायती राज के तीनों स्तर पर 33 प्रतिशत (कुल संख्या का एक तिहाई) आरक्षण प्रदान किया है। यह अधिनियम अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित सीटें भी प्रदान करता है। पंचायती राज के 2010 में हुए चौथे चुनाव में महिला

आरक्षण 33 प्रतिशत (एक तिहाई) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया है। पंचायतों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण सशक्तिकरण की और एक स्वागत योग्य कदम कहा जा सकता है क्योंकि यह विश्वास है कि यह पंचायत की संस्था को अधिक लोकतांत्रिक प्रतिनिधिक और संतुलित बनाने में सहयोगी होंगे।

महिलाओं का सशक्तिकरण समाज में महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को मजबूत करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा वे सम्मानजनक और सम्मानित जीवन व्यतीत कर सके। पंचायत राज संस्थानों के माध्यम से देश की आधी जनसंख्या महिलाओं को सशक्त बनाना है जिससे राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके। पंचायती राज के जिला प्रमुख, प्रधान, सरपंच, वार्ड पंच के पदों पर महिलाओं के लिए आरक्षण किया गया है। लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण महत्वपूर्ण लक्ष्यों में से एक है। इसके अलावा, भारत सरकार (जीओआई) ने ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के राजनीतिक नेतत्व और लैंगिक शासन को बढ़ावा देने के लिए बाहरी एजेंसी (यूएनडीपी) से वित्तीय सहायता के साथ वर्ष 2011 में एक परियोजना संयुक्त राष्ट्र महिला कार्यक्रम लागू किया है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य स्थानीय इकाइयों में महिलाओं की समान राजनीतिक भागीदारी को मजबूत करना और बढ़ाना है। WEF ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2020 के अनुसार, समग्र सूचकांक के आधार पर भारत की आर्थिक भागीदारी 149वीं, शिक्षा में 112वीं, और स्वास्थ्य 150वीं स्थान पर है। भारत राजनीतिक सशक्तिकरण रैंकिंग में 18वें स्थान पर है जो काफी बेहतर है। ब्रिटेन 20वें, अमेरिका 68वें स्थान पर हैं। स्थानीय निकायों में आरक्षण महिलाओं को सम्मानजनक स्थिति हासिल करने में मदद करता है, लेकिन इस स्थिति को पुरुष समाज द्वारा पर्याप्त रूप से समर्थित नहीं किया गया है। महिला सशक्तिकरण अभी भी एक प्रमुख चिंता का विषय बना हुआ है। संकीर्ण सोच वाली संस्कृति, पितसत्तात्मक समाज और शिक्षा के निम्न स्तर के कारण ग्रामीण स्थानीय निकायों में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को कम बताया गया है। कई लोगों के मन में ये सवाल उठने लगे कि घूंघट और अन्य सामाजिक बेड़ियों में जकड़ी महिलाएं जिन्हें वोट देने का भी पूरा सलीका नहीं आता वे ग्राम पंचायत के दफ्तर में सरपंचाई कैसे करेंगी ?प्रधान पद पर बैठकर अपने अधिकारों के प्रयोग की बात तो छोड़िये वे स्थानीय दिग्गज राजनेताओं के समक्ष क्या निर्णय लेने में सक्षम होंगी?जिला प्रमुख के पद पर बैठना एक बात है लेकिन सदन को नियंत्रित करना और पूरे जिले के लिए निर्णय लेना अलग बात है। क्या वे ऐसा कर सकेंगी?प्रारम्भिक दिनों में देखने में आया कि जहां सरपंच महिला है वहां एक अन्य व्यक्ति की उपस्थिति देखी जा सकती थी जो न पंचायत का सदस्य था और न ही अन्य पदाधिकारी वह था सरपंच पति। यह स्थिति उत्तरी भारत के लगभग सभी राज्यों में देखने को मिली जहां महिलाएं सरपंच प्रधान और जिला प्रमुख के पद पर चुनी गई। जहां एक और हमें यह प्रवति देखने को मिली वहीं यह कहना भी कदाचित गलत नहीं होगा कि पिछले एक दशक में इस स्थिति में अंतर आया है। पंचायतों में शोध और अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ कि कई पंचायतों की सरपंच महिला न केवल अध्यक्षता करती है अपितु वे स्वयं फैसले भी लेती है। सवैधानिक रूप से आरक्षण प्रणाली ने महिलाओं और हाशिए पर खड़े समूहों की स्थिति को सामान्य रूप से सुनिश्चित कर दिया है और विशेष रूप से विकेंद्रीकरण प्रक्रिया और सामुदायिक विकास का हिस्सा बनने का अवसर दिया गया।

महिलाओं के पंचायती राज में आगमन के साथ ही यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उपर्युक्त व्यवस्थाओं में महिलाओं की नेतत्वकारी भूमिका में किस प्रकार के परिवर्तन होने लगे हैं। वे नेतृत्व को पाकर कैसा महसूस कर रही हैं? वे दायित्व निर्वहन में कहां तक सफल हो सकी हैं?विकास में उनकी भूमिका किस प्रकार की है?ऐसे अनगिनत प्रश्न हैं जिसका आकलन किया जाना अति आवश्यक है। "पंचायत में महिलाओं की भागीदारी" शोध अध्ययन के अनुसार देखा गया कि अधिकांश 77 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि पंचायत की बैठकों में भाग लेती हैं। 16.66 प्रतिशत महिलाएं कभी–कभी बैठकों में नहीं आती हैं व 7 प्रतिशत महिलाएं बैठकों में नहीं जा पाती हैं। अधिकांश महिलाएं पंचायत बैठकों में सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं।

पंचायती राज में महिलाओं की सहभागिता को मजबूत बनाना :

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अध्यायों में सम्मिलित किये गये उत्तरदाताओं के सुझावों अग्रांकित रूप में सूत्रबद्ध किया जाता है –

1. शिक्षा व प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रयोग से – निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों का कहना है कि महिलाओं को जानकारी की आवश्यकता है। उन्हें कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम चाहिए जो अच्छा कार्य करने में सहायक हो सकें। उन्हें बाहर जाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वह अच्छी चीजों के बारे में समझ सकें और अपनी समझ को दूसरों के साथ बाँट सकें।

प्रतिनिधियों का यह भी कहना था कि उन्हें पंचायती राज

अधिनियम के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दी जाये। महिलाओं को शिक्षित होना चाहिए। प्रत्येक गाँव में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोले जाने चाहिए।

2. आर्थिक स्वतंत्रता – महिलाओं को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहिये। उन्हें अपने खर्चे के लिए पैसे मिलने चाहिए ताकि उन्हें पति से पैसा माँगने की आवश्यकता नहीं पड़े। महिलाओं द्वारा बनाये गये उत्पादों को सरकार द्वारा ले लेने चाहिए ताकि उन्हें बाजार की खोज में भटकना नहीं पड़े। महिलाओं के लिए कुछ विशेष रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए, जो महिलाएँ निर्वाचित हुई हैं उनके लिए कुछ भत्तों की व्यवस्था होनी चाहिए। महिलाओं के आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने पर ही उनकी सहभागिता को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

3. भत्ता – भत्ता महिलाओं को अच्छा कार्य करने के लिए प्रेरित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन साबित हो सकता है। महिला प्रतिनिधियों का कहना था कि यात्रा तथा अन्य भत्ता महिलाओं को दिया जाये जब वह पंचायत कार्य से कहीं बाहर जायें।

4. धन का आवंटन – पंच महिला प्रतिनिधियों का कहना था कि कुछ फण्ड वार्ड सदस्यों के मध्य आवंटित कर दिया जाना चाहिए ताकि उन्हें सरपंच पर निर्भर न रहकर अपने वार्ड सदस्य कार्य योजना को क्रियान्वयन का रूप दे सकें।

5. महिलाओं को सुनने और सलाह लेने की आवश्यकता – पंच महिला प्रतिनिधियों का कहना था कि कुछ इस प्रकार की व्यवस्था की जायें जिसमें महिलाओं को सुनना आवश्यक हो। पंच प्रतिनिधियों का कहना था कि सरपंच के लिए यह अनिवार्य हो कि वह वार्ड सदस्यों से सलाह मशविरा करके निर्णय लें। एक पंच महिला प्रतिनिधि का कहना था कि ऐसी व्यवस्था कर दी जाये कि कम से कम 2 महिला वार्ड सदस्यों की सहमति किसी भी प्रस्ताव को पारित कराने के लिए आवश्यक हो । इस प्रस्ताव को सफल बनाने के जवाब में सरपंच ने सलाह दी कि महिलाओं की मीटिंग में उपस्थिति को अनिवार्य कर देना चाहिए।

6. पुरुषों के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता – पुरुषों को महिलाओं से उपयुक्त व्यवहार करना चाहिए। निर्वाचित पंच महिला प्रतिनिधियों का कहना था कि पुरुषों को घर, पंचायत तथा सरकारी कार्यालयों में महिलाओं के साथ शालीनतापूर्ण व्यवहार करना चाहिये।

7. सरकार से प्रोत्साहन तथा सहयोग – सरकार को महिलाओं को कर्मठ बनाने के लिए उनकी प्रशंसा करनी चाहिये। सरकार को चाहिए कि महिलाओं के साथ मीटिंग करें, उनकी भूमिका के बारे में बतायें, उन्हें यह भी बतायें कि वह किस प्रकार निर्णय ले सकती हैं उनमें आत्मविश्वास जगायें।

8. महिलाओं को जानना चाहिए कि वे क्या कर सकती हैं – निर्वाचित महिला सरपंच प्रतिनिधि का कहना था कि यदि महिलाएँ चाहें तो वह सभी कार्य कर सकती हैं। महिलाओं को एकता से रहना चाहिए तथा अपनी समस्याओं से मुकाबला करना चाहिये। एक पंचायत समिति सदस्या का कहना था कि महिलाओं को अपनी बात का निर्धारण करना चाहिये। वे अशिक्षित होते हुए भी सभी कार्य कर सकती हैं।

निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को पंचायती राज संस्थाओं में कार्य संपादन तथा सक्रिय भागीदारी निभाने में आने वाली चुनौतियाँ :

पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को अपनी सक्रिय सहभागिता तथा गतिविधियों के संपादन में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

तीनों स्तरों पर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों से पथक्–पथक् वार्तालाप कर इन परेशानियों को जानने का प्रयास किया गया है–

(अ) सरपंच सहयोग नहीं करते – 120 पंचों में से 52 पंचों का कहना था कि सरपंच उन्हें सहयोग नहीं करते तथा सदस्यों से किसी कार्य के लिए सलाह नहीं करते।

(ब) गुटबंदी – 120 पंचों में से 40 पंचों ने स्वीकार किया कि गुटबंदी की समस्या उनके कार्य संपादन में एक महत्त्वपूर्ण कठिनाई उपस्थित करती है।

सामान्यतः गाँव में दो समूह बन जाते हैं जहाँ एक समूह वर्तमान सरपंच का समर्थन करता है वहीं दूसरा समूह पूर्व सरपंच का समर्थन करता है जिससे कि सरपंच को कार्य करने और योजना बनाने में कठिनाई आती है। वे पंच जो किसी भी समूह के अंग नहीं हैं वे कभी भी पंचायत मीटिंग में अपने समर्थन में बहुमत एकत्रित करने में सक्षम नहीं हो पाते और इसलिए वह अपने वार्ड के समर्थन के पक्ष में एक भी प्रस्ताव पास नहीं करवा पाते। परिणामस्वरूप निर्वाचित प्रतिनिधियों में उनकी योग्यता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जाने लगता है कि वह कोई भी कार्य करने योग्य नहीं है।

वित्त की कमी और वित्तीय शक्तियाँ – गाँव के विकास और लोगों के कल्याण की गतिविधियों को संपादित करने में मुख्य बाधा वित्त की कमी तथा वित्तीय वित्त का अभाव है। कुछ महिला पंच अपने पति को पंचायत की क्रियाविधियों में सहभागिता के लिए मना करती हैं और पंचायतें क्या करती हैं इस बारे में कुछ नहीं बतातीं 104 में से 4 पंचों ने अपने पति के विरुद्ध शिकायत की कि उनके पति उन्हें पंचायत की गतिविधियों में भाग नहीं लेने देते जबकि वह

स्वयं कार्य करने में रुचि रखती है। निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में उनकी दक्षता पर आघात पहुँचाने वाला यह एक मुख्य कारण है।

निष्कर्ष :

02 अक्टूबर, 2021 से "प्रशासन गांव के संग अभियान'' अंतर्गत लगभग 10 लाख से अधिक पट्टे जारी कर, जनसमुदाय को मालिकाना हक प्रदान किया गया। ग्राम पंचायत मुख्यालयों पर लगने वाले शिविरों में करीब दो दर्जन विभागों से जुड़े कार्यो एवं योजनाओं का लाभ ग्रामीणों को दिया गया। ऐसे कई कार्य जिनके लिए उन्हें विभिन्न विभागों में महीनों चक्कर लगाने पड़ते थे, एक ही जगह तत्काल पूरे किए जाकर इसका लाभ दिया गया।

शोध अध्ययन के दौरान देखा गया कि अधिकांश महिलाएं सही गलत का फैसला लेने में अपने परिवार जनों पर निर्भर रहती हैं और 28 प्रतिशत महिला जनप्रतिनिधि स्वविवेक से कार्य करने लगी हैं जो महिला सबलीकरण का अच्छा संकेत है। सभी वर्ग की महिला पंच अपने परिवारजन की सलाह को महत्व देती हैं साथ ही जो महिलाएं शिक्षित हैं वे स्वविवेक से भी निर्णय ले रही हैं। इसके अलावा राजनीतिक दत्व भी महत्वपूर्ण सलाहकार रहते हैं।

महिलाएं भी पुरुषों की तरह राजनीति में अपनी भूमिका निभा रही हैं। पिछले चुनावों से महिलाओं की स्थिति में धीरे–धीरे काफी बड़ा परिवर्तन आया है। पंचायत समिति स्तर पर कई ऐसे उदाहरण देखने को मिले है जहां शुरूआत में महिला बोलने में झिझक महसूस कर रह थी, वही पांच वर्षों में महिला पंचों ने अपनी भूमिका में बड़े परिवर्तन किये। महिला प्रधानों ने समिति की बैठकों, बजट के वितरण, स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र और अन्य क्षेत्रों में सकारात्मक भूमिका निभाकर अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी है। यहां तक कि कई जगह महिला प्रधान और प्रतिनिधियों ने राजनीतिक क्षेत्र के अन्य ऊंचे. पायदानों पर चढ़ने का प्रयत्न भी किया है।

जिलाप्रमुख, प्रधान, सरपंच, व वार्डपंच बनकर कई पंचायतों में अच्छा कार्य भी किया है। पंचायतों में नेतत्वकारी भूमिका में आने के पश्चात महिलाओं की स्थिति में सम्मान व जागरूकता में वृद्धि हुई है व पहले से अधिक सशक्त व अपने कार्यों के प्रति जागरूक हो रही हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. ''प्रशासनिक ढांचा एवं प्रगति विवरण 2001–2002'' पंचायती राज विभाग राजस्थान सरकार, जयपुर।
2. डॉ. पी.डी.शर्मा बी.एम.शर्मा एवं श्रीमती नीलम गोवर ''भारत में लोक प्रशासक'', 1984, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
3. एच.डी.मालवीया ''विलेज पंचायत इन इण्डिया'' 1965, प्रिन्टवैल पब्बिशर्स, जयपुर।
4. डॉ. रविन्द्र जैन ''ग्रामीण स्थानीय प्रशासन'',1985, प्रिन्ट वैल पब्लिशर्स जयपुर।
5. एस.आर.महेश्वरी ''भारत में स्थानीय शासन'', 2002 लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा ।
6. डॉ. एच.आर.स्वामी व वी.पी.गुप्ता ''ग्रामीण विकास एवं सहकारिता'', 2001 रमेश बुक डिपो, जयपुर।
7. ''प्रशासनिक ढांचा व प्रगति विवरण 1998–99'', ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग राजस्थान सरकार, जयपुर।
8. डॉ. आर.पी.जोशी एवं रूपा मंगलावी, ''भारत में पंचायतीराज'', 2000, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।
9. वी.नाथ ''द टेक्नीकल डिपार्टमेन्ट अण्डर पंचायतीराज'', द इडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन खण्ड–8
10. डॉ. आर.पी.जोशी एवं डॉ अरूणा भारद्वाज, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
11. डॉ. इकबाल व अन्य ''पंचायती राज एडमिनिस्ट्रेशन इन राजस्थान'',1973, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
12. श्री राम महेश्वरी, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'', 2002, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
13. राजस्थान पंचायती राज–अधिनियम 1994
14. डॉ अमर सिंह राठौड 2001 ''पंचायती राज एक परिदृश्य'' राजस्थान सुजस पत्रिका मई 2001, सूचना एव जन सम्पर्क निदेशालय जयपुर।
15. वेददान, सुधीर, अरूण चतुर्वेदी एव गिरिराज शर्मा, ''प्रत्यक्ष प्रजातंत्र और ग्राम संभा'', 2004,, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर।
16. डॉ. अशोक शर्मा, ''भारत मे स्थानीय प्रशासन'', 2002, आर बी. एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर।

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य

सह–आचार्य (कृषि–प्रसार)

श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा

मो. 9460545836 / Email : gpacharya.6@gmail.com

5

सुमित्रानंदन पंत का काव्य वैशिश्ट्य

डॉ0 निर्भय शर्मा

साराश—

सुमित्रनंदन पंत हिंदी साहित्याकाश के ऐसे ज्योति विहग हैं जो अपने पंखों में धरती और स्वर्ग की मनोरम कल्पनाएँ बाँधे हुए हैं। उनका जीवन प्रकृति की सुकुमार छाया में पला—बढ़ा है । उन्होंने अपने जीवन के प्रभात काल में ही पल—पल परिवर्तित प्रकृति वेश को देखा है । पंतजी हिंदी जगत् के उन कवियों में से एक हैं जिनकी कविता का स्वर समय के साथ—साथ बदलता रहा है । पंतजी का जन्म अल्मोड़ा के कौसानी नामक ग्राम में सन् 1900 में हुआ था । जन्म के कुछ घण्टे बाद ही मातृस्नेह से वंचित हो जाने के कारण अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था और इस कारण से प्रकृति के उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

छायावाद की वृहद्त्रयी में प्रसाद, निराला और पंत की गणना की जाती है । प्रसाद के काव्य—विकास में आरोह का नैरंतर्य है और कामायनी में वह अपने उच्चतम शिखर तक पहुँच जाता है । निराला का काव्य आरोह—अवरोह की टेड़ी—मेढ़ी रेखाओं में विकसित होता है । किन्तु 'वीणा' से 'युगान्त' तक पंत का विकास आरोहात्मक है और 'युगवाणी' से 'लोकायतन' तक अवरोहात्मक । पंतजी की शिकायत है कि आलोचना उनके पूर्ववर्ती काव्य को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखते हैं तो परवर्ती काव्य को उपेक्षा की दृश्टि से । आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में छायावादी कवियों का विवेचन किया हैं । अपने इतिहास के अन्तर्गत 'नई धारा' का विवेचन करते हुए वे लिखते हैं — ''अपने ही सुख—दुःख के रंग में रंगकर प्रकृति को देखा तो क्या देखा ?मनुष्य ही सब कुछ नहीं है । प्रकृति का अपना रूप भी है।'' प्रकृति के प्रति दुर्निवार आकर्षण पंत में एकदम आरंभ में मिलता है । मोह (1918), प्रथम रश्मि (1919) में कवि प्रकृति और मानव—जीवन के संबंध का ही प्रश्न सबसे पहले उठता है । ये दोनों छायावाद की एकदम आरंभिक रचनाएँ हैं । छायावाद की हिंदी में पहचान बहुत कुछ इन्हीं कविताओं से बनी है । इस संदर्भ में 'मोह' कविता का पहला छंद कितना प्रासंगिक है —

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले !तेरे बाल—जाल में
कैसे उलझा हूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को ! 1

छायावाद के प्रवर्त्तन का श्रेय यदि प्रसाद जी को प्राप्त है तो उसमें अभिव्यक्त अनुभूतियों के प्रचार—प्रसार और परिष्कार का श्रेय सुमित्रनंदन पंत को है। आधुनिक हिंदी कविता में सौंदर्य का काशमीर सजाने ओर बसाने में पंतजी ने कोई कोर—कसर बाकी नहीं छोड़ी है । छायावादी युग में पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी जी का अप्रतिम योगदान है, किन्तु सौंदर्य अनुभूति के बिम्बों की माला में कल्पना के पुष्पों को गूँथकर मदिर भावानुभूतियों की गंध वितरित करने में पंत की तुलना नहीं की जा सकती है । पंतजी की कृतियाँ इस बात की साक्षी हैं कि उनके काव्य ने अनेक करवटें ली हैं और इन मोड़ों से होती हुई कवि की दृष्टि से 'लोकायतन' से लोक चेतना का जल पाकर 'शंखध्वनि' भी कर सकी है और आस्था की छाँह तले विराम भी पा सकी है । पंतजी की काव्य—यात्रा सुंदरम् से प्रारम्भ होकर यथार्थ के ताप से तप्त हुई है । शिव की साधिका बनी और अन्ततः भौतिक—आध्यात्मिक किनारों को मिलाती हुई अन्तश्चैतन्य के शिखरों पर मानव अवस्था की धूप बनकर फैल गई है । पंतजी अपने समूचे परवर्ती काव्य में इस बात पर बल देते हैं कि मानव को अपनी आंतरिक शक्ति को पहचानते हुए कर्मरत बने रहकर उस गतिशीलता को प्राप्त करना होगा जो आस्था के कदमों से चलती हुई अमृत—शिखर को प्राप्त कर सके और सुखद भविष्य तथा सुखद मानव जीवन की कल्पना को साकार कर सके ।

पंतजी की कविता का मूल स्वर सौंदर्यवादी रहा है जो विभिन्न पथों और पगडंडियों से गुजरता हुआ नित नये रूपों में हमारे सामने आता है । पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि उनकी मौलिक दृष्टि बदल गयी है, बदला है केवल माध्यम । जिस सौंदर्य बोध को पंत ने छायावादी चश्मे से देखा था, उसी को छायावादोत्तर काल में प्रयोगवादी चश्मे से देखा है । छायावाद के पतन के पश्चात पंत ने प्रगतिवादी कविता से मेलजोल कर लिया और इतना ही नहीं, उन्होंने प्रगतिवादी धारा को व्यापक भूमिका पर प्रतिश्ठित करके, मार्क्स की भूल—भूलैया से निकालकर समतल भूमिका पर खड़ा किया । बाद में पंतजी ने प्रगतिवाद को अपर्याप्त और मानव—जीवन के विविध प्रश्नों के हल के लिए कमजोर और अधूरा जानकर अपने आपको अरविंद के अन्तश्चेतनावाद से जोड़ लिया । इस दर्शन से एक ओर पंत के अस्पष्ट विचार प्रौढ़ हुए हैं,

वहीं उनका सौंदर्यवादी हृदय अध्यात्म के जगत् में तृप्ति के कण भी खोज सका है ।2

सन् 1917–18 से पंतजी के काव्य सृजन का विधिवत प्रारम्भ माना जा सकता है। 'वीणा' इनकी प्रारम्भिक कृति है । इसके पश्चात्पल्लव, ग्रंथि, गुँजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, युगपथ, स्वर्णधूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, किरण–वीणा, पौ फटने से पहले, पतझर, एक भाव क्रान्ति, गीतहंस, शंखध्वनि, शशि की तरी, समाधिता और आस्था, ज्योत्स्ना, रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, मधुवन, युगपुरूष, छाया, मानसी, पल्लविनी, आधुनिक कवि, चिदम्बरा, रश्मिबंध, तारापथ, चित्रांगदा और गंधबीथी आदि रचनाएँ हैं ।3

पंतजी का प्रारम्भिक काव्य प्रकृति–प्रेम और शिशु–सुलभ जिज्ञासा को लेकर प्रकट हुआ है । इनमें उज्ज्वल प्रेम भावना और सौंदर्य के प्रति आकर्षण प्रकट होता है । इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ ज्योत्स्ना, पल्लव, गुँजन आदि प्रकृति और सौंदर्य के प्रेमी कवि की संवेदनशील अभिव्यक्तियों से युक्त हैं । परन्तु पंत का कवि–हृदय समसामयिक, युगीन गतिविधियों से निरंतर प्रभावित होता रहा है। अतः कभी गाँधीवाद, तो कभी साम्यवाद और कभी प्रगतिवाद की चेतना इनकी रचनाओं में प्रकट होती रही है । देश के स्वतंत्र होने पर पंत के काव्य का स्वर बदला और इसमें सामाजिक, नवनिर्माण और नूतन सांस्कृतिक संदेश मुखरित हुए । बाद की रचनाओं में स्वामी विवेकानंद और महर्षि अरविंद के अध्यात्म का प्रभाव स्पश्ट रूप सेपरिलक्षित होता है । पंतजी प्रवृत्ति से छायावादी हैं, परन्तु इनके विचार उदार मानवतावादी हैं । पंतजी ने प्रसाद और निराला के समान छंद और बिंब– योजना में नवीन प्रयोग किए । पंतजी की प्रतिभा कलात्मक सूझबूझ से सम्पन्न है । अतः इनकी रचनाओं में एक विलक्षण मृदुता और सौष्ठव देखने को मिलता है । इनकी कविताओं में सूक्ष्म चित्रात्मक शैली के दर्शन होते हैं । निराकार भावों को साकार रूप में चित्रित करना उनकी एक कला है । इस संदर्भ में वे बादल का एक चित्र खींचते हुए कहते हैं –

कभी चौकड़ी भरते मृग से भू पर चरण नहीं धरते
मत्त मतंगज कभी झूमते सजग शशक नमा को चरते
कभी अचानक भूतों का सा प्रकठा विकट महा आकार
कड़क–कड़क जब हँसते हम सब थर्रा उठता है संसार
फिर परियों के बच्चों से हम सुभग सीप के पंख पसार
समुद्र तैरते शुचि ज्योत्स्ना में पकड़ इंदु के कर सुकुमार ।4

वैकासिक दृष्टिकोण से पंत की रचनाओं को हम तीन सोपानों में विभक्त कर सकते हैं । गुँजन तक की रचनाएँ प्रकृति–प्रेम, रूप–सौंदर्य और प्रेम की भावनाओं से युक्त होते हैं । उसके उपरान्त ग्राम्या तक की रचनाओं में समाजवादी और प्रगतिवादी प्रभाव देखने को मिलता है तथा तृतीय चरण की रचनाएँ अध्यात्मवादी कही जा सकती हैं । पंतजी को 'चिदम्बरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला । पंतजी के अन्तिम समय में नयी कविता का युग आ गया था । अतः इनकी कुछ रचनाएँ उससे भी प्रभावित हैं । अतः स्पश्ट है कि पंतजी की रचनाओं पर बदलते युग का प्रभाव बराबर पड़ता रहा है ।पंतजी का नाम छायावाद के श्रेष्ठ कवियों में गिना जाता है । इनके सौंदर्य बोध को इस उद्धरण से स्पष्ट किया जा सकता है –

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा–स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी, त्रिवेणी की लहरों का गान।
करूण भौहों में था आकाश, हास में शैशव का संसार
तुम्हारी आँखों में करबास, प्रेम ने पाया था आकार ।5

पंत–काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण देखने को मिलता है । उनकी कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का वैभव दिखायी देता है ।किन्तु बादल और छाया जैसी कविताओं में केवल एक अद्भुत या विलक्षण कल्पना के ही दर्शन होते हैं जिससे चमत्कार की अनुभूति तो होती है लेकिन किसी गंभीर भाव की नहीं। छाया को दमयन्ती के समान चित्रित करने में कवि किसी गंभीर अनुभूति से प्रेरित प्रतीत नहीं होता । दूसरी ओर कवि पंत एक आदर्श प्रेमी रहे हैं । उनकी अनेक कविताओं में प्रकृति–प्रेम और आदर्शवादिता सम्बद्ध रूप से मुखरित है । इस संदर्भ में 'वीणा' से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

कुमुद कला बन कल हासिनी, अमृत प्रकाशिनी, नभ वासिनी
तेरी आभा को पाकर माँ ! जग का तिमिर त्रास हर दूँ –
नीरव रजनी में निर्भय ।6

प्रकृति एक ओर, और मनुष्य दूसरी ओर इनके समीकरण की चिंता सुमित्रनंदन पंत को पहले है । पर यह समीकरण क्रमशः बन नहीं पाता । प्रकृति–चित्रण और मानवीय नियति एक–दूसरे से छूट जाते हैं । यह पंत की रचना प्रक्रिया और समूचे छायावाद के लिए एक बड़ी काव्यात्मक दुर्घटना कही जा सकती है । इस द्वैत का मुख्य कारण कविता में दर्शन का सीधा हस्तक्षेप है । वे गाँधी, मार्क्स और अरविन्द से सीधे वैचारिक स्तर पर टकराते हैं, उन्हें अनुभव में रूपांतरित नहीं करते । इसीलिए उनकी दार्शनिक अवधारणाएँ जीवनानुभव से पुष्ट नहीं होतीं । वे सूक्तियाँ और शुभ चिंतन होकर रह जाती हैं । पंतजी ने अपने उत्तरकालीन काव्य संकलन 'कला और बूढ़ा चाँद' में एक बार फिर से जीवन का परीक्षण किया है, प्रकृति और मनुष्य का समीकरण एक बार फिर से साधना चाहा है–

वन फूलों में, मैंने नये स्वप्न रंग दिये ,
कल देखोगे !
कोकिल कंठ में, नयी झंकार भर दी
कल सुनोगे ! 7

यद्यपि गीत–काव्य पंतजी की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम रहा है, पर उन्होंने प्रबंध–विधान के क्षेत्र में 'लोकायतन' के रूप में एक बड़ा प्रयोग किया है । इसका कथा सूत्र सांकेतिक पर मुख्यतःआत्मकथात्मक है । महाकाव्य के रूप में विरचितयह काव्य भी दर्शन–विवेचन से आक्रांत है । प्रकृति–चित्रण से प्रारम्भ करके कवि क्रमशः दार्शनिक मान्यताओं में डूबता गया है । अपनी रचनात्मकता के इस पक्ष के प्रति वह स्वयं सजग भी हैं । 'आधुनिक कवि माला' भाग–2 की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि –''मेरे आलोचकों का कहना है कि मेरी इधर की कृतियों में कला का अभाव रहा है । विचार और कला की तुलना में इस युग में विचारों ही को प्राधान्य मिलना चाहिए ।'' 8

पंत को शब्द–शिल्पी कहा जाता है उपयुक्त शब्दों का चुनाव, उसकी तराश, सटीक अर्थवत्ता, मितकथन और स्थापत्य की अविच्छेद्यता का उत्कृष्ट उदाहरण है 'नौका विहार' । यह कविता भी वर्णनात्मक है । किन्तु 'नौका विहारमें जिन प्रसंगों को चुना गया है, वे कवि के सूक्ष्म अन्वेशण और विन्यासात्मकता के सूचक हैं । अर्थपूर्ण विशेशणों का चुनाव तो पंत से सीखे–शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्जवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीश्म विरल । गंगा की धारा में चन्द्रमा, नक्षत्रदल, शुक्र, कोक आदि के रंगीन प्रतिबिंबों से गंगा–जल अनेक रूप–रंगों में बदल जाता है । जिस प्रकार गंगा की धारा में प्रतिबिंबित कगार दुहरे लगते हैं उसी प्रकार इसकी अर्थच्छवियाँभी दुहरी हैं । जिस प्रकार से गंगा की धारा निरंतर प्रवहमान है उसी प्रकार जीवन और जगत् भी प्रवहमान है । इस संदर्भ में यह उद्धरण बहुत ही प्रासंगिक है –

विस्फारित नयनों से निश्चल कुछ खोज रहे चल तारक दल
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल
जिनके लघु द्वीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल
फिरती लहरें लुक–छिप पल–पल ! 9

पंतजी की कविताओं में सत्य को सरस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । वैसे तो सौंदर्य–भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों की ओर अधिक रहा है । 'परिवर्तन' में प्रकृति के कठोर रूप का चित्रण अवश्य हुआ है किन्तु कविता के अंत तक आते–आते कवि उस भयानकता को भी मूलभूत आनंदमय सत्य के साथ सम्बद्ध करके देखने लगता है और फिर इस प्रकार अपनी परिचित भूमि पर – सौंदर्य, आनंद और माधुर्य की भूमि पर लौट आता है । प्रकृति के व्यक्त रूप में आसक्ति होने के कारण पंत–काव्य में रहस्यवादी भावनावाद के रूप में मुखर नहीं हो पायी – 'मौन निमंत्रण' जैसी कविता अपवाद रूप ही है, और यहाँ भी अरूप–अज्ञात सत्ता के प्रति विस्मय और जिज्ञासा का भाव मिलता है आसक्ति या प्रणय का नहीं । कवि की भाषा वक्रता, सांकेतिकता, सरलता, सपाटबयानी अपने आप में प्रसंगानुरूप आकार ग्रहण करते हुए चलती है । भाशा को भावानुकूल बनाने में पंतजी ने पर्याप्त श्रम किया है जिसका संकेत वह पल्लव की भूमिका में करते हुए कहते हैं –'' जिस प्रकार बड़ी चुबाने से पहले उड़द की पीठी को मथकर हल्का तथा कोमल कर लेना पड़ता है, कविता के स्वरूप में भावों के सांचे में ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गलाकर कोमल, करूण, सरस व प्रांजल कर लेना पड़ता
है।''10

पंतजी के काव्य में सौंदर्य के विविध रूपों का चित्रण देखने को मिलता है । जिसमें नारी सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य एवं भाव सौंदर्य प्रमुख हैं । कवि ने 'ग्राम्या' कृति में ग्राम युवती, ग्राम वधू के अत्यन्त मनोहर चित्र अंकित किए हैं । ग्राम युवती मस्तानी चाल से आती हुई अपने यौवन भार को देखकर स्वयं शरमाती है, इसका सुंदर चित्र देखते ही बनता है–

इठलाती आती ग्राम युवति,
वह गजगति सर्य डगर पर ।
सरकाती पट, खिसकाती लट
शरमाती झट,
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट ।। 11

निष्कर्ष– पंतजी ने अपने जीवन काल में अनेक वादों का डटकर प्रयोग किया है । इसीलिए तो उनकी कविता में प्रगतिवादी चेतना, अरविंद दर्शन एवं अन्य वादों का मिश्रण देखने को मिलता है । कवि वर्तमान मानव–जीवन के विषम संकट को व्यक्त करते हुए एक नये आदर्श भविश्य का चित्रण करता है । यह प्रयास युगीन यथार्थ के अनेक पक्षों का स्पर्श करते हुए भी अध्यात्म पर आश्रित है और अघ्यात्म द्वारा ही नियंत्रित भी है । पंतजी मूलतः सौंदर्य के चितेरे कवि हैं । प्रकृति सुंदरी ने तो उन्हें आकृष्ट किया ही है । नारी सौंदर्य एवं भाव सौंदर्य के रम्य चित्र उनकी रचनाओं में प्रचुरता से प्राप्त होते हैं । पंतजी ने मानव–जड़ता, रूढ़िप्रियता और अंधविश्वासों पर अपनी खीज व्यक्त की है । उनका मानना है कि विचार–सूत्र प्रस्तुत करते समय बाहय एवं आंतरिक पक्षों में साम्य अत्यन्त ही आवश्यक है और आस्था की भूमि पर खड़े होकर ही भावी समाज के निर्माण का संकल्प लिया जा सकता है । यह शोधपत्र पंतजी के काव्य वैशिष्ट्य की एक अनुपम धरोहर बनेगा इसमें कोई दोराय नहीं ।

संदर्भ सूची–

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृ0सं0 132
2. हिंदी (द्वितीय प्रश्न–पत्र) डा0 हरिचरण शर्मा, इण्डिया बुक हाउस, जयपुर, पृ0सं0 251
3. वही, पृ0सं0 251
4. वही, पृ0सं0 251
5. वही, पृ0सं0 251
6. हिंदी साहित्य का इतिहास–डॉ0नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा–पृ0सं0 551
7. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ0सं0 133
8. वही, पृ0सं0 133
9. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास–बच्चन सिंह, राधाकृश्ण प्रकाशन दिल्ली, पृ0सं0 358
10. हिंदी (तृतीय प्रश्न–पत्र) डा0 अशोक तिवारी, साहित्य भवन आगरा, पृ0सं0 335
11. वही, पृ0सं0 336

डॉ0 निर्भय शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
न्यू ग्रेट स्कालर्स (पी0जी0) कालेज
अल्हागंज (शाहजहाँपुर)
पिन कोड–242220
मो0नं0–9634160016
ई–मेल–dr.nirbhaysharma@gmail.com

6 साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास

सुमन देवी

सारांश–

भारत में साम्प्रदायिकता की शुरूआत 19वीं शताब्दी के अंत में हुई। जब राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। इसका सैयद अहमद खाँ ने खुलकर विरोध किया और उच्च वर्गीय जमींदार आधारित विपक्ष को जन–समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, तो वे साम्प्रदायिकता की ओर उन्मुख हुए तथा मुसलमानों को धर्म के नाम पर राष्ट्रीय कांग्रेस के विरूद्ध करने का निश्चय किया। उन्होंने मुस्लिम समुदाय में यह प्रचार–प्रसार करना आरंभ किया कि यदि जनतान्त्रिक सरकार बन गई और ब्रिटिश शासन का अन्त हो गया तथा सत्ता भारतीयों को हस्तांतरित कर दी गई तो हिन्दू लोग मुसलमानों पर शासन करेंगे। इस प्रयास में वे सफल भी हुए क्योंकि मध्यम वर्ग पर जमींदारों और उच्च वर्ग का गहरा प्रभाव था। इसी तरह मुस्लिम समुदाय में साम्प्रदायिकता की आग सुलगाने का कार्य सैयद अहमद खाँ ने किया। उन्होंने सन् 1906ई० में भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की। इस लीग ने बंगाल के विभाजन का समर्थन किया और मुसलमानों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्रों तथा सरकारी सेवाओं में सुरक्षित स्थानों की मांग की। इस लीग के कार्यक्रम राष्ट्रीय कांग्रेस तथा हिन्दू विरोधी थे। इस प्रकार से मुस्लिम लीग राष्ट्रीय आंदोलन विरोधी तथा ब्रिटिश शासन की समर्थक बन गई। इससे हिन्दुओं की मानसिकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। हिन्दुओं में भी साम्प्रदायिकता की चिंगारी फैलने लगी। ''सन् 1920 से आरम्भ होने वाले दशक में सारे उत्तरी भारत में साम्प्रदायिकता विरोधी समाजों की स्थापना हुई जिसके मुख्य क्रिया–कलापों को अंग्रेजों के विरूद्ध प्रवृत न करके मुसलमानों के विरूद्ध प्रवृत्त किया गया। पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना सन् 1907 में हुई किन्तु इसका अस्तित्व रूग्ण–सा था।''

इसी प्रकार एक समुदाय का दूसरे सम्प्रदाय के विरूद्ध प्रतिक्रिया से साम्प्रदायिकता का उदय हुआ। जब एक धार्मिक समुदाय के सदस्य दूसरे धार्मिक समूह को दोशी ठहराते हैं और अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हैं, साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं। वस्तुतः भारत में साम्प्रदायिकता का उदय उस समय की सामाजिक परिस्थितियों से हुआ और इससे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि धार्मिक समूह प्रभावित हुए।

प्रस्तावना

''भारत की अपनी परम्परा असाम्प्रदायिक राज्य की परम्परा थी। जैन, बौद्ध और वैदिक धर्मावलम्बियों के बीच खटपट यहाँ भी चलती थी, लेकिन इस देश के राजा राज्य की ओर से किसी भी धर्म का दलन नहीं करते थे, न यहाँ यह रिवाज था कि राज्य धर्म से भिन्न धर्मों के मानने वाले लोगों को द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी का नागरिक माना जाए। किन्तु मुस्लिम राज्यकाल में भारत की यह धर्म–निरपेक्ष नीति समाप्त हो गई। सुलतान, बादशाह और नवाब खुलकर मुसलमानों का साथ देने लगे और हिन्दुओं के साथ वहीं बरताव किया जाने लगा, जो गुलामों के साथ किया जाता था।''

इस वातावरण ने साम्प्रदायिक विद्वेश को फैलाने के लिए उर्वर जमीन तैयार की और उपनिवेशवाद की देख–रेख में साम्प्रदायिक विद्वेश का बीज कब निजी स्वार्थ के जल से सिंचित होता हुआ विशाल वृक्ष बन गया, पता ही नहीं चला। आधुनिक राजनीति, प्राचीन, मध्ययुगीन या 1857 की क्रान्ति का विकास नहीं थी, बल्कि वह एक नई जमीन पर विकसित हुई थी। राष्ट्रीयता और समाजवाद जैसी दृष्टियों के रूप में साम्प्रदायिकता का उदय भी तभी संभव हुआ, जब जनता की भागीदारी, जन जागरण और जनमत के आधार पर चलने वाली राजनीति में उच्च वर्ग का वर्चस्व था। तब जन साधारण घोर उपेक्षा का शिकार था। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सन् 1936 में लिखा था, ''यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना हैं, इसका जन्म हमारी आँखों की सामने हुआ हैं।'' इस प्रकार साम्प्रदायिकता जैसी महामारी का विकास सिर्फ भारत में ही हुआ हो, यह उन परिस्थितियों की उपज था, जिन्होंने दूसरे समाज में भी साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया।

आज भारत में साम्प्रदायिकता का जो उभार हो रहा हैं उसे देखने की कोशिश करनी चाहिए। यदि साम्प्रदायिकता औपनिवेशिक शासकों अंग्रेजों की देन होती तो आजादी के बाद ही उसे समाप्त हो जाना चाहिए था, किन्तु आजादी के बाद वह समाप्त होना तो दूर, अधिक व्यापक, अधिक उग्ररूप में बहुआयामी और बहुरूपी बनकर हमारे देश की सामाजिक–संस्कृति में विद्यमान हो गई। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश का राजनीतिक नेतृत्व विदेशी शासकों से कांग्रेस के हाथों में जरूर आया, किन्तु चार दशकों के बाद वह भी कांग्रेस के

हाथों से फिसल गई।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देश के राजनीतिक मंच पर जिस तरह के खेल–खेले गए, उन्हीं के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता के हिन्दू–मुस्लिम उग्र रूप देखने को मिले। सन् 1992 में अयोध्या मस्जिद में विवादित ढाँचे का ध्वंस। जिसने कही–न–कही साम्प्रदायिक विद्वेश को बढ़ावा दिया। साम्प्रदायिकता के मूल में धर्म और संस्कृति ही नहीं, बल्कि राजनीतिक सत्ता भी शामिल हैं। धर्म, संस्कृति और साधारण जनता की धार्मिक भावना तो इस्तेमाल की वस्तु हैं, जिन्हें राजनीतिक सत्ता के प्यासे लोग इस्तेमाल करते हैं और सत्ता का सुख भोगते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् साम्प्रदायिकता समाप्त होने की बजाय जिस प्रकार सुरसा के मुख की तरह फैलती गई। उसके नाखूनों और दाँतों में जो नई धार और चमक आई, जिनके तहत वह पोशित और मजबूत हुई आज वह न केवल जिंदा हैं, अपितु देश और समाज की एकता, अखंडता, उसकी बहुलतावादी संस्कृति के लिए वह एक खतरे के रूप में पहचानी जा रही हैं। के० दामोदरन ने आजाद भारत के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृष्यों को जानकर यह उद्घाटित किया हैं, ''एक अर्द्ध–विकसित, अर्द्ध–सामंती समाज से आर्थिक स्वतन्त्रता वाले आधुनिक औद्योगिक राश्ट्र में रूपान्तरण से तात्पर्य केवल मौजूदा कल–कारखानों की संख्या में वृद्धि होना अथवा बड़े पैमाने के पंजीकृत कारखानों का कायम हो जाना भर नहीं हैं। इसके लिए नए सामाजिक सम्बन्ध, नई आदतें और जीवन की नई पद्धति अपेक्षित हैं। इस रूपान्तरण के साथ, जो तर्क द्वारा सिद्ध और प्रमाणित आधुनिक दृष्टिकोण आता हैं, वह पूँजीवादी से पहले के धार्मिक मताग्रहों, धर्म–सम्बन्धी अंधविश्वासों और रहस्यवादी अंतर्ज्ञान से मेल नहीं खाता। इस नए विश्व दृश्टिकोण में व्यक्ति–स्वातन्त्र्य, भाईचारा, जनतन्त्र और समाजवाद जैसे नए मूल्यों का समावेश होता हैं।''

भारत का पुराना सामाजिक ढाँचा पूरी तरह तोड़ा नहीं जा सका, इसने हमारी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रास्ता अवश्य तैयार किया हैं। इसके विकास का क्रम इतना धीमा एवं असमान हैं कि हमारे देश के गाँवों और शहरों में आधुनिकता के साथ आदिमकालीनता भी घुली–मिली हैं। क्षेत्रों का पिछड़ापन नियोजन में असंतुलन उत्पन्न करता हैं और आम जनता के असंतोष को बढ़ा देता हैं। इससे नवीनता के सम्पर्क में जो आए हैं, परिवर्तन चाहते हैं और औद्योगिकरण से नाममात्र प्रभावित हुए हैं, अब भी अतीत से चिपके हुए हैं। इस प्रकार भारत नए और पुराने के बीच संघर्ष के पीड़ापूर्ण दौरे से गुजर रहा हैं। प्रतिक्रियावादी तत्वों का आज भी जनता पर शक्तिशाली प्रभाव हैं। ये प्रतिक्रियावादी धार्मिक साम्प्रदायिक और विद्वेशों को प्रोत्साहित करते हैं। ये विद्वेश और साम्प्रदायिक संगठन धर्मनिरपेक्ष जनतंत्र तथा राष्ट्रीय एकता के मार्ग में रुकावटें उत्पन्न करते हैं और जनता के संघर्ष को रोकते हैं। आज भी सैंकड़ों मठ, संघ और अन्य साम्प्रदायिक संस्थाएँ कायम हैं। ऐसे हजारों संन्यासी, पुरोहित और मौलवी मौजूद हैं, जो आम लोगों को सीख देते हैं कि वे अंतर्मुखी बनें और अतीत की ओर लौटे।

साम्प्रदायिकता और संकीर्ण धार्मिक कट्टरता जाति, भेदों, ज्योतिष, यज्ञों तथा एक संयुक्त संस्कृति के स्वस्थ विकास को अवरूद्ध करती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संचालक गुरू गोलवलकर के अनुसार, ''हिन्दू ही इस धरती और राष्ट्र की सच्ची संतान हैं, क्योंकि उनमें समान रक्त हैं। उनका अपना भ्रातृत्व हैं। वे एक ऐसी नस्ल हैं, जिसका समान मूल हैं और जिसकी रगों में समान रक्त प्रवाहित हैं।''

आजाद भारत में साम्प्रदायिक विद्वेश न केवल बढ़ता जा रहा हैं अपितु वह अधिक विध्वंसक भी होता जा रहा हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सत्तारूढ़ स्वदेशी शासकों ने कभी पूरे मन से भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने का प्रयास नहीं किया जबकि मध्यम वर्ग के तमाम सवालों को हाशिए पर डाल दिया जिसने सत्ता के हस्तांतरण की सारी लड़ाई लड़ी थी। प्रेमचंद भी राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व को बराबर आगाह करते रहे, परन्तु मध्यमवर्ग अपने हाथों में राजनीतिक सत्ता चाहता था। धर्म, जाति के आधार पर वोट बैंक बना, अपनी राजसत्ता बनाए और बचाए रखने के लिए हिन्दू कार्ड खेला गया, कभी मुस्लिम कार्ड। इस असन्तुलन ने क्षेत्रीयता की भावना को जन्म दिया, अलगाववाद को बढ़ावा दिया और राजनीति को मोहरा बनाया।

सत्ता की राजनीति, वोट बैंक बनाने और खोने की राजनीति ने साम्प्रदायिकता को उभारने में अहम् भूमिका निभाई। यह आज भी आजादी के बाद पूरे दौर में देखा जा सकता हैं। शाहबानो प्रकरण हमारे सामने एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत होता हैं, ''बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता किस तरह अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता को पनपाती और पुश्ट करती हैं तथा अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता किस तरह बहुसंख्यकों को फलने–फूलने का मौका देती हैं। बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता फासीवादी तरीके अपनाकर किस तरह खुल्लम–खुल्ला अपना तांडव करती हैं, अयोध्या में विवादित ढ़ाचे का विध्वंस इसका प्रमाण हैं।''

निष्कर्ष

साम्प्रदायिकता चाहे वह बहुसंख्यकों की हो या अल्पसंख्यकों की, एक समान घातक हैं। दोनों एक–जैसी विशैली हैं

और दोनों के फनों को कुचलने की जरूरत हैं। जो देशी–विदेशी संस्थाएँ इनको आर्थिक सहायता देती हैं, उनसे सख्ती के साथ निपटने की जरूरत हैं। चाहे वे मदरसे हो, शिशु मंदिर हो या अन्य उन पर कठोर कार्रवाई की आवश्यकता हैं। साम्प्रदायिकता के फलने–फूलने के लिए जिस परिवेश की आवश्यकता थी, इतिहास के साम्प्रदायिक इस्तेमाल ने वह वातावरण सहज ही उपलब्ध कर दिया। भारतीय इतिहास जो प्राचीन और मध्ययुगीन साम्प्रदायिक चेतना के प्रसार का प्रमुख औजार बना। यही साम्प्रदायिक विचारधारा का बुनियादी अंग भी था। स्कूल–कॉलेजों में भारतीय इतिहास साम्प्रदायिक दृष्टि से पढ़ाया जा रहा हैं, जिससे साम्प्रदायिकता के उदय और विकास में सहायता मिली। आधुनिक स्कूल व्यवस्था की शुरूआत से भी पहले साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा इतिहास की विकृत व्याख्याएं दी गई। इनका राजनेताओं पर भी अत्यधिक प्रभाव देखने को मिला। उदाहरण के रूप में गांधी जी लिखते हैं, ''हमारे देश में साम्प्रदायिक सौहार्द तब तक स्थायी रूप से नहीं लाया जा सकता, जब तक हमारे स्कूल–कॉलेजों में इतिहास की पाठ्य–पुस्तकों के जरिए इतिहास की बेहद विकृत व्याख्याएं पढ़ाई जाती रहेगी।'' किन्तु यह साम्प्रदायिक व्याख्याएं केवल पाठ्य–पुस्तकों की सामग्री के द्वारा ही नहीं फैलाई जा रही, बल्कि ज्यादा कविताओं, ़नाटको, ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं के द्वारा तथा पारिवारिक और निजी चर्चाओं, बातचीत के माध्यम से भी यह जहर फैलाया जा रहा हैं।

सदंर्भ सुची

1. सुनील कुमार अग्रवाल : गांधी और साम्प्रदायिक एकता, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
2. सूर्यकांत बाली :भारत की राजनीति के महाप्रश्न, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1995
3. राधाकृष्णन : धर्म और समाज, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण 1996
4. प्रभाष जोशी : हिन्दू होने का धर्म, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2003

सुमन देवी

एक्सटेंशन लैक्चरर,

हिन्दी विभाग,

राजकीय स्नातकोत्तर

महिला महाविद्यालय, रोहतक

Postal Address;-

Suman Devi W/O Dr.Bhupinder

H.No.-46, New Friends Colony, Part-1,

Behind Nakstra Property,

Near Omaxe City Gate,

Delhi Road, Rohtak ,

Haryana, PIN:-124001 ,

Mobile No:-9812138717

7 हिन्दी कथा साहित्य में मधुकांकरिया का योगदान

भुपिन्दर कौर

सांराश–

हिन्दी कथा साहित्य की प्रतिभाशाली बहुमुखी, बहुआयामी कथाकार मधु कांकरिया को समाजमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। उन्होनें एक कहानीकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में पर्दापण किया। इनकी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं पैनी है।आप हिन्दी कथा–साहित्य में उभरे किसी भी वाद के पीछे न पडकर अपनी पैनी दृष्टि से वर्तमान समस्याओं का निरीक्षण बड़ी ही कुशलता और बारी कि से करतीहैं।''विभिन्न विषयों को चुनकर अपनी कला–चातुरी से उंसे प्रस्तुत करने में वे सक्षम हैं।वर्तमान युग के धार्मिक अधः पतन, सांस्कृतिक अवनति, नारी के बदलते परिवेश, नारी शोषण, यौन शौषण, राजनैतिक अराजकता, नक्सलवादी आन्दोलन, वेश्यावृत्ति की समस्या, मनोवैज्ञानिक, बाल नौकरों की दयनीय दशा,नारी के अस्तित्व, नशेबाजी की समस्या, धर्म परिवर्तन आदिकालिक विषयों को चुनकर अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त करने में वे सिद्ध–हस्त हैं।''साहित्य लेखन के प्रतिसंपूर्ण आत्मीयता, तन्मयता और समर्पण का भाव परिलक्षित होता है। लेखिका सीधी–सादी वेशभूषा ही धारण करना पसंद करती हैं।आपने अपने जीवन संघर्ष की दृष्टि से आज के सभ्य समाज की समस्याओं, सच्चाई को देखा–परखा और अपने साहित्य का विषय चयन किया। लेखिका समाज के यथार्थ ज्वलंत समस्याओं को पहचानकर अत्यन्त मार्मिकता से उन्हें व्यक्त करती हैं।

बीज शब्दः–नशेबाजी, नारी शौषण, यौन शौषण, सामाजिक कुरीतिया, भ्रूणहत्या, वेश्यावृत्ति।

शोध आलेखः–

लेखिका मधुकांकरिया बहुमुखी प्रतिभा तथा असाधारण व्यक्तित्व की धनी है।वह रूढियों से टकराती, परम्परा और मान्यताओं के विरूद्ध संघर्ष करती, नारी शिक्षा की पहरवी करती रहीहैं। समाज का निरीक्षण करके सामाजिक कुरीतियों, अन्यायों, बुराइयों को देखकर उनके प्रति वह चुप रहने वालों में से नहीं है, वरन् वेइस के विरूद्ध अपनी आवाज उठाती और लड़ती भी हैं।मानवीय अनुभूतियों की वास्तविकता को गहराई से समझने की पहचान उन में है। अद्भुत साहस, निडरता, आत्मबल और दृढता उनके स्वभाव में निहित है।लेखिका मधुकांकरिया बिना ईर्ष्या, द्वेष, कुंठा के खुले दिल और दिमाग से चीजों को देखती–परखती, समझती फिर व्यक्त करती हैं।

लेखिका परिवेश और परिस्थितियों के यथार्थ से पाठक वर्ग को प्रभावशाली ढंग से रूबरू कराने में समर्थ रही हैं।वह हर बार पाठकों के लिए नए विषय, परिस्थितियों कोले कर कुछ अनोखा लिखकर पाठकों के मर्म को छू लेती हैं। उन्होंने निडर और बेबाक होकर हर विषय पर अपनी कलम चलाई है। महिला कथाकारों में भीम धुकांकरिया एक सशक्त लेखिका के रूप में उभरी हैं।

कहानीकार के रूप में

मधुकांकरिया की लेखनी अपने समय के यथार्थ को पठाकों के समक्ष रखती हैं। कहानीकारों में मधुकांकरिया का नाम विशिष्ट है। लेखिका ने अपनी लेखनी के माध्यम से विविध विषयों से संबंधित विविध प्रकार की बहुचर्चित कहानियॉ पाठकों को भेंट की हैं। नए विषयों का चयन करना उनकी कुशलता को दर्शाता है।प्रेम और धर्म से लेकर भ्रूणहत्या, नारी विमर्श का एक नया रूप, आजीविकावाद पर आधारित, युवापीढी की दिशा हीनता, नक्सलवाद,पारिवारिक कहानी, शिक्षा में आनेवाली समस्याओं, अमानवीयता, धर्म–गुरूओं द्वारा किए गए तिरस्कार, वेशयावृत्ति की समस्या, नारी–शोषण, यौन–शौषण, नशे की समस्या, नारी की अस्मिता, स्वाभिमान, जीवन की जटिलता, घुटन,पीडा, स्वतंन्त्रा की छटपटाहट, फौजी जीवन की विसंगतियों, नारी जीवन का बदलता स्वरूप, युवामानसिकता, विकलांग की मनोदशा, बाल नौकरों की दुर्दशा आदि उनकी कहानियों कोरी कल्पना के रूप में नहीं बल्कि जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं।

एक ही दायरे के अन्तर्गत सिमट कर रह जाने वाले विषयों का चयन लेखिका नहीं करती बल्कि वर्तमान तथा जीवन के नवीन यथार्थों, विभिन्नता, ताजगी एवं चिंतनीयता को साथ लेकर चलती हैं, यही इनकी विशेषता है। मधुकांकरियाने अपने साहस के बल परसमाज की परतदरपरत खोलकर, कटु यथार्थ को अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखा है।

उपन्यासकार के रूप में

अन्य महिला लेखिकाओं की भांति मधुकांकरिया ने उपन्यास विद्या पर अपनी कलम खुबचलाई । हिन्दी साहित्य को सशक्त बनाने वाली महिला कथा कारों में उनका नाम अग्रणी है। उनका हर एक उपन्यास विचारोत्तेजक एवं चिंतन योग्य, विषय गरिमा एवं समस्याओं की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

लेखिका वातावरण के अनुकूलकथा का चयन करती हैं ऑखों देखा सत्य उपन्यासों में प्रस्तुत करके उसे अधिक अनुभुतिपुर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके उपन्यासों का वातावरण जीवंत

प्रतीत होता है।

लेखिका ने यथार्थ की गहराई को बखुबी जाना–परखा, जांच–पडताल करके उन पर लिखने की कला–चातुरी को खुलेआम अपनाया है। ''हरबार नए विषय कोले कर कुछ अनूठा लिखना उनकी अपनी पहचान है। अन्य हिन्दी की लेखिकाओं का लेखनजहां स्त्री स्वातंत्रय तक सिमट कर रह गया है, वही मधुजी का लेखन जीवन को खोजता हुआ कभी वेश्याओं की गलियों में, तोक भी नशे की दुनिया के अतंरंग समस्याओं से रूबरू होता है।कभी साध्वी जीवन की कडवी सच्चाईयों को खंगालता है। उनके लेखन के भीतर वन वासियों का दुख, श्रमिकों के पसीने की गंध, दलित पिछडों के जीवन का हाहाकार और जीवन की विद्रूपताओं को लेखन में दर्ज भी करने की उद्विग्नता भरी है।उनका लेखन देरी से भले शुरू हुआहो लेकिन उनके लेखन को जबरदस्त पाठकों का प्रतिसाद मिला है।''

मधुकांकरिया का उपन्यास खुलेगगन के लाल सितारें नक्सलवादी आन्दोलना एवं क्रांतिकारियों का दिल दहला देने वाले दर्दनाक जीवन का चित्रण प्रस्तुत करता है।लेखिका का यह उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में ही नहीं बल्कि बांग्ला उपन्यासकारों ने भी इसका ह्रदय से स्वागत किया है।सलाम आखिरी वेश्याओं की रहस्यमयी दुनिया की हकीकत को दर्शाता है।इनका अन्त भी अनेक गुप्त रोगों, शारीरिक पीडा, बीमारियों से ही होता है।पत्ताखोर उपन्यास में नशे की समस्या पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार आज की युवापीढी नशे और ड्रग्स की लत का शिकार बन गयी है। अकेलापन, तनाव, असंतोष, संत्रास आदि के कारण उपन्यास के नायक आदित्य की मनोदशा, आंतरिक द्वंद्व का वर्णन किया गया है।उपन्यास सेज पर संस्कृत में साध्वी जीवन की करूण गाथा का वर्णन किया गयाहै। धर्म की आड में छिपे धार्मिक अन्याय, नारी शोषण इस उपन्यास का विषय है।सुखते चिनार फौजी जीवन की गाथा है जो सत्य पर आधारित है।फौजियों के सिर पर हर समय मृत्यु का साया मंडराता रहता है, आतंकवाद के कारण कई घर, परिवार तबह हो गए। इन जिहादियों एवं कट्टरपंथियों के द्वारा अपने ही धर्म की लड़कियों की इज्जत लूटली जाती है।हम यहां थे उपन्यास आदिवासियों के बीच रहकर उनके संघर्ष का हिस्साबनी दीपशिखा की कथा है। इसमें प्रतिरोध, करूणा समर्पण, स्वप्न के भावहैं।इसके अतिरिक्त जंगलों की कटाई और उसके कारण बेघर होते जानवरों की समस्याओं को भी विशेष रूप से उभारा गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि मधुकांकरिया के उपन्यास अपनी विशेषता, गुणवत्ता जीवन की वास्तविकताओं और समस्याओं के कारण बहुचर्चितहै।

यात्रावृत्त

मधुकांकरिया में घुमक्कड वृति भी है।भिन्न–भिन्न स्थानों में भ्रमण करने की उनकी विशेष रूचि है।उन्हें जब भी समय मिलता है वे अनेक स्थानों की यात्रा करती हैं तथा वहां से वापस आकर अपनी यात्रा के अनुभवों को लिखा करती हैं। जंगल की दुनियां उनके मन को भाती है।

आदिवासियों के बीच रहने पर उन्हें संतुष्टि प्राप्त होती है।''जंगल की दुनियां के प्रति आकर्षण उनके भीतर पैंतीस–छत्तीस की उम्रमें यानी 1992 में तब हुआ, जब वे पहली बार पूवचिल कल्याण आश्रम की ओर से वन यात्रा के लिए लोहरदगा, गुलमा और पलामू के भ्रमण पर निकली और यहां जंगल–जंगल घूमते हुए देखकर अचरज में पड गई कि ऐसे भी जीवन संभव है।''जिन परिस्थितियों, कठिनाईयों में वह लोग जीवन यापन कर रहे थे परन्तु शाम को सभी एक साथ मिल जुलकर नाचते–गाते विताते थे। यात्रा के दौरान अनुभूतियों को समेटने की चाह, जिन्दगी के प्रत्येक रंग को देखने की इच्छा और हर जाति के व्यक्ति से वार्तालाप करने की लालसा में वह हमेशा इधर–उधर जाती रहती हैं।

यात्रा उन्हें बहुत पसंद है, यात्रा के द्वारा उन्हें अनेक अनुभव प्राप्त हुए, कई पात्र मिले जिसके कारण उन्होंने अनेक रचनाओं का, प्रत्येक स्थान का ऑखों देखा सुन्दर चित्रण किया। जंगलों की ओर में झारखण्ड के बिशनपुर प्रखड के सुन्दर घने वनों की संस्कृति कायथार्थ वर्णन किया है।उन्होंने जंगल–जंगल घूमकर देखा वहां कि जनजातियॉं, अंधविश्वास, जादू–टोना पर विश्वास करती है।यदि कोई गम्भीर रूप से बीमार हो जाता है तो डाक्टर कादूर–दूरत कनामों निशान नहीं। उनका डाक्टर तो ओझा है जो झाड–फूंककर के भूत–प्रेत को काबू करता यदि कोई लडकी ठीक नहीं होती तो उसे अपने मायके भेज दिया जाता। यहां कोई मन्दिर नहीं है पर यह सरलादेवी की पूजा करते हैं कोई भी घर का कोना होउस में मिट्टी रखकर अरवा चावल डालकर उसे सरला देवी मान लिया जाता है।सानासान हाथ जोडी गैंगटॉक शहर का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है।कंचन जंघा हिमालय की तीसरी बडी चोटी यहां सें दिखाई देती है। इस अद्वितीय सौन्दर्य को अनदेखा करके पहाडी महिलाएं बिना किसी की परवाह किए हाथ में हाथ डालिए पत्थर तो डर ही हैं और कुछ महिलाओं ने अपनी पीठ पर बच्चों को बांध कर रखा है।मातृत्व का कर्त्तव्य और परिश्रम साधना एक साथ कर रही थी। पर्वत, झरने, पेड–पौधे, आकाश, फुलों की घाटियां सब पर बादलों की एक सुन्दर परतथी, गैंगटॉक का असली नाम गंतोक है जिसका अर्थ है पहाड़। जाल, जहाज और मछुआरें सुन्दरवन की यात्रा सब कुछ जादूई और आश्चर्य जनकथा।मछुआरें यदि किसी ऐसे स्थान पर चले जाएं जहां जाना वर्जित है तो उनके लिए कयामत आ जाती थी,वन अधिकारी एक ही क्षणमें उनके खून–पसीने की कमाई चार सौ रूपये जुर्माने के रूप में लेते उसके पश्चात् ही वह जाल फेंक सकता था। मधुकांकरिया को वास्तविकता का पता चल गया भले ही सुन्दर वन में जंगली बाघ कम होते जार हे हैं लेकिन इंसानी बाघ बढते जा रहे हैं।गाइड ने बताया आने वाले

''20 सालो ेमें सुंदरवन समुद्र में धंस जाएगा।इतिहास बन जाएगा, जैसे मोहन जोद डोबन गया, हडप्पाबन गया।जिस प्रकार वैश्विक तापमान बढ रहा है, जिस प्रकार ग्लेशियर पिघल–पिघलकर समुद्र में गिर रहे हैं।इसमें समुद्र की सतह लगातार ऊपर जा रही है। इसे तुरंत नहीं रोका गया तो सुंदरवन और बांग्लादेश का 20 प्रतिशत समुद्र में धंस जाएगा।''यह सुनकर मधुकांकरिया प्रार्थना कर रही थीं कि सुन्दरवन का सौन्दर्य बचा रहे। पहाड, पालमू और आगरांची से 132 किलोमीटर दूर गुमला जिले का बिशनपुर जिसके आगे फैले हुए घने पहाडी जंगलों का चित्रण किया है।वहां के गॉवों में पानी न होने के कारण कई आदि वासी पलायण कर जाते थे। गॉवों से 3000 मीटर की ऊंचाई पर सातों नदी हैं बांध बनाकरपहाडों से पानी सातों गॉव तक पंहुच सकता है सबसे बडी बात चौकाने वाली यह थी कि इंजीनियरों ने हाथ खडेकर दिए पर गॉव वालों ने हिम्मत नहीं हारी।उनका प्रिय आश्रय जंगल जिस पर वहां के जनसमुदाय आश्रित हैंवही खतरे में पड गयाहै। जंगल काटे जा रहे हैंपर उन आदिवासियों का क्या जो उसी पर आश्रित हैं। इस रचना के माध्यम से वहां के वनवासियों के दुःख, आंतरिक पीडा, जीवन की विद्रूपता को, अनुभूति को उनकी भाषामें समझने का प्रयास किया।बादलों में बारूद के माध्यम से नागालैंड में आतंकवाद तथा धर्मांतरण की बढती समस्या को दर्शाया है।इसके अतिरिक्त मेघालय की पहाडी जनजातियों, शिलांग के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है। यही नहीं यहां आज भी मातृ सत्तात्मक के नाम से परिवार जाना जाता है तथा माता के सरनेम से ही बच्चे की पहचान होती है। शिलांग में तीन चीजे ंमांस, मदिरा और चर्च हर कदम पर मिल जाते हैं। हिरणा, देखा बूझ बन चरना नेपाल भी भारत की भांति एक गरीब देश है। काठमांडू मन्दिरों का शहर है जहां सौ से भी अधिक मन्दिर हैं।यहां प्राचीन मन्दिर भी हैं,नेपालीआपसीभाई–चारे, स्वतन्त्रता, समानता वाली अपने सपनों की दुनिया के मालिकव नागरिक हैं।नेपाल की आत्मा शराब और धर्म में ही निवास करती है वहां मन्दिरों में केवल हिन्दुओं को ही प्रवेश मिलता है।विवाह, मुंडन, दाह–संस्कारतक के सारे कार्य पूरी धार्मिक आस्था के साथकिए जाते हैं। धर्म में डूबेने पाली मृत व्यक्ति के साथ सोना रख देतेहैं। मधुकां करियाने वहां जो भी देखा और समझा उसे वह इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहती है ंकि ''बौ़द्ध स्तूप, छोटे–बड़े भिक्षु, बडे–बडे धर्मचक्र। भूतपुर्व राजाओं को म्यूजियम में, वर्तमान राजाओं को आम आदमी में परिवर्तित होते देखा।''

इन यात्रावृत्तों की विशेषता यह हैकि मधुकांकरिया ने यात्रा के दौरान वहां की छोटी से छोटी चीज का, प्रत्येक स्थान का जीता–जागता वर्णन कियाहै। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ–साथ जीवन की विभिष का, जीवन के नग्न यथार्थों को भी चित्रित किया है।प्रत्येक स्थान की संस्कृति, सभ्यता, रीति–रिवाज, परम्परा, प्रकृति भाषा सबकी जांच–परख करके पाठकों के समक्ष रखने में वहस फल हुई हैं।इन समस्त रचनाओं को पढते ही पाठकों का मन वहां जाने का करेगा।

संस्मरणः

मधुकांकरिया ने अपने साहित्यिक जीवन की यात्रा में संस्मरण भी लिखे हैं। लेखिका के संस्मरणों से प्रकृति प्रेम,जन्तु, अहिंसा, सहानुभूति एवं मानवीयता का पता चलताहै।वह मानवता का कहीं भी अभाव देखती हैं तो उनका ह्रदय रो पड़ता है।

जादु के मोहन–मोहनीइस विशय का चयन लेखिका ने अपने पारिवारिक मित्र जादूगर अश्विन और उनकी धर्म पत्नी मनीशा के जीवन से लिया है।दुनियाभर में प्रसिद्ध जादूगर अश्विन जादुई शो करते थे उन्होनें मधुकांकरिया को जादूई शो देखने के लिए आमंत्रित किया।जिसे देखने वह भोपाल चली गई।वहां भी वह प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी ऑखों में समेट लेना चाहती थी।इस संस्मरण के द्वारा जन्तुस्नेह के प्रति उनके मन की कोमलता और मानवीयता का चित्र प्रस्तुत हुआ है।वर्जित क्षेत्र में कुछ समय में वेश्यावृत्ति की रहस्यमय दुनिया एवं समस्या पर आधारितहै। कोलकत्ता के सोनागाछी, बहुबाजार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर जैसे इन सभी लालबत्ती इलाकों में सब से बदना मइलाका सोना गाछी है। 'संलाप' संस्था की सहायता से इन वेश्याओं की मदद की जाती थी। यहां पर रेट भी निर्धारित है। शॉटरेट और लॉगरेट।इन गलियों में हरप्रकार का ग्राहक आता है मजदूर, ट्रक ड्राइवर, छोरी छुपे आने वाले, खुलेआम आने वाले, पत्नीवाले, बिना पत्नी वाले, समाज–सुधारक, पत्रकार आदि।इन वेश्याओं को खुलेआम वेश्या नहीं कहा जाता।दूसरी भाषा में लाइन वाली या लाइन का काम करने वाली कहा जाता है। ये नारियॉ भूख के कारण, अशिक्षा, पति के उक्साने के कारण, गरीबी के कारण, अपने सगें संबंधियों के धोखे–बाजी के कारण इस दलदल में आकर फॅस गई हैं। कभी गजल कभी ठुमरी लेखिका जब लिखने लगी तो लेखन की पहली ही सीढी पर मधुकाकंरिया की मुलाकात रवीन्द्र कालिया और ममता कालिया से हुई। उन पर ममता कालिया का गहरा प्रभाव पडा।

मधुकांकरिया के संस्मरणों ने उनके जीवन में आये विभिन्न व्यक्तियों, प्रसंगों, घटनाओं तथा उनके मन–मस्तिष्क को गहराई से प्रभावित किया है।संस्मरण उनके जीवन के उन पहलुओं से अवगत करवाता है, जिनसे हमेंजीवों के प्रति उनके उद्भूत प्रेम, वेश्याओं की दयनीय स्थिति, ममता के व्यक्तित्व की सही पहचान दिखाती है।संस्मरण की विशेषता यही हैकितथ्यों का यथार्थ और सच्चाई का पूर्ण वर्णन करना । इनकी घटनाएॅ जीवंत जान पडतीहैं।

डायरीः

कहानी, उपन्यास एवं यात्रा वृत्तके अतिरिक्त उन्होंने डायरी में भी तूलिका चलाई है।डायरी की विशेषता है कि प्रतिदिन की घटना को लिखना।लेखिका की डायरी में हर दिन की घटना का

चित्रण नहीं, बल्कि कुछ यादगार घटनाओं का वर्णन मात्र है।जादूई तोते, ये जो है जिन्दगी, डायरी 3 कटपीस में मधुकांकरिया के जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण स्मृतियों को संजोया गया है।

टेलीफिल्मः

मधुकांकरिया की दोकहानियों पर टेलीफिल्म बनी है। 'रहना नही देशविरान है','पॉलिथिन में पृथ्वी'

रहनान हीं देश विरान—इस कहानी का युवक अपनी ऑखों से देखें यथार्थ, वास्तविकता, पीडा, त्रासदी आदि अपने ही देश के कटु अनुभवों के कारण अपने देश को छोडकर विदेश जाना चाहता है। यह एक सशक्त कहानी है।चंडीगढ दूरदर्शन ने इस पर टेलीफिल्म बनाकर उसे प्रसारित किया।पॉलिथिन में पृथ्वी यह कहानी कन्या भ्रूण हत्या पर लिखी गई है। किस प्रकार एक युवती का गर्भपात बल पूर्वक करवा दिया गया। इस गर्भपात ने उस युवती को भीतर तक तोड़ दिया।

नाट्यरूपांतर या मंचनः

मधुकांकरिया की दो कहानियों का नाट्यरूपांतर भी हो चुका है।फाइल, बस दोचम्मच औरत, फाइल एक ऐसी कहानी है जिसमें कोलकत्ता की गलियों, धूल में रेंगत`घिसते, फुटपाथों में भटकतें अनाथ बच्चों, नशे के शिकार, लालबत्ती इलाकों की किशोरियों के लिए कामकरने वाली एक संस्था का वर्णन है। इस कहानी की बहुत चर्चाएँ भी हुई हैं। इस का नाट्यरूपांतर करके कोलकत्ता के लिटिल चाम्प्यन नाटक कपंनी ने सफलमंचन किया है।बस दो चम्मच औरत में भाई की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र नितिन और भाभी की देखभाल उसका देवर करता है,वह विवाह नहीं करता।अपने भाई की तरह नितिन को भी मेजर बनाना चाहता था देवर बीमार पड़ गया उसकी मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार वह सिर्फ कुछ दिनों का मेहमान है।अपना जीवन बर्बाद करके जीवन के आखिरी क्षणों में नारी संसर्ग चाहता है।इसका नाट्य रूपांतर और मंचन दिल्ली के श्रीराम सेंटर नाट्य कंपनी ने कियाहै।

अनुवाद

मधुकांकरिया के उपन्यास और कहानियों का अनुवाद भी हो चुका है।सुखते चिनार उपन्यास का अनुवाद डॉ.सीबंसती ने तेलुगु में किया है।काली चीन कहानी डॉ. एम. एस विनय चन्द्रन द्वारा मलयालम भाषा में अनुवादित की गई है।युद्ध और बुद्ध, चूहे को चूहा ही रहने दो कहानियों का अनुवादराजेंद्र सिंह ने पंजाबी भाषा में किया है।

मधुकांकरिया के आंतरिक व्यक्तित्व की भांति उनकी रचनाएँ भी अपनी और आकर्षित करती हैं।अपने निजी जीवन के यथार्थ, घटनाओं को आपने कहानी या उपन्यास का विषय बनाया है। जीवन में आए उतार—चढाव, कठिनाइयों का डट कर सामना करते हुए पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए साहित्य सृजन किया।साहित्य के प्रति रूचि ही उन्हें इस शिखरतक लेकर आई है।साहित्य में अपनी प्रतिभा का लोहामन वाने वाली मधुकांकरिया को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है।वह एक साहसी, निडर, विद्रोही लेखिका हैं, जिनकी हिम्मत प्रशंसा योग्य है।

संदर्भ

1. मधुकांकरिया के कथा साहित्य में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संवेदना, डॉ. शवाना हबीब, पृ.13
2. मधुकांकरिया का रचना संसार, डॉ.उशा कीर्ति राणा वत, पृ.12
3. कथाकार मधुकांकरिया, डॉ0 सुनीता कावले, पृ.14

भुपिन्दर कौर
पीएच.डी शोधार्थी
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
फोन. नंबर 7006295745

8

आधुनिक साहित्य एवं लोकचेतना

कुसुम त्रिपाठी

सारांश –

हमारे साहित्य के साथ–साथ उसकी लोकचेतना भी उतनी ही प्राचीन रही है,जितना कि आदिमानव। लोकचेतना का साहित्य से सीधा–

देश–दुनिया में बसी आम जनता ही साहित्य की प्रेरकशक्ति, प्रेरणाभूमि एवं सामग्री है ,जिसके अभाव में साहित्य का विनिर्माण पूर्णतरू असंभव –सा प्रतीत होता है। जिस प्रकार लोक तथा जीवन का आपस में घनिष्ठ संबंध है,उसी प्रकार जीवन एवं साहित्य में भी ।यथा–

बाबू गुलाबराय के अनुसार, साहित्य जीवन से भिन्न नहीं वरन् उसका ही मुखरित रूप है ।वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्चतम तरंग है ।मानव जाति के विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रसारित होती है ।साहित्य जीवन शविटपश का मधुमय सुमन है ।वह जीवन का चरम विकास है,किन्तु जीवन से बाहर उसका अस्तित्व नहीं ।उसमें पाचन, वृद्धि, गति और पुनरूत्पादन आदि जीवन की सभी क्रियायें मिलती है ।अंग–अंगी से भिन्न गुण वाला नहीं होता,इसलिए जीवन की मूल प्रेरणाएँ साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं ।जो वृत्तियाँ जीवन की सब क्रियाओं की मूल स्रोत है,वे ही साहित्य को भी जन्म देती है।

हम देख पातें है कि साहित्य का कार्य लोककल्याण पर आधारित होने के कारण ही उसका जन्म एवं अस्तित्व भी लोकजीवन पर ही अवलम्बित माना गया है ।यही कारण है कि प्रत्येक महान् रचनाकार अपनी रचना को लोकोन्मुखी रखकर, जन कल्याणकारी रचनात्मक दृष्टि से संयुक्त करने की चेष्टा करता है ।इस संदर्भ में कार्ल मार्क्स का कथन दृष्टव्य हैं,काव्य का सृष्टा कोई स्वप्न दृष्टा मानव नहीं बल्कि दैनन्दिन जीवन के संघर्षों में संलग्न,आर्थिक परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित और उससे जूझता हुआ यथार्थदर्शी मानव है।

वहीं उपेंद्रनाथ अश्क की कविता गाँव में भी लोकचेतना स्पन्दित होती हुई देखी जा सकती है। मनुष्यता को मिटाने वाले उत्तर–आधुनिक औजरों से कवि समाज को मुक्ति दिलाना चाहते हैं यही कारण है कि बचपन से ही उनके मन में गाँव को बचाने की इच्छा प्रबल हो जाती है। अश्क की यही प्रबल इच्छा उनकी कविता में भी मुखरित होती हुई देखी जा सकती हैं:–

शहर से दूर
लौटना चाहता हूँ, गाँव की पगडंडियों पर
गाना चाहता हूँ, अश्र आस्था के गीत
जगाना चाहता हूँ,प्रेम देवता की ऊर्जा को
पीपल की छाँव में बतियाना चाहता हूँ
बचाना चाहता हूँ विलुप्त हो रही लोक धुनों को।

साहित्य में जिस चेतना का विकास महान् उपान्सकार मैक्सिम गोर्की , युगप्रवर्तक प्रेमचंद तथा कवि मुक्तिबोध ने किया उसका मूल उत्स भी लोकजीवन की विकसित होती चेतना में ही विद्यमान रहा है,जिसका साक्षात् साक्षी इनका संपूर्ण साहित्य है ।यदि ऐसा न होता तो इनका साहित्य लोकजीवन की चेतना के स्पर्श से हीन होकर ,निष्प्राण एवं निष्प्रभावी हो जाता और आज वह साहित्य प्रासंगिक न होता। उपर्युक्त विचारों के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाए तो समकालीन हिंदी उपन्यास में ऐसे उपन्यासों की एक लम्बी परंपरा देखने को मिल जाती है जो कि किसी समुदाय को और उनके जीवन को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करते हैं। गाँव, शहर,जाति,जनजाति एवं विभिन्न प्रकार के व्यवसाय से जुड़े हुए लोगों पर लिखे गये कई समकालीन उपन्यास लोकचेतना को उजागरित करते हैं। जैसे– वीरेंद्र जैन कृत डूब और पार, मैत्रेयी पुष्पा कृत चाक और इदन्नमम , मिथिलेश्वर कृत यह अंत नहीं , शैलेश मटियानी कृत कोई अजनबी नहीं, गोविंद मिश्र कृत लाल पीली ज़मीन इत्यादि उपन्यासों में लोकचेतना के विविध आयामों को प्रस्तुत किया गया है ।ग्रामीण जीवन की चर्चित चितेरी मैत्रेयी पुष्पा के चाक उपन्यास में ग्रामीण लोकचेतना का उदाहरण दृष्टव्य हैं–

चल लुच्ची,हम जाटिनी तो जेब में बिछिया धरे फिरती हैं,मन आया ताके पहर लिए

वहीं काव्य के ऐतिहासिक परिदृश्य पर छायावादी काव्य के प्रति विद्रोह एवं अनास्था का मूल कारण उसका लोकचेतना का वहन करने में अशक्त होना ही था, क्योंकि उसी युग में रचनारत प्रेमचंद प्रभृति रचनाकारों ने लोकजीवन, लोकमानस तथा लोकचेतना को पूर्ण समग्रता से अपने ज़ेहन में रखकर सफल रचनाएँ की है। अग़र प्रेमचंद के कथा–साहित्य की आदर्श भूमि का विनिर्माण संभव हो सका है, तो वास्तव में लोक संपृक्ति से। वहीं प्रेमचंद की लोक–आस्था अनेक रचनाकारों का मार्गदर्शन करती है।

फ़ातिहा कहानी में एक लोकसंगीत के आश्रय से प्रेमचंद ने खोज–मिथक की इस लोकचेतना को बहुत ही प्रखरता के साथ प्रकट किया है।यथा–

स्त्री कहती है – कहाँ जाते हो?

युवक उत्तर देता है – जातें हैं तुम्हारे लिए रोटी वा कपड़ा लाने।

स्त्री पूछती है – और कुछ अपने बच्चों के लिए नहीं लाओंगे?

युवक उत्तर देता है – बच्चे के लिए बंदूक लाऊँगा,ताकि जब वह बड़ा हो,तो वह भी लड़े और अपनी प्रेमिका के लिए रोटी और कपड़ा ला सकें।

अग़र बात साहित्य के सौंदर्य पक्ष की हो,तो उसकी भी तनिक अवहेलना नहीं की जा सकती। यह भी ध्यातव्य है कि साहित्य यदि सौंदर्य की सृष्टि है , तो यह सौंदर्य भी सामंजस्य का दूसरा नाम ही है।जिसका निर्माण, असंस्कृत, असभ्य तथा आदिम कहे जाने वाले लोकजीवन से अलग रहकर हो ही नहीं सकता।

इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन दृष्टव्य है कि, बाह्य असुंदर गृह में खड़े होकर आंतरिक सौंदर्य की उपासना नहीं हो सकती।हमें उसके बाह्य असौंदर्य को भी देखना ही पड़ेगा।निरन्न, निर्वसन जनता के बीच खड़े होकर आप परियों के सौंदर्य लोक की कल्पना नहीं कर सकते है। साहित्य सुंदर का उपासक है इसलिए साहित्य का असामंजस्य दूर करने का प्रयत्न पहले करने होगा.....।

इसी प्रकार साहित्य द्बारा लोकचेतना का विकास उसका अनिवार्य एवं उद्देश्यपूर्ण गुण तथा धर्म है।इसका समुचित निर्वाह रचनाकर्म की सही दिशा, प्रेरणाभूमि तथा रचनाकार की मूल संवेदना, अनुभव सम्पन्नता तथा सर्जनात्मक ऊर्जा पर ही अवलम्बित है।इसलिए रचनाकार हमेशा से ही जनजीवन का उचित मार्गदर्शन कर अपने समाज को सही दिशा की ओर अग्रसर करने में एक निर्णायक भूमिका निभाता है।

कोई भी रचना स्वतंत्र मूल्यान्मुख होने पर ही लोकजीवन से चेतन रस प्राप्त कर दीर्घजीवी होती है।यही कारण है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य को पशुतुल्य धरातल से ऊपर उठने की प्रेरणा एवं शक्ति द्वारा मानवहित साधन करने वाले साहित्य को श्रेष्ठ बताया है।

इससे यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता हैं कि साहित्यकार का काम केवल लोंगों का मनोरजंन करना नहीं है, बल्कि नवचेतना का वहन करना है।वहीं लोकवादी आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का लोकरंजक की अपेक्षा लोकमंगल के अधिकतय निकट है।

वर्तमान समय में तो मनोरजंन के साधनों का अत्यधिक विस्तार हुआ है जिससे आम आदमी का उस ओर झुकाव और बढ़ा जो कि स्वाभाविक प्रक्रिया है। मनोरंजन के बहुतया विकल्पों की इस भूलभुलैया में शासनतंत्र आम आदमी को आर्थिक, सामाजिक विषमताओं तथा राजनीतिक षड्यंत्रों से अपरिचित रखना चाहता है। इसी तंत्र के विरुद्ध चेतना को लोक के साथ जोड़कर रचनाकार उसे सही दिशा एवं प्रेरणा प्रदान करता है,इसी को साहित्यिक लोकजागरण की संज्ञा दी जा सकती है और यही सही दिशा एवं प्रेरणा साहित्य का मूल उद्देश्य है।इस संदर्भ में भारत–दुर्दशा का एक उदाहरण उल्लेखनीय हैं–

गयो राज धन तेज शेष बल ज्ञान नसाई।

बुद्धि वीरता श्री उछाह सूरता विलाई।

————————————————

सब विधि नसि भारत–प्रजा कहुँ न रहौ अवलंब न

जागो,जागो करूनायतन,फेर जागि है नाथ कब।।(भारतेंदु)

जो लोग कविता को लोकमानस का परिष्कार करने वाली लोकभावना का संरक्षक मानते हैं। उन्हें रवींद्रनाथ श्रीवास्तव की भाँति यह कदापि मान्य न होगा कि समाज में एक ओर हाहाकार व्याप्त हो,देश की अधिकांश जनता उत्पीड़ित हो, अभाव, वैषम्य, पराधीनता सबका देश के रंगमंच पर नृत्य हो, दूसरी ओर कवि नैराश्य का अश्रुपात करें, जनता के दुःख–ग्लानि पर भोग–विलास का अवगुंठन डालने की चेष्टा करें अथवा तटस्थ रहकर उसकी निरपेह आलोचना करें।

लोकजीवन की सामान्य भावभूमि पर रहकर यथार्थ का चित्रण भर कर देना साहित्य की लोकचेतना को आघात पहुँचाने जैसा है क्योंकि लोकजीवन की यथावत् स्थितियों का सीधा संचयन ही साहित्य नहीं है।लोक पीड़ा का फोटोग्राफिक चित्रण करना,उसके प्रति झूठी सहानुभूति दर्शाना अथवा अत्यधिक भावभिभोर होकर लोगों को निर्यातवादी दृष्टि प्रदान करना साहित्यकार का उज्ज्वल कर्म नहीं है।

प्रत्येक साहित्यकार युगीन स्थितियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता।वह अपने युग की परिस्थितियों से अवश्य ही प्रभावित होता है,साथ–ही वह उन परिस्थितियों को भी प्रभावित करता है, उन्हे सही दिशा देता है।डॉ0 नामवर सिंह ने समग्र स्थितियों के समुच्चय को समाज? की संज्ञा देते हुए स्पष्ट किया कि, समाज(अर्थात् लोकजीवन) स्वयं साहित्य के रूप में परिणित नहीं होता है, साहित्य–रचना की प्रकिया में समाज, लेखक और साहित्य एक–दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित और विकसित रहता है।

वहीं आदिवासी स्वर को मुखरित करने के उद्देश्य से प्रकाशित पत्रिका है युद्धरत् आम आदमी। इसमें कवयित्री ग्रेस कुजूर कहती हैं

कि लोक–संस्कृतिसे जुड़े सारे प्रतीक आज नष्ट प्राय है।वह पूछती हैं–

कहाँ गया वह सुगंध
महुआ और डोरी की
गूलर और केयोंद की
कहाँ खो गया बाँसों का संगीत
और न जाने कहाँ उड़ गयी
संघना की सुगंध।

लोकजीवन से लोकचेतना,लोकचेतना से साहित्य और साहित्य द्बारा लोकमानस का परिष्कार कर लोकजागरण का पथ प्रशस्त होता है। अतःसाहित्य के लिए लोकचेतना एक व्यापक एवं अंतमर्यी जीवन दृष्टि है।

साहित्यिक प्रतिमान के रूप में लोकचेतना का उपयोग करने से पूर्व यह जान लेना भी अति आवश्यक है कि लोकचेतना एक समाज सापेक्ष विकसनशील तत्व है।यह परंपरायुक्त, परिस्थिति संपन्न, लोकोन्मुखी, जीवनदृष्टि है। यह सामाजिक सरोकारों, राजनीतिक समझ एवं सांस्कृतिक जागरूकता को वाणी देने वाली केंद्रीय शक्ति है। वस्तुतः लोकचेतना को रूढ़ अर्थों में किसी भी विचारधारा से जोड़ना उचित नहीं है।इससे उसके मूल अर्थ में की क्षति होगी।अतः लोकचेतना की साहित्यिक पहचान के लिए अत्यंत जागरूक रहने की आवश्यकता है क्योंकि साहित्य में लोकचेतना के होने का अर्थ न तो भाषा का अत्यधिक सरलीकरण है और न ही संग्रहमात्र। वह तो किसी वाद–विशेष अथवा विचारधारा का प्रचारक भी नहीं है।

लोकचेतना राजनीति के उतनी ही निकट है जितनी की सांस्कृतिक परंपरा को सामाजिक जीवन का प्रत्येक अंग लोकचेतना की समग्रता में समाहित कर लेता है। अतीत के अनुभव एवं वर्तमान के ज्ञान पर ही लोकचेतना के साहित्यिक विकास की सही दिशा इंगित की जा सकती है क्योंकि साहित्य का परिष्कृत प्रचार, परिष्कार एवं परिमार्जन ही लोकचेतना की पहली अनिवार्य शर्त है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोकचेतना की अभिव्यक्ति साहित्य में ही पूर्णतः संभव है।लोकचेतना साहित्य में प्रतिफलित होकर ही पूर्णता प्राप्त करती है।अपने युग और परिवेश तथा लोक मानसिकता से जुड़ा साहित्य लोकचेतना संपन्न होता है।यही कारण है कि प्राचीनकाल से कवियों ने लोकचेतना के संदर्भ में जो दृष्टि हमारे सामने रखी थी,वो आज भी प्रेरणादायी है।यथा–

कबीरदास–
लोकॉ मति कै भोला रे,
जो कबीर कासी मरे,तो रामहि कौन निहोरा रे।

तुलसीदास–
ष्कहबि लोकमत वेदमत।

स्पष्ट है कि साहित्य किसी भी शर्त पर अपने युग की लोकचेतना से निरपेक्ष नहीं रह सकता है।

लोकचेतना का भावार्थ ही उसी प्रकार के साहित्य में निहित है जिसमें लोकसंघर्ष, लोकमंगल, लोककल्याण के साथ–साथ अन्याय, अत्याचार, शोषण, अमानवीयताओं का विरोध करने वाली भावनाएँ विद्यमान रहती हैं।

संदर्भ–ग्रंथ–सूचीः–

1. बाबू गुलाबराय,सिद्धांत और अध्ययन।
2. कार्ल मार्क्स, द जर्मन आइडियोलॉजी मार्क्स एक एंगेल्स, पृष्ठ सं.–13
3. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव,प्रगतिशील आलोचना,पृष्ठ सं.–60
4. हार्वर्ड फास्ट,साहित्य और यथार्थ पृष्ठ सं.–14
5. डॉ. नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना,पृष्ठ सं.–23
6. डॉ. रामविलास शर्मा,आस्था और सौंदर्य, पृष्ठ सं.–33।

कुसुम त्रिपाठी
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

9

भरत और ब्रेख्त के सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन : अभिनय संदर्भ

अजीत कुमार सिंह

सारांश –

रंगमंच समाज का आइना होता है। समाज का यथार्थ तो प्रस्तुत करता ही है, वहीं समाज को दृष्टि भी देता है। रंगमंच काल विशेष से प्रभावित होता है ; जो रंगमंच अपने समय से आगे को प्रस्तुत नही कर पाता, वह समाज को दिशा नही दे पाता है और सिर्फ मनोरंजन का साधन बनके रह जाता है। लेकिन जो रंगमंच समाज की सोच को मनोरंजन के साथ – साथ आगे की दृष्टि प्रदान करता है और आलोचनात्मक चेतना उत्पन्न करता है, वास्तव में वह सबसे ज्यादा सार्थक रंगमंच होता है। प्रस्तुत शोध इसी संदर्भ में भरत और ब्रेख्त के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन अपने स्वरूप में विश्लेषणात्मक है।

बीज शब्द –पार्थक्य प्रभाव, एपिक शैली, एपिक थियेटर,भारतीय लोकनाट्य, यथार्थवादी रंगमंच, साधारणीकरण

भरत तथा ब्रेख्त का अभिनय सिद्धांत –

बर्तोल्त ब्रेख्त जिस समय रंगमंच पर सक्रिय हुए वह रंगमंच पर यथार्थवादी मुहावरे के एकाधिकार का समय था। वास्तव में समकालीन रंगमंच पर ब्रेख्त का अवतरण एक क्रान्तिकारी घटना थी। ब्रेख्त ने यूरोप के रंगमंच की हालत को ही नही बदला, उसके सौंदर्यशास्त्र को भी नया रूप दिया। ब्रेख्त समकालीन रंगमंच पर हावी अरस्तु के सिद्धान्तों–संकलनत्रय विरेचन आदि तथा उन्हे संभव करने के लिए सृजित प्रोसेनियम रंगमंच के दायरे से बाहर निकालना चाहते थे। ब्रेख्त ने अरस्तु से चली आयी नाट्य परंपरा पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए दर्शक एवं अभिनेता के बीच की एक अदृष्य चौथी दीवार को ढहा दिया, जिसे ढाई हजार साल की उस मजबूत परंपरा ने खड़ा किया था। ब्रेख्त रंगमंच को अत्यंत गंभीर महत्वपूर्ण और सार्थक सामाजिक कार्य मानते थे। उनका मानना था कि ''रंगमंच को शिक्षाप्रद होना होगा। तेल, बढते मूल्य, युद्व, सामाजिक संघर्ष, परिवार, वर्ग, गेहूँ, सब्जी और नमक तेल आदि को रंगमंच का विषय बनाना होगा; लोगों के क्रियाकलापों को, सामाजिक गतिविधियों को आलोचना का विशय बनाना होगा। सही और गलत का भेद रंगमंच पर उपस्थित करना होगा। रंगमंच पर यह दिखाना होगा कि किस तरह कुछ लोग जान बूझकर व्यवहार करते हैं और समाज का बहुलांश बिना समझे–बूझे जीता है। रंगमंच को दार्शनिक–चिंतको के हाथों में लाना होगा, ऐसे चिंतकों के हाथों में जो केवल जागतिक व्यापार ही दिखलाकर छुट्टी न पा लें, बल्कि वह बताएँ कि उसमें परिवर्तन कैसे आएगा ही।''[1] ब्रेख्त मानते थे कि नाटक ऐसा हो जो दर्शकों को तटस्य प्रेक्षक बनाकर उसकी चेतना जागृत कर दे। इसलिए नाटक को अपने पात्रों के साथ दर्शक का तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास नही करना चाहिए। दर्शक को मूर्च्छित अवस्था में न ले जाकर उसे दृष्टा रूप में सजग, सचेत बनाना चाहिए ताकि वह सामाजिक समस्याओं, सामाजिक गतिविधियों का आलोचक बन सके। उन्होंने अपने इस एपिक थियेटर की अवधारणाओं को बहुत गहराई से आजीवन अपने रंगकर्म का हिस्सा बनाए रखा और इसे जिया। ''ऐसा नही है कि एपिक शब्द का उपयोग करने वाले ब्रेख्त प्रथम व्यक्ति थे। अ–अरस्तु नाटकों का बीज, ब्रेख्त से बहुत पहले जर्मन नाट्यकर्म में पड़ चुका था। लेंझ, बुखनर, हॉटमान, ग्राब, बेडेकिंड जैसे कवि/नाटककारों ने अपनी रचनाओ में एपिक शैली का प्रयोग किया।''[2] लेकिन गौर करने वाली बात यह कि एपिक थियेटर जितने व्यापक रूप से ब्रेख्त के यहाँ आया वह अन्य कहीं इस स्वरूप में गैर–मौजूद है।

चूँकि, ''ब्रेख्त रंगमंच को अत्यंत गंभीर, महत्वपूर्ण और सार्थक सामाजिक कार्य मानते थे'',[3] इसलिए जब इन्होने देखा और महसूस किया कि विज्ञान और तकनीक के प्रसार और प्रभाव से जीवन–शैली बदल रही है तो बदलाव की इस प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए नये रंगमंच की जरूरत को उन्होंने समझा और ड्रामेटिक थियेटर (नाटकीय रंगमंच) की जगह 'महाकाव्यात्मक रंगमंच' (एपिक थियेटर) को स्थापित किया। उनका मानना था कि विश्व में किसी चीज को जब स्वाभाविक और सहज मान लिया जाता है तो इसका मतलब है कि उसे समझने के अन्य प्रयास नही हुए। यथार्थवादी रंगमंच तथा उसकी प्रविधियाँ ऐसे ही सहज मान ली गईं थी। यथार्थवादी रंगमंच का जोर दर्शकों के दिमाग की जगह इनकी भावनाओं को सम्मोहित करने पर था। इसके लिए वह यथार्थ का भ्रम रचता था, जिसमें दर्शक कथा एवं पात्र से अपना तादात्म्य महसूस करते थे और क्लाइमेक्स तक पात्र की समस्या का हल पा लेते थे। ब्रेख्त ने महाकाव्यात्मक रंगमंच में दर्शक को प्रेक्षक में बदल दिया जो नाटक को नाटक की तरह एक आलोचकनात्मक दूरी से देखता था। वह सत्य को सहज रूप में देखने की बजाय उसे एक अन्य कोण से देखता था। महाकाव्यत्मक रंगमंच का नाटकीय रंगमंच से

अंतर करते हुए उन्होंने बताया कि महाकाव्यात्मक रंगमंच खेला जाता है और नाटकीय रंगमंच लिखित शब्दों से संचालित होता है। एपिक थियेटर में दर्शकों के सामने की आभासी चौथी दीवार गिर जाती है और वह सही मायनों में खेल देखता है जिसमें स्थितियाँ, उनकी पूरी पृष्ठभूमि उपस्थित होती है, विरोधी और संगत छवियाँ एक साथ मौजूद होती हैं। इसमें कथावस्तु की जगह आख्यान केन्द्र में होता है इस आख्यान का विकास रैखिक न होकर वक्र होता है। वहीं अगर अभिनेता के बारे में बात करें तो ब्रेख्त के रंगमंच का एक मूल सूत्र अभिनेता द्वारा अपनी भूमिका से अलग होकर दर्शक को सीधे संबोधित करना है। हमारे रंगमंच की दुनियाँ मे करीब तीन हजार साल पहले से यह चीज मौलिक रूप से मौजूद रही है और परम्परागत भारतीय नाट्य में अभी भी देखी जा सकती है। इस देश में नाटक की शुरुआत प्रस्तुतकर्ता द्वारा श्रोता या प्रेक्षक से सीधे बातचीत के द्वारा ही हुई। संस्कृत रंगमंच की हजारों वर्ष की परम्परा के जीवित अवशेष कूडियाट्टम में सूत्रधार तथा विदूशक मूल नाटक के साथ काफी आजादी लेते हुए दर्शकों से वार्तालाप करते रहते हैं, एक नाटक की एक प्रस्तुती में केवल विदूषक का संबोध ही कंई दिनों तक चलता रहता है। हमारे लोकनाट्यों के कई रूपों में अभिनेता अपने अभिनय में अपनी भूमिका की व्याख्या दर्शक के आगे करने लगता है। यही नहीं, वह उस भूमिका के बारे में गाये जाने वाले समूह गीत में भी शामिल हो जाता है और उसके बाद फिर अपनी भूमिका में लौट आता है। ब्रेख्त ने अभिनेता के लिए इसी स्थिति को आदर्श माना है जहाँ वह चरित्र से अपने को पृथक कर ले। अभिनेता के लिए कतई जरूरी नही की वह खुद को वैसा ही प्रदर्शित करे, जैसा चरित्र उसे अभिनित करना है। उसे सिर्फ उस चरित्र को मंच पर बखान करना है, उसी तरह जिस तरह किसी पुस्तक में उसका वर्णन किया जा सकता है।

सूत्रधार के हस्तक्षेप तथा अभिनेता द्वारा दर्शक से सीधे साक्षात्कार से हमारी परंपरा में ठीक वह चीज पैदा होती है, जिसे ब्रेख्त ने पार्थक्य प्रभाव (एलिनेशन–इफेक्ट) कहा है। यह पार्थक्य–प्रभाव ब्रेख्त के रंग–दर्शन का मूल आधार है, जिसके द्वारा उसने यूरोप के रंगमंच की समूची परिकल्पना को बदल दिया।

ब्रेख्त की रंगमंचीय परिकल्पनाओं, सौंदर्यशास्त्रीय सिद्वांतों तथा अभिनय पद्धतियों का परंपरागत भारतीय नाट्य से साम्य एकदम स्वाभाविक है। खुद ब्रेख्त ने भी यह स्वीकार किया है कि उनके रंगमंच पर नया कुछ भी नही है, जो प्रयोग उसने किए हैं, वे हिंदुस्तान, जापान और चीन के रंगमंच पर सदियों पहले हो चुके । ब्रेख्त एशियाई रंग परंपरा से प्रभावित भी थे। यही कारण है कि ब्रेख्त ने रंगमंच का जो शास्त्र गढ़ा है, वह अनेक बातों में नाट्यशास्त्र के बहुत निकट है, जिसे भरत आज से करीब हजार वर्ष पूर्व लिख चुके थे। भरत ने काव्य और नाटक में अंतर नही माना है और हमारी पारंपरिक रंगचेतना काव्य और नाटक को अलग–अलग विधाओं के रूप में देख भी नही सकती थी, क्योंकि हमारे नाटक का बीज काव्य पाठ में निहित रहा है। ब्रेख्त ने अरस्तु के समय से चले आ रहे नाटक तथा कविता को अलग–अलग मानने वाले ड्रामेटिक थियेटर का विरोध करते हुए अपने रंगमंच को उसकी तुलना में एपिक थियेटर या महाकाव्यात्मक रंगमंच कहना पसंद किया, क्योंकि भरत की परंपरा की तरह उसमें कविता का पाठ, कथा का बखान या नैरेशन का तत्व मौजूद है। भरत और ब्रेख्त दोनों दर्शक और अभिनेता को वस्तुजगत से परे किसी दूसरी दुनिया में ले जाने के विरोधी हैं । ब्रेख्त ने दर्शक के मन में यह भ्रमजाल पैदा करने की कड़ी आलोचना की है कि वह कुशल अभिनेताओं द्वारा काफी रिहर्सल के बाद तैयार कर के प्रस्तुत किया जाने वाला प्रदर्शन नही, बल्कि सचमुच की घटनाएँ देख रहा है। भरत की परम्परा भी यह मानती है कि अभिनेता को खुद के राम, दुश्यंत आदि होने का भ्रम पैदा करने की जरूरत नहीं, उसे उनकी चरित्रगत विशेषताओं को साकार करना है। इसलिए भरत और उनके अंभिनव आदि व्याख्याकारों ने नाटक की प्रस्तुति को असली दुनिया की नकल और तज्जनित भ्रम मानने पर आपत्ति की है। रसास्वाद की भ्रममूलक व्याख्या का भी इन आचार्यो ने विरोध किया। भरत और ब्रेख्त दोनों जहाँ मंच को किसी भी जादू और करिश्में से भरी चीज से बचाना चाहते थे वहीं दर्शकों को भी एक सम्मोहन–भरे तनाव से गुजरने देने से रोकने के पक्षधर थे। इसके साथ ही ब्रेख्त प्रेक्षक के द्वारा मंच पर प्रस्तुत घटनाओं और चरित्रों से तादात्म्य के भी विरोधी है। यह विरोध साफ तौर पर स्पष्ट करता है कि ब्रेख्त के महाकाव्यात्मक रंगमंच में अभिनेता की भूमिका से साधारणीकरण के बजाय दर्शक विपरीत भावना का अनुभव करता है।

रसानुभूति के सिद्धान्त के बारे में कई बार भ्रम खड़ा कर दिया जाता है कि उसमें प्रेक्षक का चरित्र तथा घटनाओं के साथ तादात्म्य आवश्यक है जब कि स्थिति इसके विपरीत है। भरत और उनकी परम्परा के सभी आचार्यों का यही आशय रहा है कि प्रेक्षक यदि तादात्म्य का अनुभव करेगा, तब रसानुभूति होगी ही नही। ब्रेख्त की ही तरह हमारे यहाँ भी नाट्यानुभव के लिए पार्थक्य एक बुनियादी शर्त है। अभिनेता अपने आपको वास्तविक राम समझने लगे, तो वह अभिनय कर ही नही सकेगा। दर्शक भी यदि राम के साथ तादात्म्य अनुभव करे तो वह नाटक के रस से वंचित रहेगा। भरत के प्रथम व्याख्याकार लोल्लट ने कहा था कि प्रेक्षक अभिनेता में राम आदि का अनुसंधान करता है। अनुसंधान अपने–आप में एक

पार्थक्यजनित प्रक्रिया है, दर्शक राम से तटस्थ होकर नट में राम का अनुसंधान कर सकता है। जहाँ तक कलासर्जन और कलास्वाद की बात है तो ये प्रक्रियाएँ इतनी जटिल और मिश्रित हैं कि इनमें पार्थक्य की अनमिति ही सर्वोच्च नही मानी जा सकती। उनकी जटिल बनावट में पार्थक्य के साथ–साथ तादात्म्य का भी उतना ही योग रहता है। यही कारण है कि भरत के साथ–साथ उनकी परम्परा के आचार्यों ने अभिनेता के मूल पात्र से और प्रेक्षक के नाटक की दुनिया से पार्थक्य बनाए रखने पर बहुत जोर नही दिया। अभिनेता रचना के स्तर पर मूल पात्र की मनःस्थिति को उसके साथ एकाकार होकर जीता है, तो दूसरे उससे अलग होकर उसे अभिव्यक्त करता है। यही स्थिति दर्शक के साथ है। ब्रेख्त ने भी नाटक के प्रस्तुतीकरण के समय अभिनेता की ओर से तथा उसके अवलोकन में प्रेक्षक की ओर से तादात्म्य की संभावना और अनिवार्यता को नकारा नहीं है, अलबत्ता तादात्म्य की बात को बहुत जोर देकर नही कहते। इसका कारण भी स्पश्ट है। ब्रेख्त ने अरस्तु की हजारों वर्श पुरानी जिस परम्परा के खिलाफ मोर्चा लिया था, उसमें तादात्म्य पर बल देने में अति ही कर दी गई थी। अभिनेता और प्रेक्षक दोनों से अपने विवेक और अपनी इयत्ता को तिलांजलि देकर नाटक की दुनिया से तदाकार होने की अपेक्षा की जाती थी।

''पार्थक्य प्रभाव (एलिनेशन इफेक्ट) अथवा ए–इफेक्ट से ब्रेख्त का तात्पर्य था कि दर्शक नाटक की जानी पहचानी स्थितियों को लेकर सवाल उठाएँ और इन्हें नई सोच और नई दृश्टि से देखने की शुरूआत करें।''[12] अर्थात ब्रेख्त ने अपने रंगमंच पर पार्थक्य–प्रभाव के द्वारा प्रेक्षक की आलोचनात्मक बुद्धि और विवेक के स्वातंत्र्य को प्रतिश्ठित किया। संस्कृत नाटकों के साथ भी भरत की परंपरा के तथा लोकमंच के कलाकारों ने इस तरह के प्रयोग किए। संस्कृत नाटक की शास्त्रीय परंपरा के रंगमंच– कुडियाट्टम में ठीक उस समय जब नायक दुःख और करूणा में डूबा विलाप करता हुआ कोई अत्यंत गंभीर संवाद बोलता है, तो विदूषक अपने समय की या अपनी घर–गृहस्थी की कोई हल्की–फुल्की बात पर उसे पैरोडी में कहकर सारे वातावरण को खुशनुमा वातावरण में बदल देता है। भारतीय लोकनाट्य– तमाशा, भवाई, माँच, स्वांग आदि में भी यह प्रक्रिया अक्सर देखी जा सकती है।

निष्कर्ष – समग्र रूप से कहा जा सकता है कि ब्रेख्त का रंगमंच बहुत हद तक एशिया के रंगमंच से प्रभावित रहा है। यह बात अलग है कि ब्रेख्त के रंगमंच के सिद्धान्त में उनका अपना भी बहुत कुछ है जिसे हम ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन जिसे ब्रेख्त ने हमारी लोक परंपराओं से लिया है, उसे हम ब्रेख्त से लें तो यह उचित नही होगा। इसके लिए हमें अपनी समृद्ध लोकरंगमंच की ओर देखना और उसके सार्थक तत्वों को आत्मसात करने की जरूरत है, ताकि हमारा रंगमंच अधिक समृद्ध, बहुआयामी और लोकव्यापी बन सके।

संदर्भ

1. सहाय, राधा कृष्ण, बर्तोल्त ब्रेख्त, समानांतरनामा, अंक–तृतीय, 2021, पृ. 20–21
2. रंग प्रसंग, वर्ष–7, अंक–2 अप्रैल– जून, 2004, पृ–33
3. तनेजा, जयदेव, नाट्य प्रसंग, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2017, पृ. 20–21

अजीत कुमार सिंह
शोधार्थी (पीएच.डी, हिंदी)
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9717620793
Add:- 8-A, Block-E,
Gali No-4, Roshan Vihar,
Back side Rao Man Singh
Public School, Najafgarh,
New Delhi-110043

10

अंत्योदय अन्न योजना (उत्तर प्रदेश राज्य के संदर्भ में) एक अध्ययन

वर्षा त्यागी

सारांश –

प्रस्तुत शोधपत्र में उत्तर प्रदेश राज्य में अंत्योदय अन्न योजना (ए.ए.वाई) का अध्य्यन किया गया है। किसी भी देश की प्राथमिकता होती है की उस देश की जनसंख्या को भरपेट भोजन प्राप्त हो सके। भारत एक विकासशील देश है और इस देश में लाखों लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं। ऐसे लोगों के पास जीवन जीने के लिए आवश्यक वस्तुएं भी नहीं होती हैं जैसे– रोटी कपडा और मकान। इन आवश्कताओ की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा समय समय पर कई योजनाएं चलाई गई है अंत्योदय अन्न योजना इन्हीं उदेद्श्य की प्राप्ति के लिए चलाई गई एक योजना हैं। अंत्योदय अन्न योजना केंद्र सरकार द्वारा २५ दिसंबर २००० को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत शुरू की गई थी

इस योजना में १ करोड़ गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की पहचान करके उन्हें २ रुपये प्रतिकिलोग्राम गेहू व ३ रुपये प्रतिकिलोग्राम चावल हर महीने सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है । भारत में लगभग ५ %जनसंख्या भुखमरी की शिकार है। अंत्योदय अन्न योजना की शुरुआत इसलिए की गई है ताकि गरीब परिवारों को दो वक्त का भरपेट भोजन प्राप्त हो सके क्योकि एक स्वस्थ समाज में ही एक स्वस्थ देश का निर्माण होता है।

मुख्य शब्द – अंत्योदय अन्न योजना ,विकास ,गरीबी , खाद्यान्न पदार्थ, पोषण

पृष्ठभूमि

भारत एक विशालकाय देश है जिसमे विश्व की लगभग १७.५प्रतिशत जनसंख्या निवास करती हैं। जनसंख्या की दृष्टि से भारत दूसरे स्थान पर है ऐसे में इतनी बड़ी जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध करना एक बहुत बड़ी चुनौती हैं। यदि खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता की बात करे तो उसे तीसरे पंचवर्षीय योजना के अंत तक प्राप्त कर लिया गया था जैसेकि 'आर राधाकृष्णन ने कहा है ''भारत ने १९७० के दशक में ही खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की स्थिति को पा चुका था तथा इस स्थिति को बनायें रखने की स्थिति में भी सफल रहा है। 1'' तथापि चिंता का विषय आज भी बना हुआ है क्योकि खाद्यान्नों में तो सफलता हासिल कर ली है परन्तु वितरण प्रणाली ने संतोषजनक स्थिति प्राप्त नहीं की है आजतक खाद्यान्नों की असमानता को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर पाएं है एक तरफ तो लोगों के पास अत्यधिक खाद्यान्नों की पूर्ति है तथा वही दूसरी तरफ लोगों को भरपेट भोजन भी नसीब नहीं हो पा रहा है। इन्हीं सब समस्याओं को देखते हुए 'भारतीय खाद्य निगम ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस,) की शुरुआत की थी। सर्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर आवश्यक उपभोग वस्तु उपलब्ध करना था। ताकि उन्हें बढ़ती कीमतों से बचाया जा सके। पी .डी. एस के माध्यम से लगभग १६ करोड़ परिवारों को प्रतिवर्ष ३०००० करोड़ रुपये मूल्य की वस्तु का वितरण किया जाता था।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बनायें रखने के लिए सरकार को भारी मात्रा में आर्थिक सहायता देनी पड़ रही थी , इस योजना में एक ओर तो वितरण का खर्च बढ़ता जा रहा था, वही सरकार को आम जनता को खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए सस्ती कीमत करनी पड़ रही थी जिससे सरकार को दोहरे व्यय का सामना करना पड़ रहा था। इसी समस्या को दूर करने के लिए लक्षित सार्वजनिक वितरण योजना (टी .पी.डी.एस), की शुरुआत हुई टी. पी.डी.एस भारत सरकार द्वारा १ जून १९९७ में लागू की गई थी। इस योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे (बी .पी .एल,) रहने वाले लोगो को शामिल किया गया ,बी.पी.एल.में उन लोगो को माना गया जिनकी वार्षिक आय १५००० से भी कम थी टी.पी.डी.एस.में बी. पी.एल.ओर (ऐ पी एल) 'गरीबी रेखा से ऊपर' , दोनों परिवारों को शामिल किया गया

परिचय

अंत्योदय अन्न योजना ए.ए.वाई , खाद्य विभाग व लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत केंद्र सरकार द्वारा चलाई गई एक योजना है। ए.ए.वाई की शुरुआत हमारे पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपाई जी द्वारा २५ दिसंबर २००० को पूरे देश में लागू की गई थी। ए.ए.वाई को लक्षित सार्वजनिक वितरण की पूरक योजना के रूप में चलाया गया था। टी.पी.डी.एस.में मार्च २००० को सरकार ने निर्गमन कीमत (उपभोक्ता के लिए निर्धारित कीमत) को बी.पी.एल.परिवार के लिए भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत का ५०प्रतिशत का और ए पी एल के परिवार को खाद्य निगम की आर्थिक लागत के बराबर भुगतान करना होता है। भारत देश में लगभग 20प्रतिशत जनसंख्या गरीबी से नीचे जीवन यापन कर रही

हैं जिसमेसे ५प्रतिशत जनसंख्या ऐसी है जिसे भूखे पेट ही सोना पड़ता है ए.ए.वाई योजना इन्ही ५प्रतिशत लोगों की संख्या की पहचान करने के लिए चलाई गई हैं। अंत्योदय अन्न योजना की शुरुआत में टी पी डी एस के अंतर्गत आने वाले परिवारों में से १ करोड़ गरीब परिवारों की पहचान करके उन्हें २५ किलो अनाज प्रति माह दिया गया तथा इस अनाज की दर आज भी २ रुपये प्रतिकिलोग्राम गेहू व ३ रुपये प्रति किलोग्राम चावल दिया जाता है। २००२ में योजना में एक संशोधन किया तथा २५ किलो से अनाज को बढ़ाकर ३५ किलो कर दिया गया क्योकि २५ किलो अनाज एक परिवार के लिए पर्याप्त नहीं था इस तरह यह योजना लोगों को पोषण पहुंचने के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है।

उद्देश्य

अंत्योदय अन्न योजना का मुख्य उद्देश्य भुखमरी को कम करना व खाद्यान्नों को जरूरतमंद लोगो तक पहुँचाना है। खाद्यान्नों की बढ़ती कीमतों के कारण गरीब लोगों तक सही पोषण तो क्या पर्याप्त अन्न भी नहीं मिल पा रहा था, तो इस योजना के माध्यम से १ करोड़ ऐसे परिवारों की पहचान करना जो दिव्यांग है ,विधवा है ओर घर की मुखिया है , रोगी आदि को खाद्यान्नों की पूर्ति करना इस योजना का उद्देश्य रहा है

ए.ए.वाई में २००२ को २५ किलो राशन से बढ़ाकर ३५ किलो कर दिया गया तथा १ करोड़ गरीब परिवार की संख्या को बढ़ाकर २.५ करोड़ गरीब परिवारों की पहचान करने का लक्ष्य रखा गया।

इन उद्देश्य को निम्न अनुसार पूरा किया गया

ए.ए.वाई में २००३–०४ में ५० लाख अतिरिक्त ऐसे परिवार शामिल किये गए जिनमे ६० वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्ति ,विधवा व रोगी हो। ३ जून २००३ को १.५ करोड़ परिवार (गरीबी रेखा से नीचे का २३%) कवर हो गया था जोकि ए.ए.वाई की बहुत बड़ी उपलब्धि थी

२००४ में ओर ५० लाख गरीब परिवार शमिल किये गए है। परन्तु ३ अगस्त २००४ में इन परिवारों की पहचान करने के लिए कुछ मापदंड बनाये गए है "१. ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के भूमिहीन किसान ,झुग्गी झोपडी में रहने वाले परिवार , कुम्हार ,मोची, ठेले वाले ,रिक्शा वाले ,मजदूर ,दस्तकार ,दिहाड़ी वाले ,कबाड़ी वाले आदि ऐसे परिवार जिनकी आय का कोई स्थिर साधन नहीं है। २– ऐसे परिवार जिनकी मुखिया विधवाएं है ,असाध्य ग्रस्त रोगी व्यक्ति है ,६० वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति तथा दिव्यांग। ३– सभी आदिम जनजातीय परिवार"।

२००५ तक २.५ करोड़ निर्धनतम परिवारों को (अर्थात गरीबी रेखा का ३८:) ए.ए.वाई के तहत अनाज सहायता दी जाने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया था।2

अंत्योदय अन्न योजना का वितरण (लाख टन में)

वर्ष	चावल	गेहूँ	कुल
2012–13	51.31	25.34	76.65
2013–14	75.68	51.12	126.80
2014–15	––	––	––
2015–16	33.49	7.39	40.88
2016–17	7.04	0.02	7.06
2017–18	––	––	––
2018–19	––	––	––
2019–20	––	––	––
2020–21	61.25	39.02	100.27
2021–22	60.41	39.25	99.67

स्रोत :–खाद्य और सार्वजानिक वितरण विभाग मंत्रालय भारत सरकार (वार्षिक रिपोर्ट)

उत्तर प्रदेश में २०११ की जनगणना के अनुसार लगभग २० करोड़ जनसंख्या निवास करती है जिसमेसे २६.४३ :जनता गरीबी रेखा से नीचे है शहरों व ग्रामीण क्षेत्र में क्रमशः२६.०६,,३०.४० जनसंख्या है जो गरीब है। इतनी बड़ी गरीब संख्या को अनाज उपलब्ध कराना एक राज्य सरकार की विशाल समस्या है। अंत्योदय अन्न योजना इस समस्या के समाधान के लिए चलाई गई एक समृद्ध मुहीम है। ए.ए.वाई की शुरुआत सन २००० को पूर्व मुख्यमंत्री श्री राजनाथ सिंह द्वारा की गई थी इस योजना का मुख्य उद्देश्य भूखमरी में कमी लाना था

उचित दर दुकान – उचित दर दुकाने सार्वजानिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत खोली गई थी। उचित दर दुकानों पर राशन कार्डधारित को सस्ती दरो पर खाद्यान्न प्राप्त हो जाता है। १६६० के अंत तक .४७ लाख दुकाने पुरे भारत में थी अब इनकी संख्या बढ़कर ५,४१,४१८ हो गई है और उत्तर प्रदेश में ७६६१२ दुकाने खोली जा चुकी है। यह दुकाने बी.पी.एल, ए.पी.एल और ए.ए. वाई कार्डधारित लोगों को फायदा पहुंचने के लिए खोली गई थी। उत्तर प्रदेश में उचित दर दुकानों की कुछ शिकायत सामने आई है जैसे की अनाज कम देना ,जरूरतमंद को राशनकार्ड न देना इन सब समस्या को नियंत्रण करने के लिए वर्तमान मुख्यमंत्री श्री योगी

आदित्यनाथ जी ने एक टोलफ्री नंबर जारी किया है –१९६७ और १८००–१८०–०१५० जिसपर नागरिक अपनी शिकायते दर्ज करा सकते है

–उचित दर दुकानों में बायोमैट्रिक प्रमाणीकरण से पारदर्शिता आई है

– २०१५ से डीलरों को १७ रूपये प्रतिकुंतल मार्जिन अनुमोदित किया गया है जिसका व्यय केंद व राज्य सरकार के बीच ५०:५०: के आधार पर वितरित किया जाता है।3

अंत्योदय राशन कार्ड – अंत्योदय अन्न योजना का लाभ राशन कार्डधारित व्यक्ति को प्राप्त होता है। यह कार्ड ऐसे परिवार को दिया जाता है जिनकी आय स्थिर नहीं होती है। तथा जिनकी औसत आय २५० रुपए प्रतिमाह हो इस कार्ड का रंग पीला होता है। अंत्योदय राशन कार्ड तत्कालीन केंद्रीय खाद्य आपूर्ति मंत्री श्री एम विष्णु द्वारा विकसित किया गया था। इस कार्ड से २.५ करोड़ निर्धन परिवार प्रतिवर्ष लाभकित होते हैं, जिसमेसे लगभग ४०.६४ लाख परिवार उत्तर प्रदेश में है तथा लाभकित लोगों की संख्या १ करोड़ के आस पास है।

अंत्योदय राशन कार्ड को बनवाने की सामग्री–

1 आवेदक उत्तर प्रदेश का मूल निवासी होना चाहिए
2 परिवार के सभी सदस्य का आधार कार्ड
3 आवेदक बी पी एल के अंतर्गत आता हो
4 आय प्रमाण पत्र
5 मोबाइल नम्बर
6 स्थाई पता

जिलों के नाम	राशन कार्ड	लाभार्थी
आगरा	9566	29044
अलीगढ	24596	69113
अमरोहा	20019	58403
बागपत	7681	27585
बलिया	101693	333123
बाँदा	48348	119932
बरैली	99325	303209
बिजनौर	20623	65041
बस्ती	88941	353329
चंदौली	52492	173897
चित्रकूट	22774	76234
फतेहपुर	36789	120916
गाजियाबाद	8497	32805
फिरोजाबाद	32521	101409
गाजीपुर	59531	20805
हापुड़	8805	32419
जौनपुर	125469	419811

स्रोत – राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की पात्रता सूची (उत्तर प्रदेश सरकार)

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम व सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा राज्य में खाद्यान्न वितरण की प्रगति को जाँचने के लिए राज्य सूचकांक रैंकिंग को विकसित किया गया किसी राज्य की वितरण प्रगति किस प्रकार हो रही है उसके लिए तीन स्तम्भ बनाये गए है

१ आवर्त क्षेत्र को लक्षित प्रावधान का अधिनियम
२ वितरण मंच
३ पोषण पहल

पहले स्तम्भ में उत्तर प्रदेश .७६७ रैंक और दूसरा स्थान प्राप्त हुआ है ,और पहला स्थान ओडिशा को मिला है। 'आवर्त क्षेत्र व लक्षित प्रावधान का अधिनियम' के अंतर्गत यह आश्वासन किया जाता है की लोगो के पास आवश्यक वस्तु पहुँच रही है। इस स्तम्भ में ७५प्रतिशत गरीब ग्रामीण व ५०प्रतिशत गरीब शहरी क्षेत्र को लिया जाता है तथा इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ए.ए.वाई बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है।4

दूसरे स्तम्भ में भी उत्तर प्रदेश ने दूसरे स्थान को प्राप्त किया है तथा तीसरे स्तम्भ में सातवां स्थान प्राप्त किया है।

उत्तर प्रदेश २०२२ सितम्बर के अनुसार ए.ए.वाई के अंतर्गत चावल ११.७८ लाख टन और ६.८२ लाख टन वितरित किया जा चुका है। २.४३ करोड़ गरीब परिवारों में से उत्तर प्रदेश में लगभग ४० लाख गरीब परिवारों को अनाज हर महीने वितरित किया जाता है जोकि एक बहुत बड़ी संख्या है। इन सब आंकड़ों से पता चलता है कि यह योजना उत्तर प्रदेश की गरीबी को कम करने के लिए बहुत लाभदायक साबित हुई है। कोविड के समय खाद्यान्न के दाम आसमान छू रहे थे उस समय गरीब कल्याण अन्न योजना ए.ए.वाई के पूरक के रूप में चलाई गई थी तथा इसमें हर महीने निशुल्क अनाज दिया जाता था और ए.ए. वाई में ३ व २ रुपये किलो चावल व गेहूँ दिया जाता था और आज भी दिया जाता है, तो यह कहना गलत नहीं है की ए.ए.वाई उत्तर प्रदेश के लिए वरदान साबित हुई है।

निष्कर्ष –:

१–अंत्योदय अन्न योजना को भुखमरी व कुपोषण को खत्म करने के लिए शुरू किया गया था परन्तु बढ़ती जनसंख्या व योजना में किसी प्रकार का कोई संशोधन न होने के करण भुखमरी व कुपोषण की संख्या में बढ़ोतरी हुई है।

२– विश्व भुखमरी सूचकांक २०२२ के अनुसार १२१ देशो में भारत का १०७वां स्थान है।,२०२१ में १०१वां स्थान था और थोड़ा पीछे जाने पर २०१६ में ९७वां स्थान था यदि इन आकड़ों पर ध्यान दिए जाये

तो भारत में लगातार गरीबी बढ़ रही है ।5

३– सयुंक्त राष्ट्र संगठन के प्रकाशन "The State of Food Insecurity in the World 2015" के अनुसार भारत में भुखमरी लोगो की संख्या सबसे ज्यादा है विश्व में ७६.५० करोड़ जनसंख्या भुखमरी ग्रस्त है और लगभग उसमेसे १६.४६ करोड़ जनसंख्या भारत में निवास करती है" जोकि एक बहुत बड़ी संख्या है –6

४– ए ए वाई योजना में २.५ करोड़ निर्धनतम परिवारों की सहायता की जाती है इसमेसे उत्तर प्रदेश के केवल लगभग ४० लाख परिवारों को लाभ प्राप्त होता है जबकि ३०प्रतिशत गरीब जनता उत्तर प्रदेश में निवास करती है जिससे यह जान पड़ता है की यहाँ गरीब संख्या अधिक व लाभ संख्या कम।

५– उत्तर प्रदेश में ७६६१२ उचित दर दुकाने है जबकि गांव की संख्या लगभग १ लाख है तो हर गांव में एक उचित दर दुकान नहीं है

६– ए.ए.वाई में सिर्फ ३५ किलो अनाज गरीब परिवार को दिया जाता है २००४ को यह निर्धारित किया गया था उसके बाद से इसमें कोई बदलाब नहीं किये गए

७– भारत में २६६७.८३ लाख जनसंख्या ऐसी जिसे दो वक्त का खाना भी नसीब नहीं होता जिसमे से ५६८.१६ जनसंख्या उत्तर प्रदेश में है इतनी बड़ी निर्धनतम संख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराना एक राज्य के लिए बहुत बड़ी चुनौती है

इतनी खाद्यान्न योजनाएं चलाये जाने के बाद भी एक बहुत बड़ा हिस्सा भुखमरी से घिरा हुआ है। यह एक राष्ट्र के लिए दुखित बात है की वह अपनी जनता को पर्याप्त भोजन भी प्रदान नहीं कर सकता।

समस्या और समाधान

' जागरूकता की कमी –ः ए ए वाई को शुरू हुए बहुत साल बीत गए पर फिर भी बहुत सारी जनसंख्या इस योजना के कुछ लाभ से वंचित रह जाती है जैसेकि बायोमैट्रिक प्रमाणीकरण विफल होने पर या कोई तकनीकी परेशानी हो तो इसके स्थान पर आधारकार्ड या राशन कार्ड के साथ पत्र प्रस्तुत करने पर राजसहायता का नकद अंतरण दिया जाता है।

सरकार को योजना में हो रहे बदलावों के लिए समय समय पर जागरूक अभियान चलना चाहिए परन्तु यह अभियान गांव के अंदर जेसे सरकारी स्कूल व पंचायत घर आदि में ही चलना चाहिए ताकि गांव के सभी लोग इस जागरूक अभियान से जुड़ सके

' भष्टाचार –ः जब भी कभी कोई योजना चलाई जाती है उसके साथ भष्टाचार फ्री में आता है ए ए वाई योजना में ३५ किलो अनाज दिया जाता है पर लोगो तक ३०–३१ किलो ही अनाज मिलपाता है डीलर बाटों में पारदर्शिता नहीं रखते व अपना मार्जिन अधिक काटते है बड़े वर्ग के लोग जरूरतमंद लोगो तक योजना को पहुंचने नहीं देते है।

हर योजना पर निरक्षण के लिए आधिकारी होना चाहिए ताकि योजना सही तरीके से चल सके हर योजना को शिक्षा से जोड़ा जाना चाहिए खास तोर से प्रौढ़ शिक्षा से, ताकि बड़े अनपढ़ आयु के लोगों को भी योजनाओं के लाभ के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके। मेरा राशन मोबइल एप सरकार द्वारा एक बहुत अच्छा तरीका है लोगो को योजना से जोड़ने का।

' –ः इस योजना के तहत ३५ किलो अनाज दिया जाता है जोकि सिर्फ गेहू और चावल है जो पर्याप्त पोषण नहीं देता

अंत्योदय अन्न योजना में गेहू और चावल के साथ साथ तेल ,दाल ,बाजरा ,चने ,दलिया घी आदि चीजे भी देनी चाहिए जिससे लोगो को पर्याप्त पोषण मिल सके।

सन्दर्भ सूची

१ – वी.के . पुरी और एस.के.मिश्र –ःभारतीय अर्थव्यवस्था, Himalaya Publishing House, उनत्तीसवां सस्करण (२०१७), p 285

२ – खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग (भारत सरकार)

३– योजना मंत्रालय लोक सभा अंतरकित प्रश्न संख्या ४५८३

४–websites_ NSFA.gov.in

५– Global Hunger Index 2022-

६–international food policy research institute. .

७– खाद्य एवं रसद विभाग (उत्तर प्रदेश सरकार)

वर्षा त्यागी

शोध छात्रा– अर्थशास्त्र विभाग

एम0जे0पी0 रूहलेखण्ड विश्वविधालय, बरेली

स्थाई पता –ग्राम अलीपुरमान उर्फ खेड़ा, पोस्ट –कोतवाली देहात ,तहसील नगीना , जिला बिजनौर

मेबाइल न0–6379295763

पिन कोड– 246764

11

'प्रवास में आस–पास' कहानी–संग्रह में भारतीय संस्कृति के सामाजिक प्रतिमान

दिलबाग सिंह

सारांश –

डॉ. हंसा दीप कनाडा में रहकर भारतीय समाज और संस्कृति का चित्रण अपने साहित्य में कर रही हैं। उनके कहानी–संग्रह 'प्रवास में आस–पास' में समाज के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। लेखिका ने सामाजिक व्याधियों को भी दिखाया है और उच्चादर्शों की स्थापना भी की है। प्रवास में आस–पास में कुल पंद्रह कहानियाँ हैं, जिनमें सभी में सामाजिक प्रतिमानों का वर्णन है, लेकिन ऊचाइयाँ, हरा पत्ता पीला पता, एक मर्द एक औरत, भिडंत, फालतू कोना, मधुमक्खी, अपने मोर्चे पर, वह सुबह कुछ और होगी, रुतबा आदि कहानियाँ इस दृष्टिकोण से प्रमुख हैं और इनमें उच्चादर्शों, अतीत की स्मृतियों, नारी जीवन का चित्रण, पारिवारिक संबंधों का चित्रण, सामाजिक बुराइयों, मानवीय सौहार्द और सांप्रदायिकता के ताने–बाने, खान–पान और जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों के द्वारा भारतीय संस्कृति के सामाजिक प्रतिमानों को दिखाया गया है।

बीज शब्द – उच्चादर्श, अतीत की स्मृतियाँ, मानवीयता, रहन–सहन, खान–पान आदि

प्राक्कथन – विश्लेषणात्मक विधि को अपनाते हुए कबीर की वाणी में प्रेम के वर्णन को जाँचा–परखा जाएगा।

विषय–वस्तु –

''समाज में इक प्रत्यय के योग से सामाजिक शब्द बनता है, जो स्वयं में संबंधवाचक विशेशण है, इसका अर्थ है समाज संबंधी, समाज से संबंध रखने वाला सहृदय, जो समाज को महत्त्व देता हो।'' समाज में मनुश्य के अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करने वाले मानदंड सामाजिक प्रतिमान कहलाते हैं। सामाजिक प्रतिमान से तात्पर्य उन आदर्श प्रतिमानों से है, जो समाज में मनुश्यों के लिए उपलब्धि के विशय हों। इन प्रतिमानों के माध्यम से ऐसे नियम तैयार किये जा सकते हैं, जिसका लाभ समाज का प्रत्येक मनुश्य उठा सके। समाजिक उत्थान में मुख्य भूमिका निभाने वाले सामाजिक प्रतिमान 'वसुधैव कुटुम्बकम' का आभास कराते हैं। ''व्यक्ति निरे पशु रूप में जन्म लेता है। धीरे–धीरे अन्य लोगों के साथ उसमें सामाजिकता की भावना उत्पन्न होती है। इस रूप में सामाजिक पूर्णता, व्यक्ति की विकासशीलता अथवा पशु से उसके मानवीय सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया पर आधारित होती है न कि मूल प्रवृत्यात्मकता पर।'' सामाजिक प्रतिमान मनुश्य की प्रवृत्तियों का उचित आधार बनकर उन्हें समाज सापेक्ष बनाते हैं। सामाजिक प्रतिमान हमारे समाज के सभी सदस्यों पर लागू होते हैं और इसको लागू करने की समाज के सभी सदस्यों से अपेक्षा की जाती है। साहित्य में सामाजिक प्रतिमान स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं।

किसी भी युग परिवेश की कहानी इन सामाजिक मूल्यों से हीन नहीं हो सकती, इसमें सामाजिक मूल्यों का वर्चस्व सदैव रहता है, भले ही अलग–अलग दौर में इनमें परिवर्तन होता रहता है। प्रवासी साहित्यकारों को पढ़ते हुए सामाजिक प्रतिमानों को उनके साहित्य में देखा जा सकता है। कनाड़ा में रहकर हिंदी साहित्य में सृजनरत डॉ. हंसा दीप का कहानी–संग्रह 'प्रवास के आस–पास' जहाँ प्रवासी जीवन को व्याख्यायित करता है, वहीं उन सामाजिक प्रतिमानों का चित्रण भी करता है, जो भारतीय संस्कृति के नजदीक हैं।

डॉ. हंसा दीप का जन्म 1958 ई. में मेघनगर, जिला झाबुआ, मध्यप्रदेश में हुआ। उन्होंने 1990 में हिंदी में पी–एच. डी. की और भोपाल विश्वविद्यालय और विक्रम विश्वविद्यालयों के महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्य किया। इसके बाद उन्होंने न्यूयार्क (अमेरिका) की कुछ संस्थाओं में हिंदी शिक्षण करवाया और न्यूयार्क विश्वविद्यालय टोरंटो में हिंदी की कोर्स डायरेक्टर रही। वर्तमान में वे यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरर के पद पर कार्यरत हैं। उनके अब तक तीन उपन्यास कुबेर, बंद मुट्ठी व केसरिया बालम और चार कहानी–संग्रह चश्मे अपने–अपने, प्रवास में आसपास, शत प्रतिशत और उम्र के शिखर पर खड़े लोग प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी अनेक कहानियों का अनुवाद मराठी, पंजाबी व अंग्रेजी में हुआ है और भारत में आकाशवाणी पर इनका प्रसारण हुआ है। दो साझा कहानी–संग्रहों में भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी फिल्मों – हैनीबल, द ममी रिटर्नस, अमेरिकन पाई, पैनीज फ्रॉम हैवन आदि के लिए हिंदी में सब–टाइटल्स अनूदित किए। वे अनुवाद संस्थान दीप ट्रांस इनकॉरपोरेटड की अध्यक्ष रहीं। उन्होंने कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिंदी छात्रों के लिए अंग्रेजी–हिंदी की पाठ्य पुस्तकें का संपादन किया।

'प्रवास में आसपास' डॉ. हंसा दीप का दूसरा

कहानी–संग्रह है, जो 2019 में शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.) से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की भूमिका 'कथाबिंब' की संपादिका मंजुश्री ने लिखी है। इसमें पंद्रह कहानियाँ हैं, जिनमें उच्चादर्शों, अतीत की स्मृतियों, नारी जीवन का चित्रण, पारिवारिक संबंधों का चित्रण, सामाजिक बुराइयों, मानवीय सौहार्द और सांप्रदायिकता के ताने–बाने, खान–पान और जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों के द्वारा भारतीय संस्कृति के सामाजिक प्रतिमानों को दिखाया गया है।

भारतीय समाज उच्चादर्शों को मानने वाला है। भारत में धन की अमीरी की बजाए चरित्र की अमीरी को महत्त्व दिया जाता है। 'ऊँचाइयाँ'' कहानी में नायिका के ऊँचे व्यक्तित्व को दिखाया गया है –

''आज पहली बार मौका मिला है डॉ. आशी अस्थाना जी से आमना–सामना करने का। ऐसे व्यक्तित्व से साक्षात्कार करने का जिसकी आवाज़ एक आंदोलन है, स्त्री की परम्परागत छवि से एक अलग पहचान बनाने की।

हमारे दर्शकों को बताइए आशी जी, आप स्त्रियों के अधिकारों के लिए क्या कर रही हैं ?'

''मैं पूरी तरह से समर्पित हूँ इसके लिए। हमने संविधान में नयी धाराएँ जोड़ने का प्रावधान किया है। आज ही मेरी प्रधानमंत्री जी से बात हुई है। आपको पता लग जाएगा कि मैं क्या कर रही हूँ।''

''ज़रा दो लाइनों में उनके बारे में बताना चाहेंगी हमारे दर्शकों को।''

''दो लाइनों में, कैसी बात करती हैं आप! हमारे विशाल स्त्री समाज की सदियों से इस आग, इस विशालकाय समस्या को बताने के लिए दो लाइनों की नहीं, दो मिनटों की नहीं, दो युगों की ज़रूरत है

अतीत के स्मृतियों के चित्र हरा पत्ता पीला पत्ता, एक मर्द एक औरत, भिडंत, फालतू कोना, मधुमक्खी कहानी में मिलते हैं। 'हरा पत्ता पीला पत्ता' कहानी व्यस्तताओं से जीवन में आए खालीपन को दिखाती है। 'एक मर्द एक औरत' का यश पापा के साथ बिताए समय को याद करता है। 'भिडंत' कहानी में बेटी पापा को याद करती है –

''आँखों के झिलमिलाते आँसू सामने पापा की तस्वीर पर टिक जाते हैं अपना अक्स देखते हुए। पापा जो हमेशा यही कहते थे कि– ''तुम्हारे जैसी डॉक्टर का मुस्कुराता हुआ, उत्साह और उमंग वाला चेहरा देखकर मरीज की आधी बीमारी तो यूँ ही गायब हो जाएगी और बची–खुची आधी बीमारी को तुम्हारा इलाज गायब कर देगा।''

'फालतू' कहानी में सुहास अतीत की छाया से बाहर निकल आता है, जबकि 'मधुमक्खी' की हेजल सोमी को बताती है कि पिछले घर की यादें कड़वी थीं। सोमी अपने और हेजल के सबंधों को भी याद करती है।

'एक मर्द एक औरत' और 'अपने मोर्चे पर' कहानियों में पारिवारिक संबंधों का चित्रण बड़ी खूबसूरती के साथ किया गया है। 'एक मर्द और एक औरत' का यश सेतु और अपनी बहू को लेकर सोचते हुए अपने पापा के बारे में अपनी सोच को लेकर परेशान हो जाता है। उसे लगता है कि हवस ही एकमात्र चीज नहीं। सिया भी यश की सोच पर मोहर लगाती है। 'अपने मोर्चे पर' कहानी में दादा जी की बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है –

''मूर्ख बन कर जीने में खूब आनंद है। रिश्तों के हिसाब–किताब से परिवार नहीं चलते। संबंधों का जोड़–बाकी–गुणा–भाग सब कुछ उंगलियों में तो कर सकते हैं पर जीवन में नहीं।''

भिंडत, मधुमक्खी आदि कहानियों में मानवीय सौहार्द को दिखाया गया है। 'भिडंत' कहानी में डाक्टरों की इंसानियत को दिखाया गया है। डॉक्टर स्वाति इस बात को लेकर भी संतुष्ट है कि उसकी ममा की चिंता आस–पास के लोग भी कर रहे हैं और यह मानवीय सौहार्द का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'मधुमक्खी' कहानी में सोमी और हेजल का संबंध मानवीयता का उदाहरण है।

नारी की दशा का चित्रण भी है और नारी की दशा को बदलने की सोच भी दिखाई गई है –

''सदियों से होते दमन और शोशण के प्रति चेतना ने स्त्री सशक्तिकरण की लड़ाई को जन्म दिया है। हाशिए पर धकेल दी गई अस्मितओं को पुनः उनका स्थान दिलाना है। स्त्री की गरिमा को पुनः प्रतिश्ठत करने का महाभियान है यह। स्त्री का दमन पुरुश सत्तात्मक समाज में होता रहा है, जहाँ उसे दोयम दर्जे का प्राणी समझा जाता है।

रहन–सहन, खान–पान और जन्म से मृत्यु तक के संस्कार सामाजिक प्रतिमानों को स्थापित करने वाले तत्त्व हैं और डॉ. हंसा दीप की कहानियों में इनके भरपूर चित्र मिलते हैं। 'एक मर्द एक औरत' कहानी में खान–पान का खूबसूरत वर्णन है –

''पुचका?'' गोलगप्पे को पुचका कहा जाता था बंगाली में। कोलकाता वालों के लिए यह नाम पकवानों से कहीं बड़ा था जो शायद मुँह में जाकर पुच्च हो जाने से बना था। गोल–गोल करारी पूरियाँ और पुदीने का तीखा पानी, पुचका कहो या गोलगप्पे या पानी–पूरी सारे नाम खाने का उतना ही मज़ा देते।

''नहीं, पुचका तो बिल्कुल नहीं'' ज़ोर से मुँह हिलाते बोली सिया।

''दाल बाटी'' सिया जानती थी कि उन्हें दाल–बाटी बहुत पसंद है तो शायद बना रही हो। वे उसके मुँह को देखने लगे कि अंधेरे में तीर

ठीक जगह पर लगा या नहीं। बंगाल से राजस्थान पहुँच गए थे वे।

''तौबा, नहीं......नहीं......मैं आपके लिए इतना घी वाला खाना तो बिल्कुल भी नहीं बना सकती।''

सच कहती है सिया, यह उम्र रही नहीं ऐसा खाना पचाने की। सिया खाने–पीने में तला–गला कम ही बनाती थी। वैसे भी दाल–बाटी तो घी का पर्याय हो जाती है। मगर जो भी हो स्वाद तो ऐसा आता है कि नाम लो तो अरहर की दाल में गोल–गोल चूरी हुई बाटियाँ हरे धनिए की चटनी के साथ जिह्वा को तर–बतर कर देती हैं।

अब दिमाग को सावधान करके सोचना ज़रूरी था। राजस्थान से पंजाब पहुँच गयी उनकी सोच। अपने मुँह को हिलाते और बल खिलाते बोले वे – ''अच्छा! पुचका नहीं, दाल बाटी नहीं तो फिर आलू–परांठा बनाया होगा।''

'वह सुबह कुछ और थी' में खान–पान के और 'अपने मोर्चे पर' कहानी में रहन–सहन का चित्रण है। संस्कारों में जन्म और मृत्यु का वर्णन लेखिका ने किया है। 'रुतबा' कहानी में बच्चे के जन्म के समय उसके रोने को लेकर प्रसंग है –

''मनु की आवाज़ इशु से कहीं ज़्यादा तीखी थी। जितना छोटा बच्चा उतनी तीखी आवाज़। पैदा होते ही जब बच्चा रोता है तो सब लोग उसकी आवाज़ सुनने की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। खुशी के मारे कभी भी यह ख़्याल किसी के मन में नहीं आता कि पल भर पहले दुनिया में आए बच्चे में इतनी ताकत से रोने की उर्जा कहाँ से आई। उस समय तो उसका रोना कराहती माँ और बाहर खड़े रिश्तेदारों के कानों में अमृत उंडेल देता है।''

'फालतू कोना' कहानी में मृत्यु का वर्णन है –

''वह मर चुका है, सुहास अब नहीं रहा।

मरे हुए आदमी के लिए सब रोते हैं। विलाप करते हैं। क्रंदन और सिसकियों का चीत्कार होता है। भरा–पूरा परिवार मिलकर मातम मनाता है। हर दूर के रिश्तेदार के आने पर रोने की आवाज़ तेज़ होती है मानों वह आया ही है इसलिए कि घर वालों को जी भर कर रुला दे, खुद भी रो ले। आमतौर पर मौत का यही मंजर होता है परंतु यहाँ ऐसा कुछ नहीं हुआ। मौत तो हुई थी लेकिन ऐसी मौत जो शांति लेकर आयी थी। सबके दिलों को ठंडक पहुँचाती शांति।''

लेखक ने सामाजिक व्याधियों को भी दिखाया है। 'मधुमक्खी' में सोमी के माध्यम से उसने अपने बच्चों की परवरिश के लिए रखी जाने वाली बेबी सीटर के साथ लोगों के गलत व्यवहार को उजागर किया है –

''सोमी को कोफ़्त होने लगती उन लोगों की विचारधारा पर जो अपने जिगर के टुकड़े, अपने बच्चे को तो बेबी सीटर के हवाले कर देते हैं और घर की बेजान चीज़ों की चिन्ता करते हैं।''

निष्कर्ष –

संक्षेप में, डॉ. हंसा दीप की कहानियों में समाज के विविध रूपों का चित्रण है। उनके पात्र मानव के सहज रूप में विद्यमान हैं। उच्चादर्शों की स्थापना द्वारा लेखिका आदर्श की प्रस्तुति करती है। इस प्रकार लेखिका की कहानियों में यथार्थ और आदर्श का सुंदर समन्वय है।

1. मैनी, धर्मपाल तथा अन्य (संपा.), 'मानव मूल्य–परक शब्दावली का शब्द कोश', (खण्ड–5), सरूप एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 2005, पृ. – 2111
2. शर्मा, मोहिनी, 'हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य', साहित्यगार, जयपुर, 1986, पृ.– 39
3. दीप, हंसा (डॉ.), 'ऊँचाइयाँ'', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 81–82
4. दीप, हंसा (डॉ.), 'भिड़ंत', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 71
5. दीप, हंसा (डॉ.), 'अपने मोर्चे पर', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 67
6. दीप, हंसा (डॉ.), 'ऊँचाइयाँ', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 81
7. दीप, हंसा (डॉ.), 'एक मर्द एक औरत', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. –24
8. दीप, हंसा (डॉ.), 'रुतबा', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. –47
9. दीप, हंसा (डॉ.), 'फ़ालतू कोना', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 101
10. दीप, हंसा (डॉ.), 'मधुमक्खी', 'प्रवास में आसपास', शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.), 2019, पृ. – 89

दिलबाग सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो (बठिंडा)

अनुक्रमांक – A206841001

शोध निर्देशक – डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता

12

हिंदी साहित्य की नव्यतर विधाएं

डॉ0 शर्मीला यादव

सारांश –

जब हम हिंदी साहित्य के उद्‌भव और विकास पर विहंगम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि हिंदी साहित्य में अनेक करवटें बदली हैं। हिंदी के साहित्यकारों ने हिंदी के अनेक विधाओं पर चिंतन, मनन व लेखन किया है। बीसवीं शताब्दी में हिंदी की अनेक विधाओं विशेषतः(नव्यतर विधाओं) ने अनेक करवटें बदली है। उन विधाओं में लघुकथा, यात्रिका, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, डायरी, पत्र, व्यंग्य, संस्मरण, रेखाचित्र आदि विशेष चर्चित रही है। हिंदी की उक्त विधाओं पर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में चिंतन, मनन व सृजन पर्याप्त मात्रा में हुआ है। यहां हमारा ध्येय। 21 वीं सदी में विकसित विधाओं पर प्रकाश डालना है । अनेक नव्यतर विधाओं में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों का 21 वी शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में विकास के पथ पर दौड़ लगाई है। इन नव्यतर व नव्यतम विधाओं में हाइकु लंका सेदोका, चोका, हाईवन आदि को केंद्र में रखकर विचार विमर्श किया गया है।

हाइकु– हाइकु के संदर्भ में चमन लाल गुप्ता ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा हैः

"जापानी भाषा का 17 अक्षरों और 3 पंक्तियों पर आधारित यह लघुछंद मात्र छंद नहीं, बल्कि संपूर्ण काव्य दृष्टि का प्रतीक है, जिसकी जापानी भाषा में 400 पुरानी लंबी परंपरा है। यदि काव्य सुंदरतम शब्दों का सुंदरतम विन्यास है, तो निश्चय ही काव्य–विधा शब्दों का यह लघुत्तम रूप हाइकु, इस काव्य सौंदर्य के संधान की सर्वाधिक विश्वसनीय कसौटी है। कभी को मात्र 17 अक्षरों और 3 पंक्तियों में अपनी उत्कृष्ट भावनाओं को श्रेष्ठतम ढंग से व्यक्त वाला होता है ।[1] डॉ. रामनिवास मानव हाइकु की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए कहता हैः

1 सना हाइकु –
प्रेम में मैं इतना
बना हाइकु
2. मेरी कविता
अनुवाद दर्द का
दुख की पाली।[2]

हिंदी साहित्य में पद्य की केंद्रीय विधाओं के साथ–साथ हाइकु भी एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभर कर सामने आया है। अपने लघु आकार एवं उसमें भाव संवेदना व विचारों ने इसे काफी प्रयासी व लोकप्रिय बनाया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में हाईस्कूल ने स्वयं अपनी एक प्रभावी छवि अंकित कर ली है। वस्तुतः हाइकु जापान से आयोजित विधा है। हालांकि यह विधा विदेशी रूप में हमारे सामने आई लेकिन भारतीय विद्वानों ने इसे पूर्ण रूप से भारतीय बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

'हाइकु' की विकास यात्रा में अनेक भारतीय मनोतियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनमें प्रमुख हैं– रविंद्रनाथ ठाकुर, अज्ञेय, सत्य भूषण वर्मा भगवतशरण अग्रवाल, सुधा गुप्ता, नीलमेंदुसागर, रमाकांत श्रीवास्तव, सतीशराज, पुष्करणा, रामेश्वर कांबोज, 'हिमांशु' रेखा रोहतककी, हरेराम समीप, सुदर्शन रत्नाकर, कुंवर दिनेश, रचना श्रीवास्तव,कृष्ण वर्मा, गोपाल बाबू शर्मा,कुमुद बंसल ज्योत्स्ना शर्मा आदि ।

संक्षिप्तता हाइकु का प्रमुख गुण है। इस छंद की लघुता देखते हुए जापान के हाइकुकार कैनेथ यशुदा ने इसे 'एक शवासी काव्य' (One Breath Poem) है । श्रीमती पूर्वा शर्मा के 'हाइकु' की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा है – जापानी संधि नियम के अनुसार, 'होत्सु' तथा 'कु' से मिलकर बना है। जिसमें का होत्सु का अर्थ होता है 'प्रारंभिक' और 'कु' का अर्थ है 'खंडकाव्य'। इस प्रकार 'हाइकु' का अर्थ हुआ प्रारंभिक खंडकाव्य ।[3]

हाइकु अनुभूति की कविता है जो किसी न किसी सत्य को व्यक्त करती है। बाशा का कथन है कि हाइकु दैनिक जीवन की अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति हैं । ओनीत्सुरा के मतानुसार सत्य के बिना हाइकु की रचना संभव नहीं हो सकती। कुंवर बेचौन कहते है – हाइकु यह सत्रह वर्णों वाली विद्या है, जिसमे किसी न किसी सत्य का रहना जरुरी है । सत्य तुरफ–फुरत देखा या सुना[4] हो या जो सत्यक हाइकुकार के मन में एक दम कौंधा है । पूर्ण शर्मा के अनुसार, 'हाइकु' समिक अनुभूति का काव्य है जिसमे शब्दों की मितव्ययता सहज और सरल संकेतो के द्वारा हाइकुकार अपनी चरम अनुभूति को चित्रांकित करता है ।[5]

'हाइकु' में शैल्पिक उपादानो का प्रयोग किया जता है । इसमें अलंकारों, शब्द शक्तियों, प्रतीकों, बिम्बों, कहावतों मुहावरों

आदि की प्रस्तुति भी की जाती है । 'हाइकु' के फतिमय उदाहरण दृष्टव्य है ।

बर्फ से ढंके (5)

शिकारों का सौन्दर्य (7)

शाश्वत गीत (5)

(भगवतशरण अग्रवाल)

सूखी पत्तियां (5)

पेड़ के नीचे पड़ (7)

चरमराती । (5)

(सुधा गुप्ता)

वस्तुतः हाइकु भले ही एक जापानी विधा है लेकिन आज यह पूर्ण रूप से भारतीय बन चुकी की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

ताँका जापानी काव्य शैली का एक रूप है । किसी समय ताँका जापानी अभिजात्य वर्ग का पसंदीदा कविता रूप था । किसी समय ताँका प्रतियोगिताएँ राज्य सभाओं में होती थी । ताँका के वर्तमान रूप में क्रमशः 5+7+5+7+7 के क्रम में कुल 31 वर्ण और पाँच पंक्तियाँ होती है द्य ताँका के दो भाग होते हैं – 5+7+5 वर्ण तथा 77 वर्ण होते हैं । ताँका अनुभव की कविता है, जिसमे उपमान योजना उसे और भी गहन और संप्रेषणीय बना देती है । हिंदी में मौलिक ताँका 2000 से लिखे जाने लगे ।डॉ. सुधा के दो ताँका संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'बाबूना जी जाएगी' 'कोरी माहि के दिए'। उर्मिला अग्रवाल के दो ताँका संग्रह प्रकाशित हुए हैं । 'अश्रु नहाई हंसी' यायावर मन 'सात छंद वाली में'! रेखा से हल्की का 'अथ से इति' शीर्षक तांका संग्रह प्रकाशित हुआ है । सन् 2012 में विश्व के 29 कवियों के 600 तान्काओ का एक संग्रह प्राकशित हो चुका है जिसके सम्पादक है –रामेश्वर कम्बोज हिमांशु तथा भावना कुंअर । मिथिलेश कुमारी मिश्रा का तांका संग्रह 'मुखर हुए शब्द' प्रकाशित हुआ है । ताँका के अन्य रचनाकारों में 'यावना कुंवर, ज्योत्सना शर्मा, कृष्ण वर्मा, दिलबाग सिंह, अनीता, ललित, पूर्णिमा राय आदि । टांका के कर्तव्य उदाहरण दृष्टव्य हैं –

(1)धुन है पहचानी

हे विहंगिनी

तुझ सा ही आनंद

पाएगा मेरा मन । (कुमुद बंसल)

(2)रंग –बरंगे

फूलो की ये चादरी

कहाँ से हो निकली ।

ओ! चंचल तितली

(भावना कुंअर)

सेदोका

'सेदोका' जापान में आठवीं शताब्दी में प्रचलित हुआ । बाद में इसका प्रचलन कम होता गया । सेदोका कविता प्रेमी या प्रेमिका को संबोधित होती थी । यह 5–7–7, 5–7–7 की दो आधी रचनाओ से मिलकर बना था, जिसे त्तोंता कहा जाता था । ये आधी –अधूरी कविताएँ मिलकर एक सेदोका बनती थी । ये दोनों याग प्रश्नोत्तर रूप में या संवाद के रूप में भी हो सकते थे ।

हिंदी में 'अलसाई चाँदनी' 'पहला 'सेदोका' संग्रह है । सन् 2012 में डॉ. उर्मिला अग्रवाल के 'बुलाता' है कदम्ब' प्रकाशित किया । रमाकांत श्रीवास्तव का जीने का अर्थ सन् 2013 में प्रकाशित हुआ । सन् 2014 में सुधा गुप्ता का 'सागर को रौंदने' प्रकाशित हुआ । डॉ. सतीश राज पुष्करना के अनुसार सेदोका काव्य की एक विधा है । इसमें कवित्व का होना जरुरी है । 6

सदोका का एक उदाहरण दृष्टव्य है।

पतंगा नहीं

रोशनी की खातिर

जो मैं मिट जाऊं,

किरण बनू

रंगीन धरा पर

बिछ उजास भरूं ।

(पुष्पा मेहरा) 7

चोका

'चोका' पहली से तेरहवीं शताब्दी में जापान में महाकाव्य की कथा शैली रही है । 'चोका' गाय जाते है । इसका वाचन उच्च स्वर में किया जाता रहा है । यह प्रायः वर्णात्मक होता है । इसका नियम इस प्रकार है :–

5+7+5+7+57–5, 7+5, 7+5, 7+5, 7+5, 7+5, 7+5, 7 अंत में तांका जोड़ा जाता है । भावना कुंवर द्वारा संपादित 26 रचनाकारों का उजास साथ रखना संग्रह सन् 2016 में प्रकाशित हुआ । सुधा गुप्ता का परिंदे कब लौटे भी चोका का अद्भुत संग्रह है । इस संग्रह में मिटटी के प्रति तड़प, नारी मन की घरपदहर, प्रकृति चित्रण, विरह–मिलन के निम्न आदि को देखा जा सकता है । इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है दृ

याद आते हैं

बचपन के दिन

खेलते हुए
लड़ना–झगड़ना
कुट्टी करना
फिर एक हो जाना
गें ताड़ी–खेलते
गिर पढना
गिर के संभलना
मिटटी के टीले
दूर देश की
कहानी यह सुननारात घिरे तेज ।
(प्रियंका गुप्ता)[8]

'हाइबन'

'हाइबन' जापानी शब्द है जिसका अर्थ है – 'हाइकान्य' 'बन गद्य'! इस विधा में गद्य व काव्य का संयोजन होता है । 'हिमांशु' का कथन है – हाइबन लेख या कहानी से हटकर एक विशेष सृजनात्मक कृति है जिसे अंतर्मन की यात्रा भी कहा जा सकता है । इसमें जिंदगी के पल–पल अहसासों का समावेश होता है जिसमे सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, शारीरिक व बौद्धिक अनुभव शामिल होते हैं । हाइबन में प्राकृतिक दृश्य, किसी व्यकी विशेष की पीड़ा, दिनचर्या डायरी, आदि का समावेश रहता है ।

सन् 2014 में सुधा गुप्ता का 'सफर' के छल नामक संग्रह प्राकशित हुआ है । हरदीप संधु, कमला निखुर्जा, ज्योत्सना शर्मा, प्रियंका गुप्ता, स्मृति सीमा, रचना श्रीवास्तव आदि के 'हाइबन' अनेक पुत्र–पुत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं । डॉ. हरदीप कौर 'सन्धु गुलाब' सुदृढ़ स्तम्भ आदि चर्चित 'हाइबन' हैं ।

यहाँ पर उल्लेखनीय हैं कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तथा 21 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक जीवनी, को नव्यतर विधाएँ मानकर आलोचना – प्रत्यालोचना की जा रही है । लेकिन उक्त विधाएँ अब स्थापित हो चुकी हैं । अतः इन विधाओं को स्थापित विधाओं को नव्यतर विधाओं के अंतर्गत रखना बनायी है । इस प्रपत्र में रेखांकित नव्यतर विधाएँ, आज के सन्दर्भ में, सटीक व नव्यतर हैं। इसी मानदंड के आधार पर मैंने उक्त विधाओं को नव्यतर खाते में रखा है । नवोदित साहित्यकार इन विधाओं को लिखने में विशेष रुचि रख रहे हैं । लघुकथा की भांति उक्त विधाओं का भविष्य उज्ज्वल है ।

सन्दर्भः–

1. रामनिवास मानवः सृजन के आयाम, पृ0 145
2. रामनिवास मानवः सृजन के आयाम, पृ0 145
3. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 81
4. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 82
5. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 82
6. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 87
7. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 64
8. हरिगंधा जुलाई, 2017, पृ0 66

डॉ0 शर्मीला यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आई. बी. (पी. जी.) कॉलेज,
पानीपत (हरियाणा)

13

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री का संघर्ष और द्वंद्व

अनु, ज्ञानी देवी गुप्ता

सारांश –

नब्बे के दशक में जिन रचनाकारों ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई और जिन्हें पाठकों ने भी हाथों–हाथ लिया, मैत्रेयी पुष्पा का नाम उनमें प्रमुख है। बहुत समय नहीं बीता, और आज वे हिन्दी साहित्य–परिदृश्य की एक महत्त्वपूर्ण उपस्थिति हैं। उन्होंने हिन्दी कथा–धारा को वापस गाँव की ओर मोड़ा और कई अविस्मरणीय चरित्र हमें दिए। इन चरित्रों ने शहरी मध्यवर्ग को उस देश की याद दिलाई जो धीरे–धीरे शब्द की दुनिया से गायब हो चला था। 'इदन्नमम्' की मंदा, 'चाक' की सारंग, 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा और 'झूलानट' की शीलो, ऐसे अनेक चरित्र हैं जिन्हें मैत्रेयी जी ने अपनी समर्थ दृश्यात्मक भाषा और गहरे जुड़ाव के साथ आकार दिया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी लेखनी से जिस बेबाकी तौर से इस भ्रष्ट, अश्लील, पुरुषप्रधान समाज का चित्रण किया है तथा नारी संबंधी समस्याओं का उजागर तो किया तथा ही उनका निवारण भी अपनी लेखनी से व्यक्त किया है, इसी अनोखे लेखन को पाठकों ने सराहा है। लेखन की सरल, सुगमता, सौंदर्यता स्वरूप उन्हें अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

बीज शब्द– संघर्ष और द्वंद्व, अधिकारों के प्रति संघर्ष, जीवन संघर्ष, कर्तव्य व अधिकार का संघर्ष

विषय–विश्लेषण

कथा साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक और नैतिक समस्याओं को नवीन दृष्टि से देखा और चित्रित किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने मध्य वर्गीय परिवार में जूझती नारी के संघर्ष और द्वंद्वको नवीन रूप में प्रस्तुत ही नहीं किया अपितु उसमें नयी दिशा भी दी है। मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यासों में विद्रोह के साथ सामन्तीय संस्कारों, आर्थिक, पारिवारिक संबंधों में नवीन वैचारिक दृष्टि को अपनाया है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में लोक संस्कृति, संस्कार आदि का अंकन भी किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में समय को ध्यान में रखते हुए उसमें उत्पन्न संघर्ष और द्वंद्वको चित्रित किया है। इनकी रचनाओं 'स्मृति दंश'(1990), 'बेतवा बहती रही' (1993), 'इदंन्मम' (1994), 'चाक' (1997), 'झूलानट' (1999), 'अल्मा–कबूतरी' (2000)। 'अगनपाखी, विजन' (2002), 'कबूतरी कंडुल बसै' (2002), 'कही ईसुरी फाग' (2006) मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में स्त्रियाँ विषम परिस्थितियों में सफलतापूर्वक संघर्ष करके अपने वर्चस्व को स्थापित करती है। ये स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष और द्वंद्वके प्रति पूर्ण रूप से सजग हैं।

इस सृष्टि का शाश्वत सत्य है। प्रकृति में विभिन्न स्तरों पर यह संघर्ष निरंतर चलता रहता है। प्रकृति के अनमोल रत्न मानव का जीवन भी संघर्ष का ही दूसरा नाम है। मानव जीवन में संघर्ष विभिन्न रूपों पर दिखाई देता है। इसे हम भीतरी एवं बाहरी, शारीरिक एवं मानसिक आदि वर्गों विभक्त कर सकते हैं। बाहरी एवं शारीरिक संघर्ष के अंतर्गत मनुष्य सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषिक आदि जैसे विभिन्न स्थितियों से जूझता रहता है। वहीं दूसरी ओर उसके मन के भीतर ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, स्वार्थ जैसे नकारात्मक भावों और दया, प्रेम, करुणा, परोपकार सहयोग जैसे सकारात्मक भावों में निरंतर संघर्ष चलता रहता है।

नयी कविता प्रमुख हस्ताक्षर श्री जगदीश गुप्त के शब्दों में –

सच हम नहीं , सच तुम नहीं
सच है महज संघर्ष ही।''

द्वंद्वभी मानव जीवन की एक अनिवार्य स्थिति है। द्वंद्वका संबंध अवसरों पर मानव द्वंद्व या दुविधा ग्रस्त हो जाता है। वह सही–गलत, उचित–अनुचित, सार्थक–निरर्थक,करणीय–अकरणीय का निर्णय नहीं कर पाता। वह दो पाट के बीच फंसे गेहू के दाने के समान हो जाता है। जो चाहकर भी साबुत नहीं बच पाता।

उपन्यास 'अगनपाखी' में मैत्रेयी पुष्पा ने नायिका भुवनमोहिनी के माध्यम से संघर्ष की स्थिति को उभारा है। भुवन मोहिनी का विवाह आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण मानसिक रूप से पागल लड़के के साथ करवा दिया जाता है। भुवन मोहिनी के पिता की मृत्यु के बाद माँ अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विक्षिप्त लड़के से भुवन–मोहिनी का विवाह तय कर देती है। इस बात का पता भुवन को नहीं था ना ही उससे पूछा गया। सुसराल जाने के बाद उसे इस बात का पता चलता है तो वह दोबारा सुसराल जाने से मना कर देती है। यही से उस के संघर्ष की स्थिति जन्म लेती है। नायिका कहती है कि ''ये गहने धरो चाहे लौटा दो, लाखों

के होगें। पर एक खरी बात सुन लो, भले टका की सही। मैं वहाँ जाने वाली नहीं।''

'अगनपाखी' में नायिका भुवन अपने हक के लिए भी लडती हुई दिखाई पड़ती है। अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह जमीन–जायदाद में भी अपनी दावेदारी के लिए अर्जी दे देती है।

''कचहरी से अर्ज है कि अपने पति की जायदाद का हक मुझे सौंपा जाए । मैं कुँवर अजय सिंह की हकदारी पर सख्त एतराज करती हूँ।''

उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री को अनेक प्रकार के संघर्षों के गुजरना पड़ता है, पीड़ाएँ सहनी पड़ती है, इतना सब होने पर भी वह अपने पुत्र को शिक्षा दिलवाती है।

''विद्या का दामन थामा है तो बेबसी और बदंरगतों (विद्या) से गुजरना होगा। माँ के घावों पर जैसे रामसिंह की छोटी–छोटी उँगलियों ने स्याही लेप दी हो। कटे–फटे बदन के चलते भी मोरनी–सी नाची फिरती। समय जाँच रहा था – औरत में कितनी ताकत है। भूरी समझ रही थी, बेटे का उजाले–भरा रास्ता माँ की देह से गुजर रहा है।''

नायिका 'अल्मा' अपने पिता की इच्छा पूरी करते–करते निरन्तर शोषित और पीड़ित होती गई। पिता के सपने के कारण वह अपने आपको अपने अस्तित्व को मिटाती–बर्बाद करती चली गई।

उपन्यास 'इदन्नममं में पात्र कुसुमा अपनी वैवाहिक जीवन से खुश न होकर स्वयं अपने ससुर को अपने जीवन साथी के रूप में चुनती है। कुसुमा तर्क देती हुई कहती है कि पति के घर में यशपाल से संबंध बना ही नहीं तो फिर इस घर में कोई भी संबंध किसी से नहीं मेरा। वह पूर्ण रूप से अपने संघर्ष को दर्शाती हुई कि उस ने जो भी किया ठीक किया है।

''रही हिस्सा–बाँट की बात, सो निसाखातिर रहां, हम तुम्हारा कुछ नहीं बँटायेंगे। हमारे कुँवर के पिता का तो तुम्हारे हिस्से से कई गुना बड़ा हिस्सा है, घर, मैं और खेत मैं। फिर छोटे हिस्से पर क्यों जायेंगे हम?''

''कस्तूरी कुण्डल बसै'', मैत्रेयी पुष्पा का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसमें लेखिका ने अपनी जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं को प्रस्तुत किया है। लेखिका ने इस उपन्यास में अपनी माँ कस्तूरी के जीवन संघर्ष को दिखाया है। यह उस समय की बात है जब स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। उन्हें धान का पौधा कहा जाता था कहने का तात्पर्य स्त्री का जहाँ जन्म होता है और दूसरी जगह जहाँ उसे शादी कर भेज दिया जाता है। तब उसे वहाँ पूर्ण रूप से अपने आप को व्यवस्थित करना पड़ता है। कस्तूरी इन बातों से सहमत नहीं थी कि स्त्री का जीवन का आधार यही है कि शादी करे, बच्चे पैदा करे, खाये–पीये और पूर्ण रूप से अपने आप को उस वातावरण में ढाल लें।

'कहीं ईसुरी फाग' उपन्यास की नायिका ऋतु के पिता की मृत्यु के पश्चात् भी वह इतना पढ़ लिख पायी। ऋतु और उसकी माँ ने कभी भी परिस्थितियों से समझौता नहीं किया अपितु सदैव संघर्ष ही किया। वह अपनी बेटी को शिक्षा दिलवाकर उसे उच्च शिखर पर देखना चाहती थी।

''मेरी बेटी तो रिसर्च कर रही है। पीएच.डी. के लिए रिसर्च''

उपन्यास 'चाक' मैं न्याय के लिए संघर्ष की कथा है। नायिका रेशम और उस की फुफेरी बहन का रिश्ता एक ही जगह होता है। किन्हीं कारणों से रेशम के पति की मृत्यु हो जाती है। और रेशम विधवा होने के बाद गर्भवती होती है। सास के सभी आग्रहों को ठुकराने के बाद उसकी बहन अपने घर आने को कहती है। किन्तु वह मना कर देती है। रेशम की मृत्यु करवा दी जाती है। सारंग उसे न्याय दिलवाना चाहती है उसे पता है कि वह मृत्यु नहीं हत्या है।

''काश यह मौत होती। मगर यह हत्या। पतित स्त्री, गर्भिणी औरत की हत्या।''

'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग की बहन की हत्या ससुराल वाले कर देते हैं। सारंग उन सबको सजा दिलवाने के लिए संघर्ष करती है। वह यह भी चाहती है इस सबमें गाँव वाले उसका साथ दें। ''मेरे ससुर गजाधर सिंह, चचिया ससुर खूबराम, ग्राम प्रधान फतेसिंह, पुराने जमींदार नंबरदार, ग्रामसेवक भवानदास, पंडित चरनसिंह से लेकर ऊंची–नीची कौमों के तमाम बूढ़े–बड़े मासूम क्यों रह गए?इनकी जिह्वा क्यों लकड़ा गई?''

'झूलानट' में मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास की नायिका शीलो साधारण स्त्री है जो गाँव में रहती है। नायिका शीलो परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेकती बल्कि उसका सामना करती है। शीलो अपने वैवाहिक जीवन से खुश नहीं है क्योंकि उसका पति हमेशा उसकी उपेक्षा करता रहता है। पति का मन परिवर्तित करने के लिए निरन्तर संघर्ष करती है। वह अनेक तप, जप करके उसके मन में अपना स्थान बनाना चाहती है लेकिन सभी प्रयास विफल हो जाते हैं। धीरे–धीरे वह अपने आपको घर के अन्य कार्यों में मन रमा लेती है। अब वह पति के प्रति प्रेम–भाव न होकर बल्कि अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है। अब वह घर के पूरे कर्तव्य व अधिकार को अपने हाथ में ले लेना चाहती है।

उपन्यास 'विजन' में नायिका नेहा शिक्षित युवती है। नेहा आँखों की डॉक्टर है। परिवार में पति और ससुर भी इसी व्यवसाय से संबंधित है। पति और सुसर ने मिलकर अपना 'आई सेंटर' भी खोल

रखा है

जिसका महत्व केवल अपनी जेबें भरना है। नेहा इस बात पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है तो वह उसके लिए अनेक रूकावटें पैदा करते हैं। नेहा अपनी परिस्थितियों से समझौता तो कर लेती है पर उसका संघर्ष जारी रहता है –

''मैं अकेली रह गई, निपट अकेली –––– इस घर में न मुड़ने वाले कानून, इस घर की मालकिन के मितभाषी, कठोर नियम, इस घर के बेटे का संस्कारित व्यक्तित्व शौर शरण आई सेंटर को वारिस के वारिस की जरूरत, एक चक्रव्यूह बन गया आभा दी, नेहा ने सजर्री के कितने ही दाँवपेंच, स्टैप्स और रुल्स सीखे हों, इस व्यूह के भेदन में अभिमन्यु की तरह ही मारी गई।''

उपन्यास 'अगनपाखी' में चंदर की नौकरी ठाकुर अजय सिंह के सतत प्रयास द्वारा लग जाती है। इसके बदले वह अपने भुवन का विवाह अजय सिंह के भाई से करवा देते हैं। माँ बड़े पैसों के चक्कर में भी आकर भुवन का विवाह करवा देती है। भुवन भीतर ही भीतर इस द्ंवद्वसे जूझ रही है। अपनी किस्मत को कोसते हुए कहती है कि जिससे प्यार करती थी उससे शादी नहीं हुई और जिससे शादी हुई है उससे मैं प्यार नहीं करती। वह अपने ससुराल में खुश नहीं है ना ही उनसे किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर पा रही है। ससुराल में सभी भुवन को समझाते हैं कि वह इस पागल को एक बच्चे की तरह समझ कर पाल लें, किन्तु भुवन को इस विषय में सभी बातें खोखली प्रतीत होती है।

उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' की नायिका अल्मा का द्ंद्वघर की परिस्थितियों से संबंधित है। पिता का मृत्यु और प्रेमी से दूर हो जाने के कारण माँ अल्मा को समाज में रहने के लिए सभ्य व सुशिक्षित बनाना चाहती है। पिता की कामना थी कि वह अल्मा को पढ़ा–लिखाकर अपने जीवन को सही दिशा दें।

अल्मा के पिता की मृत्यु पुलिस व सहयोगी कम्र्चारियों ने की। अल्मा के मन में पुलिस व कर्मचारियों के प्रति घृणा व आक्रोश भरा हुआ था। अल्मा कहती है कि कबूतर होना कोई अपराध तो नहीं है पर इस अपराध की सजा मेरे पिता को क्यों मिली। अल्मां के मन में क्रोध ही उसका द्वंद्वबन गया है। वह अपने परिवार के प्रति हुए अन्याय के लिए प्रतिशोध लेना चाहती है जो सम्भवतः उसके लिए उत्तरदायी है ''आप जानते हैं मैं यहाँ क्यों रुकी हुई हूँ?आप समझते हैं कि मैं जिंदा भी क्यों हूँ?बड़ी सीधी बात है, आप लोगों ने मेरी दुनियाँ उजाड़ी है, मैं आप को उजाड़े बिना नहीं मरूँगी। मैं सबको बता दूंगी कि पाप कहाँ पलता है? अपराध कौन लोग करते हैं?साताने और मारने ठेकेदार कौन हैं?मेरे पिता ने इन्हीं बातों से समझौता नहीं करना चाहा था, पर इतना तो समझती हूँ कि हमारे लिए क्या गलत है, क्या सही?

निष्कर्ष

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने सभी उपन्यासों में स्त्री पात्र के जीवन में आई स्थिति–परिस्थिति, घटनाओं में द्वंद्व को चित्रित किया है।मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यासों के माध्यम से मध्य वर्गीय परिवारों में मूल्य–विघटन की स्थिति को चित्रित किया है। उपन्यासों में नारी अनेक संघर्ष व द्वंद्वसे जूझती नजर आती है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी के वर्चस्व के साथ–साथ नवीन सोच, विचार, संघर्ष, द्वंद्व को दृष्टिगत किया है।

संदर्भ ग्रन्थः–

1 अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन,पृष्ठ 71

2 वही, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सन 1999, पृष्ठ 20

3 आगनपाखी ,मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 77

4 अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ,पृष्ठ 75

5 कस्तूरी कुंडल कुंडल बसे, मैत्रेयी पुष्पा , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सन 2002, पृष्ठ 3030

6 चाक ,मैत्रेयी पुष्पा , राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,पृष्ठ 22

7 झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 113

8 विजन, मैत्रेयी पुष्पा , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली,सन 2001 ,पृष्ठ 133

9 आंगनपाखी ,मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 77

10 स्मृति दंश,मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 88

शोधार्थी अनु
पी.एच–.डी.(हिन्दी)
हिन्दी– विभाग
गुरुकाशी विश्वविद्यालय,
तलवंडीसाबो,बठिंडा(पंजाब)

भोध निर्देशक–ज्ञानी देवी गुप्ता
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी– विभाग
गुरुकाशी विश्वविद्यालय,
तलवंडी साबो,बठिंडा (पंजाब)

ANU
D/O Sushil kumar
Bhadra Bazar,Fariya wali Gali,Gali no.-4,sirsa,Haryana
Pin.n.-125055
Email-anurana02929@gmail.com.
Mobil.n.-9354709797

14

महर्षि वाल्मीकि और राम काव्य के कालजयी रचनाकार

प्रियंका

सारांश–

भारतीय वाङ्मय में महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण को आदिकाव्य माना जाता है तथा महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि माना जाता है। वाल्मीकि रामायण में सांकेतिक रूप से चतुर्थ वर्ग या परमार्थ का उल्लेख अक्षय पद, परम, परमगति, उत्तमगति आदि के रूप में किया गया है। संसार में जो कुछ मिथ्या है वही दुःखमय और बन्धन रूप है। मिथ्या से अपने आप को दूर कर लेना ही सत्यपथ पर आरूढ़ हो जाना है। यह सत्य ही परमगति तक पहुँचाता है। वाल्मीकि की यह मान्यता परवर्ती दर्शनों में किसी न किसी रूप में पल्लवित हुई है क्योंकि तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस् का अधिगम अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। ''यह तत्त्वज्ञान ही सत्य है जो कि मिथ्यात्व के अन्धकार को मिटाकर उदित होता है। रामायण में इसी सत्य की प्रतिष्ठा है।''[1]

रामायण में वाल्मीकि जी ने दैववाद एवं पौरूषवाद दोनों का ही सामंजस्य दर्शाया है। रामायण में सीता कहती है कि ''जो कायर और पराक्रमविहीन है वही दैव के सहारे रहते हैं। किन्तु आदरास्पद शक्तिमा पुरूष दैव की उपासना नहीं करते। जो अपने पौरूष से दैव को दबाने में समर्थ है वह पुरूष दैव के द्वारा कार्य में बाधा पड़ने से कभी हताश होकर नहीं बैठता।''[2] इस प्रकार वाल्मीकि को कोरा दैववादी न कहकर पुरूषार्थ–विश्वासी और दोनों ही पक्षों के समन्वय का प्रवक्ता कहा जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि ने जीवन और जगत के सम्बन्ध में भी यथार्थपरक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने नगर, पथ, वन, पर्वत तथा पशु–पक्षियों के विषय में जो कुछ भी कहा है, वह सभी कुछ उस समय की परिस्थितियों के अनुसार है। एक अन्य स्थान पर आदिकवि की यथार्थवादी दृष्टि के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''रामायण के अयोध्याकाण्ड में कौशल्या तथा कैकेयी के सम्बन्ध में और राम द्वारा सीता आदि को दिए उपदेश में मानव–प्रकृति का सूक्ष्म परिज्ञान पाया जाता है।[3]

रामायण एक ऐसा ग्रन्थ भी है जो जीवन में संघर्ष करने की प्रेरणा देता है तथा परिस्थितियों का सामना करने के लिए भी दार्शनिक सन्देश देती है। इस विषय में योगिराज अरविन्द कहते हैं कि–

''भारत के सांस्कृतिक मानस को ढालने में वाल्मीकि की कृति ने प्रायः एक अपरिमेय शक्ति से युक्त साधन के रूप में कार्य किया है इसने राम और सीता जैसे या फिर हनुमान, लक्ष्मण और भरत सरीखे पात्रों के रूप में अपने नैतिक आदर्शों की सजीव मानव प्रतिमूर्तियों को उसके सम्मुख चित्रित किया है ताकि वह उनसे प्रेम कर सके और उनका अनुसरण कर सके, राम और सीता को तो इतनी दिव्यता के साथ तथा मूल सत्य की ऐसी अभिव्यक्ति के साथ चित्रित किया गया है कि वे स्थायी भक्ति और पूजा के पात्र बन गए हैं। हमारे राष्ट्रीय चरित्र के सर्वोत्तम और मधुरतम तत्त्वों में से बहुतों का गठन इसी ने किया है और इसी ने उसके अन्दर उन सूक्ष्मतर और उत्कृष्ट पर सुदृढ़ आत्मिक स्वरों को और उस अधिक सकुमार मानव प्रकृति को उद्बुद्ध तथा प्रतिष्ठित किया है जो सद्गुण और आचार–व्यवहार के प्रचलित बाह्य अंगों से कहीं अधिक मूल्यवान् वस्तुएँ है।''[4] इस प्रकार रामायण का सन्देश है कि राष्ट्रीय चरित्र के सर्वोत्तम और मधुरतम तत्त्वों के गठन करने वाले सूत्रों को सहेजा जाए क्योंकि इनके अभाव मानवता का अस्तित्व संदिग्ध हो जाता है।

भक्ति काल में भी ऋषि वाल्मीकि की तरह विभिन्न संत कवियों जैसे– सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास आदि ने भी अपने–अपने काव्यों में श्रीराम को स्थान दिया है। इन्होंने राम का चरित्र–चित्रण करके भक्तिकाल में एक नई धारा का सूत्रपात किया, जिसे रामकाव्य धारा कहते हैं। रामकाव्य धारा में सबसे पहले कबीरदास जी आते हैं। उन्होंने यदि किसी के प्रति आभार, उदारता, स्नेह या स्वीकृति प्रदर्शित की है तो वह वैष्णवों के प्रति ही की है। कबीरदास जी की साखी एवं दोहों में रामायण का जिक्र तो नहीं है किंतु राम–भक्ति अवश्य मिलती है। वे कहते हैं कि–

''राम विवोगी ना जिवे, जिवै त बौरा होइ।''[5]

कबीरदास जी वैष्णवों की भांति राम के अवतारी रूप को नहीं स्वीकारते। उनके लिए जीवन और मृत्यु के चक्र में फंसा हुआ जीव ब्रह्म नहीं हो सकता और न ही ऐसा राम मोक्ष दे सकता है। इसीलिए कबीरदास जी निर्गुण राम को भजने का उपदेश देते हैं। राम का नाम हिन्दु–मुसलमानों के लिए एक समान पूजनीय है। उसी का नाम जपकर सभी लोग भव सागर के पार जा सकते हैं। अतः कबीर के राम का स्वरूप कोई भी हो उसे प्रेम द्वारा पाया जा सकता है। वह अपने भक्तों के सुख–दुख की पूरी खबर रखता है। उसे किसी रूपधारण करने की आवश्यकता नहीं है। वह परम प्रेम स्वरूप

हो जाता है। इसी भावभूमि पर पहुँच कर साकार और निराकार एक हो जाते हैं तथा कबीर का राम ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

इस प्रकार आज के सन्दर्भ में कबीरदास जी की भक्ति–भावना अधिक प्रांसगिक है। वे मानव–मानव की समता और एकता के पक्षपाती हैं। उन्हें वर्गगत या जन्मजात ऊँच–नीच की भावना से तीव्र घृणा है। वे मानव कल्याण हेतु प्रेम, भक्ति और सदाचार के द्वारा भगवान की प्राप्ति का सन्देश देते हैं। इस सन्देश के लिए हिन्दु–मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र सब बराबर हैं। अतः मानव को भगवान के रूप में देखना ही कबीर दर्शन का लक्ष्य है।

तुलसीदास भी रामकाव्य के कालजयी रचनाकार माने जाते हैं। उनकी 'रामचरितमानस' की रचना ऐसे समय हुई थी, जब शासकों को जनता के दुःख–कष्टों की जरा भी परवाह नहीं थी। धन ही श्रेष्ठता का मानदंड था। धार्मिक कट्टरतावाद ने समाज में अराजकता फैला रखी थी। उस समय के समाज को जाँचने परखने के बाद तुलसी ने समाज को निराशा, दरिद्रता, सांप्रदायिकता, ऊँच–नीच व छुआछूत आदि से मुक्त करने हेतु अपने काव्य में कलिकाल का वर्णन कर 'रामराज्य' की परिकल्पना को सामने रखा। राम के शक्ति शील और सौंदर्ययुक्त रूप को स्थापित कर शासकों के अत्याचारों से प्रजा को भय मुक्त किया। जिसके कारण 'रामराज्य' की आदर्श कल्पना ने प्रजा को राजा के अत्याचारों के प्रति सचेत कर दिया।

समन्वय भी तुलसी साहित्य की मुख्य प्रवृति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि ''तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विशाल बुद्धि को लेकर उत्पन्न हुए थे। भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर सामने आया हो। –––– उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंतन का, ब्राह्मण और चांडाल का, पंडित और अपंडित का समन्वय, रामचरितमानस के आदि और अन्त दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयास है।''[6]

अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी का साहित्य समाज का पथ प्रदर्शक रहा है। उनकी समन्वय भावना के कारण ही भारतीय संस्कृति परिपुष्ट हुई, अंधविश्वास कम हुए, मानवता का दीप जला, संघर्ष कम हुए, ईश्वरीय सूक्ष्मता के दर्शन हुए। उनके समन्वयकारी काव्य पर मोहित होकर ही डॉ0 ग्रियर्सन ने उन्हें गौतम बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक घोषित किया।

सूरदास जी ने अपने दोहो में राधा–कृष्ण की भक्ति के साथ–साथ राम–भक्ति के दोहो का भी वर्णन किया है। वे भी रामकाव्य के कालजयी रचनाकार माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त ''तुलसी के जीवन–दर्शन में वाल्मीकि से जो भिन्नता दिखलाई पड़ती है उसका मुख्य आधार है उनकी भक्ति–भावना। यह भक्ति–भावना वाल्मीकि में भी है, परन्तु यह एक आदर्श महापुरूष के प्रति श्रद्धा के रूप में ही दिखाई पड़ती है। उसमें ईश्वर और अवतार–विषयक जो अंश हैं वे प्रायः प्रक्षिप्त माने गए हैं। तुलसी ने अपने काव्य–नायक को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना है और वाल्मीकि ने पुरूषोत्तम, परन्तु हम यह देख चुके हैं कि अपने राम का चित्रण करते हुए प्रायः उन्हें उस सीमा तक प्रतिष्ठित कर देते हैं कि वे असाधारण प्रतीत होने लगते हैं। यही असाधारणता आगे चलकर दार्शनिक विचार–धारा में पल्लवित होने वाली परब्रह्म की कल्पना को साहित्य के साथ संयोजित कर देने में सहायक हुई है।''[7]

वाल्मीकि जी ने अपने काव्य में काव्यदर्श की चर्चा या विवेचन नहीं किया है, फिर भी उनके काव्यादर्श का अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने उदात्त भावों की स्वच्छन्द अभिव्यंजना की है। उनकी संगीतात्मक ''तंत्रीताललय समन्वित'' कथाशैली प्रचार का साधन बनी और 'लवकुश' या 'कुशीलव' के द्वारा आदि काव्य का प्रारंभिक प्रसार हुआ। उनके काव्य में मानव–आकृतियों और प्रकृतियों के सुन्दरतम चित्र है, जीवन–प्रवाह की रोचक और रोमांचक घटनाएँ हैं, कथन में वक्रता और विविध भंगिमाएँ हैं, अलंकारों और अनुप्रासों की छटा है। दूसरी और अमंगल, शुभ और अशुभ, धर्म और अधर्म तथा पुण्य और पाप का विवके भी है– यही उनके काव्य का उपदेश पक्ष है।

तुलसी ने अनेक काव्यादर्श को स्पष्ट रूप में बतलाया है (जिसे 'कथाशिल्प' अध्याय के अंतर्गत उनकी 'प्रस्तावना' और 'उपसंहार' के विवचन में प्रकट किया गया है)। इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसी के काव्यादर्श अथवा उद्देश्य में वस्तुतः अन्तर नहीं है, जो अन्तर है वह शैली के कारण प्रतीत होता है। दोनों का ही काव्य 'चरितकाव्य' है और आदर्श चरित्र व चरित्रों की स्थापना के द्वारा धर्मोपदेश भी दोनों का ही लक्ष्य है।

महर्षि वाल्मीकि और तुलसी की अभिव्यंजना पद्धति की और ध्यान दे तो पाया जाता है कि वाल्मीकि की साहित्यिक भाषा परिष्कृत है तथा तुलसी की भाषा में जनतत्त्व अधिक हैं। तुलसी की भाषा में तद्भव शब्दावली, बोलियों एवं लोकोक्ति तथा मुहावरों के प्रयोग के कारण उनकी भाषा जनभाषा या राष्ट्र भाषा का आदर्श प्रस्तुत करती है। इसके अतिरिक्त ''यदि वाल्मीकि रामयण

उपदेश–शैली से दूर रहने के कारण काव्य–धर्म का अधिक निर्वाह करती हुई दिखलाई पड़ती है तो मानस उपदेश–शैली के साथ नाटकीयता का संयोजन करने के कारण साहित्यिकता को हाथ से नहीं जाने देता। वाल्मीकि रामायण ने भी संस्कृत के नाटकों को अनुप्रेरित किया है परंतु मानस तो स्वयं पद्यनाटक या नाटकीय महाकाव्य ही है।''[8]

भारतीय जनता पर वाल्मीकि की अपेक्षा तुलसी का प्रभाव इस अर्थ में अधिक माना जा सकता है कि उन्होंने राम कथा की जनजीवन के अनुकूल व्याख्या करके उसे अधिक स्थायी तथा व्यापक बना दिया है। वाल्मीकि रामायण का भी प्रचार कथा के रूप में ही आरंभ हुआ था, परन्तु धीरे–धीरे वह राज–सभाओं और उच्च सभाओं में पहुँच कर शास्त्रीय और अभिजात साहित्य का उपजीवन बन गई थी।

निष्कर्ष –

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा मानस की अधिक लोकप्रियता कर प्रमाण भारतीय परिवारों में उसके प्रचार के रूप में प्राप्त होता है। विदेशों में भी आज भारतवर्ष का दर्शन और उसके विषय में ज्ञान–प्राप्ति जिन माध्यमों से की जाती है उसमें मानस का मुख्य स्थान है। आज पहले दृष्टि मानस पर पड़ती है फिर वाल्मीकि रामायण पर। वाल्मीकि रामायण भारतीय साहित्य और संस्कृति का आदि स्त्रोत है और मानस उसका विस्तृत प्रवाह। इस युग के पाठक को वाल्मीकि को समझने के लिए तुलसी की आवश्यकता है और तुलसी को समझने के लिए वाल्मीकि की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सविता भट्ट, वाल्मीकि रामायण का दार्शनिक विवेचन, संस्करण–1995, पृ0 19
2. वही, पृ0 202
3. डॉ0 देवराज, भारतीय संस्कृति, संस्करण–1960, पृ0 79
4. अरविन्द देवराज, भारतीय संस्कृति के आधार, संस्करण–1986, पृ0 300–301
5. कबीर ग्रन्थावली, साखी 18, सम्पादक डॉ0 श्यामसुन्दरदास, चतुर्थ संस्करण–2014, पृ0 9
6. शिवकुमार मिश्र, भक्ति–आन्दोलन और भक्ति–काव्य, संस्करण–2010, पृ0 196–197
7. रामप्रकाश अग्रवाल, वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्याकंन, पृ0 532–533
8. वही, पृ0 536

प्रियंका
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक–124001
पता– 876, शक्ति नगर, कैथल–136027
फोन नं0 : 8930692390

15

जनसंख्या का बढ़ता दबाव एवं कुपोषणता की समस्या एवं प्रभाव

Dr. Govind Prakash Acharya

सारांश (Abstract):

किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके नागरिकों के अच्छे स्वास्थ्य से तय होती है और स्वस्थ नागरिक से ही समृद्ध राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्रीय पोषण रणनीति का उद्देश्य 2022 तक भारत को 'कुपोषण मुक्त' देश बनाना है। अपितु पोषण ही स्वास्थ्य एवं समग्र विकास का मूलाधार है। पोषण का स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ही मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विभिन्न कारणों से भारतीय समाज में पोषण एवं स्वास्थ्य का संकट विद्यमान है। परिणामस्वरूप वृद्धि–बाधिता, मृत्यु, कम–दक्षता और 15 अंक तक बुद्धिलब्धि का नुकसान होता है। फलतः कुपोषण एक जटिल और बहुआयामी मुद्दा है। निर्धनता सहित अपर्याप्त भोजन की खपत, भोजन का असमान वितरण, मातृ–शिशु एवं बच्चे की अनुचित देखभाल, असमानता और लैंगिक असंतुलन, साफ–सफाई का अभाव और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुंच आदि, इसके प्रमुख कारण हैं।

संकेत शब्द (Keywords): जनसंख्या दबाव, कुपोषणता, खाद्य संसाधन, प्राकृतिक आपदाऐं, राष्ट्रीय पोषण मिशन।

परिचय (Introduction) :

अपने देश में कुपोषण की भयावह स्थिति का भी पता चला। खासतौर से मां और बच्चों के कुपोषण की चुनौतियां अब भी राष्ट्रीय सार्वजनिक स्वास्थ्य के मामले में बेहद चिंता का विषय है। यह मामला मौजूदा सरकार की नीतियों की प्राथमिकता के मामले में अहम है। अपने देश में 4 करोड़ नाटे लोग हैं जबकि 1.7 करोड़ बेहद कमजोर बच्चे (5 साल से कम के) हैं।

पर्याप्त मात्रा में भोजन या जरूरी पोषण नहीं मिलने से कुपोषण की समस्या पैदा होती है। कुपोषण का मतलब शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर होना है। भोजन की उपलब्धता में क्षेत्रीय स्तर पर असमानता रहने और खान–पान की अलग–अलग आदतों के कारण, अलग–अलग तरह की कुपोषण की समस्याएं पैदा हुई हैं। यह शहरों के मुकाबले ग्रामीण इलाकों में ज्यादा है।

यह संतोषजनक बात है कि कुपोषण की समस्या को कम करने के लिए केंद्र और राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों के अलग–अलग मंत्रालय और विभाग अपने–अपने स्तर पर काम करते हैं। इस तरह की योजना को लागू करने के लिए राज्य और केंद्रशासित प्रदेश सबसे उच्च स्तर की एजेंसियां हैं। ऐसे में कुपोषण की चुनौती से असरदार तरीके से निपटने के लिए सभी संबंधित इकाइयों के बीच समन्वय बनाने की जरूरत है। केंद्र सरकार ने पोषण अभियान के लिए कुपोषण राष्ट्रीय परिषद और कार्यकारी समिति का गठन किया है, जिसके जरिए केंद्र सरकार इस दिशा में सम्मिलन का लक्ष्य हासिल करेगी और राज्य जिला और प्रखंड स्तर पर सम्मिलन कार्य योजना को लागू की जाएगी। कुपोषण की समस्या पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती है और यह कई चीजों पर निर्भर है। मसलन नवजात और छोटे बच्चों के स्तनपान का प्रचलन, बचाव, संस्थागत डिलीवरी, बचपन की शुरुआती अवस्था में विकास, खान–पान की मजबूती, कृमि से मुक्ति, पीने के शुद्ध पानी की उपलब्धता और उचित साफ–सफाई, खान–पान की विविधता और अन्य संबंधी चीजें द्य कद नहीं बढ़ने, कम वजन (खासतौर से बच्चों में) आदि समस्याओं से निपटने के लिए निरंतर प्रयास की जरूरत है। इसके लिए कई स्तरों पर काम करना होगा और जमीनी स्तर पर तालमेल और समन्वय की जरूरत होगी।

खाद्य संसाधन (Food Resources) : प्राकृतिक खाद्य या कृत्रिम रूप में उत्पादित जिन पदार्थों से मनुष्य अपना भोजन प्राप्त करता है उन्हें खाद्य संसाधन कहते हैं। मनुष्य की खाद्य आपूर्ति मूलरुप से तीन स्त्रोतों पर आधारित है

1. कृषि फसलें (Agricultural crops) : वनस्पतियों की लगभग तीन हजार प्रजातियां कृषि उपयोग हेतु परखी जा चुकी है। इनमें से 300 प्रजातियां विश्वस्तर पर भोजन प्राप्ति हेतु उगाई जाती हैं, जबकि केवल 100 प्रजातियों का वहद स्तर पर प्रयोग होता है, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की खाद्य आपूर्ति मुख्य रुप से 20 फसलों पर निर्भर है।

2. पालतू पशु (Livestock) : आदि मानव अपना भोजन मुख्य रुप से जन्तुओं के शिकार से प्राप्त करता था ।आधुनिक विश्व में भी खाद्य आपूर्ति का बड़ा हिस्सा पालतू पशुओं पर आधारित है। गाय,

भैंस आदि दूध उत्पादन के प्रमुख स्त्रोत हैं। बकरियां, भेड़, सूअर, गाय, भैंसे, ऊँट आदि का भिन्न–भिन्न देशों में भोजन के लिये उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त मुर्गे एवं पक्षियों की कई प्रजातियों का उपयोग भी भोजन प्राप्ति हेतु किया जाता है।

3. मत्स्य (Fish) : विश्व का एक बड़ा हिस्सा मत्स्य आधारित खाद्य पदार्थों पर निर्भर है। एशिया एवं यूरोप के कई देशों में यह प्रोटीन युक्त भोजन का मुख्य आधार है। इसके लिये प्राकृतिक व कृत्रिम जल स्त्रोतों के उपयोग से मछलियों एवं खाने योग्य अन्य जलीय जीवों का उत्पादन किया जाता है। यह उत्पादन स्वच्छ जल आधारित (aquaculture) या समुद्र जल आधारित (mariculture) हो सकता है। इसके अन्तर्गत विश्व के भिन्न–भिन्न देशों में शिम्प्स, क्रेफिश, कार्प, तिलापिया, मिनो, कैटफिस, सालमन, ट्राउट, मिल्क फिश, सोल आदि का उपयोग किया जाता है।

कुपोषण राष्ट्रीय समस्या (Malnutrition National Problem):

योजना के मई 2018 अंक में पोषण और कुपोषण से संबंधित बहुत–सी दुर्लभ जानकारियां मिलीं। भारत में पांच वर्ष तक के चार करोड़ से भी अधिक बच्चे अविकसित हैं, जबकि एक करोड़ सत्तर लाख से भी अधिक बच्चे कमजोर हैं। यह सही है कि पिछले एक दशक के दौरान देश में एंथ्रोपोमैटिक उपायों में सुधार हुआ है इसके बावजूद बच्चों में कुपोषण का स्तर दुनिया में सबसे अधिक है।

विकास के लिए किसी भी देश की जनसंख्या का स्वास्थ्य बहुत मायने रखता है। सरकार के कई कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आने वाले वर्षों में उसके पास प्रशिक्षित श्रमशक्ति उपलब्ध है या नहीं। देश की आर्थिक महत्वाकांक्षाओं के मद्देनजर पोषण कार्यक्रम को स्वास्थ्य कार्यक्रमों से जोड़ने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पोषण नीति को बच्चे के जीवन के पहले एक हजार दिनों को लक्षित करना चाहिए। भारत ने राष्ट्रीय पोषण मिशन के रूप में आशाजनक प्रतिबद्धता दिखाई है, जो देश के बच्चों और माताओं के कुपोषण की समस्या से निपटने में मदद करेगा।

अपने देश में न केवल बच्चे बल्कि वयस्क भी कुपोषित हैं। 15 से 49 वर्ष आयु वर्ग की आबादी में 23 फीसदी महिलाएं तो बीस फीसद पुरुष अपेक्षाकृत दुबले हैं, जबकि 21 फीसदी महिलाएं और 19 फीसदी पुरुष अधिक वजन या मोटापा से जूझ रहे हैं। गरीब परिवार और अनपढ़ माताओं के बच्चे कुपोषण दोषों से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। एक और बात कि भारत में बाल विवाह विरोधी कानून होने के बावजूद हर चौथी लड़की 18 साल से कम उम्र में ब्याह दी जाती है। ऐसी अवयस्क महिलाओं की होने वाली संतानों में कुपोषण दोष का खतरा बढ़ जाता है। देश में तीस फीसदी बच्चे अल्पपोषित अवस्था में पैदा होते हैं। इस तरह हर साल 70 लाख कुपोषित बच्चे जुड़ते चले जाते हैं।

महिला व बाल विकास विभाग के केन्द्र सरकार से शुरू किए गए राष्ट्रीय पोषण मिशन के तहत बच्चों को कुपोषण से बचाने व उन्हें स्वस्थ रखने की मुहिम में भी अब आधुनिक तकनीक से नजर रखी जा रही है। योजना का मुख्य उद्देश्य कुपोषण और जन्म के समय बच्चों का वजन कम नहीं होना चाहिए और प्रत्येक गर्भवती व धात्री महिला के पौष्टिक आहार मिल सके। खास बात है कि अजमेर जिले में पोषण ट्रेकर एप्लीकेशन के जरिए जिले की 1968 आंगनवाड़ी केन्द्रों की कार्यकताओं से लाभार्थी बच्चों पर नजर रखी जा रही है। पौष्टिक आहार का लाभ लेने में जवाजा ब्लॉक अव्वल है। जबकि भिनाय ब्लॉक में इसके लाभार्थी न्यूनतम हैं। आंगनवाड़ी केन्द्रों पर नियमित रूप से गोद भराई, अन्नप्राशन व आंगनवाड़ी प्रवेशोत्सव के सामुदायिक कार्यक्रम आयोजित कर बच्चों व महिलाओं को लाभान्वित किया जाता है। विभिन्न मॉड्युल में कार्यकर्ता व आशा सहयोगिनियों को प्रशिक्षिति किया जाता है।

अजमेर जिले में कुल एक लाख 66 हजार 810 बच्चे पंजीकृत हैं। इमें 28 हजार 838 बच्चे अंडर वेट पाए गए। अजमेर जिले में अराई ब्लॉक, ब्यावर, भिनाय, जवाजा, केकड़ी, किशनगढ़, शहर व ग्रामीण, मसूदा, पीसांगन, श्रीनगर, पुष्कर व सरवाड़ सहित 13 स्थानों पर संचालित प्रोजेक्ट में सर्वाधिक नामांकन जवाजा में है। वहीं भिनाय ब्लॉक में न्यूनतम बच्चे केन्द्रों से जुड़े हैं। श्रीनगर ब्लॉक में सर्वाधिक अंडर वेट या कुपोषित बच्चे हैं जबकि भिनाय ब्लॉक में सबसे कम बच्चे कुपोषित हैं। सर्वेक्षण से प्राप्त परिणाम निम्नानुसार है।

स्थान	कुल नामांकित बच्चे	सामान्य	अंडर वेट
अजमेर	16246	13616	1946
जवाजा	21953	14853	7076
भिनाय	5200	4000	970
श्रीनगर	9794	6376	3405

भारत में खाद्य समस्याएं : (Food problem in India):

हरित क्रांति (Green revolution) के प्रथम 35 वर्षों में विश्व स्तर पर कृषि खाद्य उत्पादन में दो गुने की वद्धि हुई, लेकिन पर्यावरण की क्षति के रूप में इसकी एक बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी है। फिलीपीन्स स्थित अन्तर्राष्ट्रीय चावल शोध संस्थान

(International Rice Research Institute, Philippines) द्वारा चावल की एक विशिष्ट उपप्रजाति को विकसित करना हरित क्रांति की एक महत्त्वपूर्ण सफलता थी। इस उपप्रजाति की उत्पादकता बहुत अधिक थी, परन्तु इसमें अधिक उर्वरकों की आवश्यकता पड़ती थी। इसी प्रकार मैक्सिको स्थित अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ सुधार केन्द्र (International Maize and Wheat Improvement Centre, Mexico) द्वारा मक्के की एक बीमारी प्रतिरोधक उपप्रजाति को विकसित करना भी हरित क्रांति की एक बड़ी सफलता है। इस प्रकार के प्रयासों एवं सफलताओं के बाद भी आज विश्व के कई देश खाद्य समस्याओं एवं कुपोषण का सामना करने में असफल हैं। खाद्य की अपर्याप्तता दो रूपों में देखी जा सकती है।

(अ) उपलब्ध भोजन में पर्याप्त ऊर्जा की कमी। इसे अल्प पोषित या अन्डरनरिमेन्ट (Undernourishment) की संज्ञा दी जाती है। दी गई तालिका में अल्प पोषण के प्रभाव को दर्शाया गया है।

पोषक तत्व का अभाव	स्वस्थ्य पर प्रभाव	रोगगस्तों की संख्या	प्रतिवर्ष मुत्यु
प्रोटीन व कैलोरी	ठिगनापन स्वाशियोरकर मारास्मस रोग	750 से 10 लाख	1.5 से 2 करोड़
लोहा	रक्त–अल्पता	35 करोड़	7.5 लाख से 10 लाख
आयोडीन	गलगढ (घेगा)	15 करोड़	
विटामिन ए	अंधापन	60 लाख	

(ब) विशिष्ट खाद्य अपघटकों जैसे विटामिन्स, प्रोटीन्स, आवश्यक खनिज तत्त्वों आदि की कमी। इसे मालनरिशमेन्ट (Malnourishment) की संज्ञा दी जाती है।

कुपोषण की ये दोनों समस्यायें विश्वव्यापी हैं। दोनों परिस्थितियों में बच्चों का विकास बाधित होता है तथा बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है। खाद्य उत्पादन एवं आपूर्ति में आने वाले उतार–चढ़ाव के मद्देनजर विशेष खाद्य भंडारों एवं समयानुसार खाद्य पदार्थों के वितरण की उचित व्यवस्था होनी चाहिये।

विश्व खाद्य समस्याऐं (World Food Problems) :

पिछले पचास वर्षों में विश्व स्तर पर अनाज की पैदावार में तिगुनी वृद्धि हुई है, इससे प्रति व्यक्ति पैदावार 50 प्रतिशत के करीब बढ़ी है। परन्तु इसके साथ ही जनसंख्या भी इसी दर से बढ़ी है, खासतौर पर कम विकसित देशों में यह खा़ पैदावार से कहीं आगे बढ़ गई है। प्रतिवर्ष 40 लाख लोग, जिनमें से आधे 1–5 वर्ष के छोटे बच्चे होते हैं, अल्प पोषण एवं कुपोषण के कारण मर जाते हैं।इसका अर्थ यह हुआ, हर वर्ष खाद्य समस्या के कारण उतने व्यक्ति मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं जितने कि दूसरे विश्व युद्ध के समय हिरोशिम के उपर अणु बम गिराने से मरे थे। ये चौंका देने वाले आंकड़े इस तथ्य की भी पुष्टि करते हैं कि हमारे लिए खाद्य उत्पादन को बढ़ाना तथा उसका ठीक वितरण तथा जनसंख्या पर नियंत्रण कितने अहम मुद्दे हैं। चाहे भारत मुख्य फसलों को पैदा करने वाला तीसरा बड़ा देश है, फिर भी कोई 300 लाख भारतीय अब भी अल्पपोषित हैं। भारत में अमेरिका के मुकाबले केवल आधी भूमि है, परन्तु इसकी जनसंख्या उस देश से तीन गुना अधिक है। इसलिए खाद्य समस्याओं का जनसंख्या के साथ सीधा सम्बन्ध है।

खाद्य समस्या के कारण (Causes of Food Problem) :

1. जनसंख्या वद्धि (Population growth) – विश्व खाद्य समस्या एवं कुपोषण का सबसे बड़ा कारण जनसंख्या वद्धि है। विश्व खाद्य उत्पादन में वद्धि के साथ–साथ मानव जनसंख्या में भी तीव्र वद्धि के कारण प्रति व्यक्ति खाद्य की आपूर्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। यह इस बात का संकेत है कि माल्थस (Malthus, 1798) का यह कथन कि एक समय ऐसा आयेगा जब जनसंख्या वद्धि पृथ्वी की खाद्य आपूर्ति क्षमता से आगे निकल जायेगी, सत्य हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार विश्व की जनसंख्या 2010 में लगभग 6.9 बिलियन थी एवं विश्व की जनसंख्या में हो रही तीव्र वद्धि को देखते हुए यह संख्या वर्ष 2050 तक लगभग 9.6 बिलियन जबकि 2100 तक 10.9 बिलियन पहुँचने का अनुमान है। इस प्रकार बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं के लिये खाद्य पदार्थों के उत्पादन में भी वृद्धि करनी होगी। इतनी विशाल जनसंख्या के लिये खाद्यान्न उपलब्ध कराना अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती होगी। नीचे लिखी तालिका यह स्पष्ट करती है कि विश्व जनसंख्या एवं भारत जनसंख्या में निरन्तर तीव्र गति से बढ़ोतरी हो रही है। कुपोषण की समस्या वैश्विक स्तर पर सभी देशों ने स्वीकार की है।

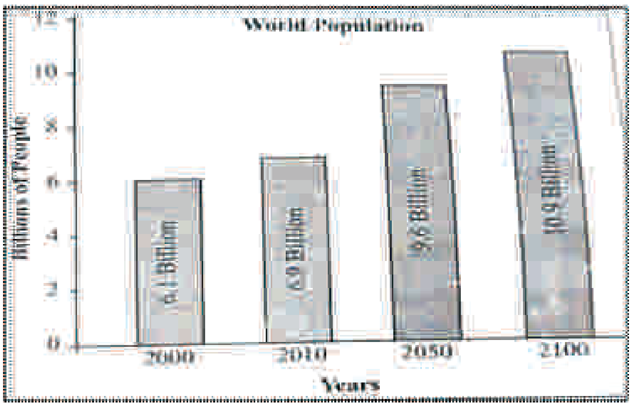

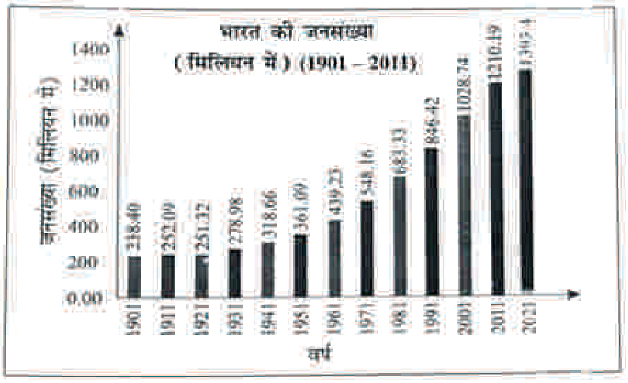

:: भारत की जनसंख्या ::

वर्ष	भारत की कुल जनसंख्या	पुरूष	महिला
2011	1210569573	623121843	587447730
2021	139.34 करोड़	727010423	681033830

भारत की कुल जनसंख्या में पुरूषों का प्रतिशत 51.47 है, जबकि महिलाओं का प्रतिशत 48.53 है। भारत की कुल जनसंख्या में 0–6 वर्ष के 13.59 प्रतिशत लोग हैं, जबकि 6 वर्ष से ऊपर के लोग 86.41 प्रतिशत हैं।

2. कुपोषण की समस्या (Problem of Malnutrition) : संयुक्त राष्ट्र के विश्व खाद्य कार्यक्रम के अनुसार विश्व में 821 मिलियन व्यक्ति अर्थात् प्रत्येक 9 व्यक्तियों में से 1 व्यक्ति को रात को खाली पेट सोना पड़ता है और प्रत्येक 3 व्यक्तियों में से 1 व्यक्ति अल्पपोषण का शिकार है। विश्व खाद्य कार्यक्रम के अनुसार, विश्व के कुल कुपोषित लोगों में से लगभग 25 प्रतिशत भारत में निवास करते हैं। भारत में 6 माह से 59 माह तक के बच्चों में से लगभग 38 प्रतिशत बच्चे चिरकालिक कुपोषण (Chronic Malnutrition) से ग्रस्त हैं। यह एक अत्यंत गंभीर चिंता का विषय है। 'ग्लोबल हंगर रिपोर्ट– 2019' के अनुसार भारत की। जनसंख्या का 14.5 प्रतिशत कुपोषण का शिकार है। इन लोगों को। न तो पर्याप्त मात्रा में और न ही उच्च गुणवत्ता का भोजन मिल पा रहा है।

नोटः से निपटने के लिये आज भारत में 'रोटी बैंक' पहल मजबूत होती दिख रही है। इसके तहत रेस्त्रां क्लब और पार्टी से बचा हुआ भोजन एकत्रित किया जाता है और उसके खराब होने से पहले उसे गरीबों में बाँट दिया जाता है।

3. भौगोलिक परिस्थितियां (Geographical factors) – अनेक देशों/क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियां इस प्रकार की है कि वहां खाद्यान्न उत्पादन बहुत कम होता है। भारत में पश्चिमी राजस्थान इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

4. भारत में कृषि जोत का छोटा आकार (Small size of agriculture holding in India) : भारत में अधिकतर किसान छोटे या मध्यम श्रेणी के हैं एवं उनके पास जोत का आकार भी अत्यंत कम है। ऐसे में यदि उत्पादन कम होता है और बाज़ार में अत्यधिक मांग के होने व पूर्ति कम होने पर मुद्रास्फीति की स्थिति होती है तो इन किसानों को खाद्य असुरक्षा का सामना करना पड़ सकता है। इनके लिये वर्ष भर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बन सकती है, क्योंकि इनका उत्पादन कुछ ही महीनों के लिये पर्याप्त होगा एवं अन्य समय के लिये इन्हें बाज़ार से महँगे मूल्यों पर खाद्यान्न क्रय करना पड़ेगा।

5. बढ़ती हुई प्राकृतिक आपदाएं (Increasing Natural hazards) – कृषि पर्यावरणीय कारणों, खास कर प्राकृतिक आपदाओं से बहुत प्रभावित होती है। विनाशकारी बाढ़, सूखा, भूकम्प, आंधी, तूफान, कीटों का प्रभाव, बीमारियां आदि कृषि उत्पादन को बहुत प्रभावित करते हैं। बढ़ती हुई प्राकृतिक आपदाएँ भी खाद्य सुरक्षा के लिये एक गंभीर समस्या बन रही हैं। लगातार बाढ़, सूखा, अकाल, सुनामी, भू–स्खलन इत्यादि आपदाएँ खाद्य वस्तुओं के उत्पादन को कम करके चुनौतियाँ खड़ी कर रही हैं।

6. सामाजिक विघटन (Social disruption)– सामाजिक विघटन से भी विश्व खाद्य आपूर्ति प्रभावित होती है।

7. वितरण प्रणाली (Distribution system) – खाद्य समस्या को कम करने के लिये उपयुक्त वितरण प्रणाली आवश्यक है। दोषपूर्ण एवं अव्यवस्थित वितरण प्रणाली से खाद्य पदार्थों की उपलब्धता के बावजूद खाद्य समस्या यथावत रहती है। हमारे देश में भी दोष पूर्ण वितरण प्रणाली एवं अनाजों के अवैध भण्डारण की समस्या व्याप्त है।

Conclusion:

संविधान के मुताबिक देश की जनता का पोषण और जीवन स्तर में वृद्धि करना और सार्वजनिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाना सरकार का दायित्व है। हालांकि सरकार की ओर से कुपोषण दूर करने के प्रयास किए गए हैं लेकिन इसके लिए आम जनता में भी अपने सेहत के प्रति जागृति आना जरूरी है। गरीबी, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ–सफाई और पोषण संबंधी विभिन्न सरकारी योजनाओं में तालमेल और समावेशी दृष्टिकोण व एकजुटता जरूरी है। कुपोषण को 'राष्ट्रीय समस्या' करार देकर इसे दूर करने का चौतरफा प्रयास करना होगा।

References :

Hinrichsen D and Robey B (2000) : Population and the Environment: The Global Challenge. Population Reports, Ser. M. No. 15, Johns Hopkins University School of Public Health, Baltimore.

Li Jie, Liu Qian and Sang Yao (2012) : Several Issues about Urbanization and Urban Safety. Procedia Engineering 43: 615 - 621.

Rai Mohit Singh (2017) : Impact of urbanization on environment. International Journal on Emerging Technologies 8(1): 127 129.

Turk J (1985) : Introduction to Environmental Studies. Saunders College Publishing, HoltSaunders, Japan.

Anonymous (1987) : Luftreinhaltplan. Information Sreihe Zur Luftreinhaltung in Berlin. Der Senator fuer Stadtentvicklung and Umweltschutz, Berlin.

Borlaug N E (1987) : Silverubilee Convocation Address. Punjab Agric. Uni., Ludhiana, April 21, 1987.

Borlaug N E (1990) : The challenge of feeding 8 billion people. Farm Chem. Int. 4: 10-12. Chhetri Netra and Chaudhary Pashupati (2011). Green Revolution: Pathways to Food Security in an Era of Climate Variability and Change? Journal of Disaster Research 6(5): 486-497.

Dhaliwal G S and Kler D S (1995) : Principles of Agricultural Ecology. Himalaya Publishing House, Bombay.

Dhaliwal G S, Arora R and Dhawan A K (2002) : Ecological agriculture and sustainable development Issues and strategies. Indian J. Ecol. 29(2): 103-116.

Dhaliwal G S, Arora R and Dhawan A K (eds.) (1999) : Emerging Trends in Sustainable Agriculture. Commonwealth Publishers, New Delhi.

Hall C, Dawson T P, Macdiarmid J I, Matthews RB and Smith P (2017) : The impact of population growth and climate change on food security in Africa: looking ahead to 2050. International Journal Of Agricultural Sustainability 15(2): 124-135 http://dx.doi.org/ 10.1080/ 14735903.2017.1293929

Kundu Payel (2015) : Population Explosion As A Threat To Food Security In India International Journal of Novel Research in Humanity and Social Sciences 2(4): 56-62.

Southgate Douglas (2009) : Population Growth, Increases in Agricultural Production and Trends in Food Prices The Electronic Journal of Sustainable Development (2009) 1(3): 29-35

Swaminathan M S (1987) : Strategies for a new approach to agriculture in the tropics. In: G. B. Marini-Bettolo (ed.). Towards a Second Green Revolution: From Chemical to New Biological Technologies in the Tropics. Elsevier, Amsterdam, pp.: 395 406.

Tyagi A C (2016) . Towards a second green revolution. Irrig. and Drain. 65: 388-389 DOI: 10.1002/ird.2076.

Uniyal Shivani, Kaphaliya Bhumija, Paliwal Rashmi and Sharma R. K. (2017) : Human Overpopulation: Impact on Environment. In: Environmental Issues Surrounding Human Overpopulation (eds. Singh Rajeev Pratap, Singh Anita and Srivastava Vaibhav) IGI Global, 701 E Chocolate Avenue, Hershey PA, USA 17033

Dr. Govind Prakash Acharya
(Asso. Professor (Agri.)
SGG Govt. College, Banswara
M :9460545836 / Email : gpacharya.6@gmail.com

16

विवेकानन्द का आदर्श–राज्य : एक अध्ययन

सुरेन्द्र सिंह

सारांश

स्वामी विवेकानन्द महान दार्शनिक, चिन्तक तथा भावी पीढ़ी के लिए ऊर्जा स्रोत व्यक्तित्व के धनी थे। उनके विचारों में प्रगाढ़ता विद्यमान है तथा जन–कल्याणकारी स्वरूप की आकांक्षा को परिलक्षित करते है। उनके आदर्श राज्य में स्वतंत्रता सम्बन्धी विशेश प्रभाव की अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। वे सामाजिक नियमों को बाध्यकारी मानते है। उन्होंने स्वतंत्रता को प्राकृतिक अधिकार माना तथा शिक्षा, ज्ञान, सम्पत्ति अर्जन को आवश्यक माना है। वे दासता, गूढ़ता, नृशंसता को मानव का कलंक मानते है। उन्होंने अपने आदर्श–राज्य में निर्भीकता को विशेष स्थान दिया है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए प्रतिरोध का सिद्धांत अति आवश्यक है। वे वेदों को निर्भीकता का स्रोत मानते थे। वे आत्मा की सबलता का पाठ पढ़ाते है। विवेकानन्द ने नैतिकता को राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता के लिए परम आवश्यक माना है क्योंकि इन गुणों से पुरूषत्व की प्राप्ति होती है। उन्होंने भारतीय समाज में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था को एक सीरे से नकारा है। वे मजदूरों के हितों की बात करते है। वे चारों वर्णों में ज्ञान, सभ्यता, वैश्य–काल, प्रचार–भाव तथा समानता (शूद्र काल) को महत्वता देते है। विवेकानन्द समाजवादी चिन्तक थे उनके विचारों में राष्ट्र निर्माण में जन सहभागिता आवश्यक है। गरीबों का कल्याण किए बिना, महलों में रहने वालों से आदर्श राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। उन्होंने कहा, "मैं एक समाजवादी हूँ इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है। उन्होंने वर्तमान शिक्षा पद्धति को अनावश्यक माना क्योंकि इससे चरित्र निर्माण नहीं होता है। उन्होंने धर्म को जीवन का सार बताया, उनके मतानुसार हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता विश्व में सबसे श्रेष्ठ है। वे देश भक्ति से ओत–प्रोत व्यक्तित्व के धनी थे। इसलिए उन्होंने धर्म को राश्ट्रवाद से जोड़ा। विवेकानन्द सदाचार पर बल देते है, पाखण्डों, अंधविश्वासों तथा नकरात्मक कर्मकाण्डो को नकारते है। वे मूर्ति पूजा के समर्थक थे, वे कहते है कि जब मूर्ति पूजा से राम–कृश्ण परमहंस जैसे महान आदमी बन सकते है तो हजारों मूर्तियों की पूजा करो। इस प्रकार विवेकानन्द आदर्श राज्य की स्थापना में एक ऐसे चिंतन की व्यवस्था करते है जो रचनात्मकता का विकास कर सके और उन्मुक्त विकासात्मक दृष्टिकोण पर आधारित हो।

भूमिकाः–

स्वामी विवेकानन्द एक महान दार्शनिक, एक चिन्तक तथा भावी पीढ़ी के लिए ऊर्जा स्रोत व प्रेरक थे। उन्होंने अपने राजनीतिक विचारों की प्रधानता को विश्व में स्थापित किया। उनके भाषणों को एकत्रित करके ही उनके राजनीतिक विचारों को उल्लेखित किया जाता है। उनके विचारों में जन–कल्याणकारी स्वरूप की आकांक्षा दिखाई देती है। विवेकानन्द का चिन्तन युगो–युगों तक मानवता को नवीन दिशा प्रदान करेगा। एक सुप्रसिद्ध कायस्थ परिवार में जन्म लेकर उत्कृष्ट व्यक्तित्व, प्रभावशाली विचार–शैली, सुन्दर मुख–मण्डल की आभा को मानवीय पटल पर अंकित करके समस्त वैश्विक मण्डल को नई दिशा देने का कार्य अपने आप में महानता का परिचायक है। उनके राजनीतिक दर्शन में राज्य संबंधी विचारों ने विवेकानन्द को नया आयाम प्रदान किया है। उन्होंने हीगल, शोपेनहोवर, काम्टे, डार्विन, मिल का अध्ययन करके अपने आप में आलोचक तथा विश्लेषक उत्पन्न किया।[1]

स्वतंत्रता संबंधी विचार :–

विवेकानन्द की वाणी से तथा कर्मनिष्ठता से हमेशा स्वतंत्रता प्रेमी विचारों को प्रधानता मिली है, उन्होंने स्वतंत्रता के संबंध में स्पष्ट किया कि जीवन, समृद्धि तथा सुख ही स्वतंत्रता के स्रोत हैं जिनको प्राप्त करके मानव अपने आपको स्वतंत्र रखने की सोच सकता है। समस्त विश्व इनकी प्राप्ति के लिए लग्नशील है। सामाजिक नियम व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक है। उनका मानना है कि ऐसी सामाजिक संस्थाओं पर प्रतिबंध लगाना चाहिए जो व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक है। उन संस्थाओं को आगे बढ़ाना चाहिए जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है तथा स्वतंत्रता को आगे बढ़ा रही है। उन्होंने कहा था कि मानव को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर ले जाना तथा प्रेरित करना मानवता का सबसे बड़ा तिरस्कार है। उन्होंने काम–काज तथा सोच–विचार को स्वतंत्रता का पैमाना बताया। स्वतंत्रता को उन्होंने मानव का प्राकृतिक अधिकार बताया इसलिए उन्होंने शिक्षा, ज्ञान, सम्पत्ति अर्जन को आवश्यक माना।[2] उन्होंने अपने भाषण में ही कहा था कि भारत कब तक दूसरी संस्थाओं की नकल करता रहेगा अपने अधिकार के लिए दासता, मूढ़ता तथा नृशंसता में कब तक फंसा रहेगा। अपनी निर्लज्जता को छोड़कर अपने पर लगे गरीबी,

अज्ञानता, भंगी को छोड़कर साहस करके महानता को प्राप्त कर। भारत की भलाई व कल्याण ही सर्वोत्तम एवं सर्वोच्च स्वर्ग है। उनके द्वारा दिए गए व्याख्यान में स्पष्ट है कि, ''विश्वास करो, विश्वास भरो, यह ईश्वर का आदेश हुआ है, ईश्वर का आदेश हुआ है कि भारत उठकर रहेगा, गरीबी मिटेगी तथा जनता सुखी होगी तथा खुशी इस बात की है कि ईश्वर ने तुझे इस कार्य के लिए चुना है।''[3] विवेकानन्द की 'संन्यासी का गीत' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता के मूल्य तथा पवित्रता का पाठ पढ़ाया। उनकी उन्मुक्त स्वर में स्वतंत्रता का गुणगान इस प्रकार है :–

''अपनी बेड़ियों को तोड़ डाल! उन बेड़ियों को जिन्होंने तुझे बांध कर डाल रखा है,

वे दिप्तीमान सोने की हो अथवा काली निम्नकोटि की धातु की,

प्रेम, घृणा, शुभ, अशुभ, द्वेधता के सभी जंजालों को तोड़ डाल,

तू समझ ले कि दास–दास है, उसे प्रेम पूर्वक पुचकारा जाए अथवा

कोड़ो से पीटा जाए वह स्वतंत्रता नहीं है।''[4]

प्रतिरोध व निर्भयता संबंधी विचार :–

विवेकानन्द ने अपने विचारों में भारतीयों को शक्ति के प्रतिकार करने के लिए उत्प्रेरित करते हुए कहा कि निडरता के अभाव में व्यक्तिगत तथा सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्वों की पूर्ति नहीं हो सकती, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निर्भयता अति आवश्यक है। आत्मबल के आधार पर ही विदेशी ताकतों से मुकाबला किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए प्रतिरोध का सिद्धांत अति आवश्यक है। वे मानते है कि कायरता–घृणा है, यह राजनीतिक मूर्खता का परिचायक है। वे वेदों को निर्भीकता का स्रोत मानते थे। उन्होंने भारतवासियों को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की कि कर्ममय तथा स्वार्थ रहित जीवन मानवता को नवीन दिशा दिलाने का एकमात्र साधन है। आत्मा की सबलता का पाठ पढ़ाने में वे अचूक व्यक्तित्व के स्वामी थे। उन्होंने अपने उद्‌बोधनों में भारतवासियों को तगड़े बनो, मर्द बनो जैसे शब्दों का उल्लेख किया। उन्होंने दुर्बलता को मानवता का पाप कहा है, यह मृत्यु है। अब हमारे देश को फौलाद की नाड़ियों वाले, प्रबल मनःशक्ति वाले मानवों की आवश्यकता है। उन्होंने ऐसी चारित्रिक शक्ति पर बल दिया जो मानवता को पवित्रता, निर्भिकता तथा त्याग की भावना से प्रेरित कर सके। संसार में रहकर कर्ममय जीवन पर बल दो, पलायनवाद उन्नति का अवरोधक है। संसार रूपी यंत्र के पहिए से डरकर मत भागो, डटकर मुकाबला करो तुम्हें इस जाल से निकलने का रास्ता अवश्य ही मिलेगा।[5]

राष्ट्र की महानता संबंधी विचार :–

विवेकानन्द व्यक्ति के नैतिक गुणों के उत्थान को प्राथमिकता प्रदान करते है क्योंकि राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता के विषय में केवल वही व्यक्ति चिन्तन कर सकता है जिसमें यह नैतिकता हो कि मैंने राष्ट्र के लिए जन्म लिया है। व्यक्तियों से इकाईयां बनती है, इकाईयों से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। अतएव मानव में सम्मान तथा पुरुतत्व की भावना का संचार होना चाहिए। विवेकानन्द ने इसी संचार से युक्त भावना पर जीवन जीने वाले व्यक्तित्व के धनी मानवों को सच्चे राष्ट्र के सिपाही कहा है। उन्होंने कहा कि मानव स्वभाव के गौरव को कभी मत भूलो।[6]

वर्ण–संबंधी विचार :–

विवेकानन्द ने लंदन से कुमारी हेल को 1 नवम्बर, 1896 में लिखे गए अपने पत्रा में आदर्श राज्य की संकल्पना में वर्णो का उल्लेख किया जिसमें उन्होंने शूद्र–राज्य के उदय में विश्वास व्यक्त किया है – कि मानव समाज पर चार वर्णो ने शासन किया है – पुरोहित, सैनिक, व्यापारी तथा श्रमिक (मजदूर)। ब्राह्मण के राज्य में जन्म के आधार पर विभाजन, क्योंकि उनके अलावा किसी भी वर्ण को अधिकार प्रदान नहीं किए जाते। उनके अलावा किसी को शिक्षा अर्जित करने का अधिकार नहीं दिया जाता। यह वर्ग मन को केन्द्रित करके राज्य स्थापित करता है। क्षत्रिय–राज्य अन्यायी होती है अतएव विभाजन पर आधारित नहीं है इसलिए इस साल में अनुशासन तथा सामाजिक शिष्टता प्राप्त होती है। तीसरा वर्ग वैश्य राज्य – इसमें कुचलने, खून चूसने की मौन शक्ति की भीषणा नीहित होती है। इस काल में सभ्यता की अवनति नीहित होती है। अंत में विवेकानन्द ने मजदूरों का राज्य स्थापना पर बल दिया क्योंकि इस राज्य में भौतिक साधनों का समान वितरण होगा। साधारण शिक्षा का प्रचार–प्रसार होगा। चारों वर्णों में ज्ञान (ब्राह्मण), सभ्यता (क्षेत्रीय कला), वैश्य–काल (प्रचार–भाव) तथा समानता (शूद्र–काल) में सामंजस्य की स्थापना ही आदर्श राज्य होगा।[7] एक बार स्वामी विवेकानन्द ने वर्ण–व्यवस्था पर बोलते हुए कहा था कि, भारत में सामाजिक साम्यवाद विद्यमान है और वह आध्यात्मिक व्यक्तिगवाद के प्रकाश में आलोकित है जबकि यूरोपवासी सामाजिक दृश्टि से व्यक्तिवादी है किन्तु आपका चिन्तन द्वैतवादी है जिसे आध्यात्मिक सामन्यवाद कहा जा सकता है।[8]

समाजवाद संबंधी विचार :–

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक में ''एक समाजवादी

हूँ'' में स्पष्ट किया कि यूरोप में पूंजीवादी व्यवस्था ने एक दुष्प्रवृति को जन्म दिया इसलिए उनके दिमाग पर रूस के विचारक क्रीपोटिकन का प्रभाव पड़ा। वस्तुतः उन्होंने अपने आपको समाजवाद ही कहना आरंभ कर दिया था। उनके विचारों में गरीबों की दशा सुधारने पर बल दिया, उनका मानना था कि झोपड़ियों में रहने वालों की दशा भी सुधरनी चाहिए, राष्ट्र केवल महलों में रहने वालों का नहीं है। हमें भूख व अभाव से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति गहरी संवेदना रखनी चाहिए। उनका मानना था कि करोड़ों दीन–हीन व्यक्तियों की दशा में सुधार करना चाहिए। पूंजीवादी यदि गरीबों के कल्याण के लिए कार्य न करें तो उनके प्रति घृणा रखनी चाहिए। जन–साधारण की आवश्यकता की पूर्ति न करना – धर्म का भी अनादर है। यह महान राष्ट्रीय पाप है। सरकार के बनाए गए कानूनों का प्रभाव ही उत्तम राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। उनका मानना था कि जब तक भारत का प्रत्येक नर–नारी, भूखमरी तथा निरक्षता से पीड़ित है तब तक भारत का प्रत्येक नागरिक देशद्रोही है। अतएव भारतीय जनता को संतुष्ट, शिक्षित तथा अनुशासित होना चाहिए। उनका समाजवाद आद्यात्मिकता से प्रेरित है जैसे महात्मा गाँधी का समाजवाद था। श्रमिक वर्ग के प्रति उनके समाजवाद में गहरी आस्था दिखलाई देती है। उन्होंने श्रमिक हितों पर आधारित रूसी क्रांति से दो दशक पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी। वे शुद्र वर्ग को शासक के रूप में स्वीकारने के हितैषी थे। उनका मानना था कि शुद्र वर्ग कर्मनिष्ठ तथा परिश्रमी है। अतएव उनके फल का मिलना अभी शेष है।[9] विवेकानन्द ने कहा कि ''मैं एक समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है। अब समाजवाद की परीक्षा होने से प्रत्येक व्यक्ति को सुख और दुःख से परिचित होना चाहिए ना कि कुछ व्यक्ति सदैव सुखी रहें तथा कुछ सदैव दुःखी–यह व्यवस्था मुझे पसंद नहीं है।''[10]

वे वर्गविहीन व्यवस्था के पक्षधर नहीं थे परंतु उनका मानना था कि भारतीय समाज में प्रचलित वर्ग सही है परन्तु निम्न वर्ग को ऊंचा उठाने के प्रयास लगातार जारी रहने चाहिए। उन्होंने आर्थिक समाजवाद के अलावा नैतिक तथा आधात्मिक और बौद्धिक आत्मीयता भी आवश्यक है। उनका मानना था कि जब भारत में आद्यात्मिकता का समावेश होगा तो आर्थिक असमानता अपने आप समाप्त हो जाएगी क्योंकि पूंजीवादी लोग अपनी पूंजी का कल्याणकारी स्वरूप में रूपातंरित कर देंगे।[11] अतएव वे एक महान समाजवादी चिंतक थे।

शिक्षा संबंधी विचार :–

विवेकानन्द का मानना था कि वर्तमान शिक्षा पद्धति अनुकूल नहीं है क्योंकि इससे चरित्र निर्माण नहीं हो रहा है इसलिए शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव का निर्माण, जीवन का निर्माण, नैतिकता परक तथा सदाचार पर आधारित चरित्र–निर्माण होना चाहिए। वर्तमान शिक्षा में संस्कृति का ज्ञान और सभ्यता का ज्ञान नहीं है। जीवन के वास्तविक मूल्यों पर आधारित शिक्षा होनी चाहिए। पुस्तकालय में अधिक ज्ञान का प्रशिक्षण देने के बजाए पांच बातों की जानकारी लेना अति आवश्यक है। वे कहते है कि नकारात्मक प्रशिक्षण मृत्यु के समान है। उनका मानना था कि वर्तमान स्कूल में जब बच्चा शिक्षा के लिए भेजा जाता है तो उसे सिखाया जाता है कि उनका पिता मूर्ख है, बाबा पागल है, सभी शिक्षक पाखण्डी है तथा सभी पवित्र पुस्तकें सत्यापित नहीं है। इस प्रकार 16 वर्ष तक बच्चा नकारात्मक शिक्षा का ग्राही बन जाता है। और उनका जीवन आस्थाहीन तथा विवेकहीनता से ग्रसित हो जाता है और मौलिक शिक्षा से वंचित होकर अंधविश्वास व पाखंड से पीड़ित हो रहा है।[12] विवेकानन्द का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य धैर्यवान, ऊर्जावान, संयमशील, विनम्रशील, विश्वसनीयता पर आधारित आदर की भावना से उपप्रेरित नागरिकों का निर्माण होना चाहिए। यह शिक्षा केवल गुरूकुल पद्धति पर आधारित होना चाहिए ताकि पवित्रता तथा वैज्ञानिक परिशुद्धता पर आधारित गुणों का लाभ आमजन साधारण को मिल सके। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पर बल दिया ताकि विश्व को समझने में आसानी हो सके। गरीबों के लिए वे अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा को गंभीरता से लागू करने के पक्षधर थे।[13]

धार्मिक राष्ट्रवाद संबंधी विचार :–

विवेकानन्द धर्म को राष्ट्रीय जीवन रूपी संगीत का स्वर मानकर चलते थे। 1895 में शिकागो सम्मेलन में उन्होंने कहा कि धर्म प्रत्येक राष्ट्र के जीवन का मुख्य प्रवाहक है इसलिए उन्हें अपनाओ तथा शाश्वत सत्यापन पर आधारित ज्ञान की ओर बढ़ो। उन्होंने भारत के किसी भी समाज–सुधारक व चिन्तक को मुख्य आधार नहीं बनाया। उन्होंने धर्म का सहारा लेकर भारतीयों को प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के गौरवमयी अतीत को समझने पर बल दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता व सर्वोचरिता पर बल देकर भारतीयों में नवीन ऊर्जा का संचार किया तथा नवीन उत्प्रेरणा का कार्य किया। वे देशभक्ति से ओत–प्रोत व्यक्तित्व के धनी थे इसलिए उस समय के राजनीतिक परिवेश से दुःखी थे इसलिए वे कानूनों के वाद–विवाद से दूर रहे ताकि अंग्रेज उपनिवेशवादी उन्हें जेल में न भेज दें। उन्होंने भारतीयों के नैतिक व धार्मिक उत्थान के लिए अलख जगाई तथा इसकी आड़ में राष्ट्रवादी चिन्तन पर बल देकर समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। उन्होंने बैकिंमचन्द्र को पढ़ने तथा ग्रहण करने पर बल दिया। जन्मभूमि की सेवा करो, आत्म बलिदान

के लिए तैयार रहो तथा देशभक्ति के लिए निर्भय रहो। इस प्रकार वे प्रखर राष्ट्रवादी चिन्तकों में से एक थे। उन्होंने भारत–माता को आराध्य देवी स्वीकार किया तथा उनके चरणों में सब कुछ अर्पित करने के लिए कटिबद्धता दोहराई। वे भारत में राष्ट्रीय जीवन पर आधारित धार्मिक संगठनों की स्थापना पर बल देते थे। उन्होंने आध्यात्मिकता को राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने का मूल मंत्र स्वीकार किया।[14] स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म तथा विज्ञान का सामंजस्य स्थापित किया। उनके अनुसार अद्वैतवाद धर्म विज्ञान का चरम सिद्धांत था जो विज्ञान के एकत्व की खोज के समान था। उनके अनुसार परिवर्तनशीलता विश्व का एकमात्र आधार परमात्मा है।[15]

धर्म संबंधी विचार :–

विवेकानन्द का मानना था कि शाश्वत सिद्धांतों को वास्तविकता को समझना तथा सत्य को समझना ही धर्म है। धर्म किसी प्रकार के पाखण्डों, अंधविश्वासों, नकारात्मक कर्मकाण्डों में नीहित नहीं है अपितु मानव को देवत्व रूप की ओर ले जाना है। धर्म को वे जीवन का सार मानते है जिससे व्यक्ति में सदविचार तथा परोपकार की भावना का विकास होता है। यदि किसी देश की जनता धर्म के प्रति उदासीनता का भाव रखेगी तो वहां मानवता की आत्मा ही विनिष्ट हो जाएगी। नैतिक चेतना का विकास करना, संचार करना तथा समस्त जीवों के प्रति समानता का व्यवहार करना ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म ही राष्ट्र में पवित्रता का निवास कर सकता है। धर्म नैतिक शक्ति का सार है। नैतिकता प्राप्त नवयुवक ही राज्य व राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ सकता है।[16] उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जो पीढ़ियाँ आधात्मिकता को भूल जाती हैं वे राष्ट्र की रीढ़ को तोड़ देते है और एक मृत जाति का रूप ले लेने वाली व्यवस्था अनुसार जीवन जीने के लिए मजबूर होगी। इसका परिणामस्वरूप विनाश निश्चित हो गया।[17]

मूर्तिपूजा संबंधी विचार :–

विवेकानन्द ने मूर्ति पूजा को अनावश्यक नहीं बताया क्योंकि उनकी मान्यता है कि मूर्ति ईश्वर के निकट लाने का एक माध्यम है। यह ईश्वर की अनुभूति करवाने में सक्षम है। उनके मतानुसार यह आधात्मिकता की प्रारंभिक अवस्था है। वे रामकृष्ण परमहंस का उदाहरण देकर समझाते है कि मैंने जो कुछ प्राप्त किया है वह मूर्तिपूजा से ही ग्रहण किया है। यदि मूर्ति पूजा से रामकृष्ण जैसे महान आदमी बन सकते है तो हजारों मूर्तियों की पूजा करो।[18]

सामाजिक सुधार संबंधी विचार :–

विवेकानन्द ने कहा कि समाज में कुछ व्यक्तियों को त्यागने का भाव रखना चाहिए ताकि विकसित समाज का निर्माण किया जा सके। ईश्वर के कर्मो पर आधारित समाज का निर्माण होना चाहिए। समाज का अस्तित्व शुभ के लिए है। अतएव शुभ कर्म करके ही स्वच्छ व सभ्य समाज का निर्माण किया जा सकता है। विवेकानन्द सम्प्रदायवाद और निस्पृश्यता के विरूद्ध थे। उन्होंने प्रगतिशील समाज पर बल दिया जिसमें अस्पृश्यता का कोई स्थान नहीं होता है। दलीतोत्थान पर उन्होंने बल दिया ताकि राष्ट्र में समाजवाद का उत्थान किया जा सके।[19] उन्होंने अमीरों को उनके कपट, शोषण और अनाचार के लिए फटकार लगाई। उन्होंने बाल–विवाह की भर्त्सना करते हुए कहा कि इससे महिलाएँ अल्पायु की हो जाएगी क्योंकि अल्पायु में सन्तान की उत्पति से मृत्यु अधिक हो जाती है। अधिक संख्या में विधवा होना भी समाज के लिए अवनति का कारण है।[20]

निश्कर्श :–

इस प्रकार विवेकानन्द इस प्रकार के राज्य की स्थापना पर बल देते है जिसमें समाजवादी चिन्तन का विकास हो, शोषणात्मक व्यवस्था का अभाव हो, जातिगत व्यवस्था का अभाव हो, शिक्षा का रचनात्मक व चरित्र–निर्माण पर आधारित हो, धर्म की शाश्वतता पर आधारित हो, जीवन में उन्मुक्त विकासात्मक दृष्टिकोण पर आधारित हो, मानवजाति की सभ्यता को नया आयाम देने वाला हो। राज्य आदर्शमूलक हो जिसमें नवीन मूल्यों की आस्था हो।[21]

सार–संदर्भ

1. डॉ. अवस्थी अमरेश्वर, डा. अवस्थी रामकुमार, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. सं.–73
2. वही, पृ.सं.–39
3. वही, पृ.सं.–90
4. डॉ. वर्मा, वी.पी., ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3, पृ0 सं0–129–30
5. डॉ. अवस्थी अमरेश्वर, डा. अवस्थी रामकुमार, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. सं.–90
6. वही, पृ.सं.–91
7. वही, पृ.सं.–92
8. डॉ. वर्मा, वी.पी., ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3, पृ0 सं0–135
9. वही, पृ.सं.–93
10. वही, पृ.सं.–94

11. वही, पृ.सं.—95
12. वही, पृ.सं.—95
13. वही, पृ.सं.—96
14. वही, पृ.सं.—88
15. डॉ.पुरुशोत्तम, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन'', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2009, पृ0 सं0—56
16. डॉ.अवस्थी अमरेश्वर, डा. अवस्थी रामकुमार, ''आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन'', रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ. सं.—88
17. वही, पृ.सं.—89
18. वही, पृ.सं.—85
19. वही, पृ.सं.—81
20. वही, पृ.सं.—82
21. वही, पृ.सं.—82

सुरेन्द्र सिंह
सहायक प्राध्यापक
राजनीतिक शास्त्र विभाग, जनता महाविद्यालय,
चरखी दादरी।
जिला चरखी दादरी, राज्य हरियाणा,
पिन कोड़ — 127306
सम्पर्क सूत्र — 9813049625,
surenderckd74@gmail.com

17 तुलसी और समन्वयवाद

डॉ0 सुधा रानी

सारांश

तुलसी के आविर्भान होने तक देश पर मुसलमानों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। भारत का सांस्कृतिक सूर्य डूब चुका था। देश में कोई आदर्श जातीय भावना नहीं रह गई थी। हिन्दुओं के स्वातंत्र्य के साथ–साथ वीरगाथाओं की परम्परा भी काल के अंधकार में जा छिपी थी। उस हीन दशा में कौन पराक्रम के गीत गाता और गाता भी तो किस मुंह से। एक ओर हिंदू सम्राट और उनके राज्य भारत के मानचित्र पर से मिटते जा रहे थे, दूसरी ओर मुगल सम्राटों का ऐश्वर्य और वैभव स्वर्ग के वैभव को चुनौती दे रहा था और उनके अत्याचार हिन्दुओं को हताश कर रहे थे। ऐसी स्थिति में निरावलम्ब, असहाय तथा भग्नहृदय जनता किसी ऐसे सम्बल की खोज में थी जो उनके भग्नहृदय को सान्त्वना प्रदान कर सके, उनकी मुरझाई हुई हृदय–लता में लहलहा सके।

सामाजिक स्थिति भी अत्यंत निराशाजनक थी, जनता के सामने कोई उच्च आदर्श न था। कनफड़े साधु अलरव जगा रहे थे, लोगों को अनहद नाद सुना–सुना कर संसार त्यागने का परमर्श दे अकर्मण्यता का भाव फैला रहे थे, उन्हें अलसिया सम्प्रदाय में दीक्षित कर रहे थे। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय–वैश्णव, शैव, और शाक्त द्वन्द्वरत थे। सन्त वेद, पुराण आदि की निन्दा कर मिथ्याचार फैला रहे थे। ऊंच–नीच का भाव जोरों पर था। हिन्दू–मुसलमानों में भी संघर्ष था। तुलसी से पूर्व कबीर आदि ने भी यद्यपि इस भेद–भाव को मिटाने की चेष्टा की थी पर कबीर की वाणी इतनी तीखी थी कि अधिकतर लोग उससे क्षुब्ध हुए, सूफियों के धार्मिक सिद्धांतो में इस्लाम की गंध थी। अतः वह भी हिन्दुओं को पूरी तरह अपनी ओर आकृश्ट न कर सके। कृष्ण भक्त कवि श्रृंगारमयता और लीलागान के द्वारा कोई उदात्त आदर्श सामने न रख सके। उनके काव्य में मन को मुग्ध करने की शक्ति तो थी, पर वह उसे उत्साहित करने, जीवन की आपदाओं से जूझने की शक्ति प्रदान करने में असमर्थ था। किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो भयभीत जनता को आश्वस्त कर सकता, आदर्शविहीन जनमन को आदर्श प्रदान कर सकता, पथभ्रष्ट जनसमूह का पथप्रदर्शक बन सकता और भगवान ने तुलसी को भारत भूमि में भेजकर यही किया।

तुलसी ने जिस समन्वयवाद को लेकर भारत की एकता का यत्न किया वह श्लाधनीय है।

"तुलसी दास जैसा कवि युगों बाद उत्पन्न होता है, जिनकी जीवन–दृष्टि स्वच्छ है, जो हृदय की उदात्त वृतियों को उच्चतम स्तरों की ओर ले जाते हैं, जिनकी कला निश्कलंक है, जो अनेक कवियों के प्रेरणा–स्रोत हैं और जिनमें शताब्दियों से विकसित भारतीय संस्कृति सिमटकर सुसज्जित हो गई है।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समन्वयवादी एवं लोकनायक के रूप में तुलसी के गुणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– ''लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार निष्ठा और विचारपद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयवादी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।'' स्पष्ट है कि लोकनायक होने के लिए किसी व्यक्ति में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि वह एक ओर तो अपने समय की परिस्थितियों का अध्ययन कर पथभ्रष्ट, भटकती हुई, आदर्शच्युत जनता का मार्गदर्शन कर सके और दूसरी ओर प्रचलित धातक मान्यताओं का तिरस्कार कर विरोधी मान्यताओं एवं विचार–पद्धतियों में समन्वय स्थापित कर सके। तुलसी ने ये दोनों कार्य अत्यन्त सुचारू ढंग से किए, इसीलिए वे लोकनायक कहलाते हैं।

तुलसीदास जी ने राम जैसे चरित्र को आधार बनाकर लोकमंगल की सफल चेश्टा की। उनके राम शक्ति, शील और सौन्दर्य के पुंज है। इन तीनों गुणों के सम्मिलन से उनके राम विश्व के लिए आदर्श बन गए हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा ने तुलसी के राम के चरित्र के विषय में कहा है– ''तुलसीदास ने राम के जीवन को इतना लोकव्यापी और मंगलमय रूप दिया है कि उनके प्रति सभी के हृदय में आदर और प्रेम की पवित्र भावनाएँ जाग उठी हैं।" इस प्रकार आदर्श विचार और आदर्श व्यवहार का पूर्ण समन्वय राम के मर्यादापुरुशोत्तम चरित्र में करके तुलसी ने उनके अन्दर पूर्ण पुरूश को अभिव्यक्ति की है।

तुलसी का रामचरित मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। तुलसी ने अपने अधिकांश आदर्श मानस के माध्यम से व्यक्त किए हैं। अपने मानस में लोकमानस को बांधकर उसे उदा्त्ता के साथ व्यक्त करने की असाधारण क्षमता तुलसी में विद्यमान थी। तुलसी लोकद्रष्टा थे। उनकी मानस युग–जीवन और व्यक्तित्व का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करती है। यह समन्वय ही उनकी समस्त साधना का आधार है। अपने समय की मानव–समाज की शाश्वत–समस्याओं

का अंकन तथा उसका समाधान तुलसी ने अपने साहित्य में किया। इसलिए उनका साहित्य 'सत्यं शिव सुन्दरम्' की सफल अभिव्यक्ति है। तुलसी ने अपने काव्य में विविध आदर्शो की स्थापना करके मानव जीवन को अन्याय और दुराचारों से संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। यही तुलसी का मानवतावाद है।

तुलसी के युग में, धर्म के क्षेत्र में विभिन्न सम्प्रदाय प्रचलित थे। शैव, वैशणव एवं पुश्टिमार्ग के अनुयायियों में समन्वय स्थापित कर आपस के वैमनस्य को दूर किया। शैव और वैश्णव मतों में एकता स्थापित करने के उद्‌देश्य से उन्होंने राम के मुख से कहलवाया है–

"शिव द्रोही भय दास कहावा, सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा।
संकर विमुख भगति चह मोरी, सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।

पुष्टिमार्गीय अनुग्रह को भी गोस्वामी जी ने स्वीकार किया और मानस में उसका महत्त्व राम के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया –

"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हरि तुम्हहि होई जाई।
तुम हरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन, जानहि भगत भगत उर नन्दन।।

उस युग में सगुण और निर्गुण उपासना का भी वैमनस्य चल रहा था। सगुण भक्त भक्ति को प्रधानता देते थे। निर्गुण–साधक ज्ञान पर बल देते थे। दोनों एक दूसरे को हीन दृष्टि से देखते थे। तुलसी ने दोनों ही उपासना पद्धतियों को स्वीकार किया–

"निगुणहि सगुनहि कछु नहिं भेदा
उभय हरहि भव संभव खेदा।"

देवताओं की उपासना को लेकर भी हिन्दू धर्म के अनुयायी परस्पर विरोध में संलग्न थे। कोई शिव को सबसे बड़ा देव सिद्ध करता था, कोई शक्ति को और कोई विष्णु को। तुलसी ने अपनी 'विनय पत्रिका' में सभी प्रमुख देवों की स्तुति करके अपने व्यापक समन्वयवाद का परिचय दिया है। दूसरी ओर वे शैवों और वैशणवों के पारस्परिक विरोध की भर्त्सना राम के मुँह से करवाते हैं।

ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में भी तुलसी ने समन्वय स्थापित किया। ज्ञान भी मान्य है किन्तु भक्ति की अवहेलना करके नहीं, और भक्ति भी बिना ज्ञान के अपंग है। दोनों की दृष्टि मे थोड़ा सा अन्तर है, किन्तु दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। राम कहते हैं–

"जानाहि मोर बल निज बल नाहीं
दुहु कहुँ काम क्रोध रिपु आहीं।
यह विचार पण्डित मोहिं भजहीं
पाएहु ग्यान भगति नहिं तजहीं।।"

अपने युग में प्रचलित विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों का भी समन्वय उन्होंने किया। अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और विशिष्टद्वैतवाद तीनों सिद्धांतों से दूर रह कर अपने स्वरूप को पहचानने पर बल दिया–

"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसीदास परिहरै तीनिभ्रम सो आपन पहिचायै।।

विभिन्न दर्शनों के भाव में उनकी जनता को सीधा पथ दिखलाते हुए उन्होंने कहा है–

"सिया–राममय सब जग जानी।
करहूँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।"

राजनीतिक क्षेत्र में समन्वय के सिद्धांत को अपनाते हुए उन्होंने राजा और प्रजा के बीच उचित संबंध स्थापित करते हुए दोनों के कर्तव्य पर प्रकाश डाला है–

"जासु राज प्रिय प्रजा दुरवारी।
सो नृप अवसि–नरक अधिकारी।"

तथा –

'सेवक कर पद नयन से, मुक्त सो साहिबु होइ।'

अपने समय की राजनीतिक गन्दगी को उन्होंने दूर करने का यत्न किया। राजनीति से संबंधी आदर्श प्रस्तुत किए। रामराज्य की कल्पना द्वारा अच्छे शासन के मानदण्ड दर्शाये। राम के रूप में एक आदर्श प्रजावत्सल और खलविनाशक राजा की कल्पना की–

"दैहिक दैहिक भौतिक तापा, रामराज काह नहिं व्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।"

वस्तुतः आदर्श राम–राज्य की इसी सुन्दर कल्पना में आधुनिक युगीन नेता महात्मा गांधी को मोहित कर लिया था। भले ही हम आज प्रजातंत्रवाद की रट लगाएँ, किन्तु वह राम–राज्य की समता करने में असमर्थ हैं।

सामाजिक क्षेत्र के साथ–साथ उन्होंने पारिवारिक क्षेत्र में भी समन्वय किया। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों मे– तुलसी ने धर्म एवं समाज के क्षेत्र में ही समन्वय स्थापित नहीं किया अपितु पारिवारिक क्षेत्र के अन्तर्गत पिता और पुत्र में, पति–पत्नी में, सास और पुत्र वधु में, भाई–भाई में, स्वामी और अनुचर में तथा पत्नी–सपत्नी में भी समन्वय स्थापित किया। नष्ट होती हुई पारिवारिक एकता पर उन्होंने व्यंग्य किया–

"सुत मानहिं मातु–पिता तब लौं,
अबला–नव दीख नहीं जबलौं।
ससुसरि पियारी लगी जब तें,
रिपु कुटुम्ब भये तब तें।"

उन्होंने आदर्श पुत्र की व्याख्या इस प्रकार की –

"सुनु जननि सोई सुत बड़ भागी।

जो पितु मातु वचन अनुरागी।"

राम के माध्यम से आदर्श भाई की सफल अभिव्यंजना उन्होंने की है। चारों भाइयों में इतना स्नेह है कि वे एक दूसरे के लिए राज्य तक छोड़ देते हैं–

"जनमें एक संघ सब भाई, भोजन समय केलि लरकाई।
करन बेध उपबीत बियाहा। संग संग सब भपेउ उदाहा।
विगल वंश यह अनुचित एकू। बन्धु बिहार बड़हिं अभिषेकू।।"

इसी प्रकार दाम्पत्य जीवन में समन्वय उपस्थित करते हुए उन्होंने पति को एक नारीवत्त रखने का और पत्नी को पति की ही हितकामना करने का उपदेश दिया–

"एक नारिव्रत रत सब भारी।
ते मन–वचन कर्म पति हितकारी।।"

भाग्य एवं पुरूशार्थ में समन्वय करते हुए उन्होंने समाज में मनुष्य को कर्म करते रहने की प्रेरणा दी। मनुष्य जैसा कर्म करेगा वैसा ही उसको फल प्राप्त होगा, जो उसका भाग्य है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को निरंतर कर्म करना चाहिए–

"कर्म प्रधान विस्व रचि राखा
जो जस करइ सो तस फल चाखा।"

जीवन के विविध पक्षों का समन्वय प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी तुलसीदास साहित्यिक क्षेत्र में समन्वय करना नहीं भूले। अपने युग में प्रचलित राम और कृष्ण दोनों ही काव्य–धाराओं को उन्होंने गति प्रदान की। उनका रामचरितमानस 'नानापुराण–निगमागम सम्वत है। अतएव भारतीय संस्कृति के सभी ग्रन्थों का इस काव्य रचना में समन्वय हो गया है। सभी रसों–श्रृंगार, वीर, करूण, शान्त, भयानक, रौद्र, अदभुत, और वात्सल्य तथा हास्य का परिपाक उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। ब्रज एवं अवधी भाषा में तो रचनायें की ही हैं साथ ही स्वदेशी एवं विदेशी भाषाओं के शब्दों तक को अपनी भाषा के अनुरूप ढाल कर स्वीकार करने में उन्होंने संकोच नहीं किया। शुद्ध संस्कृतनिष्ठ एवं परिमार्जित, शिष्ठु तथा प्रांजल भाषा का प्रयोग किया जो व्यावहारिक और सरल हैं। कहीं–कहीं ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी मिलता है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के साथ–साथ अरबी, फारसी के शब्दों को भी ग्रहण किया।

रचना शैली की दृष्टि से भी अपने युग में प्रचलित सभी काव्य रूपों और छन्दों को अपनाया। दोहा–चौपाई से लेकर पद, बरवै, कवित, सवैया और लोकगीतों की शैली तक को स्वीकार किया। प्रबन्ध, मुक्तक और गीत–शैली का सफल समन्वय किया। पौराणिक–ऐतिहासिक शैली के साथ अपनी स्वतंत्रत शैली को भी जन्म दिया। समासयुक्त और समास विहीन शैली का भी समन्वय स्थापित किया।

अलंकारों को साधन रूप में अपनाते हुए सभी अलंकारों के भेदोंपभेद सहित उदाहरण उनके काव्य में प्राप्त हो जाते हैं। डॉ. उदयभानुसिंह के शब्दों में– ''तुलसी का काव्य अलंकारों का रत्नाकर है। वे अधिकतर प्रकरणोपयोगी विषयों से अलंकार सामग्री चुनते हैं और उसे रचना प्रवाह के क्रम में इस सफाई से मिलाकर बिठा देते हैं कि सजावट तो पूरी हो जाती है लेकिन बनावट जरा भी मालूम नहीं पड़ती।''

इस प्रकार तुलसी का काव्य समन्वय की उज्ज्वल गाथा है। उनकी यह समन्वय परक भावना लोकचिन्ता से परिपूर्ण है। अतएव भारत भूमि परवे एक युग के लिए नहीं अपितु युग–युगों के लिए सच्चे लोकनायक व महान प्रथ–प्रदर्शक बनकर प्रतिष्ठित हो गए है, जिस समाज में रहकर तुलसी ने अपना जीवन व्यतीत किया उसके सुख–दुख को उन्होंने सदा स्मरण रखा, उसकी चिन्तायें उन्हें सदैव व्याकुल बनाये रहीं–यही तुलसी का लोकनायकत्व था। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी उनके समन्वय की विलक्षणता पर विमुग्ध होकर कहते है–''उनका सारा काव्य समन्वय–ग्रार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाशा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय–रामचरित मानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।''

तुलसी के काव्य में जीवन के विविध पक्षों का सफल और समन्वयवादी निरूपण देखकर तुलसी की महानता को स्वीकार करते हुए डॉ0 प्रकाशचन्द्र गुप्त का कथन है कि – ''तुलसी की दृष्टि व्यापक और सार्वभौमिक थी। दृष्टि का यह व्यापक प्रसार हमें विश्व के दो चार ही लेखकों या कवियों में मिलता है। जीवन के रंग–बिरंगे, चित्रविचित्र रूप को उन्होनें उसकी समग्र व्यापकता में देखा। मनुष्य का,प्रकृति का, समाज का व्यापक दर्शन, तुलसी साहित्य में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ है। जो विशाल चित्रपट तुलसी ने हमें दिया उसके पीछे हम कवि की मूलतः जनवादी दृष्टि ही पाते हैं।

संदर्भः

1. रामचरित मानस, तुलसीदास, बालकाण्ड पृ 46.
2. साहित्यिक निबन्ध, डॉ शान्तिस्वरूप गुप्ता, पृ 535
3. हिन्दी साहित्य का तहान, डॉ. राजनाथ सिंह पृ 187–188
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनामक इतिहास पृ 443
5. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त पृ 252

डॉ0 सुधा रानी
सह–आचार्य
अध्यक्ष हिन्दी–विभाग
वैश्य महाविद्यालय, भिवानी।

18

अंडमान तथा निकोबार में सादरी भाषा साहित्य की स्थिति

बिमला टोप्पो

सारांश

छोटानागपुरी आदिवासियों का इतिहास गौरवशाली रहा हैं इस सच्चाई से हम भाग नहीं सकते हैं उनकी भाषा संस्कृति ,रीति–रिवाज, परमपराएं और उनकी अपनी प्रशासनिक व्यवस्था अनूठे रहें हैं। आज भी छोटानागपुरी आदिवासियों की सादगी , ईमानदारी, सहज स्वभाव वैसे ही हैं जैसे हमारे पूर्वजों के थे। अपने अस्मिता की रक्षा के लिए उन्होंने संघर्ष किया। अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में छोटानागपुरी आदिवासियों का आगमन 1918 से माना जाता हैं।छोटानागपूरी आदिवासी उराँव ,खड़िया और मुंडा जनजाति के लोग रोजगार की तलाश में अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में मजदूर के रुप में लाए गए दूसरी ओर आसाम, भूटान, जलपाईगुड़ी के चाय बगानों में कार्य करने के लिए जाते रहे। जहां भी रोजगार की तलाश में गए आपस में संपर्क भाषा के रूप में उन्होंने सादरी भाषा को ही अधिक महत्व दिया क्योंकि उरांव जन जाति के लोगों की भाषा कुडुख है और मुंडा जनजाति के लोग मुंडारी भाशा में बात करते हैं एवं खड़िया जन जााति के लोग खड़िया भाशा में वार्तालाप करते हैं पर जब ये तीनों जातियों के लिए लोग आपस में मिलतें हैं तो सादरी भाषा में वार्तालाप करते हैं इस लिए सादरी भाषा में बात करने वाले भारत के हर कोने में मिल जाएंगे। मुख्यतः रांची शहर जो वर्तमान में झारखंड राज्य है यहां सादरी भाषा में बात करने वालों की संख्या अधिक है पर कुछ बुद्विजीवि वर्ग ऐसे हैं जो सादरी भाशा को नागपूरी भाशा से संबोधित करते है। छत्तीसगढ़ , मध्यप्रदेश, भोपाल, उड़ीसा ,पश्चिम बंगाल, आसाम के कुछ क्षेत्रों एवं अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में छोटानागपूरी आदिवासी उराँव ,खड़िया और मुंडा जनजाति ठेठ सादरी भाषा में बात चीत करते हैं ।

अंडमान निकोबार द्वीप समूह में सादरी भाषा के साहित्य को जानने से पूर्व वहां की भौगोलिक परिस्थितियों एवं छोटानागपुरियों के इतिहास से रूबरू होना आवश्यक है। अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में छोटानागपुरी आदिवासियों का आगमन सन 1918 ई॰में ब्रिटिश शासन काल में छोटानागपुर यानि पुराना बिहार वर्तमान झारखंड छतीसगढ़, उड़ीसा वा पश्चिम बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों से उराँव, मुण्डा, खड़िया आदिवासियों को इन द्वीपों में छह–छहः महीनों के अवधि के लिए लाया जाने लगा जिनकी बहाली एवं चालान की जिम्मेदारी मिशनरियों के हाथ में थी निश्चित समय की समाप्ति के बाद उन्हें अपने मुख्यभूमि छोटानागपुर वापिस भेझ दिया जाता था।यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा। उश्मान सेन चालान, डिपो चलान, सुदान सेन चालान एवं फादर चालान वा साहेब चालानों के तहत मजदूरों को द्वीप समूह के विकास के लिए लाया गया।

अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह को बसाने का ध्यान अंग्रेजी हुकूमत ने निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रख कर किया –(1) संकट में पड़े लोगों को आश्रय प्रदान करना (2) तूफान के कारण जहाजों का क्षतिग्रस्त हो जाना। (3)इंगलैंड के अंग्रेजी जेलों की भीड़ कम करना। पहला पेनल सेंटलमेंट 1789 में किया गया। भारत में 1857 के सिपाही विद्रोह के कारण ब्रिटिश सरकार को अंडमान एवं निकोबार में दूसरे चरण का सेंटलमेन्ट के बारे में दोबारा सोचना पड़ा।

सन 1923 ई ॰में प्रशासन ने रिवाइन्ड पेनल सेटलमेंट लागू किया गया जिसके तहत भारत वर्ष के किसी भी क्षेत्र के व्यक्तियों को अंडमान में स्थाई रूप में बसने के लिए अनुमति प्रदान की गई इसी नीति के तहत प्रवासी आदिवासियों की पहचान अंडमान में स्थाई बासिन्दे के रूप में हुई वहीं द्वीप समूह के विकास कार्यो के लिए जैसे सड़को का निर्माण कार्य ,जंगलों की साफ–सफाई का कार्य, बैरक बनाने का कार्य इत्यादि वन विभाग की स्थापना एवं संचालन में छोटानागपुरियों का योगदान ब्रिटिश सरकार को मिलता रहा।

अंडमान के जंगलों में काम करना यहां की भौगोलिक स्थिति के कारण काफी कठिन था। मुख्य भूमि से हजारों मील दूर यहां न तो अखबार न रेडियो न सिनेमा घर था इस लिए छोटानागपूरी आदिवासियों के लिए शिकार करना और मछली मारना मनोरंजन का बड़ा साधन था। जंगल में मिलने वाली जड़ी बूटी इनकी हर बीमारी की दवा थी।

मुख्य रूप से मजदूरों की बहाली **राँची** से ही की जाती थी जिस की वजह से उराँव , मुण्डा और खड़िया जनजातियों को राँची वालों के नाम से जाना जाने लगा जो आज भी चलन में है जबकि इन द्वीपों में अलग– अलग राज्यों के अलग –अलग भाषा– भाषी जैसे तमिल ,तेलगू ,मलयालम, बंगाली पंजाबी ,मराठी इत्यादि बसते हैं उन्हें उनके प्रदेश वा भाषा के आधार पर पुकारा जाता है। मिनी

इंडिया के नाम से अंडमान तथा निकाबार द्वीप समूह को संबोधित किया जाता हैं.| द्वीप समूह में रहने वाले छोटानागपुरी आदिवासी समुदाय ने कभी **राँची** नाम का विरोध नहीं किया और न ही सुधार करने की कोशिश की गई जिसका परिणाम यह हुआ कि जब सन 1975 में छोटानागपुरी आदिवासियों का संघ बना तो उसका नाम **राँची एसोसिएन** रखा गया जिसका मुख्य उद्देश्य अपने लोगों को सामाजिक सांस्कृतिक वा आर्थिक रूप से सशक्त करना हैं।

उराँव , मुण्डा और खड़िया समुदाय के लोग द्वीप समूह के विभिन्न विभागों जैसे शिक्षा विभाग , स्वास्थ्य विभाग, पुलिस विभाग , लोक निर्माण विभाग एवं वन विभाग में अपनी सेवाएं देते आ रहे हैं। मुख्यतः शुरुवात के दिनों में लोक निर्माण विभाग वा वन विभाग में अधिकतर छोटानागपूरी आदिवासियों ने अपनी सेवाएं दी हैं। विरान स्थान को रहने लायक बनाया हैं घने जंगलों की साफ सफाई, सडकों का निर्माण , पुलों का निर्माण वा इमारतों का निर्माण ,हवाई अड्डों का निर्माण, एवं बंदरगाहों के निर्माण में अपना योगदान दिया हैं।

उराँव , मुण्डा और खड़िया जनजाति छोटानागपुर से दूर रहने के कारण अपनी भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, गीत गोविन्द, को धीरे –धीरे भूलने लगे पर जब ये तीनों जातियों के भाई–बहन एक दूसरे से भेंट करते हैं तो सादरी भाषा में ही बात करते हैं। सादरी भाषा संपर्क भाषा के रूप बोली जाती है। पोर्ट ब्लेयर में कम लोग सादरी भाषा में बात करते हैं वहीं पोर्ट ब्लेयर शहर से दूर जंगलो की ओर मध्य एवं उत्तरी अंडमान के क्षेत्रों में सादरी भाषा में बात करने वालों की कमी नहीं है पर सादरी भाषा में लेख लिखने वालों को ढुढना आसान नहीं है क्योंकि इस समूदाय के लोग द्वीप समूह के छोटे– बडे द्वीपों में रहते है और उनसे संपर्क कर पाना कठिन है पर देखा जाए तो दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले गांव वासियो ने ही भाषा को संजो कर रखा हुआ हैं क्योंकि सादरी भाशा की मिठास को वे समझते है। द्वीप समूह में बसने वाली छोटानागपुरी अपने मनोरंजन के लिए आधुनिक नागपुरी गीत संगीत आडियो–विडियो, सी डी मंगवाते हैं या खरीदते हैं। सादरी भाषा से लगाव तो भरपूर हैं पर सादरी भाषा में रचना करने के विषय में अभी बहुत काम करने की आवश्यकता हैं। सादरी भाषा का चलन मौखिक रूप से अधिक है लिखित रूप में कम ही लोग हैं जो सादरी में रचनाएं करते हैं कुछ लोग हैं जो सादरी भाषा में गीत वा कविताएं लिखते है। सादरी भाशा में कहानी ,उपन्यास तो आज तक लिखे नहीं गए, हिन्दी भाशा में जरूर हमारे पूर्वजों के इतिहास को लिखा गया हैं।

द्वीप समूह में भाषा संस्कृति को लेकर न किताबें उपलब्ध थी और न ही कोई ऐसा स्रोत जहां से मंगवा सके। आज के परिवेश में उन लोगों के पास ही छोटानागपुरी आदिवासियों की भाशा संस्कृति रीति–रिवाज परंपरा पर किताबें मिलेगी जिन्हें रूचि वा जिज्ञासा है पर ऐसे लोगों को उंगलियों में गिना जा सकता है।

द्वीप समूह में बसने वाले छोटानागपुरी आदिवासी उरांव ,मुण्डा ,खड़िया और संथाली आदिवासी भाई– बहन आपसी सौहार्द से रहते हैं साथ ही लंबे समय से ये तीनों चारों समुदाय आपस में शादी विवाह और रिश्तेदारी निभातें चले आ रहे है जिसमें किसी भी तरह का कोई जाति या भाशा का भेद भाव नहीं रखते हैं , 2007 में एक्शन एड गैर सरकारी संस्था के साथ मिलकर रांची ऐसोसिऐशन के स्वयं सेवकों द्वारा सर्वे कार्य किया गया था जिसके अनुसार द्वीपों में छोटानागपुरी आदिवासियों की जनसंख्या लगभग 46,623 पाई गई है जिसमें अलग –अलग भाषा बोलने वालों की संख्या निम्न लिखित है–––

1 सादरी भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या–27849

2 हिन्दी भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या – 5981

3 खड़िया भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या– 2364

4 कुडुख भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या –7692

5 मुण्डारी भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या –2471

6 संथाली भाषा बोलने वाले लोग,ों की संख्या –15 है और 251 लोगों द्वारा भाषा पर कोई संतोशजनक उतर प्राप्त नहीं हुआ। पूर्ण रूप से प्रत्येक द्वीपों में बसने वाले इन आदिवासियों तक पहुंचने की कोशिश की गई जिसमें कुछ लोग जरूर छूट गए है। जो अपने निवास स्थान में नहीं पाए गए , कुछ लोग मुख्य भूमि झारखंड वा छतीसगढ़ के दौरे पर थे जिनका आँकड़ा एकत्रित नहीं किया जा सका।

द्वीप समूह में बसने वाले छोटानागपुरी आदिवासी अपनी नई पीढी को क्या देकर जाएंगे यह एक बडा सवाल है ?सादरी साहित्य पर काम करने के लिए समुदाय को संगोष्ठियां एवं साहित्य के विस्तार के लिए कार्यक्रमों आयोजन किया जाना चाहिए इस दिशा में सकारात्मक पहल करने की आवश्यकता हैं।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि अंडमान निकोबार द्वीप समूह में बसने वाले छोटानागपुरी आदिवासी उरांव ,मुण्डा ,खड़िया , हो एवं संथाली आदिवासी भाई–बहनों को अपनी–अपनी भाषा संस्कृति को संजो कर रखना एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि द्वीप समूह में मिली –जुली भाषा संस्कृति हैं । अंडमान तथा निकोबार प्रशासन के द्वारा भारत वर्श के विभिन्न राज्यों से अनेक भाषा–भाषियों को द्वीप समूह में लाकर बसाया गया है। तमिल, तेलगू, मलयालम, बांगला ,उड़िया, गुजराती, मराठी, पंजाबी,

भोजपूरी , बिहारी, राजस्थानी, हरियाणवी, अंग्रेजी , केरेन (केरेन जाति जिनका मूल स्थान ब्रमा है),नेपाली ,कन्नड़ वा हिन्दी भाषा को स्थानीय निवासी अपने व्यवहार में लाते है, इसके अतिरिक्त अंडमान तथा निकोबार की मूल आदिम जनजातियों की अपनी भाषा हैं(जारवा , ओंगी , ग्रेट अंडमानी, सेंटिनली, शौम्पेन वा निकोबारी आदिम जनजाति) । हिन्दी भाषा पूरे द्वीप समूह में बोली जाती हैं।

सादरी साहित्य लिखने की ओर कदम बढाए जा सकते हैं। अपने लोगों को जागरूक करने के साथ–साथ द्वीप समूह में अपनी सादरी भाषा की रक्षा के लिए वैचारिक क्रांति लाने की जरूरत हैं विचारों में बदलाव आएगा तो देर से ही सही पर सादरी भाशा साहित्य अपने मुकाम तक निःसंदेह पहुंचेगी। भाषा को जीवित रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। भाषा समाज की आत्मा हैं जिस समाज की भाषा व उसका साहित्य जितना समृद्ध होगा वह समाज उतना ही उन्नत होगा क्योंकि भाशा साहित्य ही समाज का दपर्ण होती हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1 अगापित कुजूर , के के पब्लिकेशन्स, 618 कटरा ,इलाहाबाद 211002 छोटानागपुर के आदिवासियों का अंडमान प्रवसन एवं विकास में योगदान (1918–1990) प्रथम संस्करण 2017 , पृश्ठ संख्या 19, 22, 25

BIMLA TOPP0
C/O S.R.enterpricies, Muncipal Complex Shop No 4
, Dairy Farm , Port Blair , P.o Junglighat 744103
South Andaman
M.NO 9476078220, email Id-----
bimlatoppo@gmial,com

हर माँ को ये जानने का हक है

हर माँ को ये जानने का हक है
क्यों रौंदी जा रही है कच्ची कलियाँ
क्यों होते जा रही हैं भ्रुण हत्या
क्या इन्हें जीने का हक नहीं ?

हर माँ को ये जानने का हक है
क्यों बेटियाँ दूर रहे पुस्तकों से
क्यों बंधी रहे चूल्हा–चौको से
क्या इन्हें पढने का हक नहीं ?

हर माँ को ये जानने का हक है
क्यों आज भी जल रही हैं बेटियाँ
चंद सोने और गहनों के लिए
क्यों आज भी जल रही है बेटियाँ
दहेज के दिखावटी अरमानों के लिए।

हर माँ को ये जानने का हक है
क्यों सुरक्षित नहीं है बेटियाँ
घर, गली, कुच्चों और शहरों में
क्यों सुरक्षित नहीं हैं बेटियाँ
बस, ट्रेनो और विद्यालयों में

क्यों पंख कटे रे बेटियों के
क्या ख्वाहिशों को उड़ने का हक नहीं

जब समानता है नर–नारी में
ते भेदभाव क्यों होते है
गर–नर भक्षक हो जाए कोई
तो रक्षक कौन कहलाए
हर माँ को ये जानने का हक है

Bimla Topp0
C/o S.r.enterpricies, Muncipal Complex
Shop No 4
, Dairy Farm , Port Blair , P.o Junglighat
744103
South Andaman
M.no 9476078220, Email Id ---
Bimlatoppo@gmial,com

19 सांस्कृतिक तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन

डॉ0 सुधा रानी

सारांश

आचार्य द्विवेदी का सम्पूर्ण साहित्य भारतीय संस्कृति का कोश है। उनका समस्त उपन्यास–साहित्य सांस्कृतिक मूल्यों को नवीन प्रेरणा और दिशा देने का कार्य करता है साथ ही उन दिशाओं की ओर अग्रसर होने का संदेश भी देता है, यही द्विवेदी जी की सांस्कृतिक चेतना है। आचार्य द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न युगों की सांस्कृतिक मान्यताओं को उजागर करते हुए अपने कुछ पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति को भी उद्घाटित किया है। उनके चारों उपन्यासों में भारतीय संस्कृति के अनेक तत्त्व बिखरे पड़े हैं। 'बाण भटट की आत्मकथा' में हर्शवर्धन काल की संस्कृति, चारूचन्द्र लेख में मध्य काल की संस्कृति तथा अनामदास का पोथा' में उपनिशद काल की संस्कृति तथा पुर्नाव में गुप्तकाल की संस्कृति का भव्य रूप चित्रित हुआ है और तत्कालीन संस्कृति के सभी अंगों को आलोकित होने का अवसर प्रदान किया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में यज्ञों का सुन्दर निरूपण हुआ है। ऋषि लोग अपने आश्रमों में यज्ञादि किया करते थे। इन यज्ञों का उद्देश्य वातावरण को शुद्ध करना तथा मानव हदय का शुद्धीकरण करना था। किसी भी शुभकार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रारंभ में यज्ञ करने का विधान था। यज्ञों का पावन एवं सुगन्धित धूम्र पृथ्वी से देवलोक तक फैलता था।

द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन युग की समयिक समस्याओं को अपने सम्मुख रखकर युगापेक्षित तथा स्वस्थ दृश्टिकोण प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत बाल–विवाह, विधवा–विवाह, पुनर्विवाह, पारिवारिक व्यवस्था का संयोजन, धर्म और साधना का स्वरूप आदि प्रश्नों पर द्विवेदी जी की मानवतावादी विचारधारा इसकी पष्ठभूमि है। सामाजिक मंगल उपन्यासकार का ध्येय है। उपन्यास में विश्व–मानवता को रागमय बनाने का संकल्प है। आधुनिकता का स्वर उपन्यासों में गूंज रहा है। भट्टिनी के जाति विरोधी आक्रोश में आधुनिकता का ही स्वर है। भट्टिनी एक नए समाज के निर्माण की कल्पना करती थी, जहां सामाजिक न्याय हो। भट्टिनी के रूप में द्विवेदी जी का न्याय और समता युक्त व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ है। आधुनिक संदर्भ में उनका यह चित्रण बड़ा महत्वपूर्ण है। द्विवेदी जी ने छुआछूत, जातिपाँति के भेदभाव को मिटाने के आधुनिक प्रयास को अपने समस्त उपन्यासों में अंकित किया है। नीच जाति की जाबाला उच्च जाति के ब्राह्मण रैफ्व के साथ विवाह करती है। चन्द्रलेखा और सात वाहन का विवाह इसी बात का साक्षी है।

आचार्य द्विवेदी के चारों उपन्यासों में नारी महिमा का यशोगान किया गया है। 'बाणभटट्' की आत्मकथा की चन्द्रदीधिति (भट्टिनी) 'चारूचन्द्रलेख' की चन्द्रलेखा, 'पुर्नाव' की मृणाल मंजरी तथा अनामदास का पोथा की महिमामयी नारियाँ है। द्विवेदी जी के चारो उपन्यासों में इन्हें महिमामयी नारियों के गुणगान है।

इन उपन्यासों का कथासूत्र भी नारियों के हाथ में रहता है निपुणिका, महामाया, चन्द्रा, नारी माता मैना तथा माता ऋतम्भरा सूत्र धारिणी नारियाँ है। द्विवेदी जी ने प्रेमिका के स्वरूप को विशुद्ध और उदात्त रूप दिया है। प्रेमिका के रूप में निपुणिका तथा भट्टिनी, पत्नी के रूप में सुचरिता, संन्यासिनी के रूप में महामाया को स्वरूप एवं उच्च धरातल प्रदान किया है। उपन्यासों में नारी शक्ति की प्रतिष्ठा एवं सम्मान का बराबर प्रयास किया गया है। नारी समाज की शक्ति है। नारी के महत्त्व को स्वीकार करते हुए बाण कहता है–

"मै स्त्री शरीर को देव–मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।"[1] चारू चन्द्र लेख में नायक सातवाहन चन्द्रलेखा से कहता है –"देवि मैं नारी जाति का सम्मान करता हूँ, उसकी महिमा ओर मर्यादा का जानकार हूँ।"[2] इस प्रकार द्विवेदी जी के उपन्यास साहित्य में नारी जाति की महिमा का आख्यान है।

भारतीय जीवन में कर्मफल एवं पुनर्जन्म संबंधी विश्वास बड़ा महत्त्व रखता है। नियतिवाद में आस्था रखना भारतीय संस्कृति की एक अनन्य विशेषता है। द्विवेदी जी के उपन्यासों में नियतिवाद का स्वरूप दार्शनिक एवं सांस्कृतिक चिन्तनवाद है, सेवा धर्मों में नियति और कर्म का समन्वय किया गया है। द्विवेदी जी ने भाग्य एवं कर्म को साथ–साथ लिया है। उपन्यास में घटनाएँ नियाति के अनुसार घटती हैं। बाण का यह कथन नियतिवादी आस्था का परिचायक है। नियाति–नटीं का अभिनय किसी के वश में नहीं है।

द्विवेदी जी के उपन्यासों में अन्ध–विश्वासों और तांत्रिक साधनाओं का उल्लेख भी मिलता है। इन तांत्रिक सिद्धियाँ और

अन्धविश्वासों ने जनता की चितवृत्ति को जड़ीभूत कर दिया है। द्विवेदी जी का सिद्धियों पर विश्वास नहीं हैं क्योंकि सिद्धियों के पीछे लोग पागल हो जाते हैं। इनके दुष्परिणामों का उल्लेख इनके उपन्यासों में खूब हुआ है। लेखक अरूप वैचारिक आधार पर ही उपन्यास में वर्णित साधनाओं और सिद्धियों की आभा तोड़ना चाहता है।

उपन्यासों में तांत्रिक साधनाओं का उल्लेख रोमांच और रहस्यात्मक आधार पर हुआ है। इन उपन्यासों में बाह्य आडम्बरों का विरोध किया गया है। तंत्र–मंत्र की वृद्धि पर चिंता व्यक्त की गई है और उसकी निरर्थकता भी सिद्ध की गई है।

द्विवेदी जी के उपन्यास स्वदेश–प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है। इन उपन्यासों के रचनाकाल के समय भारत अंग्रेजों के अधीन था। भारत की जनता अंग्रेजों के पाशविक अत्याचारों को सहन कर रही थी। अंग्रेजों की दमन–नीति का विरोध द्विवेदी जी के समस्त उपन्यास–साहित्य में हुआ है। आत्मकथा में प्रत्यत्न दस्युओं के आसन्न आक्रमणों के प्रतिरोध हेतु जानता को संगठित करने के रूप में हुआ है। 'चारू चन्द्र लेख' में भी सात वाहन और चन्द्रलेखा के द्वारा विदेशी आक्रमणों के विरोध में राष्ट्र की जनता को देश–रक्षा हेतु संगठित किया गया है। इस प्रकार राष्ट्र मुक्ति की भावना चारों उपन्यासों में सर्वथा दृष्टिगोचार होती है।

द्विवेदी जी के उपन्यासों में जनता मनोरंजन के नाना साधनों का प्रयोग करती थी। बड़े–बड़े नगरों में प्रसिद्ध नृत्यकिया तथा नाटक मंडलियाँ थीं। मदिरा का सेवन होता था। राजाओं के अन्तःपुर का वातावरण विलासपूर्ण होता था। राजा अनेक रानियाँ रख सकता था। नृत्य, गान, संगीत का प्रचार था। भेरी, मृदंग, शंख और नगाड़े आदि प्रमुख वाद्य थे। इनके अतिरिक्त मनोरंजन के साधन ये भी थे– द्यूत क्रीड़ा, प्रहेलिका, वीणावादन, अत्याक्षरी, पद–व्याख्या आदि। उपन्यासों में अनेक पर्वों एवं उत्सवों का उल्लेख भी मिलता है।[3]

द्विवेदी जी का मानवतावाद किसी व्यक्ति विशेश का नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोशण से, मुक्ति चाहता है। समष्टि मानव के प्रयत्न से ही उस सभ्यता एवं संस्कृति का जन्म हुआ, जो मानव को अंधकार से प्रकाश में लाने की चेष्टा करती रहती है। द्विवेदी जी साहित्य को अपने आप में लक्ष्य नहीं मानते, उसे मानव के विकास का साधन मानते हैं– ''जो साहित्य हमारी वैयक्तित्व क्षुद्र संकीर्णताओं से हमें ऊपर ले जायँ और सम्भाव्य मनुष्यता के साथ एक करके अनुभव कराये, वही उपादेय हैं।''[4]

आत्मकथा में महामाया देश के समस्त युवकों को प्रत्यन्त दस्युओं का प्रतिरोध करने के लिए उद्बोधित करती है। उन्हें भय है कि यदि प्रत्यन्त आ गए तो बालक अनाथ हो जायेगें, स्त्रियाँ विधवा हो जायेगी, वृद्ध–वृद्धा बेसहारा हो जाएगें, सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच जाएगी। इसलिए अमृत के पुत्रों, जन सेवा और राष्ट्र रक्षा के लिए उठो। दीनों, दुखियों, पीड़ितों और शोषितों के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की भांति निचोड़ कर दे देना सबसे बड़ा तप है।

द्विवेदी जी का चिन्तन चाहे किसी भी क्षेत्र में हो उसके मूल में मानव लाभ एवं कल्याण ही हैं। वे व्यक्ति मानव के स्थान पर समश्टि मानव को अधिक महत्ता प्रदान करते हैं। द्विवेदी जी की मान्यता है कि चाहे साहित्य हो या विज्ञान, धर्म हो या दर्शन, लोक हो या परलोक, मानव का कहीं भी और जैसे भी हित–चिन्तन हो वही श्रेष्ठ है।

द्विवेदी जी के उपन्यास लोक संस्कृति पर सजीव अंकित हुए है। संस्कृति के अंतर्गत समस्त आचार–विचार, धार्मिक अनुश्ठान, मनोरंजन, उत्सव, पर्वों आदि समस्त उपादानों एवं तत्त्वों का चित्रण है। तत्कालीन व्यवस्था, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, तथा शिक्षा व्यवस्था का समुचित चित्रण मिलता है। इनके चारों उपन्यास इन विशिष्टताओं के पोशक हैं।

द्विवेदी जी की दृष्टि समन्वय की ओर अधिक रही है। किसी राष्ट्र अथवा जाति की संस्कृति समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाकर ही मानव प्रेम और अखण्डमानवता की स्थापना कर सकती है। इसी कार्य हेतु समन्वय उसको निरंतर परिष्कृत और सुसंस्कृत करने में सहायक बनता है। इस युग में भी समन्वय के महत्व को समझा जा सकता है। राजनीति स्तर पर उत्खाट प्रतिरोपण की नीति, धार्मिक स्तर पर पंच वृष्णि वीरों की उपासना, सामाजिक स्तर पर वर्ण–भेद की कट्टरता का अभाव, कलात्मक स्तर पर हाव–भाव और ताल–लय के समन्वय पर विशेष ध्यान, शिल्प कला में विभिन्न शैलियों का मिश्रण इस बात का प्रमाण है कि इन्हीं कारणों से गुप्त युग को इतिहास में स्वर्ण युग कहते है।

इस उपासना में राजा यज्ञसेन ने शैव होने के बावजूद भृगु आश्रम में विष्णु मंदिर बनवाया था।[5] संन्यासिनी माता के शब्दों में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

आचार्य द्विवेदी सांस्कृतिक चेतना सम्पन्न साहित्यकारों में से थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य में जहाँ एक ओर उनकी आत्मा व्याप्त है, वहाँ दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का गौरव निहित है। द्विवेदी जी

स्वयं कहते हैं कि ''बाणभटट की आत्मकथा में बाण के शब्दों ने उस युग का पुनः निर्माण कर दिखाया है। ये काल उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं जितनी की उन कालों की सांस्कृतिक परम्पराएँ। उनकी कल्पना तूलिका ने प्रतिभा के रंगों से हर्षकालीन बारहवीं सदी की संस्कृति का जो सतरंगा चित्र अंकित किया है, यह पाठकों के लिए इतिहास, काव्य और कला की त्रिवेणी है। इनके सभी उपन्यास अपने–अपने युगों के सांस्कृतिक मूल्यों के कोश हैं। इन उपन्यासों में मानवतावाद है, विश्वमानवतावाद है। इसी विश्व बन्धुत्व की भावना का सन्देश भारतीय संस्कृति देती है, और यही आचार्य द्विवेदी का परम लक्ष्य है। उन्होंने उपन्यासों में विशुद्ध भारतीय संस्कृति की महिमा के गुणगान गाये हैं, मानवतावाद के जय–गीत गाये हैं। इनमें अमरता का सन्देश निहित है तथा इनकी वाणी भारतीय विश्वात्मा की वाणी है।

निष्कर्ष यह है कि द्विवेदी जी के उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की अधिकांश विशेशताओं को चित्रित करने का प्रयत्न हुआ है। द्विवेदी जी की सबसे बड़ी सांस्कृतिक देन यह है कि उन्होनें अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को उजागर करने का प्रयास किया है जो विश्व अशांति को दूर करने में समर्थ हो सकते हैं तथा मानवतावाद, विश्व बन्धुत्व की भावना के मार्ग को प्रशस्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 8
2. चारूचन्द्र लेख, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 20
3. ग्रन्थावली, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 552
4. विचार–प्रवाह, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 141
5. ग्रन्थावली, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 43

डॉ0 सुधा रानी

सह–आचार्य

अध्यक्षा हिन्दी–विभाग

वैश्य महाविद्यालय, भिवानी।

20

समकालीन हिंदी साहित्य और वृद्ध विमर्श

अनुप विद्यार्थी

सारांश

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श के साथ–साथ वृद्ध विमर्श भी चर्चा का केंद्र है। हिंन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श की शुरुआत तब हुई जब साहित्यकारों ने यह महसूस किया कि भारतीय समाज में भी संयुक्त–परिवार की परंपरा खत्म होती जा रही है और दो या तीन भाईयों में से कोई भी माता–पिता को अपने पास रखने को तैयार नहीं है। सभी अपना स्वच्छंद जीवन जीना चाहते है। पहले बुजुर्ग ही सारे घर के नीति निर्माता होते थे। अगर बच्चों में किसी प्रकार कोई तनाव भी होता था तो बुजुर्ग ही तनाव को खत्म करने के लिए फैसला लेते थे और बच्चे भी उस फैसले को मानते थे क्योंकि उन्हे पता होता था कि जो फैसला लिया गया है उसमें दोनों का हित होगा। हम बचपन से ही देख सकते है कि बुजुगों का जीवन में क्या महत्त्व होता है। जब माता–पिता अपने–अपने काम में लगे होते है तब दादी–दादा या नाना–नानी ही बच्चे को गोद में लेकर उसे सारे गाँव तक की सैर करवाते है। रात को सोते समय नैतिकत्ता से संबंधित ऐसी–ऐसी कहानियाँ सुनाते है जो आजीवन हमें सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती हैं। बड़े होने पर भी हमें समय–समय पर सचेत करते रहते है ताकि हम अपने नेक रास्ते पर बने रहें। लेकिन अब समय में इतना परिवर्तन आ गया है कि न तो कोई दादी–नानी से कहानी सुनना पसंद करता है। बच्चे अपना समय व्यतीत करने के लिए टी०वी०, मोबाइल में लगे रहते है। माता–पिता के लिए या दादा–दादी के लिए समय नहीं निकाल पाते। यहाँ तक की जब हम कोई गलत कार्य करते हैं तो बुजुर्ग हमें उस बात के लिएटोकते है तो उनका टोकना तक पसंद नही करते। आज के वैज्ञानिक युग में बच्चों के लिए पैसा, व्यवसाय तथा अपना स्वछंद जीवन ज्यादा जरूरी है। संयुक्त परिवार के एकल परिवार में बदलने के कारण हम ना तो बुजुर्गो को समझ पा रहे है, ना उनकी तरफ ध्यान दे पा रहे है। अपने ही बच्चों से उचित सम्मान न मिलने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का जीवन निराशा की तरफ बढ़ता जा रहा है। इसी कारण से वृद्धों के लिए खोले गए वृद्धा आश्रम आज व्यवसाय का रूप लेकर खुले है और बच्चे भी अपने घर के बुजुर्गो को इस अंधकार में ढ़केलकर उनकी सुध तक नही लेते। बुजुर्गों का ज्ञान और उनको जीवन का अनुभव उन्हें बकवास लगने लगता है। समाज में बुजुर्गों की दुर्दशा को देखकर ही हिंदी के साहित्यकारों ने अपने साहित्य के द्वारा वृद्ध विमर्श की शुरूआत की। कहानियों और उपन्यासों ने इसमें अपनी विशेष भूमिका निभाई। जैसे– प्रेमचंद द्वारा'बुढ़ी काकी', भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'चीफ की दावत', ज्ञानरंजन द्वारा लिखित 'पिता', उशा प्रियवंदा कृत 'वापसी' आदि अनेक कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार से उपन्यासों में निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'अंतिम अरण्य' कृष्णा सोबती द्वारा रचित'समय सरगम', 'चित्रा मुद्गल' द्वारा रचित 'गिलिगडु' ममता कालिया द्वारा रचित 'दौड', पंकज विश्ट द्वारा रचित 'उस चिड़िया का नाम', रविद्रंवर्मा द्वारा लिखित 'पत्थर ऊपर पानी' महत्तवपूर्ण हैं।

बुढ़ी काकी कहानी के माध्यम से प्रेमचंद ने दिखाया कि संपत्ति के लालच ने दपंति कैसे एक बुढ़ी से अपनापन दिखाते हैं लकिन अपना स्वार्थ पूरा होने के बाद वे उससे बात तक नही करते उसे समय पर भर पेट भोजन भीनहीं देते। जब बुद्धिराम के बेटे के तिलक वाले दिन घर में अच्छे अच्छे पकवान बन रहे थे तो उस दिन बूझी काकी स्वयं को रोक न सकी और कढ़ाई के पास जा बैठी लेकिन जब बुद्धिराम की पत्नी बुढ़ी काकी को वहां बैठी देखती है तो उसे दुत्कार देती है–''उसने बुढ़ी काकी को वहां बैठी देखा तो जल गई। क्रोध न रूक सका। इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई है, मन में क्या कहेंगी, पुरूषों में लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेंढ़क केचुए परझपटता है उसी प्रकार वह बुढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनो हाथों से झटका कर बोली –''ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड?''[1]

इससे हमें पता चलता है कि, पहले जिस समाज में घर में व्रत या त्योहार वाले दिन या किसी और अवसर पर जहाँ वृद्धों को सबसे आगे रखा जाता है वहाँ आज वृद्धों को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। आधुनिक पीढ़ी वृद्धों से दूर रहना चाहती है। आधुनिक पीढ़ी को अपने जीवन में वृद्धों का दखल बिल्कुल पसंद नहीं है। जैसे उषा प्रियवदा ने 'वापसी' कहानी में लिखा है–नाश्ता कर, गजाधर बाबू बैठक में चले गये। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि

उस में गजाधर बाबू के रहने के लिए लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सीयों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली सी चारपाई डाल दी गई थी गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े कभी– कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगे।''[2]

इस प्रकार हम देखते है कि किस प्रकार वृद्धों को अपने ही घर में मेहमानों की तरह रहना पड़ता है। जब तक वह पैसा कमाने के लिए घर से बाहर रहता है तब तक सभी उसका मान सम्मान करते हैं लेकिन जब सेवानिवृत होकर हमेशा के लिए घर आ जाता है तो उसके साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है वृद्धों को अपने ही घर में परायापन महसूस होने लगता है। कोई उन्हें अपनी खुशियों में शामिल करने के लिए तैयार नहीं होता है और जब वृद्ध घर को व्यवस्थित करने के लिए नीतियों का निर्धारण करते हैं तो कोई उनकी बात को नहीं मानता और अगर मान भी लेते हैं तो उस कार्य को जान बुझकर ठीक ढंग से नहीं करते।

भीष्म साहनी कृत 'चाचा मंगलसैन' कहानी में चाचा मंगलसैन बहुत गरीब है। तो उन्हें उनका भतीजा बहुत जबरदस्ती करके अपने घर ले आता है परंतु जल्द ही उन्हें उनका घर में रहना अखरने लगता है और वो कहते है–''चाचा मंगलसैन का व्यवहार सही नहीं निकला। गलियों में रहने वाला आदमी भला बंगले का रहन–सहन क्या जाने। ज्यों ही चाचा ने तंदुरुस्ती पकड़ी, कि अपने रंग दिखाने लगा। वक्त–बेवक्त बैठक में घुस आता। किसी भी वक्त उसकी छड़ी की पट्–पट् बरामदे में सुनायी पडने लगती। थूकता–खँखराता हुआ आता।''[3]वृद्धों का जीवन एक कोठरी तक सीमित कर दिया जाता है अगर वे कोठरी से बाहर निकलकर घर में घूमते–फिरते है तो यह आधुनिक पीढ़ी को अखरने लगता है इसी प्रकार से भीश्म साहनी कृत 'चीफ की दावत' हिंदी साहित्य में एक ऐसी कहानी है, जो वृद्ध विमर्श के सभी आयामों को अपने भीतर समेटती हुई नजर आती है कि किस प्रकार से एक बेटा अपने प्रमोशन के लिए अपने साहब को दावत पर बुलाता है और साहब के सामने दिखावे के लिए किस प्रकार से अपनी माँ को छुपाने की कोशिश करता है और अपनी माँ को भी साहब के सामने न आने की सख्त हिदायत देता है और कहता है–''और माँ, हमलोग पहले बैठक में बैठगें। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जायें, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।''[4]

वृद्ध आधुनिक पीढ़ी की अपेक्षा कम शिक्षित होते है, या अनपढ़ होते है इसलिए वे अपने दोस्तों के सामने या अपने साहब के सामने उन्हें ले जाने में शर्म मानते है। लेकिन वृद्ध हमेशा अपने बच्चों की प्रगति देखना चाहते है। 'चीफ की दावत' कहानी में वृद्धा माँ अपने बेटे की पढ़ाई के लिए सारा गहना बेच देती है। और वहीं बेटा उसे अपने अफसर के सामने छिपाता है, लेकिन माँ की छिपने की और बेटे की छिपाने की कोशिश असफल रहती है, और जब वो बेटे के अफसर के सामने जाती है तो अफसर उससे बड़ी शीलता से बात करता है लेकिन बेटा यहाँ भी अपना स्वार्थ देखता है और अपने अफसर को प्रसन्न करने के लिए अपनी माँ से फुलकारी बनवाता है ये भी नही सोचता की अब उसकी माँ की आँखे कमजोर है। माँ ये सोचती है कि वह बेटे के जीवन में बाधा बन रही है इसलिए स्वयं हरिद्वार जाने के लिए कहती है – ''नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैंने अपना खा–पहन लिया। अब यहाँ क्या करूंगी। जो थोड़े दिन जिन्दगानी के बचे है, भगवान का नाम लूंगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।''[5]

आधुनिक पीढ़ी अगर अपने वृद्धों को साथ रख रही है तो उसमें भी अपना स्वार्थ देख रहे है, निस्वार्थ भाव से वृद्धों की सेवा या उनका मान–सम्मान नही करते। अपने मतलब के बिना घर में रखना तो दूर सीधे मुँह बात तक नही करते। लेकिन वृद्ध फिर भी हमेशा अपने बच्चों का हित ही सोचते है।

इस प्रकार से समकालीन उपन्यासों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कोई एक दर्जन उपन्यास हमें बुजुर्ग पीढ़ी के असंतोष, उनकी समस्याओंपर देखने को मिलते है। 'चित्रा मुद्गल' के उपन्यास 'गिलिगडु' मे बाबू जसवंत सिंह और रिटायर्ड कर्नल दोनों मित्रों की कहानी है। जसवंत अपने बेटे के साथ दिल्ली में रहता है वहाँ जसवंत सिंह का कमरा बदलकर उन्हें एक बड़े स्टोर रूम में शिफ्ट कर देते हैं। जसवंत अपने बेटे से कहता भी है उनका कमरा अच्छा नहीं है लेकिन बेटे पर इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता। जसवंत ने अपनी पत्नी के लिए बड़ी मुश्किल से गहने बनवाये थे परंतु उनकी पत्नी के बाद बेटा, बहु उन पर लॉकर को सरेंडर करने का दबाव बनाते हैं। ऐसी स्थिति में इंसान न तो अपने लिए जी पाता है और न ही परिवार के लिए मर पाता है। कुत्ते से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाता है। इस उपन्यास का एक प्रसंग –''तबीयत कैसी है?दवा–पानी ठीक से ले रहे हैं?घुमाई हो रही?अचानक शालिनी ने पैंतरा बदला। बाबूजी, कानपुर वाला लॉकर आप सरेंडर क्यों नही कर देते?दिन में फोन करने का

उददेश्य प्रच्छन्न नहीं रहा। भाई बहन में आपस में बात हुई है। यह भी कि इस मुद्दे को लेकर रात भर नहीं ठहरा जा सकता।''[6]

बच्चों को यह याद ही नहीं रहता कि माँ–बाप को उनकी परवरिश में, उनका अच्छा भविष्य बनाने में, उनकी हर छोटी–बड़ी जरूरत को पूरा करने में कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। और उन्हें उम्र के उस दौर में (जब उन्हें उनके साथ की सबसे ज्यादा जरूरत है) बच्चे उनके साथ उपेक्षित व्यवहार करने लग जाते हैं। बस याद है तो एक बात की उनको अपने माता–पिता के कमाये हुए धन पर पूरा अधिकार है। उनकी प्रोपर्टी पर अधिकार है। इस प्रकार वृद्धों की दशा का चित्रण करते हुए 'गिलिगुड' उपन्यास में 'चित्रा मुद्गल' एक स्थान पर लिखती है– ''यूएनपीएफ के आंकलन के मुताबिक देश के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कुल मिलाकर 20 फीसदी बुजुर्ग अकेले या अपने जीवन साथी के सहारे अपना जीवन काटने को विवश है। तमिलनाडु में यह स्थिति50 फीसदी से अधिक आ चुकी है जबकि गोवा, हिमालय प्रदेश, महाराष्ट्र,केरल में यह दर काफी ज्यादा है।''[7]

इस प्रसंग से हमें पता चलता है कि किस प्रकार वृद्ध अकेले या अपने जीवन साथी के साथ रहते है परंतु बच्चे उन्हें अपने पास रखने को तैयार नही होते।

इसी तरह से 'समय सरगम' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने दिखाया है कि कैसे वृद्धावस्था में अकेलापन बोझ बन जाता है। एक कोठरी में पड़े–पडे कैसे इंसान ऊब जाता है। 'समय सरगम' उपन्यास में कामिनी और दमयंती के माध्यम से वृद्धावस्था के अकेलेपन के साथ साथ वृद्ध जीवन की अनेक समस्याओं को दर्शाया है। दमयंती अकेले रहती है और अरण्या से अपने मन की बात करती है। वृद्धों की दुर्दशा का चित्रण करते हुए 'कृष्णा सोबती', 'समय सरगम', उपन्यास में लिखती है–''जान बूझकर तो भिगोता नहीं। बूढ़ा हूँ। बच्चों की तरह बहुत कुछ संभलता नही।''[8]

इस प्रकार 'दौड़' उपन्यास में उपभोक्तावादी संस्कृति को दर्शाया गया है। 'ममता कालिया के 'दौड' उपन्यास में इस कटु सत्य को उजागर किया है कि आधुनिक पीढ़ी के बच्चे प्रवासियों की तरह हो गए है अपने देश से जाकर अपने माँ–बाप को बिल्कुल भूल जाते है। उनके पास अपने माता–पिता के लिए समय ही नही होता है। 'दौड़' उपन्यास में मिस्टर एवं मिसेज सोनी ऐसे ही मजबूर माता–पिता है। उनका बेटा सिद्धार्थ विदेश में जाकर बसा है उनके पीछे उनके माता–पिता अकेले रहते हैं और एक दिन मिस्टर सोनी को अचानक दिल का दौरा पड़ता है और जब सिद्धार्थ को इस बात की खबर दी जाती है तो वह आने में आना–कानी करता है और अपनी माँ को समझाता है –''हम सब तो आज लुट गए माँ। लोग बता रहे है कि मेरे आने तक डैडी को रखा नहीं जा सकता। आप ऐसा कीजिए इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन तक रुकना मुश्किल होगा।''[9]इस प्रसंग से हमें पता चलता है कि आधुनिक पीढ़ी के लिए पैसा कमाना और व्यापार करना इतना जरूरी है कि वे अपने माता–पिता को संभालना तो दूर उनके अंतिम संस्कार में भी शामिल नहीं होते। वो ये भूल जाते हैं कि ये दिन उन्हें भी देखने पडेंगे।

इस तरह से 'गोविंद मिश्र' के उपन्यास 'शाम' की झिलमिल' में भी बुढ़ापे में अकेले हो जाने पर भी जीने की उद्यम लालसा को बखूबी साकार किया गया है। इस उपन्यास में शाम जीवन में मृत्यु के अधिकार से पहले का पैर है। शाम की झिलमिल का बुढ़ा 70 वर्ष की उम्र के आसपास पहुंचा हुआ लगता है। इस उम्र की इच्छाएं और व्यवस्थाएं उपन्यास में दिखाई गई है। एक स्थल पर गोविदं मिश्र लिखते हैं– अपनों द्वारा ठुकराए जाने का जो मलाल होता है उसका क्या कोई इलाज है?उस अकेलेपन और अपमान का एहसास दिलाते है कि उनकी जरूरत अब घर में तो क्या इस धरती पर ही नहीं रही। उन्होंने जिनके लिए अपनी उम्र और अपने सारे संसाधन लगा दिए वे ही दो जून की रोटी के लिए दुत्कारते है।''[10]

दुनिया में आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा बुजुर्गों का है। उम्र के इस आखिरी पड़ाव में जब उन्हें अपने बच्चों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, जब उन्हें बिमारियाँ चारों तरफ से घेरने लग जाती, जब कोई कार्य करने की हालत न होने पर अकेलापन महसूस होता है?जब उन्हें देखभाल की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, अगर उस समय पर बच्चे अपने माता–पिता को छोड़ कर पैसे और व्यापार के पीछे भाग रहे हैं तो वे अपने माता–पिता के साथ बहुत बड़ा अन्याय कर रहे है।

'चार दरवेश' उपन्यास में हृदेश ने वृद्धों की इसी दशा का चित्रण करने के लिए लिखा है – ''जिस रास्ते से यहाँ तक आया, वह आगे जाता नही दिखता।आस–पास कोई अलग रास्ता दूसरा तीसरा, दाएं–बाएं भी नहीं कि उसे चलूं और चलता जाऊं..... देखूँ कि कहाँ–कहाँ ले जाता है। जीवन में जो हो सकता था हो लिया –प्रेम, नौकरी, तरक्की, धनोपार्जन, गृहस्थी इन सब के तनावो, उनके गली कुचो से गुजर लिया। नए तनावों कोढूढंने उन्हें जीवन में लाने की तरफ भी निकला....... थोडा दूर चला तो बोर्ड लगा दिखा...... आगे

रास्ता बंद है, तो अब किधर?''[11]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रेमचंद की 25 श्रेष्ठ कहानियाँ, सम्पादन डॉ० विजय एस० सोजीत्रा, चिंतन प्रकाशन, पृ० स० 154
2. जिंदगी और गुलाब के फूल, ऊषा प्रियवंदा, भारतीय ज्ञाठपीठ प्रकाशन, पृ० स० 122
3. प्रतिनिधि कहानियां, भीष्म साहनी, पेपर वैक्स प्रकाशन, पृ० स०160
4. प्रतिनिधि कहानियां, भीष्म साहनी, पेपर वैक्स प्रकाशन, पृ० स०16
5. प्रतिनिधि कहानियाँ, भीष्म साहनी, पेपर वैक्स प्रकाशन, पृ० स० 21
6. गिलिगडु, चित्रा मुद्‌गल, सामायिक प्रकाशन, पृ० स० 94
7. गिलिगडु, चित्रा मुद्‌गल, सामयिका प्रकाशन, पृ० स० 94
8. समय, सरगम, कृष्णा सोबती, पृ० स० 4
9. वृद्धावस्था विमर्श, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, परिलेय प्रसाशन, पृ० स०11
10. शाम की झिलमिल, गोविंद मिश्र, किताबघर प्रकाशन, पृ० स०60
11. चार दरवेश प्रदेश, भारतीय जानपीठ, नई दिल्ली, पृ० स० 10

अनुप विद्यार्थी

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय

रोहतक

मेल –Anupsangwan5122016@gmil.com

मो० – 9817886293

21

भारत में संविधान सभा की माँग, संरचना और भूमिका

Miss. Seema Kujur

सारांश

संविधान के बिना किसी राज्य की कल्पना करना असंभव है। प्रत्येक राज्य के लिए यह आवश्यक है कि उनके पास अपना एक संविघान हों जिसमें शासन का वर्णन किया गया हो। संविधान के अभाव में राज्य अराजक हो जाता हैं लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं हैं कि यदि किसी राज्य के पास औपचारिक लिखित संविधान नहीं हो. तो वह अपना कार्य ही नहीं चला सकता। उदाहरण इंग्लैंड के पास अब तक भी कोई लिखित संविधान नहीं हैं। भारत का संविधान, संविधान सभा द्वारा निर्मित किया गया इसे एक ऐतिहासिक घटना माना जा सकता है।

संविधान – संविधान उसे कहते हैं जो किसी राष्ट्र की संपूर्ण व्यवस्था का लिखित वर्णन करता हैं तथा यह सबसे बड़ा राष्ट्रीय दस्तावेज होता हैं। इसके कारण स्वतंत्रता , न्याय, सरकार, राज्य, अधिकारों कर्तव्यों और प्रशासन के बारे में सम्पूर्ण लिखित रूप से वर्णन किया गया दस्तावेज होता हैं। इस सम्पूर्ण लिखित रूप से वर्णन किए गए दस्तावेज को ही संविधान कहा जाता हैं।

सी. एफ. स्ट्रांग के अनुसार – "संविधान उन नियमों सिद्धान्तों के समूह को कहा जाता है जिसके अन्तर्गत राज्य के अधिकारों और नागरिकों के अधिकारों के बीच समन्वय स्थापित किया गया हो।"

संविधान सभा की मांग –

- 1885 में भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत हुई और धीरे –धीरे भारतीयों की यह धारणा बनने लगी कि भारत के लोग स्वयं अपने राजनीतिक भविष्य का निर्माण करें।
- इसकी अभिव्यक्ति बालगंगाधर तिलक की उस नारे से होती है कि " स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगें। " इसके पश्चात महात्मा गाँधी ने 1922 में यह माँग की थी कि भारत का राजनैतिक भाग्य भारतीय स्वयं बनाएंगे।
- 1924 में मोतीलाल नेहरू द्वारा ब्रिटिश सरकार से यह माँग की गयी कि भारतीय संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया जाये।
- कानूनी आयोग और गोलमेज सम्मेलन की असफलता के कारण भारतवासियों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत शासन अधिनियम ,1935 अधिनियम किया गया । इससे भारत के लोगों की इस माँग ने जोर पकड़ा कि वे बाहरी हस्तक्षेप के बिना संविधान बनाना चाहते हैं , इस मांग को कांग्रेस ने 1935 में प्रस्तुत किया।
- 1938 में पंडित जवाहरलाल नेहरु ने संविधान सभा की माँग को स्पष्ट रखते हुए यह कहा – " कांग्रेस स्वतंत्र और लोकतंत्रात्मक राज्य का समर्थन करती है। उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान बिना बाहरी हस्तक्षेप के ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए ,जो वयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित हो। "
- 1939 में विश्व युद्ध छिड़ने के बाद संविधान सभा की माँग को 14 सितंबर 1939 को कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा जारी किए गए एक लंबे वक्तव्य में दोहराया गया।
- गाँधी जी ने 19 नवंबर 1939 को " हरिजन" में "एक ही रास्ता" शीर्षक के अंतर्गत एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने अपने विचार व्यक्त किया कि "संविधान सभा ही देश की देशज प्रकृति का और लोकेच्छा का सही अर्थों में तथा पूरी तरह से निरूपण करने वाला संविधान बना सकती है" उन्होंने घोषणा की कि साम्प्रदायिकता तथा अन्य समस्याओं के न्यायसंगत हल का एकमात्र तरीका थी संविधान सभा ही है।
- 1940 के "अगस्त प्रस्ताव" में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की माँग को पहली बार आधिकाधिक रूप से स्वीकार किया भले ही स्वीकृति अप्रत्यक्ष शर्तो के साथ थी।

संविधान –सभा की भूमिका –

संविधान –सभा भारत की एक महान सभा थी। संविधान के निर्माण में इनकी भूमिका को निम्नलिखित तरीके से विश्लेशित किया जा सकता है–

- पहली– यह राष्ट्रीय आंदोलन की उपज थी। राष्ट्रीय आंदोलन में जिन आदर्शों और मूल्यों के लिए ब्रिटिश शासन से लड़ाई लड़ी गई ,उन्हें संविधान सभा द्वारा साकार रूप प्रदान किया गया। सभा के अधिकांश सदस्य राष्ट्रीय आंदोलन के महत्वपूर्ण नेता थे।
- दूसरी –इसका स्वरूप जन प्रतिनिधिक था । इसमें जन –प्रतिनिधित्व की पूर्ण क्षमता और सामर्थ्य थी। संविधान सभा ने

अपनी कार्य प्रणाली और दृष्टिकोण से इस तथ्य को उजागर कर दिया कि वह इस देश की जनता का सही प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है।

ऽ तीसरी – संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में डॉ राजेन्द्र प्रसाद की भूमिका भी अविस्मरणीय रही। यह उनके असाधारण और अद्वितीय नेतृत्व का ही परिणाम था कि संविधान सभा कार्य निर्बाध गति से चलता रहा। उन्होंने समय–समय पर अपने उपयोगी और सार्थक सुझावों से संविधान निर्माण में उल्लेखनीय योगदान किया।

ऽ चौथी– इसका राष्ट्रीय स्वरूप था उसे "उत्कृष्ट भारतीयों की सभा " का नाम भी दिया गया। उस समय की सभी उत्कृष्ट प्रतिभाओं को संविधान सभा में स्थान दिया गया था। इसमें देश के सभी भागों ,वर्गों, हितों , दलों, दबाव समूहों का प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इसके राष्ट्रीय स्वरूप ने ही इस सभा की महानता को उजागार किया।

ऽ पाँचवी– कांग्रेस का प्रभुत्व था। कांग्रेस ने केवल दलीय आधार पर संविधान सभा में अपनी भूमिका को सीमित नहीं रखा। उसका चिंतन राष्ट्रीय परिपेक्ष्य को लिए हुए था। परिणामस्वरूप संविधान सभा देश की जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप अपना दायित्व निर्वाह कर सकी। यही कारण है कि भारत के संविधान पर कांग्रेस दल की विचार धारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

ऽ छठी– प्रारूप समिति की महत्वपूर्ण भूमिका थी । संविधान निर्माण के कार्य को सम्पन्न करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया। इन समितियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समिति थी– प्रारूप समिति । इस समिति के अध्यक्ष का कार्यभार डॉ भीमराव अम्बेडकर को मिला।

ऽ सतवीं – "सहमति से निर्णय" तथा "समायोजन के सिद्धान्त" का पालन करना कहा जा सकता हैं। " सहमति से निर्णय " तथा "समायोजन के सिद्धांत " के कारण भारतीय संविधान की अत्यंत ठोस नींव डाली गई।

ऽ आठवीं – लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के रूप में देखने को मिलता हैं। संविधान सभा ने भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की है।

ऽ नवीं– एक सुदृढ़ सांविधानिक ढाँचे का निर्माण करने के रूप में देखने को मिलता हैं।संविधान निर्माताओं ने संविधान के सैद्धांतिक और प्रक्रियागत पक्षों पर गहन विचार कर सुदृढ़ संविधानिक ढांचे का निर्माण किया।

ऽ दसवीं–विश्व शांति का लक्ष्य है। भारतीय संविधान में अंतर्राष्ट्रीय तत्वों का समावेश देखने को मिलता है। इसमें विश्व– शांति की स्थापना का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है।

ऽ ग्यारहवीं– प्रस्तावना के रूप में देखने को मिलता हैं। भारतीय संविधान की "प्रस्तावना" को "संविधान की आत्मा" कहा गया हैं। यह संविधान निर्माताओं का भारतीय जनता को सबसे बड़ा अनुपम "उपहार" है।

संविधान के उद्देश्य–

क्र संविधान के द्वारा सरकार की शाक्ति को सीमित किया जाता हैं।

क्र संविधान के द्वारा राजनीतिक मूल्यों और आदर्शों की स्थापना की जाती हैं । जिन्हें सरकार के द्वारा अर्जित किया जाएगा।

क्र संविधान के द्वारा व्यक्ति की स्वतं़त्रता की रक्षा होती हैं।

क्र संविधान के द्वारा शासन को वैधता भी प्राप्त हो जाती हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संविधान –सभा ने भारत के लिए "उत्कृष्ट संविधान " के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत का संविधान सुदृढ़ आधार लिए हुए है और अगर शासक संविधान –निर्माताओं की भावनाओं के अनूरूप आचरण करते रहे तो भारत संसदीय लोकतंत्र के माध्यम से दिन–प्रतिदिन सशक्त होता हुआ विश्व की एक महान शाक्ति बन जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 सी. एम. कोली, राजनीति शास्त्र के मूल आधार, साहित्यागार ,जयपुर , 2001, पृष्ठ 167– 168

2 डॉ .कमलेश कुमार सिंह, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था , राधा पब्लिकेशन्स , नई दिल्ली , 2008 पृष्ठ 59– 61

3 राजेश मिश्र, राजनीति विज्ञान एक समग्र अध्ययन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड , हैदराबाद, 2020 , पृष्ठ 221

4 विश्व प्रकाश गुप्त और मोहिनी गुप्त , राजनीतिशास्त्र सिद्धांत और व्यवहार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली , 2007, पृष्ठ 131

5 https://www.mpgkpdf.com>2021/01

Miss. Seema Kujur
D/o Peter Kujur
Vill.- Janakpur Pani Tanki
Post- Rangat
District- North & Middle Andaman
Andaman & Nicobar Islands
Pin Code-744205
Ph.no- 9531917844
Email id: seemakujur207@gmail

22

पण्डित लख्मीचंद के सांगों में भक्ति भावना

अनुप विद्यार्थी

सारांश

हरियाणवी लोकनाट्य साहित्य (जिसे सांग के नाम से भी जाना जाता है) में पण्डित लख्मीचंद का स्थान सर्वोपरि है। हरियाणवी साहित्य में पण्डित लख्मीचंद को युगपुरूष की संज्ञा दी जाती है। साहित्य पर क्षेत्रविशेष की धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही होता है। प्राचीन काल में ही हरियाणा प्रदेश भक्ति का केन्द्र रहा है। श्री कृष्ण द्वारा गीता का उपदेश भी हरियाणा की धरती पर ही दिया गया था। नाथों का भी कार्यक्षेत्र हरियाणा की धरती रही है। विशेषकर गुरू गोरखनाथ का प्रभाव हरियाणा प्रदेश में अधिक रहा। अतः हरियाणवी साहित्य में भक्ति का समावेश होना स्वाभाविक ही है। हरियाणवी साहित्य में सन् 1850 से 1950 ई० तक के काल को हरियाणवी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। इसी काल के प्रसिद्ध सांगी अलीबख्श के सांगों में भक्ति भावना प्रमुख थी। इनके सभी सांग ईश्वर वन्दना से आरम्भ होते थे। अतः पण्डित लख्मीचंद के सांगों में ईश्वर भक्ति के पद मिलना स्वभाविक ही है। पण्डित लख्मीचंद ने अपने सांगों को दैनिक जीवन से जोड़ा तथा अपने सांगों के माध्यम से मनोरंजन के साथ–साथ आध्यात्मिक और धार्मिक संदेश भी दिए। इनके सांगों श्रृंगार भक्ति, वीर, हास्य आदि लगभग सभी रस मिलते हैं। लेकिन यहाँ हम केवल भक्ति भावना का ही उल्लेख करेंगे। इनके काव्य में भक्ति को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. ईश्वर भक्ति
2. पराशक्ति (देवी–देवता) भक्ति
3. गुरू भक्ति
4. पितृ भक्ति

1. ईश्वर भक्ति

पण्डित लख्मीचंद आस्तिक व्यक्ति थे। ईश्वर में अटूट श्रद्धा थी। उनके काव्य में भी ईश्वर भक्ति की प्रचुरता पाई जाती है। उनके काव्य में स्थान–स्थान पर ईश्वर से प्रार्थना करते भक्तों का वर्णन मिलता है उन्होंने 'सुदामा' नामक एक गरीब ब्राह्मण के माध्यम से ईश्वर भक्ति का संकेत इस प्रकार दिया है –

कुछ टोटा, कुछ टोटे का दुक्ख, फिकर रहें जा मन में
न्यूं किस तरियां उमर कटैगी, बाकी ना सै तन में।।टेक।।
तेरे नाम नै प्रभु जी शाम सुबेरी रटता
जुणसी लगन मेरे मन में, मैं एक तिल भर ना घटता
टुकड़े की भी सांसा घर में, पेट खड्डा ना अटता
जी चावै सौ रच कै धरदे, भेद तेरा ना पटता,
लख्मीचंद कहै पैदा करदे, दुक्ख सुक्ख नै एक छन में
न्यूं किस तरियां उमर कटैगी, बाकी ना सै तन में।।[1]

सुदामा की बात सुनकर उसकी पत्नी सुशीला इस प्रकार कहती है –

सहम करै सै फिकर बता के, कोण उल्हाणा दे सै
करमा के अनुसार राम जी, पीणा खाणा दे सै।।टेक।।
नेम धर्म का बाँध कै पाला कोन्या हटणा चाहिए
तूं सै भक्त कृष्ण का, न्यारा छटणां चाहिए
भजन भाव रहै ठीक बण्या, ना तिल भर घटणा चाहिए
खाओ ओढ़ो पहरो वो जिसा फटा पुराना दे सै
करमां के अनुसार राम जी पीणा खाणा दे सै।[2]

(किस्सा कृष्ण सुदामा)

भारतीय समाज में ईश्वर भक्ति में अटूट विश्वास मिलता है। ईश्वर पल भर में दुखों को नष्ट करके सुख के भंडार भर सकता है। हमें ईश्वर के प्रति अपनी आस्था बनाए रखनी चाहिए। हमें जो कुछ मिलता है वो अपने कर्म के अनुसार ही मिलता है। हम जो कर्म करते हैं उसका फल हमें अवश्य ही मिलता है। ईश्वर की कृपा से हमें संतुष्ट रहना चाहिए लेकिन केवल ईश्वर के भरोसे बैठकर कर्म न करने की भूल नहीं करनी चाहिए। ईश्वर भी हमें कर्मों का फल देते हैं। ईश्वर अपने भक्तों का स्वयं ख्याल रखते हैं। ईश्वर को अपना भक्त जगत में सबसे प्यारा होता है। जब श्री कृष्ण की सुदामा से भेंट होती है तब श्री कृष्ण जी सुदामा से कुशलक्षेम पूछते हैं तब सुदामा कहता है –

"किसे बात की कमी नहीं, भाई मन्नै सुख सारा सै
तेरे भाग तै हे भगवान मेरा ठीक गुजारा सै ।।टेक।।
खुद भगवान लिया करै आपै बैरा भक्त का
दया दृष्टि तैं करै दूर अन्धेरा भक्त का
भगवान के ध्यान रहै सै भतेरा भक्त का
भगवान के मन में लाग्या रहे, डेरा भक्त का
भगवान नै भी अपणा भक्त, जगत तैं प्यारा सै
तेरे भाग तैं हे भगवान मेरा ठीक गुजारा सै।"[3]

(किस्सा कृष्ण सुदामा)

पण्डित लख्मीचंद ने अपने अनेक सांगों में ईश्वर की भक्ति करने पर बल दिया है। उनके द्वारा रचित 'किस्सा पूरणमल का' नामक रचना में पूरणमल अपने पिता से बाल जती रहने की बात कहता है और विवाह के लिए मना कर देता है –

''मत ले शादी का नाम पिता, मैं बाल जती रहूँगा।।टेक।।
करूँ भजन हरि के रूख में, जब मेरे दिन टूटँगे सुख मं
मुख म दे राक्खी सै लगाम, ना कर भंग मति रहूँगा
मत ले शादी का नाम पिता, मैं बाल जती रहूँगा।''[4]

भारतीय समाज में कर्मों को बड़ा महत्व दिया जाता है। माना जाता है कि अच्छे या सतकर्म करने वालों को ईश्वर अच्छा फल देता है और पाप कर्म करने वालों को ईश्वर बुरा फल देता है। लेकिन ईश्वर की भक्ति करने से ईश्वर बुरे कर्म की सजा देने की बजाय माफ भी कर देते है। जब तक इंसान के बुरे का फल नहीं मिलता तब तक जीवन में कश्ट आते ही रहेंगे। ईश्वर की भक्ति द्वारा बुरे कर्मों के फल से छुटकारा मिल सकता है। लख्मीचंद के किस्सा 'सेठ ताराचन्द' में सेठजी की पत्नी कहती है –

''मुश्किल तैं बचाणी पीया शर्म हया
सच्चे कृश्ण न रटे जा वही करेंगे दया।।टेक।।
सत भक्ति म ध्यान डटे बिन, पिया उस हरि का नाम रटे बिन
पिछला पाप कटे बिन, दुक्ख हो एक तैं एक नया
सच्चे कृष्ण न रटे जा वही करेंगे दया।[5]

लख्मीचंद के काव्य में निर्गुण भक्तों की वाणियों में मिलने वाले आध्यात्मिक सोपानों का वर्णन भी मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में मन, इन्द्री तथा जीवात्मा के भेद को समझाया है। उनके द्वारा रचित किस्सा 'भूप पुरंजन' की पंक्तियां उल्लेखनीय हैं –

''भूप पुरंजन राज करैं थे, ढंग नगरी के न्यारे
उत्तर म एक स्वर्ग द्वारा, होए आनन्द देवता सारे
दस इन्द्री एक मन, पाँच विशै, पंच भूत की माया
तिरगुन झगड़ा सत, रज, तम का, पुरंजन संग दरसाया।
जीव, साथ विज्ञात आत्मा, ब्रह्म स्वरूप कहलाया।
सत चित आनन्द कदं दयालु, तूं च्यार वेद नै गाया
कह लख्मीचंद श्री नारद जी नै ये ब्रह्मज्ञान विचारे।''[6]

2. पराशक्ति (देवी–देवता) भक्ति

हरियाणा प्रदेश में वैष्णव भक्ति के अलावा लगभग प्रत्येक गाँव के अपने अलग देवता की या क्षेत्र विशेष के देवता की साधना की जाती हैं 'गंगा' नदी को माँ का दर्जा दिया गया है। यहाँ की मान्यता है कि 'गंगा' में स्नान करने से मनुष्य के सारे पाप कर्म धुल जाते हैं और चर्म रोग भी ठीक हो जाते हैं। पण्डित लख्मीचंद के काव्य में भी 'गंगा माँ' की भक्ति का उल्लेखमिलता है। इनके द्वारा रचित किस्सा 'शाही लकड़हारा' की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

चलै न्हाण मर्द और बीर, उस गंगा जी के धाम पै
चाहे भूखा प्यासा हो नंगा, चाहे कोढ़ी कंगला हो चंगा
शुद्ध करै गंगा जी का नीर, राजा राणी रंक गुलाम नै
चले न्हाण मर्द और बीर, उस गंगा जी के धाम नै।।टेक।।[7]

भक्त अपने इष्ट देवता की अराधना करता है तो देवता अपने भक्त की पुकार अवश्य सुनते हैं। भक्त चाहे चोर ही क्यों न हो। इनकी रचनाओं में दुर्गा माँ की अराधना का उल्लेख भी मिलता है। इनके द्वारा रचित किस्सा 'ज्यानी–चोर' की पंक्तियां उल्लेखनीय हैं –

''ठण्डी ठण्डी हवा चलै, सर सब्ज बाग लहरावै
च्यार घड़ी आराम करो, याड़ै नींद जोर की आवै ।।टेक।।
जै दुर्गे, जै दुर्गे माई, तेरा विश्वास करूँगा
बिगड़ी बात बणावण आली, मैं तेरी आस करूँगा
अदली खां के राजपाट का सत्यानाश करूँगा।
क्षत्राणी नै कैद तैं छूटा के, जब अन्नपाणी भावै
च्यार घड़ी आराम करो, याड़ै नींद जोर की आवै।''[8]

3. गुरू भक्ति –

भारतीय समाज में गुरू का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। गुरू के बिना ज्ञान की प्राप्ति असम्भव मानी जाती है। हिन्दी साहित्य के संत कवियों या सगुण भक्त कवियों में सभी ने गुरू की महिमा का गुणगान किया है। गुरू की भक्ति लगभग सभी भक्त कवियों की रचनाओं में मिलती है। गुरू की महिमा का गुणगान करते हुए कबीरदास ने कहा है –

''सतगुरू की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।''[9]

गुरू की महिमा का एक अन्य पद उल्लेखनीय है –

''ग्यान प्रकास्या गुरू मिल्या, सो जिनि बसिरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुरू मिलिया आइ।।''[10]

पंडित लख्मीचंद की रचनाओं में भी गुरू की भक्ति पर बल दिया गया है। इनके गुरू मानसिंह थे। इन्होंने माना है कि मनुश्य का जन्म मुश्किल से मिलता है और इस जीवन को सफल बनाने के लिए गुरू की भक्ति करनी चाहिए। इनका एक पद यहाँ उल्लेखनीय है –

''मनष्य जन्म मुश्किल त मिलता, करोड़ों बन्धन छूट कै
गुरू का सत्संग करो प्रेम तैं, ग्यान की धार घूंट के।''[11]

निर्गुण भक्तों की अनेक वाणियों में सतगुरू की भक्ति करके मुक्ति मिलना सम्भव बताया गया है। सतगुरू की कृपा से ही

मनुष्य जीवन–मरण के चक्र से छुटकारा पा सकता है। लख्मीचंद की रचना किस्सा 'सत्यवान–सावित्री' की पंक्तियाँ देखिए –

''लख्मीचंद सतगुरू की सेवा कर मुक्ति मारग टोह ज्या
शुद्ध आत्मा रह इसा कोए सुकरझ का फल बो ज्या।''[12]

सतगुरू के बिना मनुष्य का कोई सहारा नहीं होता। जब बुरे वक्त में रिश्तेदार–नातेदार साथ छोड़ देते हैं तब भी सतगुरू अपने शिष्यों के साथ रहते हैं। सभी सांसारिक सहारे छूटने पर भी सतगुरू का सहारा बना रहता है। सतगुरू अपने शिष्य का हमेशा ख्याल रखते हैं। लख्मीचंद की रचना 'शाही लकड़हारा' की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

''मात–पिता हों जन्म देण के नहीं करमा के साथी
सतगुरू ज्ञान विचार बिना, कोए बणता नहीं हिमाती।।टेक।।
सतगुरू जी की आज्ञा बिना कै कला सवाई हो सै
बेटी धी नै लेण देण की मान बढ़ाई हो सै
बारा वर्श तैं ऊपर रोगी, आपणी आप दवाई हो सै
बख्त पड़ै पै काम लेण नै या कष्ट कमाई हो सै
बिना कमाए ना कुटम्ब कबीला ना कोए गोली, नाती
सतगुरू ज्ञान विचार बिना, कोए बणता नहीं हिमांती।।टेक।।[13]

गुरू के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती तथा गुरू से ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य संसार रूपी भवसागर से अपनी नैया पार लगा सकता है। गुरू के द्वारा दिए गए ज्ञान के मार्ग पर चलकर ही भक्त की मुक्ति सम्भव है। लख्मीचंद ने अपनी रचना 'किस्सा राजा हरिश्चंद्र' में लिखा है –

''गुरू बिन कौन ज्ञान का देवा
थारे बिन कौन पार करै खेवा
गुरू मानसिंह की सेवा कर, लई कार सीख गावण की
कद का देखूं बाट घाट पै, माणस के आवण की।''[14]

4. पितृ भक्ति

माता–पिता की सेवा करना भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। माता–पिता की सेवा से संबंधित श्रवण कुमार की कथा सर्वविदित ही है। यह अलग बात है कि आज वर्तमान समय में कुछ लोग अपने माता–पिता को अपने ऊपर बोझ समझने लग गए हैं। आज उनकी दृष्टि में माता–पिता की अपेक्षा अर्थ महत्ता अधिक है। इसलिए वृद्धाश्रमों में भीड़ लगी रहती है। पण्डित लख्मीचंद ने अपनी रचनाओं में माता–पिता की सेवा भक्ति पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार किसी को भी माता–पिता की सेवा के बिना सुख तथा स्वर्ग धाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में पण्डित जी की रचना 'किस्सा सत्यवान सावित्री' की पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

''देवरीत और हवन कुण्ड, एक श्रेश्ठ सा घर चाहिए सै
इन्द्रजीत पराक्रमी पति, मेरे को वर चाहिए सै ।।टेक।।
मात–पिता की सेवा करके, चरणां मं सिर धरता हो
समदम उपरम सात धाम, कुछ संयम यज्ञ भी करता हो
अग्नि होत्र पाँच महायज्ञ, ओउम का नाम सुमरता हो
तीन काल सन्धया तर्पण मं, मन इधर–उधर ना फिरता हो
कष्ण जैसा योगी हो, ना तै अर्जुन सा नर चाहिए सै
इन्द्रजीत पराक्रमी पति, मेरे को वर चाहिए सै।''[15]

उनकी एक अन्य रचना में 'पूरणमल' अपनी शादी के लिए मना कर देता है, अपने माता–पिता की सेवा करने की बात कहता है –

''लख्मीचंद हरफ कहै गिणकै, धन पर वस्तु बणा दिया जण
कै माता–पिता का बणकै गुलाम कर शुद्ध गति रहूँगा।
मत ले शादी का नाम पिता जी मैं बाल जती रहूँगा।''[16]
''माता–पिता गुरू बन्ध आच्छे मिलैं शुभ करम तें
लख्मीचंद प्यारे मिले तो ऐसे मिले जैसे हर मिले।''[17]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पंडित लख्मीचंद की रचनाओं में भक्ति का विशेष स्थान है। इनकी रचनाओं में वैशणव भक्ति, स्थानीय देवी–देवताओं की भक्ति, गुरू भक्ति के साथ–साथ पितृ भक्ति का भी उल्लेख मिलता है। इनकी रचनाओं में ब्रह्मज्ञान की जानकारी भी विशेष रूप से मिलती है। लख्मीचंद की रचनाएँ भक्ति से सराबोर मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० – 38
2. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 38
3. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 39
4. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 42
5. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 42
6. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 46
7. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 51
8. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह

धनखड़ पृ० सं० 52
9. कबीर ग्रंथावली, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, पृ० सं० 49
10.कबीर ग्रंथावली, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, पृ० सं० 50
11. पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 53
12.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 54
13.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 55
14.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 56
15.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 58
16.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 59
17.पण्डित लख्मीचंद के काव्य के रस निरूपण – डॉ० राजबीर सिंह धनखड़ पृ० सं० 61

अनुप विद्यार्थी
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय
रोहतक
मेल –Anupsangwan5122016@gmil.com
मो० – 9817886293

23

भारत की सुरक्षा समस्याएं : आन्तरिक समस्या के विशेष सन्दर्भ में

Dr. Parveen Kumar

सारांश

भारत दुनिया का एक ऐसा विशिष्ट और विस्तृत देश है जिसमे भिन्न–भिन्न धर्मो एवं जातियों के लोग निवास करते है। यहां भाषा की विविधता के साथ–साथ भौगोलिक परिस्थितियों एवं रहन–सहन में भी स्पष्ट विविधता दृष्टिगोचर होती है। किन्तु विविधता के होते भी आजादी की लड़ाई में सभी धर्मों एवं जातियों के लोगों ने तन–मन–धन से भाग लिया। राष्ट्र के प्रति प्रेम से ओत–प्रोत देशवासियों के सतत प्रयत्नों के कारण ही भारत को स्वतन्त्रा मिली थी। भारतीय संस्कृति के इस रूप विविधता में एकता को देखकर सम्पूर्ण विश्व हैरान रह गया था। परन्तु आज स्थिती बदली हुई लगती है। भारत की राष्ट्रीय अखण्डता पर दिन–प्रतिदिन प्रश्नवाचक चिन्ह लगता जा रहा है। देश में इस सीमा तक पृथकतावादी एवं संकीर्णतावादी शक्तियाँ जोर पकड़ रही है जोकि न केवल देश की राजनैतिक अखण्डता के लिए खतरा है, बल्कि विविध क्षेत्रीय प्रगति तथा वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक एवं शैक्षिक सभी के समुचित विकास में भाँति–भाँति की बाधाएं उत्पन्न हो गई हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत की आन्तरिक सुरक्षा पर मंडरा रहे बड़े खतरों को समझने का प्रयास प्राथमिक तथा गौण स्त्रोतों के आधार पर किया गया हैं।

मुख्य शब्द : आन्तरिक, विद्रोह, आतंकवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, समस्या आदि।

परिचय

राष्ट्रीय अखण्डता एवं सार्वभौमिकता बनाये रखने के लिए किसी भी देश की राष्ट्रीय सुरक्षा का आन्तरिक व बाह्य दृष्टि से अध्ययन व मूल्यांकन करना रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विषय का एक महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र अपनी अखण्डता बनाये रखने तथा शान्तिपूर्ण ढंग से चतुर्मुखी विकास की कार्यवाही कदापि नहीं कर सकता। पर्याप्त सुरक्षा हेतु जहाँ एक ओर राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता होती है, वही दूसरी ओर अपनी सामरिक क्षमता को इतना सुदृढ़ बनाना होता है कि उत्पन्न सम्भावित खतरों का समुचित जवाब देने के साथ–साथ उन्हें निष्क्रिय भी बनाया जा सके। जब किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा की बात की जाती है तब इसके अन्तर्गत उसकी सेनाओं की सामरिक क्षमता, प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता, जनसंख्या, सुदृढ़ अर्थतन्त्र एवं मजबूत राजनैतिक ढांचे का भी विवरण दिया जाता है। वस्तुतः, राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत सामरिक क्षमता के अतिरिक्त आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, औद्योगिक व भौगोलिक तथ्य भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। फिर इस समग्र युद्ध (Total war) के युग में तो सुरक्षा का प्रश्न और भी व्यापक व जटिल हो गया है।

राष्ट्रीय अखण्डता एवं सार्वभौमिकता बनाये रखने तथा राष्ट्रीय हितो की अभिवृद्धि हेतु राष्ट्रीय सुरक्षा के आन्तरिक व बाह्य मूल्यों की पहचान व उनका विश्लेषण करके सुरक्षा नीति का निर्धारण दिन–प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। जहां एक तरफ युद्ध, विज्ञान व तकनीकी में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनों से युद्ध का स्वरूप पूर्णतः परिवर्तित हो गया है वहीं वास्तविक युद्ध से पूर्व ही एक दूसरे के आन्तरिक लक्ष्यों पर किए जा रहे आर्थिक, कूटनीतिक व मनोवैज्ञानिक हमलों से विश्व के सभी राष्ट्र अपने को असुरक्षित महसूस करने लगे हैं। यही कारण है कि रक्षा तैयारियों पर पर्याप्त ध्यान देने के साथ–साथ सभी राष्ट्र अपनी आन्तरिक सुरक्षा हेतु गम्भीर दिखाई देते हैं। ध्यातव्य है कि सुदृढ़ सुरक्षा ढाँचे के निर्माण में जहां एक और सुदृढ़ अर्थतन्त्र एवं सुदृढ़ संस्थानिक ढांचा जैसे कारक प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते हैं वहीं दूसरी और आधुनिकीकरण की अस्तव्यस्तता, जातीय विभाजन, चापलुसी, भ्रष्टाचार जैसे तत्व सम्मिलित रूप से आन्तरिक सुरक्षा के ढाँचे को छिन्न–भिन्न करके बाह्य आक्रमणों की सम्भावनाओं को भी बढ़ा देते हैं।

शोध के उद्देश्य

1. भारत की आन्तरिक सुरक्षा में राजनीति की भूमिका का पता लगाना।
2. साम्प्रदायिक कारणों का पता लगाना।
3. कट्टरपंथी इस्लामी ताकतों के लक्ष्य का पता लगाना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध में यथासम्भव प्राथमिक तथा गौण दोनों स्त्रोतों का प्रयोग करते हुए उन बिन्दुओं का चयन किया गया है, जो

भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए बड़े खतरे के रूप मंडरा रहे है। प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में लोकसभा डिबेट, सरकार द्वारा प्रकाशित नीतिगत प्रपत्र, सरकारी प्रकाशनों व संसद में दिए गए वक्तव्य व विदेश मंत्रालय की रिपोर्ट आदि का अध्ययन किया गया है। गौण स्त्रोतों के रूप में उपलब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों की पुस्तकों, प्राप्त–लेखों, शोध–पत्रों, जर्नलस, विशिष्ट पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त इन्टरनेट द्वारा भी विषय सामग्री प्राप्त की गई है।

भारत की आन्तरिक सुरक्षा समस्याएं : भारत स्वतंन्त्रा के पूर्व तथा स्वतंन्त्रा प्राप्ति के बाद भी बाह्य आक्रमणों के अतिरिक्त आन्तरिक सुरक्षा समस्याओं से संत्रस्त रहा है। भारत का इतिहास इस बात का गवाह है कि भारत के ऊपर हुए विदेशी हमले आन्तरिक राजनैतिक उथल–पुथल तथा अस्थिरता की ही उपज थे। सिकन्दर, गौरी व बाबर आदि के भारत पर आक्रमण इसके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उपरान्त अंग्रेजों द्वारा समुचे भारत पर आधिपत्य स्थापित करना भी भारत की तत्कालीन आन्तरिक अस्थिरता एवं राजाओं की पारस्परिक फूट का ही परिणाम था। स्वतंन्त्रा प्राप्ति के पश्चात् एक तरफ तो भारत अपने पड़ोसी राष्ट्र चीन व पाकिस्तान के आक्रमण का शिकार हुआ, वही दूसरी तरफ विभिन्न सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक कारणों ने समय–समय पर भारतीय सुरक्षा के आन्तरिक ढांचे को संकट पैदा करने के प्रयास किये। शिक्षा व संचार माध्यमों के विस्तार के परिणामस्वरूप विकास की दौड़ में शामिल भारतीयों की बढ़ती महत्वाकाक्षाओं की प्राप्ति में नैतिक मूल्यों को भुलाकर अनैतिक साधनों के प्रयोग से देश का आन्तरिक ढाँचा कमजोर पड़ता जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत की आन्तरिक सुरक्षा से जुड़े विभिन्न पहलुओं का विवेचन निम्न है–

1. **साम्प्रदायिकता** – भारत में साम्प्रदायवाद ब्रिटिश शासकों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का दुष्परिणाम है जिसकी परिणति 'द्विराष्ट्र–सिद्धान्त' के माध्यम से राष्ट्रीय विभाजन एवं दो राष्ट्रों (भारत व पाकिस्तान) के निर्माण से हुई, जो आज तक एक दूसरे के शत्रु बने हुए हैं। वस्तुतः, साम्प्रदायवाद की भावना दो अलग– अलग समुदायों के बीच कटुता एवं पारस्परिक विरोध उत्पन्न करने के साथ–साथ दूसरे धर्मों का शोषण करती है, जिसका उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनैतिक होता है। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के कारण भारत का कोई राष्ट्रीय धर्म नहीं है और प्रत्येक सम्प्रदाय अपने–अपने धर्म के पालन के लिए स्वतंत्र है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धर्म परिवर्तन हेतु भी स्वतंत्र है किन्तु वोट और सत्ता को वर्तमान दूषित राजनीति ने साम्प्रदायिक भावनायें उभारकर पूरे देश में साम्प्रदायिक दंगों, हिंसा व मारकाट जैसे निन्दनीय कर्मों को प्रोत्साहित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। राम जन्म भूमि / बाबरी मस्जिद विवाद के घातक परिणाम आज सम्पूर्ण भारतीय समाज में देखे जा सकते हैं। भारतीय जनता पार्टी को कट्टर हिन्दूवादी पार्टी कहने वाले विभिन्न राजनैतिक दलों (कांग्रेस, जनता दल व साम्यवादी पार्टियाँ) द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु की जा रही मुस्लिम तुष्टीकरण की नीतियों के प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू समाज भी कठोर रुख अपनाने हेतु विवश है। 6 दिसम्बर 1992 को अयोध्या में हुई घटना के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इस विस्फोट के नायक थोड़े से वे कट्टर सनातनी हिन्दू थे जिनमें मध्ययुगीन मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा हिन्दू मन्दिरों के विध्वंस की प्रतिशोध भावना काम कर रही थी किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है इन घटनाओं का मुख्य कारण साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का अन्तर प्रवाह ही था। आज भी इन्हीं तत्वों को केन्द्र मानकर साम्प्रदायिक राजनीति का संचालन किया जा रहा है जिसके लिए देश के सभी राजनैतिक दल काफी हद तक उत्तरदायी हैं।

आज भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश व जम्मू–कश्मीर राज्य साम्प्रदायिक समस्याओं से सर्वाधिक संत्रस्त हैं। जहाँ एक ओर उत्तर प्रदेश कृष्ण जन्म भूमि व ज्ञानवापी (काशी) जैसे विवादों की त्रासदी झेल रहा है वहीं कश्मीर समस्या के समाधान में केन्द्र सरकार मुस्लिम–ग्रन्थि से मुक्त नहीं हो पा रही है। केरल में मुस्लिम तुष्टीकरण हेतु शुक्रवार को राजकीय अवकाश की स्वीकृति तथा बिहार के जनता दल व उत्तर प्रदेश की सपा व बसपा सरकारों द्वारा मुस्लिमों को आरक्षण की सुविधा देने की घोषणायें भारतीय समाज में ऐसा साम्प्रदायिक विष घोल रही हैं जिनके दुष्परिणाम आने वाले दिनों में काफी घातक सिद्ध होंगे।

2. **जातिवाद** – सामाजिक न्याय व दलित उत्थान हेतु भूतपूर्व प्रधानमंत्री वी० पी० सिंह द्वारा मण्डल कमीशन की सिफारिशें लागू करने तथा जातिगत आरक्षण हेतु देश की कई राज्य सरकारों के मध्य प्रारम्भ प्रतिस्पर्धा ने सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया है। वोट की राजनीति की इस स्पर्धा से जहाँ एक ओर देश में प्रतिभा पलायन व कुण्ठा की भावनाएं तीव्र हो रही हैं वहीं आरक्षण का लाभ भी गरीबों व दलितों को नहीं मिल पा रहा है।

तमिलनाडु, बिहार व कर्नाटक जैसे राज्यों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की अनदेखी करके आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाने से न्यायपालिका भी हतप्रभ रह गयी है।

3. इस्लामी आतंकवाद – कट्टरपंथी इस्लामी ताकतों द्वारा भारत के सीमान्त क्षेत्रों एवं विभिन्न प्रमुख व्यावसायिक व घनी आबादी वाले शहरों में की जा रही व्यापक तोड़–फोड़, बम विस्फोट व घुसपैठ से भारतीय सुरक्षा व अखण्डता के समक्ष नूतन चुनौती उत्पन्न हो गयी है। केन्द्रीय गृह मन्त्रालय की गुप्तचर एजेन्सियों ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि इस समय पाकिस्तान की गुप्तचर एजेन्सी आई० एस० आई० के अतिरिक्त बांग्लादेश की आई० एस० एस० (इंस्टीच्यूट फार स्ट्रेटेजिक स्टडीज) तथा सऊदी अरब की 'इंटरनेशनल इस्लामिक रिलीफ आर्गेनाइजेशन' जैसे संगठनों द्वारा भारत के पूर्वी सीमान्त क्षेत्रों के अतिरिक्त पश्चिमी व मध्य क्षेत्र को अपना कार्य क्षेत्र बनाने से आन्तरिक सुरक्षा आयाम जटिल हो गये हैं। बम्बई बम काण्ड की जाँच से उभर रहे तथ्यों तथा इसमें विदेशी तत्वों के हाथ होने की पुष्टि से उक्त आशंका को बल मिला है। इतना ही नहीं, अमेरिकी संसद की रिपब्लिक रिसर्च कमेटी द्वारा भारत की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर पनप रहे इस्लामी आतंकवाद की खोज हेतु गठित जांच दल ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि इस्लामी आतंकवादी भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लामी बहुराष्ट्रीयता के विस्तार में तीव्रता से सक्रिय हैं तथा इनका मुख्य लक्ष्य भारत है। इस कार्य में आई०एस०आई० की भूमिका प्रमुख है जो भारत में पाक प्रशिक्षित आतंकवादियों के जरिये प्रशिक्षण चलाने, आधुनिक हथियार भिजवाने, इस्लामी शिक्षा का विस्तार व देश भर में तोड़–फोड़ जैसी कार्यवाहियों का संचालन कर रही है। आई० एस० आई० ने नेपाल होते हुए भारत में प्रवेश का सीधा व सुरक्षित मार्ग ढूंढ़ रखा है जहां से पाक प्रशिक्षित आतंकवादी दस्ते और हथियार सरलता से भारत भेजे जा रहे हैं। इस तथ्य की भी अब पुष्टि हो गयी है कि दिल्ली के हवाई अड्डे पर 25 जून 1991 को हुआ बम विस्फोट, 1 सितम्बर 1991 को दिल्ली से लंदन व न्यूयार्क जाने वाली एअर इण्डिया के बोइंग 747 में बम रखने तथा सन् 1992 में दिल्ली में हुई भीषण बम विस्फोट की घटनाओं में आई० एस० आई० का ही हाथ था। अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन 'एमनेस्टी इण्टरनेशनल' की 1994 की वार्षिक रिपोर्ट में भी यह चिन्ता व्यक्त की गई है कि भारतीय सीमाओं के अन्दर फैल रहे इस्लामी आतकंवाद का संचालन आई० एस० आई० कर रही है। इसके अतिरिक्त, अवकाश प्राप्त ले० जनरल के० के० नन्दा ने अपनी पुस्तक ''कांकरिंग कश्मीरः पाकिस्तानी ऑपरेशन'' में आई० एस० आई० के बढ़ते कदम पर कई सवाल उठाये हैं।

पाकिस्तानी गुप्तचर संस्था आई० एस० आई० ने कश्मीर व मुम्बई के अतिरिक्त बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल व सम्पूर्ण पूर्वोत्तर क्षेत्र में अपनी पकड़ मजबूत कर ली है। बिहार के सीतामढ़ी जिले के बैरतनियां प्रखण्ड से लगे नेपाल के राजपुर गांव में आई० एस० आई० का प्रमुख अड्डा है जहां से प्रशिक्षित युवकों का भारतीय सीमा में प्रवेश हो रहा है। अनुकूल भौगोलिक स्थिति व 'बांगमती' व 'लालबकया' के मध्य स्थित उक्त प्रमुख क्षेत्र पर पाक प्रशिक्षित घुसपैठियों की गहन रूचि है। बिहार के सीमान्त जिलों–पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, अररिया, साहेबगंज तथा पश्चिमी बंगाल से लगे कई क्षेत्रों में मुस्लिम आबादी में हुई त्वरित वृद्धि के फलस्वरूप ही यह क्षेत्र आई० एस० आई० की गतिविधियों का आकर्षण केन्द्र बन गया है। आई० एस० आई० तथा बांग्लादेश की गुप्तचर ऐजेन्सियों ने कट्टरपन्थियों की सहायता से पश्चिमी बंगाल के उत्तरी सीमा क्षेत्रों में अपना सुदृढ तन्त्र विकसित करके व्यापक तोड़ फोड़ की पृष्ठभूमि तैयार कर ली है। नागालैण्ड से लेकर बिहार के सीमान्त जिलों तक आई० एस० आई० ने अपना जाल फैलाने के साथ–साथ जाली नोटों का समानान्तर बाजार विकसित कर लिया है साथ ही इसने प. बंगाल के उत्तरी दिनाजपुर व असम के कई निचले इलाकों को सोने की तस्करी का केन्द्र बनाया है।

इस्लामी कट्टरवादी शक्तियां नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा व असम आदि राज्यों में अपना सघन जाल फैलाकर विध्वंसक कार्यवाहियों का संचालन करने में सफल रही हैं। असम में 'अल्फा' व 'बोडो' उग्रवादियों को आई० एस० आई० का खुला संरक्षण प्राप्त है। नेशनल सोशलिस्ट कौंसिल ऑफ नागालैण्ड (एन०एस० सी०एन०) नामक प्रमुख उग्रवादी संगठन, जो आई० एस० आई० का प्रमुख औजार है, आज सम्पूर्ण पूर्वोत्तर में चल रहे पृथकतावादी आन्दोलन को एकजुट करने हेतु कार्य कर रहा है। असम में 'बोडो सिक्युरिटी फोर्स' तथा भारत में अवैध रूप से सक्रिय बांग्लादेश का कट्टरपंथी संगठन 'मुस्लिम वालेण्टियर फोर्स' आई०एस०आई० के हाथों का खिलौना बनकर इन क्षेत्रों के बांग्लादेश के नागरिकों की धार्मिक भावनाये भड़काकर अपने स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न हैं। बांग्लादेश के इस्लामी राष्ट्र घोषित होने के बाद इस क्षेत्र में कट्टरपंथी इस्लामी शक्तियों की सक्रियता ने साम्प्रदायिक सौहार्द को छिन–भिन्न करके राष्ट्रीय अखण्डता के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

4. भाषावाद– राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा के संदर्भ में यह प्रमुख तत्व है। बहुभाषी राष्ट्र होने के कारण स्वतन्त्रा प्राप्ति के बाद भारत में

भाषा की समस्या गम्भीर संकट उत्पन्न करती रही है। भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने के बाद भी सम्पूर्ण भारत में इसे व्यावहारिक–मान्यता नहीं मिल पायी है। दक्षिण भारत तथा पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी भाषा को लेकर न केवल रोष है अपितु कई हिंसक आन्दोलन भी हो चुके हैं। तमिलनाडु में तो भाषाई प्रश्न को लेकर भारत से अलग होने की माँग भी की गयी थी। ध्यातव्य है कि भाषाई आधार पर भारतीय प्रान्तों के पुनर्गठन ने इस समस्या में उत्प्रेरक का कार्य किया है।

वैसे भाषावाद की सकारात्मक प्रवृत्ति कभी भी विघटनकारी नहीं हो सकती क्योंकि सभ्यता एवं सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से किसी न किसी भाषा की जरूरत पड़ती है। लेकिन दूषित राजनैतिक उद्देश्य एवं संकीर्ण भावनायें आज तक हिन्दी को राष्ट्र एवं सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता प्राप्ति में सर्वाधिक बाधक रही हैं। समय–समय पर भाषा सम्बन्धी यही उलझाव राष्ट्रीय एकता एवं समृद्धता पर खतरा बन जाता है।

5. क्षेत्रीयता – प्राचीन भारत में 'वृहत्तर भारत' की अवधारणा एवं 'अनेकता में एकता' की प्रवृत्ति ने धीरे–धीरे क्षेत्रीय भावनाओं को प्रोत्साहित किया है। भारत को एक वृहद राष्ट्र का स्वरूप देने का श्रेय अंग्रेजों को है लेकिन उनकी 'फूट डालो और राज करो' की नीति क्षेत्रीयता हेतु भी उत्तरदायी रही है। क्षेत्रीयवाद का तात्पर्य उन प्रवृत्तियों से है जिसके अन्तर्गत विभिन्न भाषायी व क्षेत्रीय समुदाय राजनैतिक, प्रशासनिक और आर्थिक दृष्टिकोण से स्वायत्ता की माँग कर रहे हों। क्षेत्रीयवाद का यही स्वरूप अन्ततः राष्ट्रीय विभाजन का कारण बन जाता है। भौतिक अनुरूपता सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण ही क्षेत्रीयता की भावनाओं का जन्म होता है जो अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय सुरक्षा पर खतरा बन जाता है। भारतीय स्वाधीनता के बाद सन 1950 के प्रारम्भ होने वाले दशक में कुछ सीमित क्षेत्रों में ही क्षेत्रीय अलगाववाद की प्रवृत्ति देखने को मिलती है लेकिन 1960 के बाद व्यापक रूप से क्षेत्रीयता की भावनायें मजबूत होने लगीं। सर्वप्रथम पूर्वोत्तर भारत में नागा विद्रोहियों ने अलग राज्य की स्थापना हेतु विद्रोह किया। तदुपरान्त मद्रास महा प्रदेश में 'विशाल आन्ध्र' आन्दोलन तथा 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' का पृथकतावादी 'द्रविड़ आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ।

भारत के असम, नागालैण्ड, मिजोरम, पंजाब तथा जम्मू व कश्मीर राज्य मुख्य रूप से क्षेत्रीयता–आंदोलनों से प्रभावित रहे हैं। जहाँ तक पंजाब का प्रश्न है, यहाँ के पृथकतावादी आन्दोलन के पीछे धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक तत्व उत्तरदायी रहे हैं। पंजाब में जो भी घटित हुआ वह धर्म की अधार्मिक राजनीति का ही परिणाम है। इसकी पृष्ठभूमि में पाकिस्तानी शह पर कुछ पृथकतावादी सिक्खों द्वारा तथा कथित 'खालिस्तान' की माँग एवं 'आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव' की शर्तें मनवाने की जिद में भारत की राष्ट्रीय अखण्डता को चुनौती देने का प्रयास किया है। पंजाब के अतिरिक्त जम्मू व कश्मीर में पाक–प्रेरित व समर्थित पृथकतावादी तत्वों ने आतंकवाद का सहारा लेकर इस राज्य को भारत से पृथक करने का सुनियोजित अप्रत्यक्ष युद्ध चला रखा है जिसके समाधान हेतु भारत सरकार प्रयत्नशील है।

उधर पूर्वोत्तर असम राज्य क्षेत्रवाद का शिकार होता जा रहा है। बांग्लादेश के अभ्युदय और उसके बाद बंगाली शरणार्थियों की असम में हुई घुसपैठ ने यहाँ के मूल निवासियों को चिन्तित कर रखा है कि कहीं वे अपने ही प्रदेश में अल्पसंख्यक बनकर न रह जायें। आज असमवासियों द्वारा इन विदेशियों की पहचान कर इन्हें असम से बाहर निकालने की माँग जोर पकड़ती जा रही है। 'बोडोलैण्ड समस्या' व 'उल्फा' की बढ़ती गतिविधियों की पृष्ठभूमि में यही तत्त्व प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। इसी तरह उत्तर प्रदेश में गढ़वाल व कुमाऊं डिवीजन के सभी जिलों को मिलाकर पृथक उत्तरांचल राज्य तथा पृथक झारखंड राज्य की स्थापना क्षेत्रीयता के ही परिणाम हैं।

6. जनजातीय विद्रोह – जनजाति का तात्पर्य ऐसे स्थानीय आदिम समूहों से है जो एक सामान्य क्षेत्र में रहते हों तथा एक सामान्य भाषा व संस्कृति का अनुसरण करते हों। भौगोलिक दृष्टि से भारत की जनजातियों को प्रमुख चार क्षेत्रों (उत्तरी और उत्तरी पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी और उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र एवं दक्षिण क्षेत्र) में विभाजित किया गया है जिनके अर्न्तगत लगभग 550 विभिन्न जनजातियां आती हैं। इनमें भील, गुज्जर, खासी, धारू, कोरबा, गोंड, संथाल, चेंचू, नागा, कुकी, गारो व मिजो आदि प्रमुख हैं। इन जनजातीय समुदायों का पारस्परिक टकराव तथा इनकी दयनीय, आर्थिक, सामाजिक, शिक्षा व स्वास्थ तथा सांस्कृतिक व राजनैतिक समस्याएं राष्ट्र के आन्तरिक आयामों को किसी न किसी रूप से प्रभावित कर रही हैं।

7. राजनैतिक अवमूल्यन – स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् अधिसंख्य भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु की गई मूल्यविहीन, अवसरवादी व राष्ट्र–विरोधी राजनीति ने देश के सभी पहलुओं को बिल्कुल खोखला व संवेदनशील बना दिया है। बोफोर्स, फेयर फैक्स

व प्रतिभूति घोटाले जैसे बड़े काण्ड भारतीय राजनैतिक तन्त्र के लिये आये दिन की सामान्य घटनायें होती जा रही हैं। देश के शीर्ष राजनेताओं में इन घोटाला काण्डों की नैतिक जिम्मेदारी लेने का न तो साहस है और न ही उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण। उल्टे वे इन घोटालों में संलिप्त व्यक्तियों की यत्र–तत्र सहायता करते देखे जाते हैं। राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय हितों से मुंह चुराते देश के लगभग सभी राजनैतिक दल अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु देश की सुरक्षा व गौरव की सौदेबाजी करने में जरा सा भी संकोच नहीं करते हैं। रक्षा मामलों में उदासीनता, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की निष्क्रियता, रक्षा उपकरणों की खरीद फरोख्त में दलाली, राष्ट्रीय सम्पत्ति का दुरुपयोग तथा विदेशनीति के संचालन में प्रदर्शित राजनयिक लचीलेपन से यह स्पष्ट होता जा रहा है कि देश का मौजूदा राजनैतिक तन्त्र लक्ष्य विमुख हो गया है।

भारतीय राजनीति का हो रहा अपराधीकरण एक ऐसी चुनौती है जिसकी चिन्ता अब राजनैतिक दल भी करने लगे हैं। अगस्त 1995 में लोकसभा में प्रस्तुत 'बोहरा समीति' की रिपोर्ट में यह साफ–साफ कहा गया है कि ''राजनीतिज्ञ, नौकरशाह तथा अपराधियों (माफिया) के त्रिकोण ने सम्पूर्ण देश को अपना बन्धक बना लिया हैं तथा ये माफिया देश में समानान्तर सरकार चला रहे हैं।'' यह राजनैतिक हस्तक्षेप का ही परिणाम है कि देश के बड़े–बड़े अपराधी ससम्मान अपराधों से मुक्त होते जा रहे हैं। 'टाडा' जैसे महत्वपूर्ण विधेयक की समाप्ति तथा लोकपाल की अक्षमता राजनैतिक जीवन में बढ़ रहे माफियाओं के हस्तक्षेप तथा राजनैतिक निरंकुशता का ही परिणाम है। नैना साहनी हत्याकाण्ड तथा इसके अभियुक्त सुशील शर्मा की मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा राजनैतिक दबाव में की गई अग्रिम जमानत यह सिद्ध करती है कि अपराधियों की पहुंच इस स्तर की है कि उन्हें देश में मनमानी करने से रोका नहीं जा सकता, यही कारण है कि आज भारतीय जनता का विश्वास न केवल देश के राजनेताओं अपितु लोकतन्त्र के वर्तमान स्वरूप से धीरे–धीरे हटता जा रहा है। देश में उत्पन्न हो रही यह राजनैतिक रिक्तता एक ऐसी चुनौती है जो सीधे राष्ट्रीय सुरक्षा व अखण्डता को प्रभावित कर रही हैं।

निष्कर्ष

भारत की जनसंख्या में हो रही अनियन्त्रित वृद्धि, गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी तथा घूसखोरी जैसे अन्य सामाजिक–आर्थिक कारक भारत के आन्तरिक ढांचे को सतत् कमजोर करते जा रहे हैं। यद्यपि राष्ट्र के बहुमुखी विकास व राष्ट्रीय समृद्धि की प्राप्ति के लक्ष्य से भारत सरकार ने आर्थिक उदारीकरण नीति को क्रियान्वित कर रखा है तथापि विदेशी कम्पनियों के भारत में फैल रहे जाल से जहां एक ओर आर्थिक समृद्धि की सम्भावनाओं को बल मिल रहा है वहीं आर्थिक व वैदेशिक नीति के परतन्त्र होने की सम्भावनाओं से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इन कम्पनियों के भारत प्रवेश के परिणामस्वरूप देश में बन्द हो रहे कुटीर व लघु उद्योग बेरोजगारी की समस्या को और भी जटिल बना रहे हैं। यह आर्थिक क्रान्ति गरीबों को और अधिक गरीब तथा अमीरों को और अधिक अमीर बनाकर भारत की जनसंख्या के एक भारी हिस्से में असन्तोष, अराजकता एवं कुण्ठा को बढ़ावा दे रही है। इतना ही नहीं, जातिवादी आरक्षण तथा साम्प्रदायिकता के कारण भारतीय समाज की समरसता, बंधुत्व भावनायें तथा विभिन्न सांस्कृतिक तत्व धीरे–धीरे निष्प्राण होते जा रहे हैं। राजनीतिज्ञों की स्वार्थ परक राजनीति ने देश के सामाजिक व आर्थिक ढांचे को पहले से ही जर्जर बना रखा है।

निष्कर्ष

अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत की आन्तरिक सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने हेतु यह आवश्यक है कि क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, जातीयता व विद्रोह आदि से उत्पन्न हो रही विस्फोटक परिस्थितियों पर प्रभावकारी अंकुश लगाया जाना चाहिए। इसके लिये राष्ट्रीय चेतना का विकास करने, आर्थिक असन्तुलन दूर करने तथा देश में स्वस्थ राजनैतिक वातावरण उत्पन्न करना आवश्यक है। इसके साथ ही आरक्षण नीति के पुनर्मूल्यांकन एवं राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया पर सरकार को त्वरित व दूरदर्शितापूर्ण ठोस कदम उठाना होगा अन्यथा आन्तरिक एकता एवं समृद्धि के अभाव में राष्ट्रीय सुरक्षा व अखण्डता को बनाये रखना दुष्कर होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Singh, Capt. Samarveer (2009), India's Quest For Internal Security. New Delhi : Sumit Enterprises.
2. Bhonsle, Brigadier Rahul Kumar (2004), India's National Security: A Asymmetrical Challenges. New Delhi : Knowledge World.
3. Kumar, Dr. Satish (2021), India's Security Challenges. New Delhi : The Readers Paradise.
4. Kumar, Uday (2012), Defeating Naxalite. New Delhi :

Lucky International.
5. Parsad, Rajendra (2002), India's Security in 21st Century. Delhi: Dominant Publishers.
6. सिंह, अशोक कुमार (2019), स्वतन्त्र भारत के संघर्ष और युद्ध, बरेलीः प्रकाश बुक डिपो।
7. कुमार, अमन (2019), भारत की आन्तरिक सुरक्षा एवं आपदा प्रबन्धन, नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स।
8. सिहं, आर. एन.पी. (2014), आन्तरिक सुरक्षा चुनौतियां और समाधान, वॉल्युम–5, पेज–16, हौजखास नई दिल्ली : भारत नीति प्रतिष्ठान।
9. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Category:Internal-security-issues-of- India

Dr. Parveen Kumar
Defence & Strategic Studies
Email: parveensanga10@gmail.com

न्यायदर्शन में अयुतसिद्ध–एक विवेचना

डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी, प्रो0 दानपति तिवारी

सारांश

न्यायमतानुसार तन्तु और पट का समवाय सम्बन्ध होता है। क्योंकि तन्तुओं में ही पट समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होता है–तन्तुश्वेव पटः समवेतो जायते।

वास्तव में सम्बन्ध दो प्रकार के होते है।

1. समवाय, 2– संयोग द्विविधः सम्बन्धः संयोगः समवायश्चेति।[1]

इनमें से समवाय का लक्षण बतलाते हुए तर्कभाशाकार का कथन है कि–

अयुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः।[2]

वास्तव में सम्बन्ध दो सम्बन्धियों में होता है अर्थात् यह दिष्ठ होता है इसलिए दो अयुतसिद्धवस्तुओं के सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहा जाता है। समवाय सम्बन्ध के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है यथा भाट् मीमांसक तथा अद्वैतवेदान्ती समवाय सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं वे इसके स्थान पर तादात्म्य सम्बन्ध को स्वीकृति देते है। तादात्म्य का अर्थ है–

स आत्मा यस्य स तदात्मा तस्य भावः तादात्म्यम्।

न्याय–वैशेषिक के ग्रन्थों में भी तादात्म्य सम्बन्ध का उल्लेख किया गया है, किन्तु वहाँ इसे समवाय का पर्याय नहीं माना गया है तथा उसे ऐक्य कहा गया है। समवाय सम्बन्ध के विशय में प्रभाकर–मीमांसकों का पक्ष सकारात्मक है अर्थात् वे समवाय सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। इस सूदर्भ में उनका मानना है कि जब यह सम्बन्ध दो नित्य वस्तुओं में होता है तो नित्य है, अन्यथा वह अनित्य होता है।[3]

न्याय–वैशे0 की दृष्टि में समवाय को नित्य तथा एक मानने में ही लाघव है। (मि0 पी0आई0एल0 पृ0 33) समवाय सम्बन्ध से भिन्न संयोग सम्बन्ध होता है। यह अन्य दो पदार्थों का होता है।

अयुतसिद्ध का अर्थ है–जो युतसिद्ध न हो।

युत शब्द की निश्पत्ति 'यु धातु मिश्रणामिश्रणयोः से हुई है। यहाँ धातु का अभिप्राय अमिश्रण–पृथकता से है इसलिए युतसिद्ध शब्द का अर्थ पृथक्सिद्ध अथवा दो पदार्थों की अलग–अलग सिद्धि से है। यथा मेज और पुस्तक। इन दोनों की बिना किसी अन्य आश्रय के भी स्वतन्त्ररूप से सिद्धि है। अतः इन दोनों को युतसिद्ध कहा जाता है। जब हम मेज पर पुस्तक को रखते है तो वहाँ इन दोनों युतसिद्ध पदार्थों का जो सम्बन्ध है उसे संयोग कहा जाता है। इसके ठीक विपरीत जो स्थिति है वही अपृथक् अथवा अंयुतसिद्ध है। ये कभी अलग–अलग सिद्ध न होकर परस्पर एक दूसरे के आश्रित ही होते है, किन्तु ऐसा स्वीकार करने पर तन्तु और पट को अयुतसिद्ध कहने से एक विवाद की भी स्थिति उत्पन्न होती है, क्योंकि बिना पटनिर्माण के भी तन्तु का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अतः इनको अयुतसिद्ध मानना कहां तक तर्कसंगत है?इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रश्न उठ सकते हैं। इसी का उत्तर देते हुए न्यायदर्शन में कहा गया है कि 'ययोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेवावतिश्ठते तावयुतसिद्धौ।

अर्थात् जिन दो (पदार्थों) में से एक अविनश्यदवस्था में दूसरे पर आश्रित ही रहता है वे दोनों (पदार्थ) अयुतसिद्ध कहलाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वयोः। अनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिश्ठते।।

अर्थात् उन्हीं दो पदार्थों को अयुतसिद्ध समझना चाहिए जिसमें से एक नाशरहित अवस्था में दूसरे के आश्रित रहता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि एक के नश्ट हो जाने पर दूसरे की सत्ता नहीं रहती ऐसी स्थिति वाले दो पदार्थ अयुतसिद्ध कहलाते हैं। जैसे तन्तु और पट परस्पर अयुतसिद्ध होते हैं। पट तन्तुओं के आश्रित ही रहता है तथा तन्तुओं के नष्ट हो जाने पर पट की सत्ता भी समाप्त हो जाती है। यही स्थिति घट और मृत्पिण्ड की भी है, क्योंकि मृत्पिण्ड का लोप करने पर घट की सत्ता भी समाप्त हो जाती है। इन अयुतसिद्धों का परस्पर समवाय सम्बन्ध होता है तथा इसी सम्बन्ध के कारण तन्तु पट के समवायिकारण भी है। अतः यह कहा जा सकता है कि जिन परमाणुओं अथवा तत्त्वों से किसी वस्तु का निर्माण होता है वह उसका समवायिकारण है।

अयुतसिद्ध के उपर्युक्त लक्षण में यदि 'अविनश्यत्' पद न रखा जाये तो तन्तु और पट को अयुतसिद्ध नहीं माना जा सकता, क्योंकि वहाँ अयुतसिद्ध के लक्षण की अतिव्याप्ति होगी, यह कैसे?इसका समाधान करने के लिए न्याय–वैशोशिक की शास्त्रीय दृष्टि पर विचार करना होगा। वहाँ कहा गया है कि यद्यपि पट तन्तुओं के आश्रित रहता है, किन्तु एक ऐसी भी स्थिति होती है जब पट निराश्रित हो जाता है, क्योंकि कभी समवायि और असमवायि दोनों कारणों के नाश से कार्यद्रव्य का नाश होता है कभी समयावयिकारण के नाश से या कभी असमवायिकारण के नाश से भी यह स्थिति उत्पन्न होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कभी तन्तुओं के नाश

से पट का नाश होता है, कभी तन्तुसंयोग के नाश से तथा कभी तन्तु और तन्तुसंयोग दोनों के नाश से पटनाश हो जाता है। अतः अयुतसिद्ध का तात्पर्य है–जिन दोनों पदार्थों में से एक विनश्यत्ता की स्थिति को प्राप्त हुए बिना अपराश्रित रहता है। यहाँ विनश्यत्ता से तात्पर्य विनाश की कारणभूत सामग्री के सान्निध्य से है अथवा वह क्षण जब पदार्थ के विनाश के सभी कारण सन्निहित हों।

तर्कभाशाकार ने पाँच प्रकार के अयुतसिद्ध का उल्लेख किया है–

1. अवयव–अवयवी– अवयव का अर्थ होता है अ और अवयवी का अर्थ है–अी। तन्तु और पट में तन्तु अवयव है और पट अवयवी। जिन सूक्ष्मकणों के योग से किसी वस्तु का निर्माण होता है, वह अवयव है तथा उससे निर्मित वस्तु अवयवी हैं यहाँ अवयव और अवयवी एक दसरे से भिन्न होते हैं। तन्तु और पट में तन्तु पट का समयायिकारण होता है तथा पट उसका कार्य होता है। ये दोनों अयुतसिद्ध हैं, क्योंकि तन्तुओं में पट उत्पन्न होता है अर्थात् अवयवों में अवयवी की उत्पत्ति समवाय सम्बन्ध से होता है। पट अपनी विनश्यत्ता के पूर्वक्षण तक तन्तुओं के आश्रित रहता है। तन्तुओं के नष्ट होने पर पट निराश्रित होकर कुछ क्षणों के बाद नश्ट हो जाता है।

2. गुण–गुणी–गुण–गुणी की गणना भी अयुतसिद्ध के अन्तर्गत की जाती है। इनका भी परस्पर समवाय सम्बन्ध होता है। यथा–पट आदि में रूप आदि रहते हैं इसलिए पट आदि गुणी है। गुणी आश्रय होते है तथा गुण उनके आश्रित होते है। ये गुण अपनी अविनश्यदवस्था में गुणी के आश्रित रहते है। यही स्थिति घटादि और उसके नीलादिरूप की है। घट रूपादि गुण घटगुणी के आश्रित उस समय तक रहता है जब तक घट नष्ट नहीं हो जाता। घट के नष्ट होने पर घटरूप भी एक क्षण निराश्रित होकर नष्ट हो जाता है। अतः ये दोनों पदार्थ अयुतसिद्ध है।

3. क्रिया–क्रियावान्– गेंद का उछलना आदि कर्म ही क्रिया है तथा जिसमें यह क्रिया होती है वह क्रियावान है। ये दोनों सदा एक साथ रहते है। इनको पृथक् नहीं किया जा सकता है, किन्तु एक ऐसी स्थिति आती है जब क्रिया निराश्रित हो जाती है तथा क्रियावान् के नाश से क्रिया का भी नाश हो जाता हैं यहाँ प्रथम क्षण में आश्रय नष्ट होता है तथा द्वितीय क्षण में क्रिया नष्ट होती है। इसी स्थिति में एकक्षण के लिए क्रिया निराश्रित ही रहा करती है। इन दोनों का भी समवाय सम्बन्ध होता है।

4. जाति–व्यक्ति– जाति और व्यक्ति ये दोनों अयुतसिद्ध पदार्थ हैं। इनमें से जो जाति होती है वह व्यक्ति के आश्रित रहती है तथा व्यक्ति के नष्ट होने पर एक क्षण निराश्रित होकर वह भी नष्ट हो जाती है। जैसे घटत्व जाति घट के तब तक आश्रित रहती है जब तक घट नष्ट नहीं हो जाता। इन दोनों का परस्पर समवाय सम्बन्ध होता है। यही स्थिति पटत्व जाति और पट व्यक्ति तथा मनुष्यत्व जाति और मनुष्य की भी है। ये सब समवाय सम्बन्ध से युक्त होने के कारण अयुतसिद्ध हैं यहाँ जाति को स्पष्ट करना आवश्यक हैं जिसके कारण कई समान किन्तु अलग–अलग पदार्थों में एकता दृष्टिगोचर होती है, उस कारण को जाति शब्द से अभिहित किया जाता है। जैसे–कई घटों में अयं घटः का व्यवहार किया जाता है। इसका मूलकारण घटत्व जाति ही है। इस प्रकार पटत्व, गोत्व, मनुश्यत्व आदि जाति हैं।

5.नित्यद्रव्य–विशेष– ये दोनों भी अयुतसिद्ध पदार्थ है तथा इनमें समवाय सम्बन्ध होता हैं किसी भी पदार्थ के परमाणुओं को नित्यद्रव्य की संज्ञा दी जाती है। जिन परमाणुओं से किसी पदार्थ की संरचना होती है तथा उनका पुनः विभाजन नहीं किया जाता है, वे नित्य द्रव्य कहलाते है। इनका कभी भी विनाश नहीं होता, ऐसा नैयायिकों का मन्तव्य है। इनकी एक श्रृंखला है– घट–कपाल–कपालिकायें–ब्यणुक–द्वयणुक–अणु–परमाणु (आविभाज्य–निव्य)। नैयायिकों ने इन परमाणुओं में परस्पर भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिए एक विशेष द्रव्य को स्वीकार किया है। इन दोनों को परस्पर अयुतसिद्ध माना जाता है। विशेश पदार्थ सदैव नित्य द्रव्यों के आश्रित रहता है वह कभी भी नित्य द्रव्यों से पृथक् नहीं रहता। अतः इन दोनों में भी 'यमोर्मध्ये एकम् अपराश्रितमेव अवतिष्ठते।' लक्षण घटित हो जाता है। अविनष्यत् लक्षण भी इसमें घटित हो जाता है, क्योंकि विशेष पदार्थ नित्य अर्थात् अविनष्यवस्था में ही रहता है।

संदर्भ

1. तर्कभाषा–आचार्य केशव मिश्र
2. वही।
3. तर्कभाषा–सम्पादक श्रीनिवास शास्त्री, पृ0 27
4. तर्कभाषा आचार्य केशवमिश्र।

डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी
(प्रधानाचार्य)
एल0पी0के0 इण्टर कॉलेज,
बसडीला–सरदारनगर, गोरखपुर

प्रो0 दानपति तिवारी
संस्कृत–विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0।

25

आधे–अधूरे अंतर्विरोधों का दस्तावेज

डॉ0 सुनीता कुमारी गुप्ता

सारांश

आधे–अधूरे पूर्णतया यथार्थवादी नाटक है। एक मध्यम–वर्गीय परिवार जो आर्थिक वैषम्यों के कारण विघटित होने के कगार पर खड़ा है। वर्तमान पारिप्रेक्ष्य में स्त्री, पुरूष, युवक, युवतियाँ और किशोर–किशोरियों के मन में जो अंतर्विरोध चल रहा है उसे मोहन राकेश ने बड़े ही सुंदर ढ़ंग से उकेरा है। परिवार के यथार्थ एवं कटु बोध के वर्ण्य–विषय के रूप में नाटककार ने आधे–अधूरे के माध्यम से आर्थिक मूल्यों और पारस्परिक मर्यादा–संबधों के द्रुत–विघटन को बड़े ही बारीकी से दर्शाया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिस्थितियों की जटिलता से आज के मनुष्य को जिस द्वन्द और अंतर्विरोधो का सामना करना पड़ रहा है। उसका ज्यों का त्यों वर्णन इस नाटक में शब्दशः हुआ है। इसलिए आधे–अधूरे का आधुनिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में इसका मूल्यांकन बहुत ही आवश्यक है।

आधे–अघूरे उपन्यास यांत्रिक बौद्विकता के उग्र आयाम वाले युग–परिवेश में रचा गया है। यहाँ घुटन, विघटन, बिखराव और टूटन की प्रक्रिया भी बड़ी तीव्र है। पारिवारिक यथार्थ के रूप में 'आधे–अधूरे' नाटक में पारिवारिक मुखिया (महेन्द्रनाथ) के परिवार में घटित हो रहा है। महेन्द्रनाथ–सावित्री का परिवार तो एक प्रतीक मात्र है। यह प्रतीक ही पारिवारिक यथार्थ का केन्द्र बिन्दु है।

आर्थिक दृष्टि से बेकार होकर पुरुष महेन्द्रनाथ सावित्री के लिए लिजलिजा, अपने माद्दे से रहित, आत्मविश्वासहीन होकर रह जाता है। स्त्री यानी सावित्री घर की ढ़हती स्थिति को सम्भालने के लिए नौकरी करती है। परिणामस्वरूप पुरूष में आत्महीनता की घुटन और स्त्री के दायित्व–निर्वाह की गर्वीली घुटन जन्म लेकर दोनों को परस्पर आधा–अधूरा मानने के लिए विवश कर देती है। दैनिक तनाव, छटपटाहट,वाग्–युद्ध दोनों को पहले आन्तरिक धरातल पर अलग कर देती है और फिर एक दूसरे से बाह्य रूप से भी अलग होने कि लिए विवश कर देती है। इन सबका सीधा प्रभाव घर के माहौल पर पड़ता है और घर के बच्चे भी प्रभावित होते है। घर में एक के बाद एक अर्थात अनेक पुरूषों को आमंत्रित करना आर्थिक स्थिति से उबरने के साथ–साथ कामुकता की भूख को भी दर्शाता है। इन सबका इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि घर की बड़ी लड़की बिन्नी अपने माँ के ही प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। युवक लड़का अशोक फिल्म की हिरोइनों का तस्वीर काटकर दिवाल में चिपकाकर अपने मन की भड़ास निकालता है। छोटी लड़की किन्नी व्यवहार से उदंड और अपने उम्र से अधिक उम्र वाली भद्दी बातें करती है। इस परिवार में प्रत्येक सदस्यों का एक दूसरे से जुड़ाव के बजाय अलगाव है।

नाटक के प्रारम्भ मे ही स्त्री (सावित्री) घर के सभी सदस्यों से असंतुष्ट दिखायी देती है। सावित्री के मनोभाव को नाटककार मोहन, राकेश जिन शब्दों में अभिव्यक्त किया है उसे देखा जा सकता है –स्त्री (थकान निकालने के स्वर में) ओह् होह् होह् होह्! (कुछ हताश भाव से) फिर घर में कोई नहीं। (अन्दर के दरवाजे की तरफ देखकर) किन्नी !··· होगी ही नहीं, जवाब कहाँ से दे ?(तिपाई पर पड़े बैग को देखकर) यह हाल है इसका ! (बैग की एक–किताब उठाकर) फिर फाड़ लाई एक और किताब ! जरा शरम नहीं कि रोज–रोज कहाँ से पैसे आ सकते हैं नयी किताबों के लिए ! (सोफे के पास आकर) और अशोक बाबू यह कमाई करते हैं दिन भर ! (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिज़ाबेथ टेलर····· आड्रेहेबर्न····· शर्ले मैक्लेन ! जिन्दगी काट रहे हैं इन तस्वीरों के साथ !

तस्वीरें वापस रखकर बैठने लगती है किनजर झूलते पाजामे पर जा पड़ती है। (उस तरफ़ जाती) बड़े साहब वहाँ अपनी कारगुज़ारी कर गये हैं। पजामें को मरे जानवर की तरह उठाकर देखती है और कोने में फेंकने को होकर फिर एक झटके के साथ उसे तहाने लगती है। दिन–भर घर पर रहकर आदमी और कुछ नहीं, तो अपने कपड़े तो ठिकाने पर रख सकता है।पजामा कबर्ड में रखने से पहले डाइनिंग टेबल पर पड़े चाय के सामान को देखकरऔर खीझ जाती है, पाजामे को कुरसी परपटक देती है और प्यालियाँ वगैरह ट्रे में रखनेलगती है।इतना ही नहीं कि चाय पी है, तो बरतन रसोईघर में छोड़ आयें। मैं ही आकर उठाऊँ............ ।[1]

सावित्री घर तो ठीक करती ही है किन्तु उसे ऐसा लगने लगता है कि घर के अन्दर और बाहर दोनो का ही बोझ मुझपर है उसके बाद भी मुझे समझने वाला कोई नही है। सावित्री के लड़के को घर में किसी पुरूष का आना अच्छा नहीं लगता वह सावित्री से ही पूछना चाहता है कि आखिर तुम पुरूषों को किसलिए बुलाती हो। सावित्री कहती है–''इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढ़ोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास

लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूँगी कोशिश। हाँ, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की ज़िम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज़ का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीखती रहूँ रात–दिन ?मै भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठ रहूँ अपनी जगह ?उससे तो तुमसेकोई छोटा नहीं होगा।[2]

नौकरी पेशा सावित्री यह सोचने पर मजबूर हो जाती है कि घर मे समस्त सदस्य उसका शोषण करते हैं और उसकी सेवाओं को तरजीह नहीं देते हैं। वह अपने बॉस सिंघानिया को घर पर आमंत्रित करती है ताकि लड़के की नौकरी की बात उससे तसल्ली से की जा सके पर उसका सिंघानिया को घर पर बुलाना महेन्द्रनाथ को तनिक भी नहीं भाता है। क्योंकि सावित्री पहले भी अनेक पुरूषों को घर में बुलाती रही है। जुनेजा, जगमोहन, मनोज इत्यादि के घर में आगमन महेन्द्रनाथ तथा उसका पुत्र दोनों को अच्छा नहीं लगता। सावित्री खुलेपन का परिचय देती है।

इधर घर का मुखिया नौकरीविहीन महेन्द्रनाथ पत्नी के टुकड़ों पर पलनेवाला दयनीय पात्र है जिसे लगता है कि मेरी घर में कोई इज्जत नहीं है, कोई मान–मर्यादा कोई सम्मान नहीं है। इतना ही नहीं महेन्द्रनाथ को लगता है घर में उसकी हैसियत उस कुत्ते के समान है, जिसे जो चाहे जब चाहे हड़का सके। घर में अधिकार, रूतबा, इज्जत, कुछ भी नहीं मानों महेन्द्रनाथ घिसने वाला एक रबड़ का टुकड़ा मात्र है। महेन्द्रनाथ को लगता है अब कोई वजह नहीं कि उसे इस घर में रहना चाहिए। महेन्द्र नाथ स्वयं कहते हैं कि –''किसी माने में नहीं। मैं इस घरमें एक रबड़–स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ– बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?''

महेन्द्र नाथ सोचता है कि मेरी घर में कोई इज्जत नहीं है, कोई मान मर्यादा, कोई सम्मान नहीं है। इतना ही नहीं घर में प्रत्येक बिगड़ने वाला काम मेरी वजह से हो रहा है। सिर हिलाते हुए महेन्द्र नाथ कहते है –''हाँ छोटी–सी बात ही तो है यह अधिकार, रुतबा, इज्ज्त यह सब बाहर के लोगों से मिल सकती है इस पर को। इस घर का आज तक कुछ बना है. या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही विगड़ सकता है (लड़केकी तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है मेरी वजह से (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी मेरी वजह से ।''[4]

इन सब बातों की वजह से महेन्द्र नाथ इतना उब चुका है कि उसे घर में रहने की इच्छा तनिक भी नहीं है। नाटककार मोहनराकेश ने घर के मुखिया का वजूद क्या होता है इसे भी दिखलाते है। महेन्द्र नाथ के जाते ही थोड़ी देर के लिए सब लोग जड़ से हो रहते हैं– ''सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर इस घर को खा लिया है (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा । हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ ।''[5]

अशोक महेन्द्र नाथ सावित्री का 21 वर्षीय पुत्र है। उद्योग सेन्टर चलाने वाली लड़की (वर्णा) से प्रेम करताहै। अशोक के तेवर विद्रोही हैं। वह घर से इतना परेशान हो चुका है कि उसे लगता है यदि मॉ को किसी के साथ भागना है तो भाग जाय कम से कम घर की फसाद का तो खात्मा हो जाएगा।

वीणा उर्फ बिन्नी महेन्द्र नाथ सावित्री की बड़ी बेटी है। बिन्नी मॉ के प्रेमी मनोज के साथ भाग कर व्याह रचाती है और शीघ्र ही असंतुष्ट होकर वापस आती है। बिन्नी के चरित्र में भी संघर्ष, अवसाद, उतावलापन तथा बिखराव की प्रचुरता है। छोटी बेटी किन्नी परिवार में किसी को कुछ नहीं समझती तथा असंतुष्ट दिखाई देती है।

नाटककार मोहनराकेश ने आधे–अधूरे के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय परिवार के विघटन की त्रासदी को दिखलाया है। नाटक के केन्द्र में महेन्द्र नाथ और सावित्री का परिवार है, जिसमें उसकी तीन संतानें है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य कुंठा एवं अधूरेपन का शिकार है। प्रत्येक सदस्य एक छत के नीचे जीवनयापन करते हुए भी एक दूसरे के लिए बेगाने और अजनबी बने रहते हैं। इनके द्वन्द्व, घुटन, बेचैनी, अकेलेपन को दर्शाना ही नाटककार का उदे्श्य है।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. मोहनराकेश, आधे अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. सं.–13–14
2. उपरिवत् पृ.सं.–53
3. उपरिवत् पृ.सं.–38
4. उपरिवत् पृ.सं.–39
5. उपरिवत् पृ.सं.–39

डॉ0 सुनीता कुमारी गुप्ता
सहायक प्राध्यापिका
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
रांची विश्वविद्यालय, रांची
झारखण्ड–834001
मोबाईल नंबर– 9470360436

युद्ध के आर्थिक प्रभाव : एक समीक्षा

Dr. Parveen Kumar

सारांश

युद्ध आदिकाल से ही होते चले आ रहे हैं। युद्ध का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना कि मानव का इतिहास। इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध आदिकाल से ही एक विनाशकारी कार्य रहा है। सभ्यता के विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति के साथ–साथ युद्ध के तरीकों में भी परिवर्तन होता आ रहा है। जैसे–जैसे समाज में उन्नति हुई है वैसे–वैसे युद्ध की प्रकति भयावह एवं विभत्सकारी होती चली गई। युद्ध के परिणाम सदैव ही ह्रदय विदारक रहे हैं जिनका अनुभव एवं पश्चाताप मानव करता रहता है। परन्तु वह युद्ध को रोकने में सफल नहीं हो सका।

मुख्य शब्द : प्रभाव, अधिकार, आर्थिक, क्रान्तिकारी, युद्ध, राष्ट्र, हथियार आदि।

परिचय

आधुनिक युद्ध का स्वरूप पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के कारण आज का युद्ध सर्वव्यापी हो गया है। मानव जीवन का कोई भी पहलू इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। युद्धरत राष्ट्र विजय प्राप्त करने एवं शत्रु को धराशायी करने के लिए सभी प्रकार के साधनों एवं उपक्रमों को प्रयोग में लाता है जिसमें भौतिक, राजनीतिक मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक साधन सम्मिलित है। आधुनिक युद्ध ने मानव की अनेक महत्वपूर्ण आकांक्षाओं, वैभवों तथा सम्पत्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसी कारण कहा जाता है कि समस्त विपत्तियों में युद्ध ही सबसे बड़ी विपत्ति है।

कुछ महानुभावों का यह विचार है कि युद्ध में केवल बुराईयां ही नहीं है वरन् अनेक अच्छाईयां भी हैं। उनके अनुसार युद्ध मानसिक प्रोत्साहन प्रदान करता है जिसके कारण तकनीकी प्रगति होती है एवं भौतिक उत्पादन बढ़ता है तथा औद्योगिक विकास का मार्ग निकलता है। युद्ध के माध्यम से साहस, सहनशीलता एवं त्याग की भावनाओं के प्रदर्शन का भी अवसर मिलता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि युद्ध मानव के लिए लाभप्रद है। भारत ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने औद्योगिक उत्पादन में 25% की बढ़ोतरी की, लेकिन जनता के रहन–सहन में भी 25% की कमी देखी गई। तकनीकी प्रगति से आधुनिक युद्ध की विनाशकारी शक्ति में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो गई है तथा जिसके दुष्परिणाम को विजयी एवं पराजित दोनों ही देशों को सहन करना पड़ता है। जिस कारण मानवता का खात्मा होता है एवं जीवन के नैतिक मुल्यों का ह्रास होता है। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि युद्ध में अपार जन, धन एवं सामग्री की बर्बादी होती है, तथा मानवता के अनेक मुल्यों का लोप हो जाता है।

आर्थिक क्षेत्र पर भी युद्ध के बहुत ही भयंकर प्रभाव पड़ते हैं। युद्ध से अनेकों प्रकार की आर्थिक कठिनाईयां पैदा हो जाती है जिनका निवारण करना अत्यंत कठिन है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मानवीय एवं भौतिक साधनों का स्थानान्तरण करना पड़ता है तथा जिसमें जनता की मानसिक एवं शारिरिक शक्ति, भौतिक एवं गैर भौतिक पूंजी, चल एवं अचल पूंजी तथा अन्य साधनों का उपयोग करना पड़ता है। आधुनिक युद्ध इतना खर्चीला हो गया है कि उसके संचालन हेतु यह अनुमान लगाना कठिन है कि कितने धन का खर्च होगा। अतः युद्ध के लिए वित्त की व्यवस्था करना एक बड़ी समस्या बन गई है। युद्ध के कारण अनेकों प्रकार की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उथल–पुथल देखी जाती है। इन्हीं कारणों से प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान लगभग विनाश के कगार पर आ गये थे।

शोध के उद्देश्य

1. राष्ट्र की वित्त व्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाना।
2. आम जनमानस को युद्ध से आने वाली समस्याओं का पता लगाना।
3. राष्ट्र की औद्योगिक क्षमता पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का पता लगाना।

शोध विधी

प्रस्तुत शोध में यथासम्भव प्राथमिक तथा गौण दोनों स्त्रोतों का प्रयोग करते हुए युद्धरत राष्ट्रो पर पड़ने वाले युद्ध के आर्थिक प्रभावों का अध्ययन किया गया है। प्राथमिक स्त्रोतों के रूप में लोकसभा डिबेट, सरकार द्वारा प्रकाशित नीतिगत पपत्र, सरकारी प्रकाशनों, संसद में दिए गए वक्तव्य व विदेश मंत्रालय की रिपोर्ट आदि का अध्ययन किया गया है। गौण स्त्रोतों के में रूप उपलब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों की पुस्तकों, प्राप्त लेखों, शोध–पत्रों, जर्नलस,

विशिष्ट पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इण्टरनेट द्वारा भी विषय सामग्री प्राप्त की गई है।

युद्ध के आर्थिक प्रभाव : वास्तव में युद्ध के प्रभाव सर्वव्यापी होते हैं। युद्ध का प्रहार राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों पर इतना व्यापक होता है कि इससे विषम समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। आर्थिक क्षेत्र में तो युद्ध के कुप्रभाव भंयकर होते हैं तथा ये जटिल भी होते हैं। युद्ध के अर्थिक प्रभावों को जनता को झेलना ही पड़ता है। सामान्यतः यह भार उपभोग में कमी करके और अधिक समय तक परिश्रम के साथ कार्य करके उठाया जाता है। युद्ध के आर्थिक प्रभावों के अंतर्गत प्रमुख रूप से मुद्रास्फीति की समस्या, भुगतान संतुलन की समस्या तथा आर्थिक संसाधनों के समाप्त हो जाने की समस्या आती है।

भावी पीढ़ी को भी आर्थिक भार उठाना पड़ता है। यौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बहुधा राष्ट्रीय ऋणों में वृद्धि कर दी जाती है जिसका ब्याज के साथ भुगतान भावी पीढ़ी को ही करना पड़ता है। इस भुगतान हेतु करारोपण का सहारा लेना पड़ता है। युद्ध को कारगर तरीके से चलाने हेतु सशस्त्र सेनाओं से सम्बन्धित हथियारों एवं अन्य उपकरणों को विदेशों से भी आयात करना पड़ता है। इस प्रकार के आयात हेतु सोने का भी भुगतान करना पड़ता है। इनके अतिरिक्त विदेशी पूंजीगत विनियोग एवं अन्य सिक्योरिटीज को भी बेचना पड़ता है। अतः विनियोग को समाप्त कर देने से राष्ट्रीय आय में कमी आ जाती है। युद्ध के दौरान युद्धपोत एवं अन्य पोत डुबो दिये जाते हैं तथा उद्योगों एवं अन्य भवनों आदि का विनाश बमबारी द्वारा कर दिया जाता है। शांति काल में किये जाने वाले पूंजीगत विनियोग पर युद्ध के दौरान प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। परिणामस्वरूप भावी पीढ़ी को अपेक्षाकृत कम परिसम्पत्ति प्राप्त होती है।.

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध का आर्थिक प्रभाव वर्तमान एवं भावी दोनों पीढ़ियों पर पड़ता है तथा जिसे सभी लोगों को सहन करना पड़ता है। यदि इस बात का आश्वासन मिल जाये कि जनता का भौतिक सुख–सुविधा एवं कल्याण के स्तर में किसी प्रकार की कमी नहीं होगी तो उसके लिए युद्ध के भार को झेल पाना सरल हो जायेगा। परन्तु युद्ध का प्रभाव इतना भंयकर होता है कि युद्ध से पूर्व का रहन–सहन का स्तर पुनः प्राप्त करना प्रायः असम्भव हो जाता है। यह सही है कि युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद जनता को युद्ध के बोझ एवं असुविधाओं से मुक्ति मिल जाती है, परन्तु यह मुक्ति केवल आंशिक होती है। द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लेने वाले देशों में आयकर की दरों में भारी वृद्धि की गयी थी. परन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद भी आयकर की दरें ऊंची बनी रही। युद्ध के दौरान लगभग सभी वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हुई परन्तु युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद भी वे अपने पूर्व स्तर को प्राप्त नहीं कर सके।

युद्ध से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राष्ट्रीय आर्थिक साधनों का अधिकांश भाग अनुत्पादक एवं विनाशकारी उपयोग में लगा दिया जाता है। ये साधन शांतिकाल में जनता के कार्यों में तथा उसके सुख वैभव एवं विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन में लगा दिये जाते हैं जिनसे जनता के रहन–सहन का स्तर ऊंचा हो जाता है। युद्ध के दौरान जब इन साधनों को यौद्धिक कार्यों हेतु स्थानान्तरित कर दिया जाता है तो उस समय जनता के रहन–सहन का स्तर स्वतः गिर जाता है। अतः युद्ध का प्रभाव अत्यन्त अप्रिय एवं अहितकर होता है। विगत दोनों विश्व युद्धों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि पूरे पैमाने पर लड़े जाने वाले युद्ध का कुप्रभाव युद्धरत देशों की जनता के रहन–सहन पर अवश्य पड़ता है। निःसंदेह युद्धों का प्रभाव पीढ़ियों तक चलने वाली दरिद्रता एवं निर्धनता पर पड़ता है।

वास्तव में आधुनिक युद्ध एक औद्योगिक धन्धा ही है। आधुनिक युद्ध का स्थायी प्रभाव राष्ट्रीय औद्योगिक व्यवस्था पर पड़ता है। यौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उद्योगों का उत्पादन अधिकतम सीमा तक करना पड़ता है। हथियारों, गोला बारूद तथा युद्ध सामग्री के उत्पादन हेतु नये उद्योगों की स्थापना करनी पड़ती है। पुराने गैर सैन्य उद्योगों के जीर्णोधार एवं विस्तार हेतु आवश्यक यंत्रों एवं मशीनों तथा श्रम की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त जनता के उपभोग से सम्बन्धित उद्योगों को यौद्धिक उद्योगों में परिवर्तित करना पड़ता है। इसी कारण मुख्य लक्ष्य सैन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादन में वृद्धि करना होता है। युद्धरत देशों के समक्ष युद्ध के दौरान उत्पादन बढ़ाने हेतु उद्योगों के विस्तार एवं नवीन उद्योगों की स्थापना की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिसके निराकरण हेतु लगभग समस्त संसाधनों की टोह लेनी पड़ती है।

युद्ध के समय औद्योगिक विस्तार के फलस्वरूप उद्योगों का एकत्रीकरण हो जाता है। जनसंख्या का वृहत स्तर पर स्थानान्तरण हो जाता है। केंद्रीयकरण एवं जनसंख्या स्थानान्तरण के कारण निवास स्थलों की कमी हो जाती है जिसके कारण जनता

के रहन–सहन की दशायें अत्यन्त शोचनीय हो जाती हैं। औद्योगिकरण हो जाने के कारण नगरों की जनसंख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है। न केवल युद्ध के समय समस्यायें एवं कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं बल्कि युद्ध के बाद भी अनेकों प्रकार की समस्यायें एवं कठिनाइयां खड़ी हो जाती है। युद्ध खत्म हो जाने के बाद युद्ध से सम्बन्धित आवश्यकताओं की मांग भी समाप्त हो जाती है। जिस कारण यौद्धिक उद्योगों को पुनः शांतिकालीन उद्योगों में परिवर्तित करना पड़ता है। देश की औद्योगिक व्यवस्था में पुनः वृहद स्तर पर परिवर्तन कर दिया जाता है। परन्तु अनेक उद्योगों में श्रम की मांग में कमी होने लगती है तथा मजदूरी की दरों में भी कमी हो जाती है।

युद्ध के दौरान अनेक उद्योग नवीन तरह का उत्पादन करना शुरू कर देते हैं तथा अनेक नवीन उद्योगों की स्थापना कर दी जाती है। युद्ध के पश्चात् इनमें से अनेक उद्योगों को बनाये रखने की सम्भावनायें बनी रहती है। उत्पादन विधि में युक्तिकरण के कारण युद्ध के बाद के उद्योगों की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। राजकीय योजनाओं एवं उद्योगपतियों के प्रयासों के कारण बड़ी संख्या में श्रमिक प्रशिक्षित हो जाते हैं जिनका तकनीकी अनुभव औद्योगिक विकास में सहायक सिद्ध होता है। युद्धकाल में वैज्ञानिक अनुसंधान एवं यंत्रीकरण के प्रति श्रमिकों एवं उद्योगपतियों के रूझान से युद्ध के बाद देश के औद्योगिकरण को और भी अधिक गति प्रदान की जा सकती है। अतः युद्ध के बाद औद्योगिकरण के विकास में कुछ सीमा तक दिशा निर्देश एवं सहयोग प्राप्त हो सकता है।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद हथियारों, गोलाबारूद एवं अन्य सामग्री तथा अनेक प्रकार की वस्तुयें खपत से बच जाती हैं। इन वस्तुओं में भवन, मशीन, मोटर एवं परिवहन के अन्य साधन, चमड़े के सामान आदि आते हैं। इन बचे हुये सामानों की कीमत करोड़ों रूपयों में होती है। साज–सामान का इतना बड़ा जखीरा आर्थिक व्यवस्था हेतु लाभप्रद सिद्ध हो सकता है क्योंकि बाजार में इनकी खपत हो सकती है परन्तु इनसे आर्थिक एवं मौद्रिक समस्यायें पैदा हो सकती हैं। युद्ध के समय इन्हें एकत्रित पूंजी का नाम दे दिया जाता है। इन बचे हुये सामानों को मांग के अनुसार जनता के उपयोग हेतु उपलब्ध कराया जा सकता है।

जब तक युद्ध चलता रहता है उस समय तक उत्पादन क्षमता का उपयोग उन कार्यों हेतु किया जाता है जिनसे जनता की आय एवं उसके कल्याण के क्षेत्र में किसी प्रकार की वृद्धि तो नहीं होती परन्तु उत्पादन क्षमता में भी ह्रास नहीं होता। इस्पात तथा इंजीनियरिंग के वे कारखाने जो युद्ध के दौरान हथियारों एवं युद्ध सामग्री आदि का उत्पादन करते थे उन्हें युद्ध के बाद मोटरकारों एवं अन्य सुख के साधनों के निर्माण में लगाया जा सकता है। वस्तुतः समाज की उत्पादक पूंजी जनता के भौतिक आय में वृद्धि हेतु शक्ति प्रदान करती है। यदि उत्पादक पूंजी ही नष्ट हो जाए तो युद्ध के बाद उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जायेगी। वायु शक्ति की प्रधानता के कारण अब इस उत्पादक पूंजी को खतरा उत्पन्न हो सकता है। यदि उत्पादक पूंजी का विनाश बमबारी द्वारा कर दिया जाए तो इससे बहुत बड़ी राष्ट्रीय हानि हो सकती है। यदि हवाई बमबारी से फैक्ट्रियों, शक्ति के साधनों, रेलवे नेटवर्क आदि को नष्ट कर दिया जाता है तो इससे राष्ट्र की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अतः हवाई बमबारी से वृहत् स्तर पर राष्ट्र की क्षति हो सकती है। यदि उत्पादक पूंजी के विषय में सावधानी रखी जाए तो युद्ध से पूंजी उत्पादन क्षमता को हानि होने से बचाया जा सकता है।

वास्तव में युद्ध के विनाश का प्रभाव आर्थिक फ्रण्ट पर उतना नहीं देखा जाता जितना कि सामाजिक एवं आर्थिक विस्थापन का प्रभाव देखा जाता है। युद्ध के बाद बेरोजगारी का फैलना स्वाभाविक है क्योंकि युद्ध के समय सशस्त्र सेनाओं एवं उत्पादक कार्यों में लगी मानव–शक्ति में युद्ध के बाद कमी कर दी जाती है। युद्ध के बाद उत्पन्न बेरोजगारी का अनुमान लगाने हेतु यह आवश्यक है कि युद्ध के समय के रोजगार के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाए। युद्ध के दौरान अग्रलिखित क्षेत्रों में मानव–शक्ति का प्रयोग किया जाता हैः सशस्त्र सेनाओं, प्रशासकीय सेवाओं, आर्डिनेन्स फैक्ट्रियों, संगठित उद्योगों, असंगठित उद्योगों, सार्वजनिक निर्माण कार्यों तथा अन्य सहायक एवं सहकारी कार्यों में।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद सशस्त्र सेनाओं का एक बड़ा भाग उनसे अलग कर दिया जाता है। यद्यपि इसमें से कुछ सैन्य कर्मी कृषि से सम्बन्धित कार्यों में पुनः लग जाते हैं तो भी अधिकांश सैन्य कर्मियों को रोजगार प्रदान करने की आवश्यकता उठ खड़ी होती है। युद्ध सामग्री की मांग में कमी हो जाने के कारण उत्पादन में कमी हो जाती है। फलतः बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं। युद्ध के पश्चात् रोजगार प्राप्त करने के लिए श्रमिकों में होड़ लग जाती है। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय यंत्रीकरण में वृद्धि के कारण अनेक कर्मिक बेरोजगार हो जाते हैं। बेकारी एवं बेरोजगारी का बुरा प्रभाव समाज पर पड़ता है क्योंकि इससे मानवीय दुःखों एवं भूखमरी में वृद्धि हो जाती है। इससे औद्योगिक श्रम में भी अस्थिरता देखी जाती है। औद्योगिक केन्द्रों से बेकार श्रमिकों के चलें जाने से उद्योगों हेतु

श्रमिकों की उपलब्धि में बाधायें पैदा हो जाती हैं। बेकारी का प्रभाव औद्योगिक उत्पादन पर भी पड़ता है क्योंकि इससे उपभोक्ताओं की क्रय–शक्ति में कमी हो जाती है। बेकार लोगों के पास व्यय करने हेतु द्रव्य नहीं रहता है जिसके कारण औद्योगिक वस्तुओं के क्रय में भारी कमी हो जाती है तथा बेरोजगारी भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त मजदूर वर्ग के विभिन्न सदस्यों के बीच तथा बेकार एवं रोजगार युक्त व्यक्तियों के बीच आय का उचित वितरण नहीं देखा जाता। अतः युद्ध के प्रभावों में बेकारी का भी प्रमुख स्थान होता है।

युद्ध के कारण समाज के विभिन्न वर्गों के आपसी सम्बन्धों में तनाव आ जाता है। इस प्रकार के तनाव का सम्बन्ध वित्त व्यवस्था से ही है। ऐसी परिस्थिति ऋण लेने के कारण एवं मुद्रास्फीति के कारण उत्पन्न हो जाती है। युद्ध के पश्चात् मूल्यों का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा बना रहता है। फलतः उन व्यक्तियों को अधिक हानि उठानी पड़ती है जिनकी आय निश्चित होती है अथवा इसमें वृद्धि होने की सम्भावना नहीं रहती है जैसे पेंशन पाने वाले, भूमिधर लोग आदि। ऐसे व्यक्ति 'नवीनतम गरीबी' के वर्ग का सृजन करते हैं।

युद्ध के कारण केवल कीमतों में ही बढ़ोत्तरी नहीं होती साथ–ही–साथ करारोपण की मात्रा भी बढ़ जाती है। मजदूरी करने वाले लोगों को युद्ध के बाद लाभ मिलता है क्योंकि उनकी मजदूरी बढ़ जाती है तथा उनकी कार्य अवधि में कमी कर दी जाती है। इससे गरीब व्यक्तियों को लाभ मिलता है। धनी व्यक्तियों में से केवल कुछ को हानि होती है। ये वे ही व्यक्ति हैं जिनकी आय निश्चित होती है। धनी व्यक्तियों को नाममात्र की हानि होती है क्योंकि इनकी आय अस्थायी लाभ पर निर्भर करती है। वस्तुतः युद्ध के समय अर्जित लाभ के ही कारण एक ''नवीन धनी'' वर्ग का सृजन हो जाता है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की भी इसी प्रकार की दशा होती है। उनमें से कुछ परेशान रहते हैं और उन्हें वित्तीय हानि होती है, परन्तु वे लोग जो वैतनिक काम करते हैं अथवा मजदूरी करते हैं, अवश्य लाभान्वित होते हैं। परन्तु लगान अथवा किराये से होने वाली आय से व्यक्ति, भूमिधर, पेंशनधारी आदि सदैव परेशान रहते हैं। युद्ध के कारण लोगों की आय में उलट–फेर हो जाता है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी में मुद्रास्फीति का जो प्रभाव देखा गया उससे वहां की जनता को युद्ध की अपेक्षा अधिक मुसीबतों का सामना करना पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मुद्रास्फीति का प्रभाव चीन, इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं भारत पर बहुत अधिक पड़ा। यद्यपि मुद्रास्फीति से भौतिक सम्पदा को नष्ट नहीं किया जा सकता तथापि उससे उत्पन्न विस्थापन निश्चित रूप से धन उत्पादन की क्षमता में विघ्न पैदा करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि युद्ध के संचालन हेतु की गयी वित्तीय व्यवस्था के प्रभाव अत्यन्त भयावह होते हैं।

युद्ध से भयंकर खाद्य समस्या एवं परिवहन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यदि कोई देश आयातित खाद्यान्नों पर ही निर्भर हो तो वहां शत्रु द्वारा नाकेबन्दी करने पर भयंकर स्थिति उत्पन्न उत्पन्न हो जाती है। युद्ध के दौरान सैनिकों, सैन्य साज–सामान तथा अन्य सैन्य सामग्री की आपूर्ति पर अधिक जोर देने के कारण परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान खाद्यान्नों की कमी, परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयों तथा मूल्य नियंत्रण एवं नियंत्रित वितरण में अप्रत्याशित रूप से देरी के कारण भारत में सन् 1943 में भयंकर अकाल पड़ा जिसमें लाखों लोगों की जान चली गयी। इस भयंकर अकाल के पीछे द्वितीय विश्व युद्ध का ही हाथ था।

युद्ध का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विदेशी व्यापार पर भी पड़ता है। युद्ध के कारण दोनों प्रकार के व्यापार को अपार क्षति पहुंचती है। विदेशी व्यापार में हानि का सम्बन्ध युद्ध के समय के उत्पादन से ही है। युद्ध के दौरान हथियारों, सैन्य सामग्री, यंत्रों आदि की आपूर्ति हेतु विदेशों से आयात की मात्रा में वृद्धि करनी पड़ती है। अतः विदेशी व्यापार पर युद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

अधिकांश देश अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा की आड़ में एक दूसरे पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष युद्ध थोपने का प्रयास करते हैं। परोक्ष युद्ध के अन्तर्गत आर्थिक युद्ध का महत्व सर्वाधिक है। युद्ध के दुष्परिणाम भी भयावह होते हैं। हिंसात्मक युद्ध छेड़ते समय किसी भी देश को मुद्रास्फीति, भुगतान संतुलन तथा संसाधनों से सम्बन्धित समस्याओं का भय सताता रहता है जिनके निवारण हेतु उसे योजनाबद्ध तरीके से कार्य करना पड़ता है। द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी एवं जापान दोनों की पराजय का प्रमुख कारण उपर्युक्त समस्याओं का ही सफलतापूर्वक निवारण का न होना था ।

वस्तुतः युद्ध का प्रभाव सर्वव्यापी होता है। इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक अंग पर पड़ता है। इसका प्रभाव युद्धरत देशों पर भी पड़ता है। युद्ध का प्रभाव वर्तमान एवं भावी दोनों पीढ़ियों पर पड़ता है। युद्ध के बाद पुनर्निर्माण एवं पुनर्वास की भयंकर समस्या उत्पन्न हो जाती है जिनका निराकरण राष्ट्रीय सरकार तथा प्रदेशीय सरकारों को तत्परता के साथ करना पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Sawhney, Pravin (2022), The Last War. New Delhi: Aleph Book Company.
2. Economic Times, 4 June, 2019
3. पटवारी, अरुण (2010), विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं राष्ट्रीय प्रतिक्षा, बरेलीः प्रकाश बुक डिपो।
4. ग्रीन, राबर्ट (2011), युद्ध की 33 रणनीतियाँ, भोपालः मांजुल पब्लिशिंग हाऊस।
5. गैरोला, रामानन्द (2008), अन्तर्राष्ट्रीय विधी एवं मानव अधिकार, बरेलीः प्रकाश बुक डिपो।
6. सिंह, लल्लनजी (2013), राष्ट्रीय रक्षा और सुरक्षा, बरेलीः प्रकाश बुक डिपो।
7. सन्तजू (2019), आर्ट ऑफ वॉर, नई दिल्ली : फिग्रंरप्रिंट पब्लिशिंग हाऊस।
8. https://warpp.info/en/navigation

Dr. Parveen Kumar
Defence & Strategic Studies
Email: parveensanga10@gmail.com

27

मोहन राकेश के नाटकों के प्रमुख नारी पात्र
('आषाढ़ का एक दिन और आधे–आधूरे के संदर्भ में')

डॉ0 सुनीता कुमारी

सारांश

मोहन राकेश (8 जनवरी 1925–3 जनवरी 1972) नई कहानी आन्दोलन के सशक्त हस्ताक्षर थे, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न–नाट्य लेखक और उपन्यासकार जिन्होंने हिन्दी नाटकों को फिर से रंगमंच से जोड़ा। प्रसाद और भारतेन्दु के बाद यदि लीक से हटकर कोई नाम उभरता है तो वो है–मोहन राकेश का। पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेजी में एम. ए. करने के बाद कुछ वर्षों तक सारिका के संपादक भी रहे। मोहन राकेश को इसलिए भी विशेश स्मरण किया जाता है क्योंकि इन्होने हिन्दी नाटकों को अंधेरे बंद कमरे से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐंट्रेजनिक सम्मोहन से उभारकर एक नये दौर के साथ जोड़कर दिखाया। इस संदर्भ में बलकम खुद नामक आलोचक का विचार द्रष्टव्य है, वे लिखते हैं कि लेखक कमिटेड किसी विचारधारा से न होकर अपने समय से और समय के जीवन से होता है। यदि वह सचमुच अंदर से कमिटेड है तो वह अंधे की तरह लकड़ी लेकर अंधेरे में अपने अकेले के लिए रासता नहीं टटोलता; वल्कि अंधेरे और आतंक पैदा करने वाली शक्तियों के साथ अपने समुचे अस्तित्व से लड़ जाना चाहता है।''1

मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक मानव और मानवीय सम्बंधों की अभिव्यक्ति भी होती है। उनके नाटकों के संदर्भ में डॉ0 सुषमा अग्रवाल ने लिखा है '' नाट्य लेखन के क्षेत्र में राकेश की प्रातिभिक परिकल्पनाएँ यथार्थ से पुष्ट, समकालीन जीवन की त्रासदी से संस्पर्शित और अस्तित्ववादी चेतना से वयलित है, तो उनका शिल्प अकृत्रिम और जीवंत है।''2

मोहन राकेश को उनके नाटक ' आषाढ़ का एक दिन के सर्जक के रूप में जाना जाता है। यह नाटक 1958 में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक को हिन्दी साहित्य जगत में मील का पत्थर माना जाता है। इस नाटक के संदर्भ में डॉ. सुषमा अग्रवाल ने लिखा है–''आषाढ़ का एक दिन राकेश के नाटक सृजन का प्रारंभिक बिन्दू तो है ही हिन्दी में नये नाटकों की कथा यात्रा का भी आरंभिक सोपान है।'' 3

इस नाटक में मोहन राकेश ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक जीवन के कई आयामों का कथ्य चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। आषाढ़ का एक दिन – मल्लिका के कालिदास के प्रति निस्वार्थ प्रेम को तथा मल्लिका , कालिदास और विलोम के स्त्री – पुरूष संबेधों को बेवाकी से प्रस्तुत करने वाला आधुनिक हिन्दी नाटक है।

मोहन राकेश की प्रसिद्धि का दूसरा आधार उनके द्वारा रचित नाटक आधे – अधूरे है। मोहन राकेश का नाटक आधे–अधूरे सबसे पहले 19 एवं 26 जनवरी तथा 2 फरवरी 1969 के तीन अंकों में धर्मयुग में क्रमशः छपा और 2 मार्च 1969 को दिल्ली की नाट्क संस्था दिशांतर ने इसे ओम शिवपुरी के निर्देशन में अभिमंचित भी किया।

आषाढ़ का एक दिन नाटक की प्रमुख नारी पात्र एवं नायिका – मल्लिका उदार ह्रदय और कलामर्मज्ञ पात्र है। वह ऐसी नायिका है जो कालिदास से निःस्वार्थ भाव से प्रेम करती है। मल्लिका कालिदास की केवल बालसखी और प्रेयसी ही नहीं है उसकी काव्य सर्जना की मूल प्रेरणा भी है। उसके किए कालिदास 'भावना में एक भावना का वरण' है। इसीलिए उसके साथ का संबंध उसकी दृष्टि में और सब संबंधों से बड़ा है, उसके विचार में जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही सब कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है, इसे वह मानती है इसीलिए जब कालिदास को राजधानी उज्जयिनी की ओर से राजकवि के लिए जब बुलावा आता है तबवह उसे उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि जिसे वह प्रेम करती है, उसे भौतिक बंधनों में बाँधकर रखे, इसीलिए तो वह माँ के लाख समझाने पर भी यह कहते हुए कालिदास को उज्जयिनी भेजती है कि – '' आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं करना चाहती ''।4

मल्लिका कालिदास को जीवन में उच्चता के शिखर पर देखना चाहती है इसीलिए कालिदास के बिना भी अपने पवित्र कोमल और अनश्वर प्रेम के बल पर शेश जीवन को जीने का दृढ़ का संकल्प करती है। मल्लिका स्वयं माँ जगदम्बा के मंदिर में जाकर कालिदास से आग्रह करती है। वह जानती है और स्वीकार भी करती है कि कालिदास के अभाव में उसके ह्रदय में रिक्तता छा जायेगी मगर फिर भी कालिदास को समझाती है–'' तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर हो सकते हो.....? यहाँ ग्राम प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिमा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा ? यहाँ लोग तुम्हें समझ

नहीं पाते। वे सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं। '' इस समय मल्लिका का वही उदात्त नारी रूप प्रकट होता है जो यशोधरा में गुप्त जी ने अंकित किया है–

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रयतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती है रण में
क्षात्र धर्म के नाते।

मल्लिका कालिदास की प्रगति में बाधक नहीं बनती है, बल्कि उसकी प्रेरणा बनकर उसे उज्जयिनी जाने के लिए विवश कर देती है। मल्लिका का यह त्याग सर्वथा सराहनीय है।

मल्लिका का जीवन विडम्बनाओं से भरा है माँ अम्बिका की मृत्यु के पश्चात उसका साहस टूट जाता दूसरी ओर ग्राम – प्रान्तर में आकर भी कालिदास का मल्लिका से न मिलना उसे गहरी निराशा में डूबा देता है और हम देखते हैं कि भावनाओं में जीने वाली मल्लिका परिस्थितियों से हार जाती है। उसकी विषम परिस्थिति का लाभ विलोम उठाता है। गरीबी और मजबूरी उसे जीने नहीं देती है और विवश होकर वह विलोम के आगे समर्पण कर देती है। एक ओर वह कालिदास के प्रेयसी के रूप में अपवाद झेलती है तो दूसरी ओर अविवाहित मातृत्त्व के भार को वहन करती है । व्यथा से भरकर वह कहती है '' इस जीव को देखते हो ?पहचान सकते हो ? यह मल्लिका है जो धीरे–धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं उसकी देखभाल करती हूँ यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के प्रकोष्ठ में किसी की जीने कितनी–कितनी आकृतियाँ हैं। जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं केवल विशेषण हूँ।'' परन्तु तुमने वीरांगणा का यह रूप भी देखा है? आज तुम मुझे पहचान सकते हो ''?

उस तरह मल्लिका के माध्यम से मोहन राकेश ने निःस्वार्थ प्रेम को दर्शाया है – प्रेम केवल शारीरिक ही होता है, ऐसा नहीं है वह इससे भी परे जाकर अशारीरिक और मानसिक धरातल पर उदात्त एवं निःस्वार्थ होता है।

आधे–अधूरे मोहन राकेश का तीसरा वहुचर्चित नाटक होता है। यह नाटक मोहन राकेश के पूर्व दो नाटकों की भाँति ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत न होकर सीधे–सीधे समकालीन संवेदनाओं को प्रकट करता है उस नाटक में मोहन राकेश ने एक मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से समकालीन जीवन के वभिन्न कोणों को सशक्तता से उभारा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में नारी अपनी अस्मिता और अस्तित्व के प्रति स्वभाविक रूप से जागृत हुई है। उसकी सोच–विचार में काफी परिर्वन आया है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी पुरूशों के समान ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित कर जीवन यापन करने में लगी हुई है साथ ही पूर्णता की तलाश में प्रयत्नशील भी है परंपरागत वर्जनाओं से मुक्ति तो आज की नारी को मिल गई हैं किन्तु आधुनिक काल की नई समस्याओं को भी उसे भुगतना पड़ रहा है। आधुनिक नारी ने अभी तक गृहस्थी के पिंजडे को तोड़ा नहीं है लेकिन समाकलीन काल की चिंतन धारा ने उसे विद्रोही अवश्य बनाया है। आज की नारी आधुनिक बोध की प्रेरणा से अपने परम्परागत पत्नी बोध से मुक्त होना चाहती है क्योंकि आज आदर्श के मानदंड बदल जाने से उसके लिए जीवन में पतिव्रता होना ही जीवन का आदर्श नहीं रहा है। इसीलिए वह कठोर संघर्ष करते हुए अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को लेकर पूर्णत्व की तलाश कर रही है।

इसी समकालिन काल की नारी को आधे–अधूरे की सावित्री ने सफलता के साथ उजागर किया है। '' वस्तुतः यह नाटक न केवल मध्यवर्गीय परिवार के साक्षात्कृत संदर्भों का नाटक है, अपितु इसके सहारे राकेश ने व्यक्ति के अधूरेपन की कहानी को कई कोणों से अभिव्यक्त किया है।'' **5**

सवित्री नौकरी करती है वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं उसका कारण वह पूरे परिवार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती है, वह स्वतंत्र व्यक्तित्व को लेकर जीवन जीने की आकांक्षिणी है, उसे पति के रूप में महेन्द्रनाथ नकारा निकम्मा और अधूरा पुरूष महसूस होता है वह अपने लिए किसी पूर्ण पुरूष की तलाश करती है परंतु पूर्ण पुरूष की तलाश में वह जिससे भी मिलती है वह किसी न किसी वजह से उसे अधूरा ही दिखाई देता है। अतः उसकी यह पूर्ण पुरूष की तलाश अभी जारी है। सावित्री के लिए जीवन में पतिव्रता होना ही आदर्श नहीं है। क्योंकि उसे अपने परिवार का बोझा ढोने के साथ–साथ अपने जीवन की अनेक मांगो को पूरा करना है। वह अपने जीवन को घूट–घूट कर बिताना नहीं चाहती। जीवन से उसकी अपेक्षाएँ अनंत हैं। जिसकी पूर्ति वह करना चाहती है और उसी के लिए वह संघर्षरत है।

इस तरह हम देखते हैं कि सावित्री अपने ' कल्पना–स्वप्न ' को साकार करने के लिए महेन्द्रनाथ से लेकर मनोज तक उड़ान भरती है, लेकिन हर घोसला उसे अधूरा ही नजर आता है। क्योंकि कल्पना और यथार्थ बहुत अंतर होता है।

संदर्भ

1. मेहन राकेश का संचयन पृ0–17
2. मेहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व डॉ. सुषमा अग्रवाल

पृ0—602

3. मेहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल पृ0—61
4. आशाढ़ का एक दिन : मोहन राकेश पृ0—25
5. मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ. सुषमा अग्रवाल पृ0—128

धनबाद इकाई का गठन

डॉ. स्नेहलता

झारखंड के गौरव

राश्ट्रीय कवि विनय विनम्र जी

वंदना आपकी सुनाऊँ माँ

हें चहुँ ओर अंधेरा घना

करूणा करके एकबार निहारो

डॉ0 सुनीता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका—हिन्दी विभाग

सह परीक्षा नियंत्रक

राँची वीमेन्स कॉलेज राँची

मो0—9470368260

28

विश्व में हिन्दी की स्थिति

डॉ0 प्रवेश कुमारी

सारांश

जिस देश में गंगा बहती है, उस देश का गौरव गान है हिन्दी।
राम और कृष्ण की जो अवतार भूमि, उस देश का वरदान है हिन्दी।गौतम, गाँधी, नेहरू की जो कर्मभूमि, उस देश की पहचान है हिन्दी। तुलसी, कबीर, नानक की जो धर्मभूमि, उस देश का अरमान है हिन्दी।

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है, यह अभिव्यक्ति आमजन की अस्मिता से लेकर राष्ट्र के आगत भविष्य निर्माण के लिए भी हो सकती हैं। इसलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषा तक सीमित नहीं है यह अपनी पहचान का प्रश्न है। भाषा किसी भी देश की आन, बान और शान होती है। भाषा ही वह तत्त्व है जो मनुष्य को समाज से, समाज को राष्ट्र से, राष्ट्र को विश्व से जोड़ती है। भाषा के अभाव में मनुष्य इतिहास और परंपरा से कट जाएगा। सम्पूर्ण सृष्टि उद्देश्य हीन हो जाएगी। इस दृष्टि से हिन्दी विश्व की उन श्रेश्ठ भाषाओं में से एक है, जिसके दामन में कई भाषाओं एवं सभ्यता, संस्कृतियों के अंग फल–फूल रहे हैं। इस हिसाब से हिन्दी विश्व की सर्वशक्तिशाली भाशा है। महात्मा गाँधी जी भी यही चाहते थे कि ''साहित्यिक रूचि रखने वाले युवक–युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की अन्य भाषाएं खूब पढ़े लेकिन मैं यह हरगिज नहीं चाहूंगा कि कोई हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाएँ या उसकी उपेक्षा करें या उसको देखकर शरमाएँ, यह महसूस करें कि अपनी मातृभाशा के जरिए वह ऊँचे से ऊँचा चिंतन नहीं कर सकता है।''[1]

हिन्दी भारत की सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा है। हिन्दी केवल भारत की ही नहीं, बल्कि अन्य कई देशों में भी बोली जाने वाली भाशा है। भारत के जन–जन के मुख पर आज हिन्दी रची–बसी है। आजकल दक्षिणी भारत में भी हिन्दी अपने पाँव बहुत तेजी से पसार रही है। जिस प्रकार भारत में हिन्दी का प्रभाव बढ़ा है, उसी प्रकार विश्व के अन्य देशों में भी हिन्दी का प्रचार–प्रसार हो रहा है।

जनसंख्या के आधार पर आज संसार में हिन्दी के बोलने और समझने वाले सबसे अधिक हैं। इसलिए सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा हो चुकी है।हिन्दी प्रशासन, विधि, चिकित्सा, न्याय, शिक्षा, तकनीकी, आदि विभिन्न क्षेत्रों में सशक्त माध्यम बन चुकी है। जीविकोपार्जन, व्यवसाय, खेल, जगत, सिनेमा, विज्ञापन, दूरदर्शन व कम्प्यूटर,इन्टनेट के क्षेत्र में अपना परचम फहराया है। वह केवल क्षेत्र विशेष की भाषा नहीं है, जनसंख्या के सशक्त माध्यम के रूप में लोकमानस के पटल पर अंकित हो गई है।

हिन्दी केवल भाषा नहीं है अपितु आचार संहिता भी है। संस्कृत से जो उसे संस्कार मिला है, उसका आधुनिक विकसित स्वरूप हिन्दी है, वहीं हमारी सामाजिक संस्कृति की संवाहक है और संस्कृत की उत्तराधिकारी है।

हिन्दी का विस्तार भारत के पूरे विश्व में हो रहा है। संसार में तीन भाषाएं प्रमुखता से बोली जाती हैं– हिन्दी, अंग्रेजी और चीनी। अगर हम इनको क्रम में रखें तो–चीनी, अंग्रेजी, हिन्दी। लेकिन अब वह दिन दूर नहीं है कि एशिया की भाषाओं में हिन्दी प्रमुख हो जाएगी और इसी के साथ विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हो जाएगी। हिन्दी फिल्मों ने अंतर्राष्ट्रीय जगत में हिन्दी को लोकप्रिय बनाया है। संसार के कई देशों में हिन्दी की फिल्में देखी जाती है और पसंद की जाती है। हिन्दी फिल्मों के गीत तो विदेशों में व्यापक स्तर पर सुने जाते हैं, इस कारण से भी विदेशी लोग हिन्दी सीखने में रूचि दिखाने लगे हैं। आज हर ओर हिन्दी का जयघोश सुनाई पड़ रहा है। शायद हिन्दी के इस प्रबल फैलाव के कारण जुरासिक पार्क एवं टाइटैनिक जैसी विश्व प्रसिद्ध फिल्मों के निर्माताओं को इन फिल्मों का हिन्दी में अनुवाद करना पड़ा। डिस्कवरी जैसे ज्ञानदायी एवं विश्वव्यापी चैनल को भी लगा कि यदि उसे भारत में पांव पसारने हैं तो चैनल का हिन्दीकरण करना ही होगा। इस संदर्भ में यह कथन उल्लेखनीय है– 'मनोरंजन उद्योग के ग्लोबल बाजार ने बताया है कि बालीबुड की फिल्मों और गानों की धुनों को जो लोग भाषा की दृष्टि से नहीं समझते, वे भी उसकी संस्कृति संरचनाओं के प्रभाव में रहते हैं। वे स्पेनिश, फ्रैंच, जापानी या चीनी बोलने वाले हो सकते हैं, मगर हिन्दी फिल्में पसंद करते हैं। जाहिर है, कुछ हिन्दी शब्द इस बहाने उनके पास रह जाते हैं। अरबी–फारसी बोलने वालों की दुनियां में भी हिन्दी अनजानी नहीं है। मनोरंजन चैनलों ने वहां भी हिन्दी को फैलाया है।'[2]

विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पठन–पाठन की व्यवस्था है। हिन्दी के प्रचार–प्रसार में प्रवासी भारतीयों का भी बड़ा योगदान है। अनेक विदेशी विद्वान हिन्दी में साहित्य सृजन कर रहे

हैं और कई देशों से पत्र–पत्रिकाएँ भी हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। इनमें मॉरीशस, फीजी, त्रिनिडाड, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, कनाडा, सूरीनाम और ओसलो नार्वे का योगदान सर्वाधिक है। प्रवासी साहित्यकार विश्वकवि प्रो. हरिशंकर 'आदेश' ने हिन्दी की पताका को विश्व के अन्य देशों में फहराया है–

समुद्र पार भी बसता है भारत देश,
हिन्दी को समृद्ध करने, वहाँ जो हैं। विश्वकवि 'आदेश'

जापान के टोक्यों विश्वविद्यालय के विदेशी अध्ययन विभाग में हिन्दी के अध्ययन व अध्यापन का प्रचलन दीर्घकाल से रहा है। यूरोप और अमेरिका में हिन्दी का प्रचलन है। अमेरिका में हिन्दी का परचम अन्तर्राश्ट्रीय हिन्दी समिति न्यूजर्सी ने भी लहराया है। वहाँ हिन्दी का नया सूर्योदय हुआ है वेस्टइंडीज के त्रिनिडाड–टौबेगो विश्वविद्यालय में हिन्दी चेयर स्थापित है। हिन्दी के माध्यम से प्रवासी भारतीय अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। हिन्दी भाषा ही नहीं अपितु जीवन पद्धति का नाम है। संसार में लगभग 6000 भाषाएं, बोलियां, जनपदीय भाशाएं, प्रान्तीय भाषाएं बोली जाती है। हिन्दी का विस्तार भारत के बाहर लगभग पूरे विश्व में है। मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद आदि देशों में हिन्दी जानने व बोलने वालों की संख्या ज्यादा है। फिजी में वह फिजीबात, सूरीनाम में सरनामी तथा दक्षिण अफ्रीका में नैताली के नाम से जानी जाती हैं। नेपाल भारत का पड़ोसी देश हैं जिसके तराई क्षेत्र में हिन्दी तथा उसकी प्रमुख बोलियाँ–भोजपुरी, मैथिली, मगही, अवधी आदि बोली जाती है। अमेरिका, ब्रिटेन, न्यूजीलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया और खाड़ी देशों में भी हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत अच्छी है। चीन, रूस और जापान के विश्वविद्यालयों के हिन्दी–विभाग में हिन्दी पढ़ाई जाती है। टोक्यों विश्वविद्यालय के पुस्तकालय विभाग में भारतीय भाषाओं की करीब 50 हजार पुस्तकें हैं। ओसाका विश्वविद्यालय के हिन्दी–विभाग में सैंकड़ों छात्र–छात्राएं हिन्दी पढ़ रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी हिन्दी का प्रचार व प्रसार बढ़ रहा है। संसार के लगभग 175 देशों में हिन्दी बोली और समझी जाने लगी है।[3]

विश्व के अनेक देशों में विश्व हिन्दी–दिवस, विश्व–हिन्दी सम्मेलन और विश्व पुस्तक मेले हिन्दी के प्रसार के शुभ लक्षण हैं। इन सम्मेलनों के उद्दश्य में हिन्दी को अंतराष्ट्रीय मंच पर विश्वभाशा के रूप में प्रसारित करना है।भारत में नहीं बल्कि विश्व पटल पर हिन्दी आज अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। जब हम वैश्विक परिदृष्य में हिन्दी की पड़ताल करते हैं तो हम पाते हैं कि हिन्दी आज वैश्विक भाषा बन गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा थी, किन्तु भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद एवं संचार क्रांति के कारण यह दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा बन गई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 'इंग्लैण्ड की दूसरी भाषा हिन्दी है क्योंकि इंग्लैंड के शहर में बसे एशियाई लोगों की संख्या काफी है। वे चेहरे से पहचाने जा सकते हैं और आपस में हिन्दी बोलते हैं। भले ही वे बांग्लादेश के हों, पाकिस्तानी या श्रीलंकाई या फिर भारतीय हों।'' अतः हम कह सकते हैं कि इग्लैंड जैसे देश में भी हिन्दी भाषा ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। हिन्दी यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाशा बनने की प्रबल दावेदार है तो सिर्फ इसलिए कि आज हिन्दी भाशी भारतवंशी पूरी दुनियां में छा गए हैं। गुलाम भारत से गिरगिटिया बनकर और आजाद भारत से रोजी–रोटी की तलाश में भारतीय कामगारों का व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुआ। वे जहां भी गए अपनी भाशा और संस्कृति साथ ले गए। बंजर भूमि को कमर–तोड़ मेहनत से उर्वर बनाकर उन्होंने जो फसल लगाई, उसमें एक क्यारी हिन्दी की भी थी। कनाडा के हिन्दी प्रचारिणी सभा से जुडे डॉ. श्याम त्रिपाठी लिखते हैं– ''मैंने स्वयं अपने घर में एक हिन्दी स्थान बनाया हैं, जहां सिर्फ हिन्दी की ही पुस्तकें मिलती हैं। अंग्रेजी भाषा का लगातार 10 वर्षों तक अध्ययन–अध्यापन करने के बावजूद अंत में सच्चा सुख अपनी मातृभाशा और संस्कारों में ही मिला। यह अनुभूति करने वाला मैं अकेला नहीं हूँ बल्कि लाखों लाख अप्रवासी भारववंशी भी इसे महसूस करके तेजी से जड़ों की ओर लौटना चाहते हैं।'' स्पष्टतः हिन्दी के प्रति अप्रवासी भारतीयों का यह प्रेम किसी लाभ–लोभ से प्रेरित नहीं है बल्कि अपनी माटी और भाषा के प्रति उनकी आस्था और विश्वास का अनूठा प्रमाण है।

हिन्दी भाषा आज न केवल भारत की राजभाषा है बल्कि यह विश्वभाषा की आधिकारिणी है। हिन्दी जन–जन की वाणी है। कोई भी भाषा जन भाषा अथवा लोकप्रिय भाषा का दर्जा तभी ले सकती है जब उसकी लिपि में समानता में, उसकी लिपि वैश्विक हो, उसकी वक्तृता में समानता हो, उसमे सम्प्रेशणीयता हो, तभी वह लोकभाषा अथवा जनभाषा कही जा सकेगी। हिन्दी के लगभग 900 शब्द ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोश में पहले ही हैं और जनवरी 2018 में लगभग 70 अन्य शब्दों को भी इसमें जोड़ा गया है। जिसमें मुख्यतः अच्छा, बापू, बच्चा, बड़ा–दिन, बदमाश, बेलपुरी, भिंडी, भवन, चुप, चटनी, चाचा, चक्का जाम, चमचा, चौधरी, छी–छी, चना–दाल, चना, दादागिरी, देश, देवी, दावा, दीया, दादी, दम, फंडा, गांजा, घी, गोश्त, गुलाब, जामुन, गुल्ली, हाठ, जै, सुग्गी, जी, जुगाड़, मिर्च, नगर, माई, नमकीन, नाटक, निवास, पापड़, पक्का, पूरी, किला, सेवक, सेविका, सूर्य नमस्कार, टाईम–पास, बड़ा, यार इत्यादि हैं। भारत एक उदार देश रहा, इसकी उदारीकरण नीति ने

विदेशियों को बरबस आकर्शित किया है और यही आर्शवचन दुहराए जाते रहे हैं–[4]

अयं निज, परोवेति, गणना–लघुचेतसाम्।

उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

हिन्दी की विश्व में स्थिति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, इसका एक बड़ा कारण है– बाजार। विश्व की दूसरी बड़ी आबादी वाला देश भारत आज सबसे बड़ा खरीददार और उपभोक्ता बाजार है। क्रय–विक्रय प्रक्रिया में भाषा की बहुत बड़ी भूमिका होती है। बहु–राष्ट्रीय कंपनियाँ जाने–अनजाने हिन्दी का प्रचार–प्रसार कर, वही है क्योंकि उन्हें मालूम है कि भारतवर्ष में यदि सामान बेचना है, तो हिन्दी को माध्यम बनाना ही पड़ेगा। बाजार से लेकर विचार तक अपनी सम्प्रेक्षण क्षमता के कारण हिन्दी का भूमंडलीकृत भाषा के रूप में अनायास प्रचार–प्रसार हो रहा है। वह विज्ञापन की भाषा बन रही है। यह हिन्दी का सौभाग्य है कि आज बाजारवाद की नियोजक शक्तियाँ उसके साथ हैं। अपने हित के लिए ही सही वे हिन्दी का दामन पकड़ने के लिए अभिशाप हैं और यही स्थिति हिन्दी के लिए वरदान साबित हो रहीं है। अपनी समावेशी प्रवृत्ति के कारण वह प्रिन्ट, इलैक्ट्रोनिक्स तथा मीडिया के साथ–साथ ब्लॉग और ई–पत्रिकाओं के माध्यम के रूप में हिन्दी जिस तरह पैर पसार रही है, उससे उसका वैश्विक भाषा बनने का सपना सच साबित हो रहा है। आज ऐसे सॉफ्टवेयर विकसित हो चुके हैं जिनसे हिन्दी तकनीकी दृश्टि से समृद्ध हो रही है। जाहिर है सामान्यजन से जुड़ने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी को भी जनभाषा के सहयोग की अपेक्षा रहती है। 'व्हाट्सएप्प' के माध्यम से हिन्दी का प्रयोग बढ़ा है। 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' हिन्दी शब्दों को सम्मिलित कर एक नया रिकॅार्ड बना चुकी है। प्रवासी भारतीयों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन किया है। जिन पर शोध कार्य हुए हैं। हिन्दी की यह विशेषता है कि वह अपने आप को अवसर अनुकूल ढ़ालने में सक्षम है। देश और विदेश में निरंतर अग्रगामी तथा परंपरा और आधुनिकता के संवहन में सक्षम हिन्दी का वर्तमान जब रहना उल्लासपूर्ण है तब उसका भविष्य भी उज्जवल ही रहेगा।

वस्तुतः हिन्दी के बढ़ते संसार में अनेक विरोधों के बावजूद भी अपनी आंतरिक शक्ति से हिन्दी विश्व में हरी–घास की भांति धीरे–धीरे फैल रही है। वह दिन दूर नहीं है कि हिन्दू संयुक्त राश्ट्र संघ की भाषा अवश्यमेव बनकर रहेगी। उसकी संभावनाओं और चुनौतियों के विषय में चिंतन करते हुए यही कहा जा सकता है कि भारतीयों को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और विश्व में राष्ट्र गौरव की वृद्धि के लिए हिन्दी के विकास और विस्तार को अधिकाधिक प्रोत्साहन प्रदान करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा धीरे–धीरे भारत से निकलकर सम्पूर्ण विश्व में हरि दूर्वादल की भाँति धीरे–धीरे फैल रही है। विश्व के लगभग सभी देशों में शनैः–शनैः अनेक प्रकार के माध्यमों से अपनी पहुँच बढ़ा रही है। फिल्म जगत, बाजार, खेल आदि अनेक माध्यमों से हिन्दी अपने पाँव पसार रही है। कम्प्यूटर जैसे विषयों में भी हिन्दी का प्रयोग उसके विकास का घोतक है। प्रवासी भारतीयों का हिन्दी के प्रसार–प्रचार में बहुत बड़ा योगदान है। हिन्दी और संस्कृत भाषा में विशाल साहित्य और उसका विशाल ज्ञान भंडार होने के कारण भी विश्व ज्ञानार्जन की दृष्टि से हिन्दी सीख रहा है। शिक्षा के उच्च शिक्षण संस्थानों, विश्वविद्यालय आदि में हिन्दी का बढ़ता प्रयोग विश्व में हिन्दी की स्थिति को दर्शाता है। विदेशों में हिन्दी भाषा के अलग से विभाग बनना हिन्दी भाषा के विकास को प्रदर्शित करता है। और वह दिन दूर नहीं है जब हिन्दी भाषा विश्व की अन्य भाषाओं का नेतृत्व करेगी। विश्व की अन्य भाषाएं बोलने वाले लोग हिन्दी भाषा को निस्संदेह अपनाने लगे हैं कि लेकिन वे हिन्दी प्रेमियों, वह दिन भी बहुत निकट है जब विश्व के जन–जन की भाशा हिन्दी होगी और भारत की इस भाषा का विश्व की भाषाओं पर परचम लहराएगा।[5]

संदर्भ :

1. सम्पा. डॉ. महेश 'दिवाकर', हिन्दी की विश्व यात्रा और सांस्कृतिक प्रदूषण, विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2021 पृ. 19
2. सम्पा. डॉ. महेश 'दिवाकर', हिन्दी की वैश्विक प्रासंगिकता संदर्भ और सामर्थ्य, विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली,प्रकाशन वर्श 2019 पृ. 35–36
3. सम्पा. डॉ. महेश 'दिवाकर', हिन्दी की वैश्विक प्रासंगिकता संदर्भ और सामर्थ्य, विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2019 पृ. 48–49
4. सम्पा. डॉ. महेश 'दिवाकर', हिन्दी का वैश्विक परिदृष्य–विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्श 2013, पृ 153–155
5. सम्पा. डॉ. महेश 'दिवाकर', हिन्दी की विश्व यात्रा और सांस्कृतिक प्रदूषण, विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2021 पृ. 53–55

डॉ0 प्रवेश कुमारी
सहायक आचार्य
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक
email id&parveshruhil4@gmail]com

29

समस्यामूलक उपन्यासकार नासिरा शर्मा

डॉ० पूजा

सारांश

''अब साहित्य केवल मन–बहलाव की चीज़ नहीं, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है अब वह केवल नायक–नायिकाके संयोग–वियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है।''

इस उक्ति को नासिरा शर्मा अपने उपन्यासों के माध्यम में चरितार्थ करती है। उनके सभी उपन्यास समस्यामूलक ठहरते है। समस्यामूलक उपन्यास जैसा कि शब्दों से ध्वनित होता है, किसी समस्या–विशेष को लेकर चलते है। समस्या सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, नैतिक इत्यादि किसी भी प्रकार की हो सकती है। लेखिका का प्रथम उपन्यास **''सात नदियाँ एक समन्दर''** ईरानी क्रान्ति पर आधारित उपन्यास है। लेखिका ने क्रान्ति के माध्यम से होने वाली विभिन्न समस्याओं को अपने उपन्यास में सन्दर्भित किया है। वही **''शाल्मली''** नारी विषयक समस्याएँ विशेषतः स्त्री–पुरुष में असमानता पर आधारित तो **'ठीकरे की मँगनी'** मुस्लिम परिवार रूढ़िवादिता व अन्धविश्वास पर आधारित है। **''जिन्दा मुहावरे''** में बँटवारे का दंश दिखायी देता है। **''कुइयांजान''** जल की समस्या को समर्पित उपन्यास है। **''अक्षयवट्, जीरो रोड''** में नस्ल भेद, शिक्षा में अव्यवस्था, रोजगार की समस्या बुजुर्गो की उपेक्षा, अन्धविश्वास इत्यादि समस्या को शब्दबद्ध किया है। **'पारिजात'** बिखरे रिश्तों की सच्चाई को बयाँ करने वाला उपन्यास है, वही **'अजनबी जजीरा'** इराक की बदहाली को बयान करता है। **''कागज की नाव''** बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तान्त है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया है।''

विस्तार

सात नदियाँ एक समुन्दर

''सात नदियाँ एक समुन्दर (1984) नामक उपन्यास लेखिका का प्रथम उपन्यास इसमें उन्होंने ईरान देश की क्रान्ति, नागरिकों के विद्रोह, सत्ता द्वारा आप व्यक्ति का शोषण तथा अत्याचार, युवा पीढ़ी का कारावासों में यातनाओं को सहन, नई पीढ़ी से भरे हुए कब्रिस्तान तथा कारावासों के दृश्यों को ऐसे लोहर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक के सामने वह दृश्य सजीव हो उठते हैं। क्रान्ति की त्रासदी के अलावा भी लेखिका के अन्य समस्या को भी सामने रखा है। लेखिका इस उपन्यास में दहेज की समस्या पर प्रकाश डालते हुए लिखती है–''नेदा खादम एक बहुत अमीर माँ–बाप की इकलौती बेटी थी। मंगेतर ने एक उनके पिता से जाकर पूछा–दहेज में क्या देंगे?[2] उपन्यास में साम्प्रदायिकता जैसी सा० समस्या का एक उदाहरण देखिए ''हमारा नारा रोटी नहीं, हमारा नारा इस्लाम है, इस्लाम बचाने के लिए इस जग को जीत में बदलने के लिए सब हथियार उठा लो और दुश्मन का कलेजा चीरकर रख दे।[3] नस्ल भेद की समस्या का उदहारण देखिए ''सामने का दृश्य ह्दय विदारक था दीवार से सटी वह तीनों गर्भवती औरतें खड़ी थी और उनमें सीने खून उगल रहे थे।''[4]

शाल्मली

उपन्यास में मुख्य रूप से स्त्री–पुरुष की असमानता को दर्शाया गया जो इस उपन्यास की प्रमुख समस्या है। आज के युग की आधुनिक पढ़ी–लिखी ऊँचे पद पर काम करने वाली स्त्री की कथा है। ऐसी स्त्री को आज भी घर पर पति के पाषाण युग की संकीर्ण सोच और ईर्ष्या का सामना करना पड़ता है। वह अपने परिश्रम और लगन से समाज में मान–सम्मान तथा सम्पन्नता तो पा लेती है। लेकिन वह पति सुख और पारिवारिक सुख से वंचित रहती है। स्त्री–पुरुष की असमानता की समस्या के अलावा इस उपन्यास के माध्यम से आवास कि समस्या को दर्शाते हुए लेखिका लिखती है। नरेश अपनी पत्नि से कहता है कि ''अब यह बताओं कि तुम मकान को लेकर क्या करने वाली हो। नरेश ने बात को पहले वाले स्वर में जारी रखते हुए पूछा।[5] दहेज की समस्या का एक उदाहरण देखिए शाल्मली में पिता शाल्मली को विश्वास दिलाते हुए कहते है कि ''मैं भी इसी बात पर ध्यान दे रहा हूँ कि ऐसे घर लड़की नहीं देनी है एक ही तो लड़की हर तरह से ठोस–बजाकर दूँगा। धन से तेरे लिए पति नहीं खरीदूँगा। मेरे ऊपर विश्वास रख।[6] शहरों में बढ़ती जनसंख्या की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए लेखिका कहती है। इन शहरों के टूटने के कारण एकमात्र शहरों में बढ़ रही निरन्तर आबादी है। शाल्मली दिल्ली में रहती है। दिल्ली का बदल रहा स्वरूप देखकर वह चिन्तित है।[7] आधुनिकीकरण की समस्या को भी उपन्यास के पात्र नरेश के आचरण से दिखाने का प्रयास किया गया है। अब उसमें शौक बड़े–बड़े हो गए थे। वह जिन स्थानों पर जाने लगा था, वह पतन का द्वार था।[8] इत्यादि समस्याएँ उपन्यास में अन्तर्निहित

है।

ठीकरे की मँगनी

लेखिका ने इस उपन्यास में रूढ़िवादी, अन्धविश्वास, नारी शिक्षा, ग्रामीण समस्याओं को वर्णित किया है। ठीकरे की मँगनी नायक उपन्यास की कथा एक ऐसे मुस्लिम परिवार की है, जिसके अत्यन्त रूढ़िवादी तथा अन्धविश्वासी होने के कारण उस लड़की का जीवन स्वाहा हो जाता है। धार्मिक रूढ़िवादिता के अन्धेपन में एक नवजात कन्या शिशु की मँगनी यह सोचकर की जाती है कि ऐसा करने से उसका जीवन सुरक्षित हो जाएगा। यह धर्म अन्धता की सोच भरी मानसिकता को स्पष्ट रूप से दिखलाता है। उपन्यास में लेखिका ने विभाजन की समस्या का भी वर्णन किया है। ''खालिदा इस त्रासदी को भुगतने को मजबूर होती है उसका एक भाई आजादी भी जंग में शहीद हुआ, दूसरा पाकिस्तान जाते हुए भी मायका छूटने के गम में वह सारी रात भाई और बच्चों के लिए खजूर और नमकपारे तलती रही थी।''[9] इसके साथ ही शोषण की समस्याओं को कामता के माध्यम से लेखिका कहती है। ''हम तो समाझिन हन कि जमींदारी उन्मूलन से अत्याचार कम नहीं भवा, न हमारा शोषण।''[10] एक अन्य समस्या पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण रफत के माध्यम से लेखिका रखती है। ''सही तरीके से जीना सीखो, महरूख, इन पुरानी बेड़ियों को काट फेंकों, दक्यिानूसी तौर–तरीकों को खुदा हाफिस कहो।[11] शिक्षा की प्रचार–प्रसार में एक सामग्री के अभाव को लेकर लेखिका लिखती है। ''ब्लैक बोर्ड की इतनी बुरी हालत है कुछ लिखना नामुमकिन है। इस तरह से बच्चों का बहुत नुकसान होगा।[12] बढ़ती भ्रष्टाचार की समस्या पर लेखिका लिखती है। ''भ्रष्टाचार ने वास्तव में एक महामारी का रूप ले लिया है और अधिकांश नौकरशाही, पुलिस, न्यायपालिका और राजनैतिक सत्ता सब इस लपेट में है।[13] इत्यादि समस्या उपन्यास में है।

जिन्दा मुहावरे

मुख्य रूप से विभाजन की त्रासदी पर आधारित उपन्यास है। जिन्दा मुहावरे हिन्दुस्तान–पाकिस्तान विभाजन पर आधारित है। इस उपन्यास में विभाजन के कारण दो देशों में बंट जाने लोगों की पीड़ा, कसक को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नासिरा शर्मा ने उपन्यास में आतंकवाद की समस्या को भी उठाया है वह निजाम के माध्यम से कहती है ''एक दो बार अपने रिश्तेदारों से मिल आये, मगर जब उसके जाने की बारी आती है, तो हालात उसका साथ नहीं देते।[14] नासिरा शर्मा ने विभाजन के तहत युद्ध के मडरा रहे संकट का चित्रण किया है। ''पुरानी सियासत के बुझे अंगारों को फिर से फूँक मारकर सुलगा बैठे थे।''[15] बढ़ती जनसंख्या को लेकर भी लेखिका चिन्तित है ''बढ़ती आबादी तिजारती जरूरतों के अनुसार धीरे–धीरे शहर अपनी शक्ल बदल रहा था। हरियाली दम तोड़ रही थी।''[16] विस्थापन की समस्या पर लेखिका लिखती है ''पंजाबी, सिंधी, ब्लोची और पठान है। पाकिस्तानी कोई नहीं, अगर पाकिस्तानी कोई है, तो वह सिर्फ मुहाजिर।''[17] नस्ल भेद की समस्या को भी लेखिका ने जिन्दा मुहावरे उपन्यास में दिखाया है।

अक्षयवट

अक्षयवट उपन्यास में भी नासिरा शर्मा ने समाज में वर्णित समस्याओं को शब्दबद्ध किया। शिक्षा में फैली अव्यवस्था को लेकर उपन्यास में पात्र जहीर के माध्यम से प्रस्तुत करती है ''जहीर की प्रतिभा, त्याग और कर्मठता का संस्कार विरासत में मिला है किन्तु जीवन में उसका समान होता है गठजोड़ से।''[18] भ्रष्टाचार को लेकर भी लेखिका ने खुलकर अभिव्यक्ति की है। इस उपन्यास का पात्र रामस्वरूप पुलिस विभाग में चल रहे भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में कहता है। ''पुलिस की जात को तो तुम जानत हो दरोगा हरपाल सिंह बड़ा हरामी है। खाये–पिये के आगे ओकर कुछ और सूझत नाहीं है।''[19] अंधविश्वास को लेकर वे लिखती है। ''पंडित जी के कहे अनुसार वह सप्ताह में एक दिन व्रत और सफेद लाई, नदी या किसी बहते पानी में डालने लगी।''[20]

कुइंयाजान

यह उपन्यास जल संकट की समस्या पर आधारित उपन्यास है। इसमें लेखिका ने पानी की बात में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से लेकर भारत और स्थानीय स्तर पर विशेष कर राजस्थान में पानी की भीषण समस्या को चित्रित किया है। इस उपन्यास में पानी की विभिषिका इन शब्दों से आरम्भ होती है। ''उनके यहाँ पानी के लिए हाय–तौबा मची हुई थी। शिव मन्दिर के पुजारी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने न मन्दिर धोया था, ना भगवान को भोग लगाया था उनके सारे गागरे–लोटे खाली लुढ़के पड़े थे। नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी की तलाश में आकर बैठ उड़ चुका था।''[21] लेखिका नगरीकरण की समस्या को दर्शाते हुए लिखती है। ''क्या उन्हें उस जमीन–जायदाद से ज्यादा प्यार है या उन यादों से, जो उस धरती से जुड़ी है।''[22] लेखिका ने अपने उपन्यास के पात्र बदलू के माध्यम से बाल मजदूरी की समस्या को बताया है कि किसी के अधीन काम करने की वजह से स्वयं की खुशी के लिए कुछ भी नहीं कर पाता है। ''खुद खाओं दूसरों को खिलाओं। खूब बेटा खूब। अब तुम्हारे पर निकल आये हैं।''[23]

जीरो रोड

नस्ल–भेद की समस्या पर आधारित जीरो–रोड़ उपन्यास अपने आप में कई सारी समस्याओं को समेटे हुए है। चाहे वह धार्मिक उन्माद हो या हथियारों को लेकर उत्पन्न हो रही परिस्थितियाँ हो,

कैसे जैविक हथियारों का खतरा बढ़ रहा है? लेखिका ने अपने उपन्यास के माध्यम से बताया है ताकतवर देश हो या आदमी अपना दबदबा कायम करने के लिए हर तरह के हथकंड़े इस्तेमाल करता है। लेखिका मजदूरों की दयनीय स्थिति का भी वर्णन करती है। बाहर से सुन्दर दिखायी देने वाले देशों की सच्चाई भी बयाँ करती है। ''घूमने के लिए स्वर्ग और रहने के लिए नरक, इससे बेहतर और बदतर दूसरी कोई जगह दुनिया के नक्शे में नहीं है। जीरो रोड़''[24] नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास में रोजगार की अव्यवस्था को दर्शाया है। ''उपन्यास का कथानक इलाहाबाद के ठहरे और पिछले मोहल्ले ''चक से शुरू होकर दुबई जैसे अत्याधुनिक व्यापारी नगर की रफ्तार की ओर हमें ले जाता है। यह वह नगर है जहाँ लगभग सौ राष्ट्रों के लोग अपनी रोजी रोटी कमाने के लिए रेगिस्तान में जमा हुये है। दरअसल यह अपनी मर्जी से यहाँ नहीं आये हैं। बल्कि अपने हालात से उखड़े वे लोग हैं जो बम संस्कृति से खदेड़े गये हैं।''[25]

पारिजात

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास है जिसमें नासिरा शर्मा ने बिखरे–रिश्तों का सच बयाँ किया है। बनते–बिगड़ते रिश्तों की समस्या के साथ लेखिका ने अन्य समस्याओं से भी अवगत कराया है। ऐतिहासिक धरोहर की उपेक्षा पर वह कहती है पहले लखनऊ बागों का शहर था। आराम बाग, निशात बाग, चारबाग, डाली बाग, बनारसी बाग, अब तो बाग नहीं भवन की भरमार होय रही है।''[26] समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति को लेकर उपन्यास के पात्र खालिद के माध्यम से लेखिका कहती है। ''तुम चाहो तो वह भी आ सकती है। तुम तो सिंगल हो आजकल। कोई पाबंदी नहीं।''[27] समकालीन समस्या बुजुर्गो की उपेक्षा को भी लेखिका चिन्हित करती है इसका संदर्भ भी अपने उपन्यास में उन्होंने दिया है। मोनिस का फोन आने पर फिरदौस जहां उससे कहती है। ''इधर मैं तन्हा। उधर तुम्हारी बहन तन्हा।''[28] पश्चिमी संस्कृति के अन्धानुकरण का उदाहरण देखिए'' नो मोर डायलॉग मॉम। उस शहर की ठहरी जिन्दगी में मुझे आकर मरना नहीं है।''[29]

अजनबी जजीरा

समीरा और उसकी पाँच बेटियों के माध्यम से ईरान की बदलहाली को स्थान करता उपन्यास है छोटी से छोटी चीज को तरसते लोग जिन्दगी को बचाने के लिए सब कुछ दांव पर लगाती औरते और विदेश आक्रमणकारियों की प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष निगारे ने साँस लेते नागरिकों की कहानी लेखिका ने कही है।

कागज की नाव

''उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तान्त है। जिनके घर से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गो से लेकर बच्चों तक का भरा पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रूपये और रिश्तों के अंधेरे उजाले।''[30] लेखिका ने अपने उपन्यास में बुजुर्गो की उपेक्षा से लेकर परिवारों के विघटन की समस्या को अपने उपन्यास में शब्दबद्ध किया है। ''उपन्यास के पात्र अमजद के माध्यम से लेखिका कहती है ''यह उस बाप का हाल है जिसका लड़का हर माह हजारों रूपये मेरी बेटी को भेजता है।''[31] अंधविश्वास और परिवार के विघटन का उदाहरण देखिए ''मैं चाहती हूँ कि आप ऐसी तावीज़ दे कि बेटी अपने हिस्से की जायदाद लेकर अलग हो जाए।''[32]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते है कि नासिरा शर्मा के सभी उपन्यासों में किसी न किसी समस्या को प्रमुख स्थान मिला है। लेखिका के सभी उपन्यास समस्यामूलक ठहरते है। लेखिका कथानक के अन्दर समस्याओं का समावेश ही नहीं करती वरन् समस्याओं को उपस्थित करने के लिए कथानक को गढ़ती है। साथ ही इन समस्याओं का उनमें हल भी उन्होंने अपने उपन्यासों में माध्यम से बताये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमचन्द : कुछ विचार पृष्ठ संख्या 8।
2. सात नदियाँ एक समुन्दर पृष्ठ संख्या 34।
3. वही, पृष्ठ संख्या 277।
4. वही, पृष्ठ संख्या 5।
5. शाल्मली, पृष्ठ संख्या 57।
6. वही, पृष्ठ संख्या 21।
7. वही, पृष्ठ संख्या 55।
8. वही, पृष्ठ संख्या 124।
9. ठीकरे की मँगनी, पृष्ठ संख्या 26–27।
10.वही, पृष्ठ सख्या 170।
11.वही, पृष्ठ संख्या 89।
12.वही, पृष्ठ संख्या 55।
13.वही, पृष्ठ संख्या 72।
14.जिन्दा मुहावरे, पृष्ठ संख्या 67।
15.वही, पृष्ठ संख्या 78।
16.वही, पृष्ठ संख्या 28।
17.वही, पृष्ठ संख्या 74।
18.अक्षयवट, पृष्ठ संख्या 114।
19.वही, पृष्ठ संख्या 102।
20.वही, पृष्ठ संख्या 39।
21.कुइंयाजान, पृष्ठ संख्या 77।

22. वही, पृष्ठ संख्या 84।
23. वही, पृष्ठ संख्या 86।
24. जीरो रोड, पृष्ठ संख्या 32।
25. वही, पृष्ठ संख्या 137।
26. पारिजात, पृष्ठ संख्या 84।
27. वही, पृष्ठ संख्या 371।
28. वही, पृष्ठ संख्या 136।
29. वही, पृष्ठ संख्या 136।
30. कागज की नांव, फ्लैप कवर से।
31. वही, पृष्ठ संख्या 38।
32. वही, पृष्ठ संख्या 18।

डॉ० पूजा
सहायक आचार्या
हिन्दी विभाग
जैन कन्या पाठशाला
(पी०जी०) कॉलिज, मुजफ्फरनगर
(उत्तर प्रदेश)
Email-Id: poojabislahindi@gmail.com

30

सूरदास का वात्सल्य वर्णन

नरेश कुमारी

सारांश

मध्याकालीन हिन्दी साहित्य में सूरदास का स्थान सर्वोच्च माना गया हैं यदि गृहीत भाव–क्षेत्र में अतलस्पर्शिता कविता की वास्तविकता सिद्धि और उसकी श्रेष्ठता का परिचायक हो, तो सूरदास की सर्वोच्चता स्वंय प्रमाणित है। मध्याकालीन वैष्णव कविता के मापक पृष्ठधार पर जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति आदि अनेक दीप्तिमान नक्षत्र है लेकिन सूर इन सबसे विशिष्ट और इन सबसे प्रोज्ज्वल है। उनक प्रतिभा की उच्चता इस बात में नहीं है कि वे एक सम्प्रदाय विशेष के पक्ष–पोषक कवि थे, बल्कि इस तथ्य में है कि उन्होंने उस साम्प्रदायिक घेरे में रहकर भी श्रृंगार और वात्सल्य तथा काव्य और भक्ति की जिस सार्वभौमिकता और एकता की साक्षात्कार किया, वह उस युग में विरल थी। भक्ति के जिस ललित पक्ष को कवि ने अपना उपजीव्य बनाया, वह लोक–भाषा की सहज माधुरी और संगीत की स्वर–माधुरी से संयुक्त होकर सबके लिए मुग्धकर हो उठी। प्रस्तुत निबन्ध में सूर के वात्सल्य वर्णन का विवेचन उद्दिष्ट है जिसने अपने सामर्थ्य के बल पर 'वात्सल्य–रस की अवतारणा कर ली और शिशु तथा बाल–जीवन की मोहक नगण्यताओं को अमर काव्याभिव्यक्तियों का स्वरूप दे दिया।

सूर की प्रतिभा को ठीक–ठीक समझने के लिए उनकी परम्परा का विचार भी उचित होगा। परंपरा किसे कहते है और सूर के सन्दर्भ में परम्परा से हमारा क्या अभिप्राय है? परम्परा का अर्थ सामान्यतः अतीत और कभी–कभी रूढ़ि से लगाया जाता है, लेकिन परम्परा का वास्तविक अर्थ है अविच्छिन्न श्रृंखला और आनुपूर्व्य। इलियट ने परम्परा को समीचीन अभिप्राय प्रदान किया। वह परम्परा को एक ऐसे विकासमान अर्थ में लेता है जिससे जीर्ण प्राचीन ध्वस्त होता रहता है और प्राणवान नवीन प्रस्फुटित होता रहता है। मानता है कि शक्तिशाली और अनावश्यक से वास्तविक और मनोवेगात्मक को भ्रांत ढंग से मिलाना अथवा परम्परा को अचल करके मानना तथा उसे तमाम परिवर्तनों का शत्रु बताना परम्परा को ठीक समझने के मार्ग में बाधक हैं। सूर के संदर्भ में परम्परा का अर्थ उनके पूर्व से चली आती हुई उनके द्वारा गृहीत कविता के रूप और शिल्प की वह परम्परा है जिसके सर्वोत्तम को उन्होंने अंगीकार किया है और अपनी प्रतिभा से पुराने अभिप्रायों को अभिनव अर्थ एवं नई उद्भावनाएं प्रदान की हैं। इसे ही प्रतिभा कहते है। प्रतिभा के विषय में प्राचीन शास्त्रकार प्रायः एकमत हैं। पंण्डितराज जगन्नाथ प्रतिभा को ही मुख्य काव्य–हेतु मानते हैं। हेमचन्द्र ने व्युत्पत्ति और अभ्यास को उसका संस्कार करने वाला माना है। प्रतिभा के विषय में अभिनव गुप्त ने लिखा कि वह एक ऐसी प्रज्ञा है जो अपूर्व वस्तु के निर्माण में सक्षम हैं **''प्रतिभा अपूर्वनिर्माणक्षमा प्रज्ञा''1** अभिनव गुप्त के गुरुवर भट्टतौत द्वारा की गयी प्रतिभा की व्याख्या सबसे अधिक प्रचतिल है– ''प्रतिभा उस प्रज्ञा को कहते है जो नई स्फुरणाओं के सर्जन में सक्षम हो।'' नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा को अनादि प्राक्न संस्कारों से भी जोड़ा गया है' **''अनादिप्रात्कनसंस्कारप्रतिभानमयः।2''** निश्चित रूप से सूरदास ने किन्हीं प्रात्कन संस्कारों से ही मंडित होकर अपूर्व निर्माण क्षमा प्रज्ञा से भागवत महापुराण द्वारा वर्णित कथा भाग को अपने सम्प्रदाय गत विश्वासों के परिवेश में न केवल पुनः उद्‌ावित किया, बल्कि शत–शत नवीन स्थितियों की अवतारणा और उनकी मर्मस्पशी व्यंजना के द्वारा हिन्दी कविता में एक अस्पृष्ट काव्य–शिखर की स्थापना की।

वात्सल्य रस का विपुल–पुष्कल वर्णन महाकवि सूर ने सूरसागर में किया है। वात्सल्य वर्णन की काव्योपलब्धियों और श्रेष्ठता विधायक उपादानों का विवेचन आगे किया गया है।

वात्सल्य को रस के रूप में व्यावहारिक दृष्टि से प्रतिष्ठित करने का कार्य महाकवि सूरदास के ही द्वारा सम्भव हुआ। इनसे पूर्व के भारतीय साहित्य में वात्सल्य भाव का चित्रण उतन पूर्णता के साथ कहीं नहीं मिलता। बाद के साहित्य में भी यह इस पूर्णता के साथ कहीं प्राप्त होता है, इस बात में बहुश्रुत पण्डितों को संदेह है। आचर्य शुक्ल ने इसी बात को निमुर्क्त भाव से स्वीकार करते हुए कहा है– ''बाल–चेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नही है, जितना बड़ा सूरसागर में है।''

1. कृष्ण का शैशव उनके वास्तविक विकास के धरातल पर चित्रित हुआ है। परिणामतः शिशु–जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों पर सूर की दृष्टि गई है और ये सभी पक्ष अत्यन्त जीवन्त, सहज और स्वाभाविक बनकर आये हैं। इसे आलम्बन पक्ष का चित्रण भी कह सकते है।

क – बाह्य शारीरिक विकास (रूपांकन)।

ख – आन्तरिक अर्थात् स्वभावगत विकास (मनोवैज्ञानिक निरूपण)।

वस्तुतः इन दोनों को ही पृथक्–पृथक् नहीं देखा जा सकता, क्योंकि

वय–विकास वह मूलभित्ति है जिस पर शारीरिक और स्वभावगत विकास की आधारशिला रखी जाती है।

2. शास्त्रीय दृष्टि से कृष्ण वात्सल्य रस के आलम्बन हैं और नन्द तथा यशोदा आश्रय है। सूर के वात्सल्य–वर्णन की विशिष्टता यह है कि वे आलम्बन–मात्र के चित्रण को पर्याप्त नहीं मानते। उनकी लीलाओं या उनमें घटित होने वाले वय–विकासजन्य परिवर्तनों की, अपनी समस्त उल्लिखित अन्तरगत के साथ, यशोदाजी प्रायः साक्षी है। साक्षी कहना शायद समीचीन न हो, इसलिए उन्हें भागी कहना चाहिए। उनका यह भागीत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि वे शुभ परिवर्तनों के और भी द्रुतगतिक होने तथा कृष्ण के शीघ्र ही बड़े और समर्थ होने की कल्पना करती चलती है। जब यह सुख उनके अन्तःकरण में समाता नही, तो वे नंद राजा को भी बुलाना नहीं भुलती। अथाह है वह सुचाानुभव और असीम है वह वात्सल्य। यह आश्रय पक्ष का चित्रण कहा जायेगा।

3. इस विकास–सूचना के उपकरण केवल श्रीकृष्ण के परिवर्तन–संकेत मात्र नहीं है। श्रीकृष्ण के चतुर्दिक का परिवेश भी इसमें पूरी तरह योगदान करता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह उद्दीपन का एक अंश है और उसे उद्दीपन विभाव–पक्ष का चित्रण कह सकते हैं।

4. वात्सल्य में भी संयोग और वियोग की द्विधात्मक स्थितियों का आनयन करके सुरदास एक ही अनुभूति के सुखात्मक और दुखात्मक दोनों पक्षों का एकांत मार्मिक चित्रण करते हैं।

5. यदि अध्ययन किया जाये तो सूर के वात्सल्य वर्णन का एक पृथक्, मनोवैज्ञानिक धरातल भी मिल सकता है। प्रायः नगण्य सी समझी जाने वाली आयु दशा का इतना विपुल, सूक्ष्म, अन्तबाह्य स्थितियों से पूर्ण मर्मस्पशी चित्रण करना उनकी प्रतिभा, अन्तर्दृष्टि, सूक्ष्मान्वीक्षण, गहरी सहृदयता और उभ्दावनाशलता प्रतीक है।

आलम्बन पक्ष का चित्रण : शिशु कृष्ण का अन्तर्बाह्य विकास सूरसागर में कृष्ण जन्म की आनन्द बधाई के बाद बाल–लीला का क्रम शुरू होता है। सामान्यः हम जिस बचपन की घटनाशन्य मानते है, अपने गम्भीतर जीवनचर्या और श्रेष्ठतर ज्ञानानुधावन के सामने शिशु की जिस क्रीड़ा को घड़ी भर के विनोद और परिवर्तन का साधन मान कर उसे छोड़ देते है, उस बाल–जीवन की क्रम–प्राप्त स्थितियों का इतना विस्तृत पद–कोष सूर की अद्वितीय उपलब्धि कही जा सकती है। शिशु श्रीकृष्ण की 'कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै' तथा स्वप्नगति के 'उभय पलक पर' आने, हाथ और पाँव का अँगूठा मुँह में लेने तथा 'स्वास उदर उससित यों मानों छीर सिंधु छबि पावै' की स्थितियों से लेकर, पालना झूलने, स्तनपान करने, यशोदा की गोद में खेलने, नाम–करण, अन्नप्राशन, दँतुलियों के आने, पीठ के बल उलटने, पालने की लकड़ी की ओठ को पकड़ कर उठने का प्रयत्न करने, बैठने, घुटनों के बल चलने, खड़े होने, डगमगा कर चलने, देहरी तक पहुँच कर लौट–लौट आने, मथानी की आवाज के साथ नाचने का प्रयत्न करने, दूध न पीने का हठ करने और चोटी बढ़ने के प्रलोभन पर दूध पीने, चोटी न बढ़ने पर इसके लिए अपने बड़े होने की बात पूछने, बालोचित मनस्विता में अपने–आप गाने और अपने ही प्रतिबिम्ब को नवनीत खिलाने का प्रयत्न करने, स्नान न करने के लिए रोने और हठ करने, माता के द्वारा चंद्रमा दिखाए जाने पर चंद्रमा माँगने का आत्यंतिक हठ करने, खेलने के लिए पड़ोस तक निकल जाने, व्यालू के लिए माता के बुलाए जाने, खाते–खाते जम्हाई लेने लगने, जगाए जाने पर उठने, आँख–मुदौवल का खेल खेलने, मिट्टी खाने, माखन चोरी के लिए तरह–तरह की बालोचित युक्तियाँ निकालने, ब्रज की गोप–बधुओं की शिकायत पर बँधने और पिटने, मना करने पर भी न मानने, गोदहोहन ही कला सिखाने के लिए प्रार्थना करने आ–आदि सहज, आनुक्रमिक, विकास–सूचक लीलाओं की शताधिक पदों में वर्णित मनोरम चित्र–मंजूषा सुरसागर में सुरक्षित है। सूर नवम सर्ग तक कतिपय पौराणिक विवरणों में उलझे हुए हैं। जिनमें स्पष्ट ही उनकी वृत्ति रमती हुई नहीं दिखलाई पड़ती, लेकिन दशम सर्ग में आकर उनकी प्रतिभा जैसे अपना मनचाहा क्षेत्र पा गई हो और वे विमुक्त होकर बाल–लीला का गान आरम्भ कर देते हैं। ऊपर जिन–जिन स्थितियों का उल्लेख किया गया है, कई–कई पदों तक चले है। उदाहरण के लिए पालना पौढ़ने, चन्द्र खिलौना के लिए हठ करने, माखन–चोरी करने आदि के प्रसंग में कवि ने बाल–स्वभाव के अंकन में जैसी सजगता मार्मिकता दिखाई देती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। आवृत्ति काव्य में दोष के रूप में मानी गई है, लेकिन यहाँ एक ही बात तत्काल दूसरे पद में पढ़कर भी पाठक ऊबता नहीं। इसका कारण यह है कि लेखक जिन स्थितियों को जिस तन्मयता के स्तर पर पकड़ता है वह प्रत्येक पद में कुछ ऐसी अभिनव रमणीयता भर देती है कि प्रत्येक पद किसी और भी वैसे ही पद की आकांक्षा छोड़ देता है। जैसा कि हम पीछे कह आए है कि इंगित करने के लिए तो शिशु श्रीकृष्ण का बाह्य विकास और अन्तर विकास हो सकता है, पर जहाँ तक चित्रण का प्रश्न है इनके पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण का बाल–जीवन अत्यन्त सजीव, स्वाभाविक, सूक्ष्म, विवरणपूर्ण, अद्वितीय रूप में चित्रित हुआ हैं। आचार्य शुक्ल जैसे पारदर्शी आलोचक के अनुसार 'शैशव से लेकर कौमार्य अवस्था तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें कवेल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्तःप्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक बाल्य–भावों की सुन्दर

स्वभाविक व्यंजना की है।' कतिपय उदाहरण है–

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराई मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।
कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।
हरि किलकत जसुदा की कनिया।3

आश्रय–पक्ष का चित्रण

यशोदा के भावों का अकन आलम्बन और आश्रय के सम्बंध का निरूपण करते हुए एक स्थान पर आचार्य शुक्ल ने कहा है – ''जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है, उसी प्रकार प्रेमभाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है।'' पहले ही कहा जा चुका है कि वात्सल्य का चित्रण वात्सल्य रति के अन्तर्गत आता है। वात्सल्य रति की विशेषता वस्तुतः सूर द्वारा ही प्रतिपादि हुई और वात्सल्य अपनी परिशुद्ध, निर्मल प्रेम परकता के ही कारण एक प्रकार की रति भावना या प्रेमभावना से सम्बद्ध होते हुए भी पृथक् रस के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। सूर द्वारा वर्णित वात्सल्य रस के आलम्बन तो कृष्ण है, पर आश्रय यशोदा, नँद और अन्य गोपिकादि है। सामान्य पारिवारिक जीवन में भी शिशु की समूची आनंद–क्रीड़ा का मूल्य तभी है जब वह माता के क्रोड़, उसके वक्ष और उसके अंचल के स्नेह से सत्कृत होकर सामने आए। श्रीकृष्ण का शिशु भी यशोदा की हजार–हजार स्नेहोच्छल लालसापूर्ण मंगलेच्छाओं और आर्शीर्वचनों के बीच बढ़ता, फलता–फूलता है। सूर की चित्रण–प्रक्रिया पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण की प्रत्येक नई लीला, नया परिवर्तन, यशोदा और नंद की किन्ही प्रतीक्षापूर्ण मंगल कामनाओं के उत्तर जैसा है। और जब ये घटित होते है तो यशोदा का स्वागतभाव, आनन्दोल्लास देखते ही बनता है। आनंद एक सामाजिक भाव भी है। उपलिब्धयों को उपलब्धिवान और भी अधिक सार्वजनिक रूप देना चाहता है। यशोदा अपने प्रायः हर आनंद में नन्द को भी सम्मिलित करना चाहती है। यशोदा की प्रतीक्षापूर्ण मंगल–कामनाओं की अनेक प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्तियों में से एक हैं–

मरो नान्हरिया गोपाल हो, वेगि बड़ो किन होहि।
इहि मुख मधुर वचन हो, कब जननि कहोगे मोहि।।
यह लालसा अधिक दिन–दिन प्रति कबहूँ ईस करै।
मो देखत कबहूँ हँसि माधौ पगु द्वै धरनि धरै।।
हलधर सहित फिरैं जब आँगन चरन सबद सुनि पाऊँ।
छिन छिन छुधित जानि पय कारन हौं हठि निकट बुलाऊँ।।4

यहाँ पर यशोदा उन लाखों माताओं में से एक हैं जो अपने शिशु के विकास की बात सोचती हुई थकती नहीं। गोपाल के पीछे 'नान्हरिया' विशेषण तथा 'मो देखत' वाक्य–खंड भावुक चित्त को विमुग्ध करने की असाधारण क्षमता रखते है।

पुनः श्रीकृष्ण में घटित एक परिवर्तन के प्रति यशोदा का स्वागतभाव और आनन्दोल्लास देखिये–

महरि मुदित दुलराइ कै मुख चूँबन लागी।
चिरुजीवौ मेरो लाडिलो मैं भई सभागी।।5

इस उल्लास को अपने तक ही कैसे समेट कर रखा जाए, यशोदा जी नंद को बुलाती है। एक ही उपलब्धि दूसके की भी बन जाती है। देखिए–

सतु मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तनु की सुधि भूली।।
बाहिर ते तब नंद बुलाए देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।6

नंद में ही वात्सलय कम क्यों हो! वे भी अपनी उपलब्धि को अपने तक ही क्यों रखे। देखिए–

हरषे नंद टेरत महरि।
आई सुत मुख देखि आतुर डारि दै दधि टहरि।।7

संक्षेपः यह जानना चाहिए कि श्रीकृष्ण की अधिकांश बाल–क्रीड़ाओं के चित्रण में कृष्ण की लीला के साथ–साथ यशोदा का अंतःकरण अवश्य ही लिपटा हुआ होता है। नंद भी अनेक बार उद्रिक्त हुए दिखलायी पड़ते हैं। यशोदा के अधिक सामने आने का कारण यह है कि वे माता हैं और माताएँ पिता की अपेक्षा शिशु के जीवन के अविकल विकास की साक्षी होती हैं। इसका कारण यह भी है कि माताओं के अन्तःकरण के वात्सल्य का यह एक पक्ष हैं। श्रीकृष्ण के वियोग में इसका दूसरा पटोद्घाटन होता है।

उद्दीपन–पक्ष का चित्रणः परिवेश और प्रतिक्रियाएँ

उद्दीपन के अन्तर्गत आलम्बन की चेष्टाएँ आती हैं। आलम्बन की चेष्टाओं के अन्तर्गत आलम्बन की अपने परिवेश के प्रति प्रतिक्रियााएँ आती है। शिशु श्रीकृष्ण की ऐसी कुछ प्रतिक्रियाएँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। यशोदा रोते हुए श्रीकृष्ण को चुप कराने के लिए चन्द्रमा को दिखाती है। तत्काल इसकी प्रतिक्रिया श्रीकृष्ण में होती हैं और बालोचित ढंग से सम्भवता और असम्भवता का विचार छोड़ कर वे उसे माँग ही तो बैठते है– ''लागी भूख चन्द्र मैं खैहौं देहु–देहु रिस करि विरुझावता।'' और यह क्रम अनेक पदों में चलता रहता है। यशोदा जल के पात्र में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को दिखाकर श्रीकृष्ण को संतुष्ट करना चाहती है। लेकिन श्रीकृष्ण उसमें भी चंद्रमा के प्रतिबिम्ब को दिखाकर श्रीकृष्ण को

सतुंष्ट करना चाहती है। लेकिन श्रीकृष्ण उसमें भी चन्दमा को हाथ डालकर खोजने लगते हैं। इस प्रकार अपने परिवेश के प्रति बालोचित स्वभाव के अनुसार श्रीकृष्ण की प्रतिक्रियाएँ वात्सल्य–रस के पुष्टि–परिपाक में अत्यन्त सहायक हैं।

वात्सल्य का द्विधा–स्थितियों का चित्रण

इन द्विधा स्थितियों के अन्तर्गत संयोग–वात्सल्य और वियोग–वात्सलय दोनों आते है। संयोग–वात्सल्य के अन्तर्गत यशोदा–नंद की भावनाओं की एक झलक पीछे दी जा चुकी है। यहाँ वियोग–वात्सल्य की चर्चा की जायेगी। जिस पुत्र के रहते मातृ–रहस्य एक अक्षय स्नहे की स्त्रोतस्विनी बनकर उमड़ता रहता है, जिस पुत्र के सुख–दुख को लेकर ही माता का सुख–दुख जाना–पहचाना जाता है, जिस पुत्र के व्यक्तित्व से माता–पिता का व्यक्तित्व और गुण–धर्म परिभाषित किया जाता है, उस पुत्र के अभाव में कितनी तीव्र वेदना होती होगी, उसकी थोड़ी सी झलक भर यहाँ दिखाई जा सकती हैं–

जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गई तुम्हारी चारौं, कैसे मारग सूझै।।
इत जौ जरो जात बिनु देखैं अब तुम दीन्हौं फूकि।
यह छतिया मेरे कान्ह कुँवर बिनु, फटि न भाई द्वै टूकि।।8

वास्तविकता यही है कि सुर के जीवन, ग्रन्थादि, भागवतादि के प्रभाव, सम्प्रदाय–परिचयादि पर जितना विचार हुआ उतना यदि वात्सल्य के क्षेत्र में वर्णित अश्रुतपूर्व भावखंडों को एक क्रम में विष्टि करके विवेचन को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास हुआ होता तो अधिक अच्छा होता। यह विश्वास साधार है कि सूर ने ऐसी–ऐसी भावस्थितियों की आयोजना की है जिन्हें साहित्य–शास्त्रियों ने अभी नाम तक नहीं दिया। सूर ने ऐसी–ऐसी भावस्थितियों की आयोजना की है जिन्हें साहित्य–शास्त्रियों ने अभी नाम तक नहीं दिया हुआ है। कवि ने अनेक सहकारी भावों की व्यंजना से पुष्ट करके इस भाव को अत्यन्त विशद षटभूमि प्रदान की है। यदि कृष्ण थोडी देर के लिए भी आँखों से दूर हो जाते हैं, तो उनके दर्शन की तीव्र आकांक्षा और तीव्र उत्सुकता सूर के अनेक पदों की मूल प्रेरणा बन जाती है। इतने गुणवंत बालक की उपलब्धि पर माँ अनेक बार अपने सौभाग्य को सरहाती है। इस वृत्ति को गर्व कह सकते है। श्री कृष्ण के द्रुतगति से बढ़ने, फलने–फूलने की मंगलेच्छा स्वभाविक रूप से अभिलाषा के अन्तर्गत आती है। श्री कृष्ण को स्नान कराने, व्यालू कराने, सुलाने आदि नाना दैनिक परिर्याओं में यशोदा और रोहिणी का उत्साह एकांत रम्य है। चोटी बढ़ाने के पीछे बलराम की वेणी के बढ़ने तथा ऐसे ही अनेक सखाओं की शिकायत के पीछे प्रायः स्पर्द्धा का भाव दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा को पाने के लिए उनका हठ भी उनकी बालोचित मानस्विता का उत्तम उदाहरण है। आगे चलकर कृष्ण माखन चोरी की योजना बनाते हैं और कई बार पकड़े जाते है। कई बार गोपिकाएँ शिकायत लेकर आती हैं। कभी–कभी तो बात बनाकर छल और कौतुक से मुक्त हो जाते है। लेकिन सप्रणाम पकड़े जाने पर वे अमर्ष से युक्त हो जाते है। उन्हें श्रीकृष्ण को दण्ड देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। गोप–बधुएँ फिर श्रीकृष्ण को मुक्त कराने आती है। उस समय यशोदा में भाव सार्कय का अद्भुद्ध रूप उपस्थित होता है–

वस्तुतः कभी–कभी घटना–परिस्थितियाँ ऐसे मोड़ लेती हैं कि हम अविश्लेषण मनोविज्ञानिक वृत्तियों का द्वंद्व–सौन्दर्य हृदयगम करते हैं। इस पद में क्रोध का बड़ा ही जटिल रूप दिखलाई पड़ता है। यशोदा में कृष्ण के प्रति तो क्रोध है ही, शिकायत करने वाली गोपिकाओं के प्रति भी कम क्रोध नहीं है। क्रोध की कटुता और प्यार की तीव्रता की यह दोहरी अनुभूति इस पद की शक्ति का स्त्रोत है। ग्लानि और भर्त्सना के रूप भी इस पद में देखे जा सकते है। ऐसे ही पदों के कारण सूरदास को महाकवि के रूप में स्वीकृति मिली है।

सन्दर्भ

1. https://www.hindisahity.com/ काव्य–हेतु–काव्यशास्त्र/
2. https://hi.wiktionary.org/wiki/
3. hindwi.org/pad/jasoda-hari-paalanain-jhulaavi-surdas-pad
4. https://kavitakosh.org/kk/ नान्हरिया गोपाल लाल तू बेगि बड़ौ किन होहिं/सूरदास
5. https://hi.kavitakosh.org/kk/
6. https://hi.krihnakosh.org/कृष्ण/सुत–मुख देखि जसोदा फूली सूरदास
7. https://ksvitakosh.org/kk/हरषे नंद टेरत महरि/सुरदास
8. https://hi.krishnakosh.org/ कृष्ण/जसुदा कान्हा कान्ह कै बूझै–सूरदास

शोधार्थी
नरेश कुमारी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर (रोहतक)
malikmadhu071@gmail.com
8295595422

31

श्रीमद्भागवत का गीतात्मक स्वरूप

डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल

सारांश

श्रीमद्भागवत पुराण समस्त पुराणों का शिरोमणि हैं। इसमें धर्म, दर्शन भक्ति ज्ञान का सर्वग्राह्य विशद् एवं गम्भीर चित्रण किया गया है। यह भारतीय साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित करने वाला गौरवपूर्ण हिन्दू संस्कृति का आदर्श ग्रन्थ है जो साक्षात् ही ब्रह्म स्वरूप है–

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।।[1]

धर्म की जैसी रसात्मक अनुभूति इस ग्रन्थ से होती है वैसी अन्यत्र नहीं। इसीलिए भागवत धर्म का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत् पुराण ही सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः भागवत् पुराण की रचना का उद्देश्य नैष्कर्म्य धर्म का निरूपण करना है, परन्तु व्यास जी ने यह देखा कि महाभारत में नैष्कर्म्य प्रधान कर्म का जो निरूपण किया गया है, उसमें भक्ति का यथावत् वर्णन नहीं है तब उन्होंने नारद की प्रेरणा से भागवत की रचना की। इसी के साथ ही शुकदेव के द्वारा इस ब्रह्मस्वरूप, नैष्यकर्म को अमृतमय, रसमय एवं रसास्वाद्य योग्य बना दिया गया है।

श्रीमद्भागवत पुराण में स्वरूप के सन्दर्भ में अनेक अभिधान मिलते हैं। जैसे–श्रीमद्भागवत्[2], श्री भागवत[3], भागवत[4], भागवती संहिता[5] और सात्वती श्रुति[6] इन नामों से इनके स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। ये नाम इनके घनीभूत बीजरूप हैं जिस प्रकार प्रणव ब्रह्म का बीज रूप है उसी प्रकार ये नाम भी पुराणार्क के स्वरूप का मूक व्याख्याता है–

कलौ नष्टदृशामे पुराणार्कोऽधुनोदितः।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रषेर्भूरितेजसः।।[7]

भागवत पद का प्रयोग इसी पुराण में संज्ञा और विशेषण दोनों रूपों में हुआ है आत्म लाभार्थ भागवत प्रोक्त जो उपाय है, उन उपायों को भागवत धर्म कहा गया है–

ये वै भागवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये।
अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान हि तान।।[8]

श्रीमद्भागवत पुराण इतना व्यापक एवं विशालकाय ग्रन्थ है कि उसमें अनेक महाकाव्यों का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से समावेश हो जाता है। काव्य के विविध स्वरूप प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य आदि के मूल तत्वों के अतिरिक्त कथानक पात्र, चरित्रचित्रण, युग–चित्रण, प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित गुण एवं तत्त्व भागवत पुराण में निहित है। इस महापुराण में धार्मिकता के साथ–साथ काव्यत्व का भी पूर्ण सौंदर्य वर्तमान है। भागवत पुराण को काव्य के किस स्वरूप में निश्चित किया जाय यहाँ यही विचारणीय विषय है। इस दृष्टि से विचार करें तो हम पाते हैं कि श्रीमदभागवतपुराण तो साहित्य, संगीत एवं गीत का अक्षय कोष है।

श्रीमद्भागवत के विविध स्वरूपों में गीतात्मक स्वरूप विशेष प्रशंसनीय है। गीतिकाव्य की दृष्टि से भागवत के विभिनन गीतों वाले स्थल अत्यन्त मार्मिक, भावात्मक तथा प्रभावपूर्ण है जिनमें भक्ति एवं स्तुति समाहित है। इन स्थलों में प्रेम भावना, प्रेम करने की अभिलाषा, विरहानुभूति सांसारिक विरक्ति के हार्दिक उद्गार गीत–रूप में प्रस्फुटित हुए हैं।

इन गीतों में वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, पिंगलागीत, विरहगीत, भ्रमरगीत, रुक्मिणी सत्यभामा आदि के गीत भिक्षुगीत, ऐलगीत आदि उल्लेखनीय एवं अतिमहत्वपूर्ण हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने गीत के सन्दर्भ में कहा है कि–गीत का अर्थ गायन है। अब अन्तरात्मा अपनी व्यथा अन्तर्वेदना और अनुभूति को अपने अन्दर संवरण नहीं कर पाती है, उस समय धैर्य का बाँध टूट जाता है, तब अपने आप ही किसी को सुनाने के लिए नहीं, स्वान्तः सुखाय जो उद्गार निकलते हैं, उनका नाम प्रेम गीत है। वह संसार की कटुता के अनुभव से, ज्ञान से, प्रेम भावना की इच्छा से विरह की संभावना से अथवा अन्य कारणों से भी ह्रदय से निकल पड़ता है।[9]

वस्तुतः संगीत राग या भाव वह अमर तत्त्व है, जिसके जड़ता में प्राणों का संचार करके जीवनदान करने की अलौकिक शक्ति निहित है। श्रीमद् भागवत में ऐसे प्रसंग गोपिका–गीत में मिलते हैं–

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितम्
इतर राग विस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्।

अर्थात् हे वीर शिरोमणि! तुम्हारा अधरामृत मिलन के सुख की आकांक्षा को बढ़ाने वाला है। उसमें विरह जन्य समस्त शोक सन्ताप को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। जिन्होंने उसका एक बार पान क लिया है उन्हें अन्य आसक्तियों का स्मरण भी नहीं होता है। वस्तुतः भगवान का सामीप्य ही अमरत्व प्रदान करने वाला है, जिसे भागवतकार ने गोपियों के माध्यम से व्यक्त किया है।

इसी प्रकार भ्रमरगीत तो भागवत का एक मार्मिक हृदयावर्जन गीतिकाव्य है जिसके गम्भीर रस का परिपाक कर उपालम्भ की भावना की अभिव्यक्ति की गई है। श्रीकृष्ण के उपर गोपियाँ गम्भीर आरोप लगाती हैं–

मृगयुरिव कपीन्द्र विब्यधे लुब्ध धर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।[11]
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद य–
स्तदलमसितसख्येर्दुस्त्यजस्तत्कयार्थः।।

इस श्लोक में गोपियों ने श्रीकृष्ण के उपर आकृतज्ञ तथा क्षण–भिन्न सौहृद होने का आरोप लगाया है। इस श्लोक में शब्द माधुरी और भाव माधुरी दोनों ही परिलक्षित होता है। उपालम्भों में वर्णन में भागवतकार ने गहन अनुभूति तथा गम्भीर मनोवैज्ञानिक भाव–विश्लेषण का पूर्ण परिचय दिया है। कवि ने रस का चरम परिपाक गोपियों के प्रसंग में सर्वाधिक दिखाया है। वस्तुतः इन गीतों के माध्यम से भागवतकार ने अमृतरस का सागर ही उड़ेल दिया है। गोपियों के गीतों में जो रस है उसे वाणीमात्र का विषय नहीं बनाया जा सकता। उनका हृदय तो अनिर्वचनीय है। वह प्रेममय है, अमृतमय है। उनके हृदय, प्रेम और भाव का अमृतमय स्त्रोत वाणी के द्वारा बाहर निकल पड़ता है–

शरदुदाशये साधुजात सत्सर सिजोदर श्रीमुषा दृशा। सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निध्नतो नेह कि वधः।।[12]

गोपियाँ धन्य हैं। उनका जीवन सफल और कृतकृत्य हो गया, क्योंकि उन्होंने जीवन का सर्वस्व अपना हृदय ही श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया। उद्धव जी के कथनानुसार–

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः।।[13]

इन गीतों के माध्यम से मुनि व्यास की बुद्धि, ऐश्वर्यता, माधुर्य की उच्च कल्पना, वाणी की श्रेष्ठता एवं भावों की भावपूर्ण अभिव्यक्ति की प्रतीति होती है। मानव का भावक्षेत्र जितना विस्तृत होगा वह उतना ही व्यापक भाव से स्तुति कर सकेगा। मूलतः भगवदभाव में इतनी शक्ति है कि जो कठोर हृदय को भी सरल बना देती है।

भागवतपुराण में राजा पृथु इतिहास प्रसिद्ध राजा हुए, जो साक्षात् नारायण के समान थे। भागवत में गायकों के द्वारा गीतों के माध्यम से स्तुति की जाती है–

अयं तु साक्षाद् भगवांस्त्र्यधीशः
कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः।
यस्मिन्नविधारचितं निरर्थकं
पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम्।।[14]

अर्थात् तत्वर्ण प्रधान भगवान् में समस्त जगत का, वाणी का, विचारों का स्तुति करने वालों का भगवान में पर्यवसान करके स्वयं भी उसी में पर्यवसित हो जाती है।

वस्तुतः भागवत के गीतों का जितना आध्यामिक महत्त्व है, उतना ही विपुल साहित्य गौरव का भी है। भावों की अभिव्यक्ति कोमल शब्दों में की गई है, जो अत्यधिक सरस एवं सरल है। जीवन की कोमल तथा ललित भावनाओं का अक्षय स्त्रोत भागवत का दशम स्कन्ध जीवन सरिता को सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाला मानसरोवर है।

भागवत के गीतों में सौन्दर्यात्मक व श्रृंगारमय प्रतीक का विकास किया गया है। मानव को प्रकृतिगत आत्मा को प्रेम के द्वारा खोजती है। उसके सौन्दर्य से विमोहित और अधिकृत तथा उसकी मोहिनी मुरली से आकर्षित हो जाती है। इस एक अदम्य लालसा के लिए सभी मानवीय चिन्ताओं और कर्तव्यों का त्याग कर देती है और इसकी अवस्थाओं के आरोहोवरोह में प्रथम स्पृहा के द्वारा मिलन के आनन्द विरह की तीव्र वेदना का शाश्वत स्पृह और पुनर्मिलन का भगवान के लिए मानव आत्मा के प्रेम की लीला का अनुभव करती है।

भागवत में वर्णित गोपी गीत में गोपी प्रेम के अनुभावों के अतिरिक्त गोपियों के विभिन्न प्रकार के सात्विक भावों की अभिव्यक्ति भी दृष्टिगोचर होती है ये सात्विक भाव हैं स्तम्भ, स्वेद, रोमांश, स्वर–भंग, कम्प, विवर्णता इत्यादि। यद्यपि शान्त दास्य आदि समस्त भावों में ये सात्विक भाव के लक्षण परिलक्षित होते हैं परन्तु उसकी पूर्णता मधुर रस में होती है जिस प्रकार छोटा–सा ईख (गन्ना) का पौधा क्रमशः रस, गुण, खाड़, चीनी, शक्कर, मिश्री का गुण धारण कर लेता है उसी प्रकार भक्त भी परमात्मा के प्रति होने वाले रति से विभिन्न अवस्थाओं को पार कर भाव तथा महाभाव की चरम अवस्था में पहुँच जाा है। महाभाव की चरम अवस्था भागवत में वर्णित ब्रज की गोपियों में दृष्टिगोचर होती है।

इसी प्रकार विरह–गीत में विरह की दशा में जो शारीरिक तथा मानसिक विकारों में परिवर्तन होता है उसका उल्लेख भागवत में मिलता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। शारीरिक परिवर्तन में शरीर का तप्त होना, जड़ जैसे बने रहता, वस्त्र को सम्भालने में असमर्थ होना, खुले केश, निष्प्रयोज्य, इधर–उधर भटकना इत्यादि। शरीर का अस्वाभाविक ताप जो हृदय की विरहाग्नि से उत्पन्न होता है यह किसी रोगजनित ज्वर से अधिक होता है, इसका वर्णन भागवत के इस विरह गीत में मिलता है।

भागवत के गीतों में स्वयं भगवान रसरूप में व्याप्त हैं। यह रस कहीं बालरूप तो कहीं वात्सल्य की संज्ञा पाता है तो कहीं साक्षात् रसराज के रूप में भगवान् स्वयं निहित है। भागवत के दशम स्कन्द में यह रस चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। जहाँ स्वयं सच्चिदानन्द सर्वान्र्यामी, प्रेम रसरूप लीला रसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी हलादिनी शक्ति रूपा आनन्द चिन्मय रस प्रतिभाविता अपनी प्रतिमूर्ति से उत्पन्न प्रतिबिम्ब स्वरूप गोपियों से आत्मक्रीड़ा की–

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्द कुमुदा मोदवायुना।।[15]

उनकी शरीर के आलिंगन से गोपियों ने दिव्य रूप को प्राप्त किया। फलतः भगवान की लीला में सम्मिलित होने के योग से दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त किया।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भागवत के गीतों में अलौकिक रस ने और भी अधिक अलौकिकतत्व को प्राप्त किया है। इन गीतों में गोपियों के आलम्बन परब्रह्म का रसिक रूप है, जो स्वयं दिव्य उज्ज्वल रस को उद्दीपन सामग्री प्रस्तुत करते हैं। मुख्यतः भगवान की भक्ति भावना के कारण ही प्रेम, श्रद्धा एवं समर्पण भाव के अनेक गीतों का सृजन हुआ।

संदर्भ सूची

1. भागवत पुराण 1/3/40
2. भागवत पुराण 12/13/14
3. भागवत पुराण 12/13/15
4. भागवत पुराण 1/1/3
5. भागवत पुराण 1/7/8
6. भागवत पुराण 1/4/7
7. भागवत पुराण 1/3/44
8. भागवत पुराण 11/2/34
9. संस्कृत सुकवि समीक्षा, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ0 38
10.भागवत पुराण 10/31/4
11.भागवत पुराण 10/47/17
12.भागवत पुराण 10/31/2
13.भागवत पुराण 10/47/23
14.भागवत पुराण 4/16/19
15.भागवत पुराण 10/29/45

डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल
असिस्टेंट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी–221002

32

डॉ0 हरिशरण वर्मा के नाटक संग्रह 'शहीद' का कथानक

सुदेश

सारांश

डॉ0 हरिशरण वर्मा सहज प्रकृति के समर्पित और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार है। इनकी लेखनी हिन्दी को जीवन से जोड़कर साहित्य के माध्यम से पाठक के सामने प्रस्तुत करने का काम करती है। नाटक इनकी लोकप्रिय विधा है। इन्होंने बहुत सारे नाटकों की रचना की है। हमारे विषय अनुरूप इस शोध सीमा में शहीद, अभिनंदन, यमलोक, संस्कार एवं अन्य नाटक, ट्रिपल तलाक, आश्रम कुटी, जीवन और मृत्यु, लव जिहाद, मंगलसूत्र, नारी उत्थान, विश्वगुरू, गर्व नाटकों को शामिल किया है। अतः शोध विषय के अनुसार शोध निष्कर्ष निकालने के लिए उक्त नाटकों का अध्ययन अपरिहार्य है।

नाटक जीवन में अनुप्रेरक और मनोरंजक दोनों प्रकार का सुख देने वाली रचना होती है। इस दृष्टि से नाटक को जीवन की छाया कहना गलत नही होगा। नाटक केवल पढ़े लिखे पाठक को ही प्रेरणा नही देते बल्कि उन सब सामाजिक प्राणियों को भी प्रेरणा देते हैं जो उस समाज में नाटक को दर्शक बन कर देख रहे हैं। नाटक का दृश्य रूप में अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना अधिक संप्रेषणीय एवं प्रभावी होता है। यह रंगमय का आधार पाकर जीवित हो उठती है। साथ नाटक की प्रस्तुति जीवन पथ पर गतिशील रहने की प्रेरणा भी देती है। इस प्रकार नाटक अन्य विधाओं से अलग स्वरूप प्राप्त कर लेते है।

डॉ0 हरिशरण वर्मा एक नाटककार रूप अपनी अभिव्यक्ति को जीवन से जोड़ने के प्रयास के साथ जीवन की समस्याओं का समाधान पाठक के सामने रखते चलते है, डॉ. हरिशरण वर्मा एक नाटककार रूप अपनी अभिव्यक्ति को जीवन से जोड़ने यही इनके नाटकों की विशेषता है। इस प्रकार इन सामाजिक नाटकों के विश्लेषण के पश्चात यह बात उभरकर सामने आती है कि कथ्य की सफलता के साथ–साथ ये सभी नाटक मंचन पर भी प्रवृति सफल और प्रभावी है।

शीर्षक पुस्तक जिज्ञासा एवं सामाज सुधार की भावना से ओत प्रोत है। इस पुस्तक की विषयवस्तु, उद्देश्य पूर्वतः देशकाल के अनुरूप है। नाटक पूर्वतः सफल एवं सार्थक कहा जा सकता है क्योंकि नाटक में लेखक ने पाठक के सामने शुद्ध भारतीय मानस का आईना चित्रित किया है। साथ ही लेखक ने युगीन भारतीय युगीन सांस्कृतिक मूल्यों के साथ धार्मिक आर्थिक मूल्यों को भी चेतन किया है। लेखक डॉ. हरिशरण वर्मा की भाव अभिव्यक्ति सार्थक एवं सशक्त है जो किसी भी सामाजिक कृति 'बेटी के साथ समझौता नहीं करती। यह एक संकलन कृति है जिसमें 'ट्रिपल तलाक', पढ़ाओ', 'शुद्ध हृदय' शीर्षक से तीन नाटक संकलित है। इस पुस्तक का प्रकाशन सम्मति पब्लिशर्श एवं डिस्ट्रीब्यूटर बी–347 संजय विहार, मेरठ रोड़, हापुड़, उत्तर प्रदेश से है। पुस्तक की पृष्ठ संख्या एक सौ उन्नीस है।

प्रस्तुत पुस्तक एक नाट्य कृति और इसमें प्रथम अंक में भारतीय सेना के अधिकारी को वीरता का चित्रण किया गया है। इसमें प्रवीण कुमार इस कृति का नायक है। दूसरा पात्र सौरभ वर्मा नाटक का पड़ौसी है। एक पात्र को उद्घोषक है। रक्षामंत्री, मुख्यमंत्री के साथ एक व्यक्ति और जन समूह को भी पात्रावली में संकलित किया गया है। स्त्री पात्रों में सरिता को नायिका माना जा सकता है और वीना और नेहा नायक की माँ और पुत्री है। नाटक को कुछ सात दृश्यों में विभाजित किया है और लेखक ने भारतीय सेना के एक नायक के चरित्र को वीरता पूर्वक चित्रित किया है। यहाँ कहा जा सकता है कि इस कृति में नाटकीय प्रस्तुति के माध्यम समसामयिक परिस्थिति के यथार्थ चित्रण को चित्रित करते हुए सफलता हासिल की है। जीवन के सभी भावात्मक और सामाजिक पहलुओं को बड़े सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। जीवन को बेहत्तर और सकारात्मक बनाने में साहित्य का अपना योगदान होता है इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि हरिशरण वर्मा के नाटक जीवन की उन्मुखता की ओर पाठक को अग्रसर करने का कार्य करते है।

प्रस्तुत कृति में, ''टेलीविजन पर कल खबर आई कि श्रीनगर–पाकिस्तान बार्ड पर लगभग 50 आतंकवादियों ने भारत में प्रवेश करने का प्रयास किया। भारतीय सेना ने उनका मुकाबला किया, 45 आतंकवादी मारे गए और पाँच जान बचाकर भाग गए तथा तीन भारतीय सैनिक शहीद हो गए। इस टुकड़ी का नेतृत्व प्रवीन कुमार कर रहे थे। बस समाचार सुनकर माँ जी की तबियत उसी समय से खराब है।''[1] यह संवाद नायिका सरिता का है, जो

भारतीय सेना के जवानों को बड़े आदणीय दृष्टिकोण के साथ देखती।

हिन्दी शब्दकोश में शहादत बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है जिसमें एक जवान अपने देश के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर अपने तथा अपने देश की अस्मिता की रक्षा कर जज्बा रखता है। यह शहादत पाठक के लिए एक विशेष स्थिति से उबरने के लिए, नवीन जीवन मूल्यों को ग्रहण करने के लिए बेहत्तर जिंदगी जीने के लिए उन्मुख करता है। यही इस जीवन को लेकर लेखक ने चेष्टा की है। यह उन समसामयिक परिस्थितियों की परिभाषा है जिनको यथार्थ कहा जा सकता है। एक भारतीय नायक की समानता की परिभाषा पर कहा जा सकता है, ''अरे चाची क्यों चिंता करती हो?हमारा प्रवीण शेर है, शेर । अकेला ही दस दुश्मनों के काबू नही आएगा। कही रास्ते में किसी यार दोस्त से मिलता रह गया होगा। अफसर जो ठहरा, हर ऐक सैकेंड कार्यक्रम बदलते रहते हैं।''[2] इस प्रकार लेखक उक्त संवाद के माध्यम भारतीय सैनिक की सामाजिक छवि को प्रस्तुत करने में सफलता हासिल करता।

वीरता भारतीय सेना का वह गुण जिसको कि प्रत्येक भारतीय को गर्व होता है। 'शहीद' का नायक प्रवीण कुमार इसी प्रकार का वीर योद्धा है और जीवन की प्रत्येक घटना छविमान और सामाजिक ही नही बल्कि सामाजिक क्षेत्र में भी अपनी श्रेष्ठ भूमिकाएँ निभाता है।

इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से यह नाटक जीवन के उन छुए और अनछुए पहलुओं की ओर संकेत करता है जिनको अनुकरणीय कहा जा सकता है।

संकलन में दूसरा नाटक 'भाग्य' संकलित है। 'भाग्य' शीर्षक में लेखक यह स्पष्ट करता है कि प्रेम विवाह जीवन का अंतिम लक्ष नही होता, इससे आगे भी जीवन होता है जो विभिन्न प्रकार के दायित्व से परिपूर्ण होता है। यहाँ लेखक ने यह स्पष्ट किया है आज की स्थिति में छुआछूत और जाति प्रथा की व्यवस्था पूर्ण रूप समाप्त नही हुई है। यहाँ 'भाग्य' में एक दलित नारी के भोगें हुए यथार्थ की कथा इस बात की पुष्टि करते हुए नजर आते हैं। उसका भोग उसका जीवन और चित्रण इसका मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तुत नाटक में लेखक ने बाईस पात्रों का विधान किया है यह नाटक सफलता के लिए बहुत ही गलत है अभिनय में कठिनाई होती है। इसमें चौदह पुरूष और आठ स्त्री पात्र हैं। यह सब मिलकर जीवन के उस रूप की व्याख्या करते है जिसको लेखक ने इसके कृति के उद्देश्य के रूप में रूपायित किया है। प्रस्तुत कृति का नायक सुधीर है और इसकी आयु 25 वर्ष है। इसके अतिरिक्त मुक्ता इसकी नायिका है जिसकी आयु 24 वर्ष है। प्रथम दृश्य में प्रांगण दिखाया गया है, ''विश्वविद्यालय का प्रांगण जहा छात्र छात्राओं की भीड़ बाते करते हुए घूम रही है। कुछ जोड़े कैंटिन में चाय पी रहे है और बातें कर रहे हैं। परीक्षाएँ समाप्त हो गयी है। कुछ छात्र और छात्राएं अपना होस्टल में सामान बांध रहे हैं और गर्मी की छुट्टियों में अपना घर जाने का प्रबंध कर रहे हैं। जाने के कारण दोनों का मन उदास है सुधीर और मुक्ता दोनों एक दूसरे से बातें कर रहे हैं।''[3] यह प्रेम की परिभाषा कहा जा सकता है कि प्रेम अक्सर ईर्ष्यालु होता है और उसमें एक दूसरे का खोने का डर हमेशा बना रहता है। जीवन में बहुत कम प्रेमी और प्रमिकाएँ होती है जिनकों अपने साथी के खोने का गम अथवा डर नही होता। सुधीर मुक्ता भी भय वाली स्थिति से गुजर रहे हैं। अंत परिस्थितियों के चलते दोनों का प्रेम विवाह तो हो जाता है परन्तु जीवन के मायने बदल जाते है। बाईस दृश्यों की इस कृति में लेखक यही दर्शाता दिखाई पड़ता है। जीवन तो जीवन वह समाज का कर्जदार भी है और समाज का फर्जदार भी है। इसलिए लेखक इस प्रेम विवाह को 'भाग्य' का नाम देता है।

संकलन में तीसरी कृति 'मेड इन इंडिया' है। इसमें इंडिया अर्थात भारत की निर्मित वस्तुओं के महत्त्व को बताते हुए विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात कही है। भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र है। ऐसे में विदेशी वस्तुओं का उपभोग निश्चय ही राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक है। इस कृति में पात्र योजना की बात की जाए तो चार पुरूष पात्र है और तीन स्त्री पात्र हैं। निखिल नाम का पात्र इस कृति में नायक भूमिका निभाता है और इसकी आयु छब्बीस सताईस वर्ष है जबकि किरण इस कृति की नायिका है जिसकी उम्र अठाईस से तीस वर्ष है। इस कृति में केवल पाँच दृश्य है," जिनके माध्यम से लेखक ने अपनी बात कही है। वातावरण की दृष्टि से समसामयिक वातावरण की चित्रित किया है एक उदाहरण प्रस्तुत है, ''लोकेश के मकान पर कार आकर रूकती है, निखिल वर्मा कार से नीचे उतरता है, और दरवाजे पर काल बैल को बजाता है, अंदर ड्राईंग रूम में हलचल पैदा हो जाती है प्रवीण और सरिता अपने–अपने सौफे पर बैठ जाते है। बाकी लोग भी बैठ जाते है।''[4] इस प्रकार अधुनिक शहरी जीवन और शहरी पात्र इसके केन्द्र में हैं। एक शहरी पात्र का एक संवाद प्रस्तुत है, ''जो सामान मेरे मम्मी–पापा आप लोगों को दहेज में देने के लिए एकत्र किया है उसमें अधिकत्तर सामान विदेशी है और यह स्मगलिंग किया हुआ है। मेरा कहना है कि स्मगलिंग करना पाप है, जघन्य अपराध की श्रेणी

में आता है, देशद्रोह है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए विनाशकारी है। स्मगलिंग का सामान उतना ही अपराध है जितना कि स्मगलिंग करना। मैंने पहले भी यही कहा था और अब भी कह रहा हूँ।"[5]
इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रकार योग्य नागरिकों के द्वारा ही भारत का विकास संभव है जब तक व्यक्ति अपने से उपर उठकर अपने देश के बारे में नही सोचेगा इसके देश का विकास नहीं किया जा सकेगा। लेखक की इस प्रकार की विचारधारा से अनुप्राणित यह कृति उद्देश्य की दृष्टि से पूर्णतः सफल है। यह पाठक की चेतना में एक विचारधारा का निर्माण करती है और देश तथा देशभक्ति के प्रति प्रेरित करती है। इतना ही नही यह अर्थव्यवस्था मजबूत करने की सोच बनाने का कार्य करती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ0 हरिशरण वर्मा बहुआयामी साहित्यकार है, उन्होंने नाटकों के अतिरिक्त कहानी, लघु कला, कविता आदि विद्या पर भी अपनी लेखनी चलाई है। नाटक संग्रह "शहीद" का पहला नाटक उनका देशभक्ति से परिपूर्ण नाटक है। इस नाटक की विशेषता यह है कि यह नाटक देशभक्ति के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं को भी उजागर किया है। नाटक में कुल सात दृश्य है। भारतीय सेना के नायक प्रवीण कुमार की वीरता को उजागर किया है। भारत–पाकिस्तान बार्डर पर पचास आतंकवादियाँ द्वारा भारत में प्रवेश करने का असफल प्रयास किया क्योंकि सेना के अधिकारी प्रवीण कुमार व उसकी टुकड़ी ने उन आतंकवादियों द्वारा बहादुरी से मुकाबला किया, जिसके फलस्वरूप 45 आतंकवादी कुत्ते की मौत मारे गये, पाँच जान बचाकर भाग गये तथा तीन भारतीय सैनिक शहीद हो गये। जिसके फलस्वरूप प्रवीण कुमार का सम्मान उपायुक्त द्वारा किया जाता है।

नाटक संग्रह 'शहीद' का दूसरा नाटक 'भाग्य' है। इस नाटक के द्वारा दर्शाया गया है कि छुआछूत और जटिल पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई है। 'भाग्य' नाटक मे एक दलित नारी के भोगे हुए यथार्थ को चित्रित किया गया है। नाटक संग्रह 'शहीद' का तीसरा व अन्तिम नाटक है 'मेड इन इंडिया', अर्थात् भारत निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए।
यही इस नाटक का उद्देश्य है। जिसमें डॉ0 वर्मा पूर्णतः सफल हुए है। ऐसा करने से भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत होगी। डॉ0 हरिशरण वर्मा को उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक सेवाओं को देखते हुए थावे विद्यापीठ विश्वविद्यालय, गोपाल गंज, बिहार ने 15 अक्तुबर, 2022 को डी0लिट् (हिन्दी साहित्य) मानद उपाधि प्रदान की है। इससे यह प्रतीत होता है कि डॉ0 हरिशरण वर्मा एक अच्छे साहित्यकार हैं।

सन्दर्भ :

1. शहीद हरिशरण वर्मा – पृ. 22
2. शहीद हरिशरण वर्मा – पृ. 21
3. शहीद हरिशरण वर्मा – पृ. 41
4. शहीद हरिशरण वर्मा – पृ. 89
5. शहीद हरिशरण वर्मा – पृ. 10
6. डॉ0 हरिशरण वर्मा, नाटक संग्रह 'शहीद' सन्मति पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, बी–347, संजय विहार, मेरठ रोड़, हापुड़–245101

सुदेश
रबीन्द्रनाथ टैगोर
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय,
भोपाल (म. प्र.)
मोबाईल : 9468112568

33

तमस : कथ्य और लेखकीय परिप्रेक्ष्य

डॉ० अंजु देशवाल

सारांश

'तमस' उपन्यास भारत विभाजन के आधार में होने वाले भीषण साम्प्रदायिक दंगों की निर्मम करुण गाथा को प्रस्तुत करने वाला बहुचर्चित उपन्यास है। 'तमस' भारतीय इतिहास की सम्भवतः सबसे बड़ी त्रासदी से जुड़ी रचना है। यह उपन्यास कल्पना पर आधारित न होकर भारतीय इतिहास की एक सच्ची दर्दनाक घटना से है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तिम दौर में देश–विभाजन के समय भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए, तमस उन्हीं भयानक दंगों के दौरान पिसते हुए लोगों की कहानी है। साम्प्रदायिकता का तमस किस प्रकार समाज को आच्छादित कर अंधेरे में धकेलता है कि व्यक्ति–व्यक्ति अपनी उजड़ी जिन्दगी को मूकदर्शक की भाँति देखता है, इसकी खुली अभिव्यक्ति भीष्म साहनी ने तमस उपन्यास में की है। साम्प्रदायिक तनाव से वहाँ जिसतरह के दंगे हुए और इन दंगों के दौरान आम आदमी को जो स्थिति भोगनी पड़ी, साथ ही साम्प्रदायिकता की तलवारें लेकर पाशविकता का जो नग्न नृत्य हुआ, उसे भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास 'तमस' के माध्यम से इस खूबी से बुना है कि साम्प्रदायिकता के तार–तार उद्‌घाटित हो जाते हैं। साम्प्रदायिक वैमनस्य की जड़ें भारतीय जनमानस में इतनी गहरी पैठ रखती हैं किआज भी यत्र–तत्र इसका विस्फोट दिखाई पड़ता है।

डॉ० रामदरश मिश्र के कथनानुसार ''भीष्म साहनी साम्प्रदायिकता का मूलकारण धर्मा धारित द्वि–राष्ट्रवाद के सिद्धान्त और भारत विभाजन को मानते हैं। 'तमस' में लेखक ने अमानवीयता का सर्वांग चित्रण किया है और साथ ही विभाजनपूर्व के उन दृश्यों को सजीवता प्रदानकी है, जिनमें आग की लपटें, खूनखराबा, शोर–शराबा और कौमी व मजहबी मारें हैं।''[1]'तमस' मानवीय सम्बन्धों में हासोन्मुखी प्रवृत्तियों को, मूल्यों के विघटन को, अंग्रेज शासकों की'फूट डालो तथा शासन करो' की कूटनीति को व साम्प्रदायिक तनाव से उत्पन्न होने वाले वातावरण को उभारने में पूर्णतः सक्षम रहा है। अपेक्षाकृत कम लेखकों के द्वारा चित्रित होने के बावजूद भारत–विभाजन का विषय हिन्दी उपन्यास का महत्त्वपूर्ण कथ्य रहा है। भीष्म साहनी के प्रगतिशील दृष्टिकोण और उनकी विश्लेषण शक्ति के कारण यह उपन्यास विशिष्ट हो गया है।

पंजाब जिले और उससे सम्बन्धित कुछ देहातों में क्रमशः बने साम्प्रदायिक तनाव के परिणामस्वरूप फैले भयंकर दंगों के समय आम आदमी की जो स्थिति हुई उसे उभारने का सफल प्रयत्न इस उपन्यास में किया गया है। 'तमस' उपन्यास का कथ्य विभाजन से नहीं विभाजन पूर्व साम्प्रदायिकता से सम्बद्ध है। उस समय कार्यरत अलगाववादी शक्तियों की भूमिका,शहरों में फिसाद के कारण, अलगाववादी शक्तियों द्वारा लोगों को आकर्षित करना, शिक्षितों का दृष्टिकोण, शहर में फिसाद के फलस्वरूप देहात क्षेत्र में उसकी प्रतिक्रिया के रूप और इनसबका संयुक्त परिणाम आम आदमी को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है– इसकी खोज उस उपन्यास में निहित हैं। यह तो स्पष्ट था कि लोगों के एक हिस्से ने भारत–विभाजन कोस्वीकार कर लिया था, किन्तु विभाजन की उनकी यह मानसिकता किस रूप से निर्मित हुई इसका उत्तर इस उपन्यास में दिया गया है। पंजाब के देहातों, कस्बों व शहरों के आम आदमीके दिल में पाकिस्तान पहले बना बाद में विभाजन हुआ। विभाजन का प्रमुख कारण साम्प्रदायिक उस समय जिस स्वरूप में कार्यरत थी, उसके सम्बन्ध में विचार निम्न हैं –

आर्य समाज एक पुनरूत्थानवादी संस्था रही हैं जो हिन्दुत्त्ववादी को दृढ़ रूप में स्थापित करने का प्रयत्न करती है। हिन्दू धर्म को अधिक शास्त्र शुद्ध, बुद्धिजीवी और तर्कसंगत बनाने का ऐतिहासिक कार्य किया वहीं धीरे–धीरे ये संस्था राजनीति के क्षेत्र में उभर कर आने लगी। अन्य धर्मों पर कठोर टिप्पणी करके हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ रूप में दर्शाने वाली इस संस्था ने 'अलगाववाद' की वृत्ति को जन्म दिया। 'तमस' उपन्यास में आर्यसमाजी विचारधारा का प्रतिनिधित्व पुण्यात्मा बानप्रस्थी जी, मंत्रीजी, देवव्रत, बोधराज, रणवीर व उसके पिता लाला लक्ष्मीनारायण आदि करते हैं। वानप्रस्थी जी हिन्दुओं से उनकी रक्षा का आग्रह करते हैं। उनका नारा है :–

''फैलाए घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने,
नेअमत फलकने छीन ली, दौलत जमीन ने।''[2]

वे हिन्दुओं को सुरक्षा के उपाय बता रहे हैं किन्तु यह नहीं

सोचते कि सुरक्षा की आवश्यकता ही क्यों है। अज्ञात संकट का भय बनाया जा रहा है, जिसके परिणाम के बारे में किसी ने विचार नहीं किया।अधिकांश आर्यसमाजी चरित्र विवेकहीन आवेश से प्रेरित हैं इसी कारण वे एक स्थल पर कहते हैं – ''गो–वध हुआ तो यहाँ खून की नदियाँ बह जाएंगी।''[3] मुसलमानों के प्रति नफरत की भावना फैलाने का हरसम्भव प्रयास करते हैं –''म्लेच्छ तो गन्दे होते हैं, म्लेच्छनहाते नहीं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं जाते।''[4]इस सबके उपरान्त भी आम व्यक्ति समझौता चाहता है, फिसाद नहीं चाहता परन्तु वानप्रस्थी जी जैसे संन्यासी जिनका स्वयं कुछ बिगड़ने वाला नहीं था, उन्हें नपुसंक, डरपोक कहकर चुप करा देते हैं। इस प्रकार आर्यसमाजी अन्य धर्मविरोधी व अलगाव की मानसिकता को प्रश्रय देते हुए प्रतिशोध की भावना को उपजा रहे थे।

हिन्दू धार्मिक संस्था के समान ही लीग भी मुस्लिम धर्म के लिए इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य कर रही थी। मुस्लिम गार्डस की स्थापना, अलगाव बढ़ाना, नफरत के जहर को फैलाना उनका पुण्य कर्म था। लीग का मामूली कार्यकर्ता भी जिन्ना के विचारों से प्रेरित था ''कांग्रेस हिन्दूओं की जमात है। इसके साथ मुसलमानों का कोई वास्ता नहीं है। कांग्रेस मुस्लिमों की रहनुमाई नहीं कर सकती।''[5] कांग्रेस के मुसलमान सदस्यों व मौलाना आजाद को वे गाँधी का कुत्ता कहते हैं। ''मौ0 आजाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है। गाँधी के पीछे दुम हिलाता फिरता है, जैसे ये कुत्ते (स्थानीय मुस्लिम कांग्रेसी) आपके पीछे दुम हिलाते फिरते हैं।''[6] वे अंग्रेजों को अपना सहायक मानते हैं, इसलिए वे मानते हैं कि –''हमारा अंग्रेजों नेक्या बिगाड़ा है? हिन्दू–मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है। काफिरों को मारना सबाब है।''[7] इस उपन्यास में मुबारक अली और मौलाना इसके नेता हैं जो परम्परागत अधिकारों पर मुसलमानों को भड़काने का प्रयत्न कर रहे हैं। मुराद अली जैसे लीगी अधिक बुद्धिमान व षडयन्त्रकारी हैं, जो हमेशा अलगाव की राजनीति खेलता है, आम आदमी के जीवन को नष्ट भ्रष्ट करते हैं, किन्तु पर्दे के पीछे से। वे सामने नहीं आते।

भीष्म साहनी ने सिक्खों की मानसिकता को विशिष्टता के साथ उभारा है। सिक्ख जाति मूलतः लड़ाकू रही है। उनका धार्मिक इतिहास ही मुस्लिम बादशाहों के साथ संघर्ष से जुड़ा है। अतः मुस्लिमों के विरूद्ध संघर्ष व दंगे करने को आसानी से धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में दिखाया जा सकता है । इतिहास के उदाहरणों द्वारा ही उनमें जोश का संचार करके धर्म के लिए एकत्र किया जा रहा था, संगठित किया जा रहा था। 'तमस' में सिक्ख संख्या में कम होने पर विवेक व चालाकी की अपेक्षा शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। उनके विवेक को धार्मिक कट्टरता हर लेती है और इसी विवेकहीनता के कारण वे अन्त में पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

भीष्म साहनी ने लड़ाई के समय की मानसिकता को अत्यन्त पैनी नजर से परखकर व्यक्त किया है – ''तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं और सिक्खों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे, जिनके साथ खालसा लोहा लिया करते थे। यह लडाई ऐतिहासिक लड़ाईयों की श्रृंखला में एक कड़ी थी। लड़ने वालों के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य युग में।''[8] इस प्रकार आर्य समाज, लीगी व सिक्ख समुदायों के कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे थे।

साहनी जी ने कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को अमन के लिए प्रयत्नशील रूप में दिखाया है किन्तु लीग, आर्य व सिक्ख समाज अपनी सम्पूर्ण कट्टरता के बाद भी एक बिन्दु पर मेल खाते हैं, साम्य रखते हैं और यह है – धर्म का राजनीति के लिए उपयोग, इन तीनों की शक्तियों के सम्मुख, कांग्रेस व कम्युनिस्ट असफल हो जाते हैं। उनके दंगे–फसाद व खून–खराबे को रोकने के सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं।

कांग्रेस में सभी सम्प्रदाय से जुड़े व्यक्ति सदस्य थे तथा वे गाँधी के आदर्शों को अपना सिद्धान्त मानकर प्रभात फेरी, चरखा कातना, गन्दगी साफ करना आदि कार्य करते हैं। जबकि गाँधी की नीति को लेकर स्वयं कांग्रेसियों में मतभेद हैं। उनका स्वयं का मानना है कि नाली साफ करने से व झाडू लगाने से स्वराज्य प्राप्ति नहीं होगी। कांग्रेसी एक तथ्य पर एकमत थे वो था– अमन रखना तथा उनकी धारणा कि फिसाद अंग्रेज करवा रहे हैं, निर्मूल नहीं थी । ''फिसाद करने वाला भी अंग्रेज, रोटी देने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज घर में बसाने वाला भी अंग्रेज। जब से फिसाद शुरू हुए हैं, बख्शी जी के दिमाग में धूल सी उड़ने लगी थी, बस केवल बार–बार कहते रहे कि अंग्रेज फिर बाजी मार गए।''[9] कांग्रेसियों की कथनी व करनी में भी अन्तर है, जहाँ वे धर्मनिरपेक्षता का दिखावा करते हैं वहीं दंगा–फसाद उनको मन से हिन्दू दर्शा कर उनकी वास्तविकता को उभारता है।

कांग्रेस के सदस्यों के समान ही कम्यूनिस्ट एकता के लिए प्रयासरत है। देवदत्त, राजनाथ, जगदीश, अजीज, सोहनसिंह आदि कम्यूनिस्ट पात्र हैं। कम्यूनिस्ट दृष्टिकोण काउदाहरण देवदत्त है जो सभी स्थितियों को आर्थिक स्तर पर जाँचता है। देवदत्त मुसलमानों

का पक्षधर है क्योंकि वे हिन्दुओं से आर्थिक दृष्टि से निम्न है। भीष्म साहनी देवदत्त के माध्यम से विचार प्रस्तुत करते हैं कि मध्य वर्ग या उच्च वर्ग जो सम्पन्न है, जिन्हें अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता नहीं है, उन्हीं के पास समय है, धर्म सम्बन्धी मसलों के लिए।एक मजदूर एक इन्सान होता है, उसे हिन्दू–मुसलमान का सवाल परेशान नहीं करता क्योंकि उसकी सोच अपनी आवश्यकताओं पर केन्द्रित है। उनका मानना है कि उच्च वर्ग के लोग हीधर्म के नाम पर इनको लड़ाते हैं।

साहनी जी मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण समाज की शक्ति सर्वहारा वर्ग मेंमानते हैं इसीलिए 'तमस' उपन्यास में जब देवदत्त को ज्ञात होता है कि मजदूर बस्ती में भी दंगेहो रहे हैं तो ''उसे लगा कि अगर मजदूर आपस में लड़ सकते हैं तो विष बहुत गहरा असर कर चुका है।''[10] साथ ही उनका यह विश्वास भी अटल है कि इन दंगों के उपरान्त पूंजीपति वर्ग सुरक्षित है व नुकसान हुआ मजदूरों का, गरीबों का। इसी कारण देवदत्त तहसील के आँकड़ा बाबू से पूछता है कि –''गरीब कितने मरे और अमीर कितने।''[11]

भीष्म जी ने एक ओर जो प्रमुख तथ्य 'तमस' के माध्यम से उभारा वह था – अंग्रेजों का 'तटस्थ' रहना। उन्होंने तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों के पारिवारिक, बौद्धिक और प्रशासकीय रूप द्वारा उनकी 'तटस्थता' की नीति का पर्दाफाश किया है। सन् 1946 के बाद की भारत की राजनीतिक घटनाओं से अंग्रेज अनुभव कर रहे थे कि उनका शासनकाल अब यहाँ ज्यादा दिन नहीं चल सकता। इस कारण वे 'तटस्थ' थे पर वास्तव में वे जान–बूझकर दोनों कौमों को लड़ा रहे थे। न्याय, सुरक्षा और कानून का पाठ सारी दुनियाँ को पढ़ाने वाले अंग्रेज दोहरी जिन्दगी से त्रस्त थे। उनकी इस मानसिकता का सफल अंकन 'तमस' में है। अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड की पत्नी लीजा उसके इसी विसंगत व्यवहार से क्षुब्ध है। उनके व्यक्तित्व के दो स्पष्ट हिस्से थे। एक स्थान पर रिचर्ड कहता है। ''हमारा आचरण हमारी मान्यताओं के अनुरूप होना चाहिए। यह एक ऐसा भौंडा आदर्शवाद है जिससे सिविल–सर्विस में नाम लिखाते ही अफसर अपना पिंड छुड़ा लेते हैं।'' आचरण व आदर्श की विसंगति सम्पूर्ण ब्रिटिश राज की नीति थी ।

पंजाब में फैले व्यापक दंगों को अंग्रेजों ने क्यों नहीं रोका इसका जवाब रिचर्ड की पत्नी देती है – ''देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।'' स्वयं रिचर्ड स्वीकार करता है कि प्रजा के आपसी संघर्ष में शासक सुरक्षित रहता है। ''हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौन सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन–किन बातों में एक–दूसरे से अलग हैं।''[14] भीष्म जी यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि उस समय अंग्रेज इस कोशिश में थे कि असन्तोष सत्ता के विरूद्ध न होकर परस्पर जनता में ही हो। अंग्रेजों के हाथ में सत्ता थी,शस्त्र थे, पुलिस थी किन्तु वे उस समय दंगे न रोक कर फिसाद के पाँचवें दिन सुरक्षा के प्रयत्न करते हैं। काफी नुकसान, जान–माल की हानि के उपरान्त संरक्षण, राशन की सुविधाएँ देकर अपनी धाक जमाना भी उनकी शासकीय नीति का ही अंग है।

धर्म, जाति व राजनैतिक विचारधारा से ऊपर मानवतावाद के भाव से भरे लोगों का भी इसमें चित्रण है जिनकी मान्यता, परम्परा, आदर्श, दया, सत्य, करूणा के भाव अभी जड़ नहीं हुए हैं। राजो सिक्ख दम्पत्ति को पनाह माँगते हुए अपने दरवाजे पर देखती है तो मना नहीं कर पाती। ''क्षणभर के लिए वह औरत ठिठकी खड़ी रही, वह निर्णायक क्षण जब मनुष्य अपने समस्त संस्कारों, विचारों, मान्यताओं के पूंजीभूत प्रभाव के आधार पर निर्णय लेता है।''[15]प्रगतिवादी भीष्म साहनी जी ने साधारण तबके की मानसिकता को उभारा है, यह वर्ग जो किसी राजनीतिक विचारधारा से या कांग्रेस, लीग, विभाजन आदि से मतलब नहीं रखता। अपनीछोटी–छोटी समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे में जो दंगे फैलते हैं, उसमें झुलसने वाला भी यही साधारण तबका है। उनके लिए विभाजन, पाकिस्तान, स्वतन्त्रता का क्या मूल्य है। उनका स्तर तो जो है वही रहेगा। उदाहरण : बाबू ने कहा – ''आजादी आने वाली है।'' मैंने कहा –"आये आजादी पर हमें क्या?हम पहले भी बोझा ढोते थे, आजादी के बाद भी ढोयेंगे।''[16] किन्तु यह वर्ग वास्तविकता नहीं समझता, वे यह नहीं जान पाते कि प्रेमपूर्वक गले मिल रहे, ये बड़े सम्पन्न व खानदानी लोग ही उन्हें लड़ाते हैं। इस तथ्य को उभारता हुआ संवाद दो चपड़ासियों के मध्य है जो अमन कमेटी बनाने के लिए एकत्रित बड़े लोगों को प्रेमभाव से एक–दूसरे केगले मिलते देखकर कहते हैं –''हम जाहिल लोग लड़ते हैं, समझदार खानदानी लोग लड़ते नहीं। यहाँ सभी आए हैं, हिन्दू भी, सिक्ख भी, मुसलमान भी, मगर कैसे प्यार–मुहब्बत की बातें कर रहे हैं।''[17]

भीष्म साहनी जी दंगों के उपरान्त भी मानवीय मूल्यों के पतन और भय, सन्देह,क्रूरता उभरने के बाद भी मानवीय मन की अनेक प्रतिक्रियाओं को उभारते हैं। जैसे – राजो जो सिक्ख दम्पत्ति को शरण देकर उनकी रक्षा करती है उसके हाथ का खाना लेने से

हिचकने पर जबकि उनसे पवित्र हाथ कौन से होंगे। उसी तरह जवान लड़की के मिल जाने पर उसे अपनाने से इन्कार करना, इस प्रकार सनातनी वृत्ति इस हिंसक ताण्डव के उपरान्त भी शान्त नहीं हुई है। अस्तित्व की रक्षा हेतु जसबीर जैसी स्त्रियों का सामूहिक आत्महत्या करना, वहीं एक दूसरी प्रवृत्ति भी है जो जीवन की रक्षा के लिए अपनी इज्जत को नीलाम करती है। एक स्त्री दंगाखोरों से कहती है – ''मुझे मारो नही। मुझे तुम सालों अपने पास रख लो, एक–एक करके जो चाहो कर लो। मुझे मारो नहीं।''[18] लोगों का सब कुछ नष्ट होने के उपरान्त भी सम्पत्ति के प्रति मोह नहीं छूटता, जहाँ ये सम्पत्ति का स्वार्थ एक मुसलमान द्वारा हिन्दू सेठ के माल की रक्षा करवाता है, वहीं एक सरदार कुएँ में कूदकर प्राण देने वाली अपनी पत्नी की लाश देखना चाहता है, इसलिए नहीं कि वह उसके अन्तिम दर्शन कर सके वरन् उसके पहने जेवर ले सके।

निष्कर्ष

इस प्रकार साम्प्रदायिकता से उत्पन्न दंगों की विभीषिका का मार्मिक व यथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास की सीमावधि विभाजन से सम्बद्ध नहीं है किन्तु विभाजन के समय जो हुआ उसका प्रतिबिम्ब दर्शाया गया। कृष्णा सोबती ने लिखा है– '' 'तमस' जिन्दगी की छोटी–बड़ी लड़ाईयों की कहानी नहीं। यह विभाजन जैसे ऐतिहासिक घटना का, संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, जिसमें एक साथ लाखों लोग अपने ठिकानों से उखड़े थे। भीष्म खुद उस तूफान की चपेट में थे जिसे बँटवारे का नाम दिया जाता है .... 'तमस' इस बात का सबूत है कि एक ईमानदार लेखक की तरह भीष्म भोगे हुए दर्द को दूरियों में से लाते चले गये हैं और अन्त में बँटवारे का यह ब्यौरा पेश कर सके जो अपने सुथरे शिल्प व प्रस्तुतिकरण में महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय रहेगा। विभाजन के दौरान मानवीय सम्बन्धों में जो रिक्तता उभरी, उसे साहनी जी ने बारीकी से देखा है क्योंकि बँटवारे को लेकर उपजी नफरत मात्र जमीन बँटने तक सीमित नहीं थी वरन् मानवीय सम्बन्धों के टूटन, मानवीय मूल्यों व भावनाओं के समाप्त हो जाने की शून्यता से जुड़ी थी।

संदर्भ सूची

1. डॉ० रामदरश मिश्र, 'हिन्दी उपन्यास के 100 वर्ष' गिरनार प्रकाशन, पिलाजीगंज, गुजरात, पृश्ठ 381
2. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ 60
3. वही, पृष्ठ 63
4. वही, पृष्ठ 63
5. वही, पृष्ठ 32
6. वही, पृष्ठ 32
7. वही, पृष्ठ 179
8. वही, पृष्ठ 207
9. वही, पृष्ठ 223
10. वही, पृष्ठ 139
11. वही, पृष्ठ 235
12. वही, पृष्ठ 235
13. वही, पृष्ठ 44
14. वही, पृष्ठ 45
15. वही, पृष्ठ 187
16. वही, पृष्ठ 98
17. वही, पृष्ठ 248
18. वही, पृष्ठ 211

डॉ० अंजु देशवाल
एसोसिएट प्रोफेसर,
श्री एल०एन० हिन्दू कॉलेज,
रोहतक, मोबाइल नं० 9466723448
Email :anjudeshwal1974@gmail.com

34

हिन्दी पत्रकारिता और महात्मा गांधी : एक विवेचना

डॉ0 नरेश कुमारी

सारांश

समाज के उत्थान में पत्रकारिता की भूमिका निःसंदेह बहुत ही महत्वपूर्ण है। सरकारें, व्यापार या समाचारों के संस्थाएं बिना जन–समर्थन के स्थापित नहीं हो सकती है। पत्रकारिता का दायित्व है, महत्वपूर्ण जानकारियों को आम जनता तक पहुंचाना, बिखरे हुए समाचारों को उचित ढ़ंग से समीक्षा पूर्वक व्यवस्थित प्रस्तुत करना और जनता को इसका वास्तविक मूल्य बताकर जनता की सोच को दिशा प्रदान करना। इन दायित्व को निर्वद्धन करना कांटे आसान काम नहीं है। इसलिए पत्रकारिता को राज्य का चौथा स्तंभ कहा गया है। पत्रकार एक अच्छा जन सेवक होता है। वह अपनी लेखनी और प्रस्तुती के माध्यम से निर्भय हो कर समान की की सेवा करता है।पत्रकार को सेवा करने के लिए विशेष साधन की आवश्यकता नही होती, वह अधिकतम शब्दों, चित्रों, संकेतों और तकनीकि की सहायता से अपना कार्य कुशलतापूर्वक करता हैं। उसे संपूर्ण जाति के प्रति जाग्रत एवं स्नेहशील रहना पड़ता हैं। जाति–पाति, भेद–भाव, राग–द्वेष से परे हट कर संपूर्ण संसार के विशय में सोचना पड़ता हैं। एक बार गांधी जी ने अपने पत्रकार व्यक्तिव के विशय में कहा था 'मेरी ज़िदंगी ही मेरा संदेश हैं' इसीलिए जब उन्होंने शब्दों के द्वारा अपना संदेश देना शुरू किया तो उसे अपने जीवन का प्रयोग माना। पत्रकार के रूप में गांधी जी द्वारा संपादित इंडियन ओपीनियन, हरिजन, नवजीवन, तथा यंग इंडिया मुख्य रूप से हैं औरअन्य पत्रिकाओं में वर्धा से प्रकाशित त्रैमासिक महिलाश्रम, खादी जगत, कस्तूरबा दर्शन, जीवन साहित्य, ग्राम राज, हरिजन सेवा, गांधी मार्ग, सर्वोदय, राष्ट्र भारती, इन पत्रिकाओं ने देशप्रेम, सामाजिक उत्थान को दिशा महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मुख्य शब्द : हिंदी पत्रकारिता, विकास, भूमिका, महात्मा गांधी।

<u>विस्तार</u> :

गांधीजी ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते ही यह अनुभव कर लिया था कि पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम है जिससे जन–सेवा भी हो सकती है और जन जागृति भी लाई जा सकती है। देशभक्ति और राष्ट्रीयता उनकी पत्रकारिता के प्रमुख आदर्श थे । इन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए उनको प्रेरणा और प्रभाव से देश–विदेश में विभिन्न भाषाओं में अनेक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । ये पत्र पत्रकारिता को एक मिशन मानकर निकले और अपनी तेजस्विता, निर्भीकता और निष्ठा से उन्होंने पत्रकारिता के ऊंचे मानदंड तो स्थापित किए ही देश को स्वतन्त्र कराने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

गांधीजी के भारत–श्रागमन के पूर्व ही राष्ट्रीय विचारधारा के कुछ पत्र प्रकाशित होने लगे थे, किन्तु गांधीजी के जन–आन्दोलनों ने कई नए पत्रों को जन्म देकर भारतीय पत्रकारिता को एक नया मोड़ दिया । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में लोकमान्य तिलक, पं. मदनमोहन मालवीय, महात्मा मुंशीरामजी और पं. सुन्दरलालजी ने राष्ट्रीय चेतना और स्वदेशाभिमान की भावना जागृत करने वाले पत्रों का संचालन–सम्पादन कर देशव्यापी प्रकर्मण्यता को दूर करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया । तिलक की प्रेरणा से 1903 में नागपुर से 'हिन्दी केमरी' पत्र निकला। स्वर्गीय माधवराव सप्रे इसके सम्पादक थे। इसके बाद 1904 में काशी से 'इन्दु', 1905 में कलकत्ता से 'भारतमित्र' और 1906में प्रयाग से 'अभ्युदय' पत्र निकलने प्रारम्भ हुए। स्व. बालमुकुन्द गुप्त और स्व. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के सम्पादकत्व में 'भारतमित्र' उस युग का एकमात्र दैनिक था। यह पत्र तिलक के विचारों का समर्थक था। 'अभ्युदय' के जन्मदाता पं. मदनमोहन मालवीय थे। इससे पूर्व वह कालाकांकर के राजा द्वारा संचालित 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक रह चुके थे। गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक महात्मा मुशीरामजी के 'सद्धर्मप्रचारक', मारवाड़ी सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास के 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', पं. सुन्दरलालजी के 'कर्मयोगी', पं. पद्मसिंह शर्मा के 'भारतोदय', पं. बालकृष्ण भट्ट के 'प्रदीप' और पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी के 'मित्र' ने अपने लेखों, टिप्पणियों और समाचारों द्वारजनता में देश भक्ति की एक अभूतपूर्व लहर ला दी। इस राष्ट्रीय जागरण ने गांधीजी के लिए एक अच्छी पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

समाचार पत्र से प्रेरणा :

गांधीजी की पत्रकारिता का विशद विश्लेषण करने से पूर्व यह जान लेना उचित होगा कि गाँधीजी पत्रकारिता की ओर किस प्रकार आकृष्ट हुए। गांधीजी ने 18 सितम्बर, 1888 को लंदन में सबसे पहले एक समाचार पत्र देखा। इससे पूर्वभारत में उन्होंने कभी

कोई समाचारपत्र नहीं पढ़ा था। लंदन में रहकर उन्होंने 'लंदन वेजिटेरियन सोसाइटी' के मुखपत्र 'वेजिटेरियन' का अध्ययन करना शुरू किया। इस प्रकार पत्रों की ओर उनका ध्यान धीरे–धीरे बढ़ने लगा और उन्होंने समाचार पत्रों में लेख लिखना प्रारम्भ किया, पर सही अर्थों में उन्हें पत्रकार बनाया दक्षिण अफ्रीका ने! 1899में बोअर युद्ध के उनके अनुभव बम्बई के 'टाइम्स आफ इण्डिया' में प्रकाशित हुए ।

गांधीजी ने सक्रिय पत्रकारिता के क्षेत्र में सन् 1904 में प्रवेश किया। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने 'इण्डियन ओपीनियन' नाम के साप्ताहिक पत्र को जन्म दिया। गांधीजी के एक राजनीतिक सहयोगी और बम्बई के भूतपूर्व अध्यापक श्री मदनजीत व्यावहारिक ने डरबन में एक प्रेस स्थापित किया। इस प्रेस से ही यह पत्र निकलने लगा। इस पत्र में अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती, हिन्दी और तमिल के अंश भी रहते थे। हिन्दी और तमिल भाषी लोगों की संख्या वहां कम हो जाने के कारण बाद में इन दोनों भाषाओं के अंश निकाल दिए गए। 1914तक गाँधी जी इस पत्र के सर्वे–सर्वा थे। पत्र के लिए लेख लिखने के साथ–साथ उसकी आर्थिक स्थिति का भार भी उन पर ही था। पत्र के प्रथम वर्ष में उनको अपनी जेब से दो हजार पौण्ड खर्च करने पड़े। धीरे–धीरे पत्र की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और वह जम गया। गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के बाद उनके पुत्र श्री मरिणलाल गांधी पत्र का कामकाज देखते रहे।

गांधीजी सत्य में ही ईश्वर के दर्शन करते थे और इसीलिए जीवन भर उन्होंने सत्य की उपासना की। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने सत्य को कभी ग्रांच नहीं आने दी। भारत आने के बाद उन्होंने अपने पुत्र मणिलाल गांधी को लिखा था– 'इण्डियन ओपीनियन में तुम जो कुछ भी लिखो, वह इसमें तुमसे कभी भूल हो जाए, तो उसे कबुल सत्य होना चाहिए। यदि करने में झिझकना नहीं। मानवमात्र की प्रेमपूर्ण सेवा ही उनकी दृष्टि से ईश्वर की सच्ची उपासना थी ।

गांधी जी की पत्रकारिता के आदर्श :

अपने विचारों का प्रचार करने के साथ–साथ गांधीजी ने पत्रकारिता के कुछ आदर्श मानदंड भी स्थापित किए। उन्होंने लिखा है– 'पत्र का एक उद्देश्य तो यह है. वह जनता की भावनाओं को समझे और उसे अभिव्यक्त करें, दूसरा यह कि वहजनता में कुछ वांछनीय विचारों को जागृत करे और तीसरा यह कि जो ग्राम दोष हो, उनका निर्भीकता से भंडाफोड़ करे। साध्य के साथ–साथ साधनों की पवित्रता पर भी उनका विशेष आग्रह रहता था। प्रथम विश्व युद्ध के समय गांधीजी भारत आए और यहां आकर उन्होंने 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' पत्रों का प्रकाशन किया। किन्तु वह अंग्रेजी पत्रों की अपेक्षा देशी भाषाओं के पत्रों के पक्ष में अधिक थे। उन्होंने एक बार कहा भी था अंग्रेजी के पत्र भारत के बहुत ही कम पाठक पढ़ पाते हैं। इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने 1921 में अह्मदाबाद में साप्ताहिक 'हिन्दी नवजीवन' निकालना शुरू किया। गांधीजी की मातृभाषा गुजराती थी, इसलिए हिन्दी में पत्र निकालना निश्चय ही उनके लिए अनहोनी बात थी। हिन्दी के महत्व से वह भली–भांति परिचित थे कि बिना हिन्दी के पत्र के जनता तक पहुँचना कठिन है। अपने अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद वह 'हिन्दी नवजीवन' में लिए कभी–कभी हिन्दी में ही लिखतेथे । प्रायः उनके अंग्रेजी लेखों का अनुवाद इसमें दिया जाता था। 'हिन्दी नवजीवन' के प्रथम सम्पादकीय में ही उन्होंने अपनी कठिनाइयों और मर्यादाओं पर प्रकाश डाला था। उन्होंने लिखा था– 'यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को हिन्दी में प्रकाशित करना कठिन काम है, तथापि मित्रों के आग्रह के वश होकर औरसाथियों के उत्साह से 'यंग इण्डिया' का हिन्दी अनुवाद निकालने की घृष्टता में करता हूँ। हिन्दुस्तानी भाषानुरागी 'हिन्दी नवजीवन में उत्तम प्रकार की हिन्दी की आशा न रखें । मुझे न तो इतना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानी में लेख आदि लिखकर दे सकूं, और न बहुत अच्छी हिन्दुस्तानी लिखने की शक्ति ही मुझ में है।

गांधी जी और विज्ञापन :

गांधीजी ने जितने भी पत्र निकाले, सभी साप्ताहिक थे सम्भवतः उन्होंने दैनिक पत्र की कभी आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। आजकल की पत्रकारिता की तरह पैसा कमाना उनका लक्ष्य नहीं था। पत्रों में विज्ञापन देने के भी पक्ष में वह नहीं थे और उन्होंने जितने भी पत्र निकाले उनमें कभी कोई विज्ञापन नहीं निकला। पत्र के लिए किसी से कर्ज लेना भी उन्हें पसन्द नहीं था। ग्राहक संख्या बढ़ाकर पत्र को स्वावलम्बी बनाना ही उनका लक्ष्य था। इस सम्बन्ध में एक बार उन्होंने लिखा था– 'नवजीवन' द्रव्योपार्जन का साधन नहीं है। वह प्रत्येक प्रवृत्ति का प्रचार साधन भी नहीं। वह तो केवल मेरे विचारों के प्रचार का ही साधन है। 'नवजीवन कर्ज लेकर नहीं चलाया जा सकता। वह एक या अनेक मित्रों से दान लेकर पाठकों को मुफ्त भी नहीं दिया जा सकता, 'नवजीवन' के पाठक खुद अपने को उसका मालिक समझें। उन्हें जब तक उसमें दिए गए विचार पसन्द आते हैं, जब तक वे उसे मूल्य देकर लें और सम्भालकर रखें,

क्योंकि मैं प्रति सप्ताह उसमें अपनी आत्माउड़ेलता हूँ और जानता हूँ कि जिस रचना में कोई अनपढ़ मनुष्य भी अपनी आत्मा उड़ेलता है, उसको धारण और उस पर विचार करने में कल्याण है।

गांधीजी की मान्यता थी कि जो पत्र आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं है और जिसे विज्ञापनों का सहारा लेना पड़ता है, उसको चलाने से कोई लाभ नहीं है। जब 'हिन्दी नवजीवन' घाटे में चलने लगा तो उन्होंने पत्र के पाठकों के नाम अपील निकाल कर स्पष्ट कहा कि पत्र के स्वावलम्बी होने के लिए 4000 ग्राहक चाहिए । यदि इतने ग्राहक नहीं होंगे तो बन्द कर दिया जाएगा।' इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी लिखा कि यदि हिन्दी नवजीवन' में लाभ होगा तो वह दक्षिण प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने में व्यय किया जाएगा। इससे स्पष्ट है कि उन्हें हिन्दी से कितना अनु–राग था और उसके प्रचार के लिए वह कितने चिन्तित रहते थे ।

गांधीजी की भाषा के सम्बन्ध में नेहरूजी ने ठीक ही लिखा है कि ''उनकी भाषा सादी, सरल और विषय–संगत होती थी । किसी भी अनावश्यक शब्द का प्रयोग वह शायद ही कभी करते थे।'' उनकी इस शैली की छाप उनके द्वारा संचालित–सम्पादित पत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती थी। एक बार 'नवजीवन' के पाठकों ने कुछ शब्दों पर आपत्ति करते हुए उन्हें लिखा कि ऐसे कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। इसका उत्तर पत्र में देते हुए गांधीजी ने लिखा–ऐसे पाठकों को मैं सन्तुष्ट करना चाहता हूँ, लेकिन मैं साथही भाषा को बिगाड़ना भी उचित नहीं समझता और फिर मजदूरों को भी साधु–भाषा समझने के लिए थोड़ी मेहनतकर लेनी चाहिए। जिन शब्दों का अर्थ समझ में नहीं आता उनका अर्थ दूसरों से समझ लेना चाहिए।

हिन्दी नवजीवन :

'नवजीवन' हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में निकलता था । 'हिन्दी नवजीवन' 1921 से प्रारम्भ होकर 1932 तक चला। श्री हरिभाऊ उपाध्याय कुछ वर्षों तक इसके सम्पादन में गांधी जी के सहयोगी रहे। श्री उपाध्यायजी के चले जाने के बाद राजेन्द्र बाबू के सुपुत्र श्री मृत्युंज्य प्रसाद पत्र का कामकाज देखते रहे। 1933 में गांधी जी ने 'हरिजन' साप्ताहिक प्रारम्भ किया। यह पत्र अंग्रेजी और हिन्दी में निकला। 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय इसकी प्रतियां जब्त कर इसे बन्द कर दिया गया। 1946 में गांधीजी के रिहा होने पर यह पत्र फिर निकलने लगा और उनके देहावसान के बाद बन्द हो गया। खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के दिनों में गांधीजी में अपनी तेजस्वी लेखनी से देश की महत्त्वपूर्ण समस्याओं की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। प्रथम पुरुष में लिखे गए उनके अग्रलेख देश के प्रमुख अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के उद्धृत किए जाते थे। गांधीजी स्वयं तो पत्रकार थे ही, उन्होंने देश के कई पत्रों मेंप्रमुख नेताओं को भी पत्रकार बना दिया। उनकी प्रेरणा से राजेन्द्र बाबू ने1920 में पटना के सर्चलाइट प्रेस से हिन्दी साप्ताहिक 'देश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र ने बिहार के गांव–गांव में गांधीजी के संदेश को पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। आन्दोलन में व्यस्त रहने के कारण राजेन्द्र बाबू पत्र की व्यवस्था पर अधिक ध्यान नहीं दे सके। राजेन्द्र बाबू की अनुपस्थिति में प्राचार्य बद्रीनाथ वर्मा'देश' का सम्पादन किया। प्रार्थिक कठिनाइयों के कारण इस पत्र को बन्द को देना पड़ा।

राजेन्द्र बाबू की तरह काशी के शिवप्रसाद गुप्त ने भी गांधीजी की प्रेरणा से पत्रकारिता को अपनाया। उन्होंने भी 1920 में दैनिक 'आज' की स्थापना की। इस पत्र ने अपनी स्पष्टवादिता और निर्भीक राष्ट्रीय नीति से देश के हिन्दी दैनिकों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। हिन्दी के यशस्वी पत्रकार श्री प्रकाश, श्री बाबू राव विष्णु पराड़कर के सम्पादन में इसकी कीर्ति सारे देश में फैल गई।

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने गांधीजी के भारत आगमन के एक वर्ष पूर्व अर्थात् 1913 में 'प्रताप' समाचार पत्र को प्रकाशित कर दिया था। 1920 में गांधीजी के आन्दोलन से प्रभावित होकर विद्यार्थीजी ने इसे साप्ताहिक से दैनिक रूप दिया। विद्यार्थी जी अपने युग के मूर्धन्य पत्रकार थे। उनके चरणों में बैठकर ही सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' पत्र के माध्यम से श्री राम शर्मा, श्री कृष्णदत्त पालीवाल आदि दिग्गज पत्रकारों ने पत्रकारिता का पाठ पढ़ा था। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने कलकत्ता से 'विशाल भारत' प्रयोग के बाद में टीकमगढ़ से 'मधुकर' पत्रों का सम्पादन किया। श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने दैनिक 'भारतमित्र' तथा 'स्वतन्त्र साप्ताहिक' का सम्पादन किया। श्री कृष्णदत्त पालीवाल ने 'प्रभा' और 'प्रताप' का काम करने के बाद आगरा से 'सैनिक' पत्र निकाला, जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश में राजनीतिक चेतना जागृत कर राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्रदान किया। पालीवालजी की लौह लेखनी का अंग्रेज शासकों पर भी बड़ा दबदबा था।

गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे आन्दोलन ने ही श्री हरिभाऊ उपाध्याय को 1923में 'मालव मयूर' निकालने के लिए प्रेरित किया। बिहार में श्री रामवृक बेनीपुरी के सम्पादकत्व में 'युवक' और 'जनता' ने तथा स्वामी सहजानन्द के 'कृषक और 'हुंकार' ने

जन–जागृति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मुजफ्फरपुर के 'सत्याग्रह देवघर के 'हितवादी', गया की 'चिंगारी' और पटना के 'योगी' ने भी क्रान्तिकार विचारों से स्वतन्त्रता संग्राम को बड़ा बल दिया।

पत्रकारिता की प्रेरणा गांधी जी :

राष्ट्रपिता का अनुकरण कर कई नेताओं ने भी पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य किया। डॉक्टर भगवानदास और आचार्य नरेन्द्रदेव के सम्पादकत्व में काशी विद्यपीठ' की त्रैमासिक 'विघापीठ' संवत् 1986में प्रकाशित हुई। इस पत्रिका में गांधी की विचारधारा के सम्बन्ध में विचारोत्तेजक सामग्री होती थी। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने 'समाज' और 'मर्यादा' का संपादन किया। श्री कमलापति त्रिपाठी के 'संसार', श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति के 'अर्जुन' और श्री जयनारायण व्यास के 'प्रखंड भारत' ने भी गांधीजी की गतिविधियों का प्रचार कर स्वतन्त्रता संग्राम को बल प्रदान किया। व्यासजी का 'अखण्ड भारत' देशी रियासतों के निरंकुश राजाओं और सामन्तों के दमन और अत्याचारों के विरुद्ध जनता के स्वर को मुखरित करता था। सेठ गोविन्ददास और श्री ब्रजलाल बियाणी भी देश सेवा के इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे। सेठजी ने जबलपुर से 'लोकमत' और 'जयहिन्द' पत्रों को प्रकाशित किया। वियागी जी के 'नव राजस्थान' और 'प्रवाह', श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' और आगरकर के 'स्वराज्य' ने तत्कालीन मध्य प्रदेश की जनता को जो दिशाबोध दिया, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। राजस्थान में श्री विजयसिंह पथिक के 'राजस्थान केसरी', श्री हरिभाऊ उपाध्याय की 'त्यागभूमि', श्री अचलेश्वरप्रसाद शर्मा के 'प्रजा सेवक' और श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी की 'नवज्योति (अजमेर) ने जन–जागरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'त्यागभूमि' का प्रकाशन विजयादशमी संवत् 1984 को प्रारम्भ हुआ और सन् 1930के सत्याग्रह आन्दोलन में इसका रूप मासिक से साप्ताहिक हो गया। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के अलावा श्री क्षेमानन्द राहत और श्री रामनाथ लाल 'सुमन' भी इसके सम्पादक थे।

गांधीजी के सुपुत्र श्री देवदास गांधी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने सन् 1936 में हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड के अन्तर्गत दैनिक 'हिन्दुस्तान' को प्रारम्भ किया। शुरूआत के कुछ वर्षों में श्री सत्यदेव विद्यालंकार इसके सम्पादक रहे। उनके बाद श्री मुकुटबिहारी वर्मा सम्पादक बने। श्री मुकुटबिहारी वर्मा के कार्यकाल तक यह पत्र गांधीजी और कांग्रेस की विचारधारा का प्रबल पोषक बना रहा । श्री मूलचन्द अग्रवाल के 'विश्वमित्र', श्री रामगोपाल माहेश्वरी के 'नवभारत' (नागपुर) और श्री पोद्दार के 'हिन्दुस्तान' के अलावा'जागरण' (कानपुर), 'लोकवाणी' (जयपुर), 'भारत' (प्रयाग), 'स्वतन्त्र भारत' (लखनऊ), 'प्रदीप' (पटना), 'आर्यावर्त' (पटना) और 'नई दुनिया' (इन्दौर) आदि पत्र भी स्वतन्त्रता से पूर्व निकले और उन्होंने भी बापू की गतिविधियों को जन–जन तक पहुंचाया । 'हंस', 'सरस्वती', 'चांद' आदि मासिक पत्रिकाओं पर भी गांधीजी के राजनीतिक और सामाजिक चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता था।

गांधी जी की पत्रकारिता के विभिन्न पक्ष :

गांधीजी का व्यक्तित्व बहुमुखी था । खादी ग्रामोद्योग, बुनियादी शिक्षा, राष्ट्रभावा–प्रचार, महिला–सुधार, हरिजन–सेवा और प्राकृतिक चिकित्सा उनके रचनात्मक कार्यक्रम के कुछ प्रमुख अंग थे। इन प्रत्येक अंगों के समुचित विकास के लिए भी उनकी प्रेरणा से कुछ पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। पहले हम खादीऔर ग्रामोद्योग को ही लें। 1923 में बापू ने साबरमती आश्रम, वर्धा से 'अखिल भारतीय खादी समाचार' निकाला। इसके बाद महाराष्ट्र चरखा संघ की ओर से 1933 में वर्धा से 'महाराष्ट्र खादी पत्रिका' (मासिक) का प्रकाशन हुआ। जुलाई1941 में सेवाग्राम आश्रम, वर्षा से श्री कृष्णदास गांधी के सम्पादकत्व में 'खादी जगत' मासिक शुरू हुआ। इसके प्रकाशन के साथ ही 'महाराष्ट्र खादी पत्रिका' बंद हो गई। आजकल खादी ग्रामोद्योग कमीशन की ओर से 'खादी ग्रामोद्योग' मासिक और 'जागृति' पाक्षिक का प्रकाशन किया जा रहा है। सुप्रसिद्ध गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ0 जे0 सी0 कुमारप्पा के सम्पादकत्व में जनवरी, 1937 में 'ग्रामोद्योग पत्रिका' (मासिक) का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

बुनियादी शिक्षा के रूप में गांधीजी ने शिक्षा जगत को एक नया विचार दिया। शिक्षा संबंधी उनके इस अभिनव प्रयोग का प्रचार करने के लिए वर्धा के हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की ओर से 1939में एक मासिक पत्रिका 'नई तालीम' निकली । श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् इस पत्रिका की सम्पादिका थी। आजकल 'नई तालीम' पत्रिका वाराणसी से निकल रही है। महिला जागृति के लिए भी गांधीजी ने बहुत कार्य किया। इस क्षेत्र में उनकी गतिविधियों की जानकारी प्रदान करने के लिए वर्धा से 'महिला आश्रम पत्रिका' (त्रैमासिक) संवत् 2002 विक्रमी की गांधी जयन्ती से प्रारम्भ हुई। श्री भवानी प्रसाद मिश्र इसके सम्पादक थे। अब यह पत्रिका बन्द हो गई है और इसका स्थान अब 'कस्तूरबा दर्शन' (त्रैमासिक) ने ले लिया है। कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट द्वारा 1949 में यह

पत्रिका 'कस्तूरबाग्राम' इन्दौर से प्रकाशित हुई।

राष्ट्रभाषा प्रचार के लिए स्वतन्त्रता से पूर्व बापू ने जो योगदान किया है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। काका कालेलकर और श्रीमन्नारायण अग्रवाल के सम्पादकत्व में 1939में 'सब की बोली' मासिक पत्रिका निकली। राष्ट्रभाषा–प्रचार समिति, वर्धा इसकी प्रकाशक थी। कुछ ही वर्ष बाद यह पत्रिका बन्द हो गई। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की ओर से 'हिन्दी प्रचारक' पाक्षिक प्रारम्भ हुआ, किन्तु बाद में इसने मासिक का रूप ले लिया।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने 15 जून, 1941से 'राष्ट्रभाषा' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। श्री मन्नारायण अग्रवाल इसके सम्पादक थे। गांधीजी के हिन्दुस्तानी सम्बन्धी अखबारों को प्रचारित करने के लिए पं0 सुन्दरलालजी ने जुलाई, 1946 में प्रयाग से 'नया हिन्द' निकाला। यह पत्र देवनागरी और फारसी लिपियों में निकलता था। इसकी भाषा संस्कृत के स्थान पर अरबी–फारसी से अधिकप्रभावित थी। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के तत्वावधान में काका कालेलकर ने 1950 से 'मंगल–प्रभात' प्रारम्भ किया।

हरिजनों और पिछड़ी हुई जातियों का विकास गाँधीजी के रचनात्मक कार्य– क्रम का प्रमुख अंग था । हरिजन सेवक संघ की ओर से 1933 में 'हरिजन सेवक' का प्रकाशन प्रारम्भ में हरिजन सेवा, अस्पृश्यता निवारण आदि विषयों पर इसमें सामग्री होती थी, किन्तु 1936में प्रान्तीय सरकारों में कांग्रेस के सत्तारूढ़ होने के बाद गांधीजी इसमें राष्ट्रीय जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर लिखने लगे। आजकल यह पत्र हरिजन सेवा के नाम से निकल रहा है। शराबबन्दी के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह और आन्दोलन किए। अ0 भा0 नशाबन्दी परिषद् की ओर से नशाबन्दी संदेश' उनके मद्यनिषेध सम्बन्धी स्वप्न को साकार करने के लिए प्रयत्नशील है।

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली की ओर से 1940 में 'जीवन साहित्य' मासिक निकला। उस समय इसके सम्पादक मंडल में सर्वश्री हरिभाऊ उपाध्याय, यशपाल जैन,विठ्ठलदास मोदी और महावीरप्रसाद पोद्दार थे। कुछ वर्षों तक यह प्राकृतिक चिकित्सा प्रधान पत्र रहा। बाद में श्री विठ्ठलदास मोदी और श्री महावीर प्रसाद पोद्दार ने, इससे अलग होकर अपने–अपने प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र स्थापित कर लिए। श्री विठ्ठलदास मोदी गोरखपुर से 'आरोग्य मासिक' निकाल रहे हैं। जीवन–साहित्य गांधीजी दर्शन और रचनात्मक गतिविधियों पर सुरुचिपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक 'गांधी मार्ग' भीअपने नाम के अनुरूप विषयों पर उच्च स्तर की रचनाएं प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक चिकित्सा की एक और पत्रिका 'स्वस्थ जीवन' भी उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष :

गांधीजी की सर्वोदय की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए गांधी सेवा संघ वर्धा द्वारा 1939 में 'सर्वोदय' मासिक का प्रकाशन हुआ। 1942 के अगस्त आन्दोलन में यह बन्द हो गया था। उस समय काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी इसके सम्पादक थे। बाद में यह फिर इसकी शुरूआत हुई। गांधीजी के देहावसान के बाद आचार्य विनोवा भावे के मार्गदर्शन में सर्वोदय, भूदान, ग्रामदान आदि की जो गतिविधियाँ चल रही हैं, उनका प्रचार करने के लिए 'गांधी के पथ पर' (उ0 प्र0 गांधी शताब्दी समिति का मासिक), 'भूदान यज्ञ' (सर्व सेवा संघ, वाराणसी का साप्ताहिक), 'ग्राम भावना' (पंजाब गांधी स्मारक समिति, करनाल का मुखपत्र), 'ग्रामराज' (राजस्थान गांधी स्मारक समिति का पत्र) और 'शताब्दी संदेश' (म.प्र. गांधी स्मारक समिति का पत्र) उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। गांधी–युग में प्रेम महाविश्वविद्यालय, वृन्दावन के 'प्रेम'और गाँधी गरीब संघ काशी के मासिक 'गांधी' में भी बापू की विचारधारा से अनु–प्रमाणित लेख होते थे।

प्रस्तुत शोध लेख में गांधीजी द्वारा प्रेरित प्रभावित महत्त्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं उल्लेख किया गया है क्योंकि देखा जाए तो उस युग में जितने भी पत्र प्रकाशित हुए, उनमें से प्रायः सभी में किसी न किसी रूप में गांधीजी का प्रभाव परिलक्षित होता था। निस्संदेह गांधीजी ने पत्रकारिता के उच्च आदर्श कायम करने के साथ–साथ देश को अनेक तेजस्वी पत्रकार भी दिए। दुर्भाग्य से ग्राम आदर्श का स्थान अवसरवादिता ने ले लिया है आवश्यक है कि आज के पत्रकार गांधी–युग के पत्रकारिता की पवित्रता और प्रतिष्ठा को आंच न आने दें।

संदर्भ ग्रथ–सूचि :

अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमंडल लि0 संत कबीर मार्ग वाराणसी।

सम्पादक रविन्द्र जाधव और केशव मोरे, मीडिया और हिंदी बदलती प्रवृतियां, वाणी प्रकाशन।

आर0 जयचन्द्रन,साहित्यिक पत्रकारिता का योगदान, वाणी प्रकाशन।

डॉ0 सुनील कुमार मिश्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार, आधुनिक विधाएं,

तेज प्रकाशन, दिल्ली।
राहुल मुदगल, पत्रकारिता और स्वतंत्रता आंदोलन, कर्ण पेपरवैन प्रकाशन, नई दिल्ली।
डॉ0 अवधेश कुमार, हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता, के0के0 पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
सुरेश गौतम एवं विना गौतम, भारतीय पत्रकारिता कल, आज और कल, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
मरियोला ओफ्फेदी, हिन्दी की पत्रकारिता में आठवां दशक, प्रसांगिक प्रकाशन।
क्षेमचन्द्र सुमन, हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।

डॉ0 नरेश कुमारी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राजकीय महिला स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
रोहतक हरियाणा।
पिन–124001

35

आत्मनिर्भर भारत : सुभाष की दृष्टि में

कल्याण कुमार

सारांश

शोध आलेख में मुख्यतः सुभाष चंद्र बोस के द्वारा लिखित निबंध,पत्र,जीवनी,विभिन्न स्थलों पर दिए गए भाषण एवं बोस पर आधारित विभिन्न आलोचनात्मक पुस्तकों के आधार पर प्रमाणिकता का ध्यान रखते हुए बोस के दृष्टिकोण में आत्मनिर्भर भारत की तस्वीर को आलेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आलेख में गागर में सागर भरने का यथासंभव प्रयास किया गया है। लेख में विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से तथ्यों की सत्यता भी सिद्ध की गई है। सुभाष के द्वारा भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जमीनी स्तर पर जो योजनाएं बनाई गई उनका भी यथास्थान लेख मे वर्णन किया गया है। आलेख के अंत में आत्मनिर्भर भारत को वर्तमान योजनाओं से जोड़ सुभाष की सार्थक दृष्टि का उचित मूल्याकंन करने का प्रयास किया गया है।

विषय – प्रवेश :–

प्रत्येक राष्ट्र का न्यूनतम व महत्वपूर्ण आधार मानव है। मानव संगठित होकर परिवार का निर्माण करता है। परिवार के संगठन से समाज और जब समाज संगठित होता है तो 'राष्ट्र' का निर्माण होता है। समाज का संगठन राष्ट्र को मजबूती प्रदान करता है परंतु समाज किस प्रकार सगंठित हो सकता है ?यह हमारे मस्तिष्क द्वार पर पहला प्रश्न प्रकट होता है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि समाज को सगंठित करने की मूलभूत कुंजी आत्मनिर्भरता है। यदि हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वं पर निर्भर होगा तो वह अपने उचित – अनुचित का विवेकपूर्ण निर्णय स्वयं ले सकता है। स्वंनिर्णय से देशहित के गर्भ में ही आत्मनिर्भर राष्ट्र की आधारशीला व्याप्त है।

आत्मनिर्भर भारत के सदंर्भ में यदि हम विचार करे तो पाएगे कि हमारा भारत प्रारंभ से ही स्वाभिमानी व स्वं पर निर्भर रहने वाला है। इसका एक पक्ष लोक में हजारों वर्शों से प्रचलित लोकोक्ति 'अपना हाथ जगन्नाथ' से लगाया जा सकता है। यह भी पूर्णरूपेण सत्य है कि काल चक्र सदैव समान नही रहता है। भारत को भी दुर्दिन का मुहं देखना पड़ा और क्रमशः मुगलों एवं अंग्रेजी शासन के अधीन रहना पडा इस सदंर्भ में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है :–

"संसार में किसका समय है एक–सा रहता सदा,
हैं निशि–दिवा–सी घूमती सर्वत्र विपदा–सम्पदा।
जो आज एक अनाथ है, नरनाथ होता वही,
जो आज उत्सव–मग्न है,कल शोक से रोता वही!![1]

सौभाग्य है कि यह क्रम आजीवन न चला भारतीय जनता ने अपने स्वं की महत्ता को समझते हुए आत्मनिर्भता का आश्रय ले स्वयं को इन बेड़ियों से मुक्त किया। भारतीय जनता के भीतर लुप्त हुई आत्मनिर्भता का भाव जागृत करने से लेकर भारत को आत्मनिर्भर बनाने तक में विभिन्न राष्ट्र नायकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन्ही राष्ट्रनायकों के बीच प्रभावी राष्ट्रनायक 'सुभाष चंद्र बोस' रहे। सुभाष की भारत के संदर्भ में आतमनिर्भरता संबंधी विचारधारा को जानने से पूर्व 'आत्मनिर्भता' शब्द को जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

'आत्मनिर्भर' शब्द दो शब्दों के योग आत्म और निर्भर से बना है। आत्म अर्थात् स्वयं एवं निर्भर का सामान्य अर्थ है किसी के सहारे पर। कुल मिलाकर कह सकते है आत्मनिर्भर वह है जो केवल स्वयं पर निर्भर रहता है। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने आत्मनिर्भरता को समझाते हुए कहा है –"आत्मनिर्भर 'अपने भरोसे पर रहना' ऐसा श्रेष्ठ गुण है जिसके न होने से पुरूष में पौरूषोयत्व का अभाव कहना अनुचित नही मालूम होता।"[2]साहित्य जगत में साहित्यकारों ने अनेक उद्धरणों के माध्यम से आत्मनिर्भरता के महत्व को समझाने का प्रयत्न किया है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में "औरों की आशा है त्याज्य, जहां नही वह वही स्वराज्य।"[3] अर्थात् किसी अन्य से प्राप्त भरोसे का आसरा हमें त्याग देना चाहिए एवं जहां यह भावना विद्यमान है वही स्वराज की प्राप्ति आसान है। वही रामेश्वर अरूण का कथन है –

"जो आप न उठना चाहें, अपने पैरों पर आई।
उन हीन जनो की जग में, कर सकता कौन भलाई!"[4]

अर्थात हमें अपनी स्वतंत्रता के लिए पहला कदम स्वयं ही बढ़ाना होगा तभी कारवां हमारे साथ गतिमान हो सकता है। यदि हम स्वयं ही आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में निष्प्राण है तो हमारा तारणहार स्वयं ईश्वर भी नही बन सकता।

उपर्युक्त परिभाषाओं और वाक्यांशों से स्पष्ट है कि स्वयं का आत्मबल ही आत्मनिर्भरता की कुंजी है। हमें आलस्य का दामन छोडकर स्वयं के परिश्रम, स्वबल और कर्म के पथ पर धावक बनना होगा। उसके पश्चात् ही हम आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते है। परिश्रम, स्वंबल और कर्म के पथ पर धावक बनकर ही नेता जी ने अल्प समय में ही भारत को आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया

था। आत्मनिर्भर भारत की छवि नेता जी के पत्र–व्यवहार, उनकी जीवनी व विभिन्न स्थानों पर सभापति के पद से दिए गए भाषणों, निबंधों तथा अन्य पुस्तकों के माध्यम से दृष्टिगत होते है। इन्ही के माध्यम से बोस की दृश्टि में आत्मनिर्भर भारत का शाब्दिक वर्णन करना ही लेख का ध्येय है।

सुभाष चंद्र बोस के विचार व उनकी दृष्टि दोनों ही उच्च कोटि की थी। वे देश को स्वाधीन करने हेतु अपने कर्मों पर विश्वास करते थे। देश के अधीन होने की स्थिति में सर्वप्रथम आत्मनिर्भरता का प्रतीक पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीनता का वरण करना था। वे अपने निबंध में स्वाधीनता प्राप्ति हेतु मार्ग दर्शाते हुए कहते है –**" इस नवजागरण के लिए हम सब को अभी से प्रस्तुत होना होगा। ध्यान, धारणा, विचार, कर्म, त्याग, योग – इन सबकी साधना से हमें प्रवृत्त होना होगा, ताकि चुनौती के समय हम प्रत्युत्तर के लिए प्रस्तुत रह सके।"** [5] बोस की दृष्टि में आत्मनिर्भर भारत 'श्रद्धा' एवं 'आत्मविश्वास' से परिपूर्ण है। वह कहते है कि व्यक्ति को स्वयं पर और अपने राष्ट्र पर पूर्ण भरोसा होना चाहिए व उसके पश्चात ही वह निर्माता बन सकता है। "अपने और अपने राष्ट्र के ऊपर जिसे भरोसा नही है वह व्यक्ति कभी कोई निर्माण कर सकता है भला ?"[6] इससे आगे अपने निबंध मे लिखते है कि "आदर्श के प्रति विश्वास, अपनी शक्ति पर विश्वास, भारत के गौरवमय भविष्य के उपर विश्वास इन प्रेरणास्पद विश्वासों के आधार पर ही हम विश्व–विजयी होंगे।"[7]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि बोस आत्मनिर्भर भारत को इस रूप में देखते थे जहां भारत के नागरिकों में अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति विश्वास हो। बोस को भी अपने आदर्शों पर पूर्ण विश्वास था इसलिए उन्होंने कभी गांधी का विरोध न करके एक सामंजस्य की भावना से उस समय की परिस्थिति को संभाला। वह सदैव आत्मबल को महत्व देते थे इसलिए उन्होने देश–विदेश में जाकर भारत के गौरवमयी इतिहास का परचम भी लहराया। इसका साक्ष्य हमें श्री कृश्ण सरल की पुस्तक से मिलता है जिसमे वह सुभाश के प्रसंगों की चर्चा करते हुए लिखते है कि सुभाष ने हिटलर को यह संदेश भेजा था कि "अपने देश की भलाई के लिए मैं अपनी गरदन फंसाकर जर्मनी आ पहुचां हूं। यदि यहां मेरे उद्देश्य की पूर्ति नही हुई तो अपने देश की भलाई के लिए मैं अपनी गरदन दुबारा फंसाकर भारतवर्ष लौट सकता हूं।"[8] इस प्रकार छोटे–छोटे प्रसंगों से ज्ञात होता है कि सुभाष की दृष्टि आत्मनिर्भर भारत में भारत की गौरवमयी परंपरा एवं भारतीय भुजबल को सदैव प्राथमिकता देती रही है।

हमारा भारत देश अपनी संस्कृति व सभ्यता के कारण सदैव परोपकारी रहा है। भारतीय संस्कृति की इन्ही विशिश्टताओं ने सदैव इसको जीवित रखा है, अन्यथा न जाने रोम, मिस्त्र, यूयान जैसी कितनी संस्कृतियां इतिहास के पन्नों मे सिमट कर रह गई। भारत की उदात्त भावनाएँ ही अनेक बदलावों के थपेडे खाकर भी आज एक उत्तम अवस्था में जीवित है। भारत की परोपकारी संस्कृति का अनुचित लाभ उठाकर अंग्रेजों ने धीरें–धीरे हमें अपने अधीन कर लिया। यदि हम उन्हे प्रारंभ में ही पनाह न देते तो क्या वे हमे पराधीनता की बेड़ियां पहना पाते, शायद नही।

सुभाष चंद्र बोस ने पराधीनता के समय में भी भारतीय संस्कृति का वहन करते हुए प्रचीन संस्कृति से दिशा प्राप्त कर आत्मनिर्भर भारत में समाज–सेवा की भावना, गृह उद्योग की भावना व कार्य क्षमता को पुनः जीवित किया। भारतीय वैदिक काल में हम पाते है कि महान ऋषि मुनि एवं उनकी पत्नियां दूसरो को शरण देकर समाज सेवा की भावना को फलित करती थी। वही दूसरी ओर माताएं व बालक गृह में छोटे–छोटे में कार्यों को कर स्वयं का निर्वहन करते थे। इस स्वावलंबी भावना को बोस ने धरातलीय स्तर पर पुनः प्रारंभ किया। उनके पत्रों द्वारा इस बात की प्रमाणिक जानकारी हमें मिलती है कि उन्होंने केवल बीरबल की खिचड़ी ही नही पकाई थी अपितु वास्तव में आत्मनिर्भर भारत का नक्शा तैयार किया। वे भारत में न रहते हुए भी व जेल में रहकर भी भारत की आत्मनिर्भरता पर सदैव चिंतन–मनन करते थे। मांडले जेल से लिखे गए पत्र का अंश देखिए –"जो गृह उद्योग (जैसे कागज़ के थैले बनाना) शुरू कर दिया गया है उस में यदि नुकसान न हो तो, और मामूली लाभ हो तो भी उसे चलाये।..................भिक्षा–वृति छोड़कर जब वे काम करना सीख लेंगे और उसके लाभ को पूर्ण उद्योग में लगा दिया जाएगा तो अच्छा परिणाम निकलेगा।"........................"बड़ी, अचार, चटनी आदि का काम नही चलने का कोई कारण नहीं दिखता। स्त्रियां, खासकर विधवाएं विधिवत कर सकेगी।"[9]इतना नही बोस ने आत्मनिर्भर भारत की प्रतिमा तैयार करने हेतु सभी को स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया। उपर्युक्त कार्यों के अलावा उन्होंने सीप से बटन तैयार करना,मिट्टी की मूर्तियां बनाना एवं रंगीन कागजों से विभिन्न प्रकार के फूल–गुच्छे एवं चाइनीज़ लैंटर्न तैयार करना आदि अनेक कार्यों के लिए उन्होंने नवीन दिशा प्रदान की। सुभाष चंद्र बोस आत्मनिर्भर भारत की तस्वीर में श्रम को पहले पायदान पर रखने के पक्षधर थे। वे सख्त शब्दों में लिखते है कि निःशुल्क में सहायता देकर हम अपने बंधुओ को पंगु नही बनाना है अपितु उन्हें सक्षम व कर्म के गौरव का महत्व समझाना है। "प्रतिदान न देकर दान लेना आत्मसम्मान की दृष्टि से हानिकारक है– यह बोध गरीब परिवार के सहायता–प्रार्थियों में जगाना उचित है। अतः यदि कोई सहायता लेकर काम करने को तैयार न हो तो उसको सहायता देना बंद

करना ही अच्छा है। ....हम भिक्षुकों की जाति मात्र हो कर रह गए है और इस भिक्षुक मनोवृति को एक दिन में नही बदला जा सकता।"[10]

इस तथ्य से तो हम सभी परिचित ही है कि यदि हमें अपना व्यवसाय अधिक दिनों तक कायम रखना है तो उससे संबंधित कच्ची सामग्री भी हमें स्वयं उत्पादित करनी होगी। भारतीय संस्कृति व परिवेश ने प्रारंभ से ही अपने कार्यो कि पूर्ति हेतु कच्चे माल का उत्पादन स्वयं ही किया है। भारतीय जनता को मूर्ख बनाकर ब्रिटिश सरकार ने हमारे ही कच्चे माल का प्रयोंग कर उत्पादित की गई वस्तु को हमें उच्च कीमतों पर दिया। सुभाष चंद्र बोस ने उसी प्राचीन परंपरा को पुनः प्रारंभ करते हुए कार्यकारिणी सदस्यों को चेताया कि यदि हमें व्यवसाय में लंबे समय तक अपने स्थायित्व को बनाए रखना है तो सूत उत्पादन का कार्य भी हमे स्वयं ही अपने घरों में करना होगा। सुभाष बाबू की दूरदर्शिता व आत्मनिर्भर मानसिकता का ही परिणाम है कि इन्होंने सूत उत्पादन से लेकर वस्त्र निर्माण तक का कार्य करने का प्रोत्साहन सामान्य जन को दिया व उन्हे आर्थिक दृश्टि से सक्षम बनाने का कार्य किया। बोस की भाषा में–"बाहर से यदि सूत खरीदना पड़ा तो तुम लोग 'वीविंग डिपो' अधिक दिन कायम नही रख सकेगें। जिन्हें सहायता दो उनके और समीति के सदस्यों के घरों में सूत उत्पादन की चेष्टा होनी ही चाहिए।............... ..स्थानीय लोगों में ऐसे लोग मिलेंगे जो सूत कातेगे पर उसे बेचेगे नहीं। उन के सूत से धोती या साड़ी बना दो तो वे सूत कात सकते है। पहले इसी प्रकार बहुत–से लोग धोती या साड़ी बनवाते थे।"[11]

सुभाष चंद्र बोस मन,वचन और कर्म से भारतीय समाज को उन्नति के शिखर पर देखने के अभिलाषी थे इसलिए वह आर्थिक दृष्टि से परिपूर्णता के साथ–साथ चारित्रिक विकास व मानसिक विकास का भी पूर्णरूपेण उत्थान चाहते थे। वह इसके लिए संस्था को एक आदर्श पुस्तकालय बनाने की सलाह देते है। इतना ही नही उन्होंने दक्षिण भारत के कार्यकर्त्ता श्रीमान 'हरिचरण बागची' को पुस्तकालय में कौन–कौन सी पुस्तकें रखनी चाहिए उसकी सूची भी लिखकर दी जो धर्म,साहित्य एवं इतिहास से संबंधित है। बोस आत्मनिर्भर भारत के निर्माण को साकार करने के लिए प्राथमिक शिक्षा को अत्यधिक महत्व देते है। बोस ने प्राथमिक शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व,चारित्रिक व विकास की नीवं मानी है। वह प्राथमिक शिक्षा में बालकों को नवीन तथ्यों से अवगत करवाना तो महत्वपूर्ण मानते ही है साथ ही साथ वह शिक्षा में शिल्प शिक्षा को महत्व देते थे। इसके दो कारण प्रमुख हो सकते है – पहला यह कि इससे पढ़ाई में रुचि का विकास व दूसरा किशोरवस्था तक धर्नाजन के विविध पहलूओं का निर्माण करना। सुभाष ने अपने पत्र में लिखा है –"एक बडी बात और – सिर्फ मानसिक शिक्षा न देकर शिल्प शिक्षा की व्यवस्था भी साथ–साथ होनी चाहिए, जैसे खिलौने बनाना, मिट्टी से मानचित्र बनाना, चित्र बनाना, रंगों का व्यवहार, सहज गानशिक्षा । इस के द्वारा सिर्फ शिक्षा सर्वागीण नहीं होगी, बल्कि साथ ही साथ पढ़ाई–लिखाई में भी विशेष उन्नति होगी।"[12] सुभाष की आत्मनिर्भर भारत की तस्वीर को समझने के लिए जितने महत्वपूर्ण उनके निबंध और पत्र है उतने ही महत्वपूर्ण उनके भाषण है; जो उन्होंने युवाओं एवं छात्रों को संबोधित करते हुए विभिन्न स्थानों पर सभापति पद से दिए थे। सर्वविदित है कि किसी भी देश की दशा व दिशा को सुधारने का अत्यधिक भार उस देश के छात्रों तथा युवाओं के कंधों पर ही होता है इसलिए बोस ने भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्हें ही अत्यधिक प्रेरित किया। इन भाषाणों में हम कदम–कदम पर आत्मनिर्भर भारतीय दृष्टि का अकंन सरलतापूर्वक कर सकते है। देश को आत्मनिर्भर बनाने के क्रम में नारी शक्ति को समुन्नत करना अत्यंत आवश्यक है क्योकि नारी शक्ति समाज का अभिन्न अंग है। नारी की महत्ता को समझाते हुए बोस ने वह सभी बातें अपने उद्बोधन में व्यक्त किए है, जिनका पालन वर्तमान में भी किया जा रहा है। आजादी से पूर्व ही बोस ने स्त्रियों की शिक्षा, व्यवसाय, लाठी व तलवार चलाने की शिक्षा देने व विधवा विवाह आदि महत्वपूर्ण तथ्यों का शंखनाद किया था। ये उनकी अभूतपूर्व दृष्टि का परिचायक नही तो और क्या है ?"घर और बाहर मातृ जाति को हम यदि शक्तिदायिनी बनाना चाहते है तो बाल–विवाह प्रथा को मटियामेट करना होगा। स्त्री–जाति को आजीवन ब्रह्मचर्य पालन का अधिकार देना होगा, स्त्रियोचित शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी, बालिका और युवतियों को व्यायाम शिक्षा एवं लाठी और तलवार चलाने की शिक्षा देनी होगी– यहां तक की स्वावलंबी होने के लिए आर्थिक उपार्जन की शिक्षा भी देनी होगी और विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति देनी होगी।[13]

सुभाषचंद्र बोस आत्मनिर्भर भारत की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करते है उसके साथ–साथ हमारे देश की पराधीनता के मूल कारणों पर भी प्रकाश डालते है। ऊपर मैं कह चुका हूं कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता श्रेष्ठता की परिचायक रही है। बोस ने भारतीय पराधीनता की ओर इंगित करते हुए कहा है कि हमने अपनी आदर्शवादिता को त्याग कर दिया जिसका दुष्परिणाम हमें पराधीनता के रूप में भोगना पड़ रहा है।"प्रत्येक व्यक्ति या जाति (राष्ट्र का) एक आदर्श होता है। उसी आदर्श का अवलंबन और आधार लेकर वह विकसित होती है। उस आदर्श की सार्थकता ही उसका लक्ष्य होता है और उसी आदर्शहीनता के कारण ही उसका जीवन अर्थहीन और निष्प्रयोजन हो जाता है।"[14]

सुभाष का नजरिया अर्थवतापूर्ण व गहराई लिए हुए है। उनका आत्मनिर्भरता का प्रयोजन कोई ऊपरी न था। उन्होंनें समय व समाज की अत्यंत गहराई से पड़ताल करते हुए आत्मनिर्भर भारत के स्वप्न को अपने मानसिक पटल पर संजोया था। आत्मनिर्भर भारत की प्राप्ति हेतु निष्क्रिय बने सामाजिक वर्गों को उन्होंने चेताया व अपने अधिकार प्राप्ति के लिए उन्हे प्रोत्साहित किया। इस अधिकार प्राप्ति के लिए 'अधिकार छीन लो।' नारे का प्रयोग बोस करते है। यह उनकी हिंसात्मक प्रवृत्ति का द्योतक न होकर आत्मबल का एक पक्ष है। वह दमित व शोषित वर्ग को समानता का अधिकार दिलवाने के पक्ष में थे क्योकि वह भली–भांति जानते थे कि इसके आभाव मे भारत आत्मनिर्भरता के रंग में नही रंग सकता। उन्होंने अपने भाषण में कहा –"आज हमारे देश में तीन वर्ग एक प्रकार से निश्क्रिय–से पड़े है – नारी वर्ग, तथाकथित अनुन्नत वर्ग एवं किसान और मजदूर वर्ग।........................उठो जागो, निष्क्रियता से उबरो, अपना अधिकार छीन लो।"[15] अपने आंदोलनों के पीछे छिपे आत्मनिर्भर भारत की भावना को उजागर करते हुए बोस ने अपने भाषण में कहा "दायित्व–बोध और आत्मनिर्भरता का भाव इन आंदोलनों में निहित है।" बोस के इस कथन से आत्मनिर्भर भारत की सच्ची तस्वीर हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है, जिसके मूल में अपने दायित्व का बोध होना परमावश्यक है।

आत्मनिर्भर भारत के लिए सुभाष ने अपने भाषणों में यह भी कहा कि छात्र संघ मिलकर एक सहयोगी स्वदेशी भडार का प्रारंभ करे जिससे अन्य छात्रों को लाभ पहँच सकता है। इसके संबंध में उन्होंने दो लाभों की चर्चा की जिसमें पहला यह कि इससे छात्र उचित मूल्यों पर स्वदेशी वस्तुओं कों खरीद सकेंगे। दूसरा यह कि इससे गृह उद्योगों को उत्साहित किया जा सकेगा। इससे प्राप्त होने वाले लाभ को उन्होंने व्यायाम समितियां, व्यायाम पीठ, पाठक गोष्ठियों, पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन, संगीत समाज, पुस्तकालय, समाज कल्याण समीतियों आदि की स्थापना करने पर व्यय करने का परामर्श दिया। इस प्रकार के नवीन परामर्श ही सुभाष के प्रगाढ़ व प्रभावी आत्मनिर्भर भारत का रेखाचित्र प्रस्तुत करती है।

सुभाष चंद्र बोस का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे अपनी दृष्टि को सीमित क्षेत्र के गहरे गर्त से बाहर निकाल समग्र मानव जाति के कल्याण हेतु सदैव उत्साहित रहते थे। वे अपनी दृष्टि में आत्मनिर्भर भारत की भूमि को सभी के लिए समानता के रूप में देखते थे। उन्होंने इसका विस्तार अपने व्यक्तव्यों में किया है। सुभाष ने यदा–कदा 'आत्मनिर्भरता के लिए 'स्वाधीनता' शब्द का प्रयोग किया है। अतः स्वाधीनता का अर्थ स्त्री–पुरूष,धनी–निर्धन, जाति एवं विचार आदि विभिन्न स्तरों पर सभी की स्वतंत्रता हो एवं वह अपने उच्चतम आदर्शों का पालन बिना किसी भय के कर सके। बोस के शब्दों में –"स्वाधीनता का अर्थ मैं समझता हूँ, समाज और व्यक्ति और नर–नारी, धनी और दरिद्र – सभी के लिए स्वाधीनता मात्र राष्ट्रीय बधंन से मुक्ति नही बल्कि यह है आर्थिक समानता, जाति भेद और सामाजिक अविचार का निराकरण और साम्प्रदायिक संकीर्णता एवं रूढ़िता का त्याग मंत्र भी।"[16] सुभाष आत्मनिर्भरता से ओत–प्रोत विचारों को विस्तार देते हुए कहते है कि आत्मनिर्भरता के लिए प्रेरणा शक्ति का होना परमावश्यक है। साथ ही साथ वह अविकसित वर्गों जैसे गरीब,स्त्री,अल्पसंख्यक एवं वृद्ध आदि को उन्नत करने की योजना पर विचार करते है। इन कार्यों की पूर्ति के पीछे वह भ्रातृत्व की भावना को अग्रणी रूप से स्वीकार करते है।

बोस आत्मनिर्भर देश के सपने को पूर्ण रूप से साकार करने के लिए देश की मजबूत नीवं को रखने की बात करते है। इतना ही नही बोस ने जिन तथ्यों को उजागर अपने भाषणों में किया था सत्य तो यह है कि भविष्य में वह साकार हुए एवं उन्हें अमल में भी लाया गया। मध्य प्रदेश और बरार के छात्र– सम्मेलन में उन्होंने कहा कि भारत को एक स्वाधीन गणतंत्र की आवश्यकता के साथ ही सेनाओं से सज्जित बल, भारत का राजदूत एवं भारत माता का गौरव हो। इनके समस्त विचार जो भूतकाल मे मौखिक थे वह भविष्य में साकार हुए एवं उन्ही धुरियों पर चलकर भारत ने आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में छलांग लगाई। बोस के शब्दों में उनके वैज्ञानिक व दूरदृष्टा की झलक देखिए –" मैं चाहता हूँ इस देश में एक स्वाधीन गणतंत्र की प्रतिष्ठा हो। उस की सेनाएं हो, नौ–बल हो, वायुयान हों – सभी स्वाधीन एवं स्वतंत्र हों। मैं चाहता हूँ संसार के अन्य स्वतंत्र देशों में स्वाधीन भारत का राजदूत हो। मैं देखना चाहता हूँ, प्राच्य और पाश्चात्य के मध्य जो कुछ महत्तर हैं उनमें भारतमाता गौरवान्वित हो। मैं चाहता हूँ, भारत के कोने–कोने में सत्य का नारा, संपूर्ण स्वाधीनता का नारा गूँजे।"[17]

बोस के निबंधों,पत्रों व भाषणों से इतना तो साफ है कि आत्मनिर्भर भारत उनकी दृष्टि में किस प्रकार पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा था। सुभाश चंद्र बोस मन, वचन तथा कर्म से भारत को समुन्नत बनाने के लिए जुटे हुए थे। उनके विभिन्न प्रसंगों से पता चलता है कि उन्होंने विदेशों को अपना लोहा मनावाया और उन्हें अपने पक्ष में कर देश को स्वाधीन/आत्मनिर्भर करने की अभूतपूर्व चेश्टा की। उन्होंने रानी झाँसी रेजीमेंट की स्थापना की साथ ही साथ बोस द्वारा निर्मित 'आजाद हिंद फौज को व उसके द्वारा किए गए महान कार्यों व बलिदान को कौन नही जानता। ऐसी अनेकानेक बोस संबंधी सच्ची घटनाएं है जिसमें बोस ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे किए और आत्मनिर्भर भारत का स्वप्न साकार किया।

सुभाष ने स्वीकार भी किया है कि हम भारतीय अपनी वर्तमान दुरवस्था के कारण किसी भी क्षेत्र में संसार के सम्मुख हीन नही है अपितु हमने अंतराष्ट्रीय स्तर पर अपनी योग्यता का गर्जन किया है। " अपनी पराधीनता और वर्तमान दुरावस्था की वजह से, हमारे कवि, साहित्यिक, शिल्पी, वैज्ञानिक, कार्यकर्त्ता, व्यापारी, योद्धा, खिलाड़ी, पहलवान संसार की किसी भी जाति के आगे हीन नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में हम ने अपनी योग्यता का सिक्का जमाया है।"[18]

हमें यह निस्संदेह रूप से स्वीकार करना होगा कि सुभाष ने जो आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त किया उसी पर आज भारत देश–विदेश में किसी से कमत्तर नही अपितु नित्य–नवीन उपलब्धियों को प्राप्त कर पहले पायदान पर पहुँचने के क्रम में है। वर्तमान में भी भारत को आत्मनिर्भर बनाने एवं बनाएं रखने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है, जिसकी संक्षिप्त झलकी इस प्रकार है –

1) प्रधानमंत्री जन–धन योजना – इस योजना का शुभारंभ 28 अगस्त 2014 को किया गया। इसका प्रयोजन प्रत्येक भारतीय परिवार में से कम से कम एक सदस्य को बैंकिंग सुविधाओं का प्रयोग कर उससे अवगत होने व लाभ लेने के संबंध में आत्मनिर्भर बनाना।

2) आत्मनिर्भर भारत रोजगार योजना– इस योजना का प्रारंभ 12 नवंबर 2020 को किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य रोजगार को प्रोत्साहन देना है।

इन योजनाओं से पूर्व व समकालीन योजनाओं में कुटीर ज्योति कार्यक्रम (1988–89) एवं दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना(2014) आदि अनेक योजनाओं व नीतियों का सुचारू रूप से संचालन किया जा रहा है।

निष्कर्ष :–

साराशंतः इतना तो स्पष्ट है कि सुभाष चंद्र बोस की दृष्टि में 'आत्मनिर्भर भारत' एक यशस्वी, कुशल, खुशहाल, कर्मठ एवं उन्नतिपूर्ण है। यह सुभाष चंद्र बोस की कर्मनिष्ठता, एकाग्रता, बधुंत्व की भावना व लक्ष्य प्राप्ति की साधना आदि का ही परिणाम है। बोस स्वयं तो कर्मठता व दूरदृष्टि का गुण रखते ही थे साथ ही सबको अपने जैसा बनाने का प्रयत्न भी करते थे। तभी तो छोटे–छोटे बच्चों से लेकर बुजुर्गें तक ने भी आत्मनिर्भर भारत के लिए पावन कुंड में अपना सर्वस्व होम कर दिया।

संदर्भ सूचीः–

1) भारत–भारती – मैथिलिशरण गुप्त – 49वां संस्करण, 2022,लोकभारती प्रकाशन, पृ. 11
2) बालकृष्ण भट्ट रचनावली – सं.समीर कुमार पाठक,खंड –1, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटरस, दिल्ली, 2015,पृ. 346
3) साहित्यिक सुभाषित कोश – सं. हरिवंशराय शर्मा, राजपाल एंड़ संस,दिल्ली, संस्करण 1997,पृ. 91
4) वही
5) तरुणाई के सपने – सुभाष चंद्र बोस, हिंदी अनुवादक – छेदीलाल गुप्त,प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ,दिल्ली, प्रथम संस्करण –1971, निबंध : देश की पुकार, पृ. 15
6) वही, निबंध – मूल आधारों की चर्चा, पृ. 18
7) वही, पृ. 20–21
8) इतिहास–पुरूष सुभाष – श्री कृष्ण 'सरल', प्रकाशक – प्रतिभा प्रतिष्ठान,संस्करण– 2018,पृ. 36
9) तरुणाई के सपने – सुभाष चंद्र बोस, हिंदी अनुवादक – छेदीलाल गुप्त,प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ,दिल्ली, प्रथम संस्करण –1971,पत्र : अनिचंद्र विश्वास को, मांडले जेल से लिखित, पृ.31–33
10) वही, हरिचरण बागची को लिखित पत्र,पृ. 34–35
11) वही, पृ. 36
12) वही, पृ. 42
13) वही, श्री हट्टा सूर्य पहाड़ी के छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण का अंश,पृ.105
14) वही, हुगली जिला छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण का अंश,पृ. 113
15) वही, पृ. 118
16) वही, लाहौर छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण का अंश,पृ.126–27
17) वही, अमरावती में सम्पन्न मध्य प्रदेश और बरार के छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण का अंश,पृ136
18) वही, श्री हट्टा सूर्य पहाड़ी के छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति पद से भाषण काअंश,पृ. 110

कल्याण कुमार
शोधार्थी
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संपर्क सूत्र – 8802183515
पता– मकान संख्या – 34 आर्य समाज गली
सिरसपुर दिल्ली– 110042
ई–मेल –kumarkalyan078@gmail.com

36

रामचरितमानस की लोकप्रियता

निक्की कुमारी

सारांश

साहित्य का समाजशास्त्र आधुनिक पश्चिमी चिंतन की देन है । यह सिद्धांत साहित्य को देखने का नया दृष्टिकोण प्रदान करता है । पश्चिम में साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य–चिंतन की दूसरी प्रचलित दृष्टियों और पद्धतियों से संवाद और संघर्ष करते हुए विकसित हो रहा है । साहित्य का समाजशास्त्र साहित्यिक आलोचना से भिन्न है । साहित्य के समाजशास्त्र के अंतर्गत गंभीर साहित्य एवं लोकप्रिय साहित्य दोनों आते हैं । गंभीर साहित्य विशेषकर साहित्यिक पाठकों के लिए लिखा जाता है । वहीं लोकप्रिय साहित्य के पाठक हर वर्ग के होते हैं । लोकप्रिय साहित्य का मूल उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना होता है । बौद्धिक वर्ग इस साहित्य को सतही, लुगदी एवं घासलेटी साहित्य कहकर इसकी उपेक्षा करता है जो कि किसी प्रकार से उचित नहीं है । कई बार हम साहित्यिक कृतियों का विश्लेषण करते हैं तो हमें यह ज्ञात होता कि इनमें भी लोकप्रियता का गुण मौजूद है, जिसके अनेक कारण हो सकते हैं ।

'रामचरितमानस' की रचना 16 वीं शताब्दी में हुई थी । यह समय हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है । रामचरितमानस को साहित्यिक कृति का दर्जा प्राप्त है साथ ही यह लोकप्रिय भी है, जिसका एक महत्वपूर्ण कारण राम का मानवरूपी चरित्र है । रामचरितमानस के लोकप्रिय होने का कारण राम (नायक) की संघर्ष–गाथा है जिसे जनसाधारण स्वयं के संघर्ष से जोड़ कर देखता है । निराला जी ने 'राम की शक्तिपूजा' नामक लम्बी कविता में इस संघर्ष को बखूबी व्यक्त किया है–

धिक जीवन का जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।

राम का जीवन संघर्षपूर्ण रहा है । वह राजा बनने के योग्य होने के बावजूद भी 14 वर्षों तक वन में भटकते रहे । बिना किसी सुख–सुविधा के सामान्य व्यक्ति की तरह अपना जीवन व्यतीत किया । रावण से वे युद्ध भी बिना किसी राजसी सेना के जीत गये । राम का व्यक्तित्व आदर्शपूर्ण एवं प्रेरणादायक है । राम इस कथा में लोकनायक के रुप में प्रस्तुत हुए हैं जो कि जनप्रिय हैं तथा आमजन के पहुँच में हैं और उनके दुख–दर्द को समझते हैं । राम अहिल्या को मुक्त करते हैं तथा शबरी के झूठे बेर भी खाते हैं ।

तुलसीदास ने राम के शोक और संघर्ष को व्यक्तिगत नहीं वरन् लोकहित रूप में प्रस्तुत किया है । जिनका इस धरा पर जन्म लेना ही न्याय की जीत है । रावण अन्याय का प्रतीक है, वह सम्पन्न, शक्तिशाली एवं अहंकारी है । यदि राम और रावण की तुलना की जाए तो राम रावण के समक्ष तुच्छ मनुष्य दिखाई पड़ते हैं । फिर भी वे शक्ति की मौलिक कल्पना या शक्ति का निर्माण कर अन्याय पर न्याय की जीत हासिल करते हैं ।

इस कृति में तात्कालीन समाज एवं संस्कृति को बखूबी अभिव्यक्त किया गया है । रामचरितमानस उत्तर भारतीय समाज के सांस्कृतिक अभावों की पूर्ति करता है, वास्तव में तुलसीदास जी इस कृति के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न व्यापारों, संघर्षों एवं नैतिक मूल्यों का विस्तार से वर्णन करते हैं । जिसे जन साधारण स्वयं के जीवन से जोड़ कर देखता है और राम के चरित्र को अपने करीब महसूस करता है । राम को शील, शक्ति और सौन्दर्य के रूप में देखा जाता है । राम का यह रूप तुलसी के काव्य–सौन्दर्य का आधार है और यह एक बेहद महत्वपूर्ण कारण है राम की लोकप्रियता का ।

किसी भी कृति की लोकप्रियता कई शर्तों पर आधारित होती है जैसे वह कृति उस भाषा में रचित हो, जिसमें लोक स्वप्न देखता है । रामचरितमानस तात्कालिक समाज और साहित्य की लोकप्रिय भाषा (अवधी) एवं शैली (दोहा–चौपाई) से सुसज्जित है । जैसा की हम जानते हैं अधिकांश सूफी संतों ने अपनी रचनाएं इसी भाषा एवं शैली में लिखी हैं जो उनके साहित्य की लोकप्रियता का मुख्य आधार है । हम ऐसा भी कह सकते हैं कि रामचरितमानस सूफी साहित्य के लोकप्रिय भाषा व शैली का कमोबेश अनुकरण करती है । रामचरितमानस में संवादधर्मिता का बखूबी प्रयोग हुआ है यह संवादधर्मिता आमजन से भी संवाद करती है । रामचरितमानस की भाषा व शैली कथा से इस प्रकार संगुम्फित है कि वह कहीं भी अपने अलग से होने का आभास नहीं कराती । इस कृति के विषयवस्तु से आमजन पूर्व परिचित है, इसलिये वह अपने को सम्पूर्ण कथा से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं ।

इस कृति की लोकप्रियता का एक अन्य कारण इसका सरलता, सुबोधता एवं गेयता भी है । तुलसीदास ने रामचरितमानस को शब्दों एवं भावों से इस प्रकार संयोजित किया है कि यह एक बार

पढ़ते ही जुबां पर चढ़ जाता है उदाहरण के लिये निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है–

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदऊँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

'राम' चरित्र को लेकर अनेक लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई है । केवल भक्तिकाल को ही देखा जाए तो रामचरित्र पर लिखने वालों की कमी नहीं है परन्तु जिस तरह की लोकप्रियता गोस्वामी जी को प्राप्त हुई, वहाँ आज तक कोई रचनाकार नहीं पहुँच पाया है जिसका एकमात्र कारण रचना के मूल में मानव–मूल्यों का होना भी है । रामचरितमानस में मानव–मूल्य के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं–

राम सत्यब्रत धरम रत सब कर सीलु सनेहु ।
संकट सहत सकोच बस कहिअ ओ आयसु देहु ॥

यह प्रसंग राम के वन गमन का है जब राजा दशरथ राम के स्वभाव के बारे में भरत से कहते हैं । राम सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं । वे सबका शील और सब पर स्नेह रखते हैं । अर्थात् सबका आदर करते हैं (इसलिये पिता के कहने पर वन चले गये) इसलिये तमाम दुःख सह रहे हैं । मानव–मूल्यों की सच्ची पराकाष्ठा तो राम के ही चरित्र में दर्शनीय है । तुलसी ने सेवा धर्म पर जोर देते हुए कहा कि–

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिनु जग जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू । बैरू अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥

वेद, शास्त्र एवं पुराणों में भी सेवा धर्म निहित है एवं सम्पूर्ण संसार भी यह जानता है कि सेवाधर्म बहुत कठिन कार्य है । स्वामी के लिये धर्म, सेवा और स्वार्थ कार्य एक साथ नहीं हो सकते या यूं कहें कि हम स्वार्थी होकर किसी की सेवा नहीं कर सकते । सेवा निस्वार्थ ही होती है । वैर अंधा होता है और प्रेम में किसी की बुद्धि काम नहीं करती है । अर्थात् प्रेम और स्वार्थ दोनों में ही व्यक्ति से गलती होने की संभावना रहती है इसलिये व्यक्ति को इन भावों से तटस्थ रहकर ही कोई निर्णय लेना चाहिये । तुलसी दीनों की सेवा पर बल देते हैं और उनके उत्पीड़न को संसार का सबसे बड़ा पाप मानते हैं–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

रामचरितमानस में केवल राम की कथा ही नहीं है वरन् नीतिपरक दोहों की भी कमी नहीं है जैसे–

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥

रामचरितमानस की लोकप्रियता का कारण इसका सामाजिक स्वरूप भी है । उत्तर भारतीय समाज संयुक्त परिवार में आस्था रखता है । परिवार के किसी व्यक्ति पर किसी भी प्रकार का संकट आता है तो सम्पूर्ण परिवार उसका मिलकर समाधान निकालता है । रामचरितमानस में पारिवारिक समस्याएं, द्वन्द्व एवं दुविधाओं को गहराई से दर्शाया गया है जिससे भारतीय समाज के लोगों की आस्था इस कृति पर और भी बलवती हो जाती है । तुलसी के चारों भाइयों का प्रसंग द्रष्टव्य है–

अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास ।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास ॥

तुलसीदास चारों भाईयों को परस्पर देखने, वार्तालाप करने, उनके मिलने, परस्पर प्रेम करने, हँसने और आपसी भ्रात प्रेम को (मानस सरोवर) जल की मधुरता और सुगन्ध के समान ही माना है । अर्थात् इस भ्रात–प्रेम के द्वारा इस सरोवर में स्नान किया जा सकता है । जब राम के राज्याभिषेक की खबर को सुनकर पुरे अयोध्या में बधावे बजने लगते हैं तो उस समय राम को अपने प्रिय भरत की याद आती है–

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । दूहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिन राती । अंडान्हि कमठ हृदउ जेहि भांति ॥

भरत के समान मुझे कौन प्यारा है अर्थात् भरत सर्वप्रिय हैं । इस शकुन (राज्याभिषेक) का यही फल है, कोई दूसरा नहीं । राम भरत को ऐसे याद करते हैं जैसे कछुए का हृदय अंडे में रहता है । भरत के अलावा जो और भाई हैं उनको भी राम अपने राज्याभिषेक के दौरान याद करते हैं–

जनमें एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ॥

राम सोचते हैं कि हम सभी भाइयों का जन्म एक साथ हुआ, हम सभी का भोजन, शयन, खेल–कूद, कनछेद, यज्ञोपवीत और विवाह सारे धार्मिक रीति–रिवाज साथ में हुए–

बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥

इन सभी अच्छी बातों में बस एक यह अनुचित है कि सब भाइयों को छोड़कर मेरे बड़े होने के कारण मेरा राज्याभिषेक हो रहा है । यह प्रसंग राम के भातृ–प्रेम को व्यंजित करता है ।इसके अतिरिक्त धर्म में आस्था रखने वाले लोगों की आस्था के कारण भी इस कृति को पढ़ा जाता है या यूं कहें कि यह धार्मिक काव्य होने के कारण भी लोकप्रिय है ।

किसी भी कृति को लोकप्रिय होने की कई शर्ते होती है जैसे वह कृति उस भाषा में रची गयी हो, जिसकी पहुँच आमजन तक हो । तुलसी ने मानस की रचना अवधी भाषा में की है जो तात्कालिक समय कि साहित्यिक भाषा (लोकप्रिय) थी । इसी भाषा में सूफी संतों ने अपने ग्रंथों का प्रणयन किया था । इन ग्रंथों की लोकप्रियता सर्वविदित है । तुलसी के अनुसार–

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥
अर्थात् स्यामा गाय के काली होने के बावजूद भी लोग उसके दूध को सफेद और गुणकारी समझ कर पीते हैं उसी प्रकार राम–सीता के यश को लोग ग्राम्य (अवधी) भाषा होने पर भी चाव से सुनते हैं । अर्थात् य्दि किसी वस्तु का गुण अच्छा हो तो उसके रूप से उस पर कोई खास फर्क नहीं पड़ता ।

उस कृति में संवादधर्मिता का बखूबी प्रयोग किया हो, उस कृति की शैली एवं कला इस प्रकार से गढ़ी गई हो जो उसके होने पर भी होने का आभास नहीं कराती हो । उस कृति की विषय वस्तु ऐसी हो जिसे आमजन पहले से जानता हो । कृति को लोकप्रिय बनाने में उसका प्रचार–प्रसार एवं संरक्षण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' को साहित्यिक कृति का दर्जा प्राप्त है साथ ही यह लोकप्रिय भी है । लोकप्रियता के समाजशास्त्र के आलोक में 'रामचरितमानस' का अध्ययन करें तो इसमें लोकप्रियता की अनेक विशेषता समाहित नजर आती हैं । जैसे 'रामचरितमानस' की प्रकाशकीय संरचना जिसकी जद में लोक समाहित है । जिसके कारण इस कृति की पहुंच समाज के गरीब और अमीर दोनों तबकों तक है । लोकप्रिय सहित्य पर विचार करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि समकालीन सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति लोकप्रिय साहित्य रूपों के माध्यम से होती है ।

यदि हम रामचरितमानस को लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन व्यवस्था कि दृष्टि से देखे तो हमें यह ज्ञात होता है कि रामचरितमानस कि प्रकाशन व्यवस्था ने इसे लोकप्रिय बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है । रामचरितमानस की रचना 1574 ई. में हुई, यह समय हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है । आरंभ में तो इस कृति की नकल हस्तलिखित ही होती रही होगी तथा इसे मौखिक परंपरा के द्वारा लोक में जीवित रखा गया होगा । 'रामचरितमानस का सर्वप्रथम मुद्रण फोर्ट विलियम कॉलेज के संरक्षण में बाबू राम पंडित के संस्कृत प्रेस से 1811 ई. कलकत्ता में हुआ । यह पाँच सौ पृष्ठ का सदल मिश्र द्वारा लिप्यंतरित संस्करण था ।' इसके बाद कलकत्ता से ही 1831 ई. में 444 पृष्ठों का तुलसी–रामायण बिहार प्रेस द्वारा मुद्रित हुआ । 1832 ई. कानपुर, 1849 में आगरा, 1851 में मेरठ, 1853 में बनारस, 1881 ई. सुखदेव लाल की टीका एवं 1821 ई. में बैजनाथ कुर्मी की टीका के साथ नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मानस का मुद्रण हुआ । इसी समय इस कृति का मुद्रण गुरुमुखी, बंगला, उड़िया एवं गुजराती लिपि में हो रहा था जो की इसके लोकप्रियता को दर्शाती है । 1889 ई. तक खड्ग विलास प्रेस पटना से मानस के 126 संस्करण निकल चुके थे । बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में गीता प्रेस की स्थापना के कारण इस कृति के मुद्रण व प्रचार में भारी वृद्धि हुई । हनुमान प्रसाद पोद्दार ने कल्याण पत्रिका निकालने के लिए ही गीता प्रेस की स्थापना की थी । आश्चर्य की बात यह है कि कल्याण पत्रिका ने मानसांक अगस्त 1938 ई. प्रकाशित किए जिसके चालीस हज़ार छह सौ (40,600) प्रतियों वाला यह विशेषांक हाथों–हाथ बिक गया । जिसके बाद गीता प्रेस ने रामचरितमानस को कई आकारों व मूल्यों के अनुसार इसका मुद्रण कराना शुरू कर दिया । रामचरितमानस का सार्वधिक प्रामाणिक टीका विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की मानी जाती है । यदि गीता प्रेस के आमदनी की बात की जाए तो इसकी आमदनी का चालीस प्रतिशत सिर्फ रामचरितमानस की बिक्री से आता है ।

रामचरितमानस का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, लोक भारती प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, काशीराज ट्रस्ट, वेंकेटेश्वर प्रेस द्वारा भी किया गया है परंतु जो प्रसिद्धि हनुमान प्रसाद पोद्दार की टीका एवं चिम्मनलाल गोस्वामी तथा नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा पाठशोधित गीता प्रेस को मिली है वहाँ तक किसी प्रकाशन की पहुँच नहीं हो सकी है । गीता प्रेस ने रामचरितमानस के छपाई में विभिन्न रंगों व रवि वर्मा के चित्रों का प्रयोग किया है जो इसे और भी आकर्षक बनाती है । रामचरितमानस का 'मझला साइज' गाढ़े संतरी रंग में मुद्रित है जिसमें पुस्तक के ऊपर राम सीता के साथ हनुमान है जो राम के अयोध्या वापस आने पर, दरबार का चित्र प्रतीत होता है । जिसका मूल्य एमाजॉन पर 194 रुपये है । रामचरितमानस 'सचित्र सटीक मोटा टाइप' पुस्तक गाढ़े लाल रंग में है तथा इसके पुस्तक का मुख्य कवर भी मँझले कवर की भांति ही है । परंतु इस पुस्तक में चित्रों की संख्या मँझले साइज से अधिक है एवं इस पुस्तक की कीमत एमाजॉन पर 539 रुपये है । रामचरितमानस के साथ इसके अलग–अलग कांडों को भी पुस्तक रूप दिया गया है जो इस पुस्तक की मांग पार भी आधारित है । इसके साथ ही अनेक मूल्यों तथा अनेक रूपों में रामचरितमानस का प्रकाशन होता है । जिसके मूल में रामचरितमानस को व्यापक जन समुदाय तक पहुंचाने की मंशा निहित है । यही कारण रहा है कि सस्ते और आकर्षक चित्रों से सुसज्जित होने के कारण रामचरितमानस उत्तरभारत के अधिकांश घरों में प्राप्य है ।

रामचरितमानस को लोकप्रिय बनाने में उसका प्रचार–प्रसार एवं संरक्षण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । इन सब कारकों में 'प्रकाशन व्यवस्था' का कृति को पाठकों तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण स्थान है । किसी भी साहित्यिक कृति एवं लोकप्रिय कृति में यह सबसे प्रमुख अंतर यही है कि लोकप्रिय कृति कि छपाई व

बिक्री भारी मात्रा में होती है जैसे गुलशन नन्दा के उपन्यास 'झील' और 'पार' का पहला संस्करण ही पाँच लाख प्रतियों का छपा था । जबकि प्रेमचंद के 'गोदान' या फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के भारत में अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों प्रतियों की कुल संख्या पाँच लाख नहीं होगी ।

17 वीं शताब्दी में रामचरितमानस के प्रचार–प्रसार में देसी हिन्दू रजवाड़ों एवं 'रामानंदी सम्प्रदाय का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इन देसी रजवाड़ों ने रामचरितमानस की असंख्य प्रतिलिपियां, टीकाएँ एवं लघुचित्र तैयार करवाये । रामानंदी सम्प्रदाय के दो साधुओं (नारायणदास उर्फ मेघा भगत तथा कष्ठजिह्वा स्वामी) ने रामचरितमानस को प्रवचन द्वारा घर–घर तक पहुंचाया । रामचरितमानस के प्रचार–प्रसार में इलेक्ट्रोनिक मीडिया के अंतर्गत आकाशवाणी, धारावहिक, संगीत एवं फिल्मों का भी महत्वपूर्ण योगदान है । मानस की पाडुंलिपियों को चित्रों द्वारा सजाया भी गया जो उसके आकर्षण का केन्द्र रहीं हैं ।
१७ वीं शताब्दी के मध्य से कश्मीर से लेकर बंगाल तक प्रमुख चित्रलिपि पांडुलिपियां तैयार की जाती रहीं हैं ।

सहायक ग्रंथ–

१. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास(टी. हनुमान प्रसाद पोद्दार), गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१२।
२. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २०११ ।
३. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, २०१४ ।
४. रामचरितमानस पाठरू लीलारू चित्ररू संगीत, रमण सिन्हा, सं पुरूषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०११ ।
५. लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, २०११ ।
६. रामकथा उत्पत्ति और विकास, कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१५ ।
७. तुलसीदास और उनकी कविता, रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर प्रयाग, १९३७ ।
८. रागविराग, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सं. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१६ ।

- राग विराग, पृ.१०३।
- बालकाण्ड, पद सं.१८ ।
- अयोध्याकाण्ड, पद सं.२६२ ।
- वही, पद सं.२६३ ।
- उत्तरकाण्ड, पद सं.४१ ।
- बालकाण्ड, पद सं.३ ।
- वही, पद सं. ४२ ।
- अयोध्याकाण्ड, पद सं.७ ।
- वही, पद सं.१० ।
- वही ।
- बालकाण्ड,पद सं.१० ।

निक्की कुमारी
पीएच.डी हिन्दी
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
मो. 9871471357
kumarinikki0669@gmail-com

37

दिनकर का नारी के प्रति दृष्टिकोण

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

भारतीय संस्कृति एवं जीवन में नर व नारी दोनों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यदि एक कर्म है, तो दूसरा कर्माधार। लेकिन कितनी दुर्भाग्य की बात है कि भारतीय दर्शन में चिन्तन का आधार केवल पुरुष ही रहा है, स्त्री की स्थिति उसमें उपेक्षित ही रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति दयनीय है, वह घर की चारदीवारी में बंद घूंघट में लिपटी केवल वासना की प्रतिमूर्ति है। भारतीय आलोचकों की दृष्टि भी नारी के कामिनी, दैवी या मानवी लोचनों से बाहर न जा सकी। दिनकर नारी की दयनीय स्थिति से अवगत थे। उनका ह्रदय नारी की पीड़ा को देखकर करूणा से भर जाता है। वे नारी को व्यवहार जगत् में एक स्वतंत्र इकाई के रूप में लाने के इच्छुक लगते हैं। उनका मानना है कि दोनों के अस्तित्व अलग–अलग हैं और अपने वैयक्तिक विकास के लिए उत्सुक हैं। इसलिए विकास के अवसर केवल पुरुषों को ही नहीं, नारियों को भी मिलने चाहिए। यदि मन मिलता हो, तो ठीक है, किंतु पाँवों पर पीयूष धार बनकर रहना क्या? और हँसकर पुरुष के अत्याचार सहने में कौन– सी बड़ाई है? ऐसी स्थिति में तो नारी प्रेम के नकली सूत्र को तोड़ देगी।

सर्वप्रथम रेणुका में दिनकर की नारी भावना का बीजारोपण हुआ था। इसमें संकलित राजा–रानी कविता इनकी नारी भावना का प्रतिनिधत्व करती है। इसमें नारी के भावात्मक पुनर्मुल्यांकन का प्रयत्न है। नारी पुरुष की प्रेरणा है, पुरुष के जीवन की सार्थकता इस प्रेरणा से स्फूर्ति और ऊर्जा लेने में ही है। इसमें नारी विषयक दृष्टिकोण में नवीनता नहीं थी, वस्तुतः यह परम्परावादी ही था ।

रसवन्ती में भी नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण परंपरावादी ही रहा है। नारी शीर्षक से उसमें दो रचनाएँ संग्रहीत हैं। नारी संबंधी प्रथम कविता में छायावादी शैली में नारी की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। जिस दिन से नारी का जन्म हुआ है, उसी दिन से कवि के गीतों ने भिक्षुक बनकर उससे राग कणों की याचना की है। निर्जीव स्वप्न उसी दिन से सजीवता को प्राप्त हो गए हैं। मूर्तिकार ने उसकी मूर्ति बनाने में अपनी कला को धन्य समझा है तथा ज्ञानियों ने अपनी सिद्धि पायी है–

सृष्टि के नाभि पद्म पटनार,
तुम्हारी मिली मधुर रस मूर्ति

समस्त सृष्टि का सौंदर्य नारी की चेष्टाओं का ही प्रतिबिम्ब है। अजेय पुरुष नारी के पदतल में नत हो गया। पुरुष ने अपनी समस्त वीरता के द्वारा नारी सौंदर्य का वरण किया है। पुरुष की समस्त क्रियाएँ नारी के इर्द– गिर्द ही नियोजित होती हैं। प्रिया रूप में अधरामृत दान करके नारी ने पुरुष की शुष्कता में एक स्त्रोतस्विनी प्रवाहित की, तो माँ के रूप में सुरसरि के समान पवित्र दुग्ध से उसका पोषण किया–

तुम्हारे अधरों का रस–प्राण
वासना तट पर पिया अधीर
अरी ओ माँ! हमने है पिया
तुम्हारे स्तन का उज्ज्वल क्षीर। 14

नारी नामक शीर्षक दूसरी कविता में कुछ सामाजिक स्पर्श मिलता है। इसमें आधुनिकता में ग्रहस्थी की उपेक्षा, महत्वकांक्षाओं की भीड़, मातृत्व की उपेक्षा, पुरुष के साथ स्पर्धा एवं प्रतियोगिता और पुरुष पर विजय प्राप्त करने के लिए रूप–सज्जा के प्रति जागरूकता के तत्त्व मिलते हैं। नारी का यह रूप परंपरागत नारी में बदलाव को दृष्टिगोचर करता है। कवि की दृष्टि सदियों से परंपरा एवं रूढ़ियों से बँधी नारी में परिवर्तन देख कर सहम जाती है

अपना चित्र विविध रंगों में आप सृजन करती हो,
और जांचती हो फिर उसको स्वयं पुरुष के दृग से।

आधुनिक नारी में पुरुष को अपने केश–पास में बांध कर रखने की महत्त्वाकांक्षा बढ़ती जाती है। यहां नारी पुरुष की प्राण प्रेरणा न बनकर आकर्षक करने वाली तितली बन गई है। दिनकर जी नारी के मातृत्व गुण का सम्मान करते हैं तथा नारी की पूर्णता माँ बनने में स्वीकार करते हैं; यथा –ह्रदय नग्न, तो सात पटों के भी आवरण वृथा हैं, वसन व्यर्थ, यदि भली भाँति आवृत भीतर का मन। कवि दिनकर रूपवती नारी को विश्व का सबसे बड़ा वरदान एवं प्रकृति की सुंदरतम कृति मानते हैं; यथा –

नारी की पूर्णता को स्वप्नरूप करने में,
करते हैं साकार पुत्र ही, माता के सपने को ।

नग्नता नामक कविता में नग्नता और लज्जा का आधुनिकता के संदर्भ में विश्लेषण किया है। नारी के सौंदर्य विद्यायी गुणों में लज्जा भी एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। लज्जा के आवरण में नारी का सौंदर्य निखरता है, परंतु दिनकर ने आधुनिकता के संदर्भ में

लज्जा का संबंध वस्त्र से नहीं, मन से माना है। मन यदि नग्न है, तो वस्त्र व्यर्थ है और मन की सलज्जता आवरण नहीं ढूँढती–

यह तुम्हारी कल्पना है प्यारा कर लो..

रूपसी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर।

पुरुष के सामने नारी सदा रहस्यमयी बनी रही है। कहते भी हैं कि नारी के हृदय की थाह कोई नहीं पा सकता। कवि उर्वशी के माध्यम से नारी का समस्त रहस्य खोलना चाहते हैं, परंतु उलझन जटिल से जटिलत्तर होती जाती है। नारी पुरुष के सामने रहस्यमयी ही बनी रही। रहस्य का अवगुण्ठन उठता है और न जाने कितने अन्य आवरण गिरते जाते हैं– पर रहस्य फट जाने पर भी रही रहस्यमयी तुम, मायावरण दूर कर देने पर भी तुम माया हो। दिनकर का मानना है कि पुरुष जीवन के जिन उच्चतर मूल्यों की सिद्धि तपस्या और बुद्धि के बल से प्राप्त करता है। नाटी में मूल्यों की प्रकृतिक प्रतिपति अना। नारी के ये मूल्य जिस दिन पुरुष में आ जाते हैं, तो वह पुरुष नहीं महापुरुष बन जाता है। –

तापस, प्रज्ञावान पुरुष जो सिद्धि लाभ करते हैं,

अनायास ही सुलभ शक्ति वह रूपमति नारी को।

कार संक्षेप में हम कह सकते है कि दिनकर ने काव्य में नारी के सभी पक्षों पर गहन चिंतन और विश्लेषण का चित्रांकन किया है। वे नारी को सौंदर्य–मूर्ति, गुणों से परिपूर्ण, जीवन के उच्च मूल्यों से युक्त, रहस्यमयी एवं देवी स्वरूपा मानते हैं। उसमें देवी के सौंदर्य, शांति एवं कविता आदि तीनों गुण समाहित हैं–

वह नारी है केवल उसके ही पास बन्धु । सौंदर्य, शांति, कविता, तीनों का मिश्रण है।

निष्कर्ष

निश्चय ही दिनकर के साहित्य की नारी चेतना में मानव को जन्म देकर, स्नेहपूरित कर पयश्विनी के रूप में अलौकिक दिखाई देती है।

संदर्भ–सूची :

1. डॉ0 सावित्री सिन्हा, युग चारण दिनकर, पृ. 201
2. दिनकर, पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त पृ. 152
4. दिनकर, रसवन्ती, पृ. 36
5. दिनकर, रसवन्ती, पृ. 57
6. दिनकर, रसवन्ती, पृ. 62
7. दिनकर, श्नील कुसुम, पृ. 62
8. दिनकर, उर्वशी, पृ. 40
9. दिनकर, उर्वशी, पृ. 200
10. दिनकर, उर्वशी, पृ. 114
11. दिनकर, सीपी और शंख, पृ. 40

डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा
एसो. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
गो. ग.द. सनातन धर्म, स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
पलवल (हरियाणा

38

भरत और ब्रेख्त के सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन : अभिनय संदर्भ

अजीत कुमार सिंह

सारांश

रंगमंच समाज का आइना होता है। समाज का यथार्थ तो प्रस्तुत करता ही है, वहीं समाज को दृष्टि भी देता है। रंगमंच काल विशेष से प्रभावित होता है ; जो रंगमंच अपने समय से आगे को प्रस्तुत नही कर पाता, वह समाज को दिशा नही दे पाता है और सिर्फ मनोरंजन का साधन बनके रह जाता है। लेकिन जो रंगमंच समाज की सोच को मनोरंजन के साथ – साथ आगे की दृष्टि प्रदान करता है और आलोचनात्मक चेतना उत्पन्न करता है, वास्तव में वह सबसे ज्यादा सार्थक रंगमंच होता है। प्रस्तुत शोध इसी संदर्भ में भरत और ब्रेख्त के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन अपने स्वरूप में विश्लेशणात्मक है।

बीज शब्द –पार्थक्य प्रभाव, एपिक शैली, एपिक थियेटर, भारतीय लोकनाट्य, यथार्थवादी रंगमंच, साधारणीकरणभरत तथा ब्रेख्त का अभिनय सिद्धांत –

बर्तोल्त ब्रेख्त जिस समय रंगमंच पर सक्रिय हुए वह रंगमंच पर यथार्थवादी मुहावरे के एकाधिकार का समय था। वास्तव में समकालीन रंगमंच पर ब्रेख्त का अवतरण एक क्रान्तिकारी घटना थी। ब्रेख्त ने यूरोप के रंगमंच की हालत को ही नही बदला, उसके सौंदर्यशास्त्र को भी नया रूप दिया। ब्रेख्त समकालीन रंगमंच पर हावी अरस्तु के सिद्धान्तों–संकलनत्रय विरेचन आदि तथा उन्हे संभव करने के लिए सृजित प्रोसेनियम रंगमंच के दायरे से बाहर निकालना चाहते थे। ब्रेख्त ने अरस्तु से चली आयी नाट्य परंपरा पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए दर्शक एवं अभिनेता के बीच की एक अदृष्य चौथी दीवार को ढहा दिया, जिसे ढाई हजार साल की उस मजबूत परंपरा ने खड़ा किया था। ब्रेख्त रंगमंच को अत्यंत गंभीर महत्वपूर्ण और सार्थक सामाजिक कार्य मानते थे। उनका मानना था कि ''रंगमंच को शिक्षाप्रद होना होगा। तेल, बढते मूल्य, युद्व, सामाजिक संघर्श, परिवार, वर्ग, गेहूँ, सब्जी और नमक तेल आदि को रंगमंच का विशय बनाना होगा; लोगों के क्रियाकलापों को, सामाजिक गतिविधियों को आलोचना का विशय बनाना होगा। सही और गलत का भेद रंगमंच पर उपस्थित करना होगा। रंगमंच पर यह दिखाना होगा कि किस तरह कुछ लोग जान बूझकर व्यवहार करते हैं और समाज का बहुलांश बिना समझे–बूझे जीता है। रंगमंच को दार्शनिक–चिंतको के हाथों में लाना होगा, ऐसे चिंतकों के हाथों में जो केवल जागतिक व्यापार ही दिखलाकर छुट्टी न पा लें, बल्कि वह बताएँ कि उसमें परिवर्तन कैसे आएगा ही।''[1] ब्रेख्त मानते थे कि नाटक ऐसा हो जो दर्शकों को तटस्य प्रेक्षक बनाकर उसकी चेतना जागृत कर दे। इसलिए नाटक को अपने पात्रों के साथ दर्शक का तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास नही करना चाहिए। दर्शक को मूर्च्छित अवस्था में न ले जाकर उसे दृष्टा रूप में सजग, सचेत बनाना चाहिए ताकि वह सामाजिक समस्याओं, सामाजिक गतिविधियों का आलोचक बन सके। उन्होंने अपने इस एपिक थियेटर की अवधारणाओं को बहुत गहराई से आजीवन अपने रंगकर्म का हिस्सा बनाए रखा और इसे जिया। ''ऐसा नही है कि एपिक शब्द का उपयोग करने वाले ब्रेख्त प्रथम व्यक्ति थे। अ–अरस्तु नाटकों का बीज, ब्रेख्त से बहुत पहले जर्मन नाट्यकर्म में पड़ चुका था। लेंझ, बुखनर, हॉटमान, ग्राब, बेडेकिंड जैसे कवि/नाटककारों ने अपनी रचनाओ में एपिक शैली का प्रयोग किया।''[2] लेकिन गौर करने वाली बात यह कि एपिक थियेटर जितने व्यापक रूप से ब्रेख्त के यहाँ आया वह अन्य कहीं इस स्वरूप में गैर–मौजूद है।

चूँकि, ''ब्रेख्त रंगमंच को अत्यंत गंभीर, महत्वपूर्ण और सार्थक सामाजिक कार्य मानते थे'',[3] इसलिए जब इन्होने देखा और महसूस किया कि विज्ञान और तकनीक के प्रसार और प्रभाव से जीवन–शैली बदल रही है तो बदलाव की इस प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए नये रंगमंच की जरूरत को उन्होंने समझा और ड्रामेटिक थियेटर (नाटकीय रंगमंच) की जगह 'महाकाव्यात्मक रंगमंच' (एपिक थियेटर) को स्थापित किया। उनका मानना था कि विश्व में किसी चीज को जब स्वाभाविक और सहज मान लिया जाता है तो इसका मतलब है कि उसे समझने के अन्य प्रयास नही हुए। यथार्थवादी रंगमंच तथा उसकी प्रविधियाँ ऐसे ही सहज मान ली गईं थी। यथार्थवादी रंगमंच का जोर दर्शकों के दिमाग की जगह इनकी भावनाओं को सम्मोहित करने पर था। इसके लिए वह यथार्थ का भ्रम रचता था, जिसमें दर्शक कथा एवं पात्र से अपना तादात्म्य महसूस करते थे और क्लाइमेक्स तक पात्र की समस्या का हल पा लेते थे। ब्रेख्त ने महाकाव्यात्मक रंगमंच में दर्शक को प्रेक्षक में बदल दिया जो नाटक को नाटक की तरह एक आलोचकनात्मक दूरी से देखता था। वह सत्य को सहज रूप में देखने की बजाय उसे एक अन्य कोण से देखता था। महाकाव्यत्मक रंगमंच का नाटकीय रंगमंच से

अंतर करते हुए उन्होंने बताया कि महाकाव्यात्मक रंगमंच खेला जाता है और नाटकीय रंगमंच लिखित शब्दों से संचालित होता है। एपिक थियेटर में दर्शकों के सामने की आभासी चौथी दीवार गिर जाती है और वह सही मायनों में खेल देखता है जिसमें स्थितियाँ, उनकी पूरी पृष्ठभूमि उपस्थित होती है, विरोधी और संगत छवियाँ एक साथ मौजूद होती हैं। इसमें कथावस्तु की जगह आख्यान केन्द्र में होता है इस आख्यान का विकास रैखिक न होकर वक्र होता है। वहीं अगर अभिनेता के बारे में बात करें तो ब्रेख्त के रंगमंच का एक मूल सूत्र अभिनेता द्वारा अपनी भूमिका से अलग होकर दर्शक को सीधे संबोधित करना है। हमारे रंगमंच की दुनियाँ मे करीब तीन हजार साल पहले से यह चीज मौलिक रूप से मौजूद रही है और परम्परागत भारतीय नाट्य में अभी भी देखी जा सकती है। इस देश में नाटक की शुरुआत प्रस्तुतकर्ता द्वारा श्रोता या प्रेक्षक से सीधे बातचीत के द्वारा ही हुई। संस्कृत रंगमंच की हजारों वर्श की परम्परा के जीवित अवशेष कूडियाट्टम में सूत्रधार तथा विदूशक मूल नाटक के साथ काफी आजादी लेते हुए दर्शकों से वार्तालाप करते रहते हैं, एक नाटक की एक प्रस्तुती में केवल विदूशक का संबोध ही कंई दिनों तक चलता रहता है। हमारे लोकनाट्यों के कई रूपों में अभिनेता अपने अभिनय में अपनी भूमिका की व्याख्या दर्शक के आगे करने लगता है। यही नहीं, वह उस भूमिका के बारे में गाये जाने वाले समूह गीत में भी शामिल हो जाता है और उसके बाद फिर अपनी भूमिका में लौट आता है। ब्रेख्त ने अभिनेता के लिए इसी स्थिति को आदर्श माना है जहाँ वह चरित्र से अपने को पृथक कर ले। अभिनेता के लिए कतई जरूरी नही की वह खुद को वैसा ही प्रदर्शित करे, जैसा चरित्र उसे अभिनित करना है। उसे सिर्फ उस चरित्र को मंच पर बखान करना है, उसी तरह जिस तरह किसी पुस्तक में उसका वर्णन किया जा सकता है।

सूत्रधार के हस्तक्षेप तथा अभिनेता द्वारा दर्शक से सीधे साक्षात्कार से हमारी परंपरा में ठीक वह चीज पैदा होती है, जिसे ब्रेख्त ने पार्थक्य प्रभाव (एलिनेशन–इफेक्ट) कहा है। यह पार्थक्य–प्रभाव ब्रेख्त के रंग–दर्शन का मूल आधार है, जिसके द्वारा उसने यूरोप के रंगमंच की समूची परिकल्पना को बदल दिया।

ब्रेख्त की रंगमंचीय परिकल्पनाओं, सौंदर्यशास्त्रीय सिद्वांतों तथा अभिनय पद्धतियों का परंपरागत भारतीय नाट्य से साम्य एकदम स्वाभाविक है। खुद ब्रेख्त ने भी यह स्वीकार किया है कि उनके रंगमंच पर नया कुछ भी नही है, जो प्रयोग उसने किए हैं, वे हिंदुस्तान, जापान और चीन के रंगमंच पर सदियों पहले हो चुके । ब्रेख्त एशियाई रंग परंपरा से प्रभावित भी थे। यही कारण है कि ब्रेख्त ने रंगमंच का जो शास्त्र गढ़ा है, वह अनेक बातों में नाट्यशास्त्र के बहुत निकट है, जिसे भरत आज से करीब हजार वर्ष पूर्व लिख चुके थे। भरत ने काव्य और नाटक में अंतर नही माना है और हमारी पारंपरिक रंगचेतना काव्य और नाटक को अलग–अलग विधाओं के रूप में देख भी नही सकती थी, क्योंकि हमारे नाटक का बीज काव्य पाठ में निहित रहा है। ब्रेख्त ने अरस्तु के समय से चले आ रहे नाटक तथा कविता को अलग–अलग मानने वाले ड्रामेटिक थियेटर का विरोध करते हुए अपने रंगमंच को उसकी तुलना में एपिक थियेटर या महाकाव्यात्मक रंगमंच कहना पसंद किया, क्योंकि भरत की परंपरा की तरह उसमें कविता का पाठ, कथा का बखान या नैरेशन का तत्व मौजूद है। भरत और ब्रेख्त दोनों दर्शक और अभिनेता को वस्तुजगत से परे किसी दूसरी दुनिया में ले जाने के विरोधी हैं । ब्रेख्त ने दर्शक के मन में यह भ्रमजाल पैदा करने की कड़ी आलोचना की है कि वह कुशल अभिनेताओं द्वारा काफी रिहर्सल के बाद तैयार कर के प्रस्तुत किया जाने वाला प्रदर्शन नही, बल्कि सचमुच की घटनाएँ देख रहा है। भरत की परम्परा भी यह मानती है कि अभिनेता को खुद के राम, दुश्यंत आदि होने का भ्रम पैदा करने की जरूरत नहीं, उसे उनकी चरित्रगत विशेषताओं को साकार करना है। इसलिए भरत और उनके अंभिनव आदि व्याख्याकारों ने नाटक की प्रस्तुति को असली दुनिया की नकल और तज्जनित भ्रम मानने पर आपत्ति की है। रसास्वाद की भ्रममूलक व्याख्या का भी इन आचार्यो ने विरोध किया। भरत और ब्रेख्त दोनों जहाँ मंच को किसी भी जादू और करिश्में से भरी चीज से बचाना चाहते थे वहीं दर्शकों को भी एक सम्मोहन–भरे तनाव से गुजरने देने से रोकने के पक्षधर थे। इसके साथ ही ब्रेख्त प्रेक्षक के द्वारा मंच पर प्रस्तुत घटनाओं और चरित्रों से तादात्म्य के भी विरोधी है। यह विरोध साफ तौर पर स्पष्ट करता है कि ब्रेख्त के महाकाव्यात्मक रंगमंच में अभिनेता की भूमिका से साधारणीकरण के बजाय दर्शक विपरीत भावना का अनुभव करता है।

रसानुभूति के सिद्धान्त के बारे में कई बार भ्रम खड़ा कर दिया जाता है कि उसमें प्रेक्षक का चरित्र तथा घटनाओं के साथ तादात्म्य आवश्यक है जब कि स्थिति इसके विपरीत है। भरत और उनकी परम्परा के सभी आचार्यों का यही आशय रहा है कि प्रेक्षक यदि तादात्म्य का अनुभव करेगा, तब रसानुभूति होगी ही नही। ब्रेख्त की ही तरह हमारे यहाँ भी नाट्यानुभव के लिए पार्थक्य एक बुनियादी शर्त है। अभिनेता अपने आपको वास्तविक राम समझने लगे, तो वह अभिनय कर ही नही सकेगा। दर्शक भी यदि राम के साथ तादात्म्य अनुभव करे तो वह नाटक के रस से वंचित रहेगा। भरत के प्रथम व्याख्याकार लोल्लट ने कहा था कि प्रेक्षक अभिनेता में राम आदि का अनुसंधान करता है। अनुसंधान अपने–आप में एक

पार्थक्यजनित प्रक्रिया है, दर्शक राम से तटस्थ होकर नट में राम का अनुसंधान कर सकता है। जहाँ तक कलासर्जन और कलास्वाद की बात है तो ये प्रक्रियाएँ इतनी जटिल और मिश्रित हैं कि इनमें पार्थक्य की अनमिति ही सर्वोच्च नही मानी जा सकती। उनकी जटिल बनावट में पार्थक्य के साथ–साथ तादात्म्य का भी उतना ही योग रहता है। यही कारण है कि भरत के साथ–साथ उनकी परम्परा के आचार्यों ने अभिनेता के मूल पात्र से और प्रेक्षक के नाटक की दुनिया से पार्थक्य बनाए रखने पर बहुत जोर नही दिया। अभिनेता रचना के स्तर पर मूल पात्र की मनःस्थिति को उसके साथ एकाकार होकर जीता है, तो दूसरे उससे अलग होकर उसे अभिव्यक्त करता है। यही स्थिति दर्शक के साथ है। ब्रेख्त ने भी नाटक के प्रस्तुतीकरण के समय अभिनेता की ओर से तथा उसके अवलोकन में प्रेक्षक की ओर से तादात्म्य की संभावना और अनिवार्यता को नकारा नहीं है, अलबत्ता तादात्म्य की बात को बहुत जोर देकर नही कहते। इसका कारण भी स्पष्ट है। ब्रेख्त ने अरस्तु की हजारों वर्ष पुरानी जिस परम्परा के खिलाफ मोर्चा लिया था, उसमें तादात्म्य पर बल देने में अति ही कर दी गई थी। अभिनेता और प्रेक्षक दोनों से अपने विवेक और अपनी इयत्ता को तिलांजलि देकर नाटक की दुनिया से तदाकार होने की अपेक्षा की जाती थी।

''पार्थक्य प्रभाव (एलिनेशन इफेक्ट) अथवा ए–इफेक्ट से ब्रेख्त का तात्पर्य था कि दर्शक नाटक की जानी पहचानी स्थितियों को लेकर सवाल उठाएँ और इन्हें नई सोच और नई दृष्टि से देखने की शुरूआत करें।''[12] अर्थात ब्रेख्त ने अपने रंगमंच पर पार्थक्य–प्रभाव के द्वारा प्रेक्षक की आलोचनात्मक बुद्धि और विवेक के स्वातंत्र्य को प्रतिष्ठित किया। संस्कृत नाटकों के साथ भी भरत की परंपरा के तथा लोकमंच के कलाकारों ने इस तरह के प्रयोग किए। संस्कृत नाटक की शास्त्रीय परंपरा के रंगमंच– कुडियाट्टम में ठीक उस समय जब नायक दुःख और करूणा में डूबा विलाप करता हुआ कोई अत्यंत गंभीर संवाद बोलता है, तो विदूशक अपने समय की या अपनी घर–गृहस्थी की कोई हल्की–फुल्की बात पर उसे पैरोडी में कहकर सारे वातावरण को खुशनुमा वातावरण में बदल देता है। भारतीय लोकनाट्य– तमाशा, भवाई, माँच, स्वांग आदि में भी यह प्रक्रिया अक्सर देखी जा सकती है।

निष्कर्ष –

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि ब्रेख्त का रंगमंच बहुत हद तक एशिया के रंगमंच से प्रभावित रहा है। यह बात अलग है कि ब्रेख्त के रंगमंच के सिद्धान्त में उनका अपना भी बहुत कुछ है जिसे हम ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन जिसे ब्रेख्त ने हमारी लोक परंपराओं से लिया है, उसे हम ब्रेख्त से लें तो यह उचित नही होगा। इसके लिए हमें अपनी समृद्ध लोकरंगमंच की ओर देखना और उसके सार्थक तत्वों को आत्मसात करने की जरूरत है, ताकि हमारा रंगमंच अधिक समृद्ध, बहुआयामी और लोकव्यापी बन सके।

संदर्भ

1. सहाय, राधा कृष्ण, बर्तोल्त ब्रेख्त, समानांतरनामा, अंक–तृतीय, 2021, पृ. 20–21
2. रंग प्रसंग, वर्ष–7, अंक–2 अप्रैल– जून, 2004, पृ–33
3. तनेजा, जयदेव, नाट्य प्रसंग, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– प्रथम, 2017, पृ. 20–21

अजीत कुमार सिंह

शोधार्थी (पीएच.डी, हिंदी)

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली

मो0 9717620793

Email id- ajitssuryavanshi@gmail.com

Add:- 8-A, Block-E, Gali No-4, Roshan Vihar,

Back side Rao Man Singh Public School,

Najafgarh, New Delhi-110043

39

प्रगतिवादी – काव्य में दलित–वर्ग

डॉ0 रेखा रानी

सारांश

प्रगतिवाद में 'प्रगति' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ होता है – उन्नति या विकास करना। वर्तमान दशा या परिस्थिति में गुणात्मक सुधार करके विकास करना ही 'प्रगति' कहलाता है अतः 'प्रगतिवादी काव्य' का तात्पर्य उस काव्यधारा से है जिसे कवियों ने अपनी समकालीन काव्य–प्रवृतियों में सुधार करने के उपरान्त रचा। प्रगतिवादी काव्यधारा अपने सामाजिक और ऐतिहासिक जीवन की अभिव्यक्ति है, बाद में इसमें राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। एक ओर राष्ट्र अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील था तो दूसरी ओर उसकी समस्याएँ आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक भी थी। संघर्ष की व्यापक स्थिति में समाज अवरोधक तत्व केवल विदेशी नहीं देशी भी थे। अंग्रेजों ने भारतीय समाज को हर दृष्टि से खंडित किया था। एक ओर तो फूट डाली कि राजनीति द्वारा इस देश में सांप्रदायिकता को विकसित किया, दूसरी ओर आर्थिक स्वतन्त्रता का झूठा आश्वासन देकर इसाई मिशनरियों को भारतीय समाज में कार्यरत किया। आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने अपने पूंजीवादी दृष्टिकोण को लेकर भारतीय उद्योग–धंधों और खेती के व्यवसाय की कमर तोड़ दी। स्वार्थी भारतीयों को जितना राष्ट्रीय और सामाजिक बोध कुण्ठित था, उन्हें भी अपने इस महानाश में सहभागी बनाया। जमींदार साहूकार और सरकारी नौकर जन–जीवन को चूसने लगे। यह भारतीय अवस्था समूचे सामाजिक बोध और मानवता से विरक्त थी। ऐसी अवस्था में सामान्य जन के पास अपने पैरों पर खड़ा होकर अपने बिखरे हुए विश्वास को इकट्ठा करके संघर्षरत होने के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं था। ''प्रगतिवाद कोई आकस्मिक अथवा अनहोनी घटना न थी, उसके पीछे वह सच्चाई थी, जिसका युगजीवन से सीधा संबंध था।''1

प्रगतिवादी काव्य भारतीय समाज में तात्कालीन दीन–हीन, दलित स्थिति की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है प्रगतिवादी कवि समाज में व्याप्त वर्ग–सघर्ष का अंत कर एक साम्यवादी समाज की व्यवस्था करना चाहता है। जिसमें समान विचार–धारा, समान प्रयत्न, समानाधिकार और समान सुख–सुविधाएँ, सुख–भोग के समान–साधन उपलब्ध हो। साहित्यकार अपने साहित्य में शोषित किसानों, मजदूरों, नारी आदि की दयनीय दशा, अत्याचार, पूंजीपतियों के शोषण आदि का उद्घाटन करेंगें। इस संदर्भ में डॉ0 नगेन्द्र का मत महत्वपूर्ण है–

''छायावाद युग के उतरार्द्ध में अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा भौतिक प्रभावों के कारण व्यक्ति अपने प्रति अधिक जागरूक होने लगा। उसमें आत्मचेतना और आत्मविश्वास की मात्रा बढ़ने लगी और वह प्राकृतिक तथा दार्शनिक प्रतिकों के आवरण त्याग साहसपूर्वक अपने हर्ष विषाद को प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त करने लगा। इस तरह एक प्रकार की अतिशय आत्मपरक कविता का जन्म हुआ जिसका प्रभाव हिंदी के नवयुवक कवियों पर संत्रामक होकर पड़ा। आर्थिक और श्रृंगारिक कुण्ठाओं से पीड़ित तत्कालीन समाज अपने मन के प्रत्यक्ष शब्द–चित्रों की ओर स्वभवतः अत्यंत वेग से आकृष्ट होने लगा।''2

इस विचारधारा से प्रभावित वह साहित्य जो सन् 1936 के आस–पास आरम्भ होता है तथा जिसकी समय–सीमा 1953 तक मानी जाती है, उसे हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी काव्यधारा कहते हैं।

<u>प्रगतिवादी काव्य की मान्यताएँ</u>:–

1 प्रगतिवादी जीवन के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो सर्वथा वैज्ञानिक है।

2 वह कला को अभिव्यक्ति का एक साधन मात्र मानता है और साहित्य में उसका सरलतम रूप अपनाने पर बल देता है।

3 कृष्ण लाल हंस – ''जो साहित्य प्रति ज्क्रियावादी, पूंजीवादी, प्रवृति, मनोवृति और व्यवस्था का विरोधी है, वही प्रगतिवाद साहित्य है।''3

<u>प्रगतिवादी काव्यधारा में दलित वर्ग की चेतना</u>:–

इस चुग में औद्योगिक विकास के कारण देश के आर्थिक संगठन में अधिक दृढ़ता तथा एकता आयी। बाजार का संकुचित तथा स्थानीय रूप अधिक व्यापक होने लगा। बड़े शहरों का विकास हुआ, जो कि प्रगतिशील चेतना के प्रसार के केन्द्र बने। मजदूरों में वर्ग–संघर्ष की चेतना को अधिक तीव्र बनाने में उनकी अत्याधिक निर्धनता–दयनीय स्थिति भी एक बहुत बड़ा कारण बन गयी। गरीबी और कर्ज के बोझ के कारण तत्कालीन किसानों में भी असंतोपजन्य क्रान्ति का प्रसार हुआ। इतना ही नहीं बल्कि इस युग का कवि स्वयं 'दलित' होने के कारण दलित–वर्ग की स्थिति की अभिव्यक्ति में हमें अनुभूति की वास्तविकता और तीव्रता अधिक दिखाई देती है। दलित कवि अपनी व्यथा को

अभिव्यक्त करते हुए लिखता है–

> ''पैदा हुआ था मैं–
> दीन–हीन अपठित किसी कृषक कुल में
> जा रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
> कवि! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
> बहुत बुरा हाल है!!!
> करूं मैं किस वर्ग में गिनती अपनी ''4

आज का दलित मानव भी इसी प्रकार के अभावों से ग्रस्त है इसलिए प्रगतिवादी कवि के व्यक्तिक जीवन की अनुभूति सामाजिक सहानुभूति में सरलतापूर्वक अभिव्यक्त हो गई है और दलित मानव भी दयनीय स्थिति का अंकन करने में सफलता प्राप्त कर सकी है। प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह, सुमन, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, डां रांगेय राघव आदि का नाम लिया जा सकता है।

बहिष्कार एवं शोषणः–

जनता का बहिष्कार एवं शोषण इस युग के काव्य का प्रमुख कथ्य रहा है अस्पृश्यता के कारण दलित मानव की स्थिति इतनी दयनीय हो जाती है कि वह अपनी मनुष्यता भी खो बैठता है ''हरिजन को अस्पृश्य समझकर उसे मन्दिर में प्रवेश न करने देना कितना अपमान जनक है। केवल अस्पृष्य कहलाने मात्र से वह भगवान के दर्शन भी नहीं कर सकता था। ''5 अपमान एंव अत्यचार से दलित मानव की मुक्ति करने का महान कार्य जिस प्रकार भारत मे महात्मा गांधी जी ने किया और उसके इस महान कार्य से अनेक साहित्यकार एंव कवि लोग प्रभावित हुए, उसी प्रकार चीनी क्रांति से प्रभावित कवि त्रिलोचन शास्त्री माओ को दलितों का उद्धार करने वाला घोषित करते हुए लिखते हैं–

> ''तुम थे माओ, जीवन के सौ अंकुर फूटे
> बंधन टूटे, दलितों ने गौरव–धन लूटे। ''6

अतः स्पष्ट है कि इस युग का कवि अपनी कविता के माध्यम से दीर्घ काल से मानवता खोए, अंधकार के गर्त में डूबे दलित मानव को आलोकित करना चाहता है प्रगतिशील साहित्य का तथा साहित्यकारों का यही कर्तव्य होता है।

नारी की स्थितिः– नारी युग से शोषित और प्रताड़ित है वह ग्रह–स्वामिनी नहीं वह ऐसी ग्रह सेविका ही समझी जाती रही। वह पुरूषों की काम–लिप्सा की पूर्ति का एक मात्र साधन समझी जाती है पति के मर जाने पर नारी के जीवन का सब कुछ लुट जाता है। पहले से ही उत्पीड़ित नारी के दुख का तब कोई पारावार नहीं रहता। परिवार में उपेक्षित समाज में शोषित नारी के लिए अपने पेट में जलती हुई भूख की आग मिटाने के लिए मजदूरी करना अनिवार्य बन जाता है अपने छोटे–छोटे बालकों को धरती पर लिटा कर मजदूरी पर जाना उसके लिए मजबूरी हो जाता है। अपने शरीर तक को बाजार में नीलाम करने के लिए वह असहाय नारी मजबूर बन जाती है। वहां पर भी उसका शोषण समाप्त नहीं होता। शोषक पुरूष शराब के नशे में चूर हो कर उसके जीवन से खेलता रहता है। उसकी इस दीन–हीन, पराधीन दशा पर प्रकाश डालते हुए रांगेय राघव लिखते हैं–

> ''नारी का क्या सम्मान कहो जीवन में
> जो ब्रहमा सी है सृष्टि कर रही है जग में
> वह पराधीन क्यों है बलि पशु सी दीन। ''7

किसानों का शोषणः– दिन–रात तन तोड़कर मेहनत करने वाला किसान महाजन के शोषण का शिकार बना रहता है दिन रात मेहनत करने के बावजूद भी उसके पास न खाने को भर–पेट अन्न मिलता है उसके पास न रहने को आवास होता है उसका घर टूटे खंडहर के समान होता है '' किसान वर्षा, ठंड एंव धूप को अपने सिर पर झेलता हुआ खेतों की फसलों को हरी–भरी रखता है किन्तु अपने 'लाभ' को ही सर्वोपरि मानने वाले महाजन की दृष्टि में उसका कोई मोल नहीं। किसान मानव है, उसे भी सुख–दुख की अनुभूति होती है, उसे भी आराम चाहिए। इस प्रकार की बुरी दशा के बावजूद भी प्रगतिवादी कवि को विश्वास है कि कृषकों पर जमीदारों द्वारा जो अत्याचार अब तक हुए हैं, वे अब समाप्त हो जायेंगें। भूमिहीन किसानों को अपनी–अपनी भूमि मिलेगी जिसे वे बायेगें और सुख व समृद्धि फिर से धरती पर आएगी। अतः प्रगतिवादी कवि चाहता है कि भारतीय किसान शोषण से मुक्त हो जाए और एक सभ्य मानव सा जीवन जीने का अधिकार उसे प्राप्त हो जाए। त्रिलोचन शास्त्री जी कहते है यदि ऐसा न हुआ तो–

> ''जिस समाज में तुम रहते हो
> यदि उसकी करूणा ही करूणा
> तो यह जीवन की भाषा में
> तिरस्कारपूर्ण मरण है। ''8

निष्कर्षः– प्रगतिवादी कविता में प्राप्त दलित–वर्ग की चेतना यथार्थ और अनुभूति की तीव्रता के साथ अंकित हुई है शोषक और शोषित दो वर्गों में विभाजित तत्कालीन समाज में वर्ग–संघर्ष चरम सीमा पर पहुॅच गया था, जिसका चित्रण इस युग की कविता में बड़ा ही सजीव बन गया था। भारतीय समाज का महत्वपूर्ण अंग मजदूर और किसान को इस कविता में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं अपितु किसान और मजदूर के साथ अस्पृश्य, नारी आदि की असहाय स्थिति का चित्रण भी पाठकों के सम्मुख रखा है।

प्रगतिवादी काव्य–धारा में दलित वर्ग का चित्रण बड़ी सशक्ता के साथ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है।

<u>संदर्भ सूची</u>:–

1 डॉ0 मिश्र शिव कुमार, प्रगतिवाद, पृ.–21

2 डॉ0 नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृतियां, पृ.63

3 डॉ0 पवन कुमार यादव, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.284

4 नागार्जुन, युगधारा, पृ.12

5 डॉ0 राम विलास शर्मा, श्रेष्ठियों के देवता, रूप तरंग, पृ.92

6 त्रिलोचन शास्त्री। माओ–त्से–पुंग। दिगन्त। पृ.60

7 रांगेय राघव, पांचाली, पृ.19

8 गजानन माधव मुक्तिबोध। चकमक की चिनगारियॉ। चॉद का मुॅह टेढा है। पृ.282

डॉ0 रेखा रानी

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)

आई.बी. (पी.जी.) कॉलेज

पानीपत–132103 (हरियाणा)

40

मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

गुप्ता जी का जीवन और काव्य वैष्णव भक्ति के अहिंसा, प्रेम, करुणा, अपरिग्रह, क्षमा, दया, समता, मानवता आदि के तत्त्वों के साथ–साथ प्रखर राष्ट्रीयता के तत्त्वों से सम्पन्न है। उनके संवेदनशील ह्रदय ने इन सब तत्वों को पूर्णतया आत्मसात् करके इनका अवगाहन अपने काव्य में चरितार्थ किया है।

मैथिलीशरण गुप्त ने औपचारिक शिक्षा अल्प मात्र में ही की। घर पर रह कर स्वा पाप से उन्होंने हिन्दी के भक्तिकाल और रीतिकाल के सभी प्रमुख कवियों का गहन अध्ययन किया। राम के चरित्र में असीम श्रद्धा रखने के कारण उन्होंने उत्तर भारत की सभी भाषाओं में उपलब्ध साहित्य का विशेष अध्ययन करके उनके कथ्य को आत्मसात किया। संस्कृत के काव्य–शास्त्र और नायिका भेद का निरूपण करने वाले ग्रंथों को पढ़ा। संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, उर्दू, बांगला, मराठी, गुजराती भाषाएँ सीख कर उनमें उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन किया। पं0 मदनमोहन मालवीय के आग्रह पर अंग्रेजी भाषा सीखी और उसमें इतनी महारत हासिल की कि अंग्रेजी ग्रंथों का हिन्दी पथ में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया। इन प्रारम्भिक तैयारियों के मध्य गुप्त जी ने पिताश्री से काव्य–रचना का प्रथम पाठ पढ़ा, जिसका परिष्कार मुंशी अजमेरी के सान्निध्य में उन्होंने हुआ। युगचलन के अनुसार पहले ब्रजभाषा में काव्य–रचना आरम्भ की। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आग्रह पर उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी में रचना आरम्भ की। सरस्वती में गुप्त जी की पहली खड़ी बोली में रचित कविता हेमन्त प्रकाशित हुई थी। आचार्य द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर उन दोनों के मध्य अघोषित गुरु–शिष्य का संबंध स्थापित हुआ। द्विवेदी जी गुप्त जी की रचनाओं को सुधार कर श्सरस्वतीश में प्रकाशित करते थे। गुप्त जी द्विवेदी जी द्वारा किये गये सुधारों को सहर्ष स्वीकार कर लेते थे।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का युग खड़ी बोली को काव्य–भाषा के रूप में स्थापित करने का था। अनेक विद्वान, जिनमें प्रियर्सन भी शामिल थे, खड़ी बोली को काव्य–भाषा के उपयुक्त नही मानते थे और ब्रजभाषा को ही हिन्दी का यह सुष्ठु रूप स्वीकारते थे जिसमें पद्म रचना की जा सकती है। आचार्य द्विवेदी ने इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और सरस्वती के कवियों का एक ऐसा दल तैयार किया जो सड़ी बोली में सुन्दर काव्य रचना करने के लिए कटिबद्ध हो गया। मैथिलीशरण गुप्त इस दल के अग्रणीय कवि थे। गुप्त जी के कर्मठ सत्प्रयासों द्वारा सड़ी बोली कविता की भाषा के पद पर आसीन हुई और उत्तरोत्तर अपने को इस पद पर रह कर समृद्ध करती गई। राष्ट्रप्रेम की उत्कट भावना से परिपूर्ण होने के कारण उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आड़ कराने में अनुपम योगदान दिया। उसके उत्थान के लिए ये स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी दत्तचित्त होकर लगे रहे। इसीलिए कविश्री बच्चन ने कहा है मैथिली शरण मे हिन्दी के हित आए।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 78 वर्ष की जीवनावधि में 64 वर्ष खड़ी बोली हिन्दी की सेवा की। इस दीर्घकालीन सेवा में उन्होंने महाकाव्य, संडकाव्य, चम्पू, गीति नाट्य, मुक्तक और गीत प्रगीतों के रूप में ४० मौलिक और ६ अनुदित पुस्तकों की रचना की। इतनी विपुल मात्र में रचे गये मौलिक साहित्य ने उनके उत्कृष्ट अनुवाद कार्य को सुधीजनों की दृष्टि से ओजात किये रखा।

मैथिलीशरण गुप्त के मनोजगत पर तत्कालीन भारत की पराधीनता, दरिद्रता, सामाजिक वैषम्य और अशिक्षित दीन जनसमुदाय की हीनावस्था का गहरा प्रभाव पड़ा था। इस प्रभाव को उन्होंने आत्मसात् करके इस दुरावस्था से देश और देशवासियों को मुक्त कराने के कार्य को अपनी लेखनी से सम्पन्न करने का बीड़ा उठाया। साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर जेल यात्र भी की।

किसी भी पराधीन राष्ट्र की जनता का मनोबल जब गिर जाता है तो वह आत्मग्लानि में डूबी अपनी विवशावस्था पर आंसू बहाती रहती है। भारत के इस हीनभावनाग्रस्त परा तीन जन समुदाय को आत्मविश्वास प्रदान करना कठिन कार्य था। राजनयिक और समाज सुधारक अपनी विधि से इसके साथ जूझ रहे थे। उनका कार्यक्षेत्र अपने–अपने दायरे में सीमित था। उन दिनों पूरे उत्तर भारत में हिन्दी बड़ी तीव्र गति से अपना अग्रणी स्थान बनाने में जुटी थी। अहिन्दी प्रांतों में भी हिन्दी बोली और समझी जाती थी। इस कारण अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी साहित्य जगत् पर यह कर्त्तव्य आ पड़ा था कि वह लोकचेतना को जागृत करके उसे प्रबुद्धता प्रदान करे ताकि वह अपनी हीनावस्था से ऊबर कर अपने स्व को पहचाने तथा समाज के नवनिर्माण और स्वतंत्रता आंदोलन का सजग प्रतिभागी बने। इन परिस्थितियों में मैथिलीशरण गुप्त ने

सन् 1912 में भारत–भारती की रचना की। इस काव्य ग्रंथ में उन्होंने भारत के अतीतकालीन गौरव का तथ्यात्मक आधार पर गुणगान किया और भारत– –भूमि की अद्वितीय महिमा का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया। वर्तमान दुरवस्था से उसकी तुलना करते हुए उद्बोधनात्मक स्वरों में लोगों के समक्ष ज्वलंत

प्रश्न रखा

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी ।

प्रस्तुत कृति ने देशवासियों की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित कर उनके रक्त में तूफान का सर्जन कर दिया। भारत–भारती, बाल–वृद्ध युवा सभी भारतीयों के गले का कंठहार बन गई। इसकी लोकप्रियता और व्यापक प्रभाव को देखकर कई प्रांतीय सरकारों ने इसे जब्त कर लिया, परन्तु इस ग्रंथ द्वारा प्रज्ज्वलित की गई आग को ब्रिटिश सरकार का दमनचक बुझा न सका। देश की जनता ने एक स्वर में मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया। मैथिलीशरण गुप्त अपनी इस राष्ट्रकवि की छवि के प्रति सजग थे या नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु यह एक तथ्य है कि उन्होंने अपने इस पद को जीवनपर्यन्त इसी ऊँचाई पर बनाये रखा।

मैथिलीशरण गुप्त ने अधिकारों से वंचित, दमित, सुप्त भारतीय जनता को उद्बोध करने हेतु पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्रों का चयन किया और उन ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों के चित्रण हेतु उनके संबंधित ग्रंथों का विशद अध्ययन किया। उनके नायक युगधर्म के वाहक और नवीन युगबोध के स्रष्टा बन कर आये। गुप्त जी प्रबंधकाव्यों की घटनाएँ वे ही रहीं, परन्तु उनका विश्लेषण करके उन्होंने उनमें वर्तमान कालोपयोगी चेतना की उत्सर्जना की। वे इतिवृत्तात्मक काव्य के निष्णात प्रणेता थे परन्तु पुराने का पिष्टपेषण उनका अभीष्ट नहीं था। जहाँ अवकाश मिला, वहाँ अतीत का गौरवगान भी किया। इस गौरवगान की ओर से ब्रिटिश शासन की शोषक और स्वार्थी प्रवृत्ति की व्यंग्यात्मक आलोचना की। लंका पर आक्रमण हेतु सन्नध वीरों को पराये धन की लालसा में न डूबने का संदेश देते हुए साकेत की उर्मिला कहती है

सावधान ! वह अधम–धान्य सा धन मत छूना,
तुम्हें तुम्हारी मातृ–भूमि ही देगी दूना।

उपर्युक्त पंक्तियों में अंग्रेजों की पराई धन–सम्पदा पर गीध दृष्टि जमाये रखने वाली गर्हित प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया गया है। गुप्त जी ने गर्हित की आलोचना के साथ–साथ अपने मौलिक दृष्टिकोण से श्जो होना चाहिए उसकी स्थापना की। गुप्त जी मात्र प्रतिक्रिया – व्यक्त करके चुप नहीं बैठते थे अपितु जो सर्वजनहिताय या प्रबंध ग्रंथों के घटनाक्रम के अनुकूल उसकी बड़ी सशक्तता के साथ उद्भावना और स्थापना भी करते थे। साकेत में आदर्श राजा के चरित्र और कर्त्तव्यों पर गुप्त जी ने विस्तार से विचार किया

है। राम अपने वन गमन के सहर्ष स्वीकार के पीछे छिपे उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन– सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख–शांति हेतु मैं क्रांति मचाने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया। अंग्रेज जाति भी अपने आपको आर्यों का वंशज मानती है। गुप्त जी ने इस भ्रष्ट भूतल को नरक बनाने वाली अंग्रेज जाति के समक्ष आयों के आदर्श को उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। राज्य किसी एक व्यक्ति या जाति–विशेष के उपभोग की वस्तु नहीं, अपितु राज्य अधिष्ठाता को प्रजा के प्रति बड़े दायित्वपूर्ण कर्तव्यों से बांधने वाला होता है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए गुप्त जी लिखते हैं–

राज्य है प्रिये, भोग या भार ?
बड़े के लिए बड़ा ही दण्ड ।
प्रजा की थाती रहे अलण्ड ।

क्योंकि प्रजा का अर्थ है साम्राज्य सारा प्रजा नहीं तो किसका राजा? इसीलिए गुप्त के राम जनाभिमुख हैं जी

प्रस्थान वन की ओर,
या लोक–मन की ओर ?
होकर न धन की ओर ?
है राम जन की ओर।

राज्य को बहुत तुच्छ मानते हुए भरत माँ से पूछते हैं

स्वार्थ ही ध्रुव धर्म हो सब ठौर ।
क्यों न माँ? भाई, न बाप न औ!

गुप्त जी की दृष्टि से न्याय, धर्म, स्नेह के स्थान पर स्वार्थ का मुख्य धर्म बन जाना राजा के लिए गर्हित मूल्य है। जनता ऐसे राजा की आकांक्षा नहीं करती। प्रजा की इच्छा ऐसा राजा पाने की है जो लोकार्थनिद्रा को त्याग दे साकेत में राम के वन–गमन के समय अयोध्यावासी कहते हैं कि राम तुम हमारे राजा हो क्योंकि हमने तुम्हें राजा चुना है –

न्याय–धर्म–स्नेह, तीनों त्याज्यस्वप्न किसका देखते हैं लोग। जो तजे लोकार्य निद्रा योग।

राजा हम ने राम तुम्हीं को है चुना,
करो न तुम यो हाय लोकमत अनसुना,

जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।

राम उनकी भावना का उत्तर देते हुए कहते हैं

प्रजा नहीं तुम प्रकृति हमारी बन गए.

दोनों के सुख–दुःख एक में सन गए,

मैं स्वधर्म से विमुख नहीं दूंगा कभी,

इसीलिए तुम मुझे चाहते हो सभी ।

यही राजा का धर्म है जनाभिमुख होना। जो राजा आत्मकेन्द्रित होगा, उससे प्रजा का भला कभी नहीं होगा।

गुप्त जी जनतांकि राज्य व्यवस्था के पक्षधर होते हुए भी इसके प्रति सशंकित थे । फ्रांस में प्रजातंत्र है। इसका प्रबल समर्थक होने कारण ही वहाँ कभी स्थायी मंत्रिमंडल नहीं बन पाता। अंग्रेज भी जनतांत्रिक व्यवस्था से चलने वाले देश के वासी थे परन्तु उन्होंने अपने कठोर स्वार्थी के कारण अपने कार्यों और साम्राज्यवादी नीतियों द्वारा विश्व को पददलित करके रख दिया था। अंग्रेजों की प्रजातांत्रिक सरकार की साम्राज्य स्थापित करने की प्रवत कामना विश्व जनमत के विरुद्ध थी। गुप्त जी के अनुसार साम्राज्य का निर्माण रूधिराप्लुत कंकालों के ढेर पर ही किया जा सकता है बनता

नहीं ईंट गारे से

यह साम्राज्य विशाल

सुनो चुने जाते हैं उसमें

रुधिराप्लुत कंकाल

यहाँ गुप्त जी का कहने का तात्पर्य यह है कि राज्य में प्रजातांत्रिक व्यवस्था हो, परन्तु उसका चरित्र साम्राज्यवादी न हो ।

अंग्रेजी राज में पूंजीवादी वर्गभेद का बोलबाला था। अंग्रेज वर्गभेद के प्रबल समर्थक थे और अंग्रेज जाति को संसार की श्रेष्ठ जाति मानते थे। साकेत में राम और सीता का संवाद इस ओर इंगित करता हुआ प्रतीत होता है

होकर स्वयं वर्णमयी ये बातें,

पर वे सोने की नहीं, लोभ की घातें,

हो, तब अनर्थ के बीज अर्थ बोता है,

जब एक वर्ग में मुष्टिबद्ध होता है,

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता है,

वह दस्यु लोक धन लूट लूट धरता है।"

अंग्रेज का नहीं, संग्रह का राज क भारत की सम्पदा को लुटेरों की तरह लूटा था। भारत के धन को भारत में न खर्च कर समुद्र पार अपने देश ले गये इसी कारण गुप्त जी ने कहा था–

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में,

सिंधु–पर वह बिलख रही है व्याकुल मन में ।।।

भारत–लक्ष्मी का संदर्भगत अर्थ तो सीता है परन्तु ब्याज रूप में यह स्थूल–लक्ष्मी अर्थात् धन–सम्पदा का द्योतक है। इस भारत लक्ष्मी को निजी सत्ता की परिपुष्टि के अंग्रेज इंगलैंड ले गये दायित्वहीन सरकार ही ऐसा करती है। अतः ऐसी दायित्वहीन सरकार के विरुद्ध क्रांति कर देना उचित है। गुप्त जी कहते हैं कि –

"राज्य में दायित्व का ही भार,

सब प्रजा का वह व्यवस्थागार ।

वह प्रलोभन हो किसी के हेतु,

तो उचित है क्रांति का केतु ।

इस क्रांति का आहवान् पराधीन भारत में स्वतंत्रता की जनाकांक्षा की समयानुकूल अभिव्यक्ति है।

मैथिलीशरण गुप्त के प्रमुख काव्य ग्रंथ रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। भारत–भारती और हिन्दू में उन्होंने आयों की हर क्षेत्र में प्राप्त समृद्धि और उनके प्रभुत्व का गौरवगान किया है। गुप्त जी की दृष्टि भारत–भारती में आय पर और हिन्दू में हिन्दुओं पर अधिक टिकी है, जिससे इन ग्रंथों में कहीं–कहीं पर किंचित् संकीर्णता परिलक्षित होती है इसके बावजूद भी निस्सन्देह गुप्त जी संस्कृति–पुरुष एवं प्रबल, मानवतावादी कवि थे। श्साकेतश के राम व्यष्टि के पोषक न होकर समाष्टि के पक्षधर थे और समाप्ति हेतु व्यष्टि का बलिदान करने की बात करते थे। उनकी सांस्कृतिक चेतना एवं मानवतावादी दृष्टि बड़ी परिपक्व थी। अद्वैतवादी दृष्टि के कारण गुप्त जी समस्त भारत को एक और सभी भारतीयों को समान मानते थे। वैचारिक मतभेद हो सकते हैं, परन्तु भारतीय होने की परिभाषा उसमें जन्मित होना है, हर एक मर्यादित व्यवहार करके भारतीय बना रह सकता है

जितने प्रवाह है, बहें अवश्य बहे वे

निज मर्यादा में, किंतु सदैव रहेंवे

गुप्त जी का दृढ़ मत था कि भेद बढ़ाने से हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ नहीं, मिलता। इसी बात को गुरुकुल में गुरु तेगबहादुर ने इस प्रकार व्यक्त किया –

रखते हैं दो बन्धु परस्पर,

बहुधा निज विचार बहु भिन्न ।

किन्तु रुधिर संबंध कभी क्या,

होता है उनका विच्छिन्न ।

गुप्त जी के विचार में राम का मर्यादित चरित्र ही ईसा, मूसा और मुहम्मद के रूप में अवतरित होता आया है।

ईसा, मूसा और मुहम्मद–सा जो आया।

समय–समय पर एक संदेशा ही वह लाया।

इसी कारण इस भारत–भूमि में सभी महापुरुषों और सभी वैचारिकताओं को समान भाव से आदर मिला है

जाति धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहाँ।
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम सम्मान यहाँ।
राम रहीम, बुद्ध, का सुलभ एक–सा ध्यान यहाँ।
भिन्न भिन्न भव संस्कृतियों के, गुण–गौरव का ज्ञान यहाँ।
नहीं चाहिए बुद्धि वैर की, भला प्रेम उन्माद यहाँ ।
सबका शिव कल्याण यहाँ है, पावो सभी प्रसाद यहाँ ।

भारत–भूमि जैसी विशाल ह्रदयता और सहिष्णुता की भावना अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ माना जाता है कि इस समस्त सृष्टि का नियन्ता एक है, उसके बनाए हुए प्राणियों में भेद नहीं किया जा सकता –

यह सारा संसार है उस प्रभु का परिवार।
सबसे रखना चाहिए प्रेमपूर्ण व्यवहार ।
यही ईश्वरोपासना यही धर्म का मर्म ।
एक दूसरे के लिए करें यहाँ हम कर्म

एक दूसरे के साथ सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करके ही यह मानव सभ्यता उन्नति के शिखर पर पहुंची है और भविष्य में इसी के सम्बल से नये आयामों को छूएगी।

मैथिलीशरण गुप्त समन्वयवादी कवि थे। इन्होंने जाति और धर्म के महान् पुरुषों का श्रद्धावनत हो चित्रण किया है। गुरुकुल में सिख गुरुओं, उनके इतिहास और सिल वीरों के शौर्यपूर्ण चरितों का अंकन किया। अर्जन और विसर्जन में ईसाई संस्कृति के उदात्त पक्षों को उद्घाटित किया। उनका श्काबा और कर्बला इस्लाम का परिचायक ग्रंथ है। कुणाल और यशोधरा में बौद्धमत तथाअनघ में जैनमत की मान्यताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया। अनघ पर गांधीवादी वैचारिकता का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। द्वापर में राम और कृष्ण की चरित्रात विशेषताओं को चित्रकन किया। साकेत और पंचवटी रामचरित पर आधारित उनके प्रसिद्ध काव्य–ग्रंथ है, इन ग्रंथों में उन्होंने हर जाति और धर्म के महान नायकों के जीवन का गुणगान करके उनके उत्कृष्ट मूल्यों को अपनी लेखनी के बल से उदात्त सर्वग्राहयता प्रदान की। सभी धर्मों का निष्कर्ष यही है कि हुआ एका होकर अनेक वह हम अनेक से एक। इस कारण विश्व के सभी प्राणी परस्पर एकता के सूत्र में बंधे हैं

किसी वर्ग के और किसी भी देश के। –
बंधु सभी हम दास एक अखिलेश के 1

निष्कर्ष–

इस प्रकार वैचारिक स्तर पर गुप्त जी की यह समन्वय आधारित सांस्कृतिक चेतना और मानवतावादी दृष्टि राष्ट्र–बांधवता से विश्व–बांधवता तक विस्तार पा गई है। राष्ट्रीय स्तरपर भारत के विशाल जन समुदाय में समाहित हर धर्म, जाति और वर्ग के लोगों को गुप्त जी ने एक माना है। उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वे गुप्त जी आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के सर्वश्रेष्ठ कवि थे और इसी कारण राष्ट्रकवि के गौरवमय पद पर आसीन व प्रतिष्ठित हुए।

संदर्भ–सूची

1. भारत भारती
2. साकेत (2014 वि0), पृ0 474
3. वही, पृ0 234–35
4. वही, पृ0 57
5. वही, पृ0 77
6. वही, पृ0 123
7. वही, पृ0 198
8. वही, पृ0 199
9. वही, पृ0 12
10. वही, पृ0 129
11. द्वापर
12. साकेत (2014 वि0), पृ0 232
13. वही, पृ0 457
14. वही, पृ0 201
15. साकेत
16. गुरुकुल (2014 वि0), उपोद्घात, पृ0 25
17. गुरुकुल, पृ0 110
18. काबा और कर्बला (2026 वि०), पृ0 65
19. मंगलघट (1994 वि०), पृ0 262
20. काबा और कर्बला (2026 वि0), पृ0 5
21. वही, पृ0 20

डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा
एसो. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
गो. ग.द. सनातन धर्म, स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
पलवल (हरियाणा)

41

राष्ट्र–निर्माण में भारतीय नारी का योगदान

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य

सारांश

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।

भारतीय ऋषि–मुनि तथा मनीषियों ने समाज में नारी के स्थान को सर्वोपरि माना है। भारत एकमात्र ऐसा देश है जहाँ नारी को देवी का स्थान मिला है, जहाँ नारी कभी काली है, तो कभी दुर्गा, कभी लक्ष्मी है, तो कभी सरस्वती। नारी सीता की प्रतीक है और सावित्री की भी। यही वह देश है जिसमें नारी को माँ का अपेक्षित सम्मान मिला है। माँ का स्थान सर्वोपरि माना गया है। यद्यपि बदलती परिस्थितियों में नारी का शोषण भी बहुत हुआ है। उसे कभी अबला कहा गया है तो कभी श्रद्धा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने साम्प्रतिक भारतीय नारी की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कहा था :–

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

इन पंक्तियों को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे भारत की प्रत्येक पीढ़ी दीन–हीन, रोती–बिलखती और अत्यंत शोषित है, किन्तु ऐसा नहीं है। यह सच है कि मुसलमानों के आने के बाद नारी को परदे के पीछे कैद होना पड़ा, क्योंकि आक्रामक जहाँ धन–संपत्ति लूटते थे वहीं स्त्री पर भी उनकी कुदृष्टि पड़ती थी। निःसन्देह बहुत लम्बा काल ऐसा बीता जब नारी को चारदीवारी के भीतर रहना पड़ा। उस चारदीवारी के भीतर सभी स्त्रियों को, लड़कियों को पढ़ने–लिखने की सुविधा भी नहीं मिलती थी। फलतः नारी अशिक्षित, पराधीन और बेबस होती चली गयी। सामाजिक और राजनैतिक कारणों से नारी की दशा सचमुच दयनीय थी। दुर्दशा इस हद तक बढ़ी कि छोटी–सी आयु में ही बड़ी उम्र वाले पुरुष के साथ उनका विवाह हो जाता था और कम आयु में ही विधवा होकर सारा जीवन वैधव्य का दारूण– दुःख झेलना पड़ता था। नारी की करूणा की गाथा बहुत लम्बी है, लेकिन ऐसा नहीं कि शत–प्रतिशत नारियों के ऊपर अत्याचार होता रहा हो। जब नारी परदे में रहती थी तब धीरे–धीरे इसे घर के अंदर का पूरा शासन अपने हाथ में ले लिया था। पुरुषों को घर के शासन के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं होता था। बहुत सी स्त्रियाँ उस शासन की आड़ में राजनीति करती थी और नारी ही नारी के साथ दुर्व्यवहार करती थी। यह भी सच है कि पुरुष समाज ने नारी का हमेशा शोषण किया। किंतु इस धरती पर ऐसी भी स्त्री जन्मी हैं जिनका शोषण करने का साहस किसी भी पुरुष का नहीं हो सका। रानी लक्ष्मी बाई भी तो स्त्री ही थीं और इतनी कम उम्र में ही उन्होंने घर से बाहर निकलकर कितना यश कमाया। यद्यपि वह युग भी परदे का ही युग था।

अंग्रेजों के आगमन के बाद भी भारतीय नारी की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन यह बात चिर स्मरणीय और ध्यातव्य है कि हर युग में हर प्रकार की नारियाँ रही हैं। अंग्रेजों के आगमन के बाद एक ओर जहाँ भारतीय नारियों में अशिक्षा का प्रसार हुआ, वहीं दूसरी ओर विजयलक्ष्मी पंडित, अरूणा आसफ अली, सरोजिनी जैसी नारियों ने आगे बढ़कर देश के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। भाष चन्द्र बोस की सेना में भी स्त्री दल अलग था। अर्थात् उन्होंने स्त्रियों की भी सेना बनाई थी। इस प्रकार आजादी की लड़ाई में स्त्री का योगदान यदि बराबर नहीं तो बहुत कम भी नहीं है। उसने घर के अंदर से भी संघर्ष किया और सड़क पर निकलकर भी संघर्ष किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी की स्थिति में आशातीत सुधार आया। शिक्षा का प्रचार–प्रसार केवल लड़कों के लिए ही नहीं लड़कियों के लिए भी हुआ। तेजी से लड़कियों के लिए विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले गये, जहाँ ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा बेरोक–टोक दी गई। उसी का परिणाम हुआ कि प्रत्येक क्षेत्र में नारी का योगदान एवं उसकी भूमिका दृष्टिगत हो रही है। भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी वर्त्तमान भारतीय नारी की सबसे बड़ी प्रतिनिधि पी। कौन कह सकता है कि देश को चलाना केवल पुरुषों का काम है। इंदिरा गाँधी का कार्यकाल अच्छा–खासा लंबा रहा। उन्होंने चुनाव में विजय भी देखी और पराजय भी, लेकिन पराजय के बाद जब फिर विजय देखी तो वे जोर–शोर से आँधी–तूफान की तरह भारत की सत्ता संभालने के लिए प्रधानमंत्री के पद पर पुनः आसीन हुईं। उनके जमाने में देश की शासन तथा कानून–व्यवस्था संभवतः आज से बेहतर थी। वे एक सख्त और दृढ़ संकल्पी प्रशासिका थीं। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की नारी ने देश को संभालने का कार्य भी किया।

धीरे–धीरे नारी की स्थिति में उत्तरोत्तर विकास, सुधार व परिवर्त्तन आया। लड़कियाँ घर से बाहर निकलीं और विद्यालय तथा महाविद्यालयों की ओर बढ़ीं। शिक्षा प्राप्त करनेवाली लड़कियों की संख्या दिनानुदिन बढ़ती चली गई। चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो, या इंजीनियरिंग का क्षेत्र, सिविल सर्विस हो या फौज

हो या फिर पुलिस हो, हर जगह भारतीय नारी का राष्ट्र निर्माण में योगदान दिखाई दे रहा है। किरण बेदी जैसी पुलिस के उच्च पद पर आसीन नारी को भला कौन नहीं जानता? किरण बेदी ने अपने कार्यकाल में भाँति–भाँति के अनुभव प्राप्त किए और कठिन से कठिन परिस्थिति में भी विचलित नहीं हुईं। उन्होंने न जाने कितने अपराधियों को निर्भयता से उनके हश्र तक पहुँचाया। किरण बेदी के बाद भी पुलिस में कितनी ही नारियों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक ईमानदारी से अपना कार्य किया है। कोई भी क्षेत्र हो, नारी की ममता हर जगह दिखाई देती है। इसीलिए स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रशासिका होती हैं। उनकी संवेदनशीलता उन्हें हर परिस्थिति का सामना करने के लिए अद्भुत शक्ति देती है।

भारतीय नारी के योगदान की जब हम बात कर रहे हैं तो अंतरिक्ष – परी कल्पना चावला का जिक्र करना भी अपेक्षित और अनिवार्य है। नासा में कार्यरत निबंधकल्पना चावला ने अंतरिक्ष विज्ञान के इतिहास में अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित कर दिया है। अंतरिक्ष यान की दुर्घटना में उन्होंने भले अपने प्राण गँवा दिए, लेकिन भारतीय नारी का नाम उन्होंने सदा के लिए अमर कर दिया। खेल के क्षेत्र में सानिया मिर्जा ने अपनी अलग पहचान बनाई है। पर्वतारोहण में बछेन्द्री पाल एवं संतोष यादव– एथलेटिक्स में पी.टी. ऊषा, निशानेबाजी में अंजलि वेदपाठक तथा भारोत्तोलन में कर्णम् मल्लेश्वरी के प्रदर्शन को भुलाना सहज नहीं है। वर्त्तमान भारत में नारी पुरुष के कंधों से कंधा मिलाकर कार्य करती हैं। यह जरूरी नहीं कि हर स्त्री घर के बाहर काम करने जाए, क्योंकि घर को संभालना भी बहुत बड़ा काम है जिसे नारी ही अत्यंत सुगमता और कौशल से संभाल सकती है। नारी माँ होती है। इसलिए उसका पहला धर्म है अपनी संतान का पालन–पोषण करना तथा उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाना। जब देश आजाद हुआ था तो नेहरू जी ने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कहा था– श्तुम मुझे शिक्षित माताएँ दो मैं तुम्हें शिक्षित नागरिक दूँगा।श उनका यह कथन इस बात का संकेत था कि वे स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। वे जानते थे कि यदि स्त्री शिक्षित नहीं होगी तो आगे आनेवाली पीढ़ियाँ इस नये युग में अपना मुकाम नहीं बना पायेंगीं। शिक्षित माता संतान के लिए वरदान होती हैं। अतः लड़कियों का शिक्षित होना परम आवश्यक है।

साम्प्रतिक भारत में स्त्री का उत्तरदायित्व पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गया है। एक ओर वह घर संभालती है, बच्चों का पालन–पोषण करती है और दूसरी ओर वह घर से बाहर जाकर कोई–न–कोई कार्य करती है। आज कोई भी गृहस्थी स्त्री–पुरुष दोनों की आय से ही भली–भाँति सुचारू रूप से चल पाती है। वर्त्तमान समय विज्ञान का समय है। वैज्ञानिक प्रगति का समय है। बाजा में नित्य–प्रति नयी–नयी वस्तुएँ दिखाई देती हैं। जीवन को अधिकाधिक सुविधाओं से परिपूर्ण करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। यह धन दोनों की आय से ही प्राप्त हो पाता है। नारी की दोहरी जिम्मेदारी उसे कभी–कभी थका भी देती है, लेकिन वह हिम्मत नहीं हारती और अपने पैरों पर मजबूती से खड़े रहने का जीवनपर्यंत प्रयास करती है। आज वायुयान उड़ाती नारी, कचहरी मुकदमा लड़ती नारी, चिकित्सक के रूप में नारी और बड़ी–बड़ी कंपनियों में, बैंकों में, उच्च पदों पर आसीन नारी तथा विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षण करती नारी भारत का गौरव है। नारी की महत्ता का बखान जितना किया जाए उतना ही कम है। यह सच है कि पुरुषों की मानसिकता के कारण नारियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पुरुष अपने वर्चस्व को कभी भूलता नहीं। उसका यह वर्चस्व उसकी शारीरिक शक्ति के कारण स्थापित हो चुका है। किंतु नारियों को यह समझना चाहिए कि यह संसार नारी और पुरुष दोनों के सहयोग से ही चलता है, इसलिए उसका लक्ष्य सुनिश्चित होना चाहिए। मार्ग में आनेवाली बाधाओं का उसे मुकाबला करना ही चाहिए। साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि वह प्रकृति के नियम को नहीं बदल सकती। यदि अपने मार्ग से वे न भटकें और अपने कार्य को संजीदगी और ईमानदारी से करें तो उनका शोषण कम–से–कम आज के भारत में संभव नहीं। इसके लिए भारत की हर नारी का शिक्षित होना परम आवश्यक है।

दुर्भाग्यवश भारतीय नारी ने अपनी स्वतंत्रता का सही अर्थ शायद नहीं समझा है। जिस शोषण के विरुद्ध नारी तड़पती थी आज वह स्वयं को फैशन के मंच पर आधे–अधूरे कपड़ों में प्रस्तुत करके क्या शोषित नहीं होती। पुरुष की बराबरी करने के लिए उसे कार्यक्षमता बढ़ाने की जरूरत है, न कि पुरुष की तरह शराब, सिगरेट पीना तथा क्लब या रेस्टोरेंट का उपयोग करना। ये दोनों निबंधके लिए अनुपयोगी है। नारी ने अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग भी खुलकर किया है। देर रात में घर लौटना, किसी के साथ भी कहीं भी चले जाना, घर के बड़ों का सम्मान न करना और हर समय पुरुषों के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार रहना किसी भी तरह उसको शोभित नहीं करता। उद्दण्डता नारी का सबसे बड़ा दुर्गुण है। अपने सद्गुणों जैसे विनम्रता, शालीनता, लज्जा एवं कोमलता के साथ–साथ ज्ञान जिज्ञासा के साथ उसे आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए और भारत के नव–निर्माण में उसे अपनी सच्ची और अच्छी भूमिका अदा करने की आवश्यकता है।

आधुनिक नारीवाद एवं भारतीय संस्कृति रू

युगों–युगों से अनेक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक

परिवर्तन की साक्षी रही भारतीय संस्कृति इक्कीसवीं सदी में नारीवाद की आधुनिक प्रवृत्तियों को आत्मसात् कर रही है। सैंधव–काल में जो संस्कृति मातृसत्तात्मक थी वहीं वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति एवं उत्तराधिकार के अधिकार प्रदान करती थी किंतु उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से हेय मानी जाने लगी है और मध्ययुग तक आते–आते भारतीय समाज एवं संस्कृति ने जटिल पितृसत्तात्मक स्वरूप ग्रहण कर लिया। लिंग–भेद के आधार पर स्त्री–पुरुष की भूमिका का निर्धारण कर दिया गया और नर–कृत शास्त्रों ने नारी को गृह – बंदिनी, रूढ़ एवं धर्मबंदिनी की नयी परिभाषा में ढाल दिया।

किंतु हजारों वर्षों तक शोषित एवं पीड़ित रहने के बाद ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति में बदलाव आने लगा। शिक्षा सुधार के प्रयास, पश्चिमी उदारवाद, मानवतावाद, समानता एवं स्वतंत्रता के आदर्शों के लिए स्वाधीनता आंदोलन एवं संविधान में महिलाओं को दिए गए अधिकार, हक, शिक्षा, व्यवसाय, जैसे आधुनिक कारकों के प्रभाव से महिलाओं के स्थान और भूमिका में परिवर्तन आया है।

आज जब वैश्वीकरण के चलते विश्व एक कुटुम्ब में परिणत हो रहा तो भारत की नारी भी अन्य राष्ट्रों, समाजों की नारियों, उनकी जीवन शैली, स्थिति आदि से परिचित हो रही है। इसी परिचय ने आधुनिक नारी को भारतीय संस्कृति के अपनाने का अहसास कराया है। आधुनिक नारी देवी के सिंहासन से उतरकर श्स्त्रीश के रूप में पहचान के लिए संघर्षरत है। माँ, बेटी, बहन, पत्नी, प्रेमिका और बहू के रूप में मैं स्वयं को सिद्ध करने के बजाए आज की स्त्री अपने को स्त्री के रूप में सिद्ध करना चाहती है। आधुनिक नारी स्वतंत्र है। सत्ता की दांव–पेंच हो, या खेल का मैदान, वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रयोगशाला हो या कला–साहित्य का संसार, अंतरिक्ष की ऊँचाईयाँ हों या सिन्धु की गहराइयाँ, आज जीवन के हर क्षेत्र में नारी ने अपने चरण–चिह्न अंकित किए हैं।

यह सच है कि नारी प्राचीन युग में अभिशप्त जीवन से निकलकर आधुनिक जीवन की प्रतियोगिता और स्पर्धा में श्रेष्ठतम स्थान पाने में समर्थ रही है। बावजूद इसके जब भी कोई महिला अपने कर्म योग की लक्ष्मण रेखाओं को लांघकर अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती है तो समाज उसे शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखता है। उसे श्घर तोड़नेवालीश, श्परिवार तोड़नेवालीश या श्कुलटीश जैसी उपमाओं से विभूषित करता है। संस्कृति के तथाकथित पहरूए नारी स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता एवं उच्छृंखलता बतलाकर आधुनिक नारीवादी को भारतीय संस्कृति का विरोधी बतलाने में लगे हैं। वस्तुतः 21वीं सदी स्वतंत्र और सबल परिस्थिति वाली नारी की सदी है। स्त्री के कर्मक्षेत्र के विस्तार की सदी है किंतु ज्यों–ज्यों नारी पुरुष प्रधानता की बेड़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाह रही है, त्यों–त्यों पुरातनपंथी मानसिकता के पुरुषों में छटपटाहट हो रही है। वे जब–जब स्त्री स्वतंत्रता एवं प्रगतिशीलता को उच्छृंखलता बताकर स्त्रियों को पुनः परम्परागत साँचे में ढाल देना चाहते हैं। इस कारण हमारा समाज संक्रमण के दौड़ से गुजर रहा है। श्परम्परा बनाम आधुनिकताश का दौर जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई दे रहा है। संयुक्त परिवारों का विघटन, बुजुर्ग पीढ़ी की समस्या, बच्चों को पर्याप्त अभिभावकत्व न मिल पाना, एकाकीपन, तलाक में बढ़ोत्तरी आदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में नये प्रकार की समस्याएँ हैं, जिनके दुष्परिणामों को झेलने के लिए भारतीय जनमानस सांस्कृतिक तौर पर तैयार प्रतीत नहीं होता है। आज महिलाओं की प्रगतिशील और उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिकाओं के बावजूद उन पर आरोप लगाया जाता है कि वे अपनी स्वतंत्रता का गलत फायदा उठा रही हैं और समाज में अनुशासनहीनता फैला रही हैं। ऐसे आरोपों में आंशिक सत्यता है परंतु अधिकांश पूर्वाग्रह और दुराग्रह से ग्रसित हैं।

सारांश रू

भारतीय संस्कृति में समाज में नारी की स्थिति को सर्वोपरि माना जाता है। नारी घर का, समाज का एवं उन्नत राष्ट्र का निर्माण करने में सक्षम है। पूर्वोत्तर काल में नारी पर अनेक अत्याचार किये गये। पहले मुगलों द्वारा एवं उसके बाद अंग्रेजों द्वारा नारी को शोषित किया जाता रहा। परंतु शनैः शनैः नारी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनी उपस्थिति समाज में दर्ज कराई और उसके पश्चात् लड़कियों को भी लड़कों के समान समझे जाने की शुरूआत हुई। नारी की स्थिति में उत्तरोत्तर विकास, सुधार एवं परिवर्तन आया। नारी के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने पांव जमाना शुरू किया। जैसे– चिकित्सा, इंजिनीयरिंग, सिविल सर्विस, खेल, पुलिस, राजनीति, फौज, उड्डयन, अंतरिक्ष एवं शोध कार्यो में आदि क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। वर्तमान भारत में नारी का उत्तरदायित्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। एक और वह गृहिणी बनकर अपने घर को संभालती है तो दूसरी और घर से बाहर जाकर कोई न कोई कार्य करती है जिससे स्त्री–पुरूष दोनों की आय से घर की गृहस्थी भलि–भांति सुचारू रूप से चलती है। आज जब वैश्वीकरण के चलते सारा विश्व एक परिवार के रूप में परिणित हो रहा है तो भारत की नारी भी अन्य राष्ट्रों–समाजों की नारियों, उनकी जीवनशैली, स्थिति आदि से परिचित हो रही है। इसी परिचय ने आधुनिक नारी को भारतीय संस्कृति के अपनाने का अहसास कराया हे।

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य
सह–आचार्य (कृषि–प्रसार)
श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा
मो. 9460545836
Email : gpacharya-6@gmail-com

संदर्भ :

1. Pathak] Avijit] Indian Modernity] Gyan Publishing House] New Delhi] 1998-
2. Agrawal] N-] Women's Study in Asia and Pacific: An Overview of Current Status and Needed Priorities] APDC] 1983-
3. Desai] Neera] A Decade of Women's Movements in India] Mumbai] 1988-
4. संस्कृति, विकास और संचार क्रांति, ग्रन्थ शिल्पी, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, झा, नागेन्द्र (डा.)
5. संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993(पुनरावृत्ति) देवराज (डा.)
6. उच्च शिक्षा में अध्यापन एवं प्रशिक्षण की प्रविधियाँ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2000।
7. शिक्षा की दार्शनिक प्रणालियाँः सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, (अनुवादक–बालगोविन्द तिवारी) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1975.
8. मोहन, नरेन्द्र, भारतीय संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1997
9. राधाकृष्णन (डा.), हमारी संस्कृति, हिंद पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1995 संसस्करण (अनुवादक–उमापति राय चंदेल)
10.भारतीय संस्कृति रू कुछ विचार, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली (हिन्दी संस्करण)
11. भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी, 1994 (तृतीय संस्करण)(अनुवादक–जगन्नाथ वेदालंकार एवं चन्द्रदीप त्रिपाठी)
12.भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, (अनुवादक दुर्गा शंकर शुक्ल), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2004 (सातवीं आवृत्ति), हुमायूँ, कबीर, स्वतंत्र भारत में शिक्षा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
13. स्त्री जागरण की दिशाएँ, डॉ. सुधा बालकृष्णन, श्नारीःअस्तित्व की पहचान, पृ. 69, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
14.नारीवाद का भारतीय दृष्टिकोण, समपांतर–अक्टूबर 2003, दिल्ली पृ. 19
15.कटारिया सुरेन्द्र, सामाजिक प्रकाशन, कल्याण प्रशासन, आरबीएसए प्रकाशन, जयपुर, 2021
16. पाण्डेय तेजसकर, पाण्डेय नालेश्वर, समाज कल्याण प्रशासन, रावत प्रकाशन नई दिल्ली, 2019

अन्तर्द्वन्दों से मुक्ति : गीता के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 सुमन

सारांश

सामान्यतः जब भी श्री मद्भगवद् गीता के संदर्भ में कोई कथन हमारे समक्ष आता है तब हमारे स्मृति पटल पर महाकाव्य महाभारत के भीष्म पर्व में वर्णित वह स्थिति दर्शित होने लगती है कि जब महान धनुर्धारी अर्जुन दोनों सेनाओं के बीच विभिन्न अंतर्द्वंदों से ग्रसित खड़ा है और वह यह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि उसका सही धर्म व कर्म क्या है ?

धर्म और कर्म का समन्वय यदि उचित सामंजस्य व गहनता के साथ कहीं दृष्टि गोचर होता है तो वह है श्रीमद्भगवद्गीता, जो किभगवान श्री कृष्ण के मुखार विन्द से निस्सृत हुई है।मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन अर्जुन के द्वारा नंदीघोषरथ पर सारथि के रुप में विराजमान भगवान श्री कृष्ण से ग्रहण किया उपदेश ही श्री मद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय में मानव यदि श्री मद्भगवद्गीता का अध्ययन कर ले तो वह अपने जीवन में आंतरिक झंझावातों से मुक्ति पा सकता है। भारत के एक महान दार्शनिक एवं धर्मप्रवर्तक आदिगुरु शंकराचार्य ने "गीता महात्म्य"में सही कहा कि

मलिनेमोचनंपुंसांजलस्नानंदिनेदिने ।
सकृद्गीतामृतस्नानंसंसारमलनाशनम् ॥3॥

अर्थात जिस प्रकार मनुष्य नित्य जल में स्नान करके, अपनी शारीरिक मलिनता का निस्सारण कर सकता है, उसी प्रकार यदि मनुष्य भगवद्गीता–रूपी पवित्र ज्ञानगंगा–जलमें एक बार भीस्नान कर ले तो वह भौतिक जीवन (भवसागर) की मलिनता से सदा–सदा के लिए मुक्त हो जाता है।"

आधुनिक समय में गीता का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए अति आवश्यक है ताकि वह डर, अवसाद, आत्मग्लानि, घृणा, प्रतिशोध, क्रोध, आलोचना, चिंता, निर्णय लेने में असमर्थता, उचित–अनुचितज्ञान का अभाव, अहंकार, लोभ, मोह, धैर्य अभाव, एकाग्रता की कमी, नकारात्मकता इत्यादि आंतरिक द्वंद से मुक्त हो सके। ये अंतर्द्वन्द मनुष्य को सुचारू रूप से कर्म नहीं करने देते।

वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य किसी ना किसी अंतर्द्वन्द से ग्रसित दिखाई देता है, जिस कारण उचित व अनुचित का ज्ञान भी हमारे से कोसों दूर हो जाता है।इन्हीं सब के कारण हमारी कार्य शैली भी प्रभावित होती है।इसका इलाज आज डॉक्टरों के पास भी उपलब्ध नहीं है।इसका निवारण केवल श्रीमद्भगवद् गीता–रूपी पवित्र ज्ञान से ही हो सकता है।श्रीमद ्भगवद्गीता अथ द्वितीयोऽध्यायः जिसे सांख्य योग भी कहा जाता है, भगवान श्री कृष्ण, करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त अर्जुन से कहते हैं कि

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।2.41।।

अर्थात हेकुरुनन्दन (अर्जुन)! इस कर्मयोग में व्यवसायात्मिका बुद्धि केवल एक ही होती है, किन्तु अव्यवसायी (अस्थिर विचार वाले विवेकहीनसकाम मनुष्य) मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही अनन्त और बहु शाखा ओंवाली ही होती हैं।

व्यवसायात्मिक बुद्धि अर्थात आनंद का वह पथ जिसमें दृढ़ प्रकृति का केवल एक ही विचार है, एकचित्त दृढ़ संकल्प है। यह अकेला विचार ज्ञान के सही स्रोत से उत्पन्न होता है।व्यवसायात्मिक बुद्धि वाला मनुष्य, मन की सभी बिखरी हुई किरणों को एकत्रित कर लेता है।वह उन सभी को विवेक, वैराग्य और एकाग्रता के माध्यम से इकट्ठा करता है।वहमन के डगमगाने या ढुलमुलपन से मुक्त है।वहीं अव्यवसायात्मिक बुद्धि वाला मनुष्य अर्थात सांसारिक मन वाला मनुष्य जो सांसारिक कीचड़ में धँसा रहता है तथा जिसके पास एकनिष्ठ संकल्प नहीं है। वह अनगिनत विचारों में आन्नदित रहता है तथा उस का मन सदैव चंचल रहता है।

अगर किसी मनुष्य में विचार बंद हो जाएं तो यह संसार भी उस मनुष्य के लिए समाप्त हो जाता है।परंतु जब यह मन अनंत विचार उत्पन्न करता है और यह संसार भी अस्तित्व में आ जाता है। ।अतः यदि विचार नियंत्रित हैं तो मन वश में हो जाता है और योगी मुक्त हो जाता है।

यदि सफलता के पायदानपर चढ़ना है तो मनुष्य को निश्चय ही व्यवसायात्मिक बुद्धि तो ग्रहण करनी ही होंगी।इसलिए यहां भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुनको ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि से युक्त होने के लिए कहा है।मानव के कर्म करने में भी उसकी बुद्धि का ही योगदान होता है और कर्म के पश्चात फल में भी।इन सब का निर्धारण केवल बुद्धि करती हैं।बुद्धि का निश्चयात्मक होना अत्यंत आवश्यक है। यदि बुद्धि

निश्चयात्मक नहीं है तो हमारा कर्म भी कामनाओं से युक्तहोगा और इन्ही कामनाओं के कारण ही मनुष्य की बुद्धि अव्यवसायात्मिक हो जाती है।जब कि मनुष्य सभी प्रकार की कामनाओं को त्याग कर ही सफलता पास कता है।वर्तमान समय में मानव के लिए यह अति आवश्यक है क्योंकि आज के समय में मानव के पास ऐसी बुद्धि का अभाव है जिसके कारण उसके अंतर्द्वंद निरंतर आरोह–अवरोह की स्थिति मे ंझूंझते रहते हैं।पवित्र विचारों वाले मनुष्य की बुद्धि भी एकाग्र हो जाती है, वही मनुष्य स्थित प्रज्ञ कहलाता है।

मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा भय मृत्यु को माना जाता है। पतंजलि के योगदर्शन में भी, अभिनिवेश या हर कीमत पर जीवित रहने की सहज इच्छा का उल्लेख भौतिक बुद्धि के लक्षण के रूप में किया गया है।लेकिन जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है।तो जब मृत्यु अपरिहार्य है, तो उसके लिए विलापक्यों करें।महाभारत के वनपर्व के अंतर्गत आरणेय पर्व में यक्ष प्रश्न विषयक 313 अध्याय के अंतर्गत श्लोक 116 में युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्न"किमाश्चर्यं" के उत्तर में कहा :–

अहन्यहनिभूतानिगच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्तिकिमाश्चर्यमतः परम् ।।116।।

अर्थात इससंसार से रोज–रोज प्राणी यमलोक में जा रहे हैं किन्तु जो बचे हुए हैं वेसर्वदा जीवित रहने की इच्छा करते हैं इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या होगा?

प्रत्येक मानव यह जानता है कि जिसने जन्म लिया है तो उसकी मृत्यु भी निश्चित है परंतु फिर भी अविवेकता के कारण वह इस का भली–भांतिज्ञान नहीं कर पाता। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को जीवन की इस अत्याज्य स्थिति को समझते हुए कहते हैं कि एक दिन जीवन का अंत अपरिहार्य है इसलिए बुद्धि मान व्यक्तिको इस अवश्यं भावी मृत्यु के लिए शोक नही ंकरना चाहिए।

जातस्तहि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥2.27॥

अर्थात जन्म मृत्यु रूपी प्रवाह के सत्य से मानव जान बूझकर अनभिज्ञता प्रदर्शित करता है लेकिन ऐसे अपरिहार्य विषय को वह टाल नहीं सकता।फिरभीवह घमंड करता है जिसे वह मृत्यु के पश्चात अपने साथ निर्वहन नहीं कर सकता।इसलिए भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि यह धृतराष्ट्र के पुत्र जन्मे हैं तो मरेंगे भी अवश्य ही। ऐसा कोई भी उपाय तुम्हार`पास नहीं है जिससे तुम इन को बचास को।क्योंकि जन्म लेने वाले की तो मृत्यु निश्चित है। इस संसार में कोई अमर नहीं है।परिवर्तनशीलता ही इस सृष्टि का नियम है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु उदय होने के साथ ही अस्त होने का समय निर्धारित करके प्रवाह मान होती है।जैसे सूर्य यदि उदय होता हैतो अस्त भी होगा।इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य उत्थान प्राप्त करता है या किसी ऊंचे पद को पाता है तो उसका भी पतन एक दिन अवश्य होता है।कोई भी वस्तु इस सृष्टि में स्थाई नहीं है तो फिर मानव कैसे यदि कोई सृष्टि के परिवर्तनशील स्वभाव की शिकायत करता हैं तो वह स्वयं की ही अज्ञानता को प्रदर्शित करता है।श्री कृष्ण का जीवन तो आनंद और उत्साह का संदेश देता है। रोदन तो अज्ञानता का लक्षण है तथा हंसना बुद्धिमता का।

ध्यायतोविषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥2.62॥

क्रोधाद्भवतिसम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥2.63॥

अर्थात् विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।आसक्ति से कामना पैदा होती हैं।कामना से क्रोध और क्रोध होने पर संमोह हो जाता है।समोंह से स्मृति भ्रष्ट हो जाती ह`और स्मृति भ्रष्ट होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाताहै।

जब मनुष्य विषयों, भोग विलासो का चिंतन करने लगता है तो शनैः शनैः उन विषयो ंमें आसक्ति उत्पन्न होने लग जाती हैं। यह आसक्ति असद् विचारों से प्रारंभ होती हैं।जब मनुष्य भोग विलासों में अत्यंत रम जाता है तो केवल उसी को पाने की अभिलाषा करता है । यह अभिलाषा मनुष्य की आसक्ति या आकृष्टता से उत्पन्न होती हैं। संसार में इस प्रकार के उदाहरण बहुशः मात्रा में देखने को मिलते हैं कि कितने ही साधक एकमात्र कारण से ही असफल हो जाते हैं और वह एकमात्र कारण केवल उनका विषयों के शिकार होना ही है अर्थात् मनुष्य के नाश के प्रारंभ बिंदु के रूप में हम आसक्ति को मान सकते हैं या यूं कह सकते हैं कि मनुष्य के नाश का आधार या नाश का बिंदु आसक्ति है।मूलदोषों का कारण केवल आसक्ति पर ही आधारित है।आसक्ति से मनुष्य के अंदर कामनाओं की उत्पत्ति होती है और यह कामनाएं असंख्य मात्रा में जन्म लेती है।इन कामनाओं की जब पूर्ति हो जाती है तो मनुष्य इसमें आनंद की अनुभूति करता है और यदि इनकी पूर्ति ना होतो मनुष्य में क्रोध पैदा हो जाता है अर्थात् क्रोध की उत्पत्ति का कारण केवल का मना है और क्रोध होने पर मानव में मूढ़ता का भाव आ जाता है।मूर्खता का भाव आ जाता है।बुद्धि सम्मोहित होने लग जाती हैं यानी कि मनुष्य का

अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रहता । जिस मनुष्य का इंद्रियों पर स्वामित्व समाप्त होजाए उसका विनाश निश्चित है क्योंकि इससे आगे का चरण तो स्मृति के भ्रष्ट करने वाला होता है।जब स्मृति भ्रष्ट हो जाती है तो बुद्धि का नाश तो स्वयं ही हो जाता है क्योंकि यह बुद्धि नष्ट हो जाए तो मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्टहुआ समझना चाहिए क्योंकि केवल बुद्धि ही निषिद् कर्मों को करते समय हमें उससे प्रवृत्त करने का प्रयत्न करती है।

बुद्धि के नाश से तोमनुष्य पशु से भीही नव्यवहार करता है तो फिर वह कभी जीवन में श्रेष्ठ और उच्च ध्येय को नहीं प्राप्त कर सकता है।बुद्धि के नाश से मनुष्य का नाश हो जाता। यहांमनुष्य के नाश से तात्पर्य है किअपने शुद्ध स्वरूप को पहचान कर वह मनुष्य जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य नहीं रह जाता।अतः विषयों के चिंतन को अनर्थों का मूल कारण बताया गया हैं।

अपनेकर्तव्य पालन का अभा वही मनुष्य के अंतर्द्वंद का कारणहै।कर्तव्य पालन से हीमनुष्य सफलहोपाताहै।

स्वे स्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभतेनरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथाविन्दतितच्छृणु॥18.45॥

अर्थात् अपने–अपने कर्म में तत्परता के साथ लगा हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेताहै । अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है उसका वर्ण नही भगवान श्री कृष्ण यहां इस श्लोक में अर्जुन से करतेहैं।

प्रत्येक मानव को अपने स्वभाव व विकास की स्थिति को पहचान कर ही अपने स्वाभाविक कर्म की पूरी साधना के साथ पालना करनी चाहिए।कर्तव्य का पालन करने से जहां प्रथमतः मनुष्य के चित्त की शुद्धि होती है वहीं इसके उपरांत मनुष्य परमात्मा को भी प्राप्त कर लेता है।निरंतर अपने ही कर्तव्य पालन की पूर्णता में मनुष्य इतना अधिकली नहो जाता है कि उसे बाहरी अन्य वस्तुओं का आभास नहीं होता।यही कारण है कि वह परमात्मा के साथ धीरे–धीरे जुड़ता चला जाता है क्योंकि ऐसा मनुष्य अपना ध्यान केवल अपने कर्म पर ही रखता है, अपने कर्तव्य पालन पर ही रखता है, तनि कभी ध्यान फल पर केंद्रित नहीं करता।तो जब मनुष्य अपने कर्तव्य पालन में ही रत हो जाता है तो वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।वह मानव आत्म संतुष्टि के लिए निरंतर अपने कर्तव्य की ओर प्रयासरत दिखाई देता है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभाव के अनुरूप कार्य क्षेत्र में कार्य करते हुए ही सुख एवं पूर्णता का अनुभव करता है।उदाहरण के तौर पर एक छोटे बालक ने भेड़ पालन के कार्य को अस्वीकार कर दिया और वह पेरिस जा पहुंचा।जो कालांतर में विश्व मेंने पोलियन के नाम से प्रसिद्ध महानतम सेनापति बना।इसी प्रकार से अन्य उदाहरण भी जगत में दृष्य है।कोई भी मानव अपनी अभि रुचि के अनुसार यदि कर्तव्य करता है तो वह उस कर्तव्य का पालन भी पूर्णता करने में सक्षम हो जाता है और उसमें वह आनंद की अनुभूति भी करता है और यही आनंद की अनुभूति उसे परमात्मा के साथ जोड़ती है। जैसे यदि कोई कवि हो गातो वह सुख सुविधाओं से युक्त जीवन जीने की अपेक्षा एकांत में रहकर अपने काव्य रचना को करना ही अधिक उपयुक्त मानेगा क्योंकि क्योंकि उसे काव्य रचना करने में ही आनंद की प्राप्ति होती है और जहां कर्तव्य करने के पश्चात या कर्म करने के पश्चात अंतः करण में आनंद की अनुभूति हो तो समझना चाहिए कि ईश्वर के साथ उसका जुड़ाव प्रारंभ हो गया है और यह सर्वदासत्य है कि जो मनुष्य अपने आंतरिक और बाह्य प्रयास अपने किसी उचित कर्म में लगा देता है तो वह कार्य अवश्य ही पूर्ण होता है।क्योंकि वह निष्काम भाव पर आधारित कर्म है।वर्तमान समय मेंभी इस से सीख लेनी चाहिए कि मनुष्य को अपने कर्तव्य पालन की ओर अग्रसर रहना चाहिए। सब प्रकार के भोग विलासों को परे रखकर हमें केवल अपने कर्तव्यों का ध्यान रखना चाहिए, अन्य प्राणियों की क्रिया ओंपर नहीं। ऐसा मनुष्य जो घृणा, अहंकार सबको त्याज्य कर अपने कर्म में ही तत्परता के साथ लगा हुआ है उस मनुष्य को सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है।मानव को अपने कर्तव्यों की ओरस दै वही ध्यान रखना चाहिए जो आज के वर्तमान युग के लिए अत्यंत ही आवश्यक है।

निष्कर्षः–

वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीताही एक मात्र ऐसा ग्रंथ है जिससे मनुष्य ज्ञान, भक्ति, सांख्य, वेदांतमी मांसा इत्यादि का संपूर्ण ज्ञानगहनता से आत्मसात कर सकता है और जिस प्रकार महान धनुर्धारी अर्जुन ने श्री मद्भगवद्गीता के ज्ञान को आत्मसात करके अपने सभी अन्तर्द्वन्दों से मुक्ति पाली उसी प्रकार आज सम्पूर्ण मानव जाति भी श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञान से अपने सभी अन्तर्द् वन्दों से मुक्ति पा सकती है।

संदर्भ :–

- गीताप्रेसगोरखपुर , श्रीमद्भागवतगीता
- गीताप्रेसगोरखपुर, महाभारत
- आदि शंकराचार्य , श्रीमद्भगवतगीता का महात्म्य

डॉ0 सुमन

सहायकप्रवक्ता, संस्कृत

आदर्शमहिलामहाविद्यालय

भिवानी

43

मैत्रेयी पुष्पा के निबन्धों में नारी अस्मिता

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सारांश

संसार में जो कुछ हो रहा है वह पुरुष हो क्या पुरुष का ही अधिकार क्यों हो? नारी क्यों नहीं? यह संघर्ष आज अधिक उभरता हुआ, फैलता हुआ दिखाई दे रहा है पर है तो यह प्राचीन संर्घष ही। मानव इतिहास के लम्बे समय में नारियों की स्थिति में कई उतार–चढ़ाव आए, इस लम्बे इतिहास का निचोड़ यही रहा कि अधिकांश समय में स्त्रियों की स्थिति अन्धकारमय रही। वह शोषण का शिकार रही और उनकी स्थिति पुरुष के मुकाबले बदतर रही। पर वह चुप तो कभी नहीं रही। अपने अस्तित्व में आने के समय से ही सेकंड सेक्स में सीमोन बोउवार लिखती है कि आदम को ईव इसलिए सौंपी गई थी कि वह सर्वोत्तम हो सके, पूर्णता प्राप्त करे सके, पर ईव ने उसे विश्व व्याप्त कर दिया। नारी पुरूष को आनन्द देते हुए उसे पुनः उसी अपार दर्शक मिट्टी में बन्दी बना देती है, जिसे माँ अपने पुत्र के शरीर की रचना करने के लिए अपने गर्भ में धारण करती है और जिससे पुरुष भागना चाहता है। वह नारी पर आधिपत्य चाहता है, पर वह स्वयं उसके अधीन हो जाता है। अर्थाता नारी रूप में और न ही प्रकृति रूप में वह किसी प्रकार निर्बल है, न ही असहाय । पुरूष उसके कोमल और कमनीय समझ कर उस पर पूर्ण अधिकार . चाहता है पर उसकी अव्याख्यायित शक्तियाँ उसे हैरान कर देती हैं। वह उसे समझ नहीं पाता और उसे रहस्यमय समझ कर उसकी उपासना शुरू कर देता है।

पूरे संसार में स्त्रियों की स्थिति, उसका इतिहास लगभग एक जैसी दशा प्रस्तुत करता है। सामाजिक रूप में कभी वह कमजोर रही तो वेदों में ऋचाएं लिखने का गौरव भी उसने हासिल किया। दूसरी और रोमन साम्राज्य में भी स्त्रियों की स्थिति दोहराव भरी रही। सीमोना द– बोउवार लिखती है चूँकि स्त्रियां पुरूषों के साथ शिकार में जाती थी रथ दौड़ाती थी, कानून मामलों में दखल देती थी, कुश्ती लड़ती थी, अतः वह पुरूषों की प्रतिद्वन्द्वी और दुश्मन भी होती थी, पुराने गणतन्त्रीय रोम की स्त्रियां परिवार में एक विशिष्ट स्थान रखती थी, किन्तु उनके पास वैध अधिकार नहीं होते थे और न ही किसी प्रकार की आर्थिक स्वतन्त्रता थी। स्थिति स्पष्ट है स्त्रियां सम्भवत इतना ही नहीं और भी बहुत कुछ चाहती थी देवी के रूप में अपनी उपासना को उन्होनें गौरव मयी मानने से इन्कार कर दिया। वेदों में ऋचायें लिखने के अधिकार को उन्होनें सन्तोष जनक नहीं माना साथ में शिकार खेलने जाने को भी उन्होनें पर्याप्त नहीं माना। परिवार में व समाज में ऐसा बहुत कुछ था जहां वह असहज महसूस करती रही। जहाँ केवल पुरूष था और स्त्रियां उसकी खामोश अनुगामिनी। अतः सतह के नीचे और सतह के ऊपर एक शान्त कुलबुलाहट के रूप में नारी अस्मिता का संघर्ष चलता रहा।

नारी अस्मिता के इस संघर्ष में पुरूष भी जुड़ते रहे। सन्त रामनुजावचार्य एवं ज्योतिबा फुले, राजा राममोहन राय नारी समानता के व्यापक विचार को लेकर आगे आए उन्होनें समाज के विरोध की परवाह किए बिना नारी समानता के विचार को आगे बढ़ाया। वस्तुतः यही वह चीज थी जो स्त्रियों को चाहिए थी। किन्ही विशिष्ट स्थानों पर नहीं विशिष्ट अवसरों पर नहीं हर जगह उन्हें समानता का अवसर चाहिए था। जोसेफ गाधिया ने लिखा है "तुलसीदास की एक चौपाई हम अक्सर भूल जाते है। पराधीन सपनेहू सुख नाही। बहुत कम लोग जानते होगें कि ये पार्वती की माँ के उद्गार हैं जो पार्वती को विदा करते समय उसके मुख से निकले थे। पूरी चौपाई का अर्थ है कि ब्रह्म ने नारी को बनाया ही क्यो जो उसे सपने में भी पराधीनता मिली।

ज्योतिबा फुले का विचार था कि जब तक नारी शिक्षित नहीं होगी वह अपनी स्थिति समझ नही पाएगी। और जब तक वह अपनी स्थिति समझ नही पाएगी तब तक आवाज नहीं उठाएगी और जब तक स्त्री स्वयं अपने लिए आवाज नहीं उठाएगी उसकी स्थिति बदलेगी नहीं। इन प्रयासों की यत्किंचित सफलता ही थी जिन्हें आधुनिक काल में तमाम महिलाओं का लिखने पढ़ने और बोलने के लिए प्रेरित किया। अमृता प्रीतम, आशारानी, व्होरा, प्रभा खेतान, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, उषा प्रियवंदा आदि महिलाओं ने जब लेखन जगत में प्रवेश किया तो समाज और साहित्य में तहलका मच गया। पुरूष चौंक गए। और वे स्त्रियाँ जिन्होने अपनी परवश्ता को अपनी नियति मान लिया था हैरान रह गयी कि क्या अपने बारे में वे पुरूष के सामने खड़े होकर इस तरह लिख सकती हैं। आज इन लेखिकाओं की कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, निवन्धों आदि विधाओं में नारी अस्मिता का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जो अनछुआ हो जहां इनकी लेखनी न पहुंची हो। और जहां उनके तेवर खुलकर स्पष्ट

न हुए हों। आज की नारी क्या चाहती है? किस तरह चाहती है? वह क्या सोचती है ? आदि विचारों का प्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने अपने निबन्धोंरिपुस्तक खुली खिड़किया में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से रखा है। अपनी छः खण्ड़ों में बंटी पुस्तक के प्रथम खण्ड धर्म में उनका पहला निबंध हैं पति की जाति का पट्टाश इसमें उन्होंनें पुरूष के वर्चस्व को नकारने की शुरुआत अपने घर अपने पति से ही करने का आह्वान कर डाला है। नारी आक्रोश इतना अधिक है कि वह स्त्री का विवाहोपरान्त नाम बदले जाने से ही भड़क जाती है। वह कहती है। कि सीमा चड्ढा अब श्रीमति सीमा अरोड़ा हो गयी है तो रति खण्डेवाल अब श्रीमति रति अग्रवाल है। जाति गोत्र बदलने का यह विधान असल में विवाह की शर्त है जो लड़की पर लागू होती है।

उनका कहना है कि समर्पण की सारी जिम्मेदारी केवल स्त्रियों पर ही क्यों डाली जाती है। अपने अस्तित्व को मिटाने का यह खेल स्त्री के पाले में ही क्यों? फिर चाहे वह नाम बदलकर अपना अस्तित्व समाप्त करना हो या देह को जलाकर समाप्त करना हो अस्तित्व मिटाने की यह स्थिति स्त्री को सती प्रथा तक ले जाती है। हैरानी की बात यह है कि जब पूरा देश सती प्रथा को गलत मानने लगा है। अभी भी कुछ ऐसे लोग है जो सती प्रथा के महिमा मण्डन से चूकते नहीं। अपनी नारी प्रश्न नामक पुस्तक में सरला माहेश्वरी लिखती है। ष्रूपकंवर को सती बनाकर मार क्या डाला गया प्रभाष जोशी की तो बाछें खिल गई। तत्काल जनसत्त का एक सम्पादकीय आया अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोग इसकी महानता को कतई नहीं समझ सकेंगे। यह तो एक समाज के धार्मिक और सामाजिक विश्वासों का मामला है।

खुली खिड़कियों में दूसरा खण्ड है संस्कृति जिसका पहला निबन्ध है सुहाग मेले में स्त्री मैत्रेयी पुष्पा यहां पर नारी परतन्त्रता के दूसरे मगर महत्वपूर्ण पहलू पर चोट करती है। परतन्त्रता की ऐसी गौरवशाली उद्घोषणा स्त्री के ही हिस्से में आ सकती थी। विवाह की संस्था अगर समाज निर्माण के लिए उपयोगी है भी तो उसका घोषणा पत्र केवल नारी ही लेकर क्यों घूमे ? पुरुष क्यों नहीं? विवाह की घोषणा का सारा तामझाम उसी के नाम कोई कहेगा ये सांस्कृतिक विरासत है इसे सहेज कर रखना है मगर सवाल उठता है कि अब तक स्त्री ने और किया ही क्या है ? यही न करती जो मनुष्य रूप में उसकी यात्रा हजारों साल लम्बी न हो जाती । अस्तित्व के लाले पड़े होते जाहिर है कि उसे अपने प्राणों से ज्यादा सुहाग प्यारा है। बिन्दी, चूड़ी, मंगल सूत्र लुभाते ही नहीं कहीं सुरक्षा का अहसास भी देते है।

खुली खिड़कियाँ का तीसरा खण्ड है समाज इस खण्ड तक आते आते मैत्रेयी पुष्पा को लगता है कि स्त्री के अंधेरे बन्द कमरे की खिड़कियों के पट चरमरा रहे है। उनमें लगी धूल झड़ने लगी है। उनकी दरारों से आने वाली रोशनी ने निश्चिंत निद्रा में सोये समाज को चौका दिया है। खिड़कियां खुलने की तीखी चरमराहट से समाज के उनीदी अवस्था में जकड़े परिन्दे फड़फड़ाकर उड़ गए हैं। यह स्त्री की जागृत अवस्था का ऐलान है। मैत्रेयी पुष्पा अपने निबन्ध श्स्त्री रू एक सफर में कहती है यात्रा बड़ी लम्बी रही। सतीत्व की लुकाठी से अपनी इच्छा आकांक्षाओं को कूटते–पीटते हुए, सती सावित्री के दृष्टान्त का दम साधते हुए हम आ गए। पतिव्रत धर्म की राह पर थके, गिरे और हलकान हुए यह बात केवल हम ही जानते है। समाज तो बस इतना जान पाया कि सतियों के पास पुरुष का मौत के मुंह से खींच लाने का तेज है। यह मुगालता नहीं, क्योंकि हम बेशक शेष हो गए मगर रहे सौभाग्यवती ही।

मैत्रेयी पुष्पा कहना चाहती है कि स्त्री के इतने लम्बे सफर बल्कि मानवता के इतने लम्बे सफर से आगे बढ़ते हुए हम आज टैक्नोलोजी के युग में आ गए पर पुरुष अभी भी स्त्री को वहीं का वहीं देखना चाहता है। वही हजारों साल पहले की स्त्री के रूप में जहां वह अपने सतीत्व का क्षय होने से पहले प्राण दे देगी या कि पति को देवता मानेगी। पर अब ऐसा नहीं होगा। स्त्रियाँ तेजी से बदल रही है। ष्गुस्ताख औरत समर्पण से मुंह मोड़ने लगी। अपनी कामनाओं (वासनाओं) की पूर्ति आजाद होकर करना चाहती है। पुरुष भौंचक है यह सब उसकी समझ से परे है। हालांकि स्त्री उसकी माँ है उसकी बेटी है उसकी बहिन है, उसकी प्रिया है परन्तु उसकी आजादी में उसे अनर्थ दिखता है। वह उसे धिक्कारता है। उसकी आजादी की कामना के लिए फटकारता है। स्त्री दोराहे पर उसके मन में द्विविधा है वह आत्म संघर्ष में फंस रही है। उसके लिए यह कठिन समय है। उसके एक तरफ है वह स्त्री जो पति के साथ है, सौभाग्यवती मानी जाती है, गृह लक्ष्मी और सुलक्षणी जैसे कि विशेषणों से शोभित, पति के साए में रहती है, सरक्षित, रोटी, कपड़ा और मकान की चिन्ता से मुक्तश। दूसरी ओर उसके सतत संघर्ष के परिणाम से उसके सामने खुलती खिड़कियाँ है कि अब उसे अपने स्वामी (शासक) की वीभत्स मानसिकता का रोज–रोज शिकार होना रास नहीं आता। उसकी झाड़ और मार–पीट हमारा क्रूरतम सौभाग्य है। यदि जैसा कि होता आ रहा था, होता जा रहा है तो क्या लाभ हुआ हमारी आर्थिक निर्भरता का ? कि उसके संघर्ष से सूरज तमतमा उठा है कि उसकी ठण्डी पड़ती देह फिर से दहकने लगी है। वह अपने में बदलाव अनुभव कर रही है। और वह अपने परिवेश को अपने अनुसार बदलने के लिए आतुर है। स्त्री के लिए घोषित सारी वर्जनाएं उसे अभिशाप नजर आती है कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहां वह स्त्री होने के नाते रूकने को तैयार है। वह हर दिशा में आगे बढ़ना चाहती है और वह भी

पुरूष की निर्भरता के बैगर ।

खण्ड – चार श्साहित्यश के नाम से है और उसका पहला निबन्ध है श्अश्वेत औरतों की काली मशालश नारी अस्मिता के इस जलते सफर में चलते हुए मैत्रेयी पुष्पा दुनियां की महिलाओं को भूली नहीं और उन्होने उनमें से उन महिलाओं को चुना जो जीवन के इस संघर्ष में हमारे देश की महिलाओं की यन्त्रणाओं के समान्तर है। यह निबन्ध उन्होने दक्षिण अफ्रीकी कवियित्रियों के कविता संग्रह ष्काली मशालष पर लिखा है। उन्होंने दक्षिण अफ्रिकी स्त्रियों पर ही क्यों लिखा ? सम्भवतः वह उनमें अपने देश की महिलाओं के लिए प्रेरणा खोजती है। वह कहती है ष्दोनों देश की स्त्रियों में फर्क यह है कि एक आजादी के पहले गोरे लोगो का कहर झेल रही है, दूसरी स्वतन्त्रता के चौव्वन वर्ष बाद अपने देशवासियों की हिंसा बर्दाश्त करते हुए क्षत–विक्षत है तन से और मन से –क्या यह हम भारतीय स्त्रियों को अपनी महान संस्कृति होने और सीता–सावित्री का पाठ अदा करते रहने की सजा है। हम नहीं –– सोच सकते अफ्रिकी स्त्रियों की तरह कि हमारे आदमी साथ नही है। हम सारे काम आदमियों के कर रही हैं हमारे पति यहां नहीं है हम पति के दायित्व का निर्वाह करके परिवार पाल रही हैं हमारे बच्चे पिता के साए बिना पलते है। किसी की भी सहायता बिना हमें इस धरती की फसल लेनी है। हमारे देश की स्त्रियाँ पूरे विश्वास के साथ ऐसी घोषणा अभी भी नहीं कर सकती। क्योंकि आजादी का यह संघर्ष किसी विदेशी सत्ता से नहीं अपितु घर की सत्ता से है वह घर जो स्त्री के बिना बनना सम्भव नहीं। वह घर जिसे बनाने के लिए एक स्त्री जब अपना कन्धा लगा देती है तो चेतनाहीन होकर एक जड़ दीवार बन जाती है और तब वह घर में होने वाली घटनाओं की सूत्रधार नहीं केवल मूक दर्शक भर होती है। तो क्या हम दक्षिण अफ्रीकी स्त्रियों की तरह अपने हाथ में मशाल लेकर रोशनी का त्यौहार मना सकती हैं। शर्त यह है कि मशाल में लगी हुई लकड़ी की फसल उसने अपने पसीने से उगाई हो। पुस्तक का पाँचवां खण्डे श्राजनीतिश को समर्पित है जिससे पहला निबन्ध ष्हष गिर गिर पड़ती संन्यासिनीष मैत्रेयी पुष्पा राजनीति में प्रवेश पाईं उन नारियों से हतप्रभ है जिनके ऊपर नारी अस्तित्व को बचाने की जिम्मेदारी थी औरतें ष्तो बधाइयां देकर या निकटता बनाकर भ्रष्टाचारियों की हौसला अफजाई क्यों करती है ? शर्म नहीं आती जब झाले–बुन्दे लटका कर बेईमानों के लिए दाना–पानी जुटाती हुई तमाम पैतरे इस्तेमाल में लाती है।ष राजनीति में उनका विजन डगमगा गया है। अस्मिता का संघर्ष चाटुकारिता में बदल गया है। यह एक विडम्बना ही है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. दे सेकेण्ड सेक्स सीतमोन द बोउवार प्रभा खेतान रूपान्तर (स्त्री उपेक्षिता) हिन्द पॉकेट बुक्स पृ0–89
2. सीमोन बोउवार (द सेकेण्ड सेक्स) का रूपान्तररू स्त्री प्रभा खेतान, वही पृ० 61
3. जोसेफ गाथिया – भारत में बालिका कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली – पृ० 46
4. खुली खिड़कियाँ मैत्रेयी पुष्पा सामयिक प्रकाशन, पृ० 15
5. सरला माहेश्वरी नारी प्रश्न, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ०142)
6. खुली खिड़कियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन पृ० 37
7. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ सामयिक प्रकाशन पृ०–95
8. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ सामयिक प्रकाशन पृ०– 95
9. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ सामयिक प्रकाशन पृ० 101
10. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ सामयिक प्रकाशन पृ० 145
11. मैत्रेयी पुष्पा, खुली खिड़कियाँ सामयिक प्रकाशन पृ०–220

डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा

एसो. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)

गो. ग.द. सनातन धर्म, स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

पलवल (हरियाणा)

44

वैदिककालः—नारी के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 सुमन

सारांश

वैदिक समय भारतीय ज्ञानगंगा का ऐसा प्रकाश पुंज है ंजिस सेनिः सृतदिव्य किरणें आज भी मानव जाति को प्रभूत प्रेरणा प्रदान करते हुए प्रकाश मान कर रही हैं । ऐसे स्वर्णिम वैदिककाल में जब हम नारी के परिप्रेक्ष्य के बारे मे ंविचार करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में नारी का पूजनीय रूप उपस्थित हो जाता है । वैदिक समय मेंस्त्रियों का स्थान अत्यंत ही गौरव पूर्ण था । उस समय स्त्रियां धर्म मे ंनिपुण, पूजा कार्य में दक्ष, कुल को अग्रणी बनाने मे ंअपना योगदान देती थी।इसीलिए गृहिणी, गृहस्वामिनी, सह धर्मिणी इत्यादि विशेषणो से संबोधित की गई हैं।न्याय युक्त समाज का निर्माण करने में इन नारियों का ही विशेष योगदान हैं।

यत्र नार्यस्तुपूज्यन्तेरमन्ते तत्र देवताः ।

यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।

मनुस्मृति 3—56

सर्वप्रथम मनुस्मृति ग्रंथ में ही यदि देखें तो इसमें कहा गया है कि महिलाएं पूजा के योग्य हैं। घर में सभी के लिए ज्ञान का दीपक है।जिन घरों मे ंमहिलाओं की पूजा होती हैं, वहां देवता निवास करते हैं।जहां महिलाओं का सम्मान नहीं होता, वहां किए गए समस्त अच्छे कर्म भी निष्फल हो जाते हैं।

शोचन्तिजामयो यत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम् ।

ने शोचन्तितु यत्रैतावर्धते तद्धि सर्वदा।।

मनुस्मृति 3—57

अर्थात् जिस कुल में महिलाएं कष्ट भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।जहां स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सदैव समृद्ध रहता है।

सामान्यतः वैदिक युग से अभिप्राय ईसा से 2500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक की अवधि को माना जाता है।उसी काल खण्ड में जब चार वेदों— ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद को संकलित किया गया था।वेदों में वस्तुतः कर्मकांड, दर्शन आदि का वर्णन मिलता है परंत इसी वर्णन में हमें उस काल खण्ड की सामाजिक स्थिति की झलक भी मिलती है।साथही, इस सामाजिक स्थिति से हमें उस युग में महिलाओं की स्थिति का भी ज्ञान होता है।

वेदों में महिलाओं का परिचय

वैदिक समय में महिलाओं को महान गुणों और ज्ञान का अवतार माना जाता था।भारतीय संस्कृति में आज भी ऐसा माना जाता है कि जहां महिलाओं की पूजा की जाती है, वहां देवताओं का वास होता है। सदियों से चली आर ही वैदिक संस्कृति में महिलाओं को सर्वोच्च स्तर का सम्मान और स्वतंत्रता, साथ ही संरक्षण और सुरक्षा प्रदान की गई है।प्रारंभिक वैदिक युग में महिलाओं को समाज में एक सम्मानित स्थान प्राप्त था।पत्नी घर की स्वामिन और अधीन स्थदासों पर अधिकार रखती थी।सभी धार्मिक समारोहों में वह अपने पति के साथ शामिल होती थी।पर्दा प्रथा समाज में प्रचलित नहीं थी।सती प्रथा भी वैदिक समाज में प्रचलित नहीं थी।वैदिककाल में लड़कियों की शिक्षा की उपेक्षा नहींथी।इसलिए हमें वेदों में इस बात के साक्ष्य मिलते हैं कि महिला ऋषियों ने समाज और वेदों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।हालांकि लिखित प्रमाण बहुत कम ही मिलते हैं, फिर भी वेदों में लगभग 30 महिला ऋषियों (ऋषिकों) का नाम मिलता है, जैसे विश्ववरा, अपाला और घोषा आदि जिन्होंने मंत्रों की रचना की और ऋषि का पद प्राप्तकिया।

वैदिक समाज में महिलाएं

वेदों और अन्य हिंदू शास्त्रों के अनुसार, वैदिक युग के दौरान महिलाओं को समाज में एक उच्च स्थान दिया गया था, और सामान्तया वे पुरुषों से श्रेष्ठ मानी जाती थी । इस बात के साहित्यिक प्रमाण हैं किम हिलाओं के पास शक्ति थी, जो राज्यों और शक्तिशाली शासकों को नष्ट कर सकती थी। 'शक्ति' की प्राचीन हिंदू दार्शनिक अवधारणा, ऊर्जा का स्त्री सिद्धांत, भी इसी युग का एक उत्पाद था।इसने महिला मूर्तियों या देवी की पूजा का रूप ले लिया।

"उष्टयमशायं यशस्लासमसुवीरंदासप्रवणंरायमश्वबुद्धयम,

सुंदस्स्सश्रावसा य विभासिवजप्रसुतासुभंगवृहंतन।"

ऋग्वेद, अध्याय 5, (सूक्त 92, श्लोक—8)

जो कहता है, "हेनारी! आप सौभाग्य, अच्छे कर्म, प्रसिद्धि, अनाज और अन्य खाद्य पदार्थों के निर्माता हैं, हे उषा! हमें आशीर्वाद दें, अच्छे बच्चे, नौकर, घोड़े, धन और प्रसिद्धि।" जिसका अर्थ है कि महिलाओं को न केवल एक नए जीवन के पुनरुत्पादक के रूप में सम्मानित किया जाता है, बल्कि बच्चों और परिवार के पालन—पोषण, संरक्षक और निर्वाहकर्ता के रूप में भी सम्मानित

किया जाता है।

भारतीय संस्कृति में माना जाता है कि लोकप्रिय हिंदू देवी–देवताओं के स्त्री रूपों ने वैदिक युग में आकार लिया था। ये स्त्री रूप ब्राह्मण के विभिन्न गुणों और ऊर्जाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए आए।देवीकाली विनाशकारी ऊर्जा, दुर्गा सुरक्षात्मक, लक्ष्मी पौष्टिक और सरस्वती रचनात्मक का चित्रण करती हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि हिंदू धर्म दिव्यता के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों गुणों को मान्यता देता है उदाहरणतः राधा–कृष्ण, सीता–राम, उमा–महेश और लक्ष्मी–नारायण आदि। यह पहलू वैदिक काल में स्त्री रूप की दिव्यता को दर्शाता है।विश्व में सर्वप्रथम यदि किसी समाज ने नारी–पुरुष दिव्य युगल (अर्धनारीश्वर) को पहचान दी तो वह भारतीय वैदिक समाज ही था।वैदिककाल की यह स्थिति प्रमाणित करती है कि वैदिक समाज में स्त्री, पुरुषों से श्रेष्ठ मानी जाती थी।

शिक्षा

वैदिक समाज में कन्या के जन्म को देवी का अवतार माना जाता था और यही कारण है कि परिवार और समाज ने उनकी शिक्षा के लिए कोई प्रतिबंध नहीं लगाया था।महिलाएं उपनयन संस्कार में भी सम्मिलित होती थी।वैदिककाल में कन्याएं विवाह किए बिना ज्ञान ग्रहण कर सकती थी।वैदिक साहित्य में इन कन्याओं के लिए विशेष वैदिक शब्द 'अमजुर' (एक अविवाहित महिला) का प्रयोग मिलता है।जो विदुषी अपना संपूर्ण जीवन सत्य और ज्ञान की खोज में समर्पित कर देती थी उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' के नाम से जाना जाता थात था जो विदुषी अपने विवाह से पूर्वत कधर्म शास्त्र और दर्शन शास्त्र का ज्ञान ग्रहण करती थी उन्हें 'सद्योद्वाह' के नाम से जाना जाता था।

वैदिक ऋषिकाएंवेतपस्वी, विदुषी ,श्रेष्ठगुणों से युक्त, विविधविधाओं में कुशल वह ज्ञानवती महिलाएं हैं जिन्होंने अपनी तपस्या से वेदों के मंत्रों की रचना करते हुए संसार को भी उस ज्ञान से परिचित करवाया।वेदमंत्रों का व्याख्यान एवं प्रकाशन भी केवल जनहिताय के लिए किया।इन्होंने अपने योगदान से गूढ़ ज्ञानको दृष्य करके हमारे सम्मुख उपस्थित किया । अपनीत पश्चर्या से वैदिक मंत्रों के रहस्य से परिचित करवाया और उस असीमित, प्रकाशमयी ज्ञान से साक्षात्कार करवाया जो सर्वथा कल्याणकारी है।वैदिक ऋषिकाएं केवल ऋग्वेद में ही लगभग 30 हैं। ये महिला ऋषि वैदिक परिवार से ही संबंध रखती है। ये किसी ऋषि की पत्नी, पुत्री व बहन है तो कुछ देवताओं व ऋषियों की माता भी हैं। ऋग्वेद में महिला ऋषिकाओं द्वारार चितमंत्रों का संकलन भी है।जिनमें विषेशतः ऋग्वेद में रोमसा, लोपामुद्रा, अपाला, कद्रू, विश्ववारा, घोषा, जुहू, वागंभृणी, पौलोमी, यमी, इंद्राणी, सावित्री और देवजामी आदि ऋषिकाओं का विवरण मिलताहै।है।इसी तरह सामवेद में नोधा, आकृत भाषा, सिकता निवावरी और गौपायन आदि ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता हैं।

विवाह

वैदिक काल में, एक महिला परिपक्वता प्राप्त करने के बाद ही अपने पति का चयन कर सकती है। यदि उसके माता–पिता सक्षमन हीं हैं तो वह स्वयं अपने पति का चुनाव कर सकती है। इस प्रकार मनुकन्या को अपनावर चुनने का अधिकार प्रदान करते हैं।लड़कियां अपनी इच्छा से या 'स्वयंवर' के माध्यम से अपनावर चुनने के लिए स्वतंत्र थीं। युवावस्था से पहले होने वाली शादियों को अपना साथी चुनने का मौका दिया गया। प्रेम विवाह के मामले भी आए।पति और पत्नी दोनों ने गृह का गठन किया और उन्हें 'गृहिणी' (पत्नी), 'अर्धांगिनी' (उनके पति का आधा हिस्सा) या 'समराजिनी' (रानी या मालकिन) माना गया। शादी के माध्यम से एक परिवार में आमंत्रित किया गया, वह" जैसे एक नदी एक समुद्र में प्रवेश करती है "और" परिवार के अन्य सदस्यों पर अपने पति के साथ रानी के रूप में शासन करने के लिए"प्रवेश करती है।

प्राचीन संस्कृत मेंपत्नी के लिए प्रयुक्त होने वाली उपाधियाँ हैं–पत्नी–जो जीवन भरपति का नेतृत्व करती हैं।धर्मपत्नी–जो पति को धर्म करने के लिए मार्गदर्शन करतीहै। सहधर्म चारिणी–वह जो अपने पति के साथ धर्म और कर्तव्य के मार्ग पर चलती है। यद्यपि उस समय समाज पितृ सत्तात्म कथा और गृहस्वामी द्वारा शासि तथा, जो कि परिवार के अन्य सभी सदस्यों पर लगभग पूर्ण नियंत्रण रखता था और उसकी पत्नी आजीवन कर्तव्यों और आज्ञाकारिता के सख्त बंधन से बंधी थी, फिर भी पत्नी या सह धर्मचारिणी के रूप में, एक पत्नी का पूरा अधिकार था।वह अपने पति के साथ सभी सामाजिक और धार्मिक समारोहों में भाग लेने का अधिकार रखती थी।वह घर की अधीन स्थभागीदार और संयुक्त स्वामिनी थी।वेदकहतेहैं, "पत्नी को 'अग्निहोत्र' (यज्ञ), संध्यावंदना औरअन्य सभीधार्मिक अनुष्ठान करने चाहिए। यदि किसी कारण से उसका पति मौजूद नहीं है, तो अकेले महिला को यज्ञ करने का पूरा अधिकार है।"

तलाक, पुनर्विवाह और विधवापन

बहुत ही विशेष परिस्थितियों में महिलाओं के तलाक और पुनर्विवाह की अनुमति थी। यदि महिला के पति की मृत्यु है, तो उसे पति की मृत्यु के बाद होने वाली निर्मम प्रथाओं से गुजरने के लिए मजबूर नहीं किया गया था।उसे अपना सिर मुंडवाने के लिए मजबूर नहीं किया गया था, न ही उसे लाल साड़ी पहनने और 'सहगमन' करने या

मृतपति की चिता पर मरने के लिए मजबूर किया गया था। यदि वे चाहें, तोपति के गुजर जाने के बादवे एक 'संन्यासी' का जीवन व्यतीत कर सकती हैं।

मातृत्व–

"आदिनमात॥विशद यास्वा शुचिरहिंस्यमानउर्वियाविवार्ध्वे ।
अनु यत पूर्वाअरुहतसनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासुधावते ।।"
'ऋग्वेद, मंडल–1,सूक्त–141, श्लोक–5'

जो कहता है, " पत्नीत्व का आध्यात्मिक परिवर्तन है, मातृत्व। पत्नी माँग सकती है और करती भी है, पर माँ देना अपना सौभाग्य समझती है। यदि पत्नी के रूप में स्त्री सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण है, तो माँ के रूप में स्त्री आध्यात्मिक रूप से गौरवशाली है।वैदिक संस्कृति प्रत्येक पुरुष को सभी महिलाओं को एक दिव्य माँ के रूप में देखने के लिए प्रशिक्षित करती है।हमारे शास्त्रों के अनुसार माता–पिता या गुरु से भी अधिक पूजनीय है।

"तन्नोफत्तोमयोभुवतेभेषजतन्मनाप्रवीयातत्तपिताध्यु,
तदग्रेवनः सोमसुतोमयोभुस्तदशिवनश्रुरुतमदिग्श्यन युवाम।"
'ऋग्वेद, मंडल–1, सूक्त 89, श्लोक–4'

यह पृथ्वी को माता और आकाश को पिता के रूप में दर्शाता है जो हमारे जीवन मे ंनिर्माता, संरक्षक और भरने वाले क्षेत्र का स्रोत है। एक प्रमुख आधारशिला के रूपमें, एक माँ के कर्तव्य थे कि उसे सामाजिक और धार्मिक जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए बच्चों को कोमलता से पालना था।उसे नौ महीने तक अपने गर्भ में एक बच्चे को पालने के लिए धरती माँ और बच्चे को पोषण देने और उसके बच्चे को शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, सामाजिक और मानवीय रूप से विकास में सहायता करने के लिए माँ के रूप में माना जाता था।भीष्म पितामह ने महाभारत में भी कहा है–

"सच्चा ज्ञान सिखाने वाला शिक्षक दस शिक्षकों से अधिक महत्वपूर्ण होता है।सच्चेज्ञान के ऐसे दस शिक्षकों की तुलना में पिता अधिक महत्वपूर्ण होता है, और ऐसे पिताओं की तुलना में माँ अधिक महत्वपूर्ण होती है।इससे बड़ा कोई गुरु नहीं होता है।"माताओं।"महाभारत, शांतिपर्व, 30.9

माँ बच्चे की पहली गुरु होती है, इससे पहले कि बच्चा घृणा या आक्रामकता सीखता है, वे सब से पहले माँ के माध्यम से मानवता और प्रेम को जानते हैं जो बच्चे में क्षमा और दया के तरीके स्थापित कर सकती है।दूसरोंको भी उनके सजने–संवरने और प्रेरणा दायक स्वभाव के कारण पथ–निर्णाय कमाना जाताहै, वह आक्रामकता को संतुलित करती हैं और नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों को रखती हैं।

धर्म

प्रारंभिक वैदिक सभ्यता में, महिलाओं को हमेशा बिना किसी बाधा के 'धर्म' का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।महिलाएं आध्यात्मिकता में एक निर्णायक शक्ति और नैतिक विकास की नींव के रूपमें खड़ी थीं।धर्मशास्त्र ने एक पवित्र पत्नी को देवी के पद तक पहुँचाया है।वह पुष्प की तरह है जिस केसके बिना घर एक घने जंगल की तरह है। शाही परिवारों में कुछ हदत कबहु विवाह का प्रचलन था, लेकिन आमतौर पर एक विवाह का नियम था।

यदि कोई लड़की अविवाहित रहती है, तो उससे अपेक्षा की जाती थीकि वह अपने पिता और बाद में अपने भाइयों की छत्रछाया में रहे।हालाँकि, स्थिति को आधिकारिक हस्तक्षेप से बहुत अधिक नुकसानन हीं हुआ। यद्यपि विवाह, सामाजिक और धार्मिक महत्व का था परन्तु फिर भी कन्या़ की पसंद पर निर्भर करता था। ऋग्वेद में बाल विवाह का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।"घोषा जैसी अविवाहित लड़कियों का निरंतर उल्लेख, जो अपने माता–पिता के घर में पली–बढ़ी , प्रेमियों को जीतने के लिए उत्सव के अवसरों पर युवतियों द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों के संदर्भ, युवकों के प्रेमालाप के लिए वह प्यार करता है, प्रेमी के उपहारों के लिए , उनके आपसी प्यार के लिए आदि। यह सभी साक्ष्य लड़कियों के यौवन तक पहुंचने के लंबे समय बाद शादी करने की प्रथा के पक्ष में बोलते है।

निष्कर्ष:

वेदों में यह इस बात वर्णन स्पष्टतः मिलता है कि महिलाएं अलग–अलग गतिविधियों में सक्रिय भागीदार थीं।वे समाज में स्वतंत्रता पूर्वक अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक औरधार्मिक आदि सभी अधिकारों का प्रयोग करती थी।अतः यह स्पष्ट हैकि वैदिक काल में महिलाओं को पर जीवी के रूप में नहीं माना जाता था।

संदर्भः–

- ईस्टर्नबुकलिंकर्स , दिल्ली, ऋग्वेदविमर्श (डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव)
- संस्कृत साहित्य प्रकाशन ,नईदिल्ली, ऋग्वेद (डॉ. गंगासहाय शर्मा)
- गीताप्रेस,गोरखपुर, ऋग्वेद
- गीताप्रेस,गोरखपुर, मनुस्मृति
- भारतीय विद्याभवन, ऋग्वेदसंहिता (महेश चंद्र माहेश्वरी)

डॉ0 सुमन
सहायकप्रवक्ता, संस्कृत
आदर्शमहिलामहाविद्यालय, भिवानी

45

विवेकानन्द नारी सशक्तिकरण एवं युवा शक्ति के सन्दर्भ में

श्रीमती दीप्ति शर्मा

सारांश

स्वामी विवेकानंद एक महान देशभक्त संत थे उन्होंने आजादी के लिए एवं समाज एवं घर के संचालन में महिला के लिए समान अधिकारों की वकालत की थी । विवेकानंद ने महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बताया था। स्वामी जी के मन में औरतों के लिए बहुत ही सम्मान था। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ये महसुस किया था कि पश्चिमी एवं पूर्वी महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़ा अन्तर है और इस अन्तर का सबसे बड़ा कारण शिक्षा है। इसीलिए वे कहा करते थे – "They have education but, we have not" । इसीलिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया था।

स्वामी जी के स्त्री शिक्षा पर विचार :

सर्वप्रथम वे मानते थे कि जो राष्ट्र स्त्रियों को सम्मान देते है वही राष्ट्र महान बनते है। जो राष्ट्र अपनी स्त्रियों को सम्मान नहीं करते वे कभी महान नहीं बनते और ना ही कभी बन सकते है।

दूसरा उनका मानना था कि हर महिला को शिक्षा द्वारा अपना कार्य एवं विकास करना चाहिए। तीसरा सम्पूर्ण स्त्रीत्व का विचार शिक्षा द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है। चौथा जब तक महिलाओं की स्थिति में उत्थान नहीं होता तब तक संसार का विकास सम्भव नहीं है। पांचवा उनका मानना था कि यदि महिलाएं अपनी बुद्धि के द्वारा अपने ज्ञान का विकास करे तो उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार आ सकता है। यदि औरतें एकान्त में बाहर निकलकर समाज में भागीदारी दे तो इस समाज का विकास अवश्यंभावी है।

स्वामी विवेकानंद के विचार अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को सम्पूर्ण ज्ञान एवं महान जानकारी देना है। इसलिए महिलाओं को भी शिक्षित करना आवश्यक है क्योंकि एक शिक्षित महिला ही एक अच्छी मां, गृहणी एवं नागरिक बन सकती है, उनका मानना था स्त्रियों को शिक्षित करने से समाज में फैली रूढ़ियों को हटाया जा सकता है। इसके द्वारा हम समाज में फैली बुराइयों जैसे कि कन्या हत्या, दहेज, बाल विवाह एवं घरेलू हिंसा आदि को भी दूर किया जा सकता है। ये ना केवल आज की महिलाओं की स्थिति को सुधारेगी अपितु इस संसार के आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को भी सुधारेगी।

इसके साथ ही स्वामी विवेकानंद का ये मानना था कि महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए पुरुषों को आगे आने की जरूरत नहीं है अपितु महिलाओं को अपने स्वयं को आगे लाना चाहिए, उनकी स्वयं की समस्याओं को समझने ओर अपनी बेहतरी के लिए समाधान प्रस्तावित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षा ही महिलाओं की स्थिति में सुधार कर सकती है और उनके व्यक्तित्व को निखार सकती है।

उद्देश्य :

स्वामी विवेकानंद ने महिलाओं को शिक्षित करना एक राष्ट्र के सबसे जरूरी कर्त्तव्यों में से एक बताया था। किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास नारी के विकास पर टिका है। उनका मानना था कि स्त्री एवं पुरुष एक दूसरे के पूरक है। उनका मानना था कि जिस प्रकार एक पक्षी अपने दोनों पंखों की सहायता से उड़ सकता है। इसी प्रकार से स्त्री एवं पुरुष राष्ट्र रूपी पक्षी के दो पंख है । एक पंख भी अगर कट जाता है तो उडान सम्भव नहीं है। इसीलिए राष्ट्र में महिलाओं एवं पुरुषों को समान अवसर मिलने चाहिए। इसी के साथ एक स्त्री को अपने दायित्वों को भी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए उन्हें इस प्रकार से शिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वे आदर्श माँ, पत्नी बन सके साथ ही आदर्श नागरिक बन सके ।

स्वामी जी ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के खिलाफ थे। वे ब्रिटिश द्वारा भारत में प्रचलित की गई शैक्षित नीतियों की भी आलोचना करते थे। वे मानते थे कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल बाहरी विकास कर सकता है आन्तरिक विकास नहीं। वे मानते थे कि इसके द्वारा हम अपने मानवीय मूल्यों को खोते जा रहे है। वे अपने अनथक प्रयासों के द्वारा महिलाओं को शिक्षित करने के पक्ष में थे। वे हमेशा भारतीय महिलाओं को शिक्षा के दायरे में लाना चाहते थे। स्वामी जी शिक्षा के द्वारा महिलाओं में निम्न गुण पैदा करना चाहते थे ।

1. स्वाभिमान
2. आजादी

3. चरित्र निर्माण

4. महिलाओं का मुख्य धारा में लाना

5. आत्म क्षमता का विकास

पाठ्यक्रम :

स्वामी जी महिलाओं के लिए एक विशेष प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित करना चाहते थे। उनका मानना था कि महिलाओं को विज्ञान, गणित, साहित्य, भाषा के साथ–साथ धर्म, दर्शन और गृह विज्ञान का ज्ञान मिलना चाहिए क्योंकि उनका मानना था कि स्त्री ही देश का भविष्य है। इसलिए उसको विशेष प्रकार का पाठ्यक्रम द्वारा उसका भविष्य सुधारा जा सकता है। साथ ही स्वामी जी मानवतावाद में विश्वास रखते थे। इसलिए वे चाहते थे कि शिक्षा मानवीय संवेदनाओं में परिपूर्ण होनी चाहिए। इसलिऐ वे धर्म, दर्शन, साहित्य की शिक्षा के पक्षपाती थे। इसके साथ ही वे मानते थे कि विज्ञान एवं गणित का ज्ञान भी जरूरी है क्योंकि वे आधुनिकता एवं राष्ट्र विकास के हिमायती थे। इसलिए वे चाहते थे कि स्त्री को हर क्षेत्र में परिपूर्ण शिक्षा मिलनी चाहिए। स्वामी विवेकानंद के इस लक्ष्य को परिपूर्ण करने में एक आयरिश सन्यासन बहन निवेदिता का बहुत बड़ा योगदान था। उन्होंने स्वामी विवेकानंद के बताए रास्ते पर चलकर ग्रामीण इलाकों में स्त्री शिक्षा का प्रचार किया। 1898 में उन्होंने कलकता में लड़कियों के लिए एक स्कूल स्थापित किया जिसे आज रामकृष्ण शारदा मिशन सिस्टर निवेदिता गर्ल्ज स्कूल के नाम से जाना जाता है।

स्वामी विवेकानंद उत्थान सर्वांगीण महिला उत्थान के हिमायती थे। वे चाहते थे कि स्त्रियां शिक्षा के जरिये अपना सर्वांगीण विकास करे । इसीलिए वे चाहते थे कि स्त्रियों को शारीरिक शिक्षा भी मिलनी चाहिए। इसके तहत वे चाहते थे कि महिलाओं की रक्षा पुरुषों को नहीं अपितु महिलाओं को स्वयं करनी चाहिए और इसके लिए उन्हें मार्शल आर्टस आदि का प्रशिक्षण दिया जाना जरूरी है। इस प्रकार से हम देखते है कि स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता आज उनकी मृत्यु के 120 वर्षों के उपरान्त भी बनी हुई है। आज भी उनका महान व्यक्तित्व हमारे युवाओं के लिए आदर्श बना हुआ है। ये सब विचार स्वामी विवेकानंद के महान व्यक्तित्व एवं उनकी दूरदर्शिता को दिखाते है क्योंकि जिस समय में स्वामी विवेकानंद ने अपने विचार रखे थे । उस समय में ऐसा सोचना भी समाज में पाप माना जाता था क्योंकि उन्होंने स्त्री पुरुष समानता की बात की थी जबकि उस समय में हमारा समाज स्त्रियों को दूसरे दर्जे का नागरिक मानता था। अधिकार तो बड़ी दूर की बात है उस समय स्त्रियों के खिलाफ समाज में इतनी कुप्रथाएं थी। उदाहरण के तौर पर कन्या वध, बेमेल विवाह, पर्दा प्रथा तथा विधवाओं का नारकीय जीवन आदि। अभी स्त्रियों में समानता का अधिकार नहीं अपितु जीने का अधिकार से भी वंचित थी। उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि वे अपने हक की लड़ाई भी नहीं लड़ सकती थी। स्त्री स्थिति में उसकी उसके हक की लड़ाई भी पुरुषों को लड़नी पड़ी थी। ऐसे काल में स्वामी विवेकानंद ने समाज को स्त्री शिक्षा का महत्त्व बताया और बताया कि समाज के उत्थान के लिए एवं देश के उत्थान के लिए स्त्रियों का आगे आना बहुत ही जरूरी है। क्योंकि महिला विकास के बगैर राष्ट्र का विकास असम्भव है। साथ ही स्वामी जी मानते थे कि धर्म से ज्यादा जरूरी शिक्षा है। क्योंकि आज आधुनिकीकरण के युग में जहां सभी देश विज्ञान के दम पर आगे बढ़ रहे है वहीं हमारे समाज को भी आज विज्ञान की जरूरत है तथा देश को आधुनिक बनाने के लिए नए–नए आविष्कारों की जरूरत है और विज्ञान की शिक्षा से स्त्रियों को वंचित नहीं रहना चाहिए।

स्वामी जी अपने विचारों को साकार करने के लिए युवा शक्ति का आह्वान किया था। वे कहते थे कि युवा पीढ़ी एवं आधुनिक पीढ़ी ही इन विचारों को साकार कर सकती है। मैं केवल विचार दे सकता हूं और अपना जीवन दे सकता हूँ परन्तु हमारी युवा पीढ़ी इन विचारों को देश के कोने–कोने में पहुंचा सकती है क्योंकि वे समस्या पर शेर की तरह काम करते है मैं इस युवा पीढ़ी को संगठित करने के लिए ही पैदा हुआ हूँ।

वे चाहते थे कि सबसे पहले हमारे युवाओं को मजबूत बनना होगा। वे कहते थे कि हमारे युवा अपना आत्म विश्वास खो चुके है। इस आत्म विश्वास को हमें दुबारा से पाना होगा। तुम्हें ये विश्वास रखना होगा तुम्हारा जन्म बड़े कार्य करने के लिए हुआ है, तुम्हें रास्ते में आए तुफानों से नहीं डरना है। युवाओं को सतत् आगे बढ़ने की जरूरत है। आज जो हमारी स्थिति है या जो स्थिति भविष्य में होने वाली है उसके लिए हम खुद ही जिम्मेदार है। हम आज जो भी है वो सब हमारे पुराने कृत्यों का परिणाम है। हम भविष्य में जो भी बनना चाहते है उसके लिए अपना वर्तमान सुधारना होगा।

इसलिए हमें सर्वप्रथम हमें राष्ट्र के प्रति समर्पित युवाओं के बीच जाना होगा उन्हें संगठित करना होगा एवं उन्हें प्रेरित करना होगा राष्ट्र कल्याण हेतु।

इन युवाओं को अपने शरीर मजबूत करनी होगा। अपनी मांसपेशियों को लोहे का बनाना होगा एवं नसों को स्टील का। हम

लम्बे समय से रो रहे है परन्तु अब और नहीं रोना। अब अपने पैरों पर हमें खुद खड़े होना है। हमें अपने समाज के लिए, देश के लिए खुद अपने कदमों पर चलना होगा ।

सहायक ग्रन्थ सूची

1. Swami Vivekanand – A Biography
2. Vedanta Phylosophy Inspired Talks – Swami Vivekanand
3. Believe in yourself – Swami Vivekanand
4. Swami Vivekanand and his Legacy – Gurlym Beckerlegge
5. Swami Vivekanand the ultimate paradox manager – Asim Chaudhuri
6. Swami Vivekananda's Vedantic Socialism – R.K. Das Gupta

श्रीमती दीप्ति शर्मा
सहायक प्रवक्ता इतिहास
एस॰ एन॰ आर॰ एल॰ जयराम
गर्ल्स कालेज, लोहा माजरा
(कुरुक्षेत्र)

46

वर्णसमाम्नाय के दार्शनिक पक्ष

डॉ0 दिनेशचन्द्रशुक्ल

सारांश

नन्दिकेश्वर काशिका की प्रथम कारिका में वर्णसमाम्नाय की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि अ, इ, उणादि चौदहसूत्र भगवान् शिव की कृपा से उन्हीं के डमरूनिनाद से प्रादुर्भूत हुए–

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धान्तेद्विमर्शो शिवसूत्रजालम्।।

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि भगवान् शिव ने अपने ताण्डव के अन्त में सनक–सनन्दनादि सिद्धों के उद्धार की इच्छा से अपने डमरू को चौदह बार बजाया। जिससे परिणामस्वरूप चौदह शिवसूत्र उद्भूत हुए। आचार्य पाणिनि ने इन्हीं चतुर्दश सूत्रों के आधार पर अपने अष्टाध्यायी नामक व्याकरणग्रन्थ की रचना किया। आचार्य नन्दिकेश्वर के द्वारा इन सूत्रों के दार्शनिक पक्ष की विवेचना की गई। उन्होंने शैवागम सिद्धान्त का प्रतिपादन इसी वर्णसमाम्नाय से किया है, जो अत्यन्त ही रहस्यपूर्ण है। उन्होंने वर्णसमाम्नाय के आदिवर्ण अकार और अन्तिम वर्ण हकार के योग से 'अहम्' पद को निष्पन्न मानकर इसे भगवान् शिव व विमर्श स्वरूप शक्ति के सामरस्य का बोधक माना है–

अकारः सर्ववर्णाग्रः प्रकाशः परमेश्वरः।
आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते।।

यह भगवान् शिव को उस प्रकाशशक्ति का द्योतक माना गया है जिससे कि समस्त जगत् आलोकित हो रहा है। प्रकाश का स्फुरणरूपविमर्श ही उसकी वास्तविक शक्ति है। इसी से शिव जी समस्त लोक के उत्पत्ति, पालन व संहार के देवता के रूप में स्वीकार किये जाते है–

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपाऽस्यवर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति।।

आचार्य भर्तृहरि के द्वारा इसी विमर्श को परावाक् कहा गया है। यदि इस शक्ति को प्रकाश से पृथक् कर दिया जाये तो प्रकाश भी प्रकाशविहीनता को प्राप्त कर लेगा। अतः प्रकाश व विमर्श नित्य तत्त्व हैं जो अहं रूप से सभी पदार्थों की प्रतीति कराया करते हैं। इस नित्यतत्त्व को आकाश तथा वायु स्वीकार करते हुए तन्त्रालोक में कहा गया है कि–

अकारश्च हकारश्च द्वावेतावेकतः स्थितौ।
विभक्तिर्नानयोरस्ति मारुतोम्बरयोरिव।।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे आकाश में विद्यमान वायु सतत गतिशील होकर सम्पूर्ण प्राणिजगत् की प्राणावलम्बन प्रदान करती है ठीक उसी प्रकार की स्थिति अकार और हकार की भी है। ये दोनों परस्पर अविभक्त रूप तथा नित्य सम्बन्ध वाले है। अतः प्रकाशरूप 'अ' और विमर्शरूप 'ह' भी नित्यस्फुरित होता रहता है। यही कारण है कि सभी लोग स्वयं को 'अहं' के रूप में प्रस्तुत किया करते हैं। यद्यपि 'अहं' पद से अहंकार की भी प्रतीति होती है। किन्तु जिस प्रकार जपाकुसुम के सम्बन्ध में स्वच्छ स्फटिक रक्तस्फटिक हो जाता है, परन्तु वास्तव में उसमें रक्तभाव सम्भव नहीं है। यही स्थिति वहाँ भी है, क्योंकि विषय को सत्तावानमान लेने पर ही यह स्थिति पैदा होती है। वास्तव में 'अहं' एक व्यापक और अद्वैततत्त्व है। अतः उससे किसी अन्य वस्तु की आभास नहीं हो सकता है। यही तथ्य गीता में भी उल्लिखित है–

सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्।।

इसी का उल्लेख करते हुए अन्यत्र भी कहा गया है कि–

अहंकारौ शिवशाक्ती शून्याकारौ परस्पराश्लिष्टौ।

आगमशास्त्र भी 'अ' और 'ह' वर्ण को शिव और शक्ति का प्रतीक स्वीकार करता है।

वैदिक साहित्य में अकार को सम्पूर्ण वर्णरूप वाणी माना गया है तथा यह भी कहा गया है कि वही अकार स्पर्श और ऊष्मा के सहयोग से अनेकवर्णों के रूप में अभिव्यक्त होता है–

'अकार एवं सर्वा वाक् सैषास्पर्शोढमभिर्व्यज्यमाना नानारूपा भवति।'

यह परावाक् ही है जिसके रूप में समस्त–अखण्ड ज्ञान प्राणी के मूलाधार चक्र विद्यमान रहता है। इसके सन्दर्भ में भर्तृहरि का कथन है कि–

अथेदमान्तर ज्ञानं सूक्ष्मवागात्मनास्थितम्।
व्यक्तये स्वस्यरूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते।।

आचार्य पाणिनि ने अकार की उत्पत्ति कण्ठ से माना है– अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

इसका कारण यह है कि मानवशरीर के अन्य उच्चारणस्थानों में से कण्ठ की स्थिति मूल मानी जाती है। इसलिए सर्वप्रथम ज्ञान की अभिव्यक्ति कण्ठ से ही होती है। कण्ठ से निर्गत वर्ण अन्य उच्चारणस्थानों के समीप से ही बाहर निकलता है। यही वर्ण आगे चलकर जिह्वामूल तथा ताल्वादि उच्चारणस्थानों के सम्पर्क से अन्य वर्णों के रूप में अभिव्यक्ति होता है। इसके अतिरिक्त 'हकार' एक ऊष्मवर्ण तथा महाप्राण है।

शलः ऊष्माणः। शलश्च महाप्राणाः।

यहाँ ऊष्म संज्ञक वर्ण हकार का जो अकार के साथ सम्बन्ध है, उसके पीछे हकार का ऊष्मा–प्रदान होना है, क्योंकि ऊष्मा प्राणवायु है तथा उसके अभाव में अकार की अभिव्यक्ति सम्भव ही नहीं है तथा अकार के अभाव में हकार की भी अभिव्यक्ति असम्भव है यही कारण है कि ऋक् प्रातिशाख्यकार ने भी कहा है कि–

अहौ कण्ठ्यौ।

इसके अतिरिक्त हकार व्यञ्जन भी है तथा उसका उच्चारण स्वर की सहायता से ही होता है–

परेण स्वरेण व्यञ्जत इति व्यञ्जनम्।

इसके सन्दर्भ में आचार्य पतञ्जलि का भी कथन है कि

नाचं बिना व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति।

अर्थात् स्वराभाव में व्यञ्जन का उच्चारण ही नही हो सकता। यही अकार और हकार का सामरस्य विभिन्न उच्चारण स्थानों को प्राप्त करके अनेक वर्णों के रूप में प्रतिफलित होता है। इनके साहचर्य में अनुभव प्रमाण होता है, क्योंकि दोनों कण्ठ्य ही है–

कण्ठ्यावहौ।

इस प्रकार इन दोनों वर्णों की सहाभिव्यक्ति शिव और शक्ति की प्रतीक है जिसे आगमशास्त्र में भी मान्यता दी गई है। इन दोनों का सामगरस्य रूप व्यापक पद 'अहं' है।

आचार्य नन्दिकेश्वर ने अपनी काशिका में वर्णसमाम्नाय के अन्य सूत्रों का सांख्यदर्शन व आगमशास्त्र में स्वीकृत सभी तत्त्वों से सम्बन्ध प्रतिपादित किया है। वहाँ 'कपय्' और 'शषसर्' इन दो सूत्रों से सम्बन्धित कारिकायें भी प्राप्त होती हैं–

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव सर्वेषामेव सम्मतम्।
सम्भूतिमिति विज्ञेयं कपय् स्यादितिनिश्चितम्।।
नत्वंरजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।
समाश्रिव्य महादेवः शषसर् क्रीडति प्रभुः।।
शकाराद्रा जसोद्‌भूतिः षकारात्तामसोद्‌भवः।
सकारात्सत्वसम्भूतिरिति त्रिगुण सम्भवः।।

यहाँ कवर्ण से प्रकृति और पवर्ण से पुरूष की अभिव्यक्ति मानी गई है। इसी प्रकार त्रिगुणात्मिका प्रकृति में सकार–सत्वगुण, शकार–रजोगुण और षकार तमोगुण का प्रतीक है। इस प्रकार हम देखते है कि आचार्य पाणिनि के चतुर्दश शिवसूत्रों में दार्शनिक तत्त्वों की उपामब्धि होती है, क्योंकि इस वर्णसमाम्नाय में सनक, सनन्दनादि सिद्धों के उद्धार की भावना व्यक्त की गई है। समाम्नाय शब्द का उद्‌भव 'म्ना' धातु से हुआ हैजो सम्यक् रूप से पढ़ा और समझा जाये, वही समाम्नाय है। इसका अन्य अर्थ वैदिक शब्दों का संग्रह (निघण्टु) भी है। इसीलिए आचार्य यास्क ने निरुक्त में कहा है कि–

समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः।

वर्ण समाम्नाय के सन्दर्भ में महाभाष्यकार का कथन है कि **सोऽयमक्षर समाम्नायो वाक्यसमाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत्प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः सर्ववेद पुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति, माता–पितरौ चाऽस्य स्वर्गेलोके महीयते।**

आगे चलकर इसी वर्णसमाम्नाय के अन्तर्गत स्थित आचार्य पाणिनि के चौदह शिवसूत्र ही व्याकरण व दर्शन के मूलाधार बने। पाणिनीय शिक्षा में में इनकी संख्या 63 या 64 स्वीकार की गई है–

त्रिषष्टिश्चतुष्षठिरर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा।।

यहाँ वर्णों की परम्परा को अनादि माना गया है तथा इनको भगवान् शिव से उद्‌भूत कहकर प्रकारान्तर से शिव सायुज्य को प्राप्त करने की प्रेरणा दी गई है। यहाँ प्राकृत शब्द का तात्पर्य प्रकृति–निष्पन्नता से है। जहाँ तक सांख्य दर्शन का प्रश्न है वहाँ प्रकृति–पुरुष को अनादि और सत्य माना गया है, किन्तु व्याकरणशास्त्र में प्रकृति–प्रत्यय को काल्पनिक और असत्य माना गया है–

उपायाः शिक्षमाणानां बालानामुपलालनाः।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।।

वास्तव में किसी वाक्य में पद तथा उसमें प्रकृति–प्रत्यय की कल्पना तो नित्य शब्दब्रह्म के ज्ञानार्थ है, क्योंकि असत्य ही सत्य

का प्रथम आधार होता है। तो प्रश्न किया जा सकता है कि फिर प्रकृति प्रत्यय ज्ञान का प्रयोजन क्या है? इसका उत्तर यह है कि इससे जो पदार्थज्ञान होता है वह बालकों के लिए व्याकरणशास्त्र में प्रवृत्त होने का कारण है, क्योंकि सूक्ष्मतत्त्व का ज्ञान करने के लिए हमें स्थूलतत्त्वों का ज्ञान अवश्य करना होगा। वैयाकरणों द्वारा अर्थज्ञान हेतु 'स्फोटवाद' को स्वीकार किया गया है इसी को शब्दतत्त्व की संज्ञा दी जाती है। इसके सन्दर्भ में भर्तृहरि का कथन है कि–

अनादिनिधमं ब्रह्म, शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।

इसका तात्पर्य है कि उत्पत्ति व विनाश की सत्ता से रहित अविनाशी, विभु और जो नित्य शब्दतत्त्व है वह ही अर्थ के रूप में भासित होकर समस्त सृष्टि का कारण बन जाता है। इसी तथ्य का उद्‌घाटन सांख्य दर्शन के परिणामवाद और वेदान्त के विवर्तवाद में भी किया गया है। सांख्य में संसार को प्रकृति का परिणाम माना गया है तथा वेदान्त में जगत् को भी ब्रह्म का विवर्तरूप कहा गया है इसी ब्रह्म का विवर्त रूप कहा गया है। इसी ब्रह्म के विविध नाम हैं– यथा–पुरुष, परमात्मा, ईश्वर, भगवानादि। वास्तव में व्याकरणशास्त्र में वर्ण, पद और वाक्य शब्दब्रह्म का ही बोधक है। अतः व्याकरणशास्त्र के शब्दब्रह्म और वेदान्तदर्शन के परब्रह्म में अभेदसम्बन्ध की प्रतीति ही हमें अद्वैतवाद के सिद्धान्त को सिद्ध करने में सहायता प्रदान करती है। यहाँ द्वैत का नितान्त अभाव है। इसलिए हमें सदैव शब्द ब्रह्म की उपासना रूप व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि–

नैव लोके न च वेदे अकारो विवृतोऽस्ति, कस्तर्हि संवृतः।
(महाभाष्य प्रत्या0 1)

इसीलिए गीता में भी कहा गया है कि प्रकृति के गुणों से अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणों और कर्मो में आसक्त रहते हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अज्ञानियों को विचलित न करते हुए उन्हें शब्दज्ञान की धारा में अवगाहन करने हेतु सदैव प्रेरित करते रहें–

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्सनविदो मद्रान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।।

डॉ0 दिनेशचन्द्रशुक्ल
असि0 प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी उ0प्र0

- लघुशब्देन्दुशेखर (संज्ञाप्रकरण)
- वाक्यपदीय– 2/238.
- श्रीमद्भगवद्गीता– 9/29

47

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की समस्याएं

अशोक कुमार

सारांश

प्रत्येक युग में साहित्य और समाज की चेतना में निरंतर परिवर्तन या विकास होता रहा है। आज वर्तमान युग का साहित्य चिंतन वैसा नहीं रहा और ना ही इतिहास लेखन वैसा रहा, जैसे पहले के प्रारंभिक साहित्य और इतिहास ग्रंथों में देखने को मिलता हैं इसलिए साहित्य के इतिहास लेखन की आवश्यकता समय–समय बनी रही तथा उसकी समस्याओं और चुनौतियों से भी सामना होता रहा।

साहित्य और इतिहास के संबंध में आलोचक मैनेजर पांडे लिखते हैं– ''साहित्य की विकासशील प्रक्रिया में नई प्रवृत्तियों के उदय और पुरानी प्रवृत्तियों से नई प्रवृत्तियों के संघर्ष, नए प्रयोग और परिवर्तन के साथ–साथ निरंतरता का क्रम चलता रहता है। साहित्य की विकास प्रक्रिया के अंतर्गत क्रियाशील आंदोलनों, परिवर्तनों और नवीन प्रयोगों के संबंध का विवेचन साहित्येतिहास में होता है।''1

आगे वे लिखते है कि ''किसी काल के साहित्य में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं होता जो अतीत और भविष्य से पूर्णतः विच्छिन्न हो। रचनात्मक प्रवृत्तियों, चिंताधाराओं, सौंदर्यबोधीय मूल्यों और साहित्य मूल्यों की विकासशील परंपरा में परिवर्तन और निरंतरता का द्वंद्वात्मक गतिशील संबंध होता है। यहां तक कि क्रांतिकारी परिवर्तनों के बीच भी एक विकासशील निरंतरता होती है। हर नया आंदोलन अतीत से मुक्ति की बात करता हुआ भी नया होने के बावजूद इतना नया नहीं होता कि अतीत से उनका कोई संबंध ही ना हो, कई बार नवीन प्रवृतियां पुरानी प्रवृत्तियों का निषेध करती हुई भी उससे काफी कुछ ग्रहण कर लेती हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में क्रांति, सामाजिक क्रांति की तरह ही अतीत के बोझ और बंधन से मुक्त होकर भी अतीत के जीवंत और मूल्यवान दायक को आत्मसात करती है।'' 2

यहां स्पष्ट है कि साहित्य का इतिहास निरंतर चलने वाली विकासशील प्रक्रिया है जिसमें निरंतरता, परिवर्तनशीलता और विकास के तत्व विद्यमान होते हैं। साहित्य में जहां परिवर्तन होता है वहां निरंतरता और नवीन प्रयोगों की विशिष्टता के साथ परंपरा भी होती है।

साहित्य के इतिहास लेखन में काल–विभाजन और नामकरण की प्रवृत्ति इस बात का निषेध करती हैं। और उसकी परिवर्तनशीलता की अबाध गति के विश्लेषण में अवरोध उत्पन्न करती है क्योंकि काल–विभाजन की सीमा–निर्धारण करते हुए नामकरण करते हैं तो उस काल विशेष के नामकरण और काल–विभाजन की सीमाएं स्पष्ट होने लगती हैं।

काल के प्रभाव को ऐतिहासिक सीमा में बांधने से पूर्ववर्ती और उसकी परवर्ती युग की विशेषताएं गौण हो जाती है जो किसी दूसरे युग की चेतना और साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्माण में सहायक होती है। साहित्य के इतिहास लेखन में इन गौण प्रवृत्तियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। और फिर एक ही युग में अलग–अलग प्रवृत्तियों में ही नहीं भाषिक रूप में भी परिवर्तन देखने को मिल जाते हैं।

साहित्येतिहास की परंपरा का संबंध जहाँ सामाजिक परंपराओं से होता वहाँ भाषा की परंपराओं से भी होता है। सामाजिक जीवन, अनुभव और अनुभूति को भाषा के माध्यम से प्रकट किया जाता है इसलिए सामाजिक जीवन में गतिशीलता और परिवर्तनशीलता का गहरा संबंध भाषा से भी होता है। और साहित्य से भी। ''हिन्दी साहित्य कोई सर्वथा स्वतंत्र विच्छिन और असंबद्ध इकाई नहीं है। वह अन्य विचार प्रणालियों, साहित्यों और परिस्थितियों से परस्पर सम्बद्ध है।''3

साहित्येतिहास में साहित्य के विविध रूपों में भी परिवर्तन देखे जाते हैं उसे किसी खास या एक प्रवृत्तियों के आधार पर या किसी विशिष्ट काल के आधार पर या किसी युग विशेष के विशिष्ट रचनाकार के नाम के आधार पर नहीं रखा जा सकता है । यह नाम उस काल–विशेष की सारी विशेषताओं को अभिव्यक्त नहीं कर पातें।

उदाहारण के तौर पर आदिकाल में वीरगाथात्मक महाकाव्य लिखे जा रहे थें तो वहीं दूसरी तरफ खड़ी बोली की फुटकल रचनाएं, भक्तिपरक धार्मिक रचनाएं भी लिखी जा रही थी। और कुछ अन्य विषयों पर गद्य रचनाएं भी हो रही थी । भक्तिकाल में भक्तिपरक, रीतिपरक, श्रृंगारपरक और नीतिपरक रचनाएं तो हो रही थी और कुछ अन्य विषयों पर भी रचनाएं हो रही थीं। वहीं रीतिकाल में रीति, नीति और श्रृंगार पर रचनाएं हो रही थीं। रीतिकाल में रचनाकारों का एक वर्ग दरबारी जीवन पर आधारित परंपराबद्ध होकर रचनाएं कर रहे थें तो वहीं दूसरा वर्ग दरबारी जीवन और परंपरा से मुक्त होकर अपने जीवनानुभव की अभिव्यक्ति स्वच्छंद रीति से कर रहे थें। इसलिए इन पहलुओं की अवहेलना साहित्येतिहास लेखन में नहीं की जा सकती।

आधुनिक काल में भी विभिन्न विषयों और विविध विधाओं में रचनाएं होने लगी थी। ऐसे में व्यापक होते साहित्यिक क्षेत्र को किसी एक विशेषता में नहीं बांध सकते और न ही उसे विश्लेषित कर मूल्यांकित कर सकते।

अतः यहाँ यह स्पष्ट है कि साहित्य के इतिहास लेखन में काल–विभाग और उसके नामकरण की समस्या एक गंभीर समस्या है। साहित्य के इतिहास को किसी निश्चित समय सीमा में नहीं बांधा जा सकता और ना ही किसी प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर संपूर्ण कालखंड को रखा जा सकता है। एक ही युग विशेष में कमोवेश कुछ अन्य साहित्यिक विशेषताएं और प्रवृत्तियां देखने को मिल जाती है। उन विशेषताओं को गौण रूप में ग्रहण करने से इतिहास लेखन प्रभावित ही नहीं होता बल्कि उसके परिणाम एवं निष्कर्ष भी दूषित होंगे।

आधुनिक युग के कुछ इतिहास के आलोचकों का मानना है कि गौण से गौण साहित्यिक विशेषताएं और साहित्यिक प्रवृत्तियां इतिहास लेखन के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है। और हुई भी है। इतिहास लेखन में तथ्यों की प्रमाणिकता, व्याख्या और विश्लेषण का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आज साहित्येतिहास में साहित्य चेतना के विकास क्रम को ऐतिहासिक दृष्टि से रखते हुए उसकी निरंतरता, परिवर्तनशीलता के साथ हर युग की साहित्यिक विशेषता को रेखांकित करना भी चुनौतीपूर्ण हो गया है। इसमें किसी एक प्रवृत्ति की अतिशयता, इतिहासकार का पूर्वाग्रह तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण में अलग.अलग पद्धति अपनाने से इतिहास लेखन अलग–अलग रूप में सामने आता है। इसीलिए वह अपनी संपूर्णता और समग्रता में नहीं आ पाता। इसके विपरीत नवीन शोध परिणाम इतिहास लेखन के निष्कर्षो, साहित्यिक मानदंडों में बदलाव लेकर आता है ऐसे में उसे समग्रता में मूल्यांकन कर उसके स्थान का निर्धारण करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। तथा इतिहास लेखन की पुनर्रचना और पुनर्व्याख्या की आवश्यकता हो जाती है जो इतिहास लेखन की महत्त्वपूर्ण मांग है, और समस्या भी।

साहित्य के इतिहास लेखन में इतिहासकारों ने अपने पूर्ववर्ती इतिहास ग्रंथों की शैली को ही अपनाया है। या कहें आगे बढ़ाया है। प्रसिद्ध आलोचक नामवर के शब्दों में कह सकते है–''फिर तो इन इतिहासों के पीछे लगी संक्षिप्त, मध्यम, सरल, सुबोध अनेक छात्रोपयोगी इतिहास पुस्तकें आयीं जिनमें नकल छिपाने के लिए यत्किचित शुक्लजी की तथ्य–संबंधी भूलों का सुधार और अधिक से अधिक कालों के नाम–परिवर्तन का सुझाव मिलता है। ये सभी प्रयत्न उसी सीमा में हुए, क्योंकि वह सीमा ऐतिहासिक और युगीन थी। युग–परिवर्तन के साथ ही शुक्लजी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण तथा पद्धति की सीमाएँ स्पष्ट होने लगीं।''4

अधिकतर इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास ग्रंथ का अनुकरण करते है या कुछ परिवर्तन के साथ इतिहास लेखन की कोशिश करते हुए प्रतीत होते हैं। नये रूप में इतिहास लेखन का साहस किसी ने नहीं किया और जिन्होंने किया वे इतिहास ग्रंथ कम आलोचना ग्रंथ अधिक जान पड़ते हैं। इसमें वे सवाल छूट गए जो इतिहास लेखन में चुनौती के रूप में आते हैं।

उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि इतिहास लेखन की मूल समस्या काल–विभाजन, नामकरण के अतिरिक्त हिंदी का स्वरूप विस्तार कहां तक है?का भी है। हिन्दी का स्वरूप और उसके क्षेत्र विस्तार के साथ–साथ साहित्य का आरंभ और उसकी सीमा कहां तक है?हिंदी का पहला कवि कौन है?व पहली रचना कौन सी है?उर्दू को साहित्य के अंतर्गत माना जाए या नहीं?, धार्मिक साहित्य को साहित्य के अंतर्गत माना जाए या नहीं, साहित्य चेतना के विकास में चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, संगीत कला के साथ अन्य कलाओं के प्रभाव के रूप में इसे साहित्य इतिहास में शामिल किया जाए या नहीं?तथा साहित्येतर रचनाओं को साहित्येतिहास की परंपरा में शामिल किया जाए या नहीं?

निष्कर्ष–

इन सब के अभाव में इतिहास लेखन के परिणाम निष्कर्ष और साहित्यिक मूल्य प्रभावित होंगे। अतः स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में सामंजस्य और संतुलन के साथ–साथ वैज्ञानिकता और प्रमाणिकता का आग्रह भी होना चाहिए। हिंदी साहित्य के इतिहास की ऐतिहासिकता को निरंतरता, परिवर्तनशीलता और साहित्यिक विशिष्टताओं के साथ ही नहीं उसकी विशेषताओं को भी समग्रता में देखा जाना चाहिए और उसको सम्मलित भी किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ –

1. पाण्डेय, डॉ०मैनेजर, ''साहित्य और इतिहास दृष्टि'', वाणी प्रकाशन, 21.ए. दरियागंज, नई दिल्ली 110002, आवृत्ति संस्करण 2016, पृ.सं. 8.
2. वही, पृ.सं. 9.
3. सिंह, नामवर, ''इतिहास और आलोचना'', राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली, संस्करण 2014. पृ.सं. 140.
4. वही, पृ.सं.137.

अशोक कुमार

शोधार्थी

शोधार्थी : भारतीय भाषा केंद्र,

हिंदी विभाग, जे०एन०यू०, नई दिल्ली ।

रूम न. 336, झेलम हॉस्टल, जे०एन०यू०,नई दिल्ली 110067

48

विश्व पटल पर हिंदी

डॉ0 अनिता रानी

सारांश

किसी भी राष्ट्र की उन्नति का सीधा संबंध उसकी भाषा से होता है। भाषा ही वह तत्व है जो एक राष्ट्र को अन्य से अलग करते हुए उसे एक विशिष्ट पहचान देती है। वर्तमान में बोली जाने वाली खड़ी बोली हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। विश्व में हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी इन तीन अपभ्रंशों से निर्मित है। हिंदी व्यापक अर्थ में सत्रह बोलियों की सूचक है। ब्रज, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली, दक्खिनी, उर्दू, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी, मेवाती, ढूंढाणी, मालवी, कुमाऊंनी, भोजपुरी तथा मगही। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा हिंदी ही है।

लगभग एक हजार वर्षों के इतिहास में हिंदी ने अनेक रूप अख्तियार किए हैं, इस अवधि में केन्द्रीय सत्ता की भाषा भी अलग–अलग रही है, जिसके फलस्वरूप इस पर फारसी, उर्दू, पुर्तगाली,फ्रांसीसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का प्रभाव रहा है। हिंदी में दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात करने की शक्ति है,इसी कारण इसने अरबी, फारसी, उर्दू, ईरानी, तुर्की, पश्तो, इटेलियन, यूनानी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, जर्मन, स्पेनिश डच, चीनी, जापानी आदि भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित कर लिया है जिनकी संख्या ढाई लाख से अधिक मानी जाती है, ऐसा लगता है कि हिंदी में पूरा विश्व समाया हुआ है, जो इसकी अंतरराष्ट्रीय मैत्री एवं वसुधैव कुटुंबकम् वाली प्रकृति को उजागर करता है।

"सत्तर के दशक में हिंदी 'अंग्रेजी हटाओ' की मांग करने वाली भाषा थी, आज वह 'अंग्रेजी पचाओ' की भाषा बन गई है। हिंग्लिश या हिंग्रेजी इसकी नई शैली है, जो उत्तर–उदारीकरण वाली ग्लोबल पीढ़ी के उन्मुक्त संवाद की भाषा बन गई है।"1 हिंदी भाषा में तत्सम, तदभव, देशज, विदेशी शब्दों की भरमार है। परिणाम स्वरूप आज इसका शब्दभंडार बहुत समृद्ध हो गया है। वस्तुतः हिंदी अपनी आत्मसाती प्रकृति और बहुआयामी संप्रषणीयता के कारण ही पूरे विश्व की लोकप्रिय भाषा बनती जा रही है। विज्ञान, तकनीक और चिकित्सा शास्त्र से लेकर कला, साहित्य और वाणिज्य–व्यापार तक हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार भी दिन–प्रतिदिन बढ रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालय इस दिशा में अनवरत सराहनीय कार्य कर रहा है।

हिंदी आज वैश्विक फलक पर अपना परचम लहरा रही है। इसके बहुत से कारण हैं जैसे भूमंडलीकरण, बाजारवाद, विस्थापन, दूरसंचार क्रांति, सूचना प्रौद्योगिकी तथा हिन्दी सिनेमा आदि। इसके अतिरिक्त हिंदी भाषा एवं लिपि का वैज्ञानिक होना भी मुख्य कारण है। हिन्दी और देवनागरी लिपि दोनो ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन एवं मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। भूमंडलीकरण के कारण हम एक–दूसरे के ज्यादा नजदीक आ गए हैं, इस कारण आपस में संवाद होना भी स्वाभाविक है, मनुष्य की यह नियती भी है कि वह अपनी मातृभाषा में संवाद करना चाहता है या फिर कह सकते हैं कि वह उसमें सहजता महसूस करता है। विश्व के लगभग एक सौ पचास से अधिक देशों में भारतीय मूल के लोग निवास करते हैं। उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो मातृभाषा या दूसरी भाषा के रूप में हिंदी जानते हैं। "विश्व में जहां भी भारतीय मूल के लोग हैं वहां राजभाषा,सहभाग, संस्कार की भाषा अथवा क्लासिकल (शास्त्रीय) भाषा के रूप में किसी न किसी हैसियत से हिंदी विद्यमान है।"2

आज बाजार का युग है, प्रत्येक चीज का बाजारीकरण हो चुका है तब हिंदी भला इससे कैसे अछूती रह सकती है। हिंदी ने अर्थ जगत के बदलते स्वरूप के अनुसार ढाल लिया है। आज हिंदी की 'कमर्शियल वैल्यू' है, इसलिए व्यापार और विज्ञान जगत में हिंदी ने अंग्रेजी को मात दी है। पिछले कुछ वर्षों में हिंदी शब्द संपदा का जितना विस्तार हुआ है, उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा का हुआ हो। आज हिंदी विश्व की सबसे समृद्ध भाषाओं में मानी जाती है। "अंग्रेजी जिसे महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय भाषा का गौरव प्राप्त है, उसके मूल में शब्द जहां मात्र दस हजार हैं, वहां हिंदी के दो लाख पचास से भी अधिक हैं, जिनमें उन्नीस करोड़ वे भारतीय हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी न होते हुए भी वे उसे उसी प्रकार व्यवहार में लाते हैं, जैसे मूल हिंदीभाषी।"3 आज हिंदी की कमर्शियल वैल्यू संसार की सभी भाषाओं से अधिक है, क्योंकि आज विश्व का हर छठा व्यक्ति भारतीय है।आज हिंदी संपर्क भाषा एवं साहित्यिक भाषा से आगे बढ़ चुकी है। हिंदी

व्यवसायिक ताकत के रूप में पहचान बनाकर विकास पथ पर अग्रसर है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को हिंदी के व्यवहारिक महत्व का बोध हो गया है। आज विकसित देशों में हिंदी को लेकर ललक बढ़ी है। इसका प्रमुख कारण है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कंपनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुंचना होगा और इसके लिए जनभाषा ही सबसे सशक्त माध्यम है। आज बाजार के छोटे–बड़े तमाम उत्पादों का विज्ञापन हिंदी में देख सकते हैं। संसार में हिंदी भाषी लोगों का एक बड़ा बाजार उपलब्ध है। हिंदी में विज्ञापन के बहाने विश्व में हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार भी हो रहा है।

कम्प्यूटर आधुनिक युग की एक चमत्कारिक उपलब्धि है और इससे अलग होकर कोई भी भाषा विकास के पायदान पर पैर टिका नहीं सकती। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। भूमंडलीकरण और कम्प्यूटर की सूचना क्रांति ने हिंदी को विश्वपटल पर स्थापित होने में बहुत मदद की है। आज हिंदी में भी गपशप,सजाल, विपत्र तथा अन्य सामग्री उपलब्ध है।अंतरजाल पर हिंदी के संसाधनों की प्रचुरता है।आज विज्ञान सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित नई खोजें हो रही हैं और इसका श्रेय जाता है यूनिकोड के पदार्पण को जिसने हिंदी को वैश्विक धरातल पर स्थापित किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग दूसरे दशक में भारतीय मूल के लोग रोजी–रोटी के लिए सूरीनाम, त्रिनिदाद, टैबेगो, गुयाना,फिजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरिशस आदि देशों में विस्थापित हो गए थे, जिन्हें गिरमिटिया मजदूरों के रूप में भी जाना जाता है। इन लोगों को ब्रिटिश हुकूमत द्वारा बरगला कर वहां ले जाया गया, इन्हें रोजगार, आमदनी के सुनहरे सपने दिखाए गए, परन्तु वहां पहुंचने पर नरकीय जीवन जीने के लिए विवश किया गया। परन्तु इन लोगों ने हिम्मत नहीं छोड़ी, अपनी मेहनत एवं लगन से संघर्ष करते हुए एक दिन अपनी अलग पहचान बनाने में कामयाब हो गए।

गिरमिटिया मजदूरों की एक बड़ी विशेषता यह भी रही कि इन्होंने अपनी मातृभाषा को नहीं छोड़ा और यह बात आज तक कायम है। जितने भी गिरमिटिया देश हैं उन देशों में बसे भारतियों ने हिंदी को बुलंदियों पर पहुंचाने में अहम भूमिका निभाई है।

डॉ. महेश दिवाकर का कहना है कि,''विश्व के प्रमुख देशों अमेरिका, रूस, चीन, जापान, फ्रांस, इंग्लैंड, कनाडा, इटली, आस्ट्रेलिया, पौलेंड, बेल्जीयम, चेक, जर्मनी, हंगरी, अफ्रीका, उज्बेकिस्तान, हालैंड, नीदरलैंड, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, फिनलैंड, रोमानिया, श्रीलंका, बर्मा, मॉरिशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम, नेपाल, केन्या, ट्रिनीडाड, टुबैगो, थाईलैंड, दक्षिण अफ्रीका, सऊदी अरब, दक्षिण कोरिया, बंगलादेश आदि देश भारत से अंग्रेजी–दासता के समय विदेश ले जाए गये गिरमिटिया मजदूरों के साथ ही हिन्दी विदेशों में रच–बस गयी। इनमें वैस्टइंडीज, सूरिनाम, मॉरिशस, फिजी, वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं। गिरमिटिया मजदूर, कुली आदि अपने साथ रामायण, गीता आदि भारतीय धर्मग्रंथों को ले गये। जिनके प्रति मन में उनकी असीम श्रद्धा के कारण वहां पीढ़ी दर पीढ़ी हिन्दी का अस्तित्व कायम रहा।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद कुछ अन्य विकसित देशों में अपनी आजीविका की खोज में पहुंचे प्रवासी भारतीयों के कारण भी हिन्दी उन देशों में पहुंची।''4 अमेरिका, कनाडा, चीन, रूस, जर्मनी, फ्रासं, इंग्लैंड, जापान, इटली, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क,और कुछ यूरोपीय देशों में हिंदी सहज रूप से चली गई। आजाद भारत के वैश्विक स्तर पर जुड़े अंतरराष्ट्रीय संबंधों के कारण भी हिन्दी विश्व के अनेक देशों में पहुंच गई। इस तरह हिन्दी का विकास भारत के अतिरिक्त दुनिया के अन्य देशों में भी बड़ी तेजी के साथ हुआ।

हमारे पड़ोसी देशों बंगलादेश, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, म्यांमार, मालदीव और श्रीलंका आदि कभी भारत के ही भू–भाग हुआ करते थे इसलिए इन देशों में हिंदी बोलने व समझने वालों की बहुत बड़ी संख्या है।

गिरमिटिया देशों में हिंदी–

मॉरिशस में हिंदी का प्रचार–प्रसार 'बैठका' संस्कृति से हुआ क्योंकि गन्ने की खेती के लिए भारी मात्रा में उतर प्रदेश तथा बिहार से मजदूर लाये गए थे। खेतों में काम करते समय उन्हें संवादहीनता से जूझना पड़ा। विचार विमर्श के लिए गिरमिटिया मजदूर गांवों की भांति 'बैठका' लगा कर अपनी बातों को एक –दूसरे के बीच में रखते थे। इस बैठका संस्कृति को अभिमन्यु अनत कृत उपन्यास 'चौथा प्राणी' में देखा जा सकता है, ''बैठकों में धर्म की चर्चाएं, रामायण पाठ एवं हिंदी शिक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य भी होते रहे हैं। अतः गांव में शिक्षा का माध्यम बैठका ही था। जिसके माध्यम से अनपढ लोग भोजपुरी में बात करते जबकि पढ़े–लिखे लोग खड़ी बोली हिन्दी में वार्तालाप करते। गोरों के शासनकाल में मजदूर बालकों की शिक्षा'बैठका' में संभव हो गयी थी''5।यहां पर भारतवंशियो के लिए उनकी भाषा, संस्कृति उनके अस्तित्व का प्रतीक है । मॉरिशस में अड़सठ प्रतिशत जनसंख्या भारतवंशियो की है। सरकारी कार्य अंग्रेजी एवं फरेंच भाषा में होते हैं, बोलचाल में क्रियोली बोली का प्रयोग होता है। फिर भी सांस्कृतिक दृष्टि से भोजपुरी क्रियोली से अधिक समृद्ध है।

संख्या की दृष्टि से अगर देखा जाए तो भारत के बाद सबसे ज्यादा हिंदी लेखक मॉरिशस में हैं।मॉरिशस में हिंदी का तीव्र गति से

प्रचार–प्रसार करने में वहां पर बसे भारतवंशी रचनाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है जो विदेशों में रहते हुए भी अपनी हिंदी भाषा में रचना कर रहे हैं। उनमें से प्रमुख हैं–रामदेव धुरंधर, वेणीमाधव, इंद्रदेव भोला, हेमराज सुंदर, रामखेलावन, भानुमति राजदान,सूरजप्रसाद मंगर,पुजानंद नेमा, केशवदत्त चिंतामणि, धर्मवीर धूरा, राजरानी गोविन, राज हीरामन और मोहन लाल मोहित इत्यादि। अभिमन्यु अनत को मॉरिशस का प्रेमचंद कहा जाता है। सन 2018 में इनका देहावसान हो गया, इन्होंने मॉरिशस में हिंदी को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।लाल पसीना, गांधी जी बोले थे, पसीना बहता रहा आदि उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। लाल पसीना उपन्यास के माध्यम से बताया गया है कि गिरमिटिया मजदूरों को भोजपुरी में आपस में बात करने की भी छूट नहीं थी ,''जिस दिन गोरे सरदारों की ड्यूटी की बदली की जाती थी उस दिन सारे भारतीय मजदूर खुल कर बातें कर पाते।''6 मॉरिशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना एवं अभी तक तीन विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्पन्न हो चुके हैं यह हिन्दी के प्रति लगाव एवं विकास का ही प्रमाण हैं।

सूरीनामी हिंदी में अवधी, भोजपुरी,डच भाषा के शब्दों का समावेश है। हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए वहां पर रेडियो, दूरदर्शन के कई महत्वपूर्ण चौनलों पर चौबीस घंटे हिन्दी के कार्यक्रम चलाए जाते हैं। पुष्पा अवस्थी का कहना है कि, ''हर चार–पांच घरों के आंगन और प्रवेश द्वार पर श्यामपट्ट लगे हुए हैं जिस पर हिन्दी के कुछ शब्द या मानस की कोई चौपाई या कबीर का कोई दोहा या दयानंद की हिन्दी प्रेम की अमृतवाणी लिखी हुई मिल जाती है।''7 सूरीनाम में श्रीनिवास, सदादानी दिव्यांश, सुरजन परोही, हरिदेव सहतू, मुंशी रहमान, जीत नारायण तथा चन्द मोहन आदि रचनाकार हिन्दी को एक नई दिशा देने के लिए प्रयासरत हैं।

फिजी में भी गिरमिटिया मजदूरों ने अपनी भाषा व संस्कृति को बचाने के लिए काफी संघर्ष किया। भारतवंशीयों ने समझ लिया था कि गोरों की घोर यातना से निपटने के लिए संगठित होना पड़ेगा और संगठित होने का आधार उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म ही था। वहां पर मानक हिंदी और फीजियन हिन्दी को लेकर काफी विवाद हुआ। अंततः सरकार को दोनों को मान्यता देनी पड़ी और इसके परिणामस्वरूप आज वहां पर हिन्दी राजभाषा है के रूप में कायम है। फिजी में अयोध्या प्रसाद, कुंवर सिंह, योगेन्द्र सिंह कंवल, राजनारायण,अमरगीत केवल, तोताराम सनाढ्य, विवेकानंद शर्मा आदि रचनाकार हिन्दी की ध्वजा को फहरा रहे हैं।

गुयाना में भी गिरमिटिया मजदूरों ने हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वहां पर 52 प्रतिशत भारतीय हैं, धार्मिक कार्यों में संस्कृत का प्रयोग किया जाता है, हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए विश्विद्यालय स्तर पर तथा मंदिरों में हिंदी पढ़ाई जाती है।

ट्रिनिडाड और टोबैगो में गिरमिटिया मजदूर एक–दूसरे को 'जहाजी भाई' के नाम से संबोधित करते थे। हिन्दी के प्रचार–प्रसार में 'सनातन धर्म बोर्ड आफ कंट्रोल' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ट्रिनिडाड में भारतीयों के 150 वर्ष पूरे होने पर 1996 में 'चंचल विश्व हिन्दी' का आयोजन किया गया। "त्रिनिदाद में विहरस्ट के स्कूल आफ लैंग्वेजिज में हिंदी कक्षाओं का आयोजन होता है इसके अलावा गांधी सेवा संघ, डिवाइन लाइफ सोसायटी, आर्य प्रतिनिधि सभा, हिन्दू प्रचार केन्द्र आदि संस्थाएं हिंदी भाषा के प्रचार में जुटी हैं।''8 हरिशंकर आदेश, मंगल परेसर, सतबाल करण सिंह, शारदा महाराज, उत्तम महाराज, कालीचरण दुकी, मोहन शमलाल, लीला भुसाई, विजय नारायण आदि साहित्यकारों का हिंदी संवधर्न में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वहां पर भारतवंशी अपनी संस्कृति एवं परम्परा को संजोए हुए हैं तथा भारतीय तीज त्योहारों को मनाने की सुदृढ़ परम्परा रही है। "दीवाली नगर नाम से दीवाली पर्व पर विशाल मेला आयोजित होता है ।एक सप्ताह चलने वाले कार्यक्रमों में हिंदी के प्रयोग की झांकियां लगती हैं। होली के अवसर पर अक्सर फगवा गीत गाये जाते हैं। शादी–ब्याह एवं जन्मोत्सव के अवसरों पर हिन्दी गीतों की पारम्परिक गूंज सुनाई देती है।''9

क्यूबा में भी गिरमिटिया मजदूर 19 वीं शताब्दी में इसके दक्षिणी प्रांत 'ओरियंते' में बस गये थे, वहां पर अल्पसंख्यक होने के कारण भी भारतवंशियों ने अपनी भाषा व संस्कृति की पहचान बनाए रखी। यहां पर हिन्दी अध्ययन विश्वविद्यालय स्तर पर होता है ।

दक्षिण अफ्रीका ने अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखने हेतु लंबा संघर्ष किया है। सन 1947 में नरदेव वेदालंकार ने यहां पर हिंदी पाठ्यक्रम एवं शैक्षिक मूल्यों की स्थापना की।सन 1961 में 'डर्बन वेसटविल विश्वविद्यालय' में बी.ए.से लेकर पीएचडी तक हिंदी पढ़ाई जाती है। यहां पर 'हिंदी शिक्षा संघ' हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 'हिंदी वाणी' रेडियो स्टेशन तथा एफ एम रेडिओ भी यहां पर हिंदी का संवर्धन कर रहे हैं। आर्य समाज ने यहां पर हिंदी के उत्थान का बेड़ा उठाया हुआ है। इस क्षेत्र में लोगों की हिंदी के प्रति रूचि को देखते हुए ही भारत सरकार ने नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन सन 2012 में दक्षिण अफ्रीका के जोहानिसबर्ग में किया। यहां पर हिंदी का भविष्य काफी उज्ज्वल लगता है। भवानी प्रसाद की 'प्रवास की आत्मकथा' प्रवासी साहित्य की श्रेष्ठ कृति है। डॉ.राम भजन, सीताराम, नरदेव वेदालंकार आदि साहित्यकार हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका

हैं।

यूरोपीय देशों में हिंदी–

मास्को विश्वविद्यालय, लेनिनग्राड विश्वविद्यालय, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय, अंतरराष्ट्रीय संबंध संस्थान आदि में प्रमुख रूप से हिन्दी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन एवं अध्यापन किया जाता है। जवाहरलाल नेहरू सांस्कृतिक केंद्र मास्को की भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका है। सोवियत संघ–रूस की क्रांति के बाद बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी अध्यापन तीव्र गति से होने लगा। बरान्निकोव अकादमिशियन ने हिंदी –उर्दू का पहला रूसी व्याकरण लिखा तथा रामचरितमानस का हिंदी में अनुवाद किया ।

आज हिंदी का बहुत सारा साहित्य रूसी भाषा में अनुदित हो चुका है। ''हिन्दी भाषा का अध्ययन हमारे देश में साल दर साल बढ़ रहा है। भारतीय साहित्य के अनुवाद की परम्परा सोवियत संघ में पुरानी परम्परा है। अनुवाद केवल रूसी में ही नहीं, बल्कि सोवियत संघ की दूसरी जातियों की भाषाओं में किए जाते हैं।''10 सौ से अधिक साहित्यकारों की छह सौ से अधिक पुस्तकें सोवियत संघ की बत्तीस भाषाओं में छप चुकी हैं। फिनलैंड का हेलसिंकी विश्वविद्यालय संस्कृत, तुलनात्मक भाषा विज्ञान, भारतीय इतिहास और संस्कृति के पठन–पाठन में विख्यात है। यहां पर हिन्दी प्रारम्भिक स्तर पर दो से चार घंटे प्रति सप्ताह पढ़ाई जाती है।प्रति वर्ष प्रारम्भिक कोर्स में दस से पांच विद्यार्थी आते हैं। "समकालीन रूसी हिंदी विद्वानों में प्रो. ल्युदमिला खलोवा, डॉ.इंदिरा गाजियेवा,प्रो. सर्गेय सेरिब्रियानी, डॉ. अलेक्सांद्र सिगार्सकी, डॉ.ग्युलेज स्त्रोलकोवा, डॉ. तात्याना दुब्यान्स्काया, अनन्त सीथ गूरिया के नाम उल्लेखनीय हैं।''11

पोलैंड में हिंदी भाषा और साहित्य वारसा,क्राकूब और पोजनान विश्वविद्यालयों में पढायी जाती है। प्रो.शायर, डॉ. रूकोव्स्का,प्रो.दानूता स्ताशिक,प्रो.तादेउष पोबाजन्याक, डॉ. आग्नेष्का, आजये बुगोव्स्की आदि विद्वानों ने हिंदी की अनेक रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। नीदरलैंड में भी करीब दो लाख से ज्यादा भारतीय हैं जो हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यहां पर हिंदी परिषद, हिंदी प्रचार संस्था,लायडन विश्वविद्यालय,उग्र हिंदी समिति,एस.एल.एस.गोपिया इंटरनेशनल सनातन एवं आर्य समाजी संस्थाएं हिंदी के विकास में सहयोग कर रही हैं। फिनलैंड के हेलासिंकी, स्वीडन के स्टाकहोम विश्वविद्यालय, डेनमार्क के कोपेनहेगन विश्वविद्यालय में हिंदी के पठन–पाठन की समुचित व्यवस्था है।

नार्वे में हिंदी की स्थिति में प्रतिदिन विकास हो रहा है। यहां पर प्राथमिक स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी पढ़ाई जाती है। नार्वे में ओस्लो विश्वविद्यालय में प्रो.जोलर फिन तथा स्कूली शिक्षा से जुड़े डॉ.मीना ग्रोवर, डॉ.उषा जैन आदि विद्वान हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अप्रवासी भारतीयों में पूर्णिमा चावला, हरचरण चावला,अमित जोशी, शिखा चन्द्रा, रमेश चंद्र शुक्ल, इंद्रजीत पाल आदि का नाम हिंदी के संवर्धन में सराहनीय है।यहां से परिचय, पहचान, त्रिवेणी, अल्फा, ओमेगा, अप्रवासी टाइम्स सनातन मंच आदि पत्रिकाएं भी हिंदी के विकास में अहम भूमिका निभा रही हैं।

इटली में पांच विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। यहां अप्रवासी भारतीय कम हैं अतः जनसाधारण में हिंदी का प्रचार–प्रसार नहीं है। यहां पर अनेक हिंदी पुस्तकों का इटालियन अनुवाद हुआ है।

ब्रिटेन वासियों ने हिंदी के प्रति बहुत पहले ही रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी। गिलक्राइस्ट,मोनियर विलियम्स,केलाग होलीं,शोलबर्ग ग्राहमवेली तथा ग्रियर्सन जैसे विद्वानों ने हिंदी कोश व्याकरण और भाषिक विवेचन के ग्रंथ लिखे हैं। यहां पर सन 1921 में 'इस्टीट्यूट आफ ओरियंटल स्टडीज'की स्थापना के साथ भारतीय भाषाओं और हिंदी साहित्य का अध्ययन आरम्भ हुआ।'यूनिवर्सिटी आफ ब्रिटिश कोलंबिया'म में हिंदी विभाग स्थापित है । यहां से प्रवासिनी,देस–परदेस,पुरवई, अमरदीप तथा भारत भवन जैसी पत्रिकाओं का हिंदी विकास में अहम योगदान है।

चेक गणराज्य की राजधानी प्राग देश का सबसे बड़ा सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक केन्द्र भी है। यहां पर नौ महाविद्यालय एवं दो विश्वविद्यालय हैं जिनमें से चार्ल्स विश्वविद्यालय यूरोप का सबसे प्रसिद्ध एवं प्राचीन विश्वविद्यालय है। यहां पर सन 1949 से भारतीय भाषाओं के पठन –पाठन की व्यवस्था है। यहां के हिंदी विद्वानों में वित्सेत्स लेसनी, डॉ.विंतसेंत्स पोरिज्का , डॉ. ओदोलेन समेकल का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

फ्रांस का नाम आते ही 'गास–द–तासी'याद आते हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ फ्रेंच भाषा में लिखा था। ज्युलब्लाक, तथा श्रीमती (डॉ.)वोदवील का भी हिंदी के विकास में अहम योगदान माना जाता है।

जर्मनी में हिंदी को लेकर काफी उत्साहजनक परिणाम देखे जा सकते हैं। "जर्मनी में 1921 में हिंदी शिक्षण का कार्य आरम्भ हुआ था। डॉ. लोठार लुत्से ने हिंदी शिक्षण पर महत्वपूर्ण कार्य किया। मार्गेट गात्स्लाफ ने हिंदी उपन्यासों व कहानियों का जर्मन में अनुवाद किया है।।सेतांदबीर ने सूर के पदों का जर्मन में अनुवाद किया है। इटली की मारियोल्ला आफरेदी ने प्रेमचंद के गोदान तथा कुंवर नारायण की काव्यकृति आत्मजयी तथा चेचीलिया कोस्सियो ने

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास मैला आंचल का इतालवी में अनुवाद किया है।''12

जर्मनी के कार्लमार्क्स विश्वविद्यालय,लाइपजिंग तथा मार्टिन लूथर किंग विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त पंद्रह और विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा की व्यवस्था है। हिंदी के विकास एवं उत्थान के लिए लोठार लुत्से, डॉ. माइजिक , डॉ. वांगोस्की , डॉ आनंद मिश्र, डॉ.रामप्रसाद भट्ट, डॉ. टंशिवप्रकाश आदि विद्वानो के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। यूगोस्लाविया आदि देशों में भी हिंदी माध्यम से शिक्षा दी जा रही है।

जर्मनी के सत्रह विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन होता है डॉ. माइजिक, डॉ. वांगोस्की, डॉ.आनंद मिश्र, डॉ.रामप्रसाद भट्ट, डॉ.शिवप्रकाश आदि विद्वान हिंदी के विकास में सराहनीय योगदान रहा है।

इसी तरह हालैंड,फ्रांस, उज्बेकिस्तान समरकंद के विश्वविद्यालयों में भी हिंदी का प्राध्यापन एवं शोधकार्य प्रगति पर है। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के की हिंदी सेवा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिन्होंने हिंदी के लिए हमेशा के लिए अपने देश को छोड़ दिया।

''हालैंड के चारों विश्वविद्यालयों और फ्रांस में पेरिस विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया के केनबरा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और लैगी विश्वविद्यालय तथा मेलबर्न विश्वविद्यालयों में हिंदी की शिक्षा दी जाती है। आस्ट्रिया के विण्णा विश्वविद्यालय,बेल्जियम के तीनों कैंट,लैर्वे और लैगी विश्वविद्यालयों , नीदरलैंड के लीरडिन और यूटेक विश्वविद्यालयों, इटली के वेजिया विश्वविद्यालय, वेनिस विश्वविद्यालय, रोम विश्वविद्यालय में भी हिन्दी पढायी जा रही है।"13

पूर्वी एशिया में हिंदी–

जापान में हिंदी शिक्षण का इतिहास नया नहीं है। लगभग सौ वर्ष पहले तोक्यों व ओसाका विश्वविद्यालय के अतिरिक्त ताकुशोक, सोकाई, ताईको, ओतानि, ओतेमोन, जाकुइन आदि आठ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाने की सुविधा है। जापानी से हिन्दी और हिन्दी से जापानी में अनुवाद काफी हो चुका है। प्रोफेसर तोजियो तनाका जापानियों को हिंदी पढ़ाने एवं हिंदी में शोध करवाने के अतिरिक्त हिंदी की सेवा भी कर रहे हैं। "हाकुसुइशा(हिंदी प्रवेश),इंदो ना शुक्यो तो गेइजित्सु (भारत के धर्म और कथाएं) जैसी पुस्तकों के अतिरिक्त अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, इलाचनंद जोशी, राहुल सांकृत्यायन, राही मासूम रजा हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि पर अनेक लेख जापानी व हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। जापान में हिंदी के अन्य जापानी विद्वानों में प्रो.योशीफुमी मिजनु,हिदेआकी इशिदा का नाम भी उल्लेखनीय है।''14

चीन में भी हिंदी पढ़ने वालों की संख्या बहुत अधिक है। वहां पर हिंदी पठन–पाठन की परम्परा बहुत दिनों से चली आ रही है। सर्वप्रथम 1942 के 'ओरियंटल स्कूल आफ लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर' में दो वर्षीय पाठ्यक्रम से शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ । वहां के पेइचिंग विश्वविद्यालय, बीजिंग विश्वविद्यालय, सनघन विश्वविद्यालय में प्रमुख रूप से हिन्दी की शिक्षा दी जाती है। यही नहीं चीन के अंतरराष्ट्रीय रेडियो और दूरदर्शन के हिन्दी विभाग ने भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लगभग छह करोड़ आबादी वाले देश हांगकांग में दस हजार से अधिक भारतीय लोग चार–पांच पीढ़ियों से बसे हुए हैं। वहां पर सर एल्लास कादरी द्वारा खोले गए प्राइमरी स्कूल में निःशुल्क हिन्दी शिक्षण होता है तथा प्रत्येक रविवार को रेडियो से 'भारतीय विविध' नाम से आधे घंटे के कार्यक्रम आते हैं जिनमें हिन्दी के गाने भी होते हैं।

अमेरिका में हिंदी–

अमेरिका के लगभग 75 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढाई जा रही है। वहां के हावर्ड पेन,पेनसिल्वेनिया, आयोवा, वाशिंगटन, मिशिगन, रोचेस्टर, टेक्सास व कोरनल विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी भाषा और साहित्य की शिक्षा दी जा रही है। "अमेरिका में हिंदी के लिए कई संस्थाएं कार्य कर रही हैं जिनमें अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी समिति, हिंदी न्यास आदि प्रमुख हैं। इतना ही नहीं, वहां पर विश्वा, सौरभ हिंदी जगत, क्षितिज, विश्व विवेक, बाल भारती, हिंदी चेतना आदि प्रमुख पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। वहां पर प्रवासी भारतीय प्रो. हरिशंकर आदेश, डॉ.अंजना संधरी, डॉ.राम चौधरी, डॉ.सुधा ओम ढींगरा, डॉ. सुषम बेदी, डॉ. इला प्रसाद, डॉ. विजय मेहता, डॉ. सुदर्शन आदि रचनाकार हिन्दी के संरक्षण व संवधर्न में लगे हुए हैं।''15 इनके अतिरिक्त वहां पर हिंदी रचनाकारों की बहुत बड़ी संख्या है जो हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

कनाडा में आज हिंदी एक बोलचाल की, शैक्षणिक तथा साहित्यिक भाषा बनी हुई है। टोरंटों की सक्रिय संस्था 'हिंदी इंस्टिट्यूट मोंटेसरी अकादमी' कनाडा की एकमात्र स्वतंत्र हिंदी शैक्षणिक अखंड सुविधा है।इस संस्था का मुख्य कार्य तो हिंदी का प्रसार करना है, किन्तु साथ में यह संस्कृत, गीता एवं रामायण का भी प्रचार–प्रसार करती है। कनाडा में हिंदी का प्रचलन बोलचाल, शैक्षणिक तथा साहित्यिक भाषा के रूप में बढ़ा है।कनाडा में हिंदी पढ़ाने के आठ केन्द्र–बैंकूवर, टोरंटों,विंडसर मांट्रियल,रंजीना

विश्वविद्यालय आदि हैं।प्रायः सभी प्रमुख शहरों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है।''16

आस्ट्रेलिया में हिंदी–

न्यूजीलैंड में हिंदी के प्रति जागरूकता देखी जा सकती है। यहां पर डॉ.रोनाल्ड स्टुअर्ट हिंदी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ रहे हैं तथा इंग्लैंड में रहकर हिंदी सेवा से जुड़े हैं।

आस्ट्रेलिया में हिंदी भाषी लोग न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया,क्वींसलैंड, तथा साउथ आस्ट्रेलिया आदि स्थानों पर निवास करते हैं।'आस्ट्रेलिया ब्यूरो स्टेटिटिक्स' के अनुसार जून 2018 तक यहां करीब 592000 भारतवंशी थे। हिंदी भारतीय भाषाओं में बोली जाने वाली भाषा है,जिसे 159652 से अधिक लोग बोलते हैं। यहां पर हिंदी अधिकतर भारतीय मूल के लोग ही बोलते आए हैं परन्तु भारत को उभरती हुई महाशक्ति के रूप में देखने के बाद आम लोग भी हिंदी सिखने लगे हैं।आज मेलबर्न शहर के क्रेनबर्न के स्कूलों में पढ़ाई जा रही है। यहां पर पहली बार सरकारी स्कूलों में हिंदी को एकमात्र विदेशी भाषा के रूप में चुना है। 'इंडियन लिटरेरी और आर्ट सोसायटी' नामक संस्था हिंदी के विकास में अहम योगदान दे रही है। यहां पर डॉ.पीटर फ्रीडलैंडर, सुश्री हरप्रीत कौर,रीना राठी,समीर पांडे, मनीष गुप्ता,माला मेहता, रीता कौशल आदि हिंदी प्रेमी हिंदी सेवा में लगे हुए हैं। आस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स से मासिक पत्रिका 'हिंदी समाचार पत्रिका' हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रही है। यहां के केनबरा विश्वविद्यालय,लैगी विश्वविद्यालय तथा मैलबार्न विश्वविद्यालयों में हिंदी की शिक्षा पढ़ाई जाती है।

खाड़ी देशों में हिंदी–

कतर,ओमान,इराक,इरान,जार्डन,यू.ए.ई., दुबई, कुवैत, आबुधाबी आदि खाडी देशों में प्रवासी भारतीयों की संख्या लाखों में है। इन देशों की आई सी एस ई पाठशालाओं में हिंदी प्रथम भाषा के रूप में सिखाई जाती है।इन देशों में बी .एड अध्यापकों की बड़ी मांग है। हिंदी के क्षेत्र में खाड़ी देशों की एक बड़ी उपलब्धि है हिंदी ई–पत्रिकाएं जो विश्व में प्रति माह 120 देशों में पढ़ी जाती हैं। इन पत्रिकाओं की संरचना सही अर्थों में अंतरराष्ट्रीय है क्योंकि इनका प्रकाशन और संपादन संयुक्त अरब अमीरात से,टंकण कुवैत से, साहित्य संयोजन इलाहाबाद से और योजना व प्रबंधन कनाडा से होता है। यहां पर प्रवासी साहित्यकार अशोक कुमार श्रीवास्तव, उमेश शर्मा, कृष्ण बिहारी, पूर्णिमा वर्मा,राम कृष्ण द्विवेदी, विद्याभूषण धर, जितेन्द्र चौधरी आदि हिंदी के विकास में अहम भूमिका निभा रहे हैं।

इस प्रकार आज दुनिया के अधिकांश देशों में हिंदी अध्ययन–अध्यापन और प्रशिक्षण का कार्य हो रहा है।अनेक देशों में उनके आकाशवाणी केन्द्रों और दूरदर्शन के चौनल्स पर विशेष हिन्दी कार्यक्रम और पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं।आज दुनिया के छह सौ से अधिक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों तथा स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है,जो इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना परचम लहरा रही है। "विश्व पटल पर हिंदी एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान निर्मित करती हुई विश्व– भाषा रूपी महार्णव में स्वयं को समाहित करती–सी प्रतीत होती है। यही कारण है कि विश्व का शायद ही कोई ऐसा कस्बा या व्यवसायिक प्रतिष्ठान नहीं रहा जहां हिंदी भाषा का प्रचार –प्रसार न हुआ हो।''17

हिंदी और उसकी सांस्कृतिक धरोहर इतनी समृद्ध और सुदृढ़ है कि उसके विकास की गति दिनों–दिन तीव्र होती जा रही है।सनातन हिन्दू धर्म की देन योगासन, ध्यान, प्राणायाम आदि संपूर्ण विश्व में प्रचलित हो जाने के कारण आज पूरा विश्व इन साधनाओं के माध्यम से भी हिंदी की ओर आकर्षित हो रहा है। पतंजलि योगपीठ स्वामी रामदेव के मार्गदर्शन में योग एवं आयुर्वेद के प्रचार एवं प्रसार में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। आयुर्वेद विज्ञान ने भी विश्व में एक खास पहचान बनाई है जिस कारण आज विश्व के कई देशों में आयुर्वेद के केन्द्र खुल गए हैं जिसमें संस्कृत के साथ हिंदी भाषा की अहम भूमिका रही है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज हिंदी की स्थिति काफी सुदृढ़ है। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के पावर लैंग्वेज इंडेक्स के अनुसार वर्ष 2050 तक हिंदी विश्व की एक शक्तिशाली भाषा बन जाएगी। यद्यपि इसके लिए हिंदी को काफी लंबा संघर्ष करना पड़ेगा। तथापि उसका भविष्य उज्ज्वल है।आज भाषिक एवं साहित्यिक दोनों स्तरों पर हिंदी का प्रचार–प्रसार लगातार जारी है।आज दुनिया के कई देशों में भारतीय मूल के लोगों के हाथ में शासन–सत्ता की बागडोर है जिससे हिंदी के विकास, विस्तार और प्रतिष्ठा में वृद्धि के अवसर बढ़े हैं। विश्व हिंदी सम्मेलनों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की पत्रकारिता को व्यापक स्वीकृति एवं प्रचार–प्रसार प्राप्त हुआ है। वैश्विक स्तर पर हिंदी को स्थापित एवं प्रतिष्ठित करने में हिंदी की अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों और सम्मेलनों का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैश्विक स्तर पर हिंदी की स्थिति को मजबूत करने में आज तक सम्पन्न ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलनों की भी अहम भूमिका रही है। मॉरिशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना जो ग्यारह फरवरी 2008 से अपना कार्य कर रहा है ,यह भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है।

हिंदी को विश्व पटल पर प्रतिष्ठित करने में तमाम सरकारी, गैर–सरकारी स्वैच्छिक भारतीय–प्रवासी संस्थाओं एवं

समितियों की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है जैसे मॉरिशस की 'हिंदी लेखक संघ' , ' आर्य परोपकारिणी सभा', 'रविदेव हिंदी प्रचारिणी सभा' , सूरीनाम की 'सूरीनाम हिंदी परिषद', 'जयप्रकाश हिंदी संस्थान', अमेरिका की 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी परिषद' , 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति', कनाडा की 'हिंदी परिषद' , 'हिंदी संघ' , 'हिंदी लिटरेरी सोसायटी', 'मुकुल हिंदी, गुयाना की 'हिंदी प्रचार सभा', इंग्लैंड की 'हिंदी समिति', 'हिंदी परिषद' आदि संस्थाएं हिंदी के प्रचार–प्रसार में सतत् रुप में संलग्न हैं।

निष्कर्ष–

विश्व स्तर पर हिंदी आज बोलने और समझने की दृष्टि से सबसे समृद्ध और बहुसंख्यक मानव समुदाय की सहज–संम्प्रेषणीय भाषा है। आंकड़ों की दृष्टि से अगर विश्व की समस्त भाषाओं के बोलने–समझने वालों का आंकलन किया जाए तो आज हिंदी प्रथम पायदान पर है जिसकी पुष्टि डॉ.जयंती प्रसाद नौटियाल ने अपने शोध ग्रंथ में की है , ' विश्व में हिंदी जानने वाले सर्वाधिक हैं तथा मंदारिन दूसरे स्थान पर है।' अतः विचार विनिमय, आजीविका और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी आज विश्व–भाषा की अधिकारिणी है।

विश्व बाजार में भारत की बड़ी भूमिका ने उसे और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। ग्यारहवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में मॉरिशस के मंच से भारत की पूर्व विदेश मंत्री स्वर्गीय श्रीमती सुषमा स्वराज ने हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने की घोषणा की थी, शायद वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बन कर अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–:

1. इंडिया टुडे, नवम्बर 2016,पृ.189
2. डा.जयंती प्रसाद नौटियाल, राष्ट्र भाषा हिंदी, जनवरी 2002,पृ.12
3. डा.शशिभूषण कुमार, भूमंडलीकरणः साहित्य, समाज और संस्कृति,पृ. 154
4. डा. महेश दिवाकर, हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य,पृ.15, विश्व पुस्तक प्रकाशन, दिल्ली।
5. चि .बी .एस., उपन्यासकार अभिमन्यु अनत,पृ.143
6. अभिमन्यु अनत,लाल पसीना,पृ.123, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. पुष्पिता अवस्थी, भारतवंशी भाषा एवं संस्कृति, पृष्ठ 156,किताब घर प्रकाशन, दिल्ली।
8. विश्व हिंदी पत्रिका, 2011, पृ.50
9. वही , पृष्ठ 171
10. डॉ.अनिरूद्ध सेंगर, विश्व पटल पर हिंदी, विश्व पुस्तक प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ.364
11. राजभाषा, हिंदी प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सन् 2000,पृ.267
12. डॉ.अनिरूद्ध सेंगर, विश्व पटल पर हिंदी, विश्व पुस्तक प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ.366
13. डा.भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ, पृष्ठ 27, पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली।
14. डॉ.अनिरूद्ध सेंगर, विश्व पटल पर हिंदी, विश्व पुस्तक प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ.361
15. डा. महेश दिवाकर, हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य, पृष्ठ 17,19, विश्व पुस्तक प्रकाशन , दिल्ली।
16. विश्व हिंदी पत्रिका,2017,पृ.84
17. डॉ.दिगम्बर पांडेय, विश्व पटल पर हिंदी, विश्व पुस्तक प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ.145

डॉ0 अनिता रानी
सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
राजकीय महिला महाविद्यालय
सेक्टर–18, रेवाड़ी (हरियाणा)

49

भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण

दीपमाला

सारांश

'दर्शन' शब्द **'दृश्'** धात से 'भाव' और 'करण' अर्थ में **'ल्यूट्'** प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है **'देखने का भाव'** अथवा **'साधन'**। यहाँ पर देखने के साधनरूप में इन्द्रियाँ हैं किन्तु उन इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके पीछे छिपे सत्य अथवा मूल कारण की खोज करना ही दर्शन का प्रयोजन हैं। इस प्रकार से दर्शन का सामान्य अर्थ 'इन्द्रियों के माध्यम से संसार के भौतिक स्वरूप को जानकर उनके भीतर स्थित वास्तविकता सत्यता, एकसूत्रता अथवा मौलिकता का ज्ञान प्राप्त करना है।' यह घटनाओं के तार्किक परीक्षण सूक्ष्म निरीक्षण और अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अतः दर्शन सत्य के अन्वेषण की जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है। और इसका अन्तिम लक्ष्य आत्मा का अपरोक्ष साक्षात् ज्ञान प्राप्त करना है।

भारतीय दर्शन का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह जीवन की समस्याओं एवं दुःख निवृत्ति के लिए केवल मानसिक जिज्ञासा को शान्त करने का प्रयास ही नहीं करता बल्कि आध्यात्मिक असंतोष तथा जीवन के दुःखों के मूल कारणों को ढूंढकर उनसे छुटकारा प्राप्त करने वाले के लिए पूर्ण सम्भव मार्गों की खोज भी करता हैं दर्शन, हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग हैं जीवन से अलग दर्शन की कल्पना सम्भव ही नहीं। **प्रो0 हिरिएन्ना** ने कहा है कि ''दर्शन सिर्फ सोचने की पद्धति न होकर जीवन की पद्धति हैं।'' दर्शन को जीवन का अंग कहने का कारण यह है कि यहाँ दर्शन का विकास जगत् के दुःखों को दूर करने के उद्देश्य से हुआ हैं अतः भारतीय दर्शन 'साधन' है और दुःखों की निवृत्ति 'साध्य' है।

जो दर्शन वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं वह **आस्तिक दर्शन** कहे जाते हैं एवं जिन्होंने वेद को प्रमाणरूप में स्वीकार नहीं किया वह **नास्तिक दर्शन** कहे गये।

इस प्रकार से भारतीय दर्शन में दो सम्प्रदाय प्रचलित है– आस्तिक दर्शन एवं नास्तिक दर्शन।

आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, मीमांसा एवं अद्वैत वेदान्त दर्शन एवं नास्तिक दर्शन में जैन, बौद्ध व चार्वाक दर्शन आते हैं।

भारतीय दर्शन में अपनी तत्त्व मीमांसा को सिद्ध करने हेतु जितने प्रमाणों की अपेक्षा हुई उतने ही प्रमाणों की संख्या को भारतीय दार्शनिकों ने स्वीकार किया।

प्रमाण का स्वरूप

'प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्' प्रमाण के इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर प्रमाण को करण के रूप में सभी दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। भाष्यकार वात्स्यायन अनुसार प्रमाण का लक्षण है कि **''उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि''** अर्थात् उपलब्धि ज्ञान के साधन प्रमाण है। तर्कभाषा में **'प्रमाकरणं प्रमाणं'** इस प्रकार का लक्षण किया गया है। बौद्धदार्शनिक एवं मीमांसकों ने प्रमाण को ज्ञान स्वरूप माना है जबकि न्याय व वैशेषिक दर्शन में प्रमाण ज्ञान स्वरूप भी हो सकता है और ज्ञानरहित वस्तु भी। बौद्ध मतानुसार **'अर्थसारुप्यमस्य प्रमाणम्'** इस प्रकार से प्रमाण का कथन किया गया है। इनके मत में एक ही तत्त्व प्रमाण व फल दोनों है। विषय के साथ ज्ञान का सारूप्य विषय के ग्रहण में प्रकृष्ट उपकारक माने जाने के कारण प्रमाण माना जा सकता है। सांख्ययोग दर्शन में वाचस्पति मिश्र ने प्रमाण के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए कहा है– **"प्रमीयते अनेन इति निर्वचनात् वृत्तिः। बोधश्च पौरुषेय फलं प्रमा तत्साधनम् प्रमाणम्"।** प्रमाण के प्रमा के प्रति करण होने का बोध होता है। यह प्रमाण सन्देहरहित भ्रमरहित अज्ञान अर्थ को विषय बनाने वाली चित्तवृत्ति है। पुरूष को होने वाल बोध फल अर्थात् प्रमा है। इस प्रमा का साधन प्रमाण है।

भारतीय दार्शनिकों के मतानुसार मुख्यतः आठ भेद प्रमाण के स्वीकृत हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द (आगम), उपमान, अर्थापत्ति एवं अभाव। इनके अतिरिक्त पौराणिक प्रमाण भी स्वीकृत किये गये हैं, जिनकी संख्या दो है– एतिह्य एवं सम्भव।

भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण सभी दार्शनिकों को स्वीकृत है। भारतीय दर्शनों में दर्शन की व्युत्पत्ति, क्षेत्र उसके विभाग तथा षड्दर्शन के तात्विकविमर्श पर चर्चा की गई है। इसके साथ ही प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति, प्रमाण भेद, प्रमा, प्रमेय व प्रमा का फल विषय पर सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में सभी भारतीय दर्शनों में प्रत्यक्ष प्रमाण पर प्रकाश डाला जा रहा है–

चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण–

नास्तिक दर्शन अथवा अवैदिक दर्शन के अन्तर्गत जैन, बौद्ध व चार्वाक दर्शन की गणना होता है। इन तीनों ने प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार किया है।

बौद्ध दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय में आचार्य दिङ्नाग का कथन है कि कल्पना से रहित नाम जात्यादिरहित ज्ञान प्रत्यक्ष है। धर्मकीर्ति ने इस परिष्कार करते हुए कहा है कि कल्पना से रहित अर्थात् अभ्रान्त ज्ञान प्रत्यक्ष है। इनके मत में प्रत्यक्ष का लक्षण इन्द्रियार्थजन्य न होकर साक्षात्कारि ज्ञान है जिसका तात्पर्य है इन्द्रियाश्रित ज्ञान नहीं होना।

जैन दर्शन के अन्तर्गत दो प्रमाण स्वीकृत हैं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष। हर ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता परन्तु प्रमाण ज्ञान ही होगा ऐसा कथन है। यथार्थ ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

जैन मत में इन्द्रियजन्य ज्ञान वस्तुतः परोक्ष है लेकिन लोक व्यवहार के कारण उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। वास्तविक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत अवधि, मनःपर्यय एवं केवल ज्ञान है। ये पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहे जाते हैं। श्रुतज्ञान परोक्ष कहलाता है। इन्द्रियजन्य मतिज्ञान पारमार्थिक दृष्टि से परोक्ष है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष होता है।

जैन दर्शन में सर्वप्रथम प्रथम शती ई.पू. के आसपास उमास्वाति ने प्रमाण पर चर्चा की है। आचार्य सिद्धसेन, आचार्य सामंतभद्र और आचार्य अकलंकदेवादि ने क्रमशः प्रमाण में योगदान किया है। आचार्य उमास्वाति ने ज्ञान को प्रमाण कहा है— ज्ञानं प्रमाणं। इसके उपरान्त आचार्य सिद्धसेन और आचार्य समंतभद्र ने कहा— **''प्रमाणं स्वपरावभासिज्ञानं बाधविवर्जितं''** अर्थात् स्वपरप्रकाशी निर्दोष ज्ञान प्रमाण है।

चार्वाक दर्शन के मत में एक ही प्रमाण है—वह है प्रत्यक्ष प्रमाण माधवाचार्य का चार्वाक दर्शन के विषय में कथन है— **''प्रत्यक्षैक प्रमाणवादितया अनुमानदेरन्न कारेण प्रामाण्या भावात।''**

चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमानादि प्रमाणों का ग्रहण नहीं होता है। इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष में प्राप्त वस्तुओं का ही अस्तित्व होता है। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न सम्यक् अपरोक्ष अनुभव ही प्रत्यक्ष है। यह प्रत्यक्ष अन्य प्रमाणों की अपेक्षा नहीं करता है। अतः संशयशून्य और विपर्ययशून्य प्रत्यक्ष ही प्रमा है और इस प्रमा का करण 'प्रत्यक्ष प्रमाण' कहलाता है।

सांख्य—योगदर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण

सांख्यदर्शन के प्रणेता आचार्य महर्षि कपिल है। इस दर्शन में **छः अध्याय** तथा **527 सूत्र** है। सांख्य का प्रमाण **'त्रिविध प्रमाण'** कहा जाता है। इस दर्शन के अनुसार जिस विषय के साथ सम्बद्ध होता हुआ, उसी के आकार का ग्रहण करने वाला जो विज्ञान है वही 'प्रत्यक्ष' प्रमाण है। सांख्यदर्शन में द्रष्टव्य है—

'यत सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं प्रत्यक्षम्।'

सांख्य मत में इन्द्रिय के साथ किसी विषय का संयोग होने पर उसका साक्षात् ज्ञान होता है वही प्रत्यक्ष कहलाता है।

इसके दो भेद स्वीकृत हैं— **''निर्विकल्पक एवं सविकल्पक।''**

योगदर्शन महर्षि पतज्जलि द्वारा लिख गया प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है। **'योग'** शब्द समाध्यर्थक **'युज्'** धातु से निष्पन्न हुआ है। योग दर्शन में भी सांख्य के समान ही तीन पद्दमाण स्वीकृत हैं— प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द।

प्रत्यक्ष के विषय में योगदर्शन का कथन है कि चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होकर अज्ञात तथा सत्य अर्थ को विषय करने वाली चित्तवृत्ति को 'प्रत्यक्ष' प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण का अर्थ है— साक्षी भाव, जिसे किसी पुष्टि व साक्ष्य की कोई आवश्यकता नहीं होती जो स्वयं अपना प्रमाण है। शंका, भ्रान्ति, संशयरहित ज्ञान 'प्रत्यक्षप्रमाणवृत्ति' है।

न्याय—वैशेषि दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण

'न्याय' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के **'नी'** धातु से हुई है जिसका अर्थ शब्दों और वाक्यों का निश्चित अर्थों में बोध होता है— **नियमेन नीयते इति।** न्यायदर्शन का इतिहास लगभग 200 वर्षों पुराना है। यह दो भागों में विभाजित है— प्राचीन व नव्य न्याय। प्राचीनन्याय जहाँ प्रमेय प्रधान है वहीं नव्यन्याय प्रमाण प्रधान है।

प्रमाण के सम्बन्ध में न्यायदर्शन का कथन है— **''प्रमाता येनाऽर्थ प्रमिणोति तत्प्रमाणं।''** प्रमा किसी भी वस्तु या पदार्थ के स्वरूप के ज्ञान को कहते हैं अर्थात् जो वस्तु जिस रूप में हैं, उसी रूप में समझना प्रमा है।

प्रमा के कारण अर्थात् साधन को प्रमाण कहते हे। और यह चार प्रकार का होता है— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान व शब्द। प्रत्यक्ष का लक्षण न्यायदर्शन में इस प्रकार से है— **''इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यपदेश्यमभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।''** इन्द्रियों व अर्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ जो अशब्द, अव्यभिचारी और निश्चात्मक ज्ञान हो वह 'प्रत्यक्ष' है।

लौकिक व अलौकिक प्रत्यक्ष के भेद से यह प्रत्यक्ष दो प्रकार को होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण एवं योगज लक्षण रूप भेद किये गये हैं। इन सभी का विस्तारपूर्वक वर्णन शोध प्रबन्ध में उपलब्ध है।

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद है। इसे औलूक्य दर्शन भी कहा जाता है। विशेष नाम पदार्थ की विशिष्ट कल्पना के

कारण इसी संज्ञा वैशेषिक है। वैशेषिक दर्शन में मुख्यतः प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाण को स्वीकार किया है। प्रत्यक्ष ज्ञान का करण प्रत्यक्ष होता है–

प्रत्यक्षज्ञानाकरणं प्रत्यक्षम्।

यह सविकल्पक व निर्विकल्पक के भेद से दो प्रकार को होता है। सविकल्पक ज्ञान में नाम, जाति, गुण और क्रियारूप विशेषताओं से युक्त रूप में पदार्थ का साक्षात्कार होता है। वहीं निर्विकल्पक ज्ञान तब होता है जब प्रत्यक्ष होने वाला पदार्थ, विशेष की कल्पना से रहित रूप में प्रतीत होता है।

मीमांसा एवं अद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण

मीमांसा दर्शन में मीमांसा का अर्थ है– पूजित विचार, विवेचन करना। यह **मानेर्जिज्ञासायाम्** पूजार्थक 'मान्' धातु से 'जिज्ञासा' अर्थ में निष्पन्न हुआ है।

मीमांसकों की दृष्टि में प्रमाण के छः भेद उपलब्ध होते हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति व अभाव। मीमांसा दर्शन में प्रत्यक्ष के लक्षण में कहा गया है कि पदार्थ के साथ इन्द्रिय का साक्षात् होने पर उससे उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है। मीमांसा दर्शन में वर्णित प्रमाण विवेचन न्याय सम्मत ही है। अद्वैत वेदान्त दर्शन भारतीय अध्यात्म शास्त्र की सभी दार्शनिक प्रवृत्तियों और विचारधाराओं में सर्वश्रेष्ठ है। इनके मत में भी प्रमाण तीन प्रकार से स्वीकृत हैं।

अद्वैत वेदान्त का प्रमाणसम्बन्धी वर्णन प्रमुख ग्रन्थ 'वेदान्तपरिभाषा' में प्राप्त होता है।

आचार्य शङ्कराचार्य ने अध्यासभाष्य में कहा है कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों और सभी शास्त्र अविद्या विशिष्ट जीव में आश्रित है। उनके मत में शास्त्र एवं प्रमाणों की उपयोगिता अविद्या के निराकरण करने के लिए है। अविद्या निवृत्ति के पश्चात् आत्मा अथवा ब्रह्म का ज्ञान स्वतः होता है। ब्रह्म या आत्मा ही स्वरूप पदार्थ है और उसी के ज्ञान को सम्यक्ज्ञान अथवा प्रमा कहते हैं।

अद्वैत मत में ज्ञान के दो भेद स्वीकृत हैं– परोक्ष एवं अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान में वस्तु का अस्तित्व मात्र ही ज्ञात होता है परन्तु अपरोक्ष ज्ञान के अन्तर्गत उसके स्वरूप का भी भान होता है।

वेदान्तियों द्वारा प्रत्यक्ष की प्रक्रिया में कथन है जब किसी ज्ञानेन्द्रिय का विषय से सन्निकर्ष होता है तो अन्तःकरण बाहर निकलंकर उस वस्तु के आकार में परिवर्तन हो जाता है। वस्तु जब वृत्ति से एकाकार होती है तब उसका अपरोक्ष ज्ञान होता है। चूंकि वृत्ति अन्तःकरण का ही परिणाम है, इसलिए अन्तःवृत्ति और वस्तु का एकाकार होना ही ज्ञाता अर्थात् जीव, ज्ञेय अर्थात् वस्तु का एकाकार होना है। अतः यह कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान, ज्ञाता व ज्ञेय के एकाकार होने का परिणाम है।

अद्वैत वेदान्त में भी सविकल्पक एवं निर्विकल्पक भेद से प्रत्यक्ष दो प्रकार का है।

आगम दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण

आगम दर्शन के अन्तर्गत शैवागम, शाक्तआगम एवं वैष्णवागम में प्रमाण सम्बन्धी चर्चा की गई है।

शैवागम के प्रमुख आचार्य उत्पल एवं अभिनवगुप्त ने प्रमाण के तीनों भेद प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द पर अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है। प्रत्यक्ष शब्द की वृत्ति में उत्पलाचार्य का कथन है **'चितिर्ज्ञानम् अध्यक्षम'।** इसके आधार पर अभिनवगुप्त ने प्रत्यक्ष के विषय में कहा है– **अक्षैः करणतया अधिष्ठितम्।**

प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जिसमें इन्द्रियाँ करण के रूप में अधिष्ठित रहती हैं। साक्षात्कारी होने के कारण प्रत्यक्ष विषय के प्रति प्रमाण है। आगम दर्शन में भी प्रत्यक्ष के दो भेद सविकल्पक, निर्विकल्पक स्वीकृत हैं। इनकी विस्तृत विवेचना शोध प्रबन्ध में किया गया है।

शैव एवं शाक्त तन्त्रागम इन दोनों ही आगम दर्शनों में प्रमाण सम्बन्धी प्रक्रिया एक समान ही स्वीकार किया गया है। शैवागम में जहाँ शिव ही परमतत्त्व के रूप में दिखलाई देते हैं। वहीं शाक्तागम के अन्तर्गत 'शक्तितत्त्व' को परमतत्त्व रूप में स्वीकार किया गया है। दोनों ही आगम दर्शनों में प्रत्यक्ष प्रमाण सम्बन्धी विषय में समानता दिखाई देती है।

वैष्णव आगम में भी प्रमाण के तीन भेद स्वीकृत हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम। वैष्णवागम दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय में आचार्य का मत है साक्षात्कारिणी प्रमा का कारण प्रत्यक्ष है। यह प्रमा वस्तु और इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न होती है। सभी ज्ञान यथार्थ ही है। जिनके द्वारा यथार्थ वस्तु अथवा स्वरूप का ग्रहण होता है वह प्रमाण है। दोषरहित इन्द्रियार्थसन्निकर्ष को प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाता है क्योंकि यह ज्ञान का साधन है।

निष्कर्ष–

अतः सभी आगमों में प्रमेय के स्वरूप बोध के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण सम्बन्ध विवेचन का प्रस्तुतीकरण किया गया है। अतः सभी आगम–निगम दर्शानिकों को सर्वसम्मति से प्रत्यक्ष प्रमाण स्वीकृत है।

दीपमाला
शोधछात्रा संस्कृत
डॉ0 राम मोहन लोहिया
अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

50

भूमि उपयोग का वर्तमान प्रतिरूप : भिवानी जिले के सन्दर्भ में

डॉ० रानी सिंह, सविता बाई

सारांश

मानव सभ्यता का विकास होने के साथ–साथ मानव अपने रहने के विभिन्न प्रकार के अधिवासों का निर्माण करके निधि, पत्थर, ईंट, लोहा, कंकरीट आदि सामग्री के द्वारा अधिवासों का मानव समाज का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्रियाओं का विकास ग्रामीण अधिवास प्रतिरूप एवं वितरण के द्वारा किया जाता है। कृषि विकास, भूमि उपयोग, कृषि भूमि उपयोग अध्ययन क्षेत्र में कृषि विकास के अन्तर्गत भूमि उपयोग का क्षेत्रफल कितना है। भूमि उपयोग तथा इसके प्रारूपों में परिवर्तन के फलस्वरूप जनसंख्या तथा भूमि के बीच संबंधों के संदर्भ में जटिल समस्याओं के प्रति चिन्तन एवं निर्वचन हेतु हमें बाध्य करते हैं। अतः इस शोध पत्र के द्वारा भिवानी जिले में भूमि उपयोग का अध्ययन किया गया है। सिंचाई के साधनों से उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो रही है। वनों के विनाश से मृदा का विनाश हो रहा है। कृषि योग्य भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि हो रही है लेकिन अन्य भूमि धीरे–धीरे कम होती जा रही है। प्राकृतिक संसाधनों में भूमि एक अमूल्य संसाधन है। कृषि प्रधान देशों एवं प्रदेशों में इसका बहुत अधिक महत्व है। भूमि का सही उपयोग करने से न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि बाढ़, सूखा तथा बंजर भूमि की समस्याएँ भी कम की जा सकती हैं। अतः भूमि का समुचित उपयोग आवश्यक है। वास्तव में भूमि का सही उपयोग समृद्धि का प्रतीक है। इस अध्ययन में भिवानी जिले के भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन किया गया है।

कुंजी : कृषि, भिवानी, प्राकृतिक, भूमि, संसाधन, जनसंख्या, भूमि–उपयोग।

प्रस्तावना

निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए भूमि उपयोग अध्ययन का विशेष महत्व है। भूमि के दुरुपयोग को रोकने के लिए भूमि उपयोग अति आवश्यक है। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए उपलब्ध भूमि संसाधन का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक है। वुड (1972) ने भी स्पष्ट किया है कि भूमि उपयोग केवल प्राकृतिक भू–दृष्य या वनस्पति आच्छादित भू–दृष्य के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि मानवीय क्रियाओं से उत्पन्न उपयोग सुधारों के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। इस प्रकार क्षेत्रीय आधार पर भूमि उपयोग संसाधन के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया विभिन्न प्रभावी कारकों में क्षेत्रीय विविधता होने के कारण भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। भूमि उपयोग एक क्रियाशील अवधारणा है, जो क्षेत्र की आर्थिक समस्याओं के अनुरूप संपन्न होती है। अतः ऐसी भूमि उपयोग के लिए भूमि संसाधन उपयोग शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। बारलोब (1954) के अनुसार भूमि संसाधन उपयोग, भूमि समस्या एवं योजना संबंधी विवेचना की धुरी है। आर्थिक दृष्टि से भूमि उपयोग का प्राथमिक सम्बन्ध उस परिस्थिति, अवस्था, प्रतिस्पर्धा, परिवर्तन एवं सामंजस्य से है जिनका प्रादुर्भाव भूमि संसाधनों के उपयोग से होता है। भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों में उन समस्त प्राकृतिक कारकों को समाहित किया जाता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भूमि उपयोग को प्रभावित करते हैं। जैसे – जलवायु, धरातल, मिट्टी, सूर्यातप, जलप्रवाह आदि मानवीय कारकों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं औद्योगिक आदि हर प्रकार के वे समस्त कारक सम्मिलित किए जाते हैं जो मानव द्वारा निर्मित हैं। ये सभी कारक भूमि उपयोग की सीमाओं को नियंत्रित करते हैं। इसके अलावा अध्ययन क्षेत्र में भूमि को प्रभावित करने वाले कारकों परिवर्तित होती हुई तकनीकि, बढ़ती हुई जनसंख्या, जनसंख्या घनत्व बढ़ती हुई आवश्यकताएँ विभिन्न प्रकार की फसलें एवं बदलते सामाजिक मूल्य आदि मुख्य हैं, जो समयानुसार अपना प्रभाव डालते हैं।

उद्देश्य : प्रस्तुत शोध में मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(अ) भिवानी जिले में भूमि उपयोग के वर्तमान परिदृष्य का अध्ययन करना।

(ब) अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग के विभिन्न संवर्गों का अध्ययन करना।

विधि तंत्र

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्श 2020 के भूमि उपयोग प्रतिरूप का विवेचन द्वितियक आंकड़ों के द्वारा किया गया है। भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन करने हेतु आंकड़ों का संचालन जिला सांख्यिकी कार्यालय भिवानी से लिया गया है। इसमें प्रति बेदी क्षेत्र को भूमि उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गों में रखा गया है किंतु भूमि उपयोग के वर्गों को उपयोग की समरूपता एवं भूमि उपयोग से कुछ वर्गों में नगण्य भूमि को ध्यान में रखते हुए

भूमि उपयोग क्षेत्र को निम्न संवर्ग में रखकर विवेचना की गई है।

अध्ययन क्षेत्र

भिवानी 28°22'00"उत्तर और 29°04'35"उत्तरी अक्षांस और पूर्वी75°28'00"और पूर्वी देशांतर76°28'45"के बीच है। भिवानी जिला क्षेत्रफल की दृष्टि से हरियाणा का एक बड़ा जिला है। भिवानी जिले की जलवायु शुष्क है। अनुपम वास्तुशिल्प, सुमधुर लोक संगीत, विपुल सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत को अपने अंक में संजोए हुए हैं। जिले की समुद्रतल से ऊँचाई 300–400 मीटर है। जिसकी वर्ष 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या 11,32,169 है जो 3432 वर्ग किमी क्षेत्रफल में निवास करती है। यहाँ जनसंख्या घनत्व 330 व्यक्ति प्रति वर्ग मीटर हैं। राज्य के दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र में भिवानी जिला है। जिले की सीमा उत्तर में हिसार, दक्षिण में महेन्द्रगढ़, पूर्वी सीमा में रोहतक और झज्जर से लगती है। राजस्थान के पश्चिम और दक्षिण–पश्चिम में पड़ता है। भिवानी जिले को मुख्य रूप से 5 तहसील बवानीखेड़ा, भिवानी, लोहारू, सिवानी, तोशाम में बांटा गया है।

मानचित्र संख्या 2.1 : अध्ययन क्षेत्र में अवस्थित मानचित्र

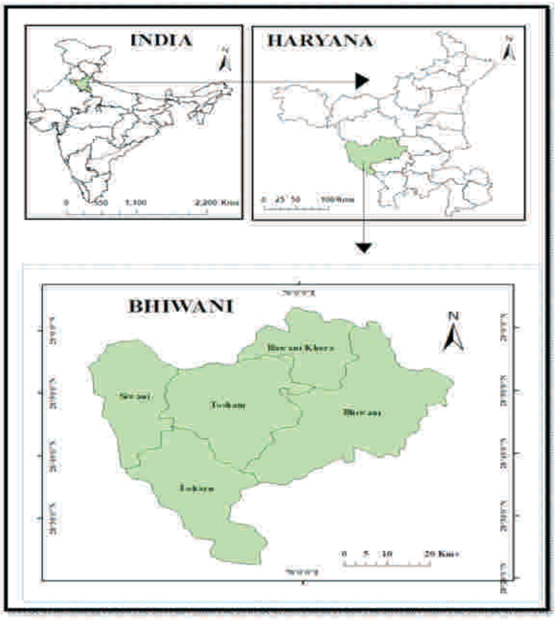

स्रोत : जी आई एस सॉफ्टवेयर पर आधारित

भिवानी जिले का भूमि उपयोग

भिवानी जिले की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृशि है। जिले में भूमि उपयोग की कृषि स्थिति स्पश्ट रूप से दर्शाती है कि अधिकांश भूमि पर खेती की जाती है जबकि स्थायी चरागाह और घास के मैदानों की उपलब्धता अध्ययन क्षेत्र में नहीं पाई जाती।

तालिका संख्या 2.1 : भिवानी जिले का भूमि उपयोग 2020 (हेक्टेयर में)

क्रम संख्या	भूमि उपयोग	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)
1.	कुल क्षेत्रफल	3412
2.	वन	26
3.	गै़र–कृषि भूमि उपयोग	224
4.	स्थाई चारागाह	00
5.	वर्तमान परती भूमि	360
6.	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	2566
7.	कृषि योग्य क्षेत्र	2926
8.	बंजर तथा कृषि रहित भूमि	115
9.	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	2566
10.	नहर द्वारा सिंचित शुद्ध क्षेत्र	695
11.	नलकूप द्वारा सिंचित शुद्ध क्षेत्र	658

स्रोत : जिला सांख्यिकी पुस्तक 2020

आरेख संख्या 1.1 :भिवानी जिले का भूमि उपयोग 2020 (हेक्टेयर में)

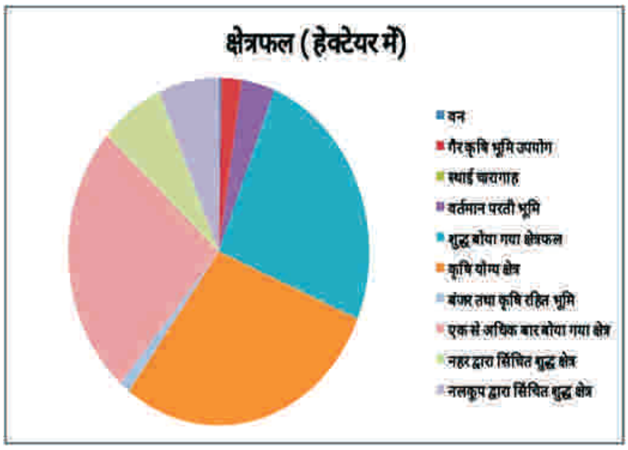

स्रोत : तालिका संख्या 1.1 के अनुसार

2020–21 भूमि उपयोग के वर्तमान प्रतिरूप का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि क्षेत्र में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 3412 हेक्टेयर भूमि पायी जाती है, जिसमें वन भूमि 26 हेक्टेयर (0.76 प्रतिशत), गै़र–कृषि कार्यों में लगी भूमि 224 हेक्टेयर (6.57 प्रतिशत) स्थायी चारागाह जिले में नहीं हैं, कृषि योग्य भूमि 2926 हेक्टेयर (85. 76 प्रतिशत) चालू परती भूमि 360 हेक्टेयर (10.55 प्रतिशत) शुद्ध बोया गया क्षेत्र 2566 हेक्टेयर (72.20 प्रतिशत) पायी गई है।

कृषिगत भूमि

भूमि उपयोग के भौगोलिक अध्ययन में कृषिगत भूमि का अध्ययन अद्वितीय स्थान रखता है, क्योंकि किसी भी कृषि प्रधान क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के क्रिया–कलापों का निश्पादन इन्हीं क्षेत्रों में किया जाता और इस प्रकार क्षेत्र इनसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। भिवानी जिले में इस समय 2926 हेक्टेयर (85.76 प्रतिशत) भूमि पर कृषि कार्य हो रहा है। कुल भूमि में शुद्ध बोया गया क्षेत्र के प्रतिशत की दृष्टि से प्रखण्डों में काफी भिन्नता पाई जाती है।

सिवानी तहसील में सबसे अधिक भूमि पर शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। भिवानी तहसील पर सबसे कम भूमि पर शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। एक से अधिक बार उन्हीं भूमि से फसल ली जाती है जहाँ सिंचाई के साधन उपलब्ध होते हैं तथा जल जमाव नहीं रहता है।

वन भूमि

वन भू–दृष्य का महत्वपूर्ण जीवीय संसाधन है, जिसकी संसाधनता मानव की आवश्यकताओं व योग्यताओं में निहित है। सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से वनों का सर्वाधिक महत्व है। वर्तमान समय में वनों के अन्तर्गत भिवानी जिले में 26 हेक्टेयर वन के अन्तर्गत आता है जो भिवानी जिले की कुल भूमि का केवल 0.76 प्रतिशत है। भारतीय वन–नीति के अनुसार पर्यावरण संतुलन के लिए 33 प्रतिशत क्षेत्रों में वनों का होना आवश्यक माना जाता है। वनों का अनुपात पर्वतीय व अन्य क्षरणोन्मुख क्षेत्रों हेतु 60 प्रतिशत तथा मैदानी क्षेत्रों हेतु 20 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। निःसन्देह भिवानी जिले में वनों के अन्तर्गत भूमि बढ़ाना आवश्यक है। मानव की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त मृदा अपरदन, वातावरण सन्तुलन, पारिस्थैतिकी सन्तुलन, वातावरण परिष्कार हेतु वनस्पतियों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है, परन्तु जनसंख्या वृद्धि के साथ वनों, उद्यानों तथा अन्य स्थलों पर उगे वृक्षों की निमर्मतापूर्वक अन्धाधुन्ध कटाई हुई है।

कृषि बेकार भूमि

कृषि बेकार भूमि से आशय है, जब कोई भूमि बिना किसी अन्य उपयोग में पाँच वर्ष से अधिक समय से खेती में प्रयुक्त नहीं की जाती है, तो ऐसी भूमि को छठे वर्ष कृषि बेकार भूमि के रूप में दर्ज कर लिया जाता है। किसान की अक्षमता एवं विवशता, सिंचाई के साधनों का अभाव, नदियों के मार्ग परिवर्तन से रेत की मोटी परत बिछ जाने आदि के कारणों से बेकार भूमि इस श्रेणी में आती है। इस भूमि के अन्तर्गत 115 हेक्टेयर भूमि है। लोहारू तहसील में सर्वाधिक कृषि बेकार भूमि 65.93 हेक्टेयर पर है वहीं बवानी ख़ेड़ा तहसील में 19.67 हेक्टेयर पर तथा सबसे कम भिवानी तहसील में है। अति सघन जनसंख्या ही उर्वर मृदा एवं समतल मैदानी भाग प्रचुर जल की उपलब्धता आदि कृषि अनुकूल दशाओं के कारण कृष्य बेकार भूमि का कम होना स्वाभाविक है।

परती भूमि

परती भूमि उस भूमि को कहते हैं जिस पर पहले खेती की जाती थी लेकिन अब खेती नहीं की जाती है। भूमि पर यदि लगातार खेती की जाए तो उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, इसलिए भूमि को कुछ समय तक खाली छोड़ दिया जाता है ताकि उस भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ सके व नमी ग्रहण कर सके। परती भूमि के अंतर्गत चालू परती भूमि एवं अन्य परती भूमि को सम्मिलित किया जाता है। परती भूमि के अन्तर्गत 360 हेक्टेयर (10.55 प्रतिशत) भूमि आती है। सबसे अधिक चालू परती भूमि सिवानी तहसील पर वहीं दूसरे स्थान पर बवानी खेड़ा तथा सबसे कम भिवानी तहसील में है।

ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि

इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत से भी भूमि आती है, जो व्यावहारिक दृष्टिकोण से कृषि के लिए अनुपजाऊ, बेकार तथा अनुपायोगी है। इस प्रकार के भूमि के अन्तर्गत बलुई यंगर भूमि या विशम धरातलीय पथरीली भूमि आती है। अम्लीय व क्षारीय मिट्टी भी इसके अन्तर्गत आती है जिसे आसानी से कृषि के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता है। इनमें पीचों का विकास संभव नहीं है इसके कारण ये न तो कृषि के लिए उपयुक्त है और न चारा के लिए। इस भूमि के अन्तर्गत 224 हेक्टेयर भूमि आती है। इसके अन्तर्गत सर्वाधिक भूमि भिवानी में है जो 123.59 हेक्टेयर है सबसे कम सिवानी तहसील 13.39 हेक्टेयर लोहारू तहसील में 39.43 हेक्टेयर भूमि आती है वहीं तोशाम तहसील में 28.92 हेक्टेयर तथा बवानी खेड़ा तहसील में 18.67 हेक्टेयर भूमि कृषि के अयोग्य है।

कृशि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि

ग़ैर–कृषि कार्यों में लगी भूमि के अन्तर्गत बस्तियाँ, नगर, नदी, तालाब, सड़क, नहर, रेलमार्ग, मंदिर, मस्जिद, औद्योगिक प्रतिष्ठान इत्यादि आते हैं। भिवानी जिले में इस भूमि उपयोग के अन्तर्गत 20.43 प्रतिशत भूमि लगी है। इस प्रकार यह भूमि उपयोग कृशि क्षेत्र के बाद प्रांत का दूसरा महत्वपूर्ण भूमि–उपयोग है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ अधिवास, सड़क, रेलमार्ग इत्यादि का विकास आवश्यक है। इसका क्षेत्रफल जिले में लगातार बढ़ता जा रहा है।

चारागाह एवं उद्यान

चारागाह भूमि के अन्तर्गत उस भूमि को शामिल किया जाता है जिसमें सालभर गाय, भैंस, बकरियाँ, भेड़ आदि पशु अपना भोजन प्राप्त करते हैं। पहले बहुत बड़े भाग में पशुओं को चराने के लिए स्थायी चारागाह छोड़ा जाता था, किन्तु जनसंख्या की वृद्धि और अधिक कृषि भूमि की आवश्यकता के कारण चारागाह को समाप्त करके उसमें खेती की जाने लगी। पशुओं को चराने का काम अब मौसमी चारागाह भूमि पर होता है या नदी–नहर के बांध पर चारागाह का कार्य किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र में स्थाई चारागाह नगण्य है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र भिवानी जिले का वर्ष 2020–21 के भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन किया गया है। क्षेत्र के कुल प्रतिवेदित

क्षेत्र के अन्तर्गत 3412 हेक्टेयर भूमि पाई गई है, जिसमें कृषिगत भूमि (85.76 प्रतिशत), वन भूमि (0.76 प्रतिशत), चालू परती भूमि (10.55 प्रतिशत), गैर–कृषि कार्य में लगी भूमि (6.57 प्रतिशत), स्थाई चारागाह एवं अन्य गोचर भूमि (0.00 प्रतिशत) पायी गई। क्षेत्र में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विस्तृत अध्ययन करने पर यह पाया गया कि उच्चतम कृषि योग्य भूमि सिवानी तहसील में है, क्षेत्र में कृषि बेकार भूमि की अत्यता का कारण अत्यधिक विकसित कृषि, उर्वर मृदा एवं सप्तल मैदान, सिंचाई की उत्तम व्यवस्था एवं यहाँ के निवासियों की सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। वन केवल 26 हेक्टेयर में है यह एक सोचनीय विषय है यहाँ वन भूमि बढ़ाने की आवश्यकता है। क्षेत्र में बसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अन्तर्गत बहुत कम भूमि पाया गया है, जिसका प्रमुख कारण शुद्ध कृषित भूमि में है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल के मात्र 0.00 प्रतिशत भाग पर चारागाह एवं उद्यान के अन्तर्गत भूमि पाया गया है। अतः कृषि कार्य में अधिक भूमि के उपयोग में आने के कारण चारागाह एवं उद्यानों के अंतर्गत अपेक्षाकृत कम क्षेत्र रह गए हैं जो कि ना के बराबर हैं।

अतः क्षेत्र के भूमि उपयोग प्रतिरूप के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि उपयोग वर्गों में एकरूपता नहीं है। भौतिक, प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी परिस्थितियों के फलस्वरूप भूमि उपयोग समयानुकूल परिवर्तित होता रहता है। भिवानी जिले का अधिकांश भाग समतल उपजाऊ भूमि से बना है जो कृषि के लिए उत्तम दशाएँ उत्पन्न करता है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या वृद्धि और उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूमि उपयोग का समन्वित तकनीकी विकास करके आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अताउल्लाह मो०, बिहार का आधुनिक भूगोल (2008), विलिएन्ट प्रकाषन, पटना, पृ० 58, 61
2. कौषिक, एस.डी. एवं गौतम अलका (2003) संसाधन भूगोल, रस्तोगी पब्लिकेषन, मेरठ, पृ० 603–610
3. मामोरिया चतुर्भुज एवं मिश्रा जे०पी० (2004) भारत का वृहत भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेषन, आगरा, पृ० 707
4. कुमार अरविन्द (2004) : गोरखपुर मण्डल में भूमि उपयोग क्षमता का गत्यात्मक विष्लेशण उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 34, संख्या – 2, पृ० 20–25
5. कमलेष एस. और 1966 कृशि भूगोल, वसुन्धरा प्रकाषन, गोरखपुर (5), कुमारी प्रतिभा, 2005 जनपद सन्त रविदास नगर भदोही की जनसंख्या का एक भौगोलिक विष्लेशण षोध प्रबन्ध
6. खो तिवारी आर.सी. एवं डॉ० सिंह वी.एन. 2006 कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7. प्रसाद होषिला, 1989 ज्ञानपुर तहसील के भूमि उपयोग का भौगोलिक अध्ययन (षोध–प्रबन्ध)
8. सिंह, साविन्द्र 2011, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद सिंह काषीनाथ, 2007 कृशि भूगोल, मेट्रॉ पब्लिषर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली
9. सिंह, राधेष्याम, 1980 लालगंज ब्लॉक, मिर्जापुर, उ०प्र० में भूमि उपयोग साधना पथ पत्रिका, जून 2018, समाचार पत्र देषबन्धु 2016
10. हुसैन माजिद 2006 कृशि भूगोल, रावत पब्लिकेषन दिल्ली, 776 पृ० 67
11. एस०डी० कौषिक, मानव भूगोल, 1997 रस्तोगी प्रकाषन, मेरठ, पृ० 36–61
12. हीरालाल यादव, जनसंख्या भूगोल, 2005, वसुन्धरा प्रकाषन, गोरखपुर
13. अल्का गौतम, कृषि भूगोल, 2009, षारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ० 1295 सिंह, उजागिर, नगरीय भूगोल, 1992, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
14. सिंह, आर.एल., भारत का प्रादेषिक भूगोल, 1971, पृ० 195
15. डॉ० डी.एस. मौर्य, अधिवास भूगोल, 2017 षारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ० 95, 118
16. सिंह, सविन्द्र, पर्यावरण भूगोल, 2009, प्रयाग पुस्तक भूगोल, इलाहाबाद, पृ० 215
17. जनपद सांख्यिकीय पत्रिका, भिवानी 2020–2021

डॉ० रानी सिंह,
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर,
रोहतक, हरियाणा – 124021

सविता बाई, शोधार्थी,
भूगोल विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर, रोहतक – 124021

51

ऐतिहासिक दृष्टि में भारतीय समाज का चित्रण

डॉ0 संगीता वर्मा

सारांश

यह एक सर्वस्वीकृत सत्य है कि केवल आदिम अवस्था को छोड़कर, मानव समाज सदा विभिन्न वर्गों में विभक्त रहा है। आदिम अवस्था में अन्य प्राणियों की भांति मानव का लक्ष्य व कार्य भी मात्र उदर–पूर्ति ही था, इसलिए सम्पत्ति के निजीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता था। सभी कुछ सामूहिक था। श्रम प्रवृत्ति के कारण मानव धीरे–धीरे पशु जगत को छोड़कर बाहर आया। समाज के विकास के साथ उत्पादन की विधियां बदलती चली गयी और इसके साथ–साथ मानव समाज विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना आरम्भ हो गया। मार्क्सवादी दर्शन की यह मान्यता है कि श्रम विभाजन और उत्पादन संबंध वर्ग–विभाजन के लिए उत्तरदायी हैं। निजी सम्पत्ति के उदय के साथ ही वर्गों का निर्माण हुआ है। इतिहास की इस भौतिक व्याख्या के अनुसार अब तक के ज्ञात युग को चार अवस्थाओं में विभक्त किया गया है। पहली अवस्था–दास–युग है, जिसमें दो वर्ग थे–एक दास–स्वामी तथा दूसरा दास। दूसरी अवस्था सामती युग है जिसमें सामंत भू–स्वामी तथा भूकृदास कृषक मुख्यतः विरोधी वर्ग थे। तीसरी अवस्था पूँजीवादी युग है। जिसमें पूँजीपति–बुर्जुआ की टक्कर में सर्वहारा वर्ग है तथा अन्तिम अवस्था साम्यवादी युग की है जहा सभी वर्ग विलुप्त हो जायेगें और शोषण समाप्त हो जाएगा। ऐसी मुक्ति के लिए समाज का सर्वहारा वर्ग प्रयासरत है और उसने अनेक देशों में समाजवादी क्रान्ति लाने में सफलता भी पाई है।

इतिहास के नव–व्याख्याकारों ने भारतीय इतिहास का विश्लेषण भी इस दृष्टिकोण से करने के प्रयास किए है। पुरातन पथी लेखक भारत में दास प्रथा के प्रचलन तथा वर्ग संघर्ष के सिद्धांत का खण्डन करते हैं, किन्तु अब यह माना जाने लगा है कि वर्ग संघर्ष सामाजिक विकास का नियम है। यह कथन केवल इसलिए सत्य नहीं है कि मार्क्सवादी लेनिनवादी समझते हैं बल्कि इसलिए है कि व्यवहारिक प्रयोग की कसौटी पास कर चुका है। भारत के इतिहास का अध्ययन करने पर हमे यह ज्ञात होता है कि भारत का इतिहास भी संघर्षो से अटा पडा है, किन्तु इन संघर्षो को यदि हम वर्ग–संघर्षों में रखेंगे तो षविरोध होगा, यह निश्चित है, और विरोध होता रहा है। संप्रभु वर्गों द्वारा लिखे गये प्राचीन साहित्य में ऐसे अनेक साक्ष्य छिपे पड़े है जो यहां के समाज को परिचालित करने वाली भौतिक शक्तियों की ओर संकेत करते हैं। दास–प्रथा के बारे में श्री अमृतडांगे जी लिखते है उन' 34ज नमससु कि कुछ आदर्शवादी हिन्दुओं को छोड़कर कोई शंका नहीं उठाता यहां दास प्रथा युनान अथवा रोग में प्रचलित प्रथा से बिल्कुल भिन्न थी। वास्तविकता यह है कि भारतीय कृषि की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप यहां की दास प्रथा की केवल कुछ अपनी विशेषताएँ थी।

वैदिक युग में युद्धों की मुख्य समस्या थी सम्पत्ति अर्जन तथा सम्पति रक्षा इसी कारण वर्ण व्यवस्था के निर्माताओं ने इस बात का अधिकाधिक ध्यान रखा कि पराजित शासित लोगों के पास किसी भी प्रकार की सम्पत्ति बच न जाए। उस काल में आर्य–अनार्य, देव–असुर संघर्षो के अतिरिक्त रक्त शुद्धता का सिद्धांत भी प्रतिफलित हुआ जिसने राज्य सत्ता तथा आर्थिक साधनों पर अपनी पकड़ को मजबूत बनाया। इन युद्धों में पराजितों को सामाजिक प्रताडना तो मिली ही, उन्हें सम्पत्ति से भी वंचित करके भविष्य को निष्कंटक बनाने का प्रयास किया गया। द्य वर्ण–व्यवस्था का निर्माण भी आर्थिक दृष्टि से अनिवार्य ऐतिहासिक प्रक्रिया थी । पुरोहित तथा राज्यन्य वर्गो ने सन्धि करके अन्य दो वर्णों के शोषण का अधिकार स्वनिर्मित विधान के माध्यम से हस्तगत कर लिया तथा धर्मादेशों से इसे सुदृढ कर लिया।

मनुस्मृति में भी ऐसी व्यवस्था हमें मिलती है उसमें चारों वर्णों के धर्म व कर्म नियत करके उनका उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध नियम तो बनाए गए किन्तु इनक अन्तर्गत एक ही अपराध के लिए दण्ड वर्णानुसार निश्चित किए गए। उदाहरणार्थ एक गंभीर अपराध के लिए शुद्ध को मृत्यु दंड दिए जाने का प्रावधान था तो ब्राह्मण को उसी अपराध के लिए देश निकाला दिया जाना ही अधिकाधिक माना जाता था। ये नियम मार्क्स की इस मान्यता को पुष्ट करते हैं कि किसी समाज मे प्रभावी नियम तत्कालीन शासक वर्ग के हिला प्रस्तुत उदाहरण रहे हैं, ये बात अलग है कि इस दृष्टि से किसी की दृष्टि वहां तक न पहुँच सकी तथा यह तथ्य समाज की इस वर्ग–व्यवस्था और संघर्ष से अछूती रह गई ।

शंबूक की तपस्या उस समय के कानूनों को चुनौती देने की महत्त्वपूर्ण घटना थी, जो व्यवस्था के प्रति गंभीर आक्रोश

और विद्रोह को प्रकट करती है। इस प्रसंग को प्रक्षिप्त भी मान लिया जाए तो भी रामायण में जिस आदर्शवाद की स्थापना व राम राज्य की कल्पना की गई है, वह भेद–भाव वाली सामंतवादी व्यवस्था के अनुरूप ही है। राजा द्वारा शंबूक का वध इस बात को उजागर करता है कि शुद्र अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करते थे और समाज के असमान नियमों को तोड़ने का साहस रखते थे। एकलव्य तक आते–आते ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अन्यायपूर्ण नियमों को नैतिकता के आवरण से युक्त कर दिया गया था. इसीलिए अंगूठा मांगने पर एकलव्य द्रोणाचार्य का विरोध नहीं करता. बल्कि सिर झुका कर श्आज्ञाकारी शिष्यश भी भांति आदेश का पालन करता है। ये दोनों ही दृष्टांत वर्णाधारित शोषण व अन्याय को प्रमाणित करते हैं। वैदिक धर्म के पश्चात जैन और बौद्ध धर्मों का युग आया। बौद्ध काल वर्णव्यवस्था अपने अंतर्विरोधों तथा बाह्य प्रतिरोध के कारण छिन्न–भिन्न हो गयी थी, जाति–भेद हट रहे थे. व्यक्तियों को स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने की छूट थी। यद्यपि इस प्रकार का आकलन विवादास्पद हो सकता है, तदापि परिवर्तित स्थितियों में समाज ने दासप्रथा को लाभहीन समझकर हटाना शुरू कर दिया और इनके स्थान पर सम्पति धारक लोग वेतन जीवी मजदूरों से काम लेना पसंद करने लगे थे, जिन्हें कर्मकार कहा जाता था। सैकड़ों वर्ण–संकर जातियाँ पैदा होती जा रही थी. जिनकी संख्या व्यवस्था के संकुचित घेरे से निकल–निकल कर एक ऐसे वर्गहीन समाज की रचना कर रही थी, जिनमें द्विज या सवर्ण जातियाँ अल्प संख्या में बदल रही थी और जिनके पास पशु, भूमि वाणिज्य एवं दूसरे ढंग की व्यक्तिगत सम्पति का सर्वथा अभाव था। इन लोगों के लिए अपने श्रम शक्ति बेचकर जीवन निवाह करने के अतिरिक्त कोई साधन एवं रास्ता ही नहीं था। पहले युग में दासों के साथ जो अन्याय होता था, वही अन्याय आज इनके साथ होता है। परन्तु इन्हें बेचा खरीदा व कल्ल नहीं किया जा सकता था। इससे श्रमिक वर्ग की असहय पीड़ा में कुछ कमी के संकेत मिलते हैं। कालान्तर में यहां की भेदभावपूर्ण जाति–व्यवस्था भारत की पराधीनता का कारण बन गई। मुस्लिम आक्रमणकारियों को भारतीय समाज की आपसी फूट का फायदा उठाने का अच्छा मौका मिला था। पहले तो उनकी मंजिल विशाल धन सम्पदा, विशेष रूप से मंदिरों में संजोई हुई सम्पत्ति को लुटना ही था, लेकिन बाद में उनका मन शासन स्थापित करने का भी बन गया क्योंकि उन्हें यह कार्य सुगम व लाभकारी प्रतीत हुआ। शोषक वर्गों ने मामूली प्रतिरोधों के पश्चात आक्रमणकारियों से समझौता कर लिया। जुझारू क्षत्रिय जाति में से अनेक ने परवर्ती काल में, अपनी कन्याओं के विवाह मुस्लिम शासकों से किए तथा ष्उनके दरबार में खास रूतबे हासिल किए। चूँकि पूरे समाज के ठेकेदार ब्राह्मण और क्षत्रिय ही बने हुए थे, अन्य को उन्होंने अपने सेवक ही बनाए रखा, इसलिए देश की पराधीनता के लिए यही दोनों दोषी हैं। मुगलकाल में भी शासकों से गठबंधन करके इन्होंने निम्न श्रमिक तथा किसान वर्गों का शोषण कायम रखा। 17वीं सदी में फ्रेंच–यात्री बर्नियर यहां पहुंचे जिन्होंने यहां के समाज की दशा के बारे में लिखा है कि उस समय न केवल किसानों को उनकी जीविका से वंचित किया हुआ था, अपितु सांमत उनके बच्चों को भी दास बनाने के लिए ले जाते थे। उनसे बेगार ली जाती थी। पर यदि शासक परिवारों के इतिहास के अध्ययन की प्रवृत्ति से मोह छोड़ दिया जाए तो दास वंश से लेकर अंतिम मुगल तक के सामती साम्राज्यों के विरूद्ध • अनेक विद्रोहों का सरलता से पता चल जाता है। वे विद्रोह वर्ग संघर्ष के अनुठे उदाहरण है।

आधुनिक युग में ब्रिटिश साम्राज्य के साथ भारत में पूँजीवाद का आरम्भ हुआ। औद्योगिकरण में जाति–व्यवस्था को हल्का–सा झटका जोर से लगा है। यूरोप की भांति यहां का समाज वर्गीय स्वरूप धारण नहीं कर पाया है। सामती अवशेष अभी जीवित है। स्वतन्त्रता पूर्व अनेक सामाजिक धार्मिक संगठनों, यथा ब्रह्म–समाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने जाति–भेद सम्पन्न करके हिन्दू धर्म को पुनर्जीवित करने के प्रयास किए बाद में गांधी जी. ने भी जातिगत अस्पृश्यता उन्मूलन का प्रचार किया किन्तु ये सब भी शोषण व्यवस्था क समूल नष्ट कर देने के पक्ष में न थे। मात्र कुछ सुधार करना ही उनका उद्देश्य रहा था। गांधी भी कभी भी सम्पत्ति सम्पन्न मुनाफाखोरी करने वाले लोगों को जनता का शत्रु नहीं किया, बल्कि अपनी दुई के लिए स्वयं जनता को उत्तरदायी माना। उन्ह स्पष्ट जनता को यह नहीं सिखाता कि पूँजीपति उनके दुश्मन है। मैं तो उन्हें यह बताता हूँ, अपने दुश्मन स्वयं है। वे वर्ग– शोषण का मुक्ति–मार्ग भी अहिंसा को ही बताते है और वर्ग संघर्ष को प्रकट रूप से ही जमीदारों और पूँजीपतियों का पक्षधर प्रमाणित कर दिया। परन्तु मजदूरों में निरन्तर बढ़ती हुई वर्ग चेतना को रोक नहीं पाए। भारतीय मजदूर वर्ग अब तक इतना परिपक्व हो चुका था कि यह वर्ग–चेतना से पूर्ण और राजनीतिक जन संघर्ष चला सकता था। 1920 में जबरदस्त हडताले हुई जिनका नेतृत्व जुझारू वर्ग चेतना से लैस वर्ग ने किया। इसके साथ युवकों और निम्न पूँजीपति वर्ग के बीच एक नयी चेतना आई और उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष की नई लहर का नेतृत्व किया।

ब्रिटिश राज ने भारतीय समाज में नए वर्ग पैदा किए। उसने देहात में–1. जमीन के मालिक जमींदार, जिनका एक हिस्सा शहरों में रहता था. 2. इन जमीदारों से लगान पर जमीन लेकर काम करने

वाला काश्तकार 3. जमीन के मालिक धनी, मध्य और गरीब किसान 4. खेतीहर मजदूर 5. आधुनिक व्यापारी और आधुनिक सूदखौर पैदा किए। शहरों में उसने पैदा किए–1. औद्योगिक, व्यवसायिक और वितिय पूँजीपति 2 कल–कारखानो यातायात, खानों आदि में काम करने वाला आधुनिक वर्ग. 3. आधुनिक पूँजीवादी अर्थतंत्र से जुड़े छोटे व्यापारी और दुकानदार तथा 4. कारीगर, डॉक्टर, वकील, अध्यापक, पत्रकार, मैनेजर क्लर्क आदि बुद्धिजीवी और वृतिजीवी लोगों का मध्यवर्ग

निष्कर्ष–

स्वतन्त्रता के पश्चात शासन की बागडोर पूँजीपति वर्ग के हाथ में आई जिसने संविधान में देश को समाज वादी लोकतांत्रिक घोषित तो कर दिया है, किन्तु व्यवहार और चरित्र में यह वस्तुत बुर्जआ लोकतंत्र ही बना हुआ है। वर्तमान काल में मार्क्सवाद लेनिनवाद तथा माओ विचार धारा के प्रसार के कारण भारतीय समाज से मुक्ति के प्रति जिज्ञासा और उत्कंठा तीव्र हुई है। श्रमिक संगठनों तथा बुद्धिजीवियों के वैचारिक आन्दोलन से वर्ग बेतना प्रसार तेजी से बढ़ रहा है। शोषित वर्ग ने अनेक संघर्ष जीते हैं, किन्तु शोषणविहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य अभी दूर है। हिन्दी के साहित्यकार, विशेषकर जनवादी नाट्यकार यहां की जनता को लक्ष्योन्मुख कर रहे है. यह सतोष की बात है। वर्तमान स्थिति मे यद्यपि, सामती तत्व सामाजिक प्रगति और क्रान्तिकारी वर्ग चेतना के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं और वे मिथ्या चेतना के प्रसारण में लीन है. तथापि यहां का श्रमिक वर्ग इन अवरोधों को पार करते हुए निरन्तर अग्रसर होता दिखाई पड़ रहा हैं।

संदर्भ

1 R- P- Saraf] The Indian Society] P- 39

2. (श्रीपाद अमृत डांगे, भारत, हिन्दी संस्करण की भूमिका

3. श्रीपाद अमृत डांगें, भारत, हिन्दी संस्करण की भूमिका

4. डॉ राम विलास शर्मा, मानव सभ्यता का विकास पृ. 38

5. रमेश कुन्तल श्मेघश, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण पृ. 29 पर उद्धृत ।

6- R- P- Saraf's book 'The Indian Society'

7. रामशरण शर्मा, भारतीय सामंतवाद पृ. 64

8. रामशरण शर्मा, भारतीय सामंतवाद पृ.64

9. आचार्य दीपकर कौटिल्यकालीन भारत, पृ.67

10- R- P- Saraf] The Indian Society] P- 18
Ibid] P- 213&215

11. महादेव प्रसाद, महात्मा गांधी का समाज दर्शन (अनु. विष्णु कांत शास्त्री) पृ. 144

12. रजनी पामदत्त आज का भारत (अनु. आनन्द स्वरूप वर्मा). पृ. 391

13. अयोध्या सिंह भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 16

डॉ0 संगीता वर्मा

सहायक प्रोफ़ेसर (हिन्दी)

इंस्टीटयूट ऑफ लॉ एण्ड रिसर्च जसाना

(फरीदाबाद)

हरियाणा

52

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की केंद्रस्थली काशी

सुवाति

सारांश

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं सर्वोत्तम संस्कृतियों में सम्मिलित रही है। इस महान संस्कृति का मूल अवयव विश्व में शान्ति की स्थापना करते हुए विश्व का कल्याण करना है। यह हमारी संस्कृति की महानता का परिचायक ही है जो आदि काल से निरन्तर विश्व में अपनी एक अलग पहचान कायम रखते हुए निरन्तर प्रसारित हो रही है। भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की इस अप्रतिम छाप का काशी प्राचीन काल से ही एक महान केंद्र रहा है। काशी में भगवान शिव की निवास माना जाता है इसीलिए यह स्थल शिवोपासना का पौराणिक केंद्र माना गया है। धार्मिक ग्रन्थों में काशी को समस्त ज्ञान की प्रकाशिका नगरी कहा गया हैं। प्राचीन काल से ही विद्वानों की निवास भूमि होने के कारण धर्म, संस्कृति, आध्यात्मिकता, बौद्धिकता एवं ज्ञान के क्षेत्र में काशी की महत्ता निरन्तर बनी हुई हैं। संस्कृति एवं ज्ञान के संगमरूपी स्थल के रूप में काशी का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। वैदिक युग से आधुनिक युग तक निरन्तर विकसित व प्रसारित होती हुई ज्ञान धारा ही काशी की गुरुता व विद्वता की परिचायक रही है। काशी सनातन संस्कृति की आधार पीठिका है और इसी कारण से ज्ञानरूपी आध्यात्मिकता की यह धारा वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति की एक अलग पहचान बनाए हुए हैं। इस नगर की आध्यात्मिकता एवं ज्ञान प्रकाशिका से प्रभावित होकर प्राचीन काल से ही विश्व के विभिन्न भागों से ज्ञान पिपासु यहाँ आते रहे हैं। विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के बावजूद भी यहाँ शिक्षा एवं संस्कृति निरन्तर फलती–फूलती रही है। यह नगर गंगा के उत्तरी तट पर वरुणा और असी नदियों के संगम पर स्थित है। संगम की पवित्रता के कारण काशी विद्वानों के लिए आकर्षण का स्थल रही हैं। अनेक महान विभूतियों की ज्ञान–गरिमा परंपरा से यह नगरी सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक रूप से धनी रही है। सनातन संस्कृति के आधाररूपी इस नगरी को 'भारत की धार्मिक राजधानी', 'पुरुषार्थ प्रदायनी', 'ज्ञान की नगरी' और 'भगवान शिव की नगरी' आदि विशेषणों से सुशोभित किया जाता रहा है।

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अपने गुणों के कारण विश्व में अनुकरणीय रही हैं।[1] भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक गुणों का विश्व में सर्वत्र आदर किया जाता रहा है तथा इसकी विशेषताओं को विश्व में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया हैं। भारतीय संस्कृति से मानव को आचार का ज्ञान प्राप्त होता है। यह मानव को समय का सदुपयोग करते हुए जीवन में आगे बढने की प्रेरणा प्रदान करती है।[2] काशी वैदिक धर्म एवं शिक्षा का प्रमुख केंद्र रहा हैं। वरुणा और असी नदियों के संगम पर स्थित होने के कारण ही काशी को 'वाराणसी' कहा गया है। जातक कथाओं में उल्लेख किया गया है कि तक्षशिला से छात्र ज्ञानार्जन के लिए वाराणसी आते थे।[3] भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ वेदों के अध्ययन के लिए काशी में 'चातुर्विद्य' नामक पाठशालाएँ होती थी। यहाँ पर देश के प्रत्येक भाग से विद्यार्थी वेदों का अध्ययन करने आते थे। काशी में स्थित इन पाठशालाओं में विद्यार्थियों को वेदों, दण्ड़नीति, त्रयीवार्ता और आन्वीक्षिकी का अध्ययन कराया जाता था।[4] अथर्ववेद में काशी को चारों पुरुषार्थ प्रदान करने वाली नगरी बताया गया है।[5]

प्राचीन काल से ही काशी में विभिन्न धार्मिक विषयों के ज्ञानार्जन के लिए अनेक ऋषियों के आश्रम हुआ करते थे। आश्रमों में छात्र विशाल संख्या में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। गुरु के समीप रहते हुए सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करते थे। आश्रम के अतिरिक्त भी शिक्षा प्राप्ति हेतु कुछ संस्थाएँ होती थी। वेदों का ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए 'सर्वस्त्रविद्य' नामक पाठशालाएँ नगर के विभिन्न भागों में स्थापित की गई थी। मंदिरों की नगरी के रूप में प्रसिद्ध इस नगर में स्थित मंदिरों में भी धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य बडे पैमाने पर किया जाता था। भारतीय संस्कृति का आधार धर्म व आध्यात्म ही रहा है। अतः शैक्षिक विषयों पर धार्मिक तत्वों का गहरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत है। इसीलिए शैक्षिक विषयों में वेदों, पुराणों, स्मृतियों, उपनिशदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।[6] शिक्षकों को गुरु, आचार्य और उपाध्याय आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। वैदिक काल से काशी में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विशेष महत्व रहा था। इन गुरुकुलों में भौतिक प्रभाव से दूर रहकर छात्र प्राकृतिक वातावरण में विद्या प्राप्त करते थे। इन गुरुकुलों की शिक्षा प्रणाली बहुत ही नियमित एवं उच्च कोटि की होती थी। विद्यार्थियों को उनकी रूचि के अनुसार धार्मिक ग्रन्थों और जीवन के व्यावहारिक एवं

सैद्धान्तिक मूल्यों से सम्बंधित विषयों का ज्ञान कराया जाता था। इन गुरुकुलों में शिक्षा निःशुल्क प्रदान की जाती थी। गुरुकुलों के निर्वाह के लिए राजाओं और समाज के धनी वर्गों के द्वारा धन एवं उपयोगी वस्तुएँ दान में दी जाती थी।[7]

काशी हिन्दू धर्म के साथ–साथ बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायियों के लिए भी आकर्षण का केंद्र रही है। अतः यह नगर विभिन्न धर्मों का संगम स्थल बन गया। सनातन धर्म की पीठिका होने के कारण यह पाण्डित्य परीक्षा के लिए शास्त्रज्ञों को अपनी और आकर्शित करती रही है। इसीलिए काशी विद्वान पंडितों की शरणस्थली रही है। गुरु शंकराचार्य के धर्म प्रवचनों का केंद्र भी काशी नगरी ही रही थी। शंकराचार्य ने काशी के विषय में कहा है कि – "काश्यां हि काश्यते काशी, सा काशी विदित येन तेन प्राप्ता हि काशिकां" अर्थात उन्होंने काशी को सम्पूर्ण ज्ञान की प्रकाशिका और ज्ञान को प्रदान करने वाली बताया है। वैदिक काल से लेकर अबाध रूप तक गुप्तकाल तक ऋग्वेद के अध्ययन के लिए काशी में एक विद्यापीठ होती थी।[8] इसकी पुष्टि मुख्यरूप से गुप्तकालीन मुद्राओं से होती है जिन पर विद्यापीठ का चिन्ह अंकित मिलता है।

पूर्वमध्यकाल में तुर्की आक्रमणों से भयभीत होकर अनेक विद्वान, पंडित और शिक्षाविद् उत्तर पश्चिमी भारत से वाराणसी, कश्मीर और पंजाब जैसे विद्या केंद्रों की और चले गये थे। बनारस में जाकर असंख्य विद्वान व पंडित शैक्षणिक कार्य करने लगे थे। अतः एक बार पुनः काशी हिन्दू शिक्षा की मुख्य पीठिका बन गई। इसीलिए मुगल काल में अबुल फजल ने भी वर्णन किया है कि ज्ञान और कला की खोज में चारों और से कलाकार बनारस आते थे। अनेक विद्वान साहित्यकारों की निवास भूमि होने के कारण यहाँ हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य की गरिमा में वृद्धि हुई थी। गहड़वाल नरेश विजयचंद्र के सभासद श्रीहर्श ने नैशधीयचरित्र की रचना काशी में की थी। कबीर, तुलसीदास, वल्लभाचार्य, रविदास, रामानन्द, मुंशी प्रेमचन्द्र आदि विद्वान काशी से ही विख्यात हुए थे। इन विद्वानों ने मानव जीवन की नवीन आध्यात्मिक व्याख्याएँ समाज के सामने प्रस्तुत की थी।

15वीं सदी में काशी में वेदांत, दर्शन, न्याय, व्याकरण, ज्योतिश आदि विषयों की शिक्षा का बहुमुखी विकास हुआ था। 16वीं और 17वीं शताब्दी में सांस्कृतिक एवं शैक्षिक उन्नति होने के कारण काशी का स्वर्ण युग कहा जाने लगा था। दक्षिण भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना होने के कारण वहाँ से अनेक विद्वान काशी में आकर रहने लगे थे। इसीलिए विद्वानों के एकत्र होने से काशी विभिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का मिलन स्थल बनी। आन्ध्रप्रदेश के विद्वान शेषकृष्ण, शेषचिन्तामणि और शेषनारायण का सम्बन्ध भी काशी से ही रहा है।[9] अकबर के दरबारी अबुल फजल ने वाराणसी के विषय में उल्लेख किया है कि यह स्थल बहुत ही प्राचीन समय से हिन्दुस्तान में शिक्षा का प्रमुख केंद्र रहा है जहाँ देश–विदेश से विद्यार्जन के लिए लोग आते थे और बहुत अधिक समर्पित परिश्रम के द्वारा ज्ञानार्जन करते थे।[10]

अकबर के दरबारी कवि फैजी ने वाराणसी में ही संस्कृत का अध्ययन किया और रामायण का फारसी भाषा में अनुवाद किया। दाराशिकोह ने काशी के पंडितों की सहायता से उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद कराया था। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का केंद्र होने के कारण काशी सांस्कृतिक निधि से उन्नत हुआ था। भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक विद्वान और विद्यार्थी काशी में एकत्रित होने लगे और यहाँ एक बार फिर से संस्कृत शिक्षा के दीप जलने लगें।

मुगल काल में अनेक विद्वानों के परिवार वापस काशी लौटने लगे थे।[11] इन्हीं विद्वानों में शेष भट्ट और मौनी परिवार लगभग तीन शताब्दियों तक अपने ज्ञान एवं विद्वता के कारण काशी में प्रसिद्ध रहे थे। 17वीं शताब्दी में भारत यात्रा पर आए फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने बनारस विश्वविद्यालयों की तुलना एथेंस के विश्वविद्यालयों से की थी। बनारस का वर्णन करते हुए बर्नियर ने लिखा है कि यहाँ के लोग अपना सारा समय पठन–पाठन में व्यतीत करते थे। ज्ञान की धारा से प्रभावित होकर सम्पूर्ण देश से ब्राह्मण, पंडित, विद्वान और छात्र अध्ययन और अध्यापन का कार्य करने के लिए यहाँ आते थे। आचार्य अपने घरों में या फिर किसी धनी व्यक्ति द्वारा दान दिए गए बागों आदि में शैक्षणिक कार्य सम्पन्न करते थे। प्रायः प्रत्येक आचार्य चार या छह छात्रों को पढाते थे। काशी के विभिन्न भागों में और व्यक्तिगत रूप से घरों में शैक्षणिक कार्य किया जाता था।[12] पंडितों द्वारा विद्यार्थियों को संस्कृत, व्याकरण, वेद, शास्त्र, पुराण, वेदांत और धार्मिक विषयों का अध्ययन कराया जाता था। ब्रह्मा द्वारा वेदों को संस्कृत भाषा में कहा गया था इसीलिए संस्कृत को देववाणी की संज्ञा प्रदान की गयीं थी।

बर्नियर ने हिन्दुओं के पास चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धी अनेक पुस्तकें देखी थी। वाराणसी के पंडित अपने ज्योतिष ग्रन्थों की सहायता से चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण का पूर्वानुमान लगा लेते थे। बर्नियर ने काशी के विद्वान पंड़ित से मूर्ति पूजा जैसे गूढ़ विषयों पर भी चर्चा की थी। विद्वान पंडित ने बर्नियर को बताया था कि हम निस्संदेह विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियों की पूजा करते है और विभिन्न प्रकार के धार्मिक क्रिया कर्मों का आयोजन करते है। मंदिरों में जाकर मूर्ति पूजा करने का महत्व यह है कि वहाँ व्यक्ति एकाग्र चित्त होकर भगवान की अराधना करे। जब तक मानव दृष्टि किसी वस्तु विशेष पर केन्द्रित नहीं होती है तब तक मानव मन

बार–बार विचलित होता रहता है और वास्तव में संसार का रचनाकर्त्ता एक ही ईश्वर है[13] यह सब तो मात्र भगवान की अराधना करने के विभिन्न माध्यम है। पंडित के ज्ञान से बर्नियर बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ था। हिन्दू पंडित सृष्टि की रचना बहुत ही प्राचीन समझते थे। इस प्रकार काशी हिन्दू धर्म का पवित्र तीर्थ स्थान था।

भक्ति की अमर धारा से प्रभावित होकर गुरु नानक और चैतन्य भी इस पवित्र स्थल पर आये थे।[14] राजकुमारों की शिक्षा के लिए राजा जयसिंह ने वाराणसी में एक विद्यालय की स्थापना करवाई थी जिसमें देश के कोने–कोने से राज परिवार के बालक शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। हेमिल्टन ने बनारस में बहुत सारे शिक्षालयों को देखा था। इन शिक्षालयों में हिन्दू पंडित धर्म एवं दर्शन के गूढ़ विषयों पर व्याख्यान दिया करते थे।[15] मुगल बादशाहों के द्वारा काशी में हिन्दू शिक्षा एवं संस्कृति को किसी भी प्रकार से बाधित नहीं किया गया था। वैदिक धर्म और शिक्षा की यह धारा अबाध रूप से बहती रही थी।

19वीं शताब्दी वाराणसी की शैक्षणिक संस्कृति के उन्नयन में युगान्तकारी रही थी। इस समय पर विभिन्न विषयों के विद्वत जन यहाँ पर उपस्थित हुए थे। इनमें मुख्य रूप से प्रसिद्ध ज्योतिशाचार्य रत्नजी दीक्षित, विनायक भट्ट डोगरे, सुब्रह्मण्यण शास्त्री, पंडित भीखू दीक्षित जैसे विद्वतजनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ अनेक अंग्रेज विद्वानों का ध्यान भी काशी की और आकर्षित हुआ। अंग्रेज विद्वानों ने हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिए सबसे पहले संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक समझा था। अंग्रेजों ने काशी के विद्वान पंडितों की सहायता से संस्कृत का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इस कारण से बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' की स्थापना की गई। अंग्रेजों द्वारा अध्ययन करने से काशी में शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक जगत में नवीन समन्वयात्मक आधुनिक तत्वों का समावेशन होने लगा।[16]

अंग्रेजों के समय वाराणसी में हिन्दू शिक्षा टोलों में प्रदान की जाती थी। शिक्षा का खर्च करने के लिए राजपरिवारों एवं सेठ साहूकारों द्वारा चन्दा दिया जाता था। अब काशी की शिक्षण संस्थाओं में हिन्दू पद्धति एवं पाश्चात्य पद्धति दोनों प्रकार के विशयों का अध्ययन कराया जाता था। हाँलाकि भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का समावेशन छोटे स्तर पर ही हुआ था और अभी भी टोलों में मुख्य रूप से धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी।[17] अंग्रेजों ने भारतीय धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के लिए 'ओरियंटल प्रिंटिंग प्रेस' की स्थापना की थी। इनके द्वारा हितोपदेश, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मनुस्मृति, श्रीमद्भगवतगीता आदि ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया था। अंग्रेजों से पूर्व शिक्षा में धार्मिकता एवं आदर्शवादी दर्शन की प्रधानता रहीं थी।[18] किंतु अब धीरे–धीरे शैक्षिक विषयों में नवीन ज्ञान को भी स्थान दिया जाने लगा। कुछ समय पश्चात समाज में इस शिक्षा प्रणाली की माँग में वृद्धि होने लगी थी।

निष्कर्ष–

इस प्रकार हिन्दू शिक्षण संस्थाओं में आधुनिकता की नींव रखी गई। शिक्षा में पठन–पाठन के नए–नए तरीके अपनाए गए। इस प्रणाली के द्वारा संस्कृति एवं शिक्षा में नवीन शोध को बढावा दिया जाने लगा। इन सब कारणों के सम्मिलित प्रभावों के परिणामस्वरूप काशी संस्कृत, अंग्रेजी, प्राच्य एवं पाश्चात्य विशयों की संगम स्थली बनी। भारतीय संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय का सुन्दर कार्य काशी में दृष्टिगत होता है। इस प्रकार से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न राजनैतिक परिवर्तनों के बाद भी भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता काशी की शिक्षा एवं संस्कृति की मुख्य विशेषता रही है। इसी कारण हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की राजधानी काशी, मंदिरों की नगरी, वैदिक ज्ञान प्रदायनी और पवित्र नदियों के संगम पर स्थित होने के कारण प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर लोगों को अपनी और आकर्षित करती रही है। यह काशी की प्रसिद्धि व महानता का ही परिचायक है कि काशी आधुनिक युग में भी शिक्षा एवं सांस्कृतिक रूप से संपन्न नगरों में अग्रणीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.रघुवंशम्, 3.62।

2.ऋग्वेद, 10.34.10।

3. डायना, एल. इक, बनारस दा सिटी ऑफ लाइट, पेंग्यूइन बुक्स, नई दिल्ली, 1992, पृ. 288।

4. अर्थशास्त्र, 1/1।

5. अथर्ववेद, 4/7/1।

6. डॉ मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2003, पृ. 8–9।

7. अल्तेकर, ए.एस, एजुकेशन इन एन्शियण्ट इंड़िया, मनोहर पब्लिकेशन, वाराणसी, 1975, पृ. 219।

8. सिंह, देवी प्रसाद, काशी में शिक्षा व्यवस्था, भारती इतिहास संकलन समिति, काशी, 2006, पृ. 14–15।

9. पाठक, वीणा व्यास, शिक्षा के विविध आयाम, कला प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 15।

10. आइन–ए–अकबरी, अनु0 एच0 एस0 जैरट एण्ड़ जदुनाथ सरकार, द्वितीय भाग, पृ. 166–70।

11. ट्रैवर्नियर, जीन बापतिसते, ट्रेवेल इन इंड़िया (1640–67),

सम्पादक बाल, लन्दन, 1889, पृ. 234—35 |
12. बर्नियर, फ्रेन्कोइस, ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर (1656—68), अनु0 ए. कान्सटेबुल, सम्पादक स्मिथ, आक्सफोर्ड़, द्वितीय संस्करण, 1916, पृ. 341 |
13. बर्नियर की भारत यात्रा, अनु0 बाबू गंगा प्रसाद गुप्त और बाब ूराम, चन्द्र वर्मा पब्लिकेशन , जयपुर, 1994, पृ. 237 |
14. चोपड़ा, पी0 एन0, सोसाइटी एण्ड़ कल्चर ड्यूरिंग मुगल एज, दिल्ली, 1975, पृ. 140 |
15. कैप्टन हेमल्टन, कैप्टन हेमेल्टन्स ट्रेवेल (1688—99), सम्पादक फास्टर, दो भाग, द्वितीय संस्करण, लन्दन, 1939, पृ. 22—23 |
16. सांगवेद विद्यालय का रजत जयन्ती विशेशांक, वि0 सं0 2002, सूर्य प्रस, वाराणसी, 1944, पृ. क, ख, ह |
17. अरुण्डेल, ए.एस. (सम्पादक), बेसेंट स्पिरिट भाग—2, अड़यार, 1939, पृ. 34—35 |
18. प्रसाद, डा0 ईश्वरी, शर्मा, शैलेन्द्र, प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, मीनू पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1980, पृ. 60 |

सुवाति
अस्सिटेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला
महाविद्यालय हर्शनगर, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

House no- 108, 120 Durga
Devi Road, Gandhi Nagar
P Road Kanpur, pin code- 208012
Opp. New Prashant
Hospital, Mob- 9759442530
email id- swatimzn91@gmail.com

53

मानवमूल्य और धर्मसूत्र

नीलम गुप्ता

सारांश

वैदिक साहित्य के इतिहास में शड् वेदों के अन्तर्गत कल्प की नितान्त उपयोगिता है। इसके अन्तर्गत स्थित धर्मसूत्रों का वृहद् साहित्य भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्म की समस्त विशेषताओं को उनके यथार्थरूप में प्रकाशित करने का कार्य करता है। इसके अन्तर्गत मानवमूल्य की जो व्याख्या की गयी है, उसका नितान्त ही महत्त्व है। हिन्दूधर्म और दर्शन के अन्तर्गत मानव की वर्तमान स्थिति एक अन्तहीन शृंखला के सदृश हैं इनमें मानव जीवन के सभी पक्षों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ मानव के मूल्यों में अन्तर और आपेक्षिक भेद का सिद्धान्त उनके जीवन दर्शन पर उत्कृष्ट प्रभाव डालता है। हमारे धर्मग्रन्थ अपनी विशयवस्तु के अन्तर्गत जिस वर्ण–व्यवस्था का उल्लेख करते है उसका मूलाधार कर्मसिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को पूर्णमान्यता प्रदान करने वाले धर्मसूत्रों ने मानवसमाज को समग्ररूप में न देखकर उसका वर्ण के आधार पर विभाजन किया है– 1– ब्राहमण, 2–क्षत्रिय, 3– वैश्य, 4– शूद्र।

धर्मसूत्रों में जन्म के आधार पर व्यक्तियों में अन्तर करते हुए उन्हें अनेक वर्गों में रखकर उनका कर्म के आधार पर विभाजन किया गया। ये धर्मसूत्र मानवजीवनदर्शन के अन्तर्गत व्यक्ति के पूर्ण स्वातन्तय को मान्यता नहीं प्रदान करते। उनके स्थान पर यहाँ संस्कारों को प्रमुख माना गया है। जिसके कारण पूर्व से निर्धारित मानवजीवन वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तथा कर्म के पश्चात् भी उसकी स्थिति बनी रहती है। यह स्थिति अविच्छिन्नरूप से उस समय तक चलती रहेगी जब तक हमें परमतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो जायेगी। अतः मानव का वर्तमान जीवन अनादि यात्रा से सम्बन्धित एक विश्रामस्थल कहा गया है।

यहाँ कर्म करना ही मानव का मूलधर्म है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छत् समाः।।[1]

गीता में भगवान् श्रीकष्ण ने भी कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हयकर्मणः।
भारीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।[2]

अर्थात् हे अजुन! तू शास्त्रविहित कर्तव्य–कर्मकर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तुम्हारा शरीर निर्वाह भी नहीं हो सकता।

यहाँ मन और इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्म करने वाले मानव को सर्वश्रेष्ठ माना गया है–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कमेन्द्रियेः कर्मयोगमसक्तः स विशिश्यते।।[3]

सम्प्रति मनुष्य कर्मबन्धन में आसक्त है इस जीवन में भी उसके लिए कर्म का विधान हैं जिसे श्रद्धापूर्वक सम्पन्न करते हुए अमरत्व की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। कर्म ही मनुष्यों के जीवन में वर्ण की प्राप्ति का आधार हैं धर्मसूत्र यह मानता है कि कर्मत्व ही पुरुष अथवा स्त्री के रूप में हमारी उत्पत्ति का मूलाधार है। इसी को आधार मानकर धर्मसूत्रों में वर्ण–व्यवस्था को जन्मना स्वीकार किया गया है, कर्मणा नहीं। कर्म तो हमें योग्यता तथा प्रतिष्ठा प्रदान किया करता है। इसी कर्म के मूल में भगवान् श्रीकष्ण का निष्कामभाव भी निहित है। वे अर्जुन से कहते हैं कि मानवजाति का केवल कर्म करने में ही अधिकार है फल तो उसे कर्मानुसार ही प्राप्त होगा। मेरे द्वारा जो चार वर्णों की सृष्टि की गयी है उसके विभाजन का आधार भी गुणकर्म ही है। जिस प्रकार मनुष्य जन्म से पूर्व ही एक अलौकिक शक्ति के बन्धन में है, उसी प्रकार जन्म के पश्चात् भी एक पुरुष निर्मित व्यवस्था के बन्धन में आबद्ध हो जाता है। जन्म से तो प्रत्येक मनुश्य की स्थिति एक समान है, किन्तु कर्म ही उसके उच्चादर्श को प्रदर्शित करता है। अतः पौरुशेयी व्यवस्था को ही धर्मसूत्रों का मूलाधार माना गया है। यही समयाचारिक धर्म भी है–

पौरूषेयी व्यवस्था समयः। समयमूला आचाराः समयाचाराः, तेशु भवाः समयाचारिकाः।[4]

धर्मसूत्रों में जो पौरुषेयी व्यवस्था को प्रमाणिक माना गया है, उसका आधार व्यावहारिक दृष्टिकोण है। बौधायन धर्मसूत्र में श्रुति के साथ–साथ परम्परागत अनुभव को भी प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया गया है–

अनुभूतिविषयासम्प्रमोशः स्मृतिः। तदभिव्यजको ग्रन्थः स्मृतिः भाब्देनोपचर्यते।[5]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में मानवजीवन के अन्तर्गत सफल व्यक्तित्व का आदर्श प्राप्त करने वाले सज्जनों के आचार को भी धर्माचरण या नैतिक कर्तव्यों के निर्माण में प्रमाण माना गया है। गौतमधर्मसूत्र में यहाँ तक कहा गया है कि श्रुति और स्मृति के विरूद्ध आचरण नहीं करना चाहिए। हम मनुष्य हैं इस कारण से हमारे आचरण व व्यवहार में दोशोत्पत्ति भी सम्भव है।[6] धर्मसूत्र हमारे जीवन की सभी क्रियाओं पर प्रकाश डालते हुए उसके लौकिक और आध्यात्मिक महत्त्व पर भी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया करते हैं।

धर्मसूत्रों में मानव से सम्बन्धी सभी क्रियाओं पर सम्यक् रूप से दृष्टिपात किया गया हैं यहाँ मानवजीवन के लौकिक और आध्यात्मिक महत्त्व को एक साथ ही सम्मिलित करके प्रस्तुत किया गया है। इसमें मानव के अपने प्रति, समाज के प्रति और ईश्वरीय सत्ता के प्रति हमारे कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। यहाँ मानव स्वभाव, कानून, न्याय, सदाचार, कर्मफल, पुण्यफल, नैतिकता और समाज के प्रति हमारे कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। व्यक्ति के अपने और समाज के प्रति कर्तव्यों को आश्रम धर्म में, सामाजिक कर्तव्यों को वर्ण धर्म में, न्याय का गुणधर्म में और नैतिकता का प्रायश्चित में विशेष प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ मानव की समस्त क्रियाओं में अपना अस्तित्व और समाज सन्नद्ध है। इससे यह ज्ञात होता है कि धर्मसूत्रों में मानव और समाज के मध्य कोई भी पार्थक्य नहीं स्वीकार किया गया हैं ये दोनों एक दूसरे के पूरक माने गये हैं। मनुष्य की अपने जीवन की विविध आवश्यकताओं के अनुसार स्वयं के साथ–साथ अन्य के प्रति भी कर्तव्य हैं यहां यह बताया गया है कि जब वह समाज के सम्बन्धों में बँधता है तो उसे सामाजिक नियमों को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता हैं। हमें अपना विकास करने और आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करने के लिए सदैव अकेले प्रयास करना पड़ता है, किन्तु उसका मूलाधार तो समाज ही होता है। धर्मसूत्रों में वर्णित धर्म स्वाभाविक रूप से व्यक्ति और समाज की सभी क्रियाओं पर नैतिक रूप से विचार करता है।

धर्मसूत्रों में मानवजीवन के चार पुरुषार्थों का उल्लेख किया गया है– 1– धर्म, 2– अर्थ, 3–काम, 4– मोक्ष। यहाँ मोक्ष को परम पुरुषार्थ स्वीकार किया गया हैं। धर्मसूत्रों में इन्हीं पुरूषार्थों के आधार पर धर्म की व्यवस्था की गयी हैं यहाँ काम का अर्थ है–विषयानुभवजन्यसुख। अर्थात् इन्द्रिय से विषयों के उपभोग द्वारा उत्पन्न सुख। यहां कहा गया है कि अर्थ की आवश्यकता धर्म अथवा कर्तव्य के पालन के लिए तथा कामादि के सुखोपभोग हेतु है। अतः अर्थ भी एक महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ हैं काम और अर्थ का सेवन धर्मार्थ ही किया जाता हैं अतः ये तीनों पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित है तथा इनका सेवन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

गौतम के द्वारा मानवजीवन के प्रत्येक दिवस को इन पुरुषार्थों के सेवनार्थ विभक्त करते हुए यह कहा गया है कि प्रातः, दोपहर व शाम को क्रमशः धर्म, अर्थ तथा काम को निष्फल नहीं करना चाहिए। इनमें भी धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है–

त्रिवर्गसेवां सततान्नदानं सुरार्चनं ब्राहमणपूजनं च।
स्वाध्यायसेवां पितृतर्पणं च कृत्वा गृही भाक्रपदं प्रयाति।।[7]

काम के सन्दर्भ में महाभारत के वनपर्व में कहा गया है कि

इन्द्रियाणां च पंचानां मनसो हृदयस्य च।
विषये वर्तमानानां या प्रतिरूपजायते।।
स काम इति मे बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम्।[8]

इन तीन पुरुषार्थों में से धर्म पर विशेष बल देते हुए धर्मसूत्रों में धर्म के लिए धर्म के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया गया हैं आपस्तम्ब धर्मसूत्र में धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि–

नेमं लौकिकमर्थं पुरस्कृत्य धर्माश्चरेत्। निश्फला यभुदये भवति।
तद्यथाऽऽग्रे फलार्थे निमित्ते छायग्रन्ध इत्यनूपपद्यते।।
एवं धर्म चर्यमाणमर्था अनुत्पद्यन्ते। नो चेदनूत्पद्यन्ते न धर्महानिर्भवति।[9]

अर्थात् हमें किसी लौकिकफल की कामना से धर्माचरण नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर वह व्यर्थ हो जाता हैं जिस प्रकार हम आम्र के वृक्ष को फल की कामना से लगाते है, किन्तु उसके द्वारा हमें छाया और सुगन्ध भी प्राप्त होती है। उसी प्रकार धर्माचरण से गौणरूप में लौकिक फल तथा प्रमुख रूप से अलौकिक फल भी प्राप्त हो जाता हैं यदि लौकिक फल की प्राप्ति नहीं भी होती है तो उससे धर्म की कोई हानि नहीं होगी। धर्म के आचरण का उद्घोष करते हुए वशिष्ठ धर्मसूत्र मे कहा गया है कि–

धर्मं चरत माधर्मं सत्यं वदत मानृतम्।
दीर्घं पश्यत मा स्वं परं पश्यत मापरम्।।[10]

अर्थात् धर्म का पालन करो, अधर्म का नहीं। सत्य बोलो,

असत्य नहीं। उदारदृष्टि रखो, संकुचित नहीं। जो परमतत्त्व है उसे देखो, जो परम् नहीं है उसका अवलोकन मत करो।

संदर्भ :

1. ईशोपनिशद्–2
2. गीता–3 / 8
3. वही–3 / 7
4. आपस्तम्बधर्मसूत्र 1 / 1 / 1 की टीका में हरदत्त।
5. बौधायनधर्मसूत्र–1 / 1 / 3
6. गौ0धर्म0–1 / 1 / 3
7. विष्णुधर्मसूत्र–59 / 30
8. महाभारत (वनपर्व–33 / 37–38)
9. आपस्तम्ब धर्मसूत्र–1 / 20 / 1–4
10. वशिष्ठधर्मसूत्र–30 / 1

नीलम गुप्ता
शोधच्छात्रा–संस्कृत
डॉ0 रा0म0लो0अ0वि0वि0
अयोध्या

54

जलवायु परिवर्तन का परिदृश्य : इसके परिमाण, कारण तथा प्रभाव

निशादेवी

सारांश

नासा और आईपीओसी के अनुसार 1880 के बाद से वैश्विक तापमानमें 14°फॉरेनहाइट की वृद्धि हुई है, स्तर प्रति अरब 400.71 बंदरगाहों तक पहुंच गया है, 2000 और 2012 की अवधि के बीच विश्व के वन आवरण का नुकसान 1.5 मिलियन वर्ग कि.मी. है।बर्फिलें क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 287 मि. मी. टन की कमी, समुद्र के स्तर में वृद्धि प्रतिवर्ष 3.2 मि. मी. और प्रति दशक 13.3: की दर से आर्कटिक क्षेत्र के आवरण का नुकसान होता है।जलवायु प्रणाली में बड़े पैमाने पर बदलाव के कारण अत्यधिक परिवर्तनों का खतरा दिन–प्रतिदिन बढ़ता जो रहा हैं जैसे कई संवेदनशील प्रजातियां जैसे कार्निस, जलीय पक्षी, सरीसृप जैसे समुद्री कछुए और उभयचर विलुप्त होने का सामना कर रहें हैं।कई अग्रणिय अफ्रीकी देशों में फसलों के गिरने से अकाल, भूमध्य सागरीय और दक्षिणि अफ्रीका में पीने योग्य पानी में कमी और जंगलों में आग (आस्ट्रेलिया और इंडोनेशिया) और बांग्लादेश जैसी चरम घटनाओं की बढ़ती तीव्रता, तूफानों की घटनाएं में बवंडर और तूफान तथा घातकगर्मी की लहरे (भारत 2015 में) दुनिया के कई हिस्सों में रिकॉर्ड किया गया।ग्रीन हाउस गैसों^{2}, ब्4 , जलवाष्प, छए O, Os, HFCS औरैथ्यत का मानव जनित संकट सौर उर्जा के एक हिस्से को पृथ्वी पर वापस भेजता है जिससे तापमान में वृद्धि होती है, समुद्री धाराओं में परिवर्तन होता है, मौसम के प्रतिरूप और अंततः जलवायु में भी परिवर्तन होताहै।वनों की कटाईब्ब को कम करतीहै; और यह ग्रीनहाउस प्रभाव में बढ़ोतरी करती है।कई अल्पविधियों जैसे वैकल्पिक तकनीकों का उपयोग, जीवाश्म ईंधन के उपयोग को कम करना, उत्सर्जन के दौरान ग्रीन हाउस गैस में कमी की तकनीकों का उपयोग, कार्बन पृथक्करण और कार्बन भंडारण, वनीकरण, पुर्ननवीकरण, मौजूदावन भंडार की सुरक्षा, जंगली कृषि अयस्क को कई अंतराष्ट्रीय सरकार द्वारा और गैर–सरकारी संगठन सुगम बनाया जा रहा है।जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को परिवर्तन या आपदा जोखिम में कमी के लिए अनुकूलित किया जा सकता है। यूएन डीपी ने कार्बन वित्त पर काम करने के लिए तीन चरणो ंवाली विधि का सुझाव दिया है जिसमें जलवायु अनुकूल प्रौद्योगिकीयों की बाधाओं को दूर करना, स्वच्छ विकासतंत्र (सी डी एम) के लिए कुशल सहायक देशों की स्थापना करना और सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य कार्बन सुविधा के माध्यम से परियोजनाओं का विकास करना शामिल है।जलवायु परिवर्तन के बदलाव को कम करने के लिए वितपोषण सहित अपनी गतिविधियों की योजना बनाने के लिए क्षेत्रीय सरकारों के लिए एक एकीकृत टेरानियलची नेट प्लान (टी. सी. पी.) तैयार किया गया था। यह पेपर एंथ्रोपोसिन वैश्विक जलवायु परिवर्तन और इसके मानवीय संसाधनों का संक्षेप में मूल्यांकन करता है।

कुंजी शब्द : जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, कार्बन पृथक्करण, जलवायु परिवर्तन आपदाएं, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

परिचय (Introduction)

कार्बन डाइऑक्साइड (CO) जैसी ग्रीन हाउस गैसे पृथ्वी की सतह से निकलने वाली ऊष्मा (Infra-red Radiation) को अवशोषित करती हैं।इन गैसों की वायुमंडलीय सांद्रता में वृद्धि इस गर्मी के अधिक होने से पृथ्वी को गर्म करने का कारण बनती है।मानव गतिविधियाँ विशेष रूप से औद्योगिक क्रांति की शुरूआत के बाद से जीवाश्म ईंधन के जलने से वायुमंडलीय COमें 40: से अधिक वृद्धि हुईहै। 1970 के बाद से आधी से अधिक वृद्धि हुईहै। 1900 के बाद से, वैश्विक औसत सतह के तापमानमेंलगभग 1 डिग्रीसेल्सियस (1.8 डिग्री फॉरेनहाइट) वृद्धि हुई है।इसके साथ समुद्र का गर्महोना, समुद्र के स्तर में वृद्धि, आर्कटिक समुद्री बर्फ में भारी गिरावट, उष्मा तरंग की आवृतिऔर तीव्रता में व्यापक वृद्धि और कई अन्य संबंधित जलवायु प्रभाव शामिल हैं।ग्लोबल वार्मिंग में बढोतरी अधिकांश पिछले पांच दशकों में सबसे अधिक हुई है।विस्तृत विश्लेषण से पता चला है कि इस अवधि के दौरान वार्मिंग मुख्य रूप से और अन्य ग्रीन हाउस गैसों की बढ़ी हुई सांद्रता का परिणाम है।इन गैसों के निरंतर उत्सर्जन से ओर अधिक जलवायु परिवर्तन होगा, जिसमें वैश्विक औसत सतह के तापमान में पर्याप्त वृद्धि और क्षेत्रीय जलवायु में महत्वपूर्ण परिवर्तन शामिल हैं।इन परिवर्तनों का परिमाण और समय कई कारकों पर निर्भर करेगा और एक दशक या उससे अधिक समय तक चलनेवाले वार्मिंग में मंदी और तेजी आती रहेगी।जबकि कई दशकों में दीर्ध कालिक जलवायु परिवर्तन मुख्य रूप से की कुल मात्रा और मानव गतिविधियों के परिणाम स्वरूप उत्सर्जित होने वाली अन्य ग्रीन हाउस गैसों पर निर्भर करेगा।

समरणीय योग्य बात यह है किजब से वायुमंडल बना हैतब से जलवायु में परिवर्तन हो रहें हैं, लेकिन ये परिवर्तन स्थायी कभी नहीं रहे। एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन के लिए जगह बनाता आया है।विश्व में जलवाय वी परिवर्तनों की पड़ताल तीन खंडों में की जा सकतीहै–

(क) भू–वैज्ञानिक अतीतकाल।

(ख) ऐतिहासिक काल।

(ग) अभिनवपूर्व काल।

जलवायु : अर्थ एवं परिभाषा

जलवायु किसी भी स्थान की दीर्धा वधिक का सूचक है अर्थात जलवायु किसी स्थान की पर्याप्त लम्बे समय मेंली गई मौसमी दशाओं का सम्मिलित रूप है।जलवायु लम्बे समय तकवायु मण्डलीय दशाओं की विशेषताओं के बार–बार किए गए निरिक्षणों से निकाले गए निष्कर्षों से सम्बन्धित होतीहै।आस्टिनमिलर ने 35 वर्षों की न्यूनतम अवधि को किसी जलवायु की प्रकृति निश्चित करने वालालम्बा समय माना है जबकि अन्तराष्ट्रीय मौसम विज्ञान संस्थान (W.M.O.) जलवायु के आँकड़ों के संग्रह के लिए 31 वर्षों की अवधि को प्रामाणिक मानता है। इस अवधि की गणनाओं के आधार पर ही हम कह सकते हैं कि टुड्रा प्रदेशों की जलवायु शीत और उष्ण–कटिबंधीय प्रदेशों की जलवायु उष्ण एंव आर्द्र हैं।

जलवायु का कोई औसत मापन हीं होती। यदि हम किसी स्थान विशेष के मौसम और जलवायु को सही प्रकार से जानना चाहते हैं तो हमें औसत मासिक और औसत वार्षिक से हटकर देखना होगा।हमे ंदिन–प्रतिदिन घटने वाली चरम मौसमी घटनाओं को भी जानना होगा।

एफ. जे. मोंकहाउस के अनुसार, "जलवायु वास्तव में किसी स्थान विशेष की दीर्घकालीन मौसमीय दशाओं के वर्णन को सम्मिलित करती है।"

जी. टी. ट्रिवार्था के अनुसार, "जलवायु दिन–प्रतिदिन की मौसमीय दशाओं के विभिन्न रूपों का सम्मिश्रण या सामान्यी करण है।"

एच. के क्रिचफील्ड के अनुसार, "जलवायु मौसमी तत्वों की सांख्यिकीय औसत से कहीं अधिक है।वायुमण्डल की उष्मा, आर्द्रता एवंवायु की गतियों का समुच्चय जलवायु कहलाता है।"

प्रकृति में वायुमंडल की संरचना अत्यंत श्रेष्ठ ढंग से हुई है। यह स्थिर न रहकर सदा गतिशील रहता है। वायुमंडल की यह गत्यात्मकता इसके निचले स्तरों में बहुत ज्यादा है।वायुमंडलीय विशेषताएँ केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ही नहीं बदलतीं वरन् ये समय के साथ–साथ भी बदल जाती हैं।पृथ्वी का भू–गर्भिक इतिहास इस बात का गवाह है कि अतीत मेंहर युग की अपनी विशिष्ट जलवाय वी दशाएँ रही हैं। स्पष्ट है कि यहां जलवायु परिवर्तन से आशय 30–35 वर्षोंमें या हजारों वर्षों में मिलनेवाली जलवायू वीभिन्न्ताओं के अध्ययन से नहीं हब्लिक इसमें लाखों वर्षों से चले आ रहे समय मापकों में होने वाली जलवायु की भिन्नताओं का अध्ययन शामिल किया जाता है।

उद्देश्य

(क) होने वाले जलवायु परिवर्तन के कारणों का पता लगाना।

(ख) ग्लोबल वार्मिंगमेंहो रहे परिवर्तनों का पता करना।

जलवायु परिवर्तन के प्रमाण (Evidence For Climate Change)

1.भू–वैज्ञानिक अतीत काल में हुए जलवायु परिवर्तन के प्रमाण–

(क) अवसादी चट्टानों में प्राणियों और वनस्पतियों के जीवाष्म।

(ख) गहरे महासागरों के अवसादों से प्राप्त प्राणियों और वनस्पतियों के जीवाष्म।

(ग) वृक्षों के वलय।

(घ) झीलों के अवसाद।

(ड़) चट्टानों की प्रवृति।

(च) हिमनदियों के आकार में परिवर्तन।

(छ) समुद्रों के आकार में परिवर्तन।

(ज) भू–आकारों के प्रमाण।

2.अभिनवकाल एंव नूतन काल में हुए जलवायु परिवर्तन के प्रमाण–

(क) अभिलेखों में जलवायु परिवर्तन के उल्लेख।

(ख) पुस्तकालयों में मौसम संबंधी जानकारी।

(ग) फसलों के बोने और काटने के मौसम।

(घ) सूखे व बाढ़ से जुड़ी लोककथाएं एवं वैज्ञानिक आंकड़े।

(ड़) पतनों के जल का जमजाना।

(च) सूखी झीलें, नदियाँ व नहरें।

(छ) पुरानी बस्तियों के खंडर।

(ज) लुप्त प्रजातितथा वनस्पतियों का वितरण।

जलवायुपरिवर्तन के कारण

जलवायु परिवर्तन के अनेक महत्वपूर्ण कारण हैं जिन्हें दो भागों में खंडित किया जा सकता हैं–

(अ) खगोलिय कारण (Astronomical Causes)

(ब) पार्थिवकारण (Terrestrial Causes)

(अ) खगोलिय कारण (Astronomical Causes)

1.सौरकंलक–सौर कलंक सूर्य पर काले धब्बे होते हैं, जो एक चक्रीय ढंग से घटते–बढ़ते रहते हैं।सूर्य के सौर कलंको (Sun Spots) की संख्या में प्रत्येक 11 वर्षों के बाद परिवर्तन आता रहता है।सौर कलंको की संख्या बढ़ना अधिक उष्ण व आर्द्र दशाओं तथा तूफानों की संख्या के बढ़ने से जुड़ा है, जबकि सौर कलंको की संख्या में कमी, गर्मतथा शुष्क दशाओं से संबधित होती है। यही नहीं सौरकलं को की संख्या का प्रभाव सूर्य से निष्काषित होनेवाली परा बैंगनी किरणों का भी पड़ता है।इन्हीं परा बैंगनी किरणों की मात्रा में वायुमंडल में ओजोन गैस की सांद्रता निर्धारित होती है।वायुमंडल में ओजोन गैस की मात्रा भू–मंडल पर ताप संतुलन को प्रभावित करती है।

2.पृथ्वी की कक्षा की उत्केंद्रियता (Eccentricity) में परिवर्तन–पृथ्वी की उत्केंद्रियता में लगभग 92 हजार वर्षों में परिवर्तन आ जाता है अर्थात सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के परिक्रमण पथ की आकृति कभी अंडाकार तो कभी गोलाकार हो जाती है।उदाहरण के अनुसार : वर्तमान में पृथ्वी की सूर्य के निकटतम रहने की स्थिति–उपसौर (Perihelion)जनवरी में आती है। यह उपसौर स्थिति 50 हजार वर्ष बाद जुलाई में आने लगेगी। इसका परिणाम यह होगा कि आगामी 50 हजार वर्षों में उतरी गोलार्द्ध में

ग्रीष्मकाल अधिक गर्म व शीतकाल अधिक ठंडा हो जाएगा।

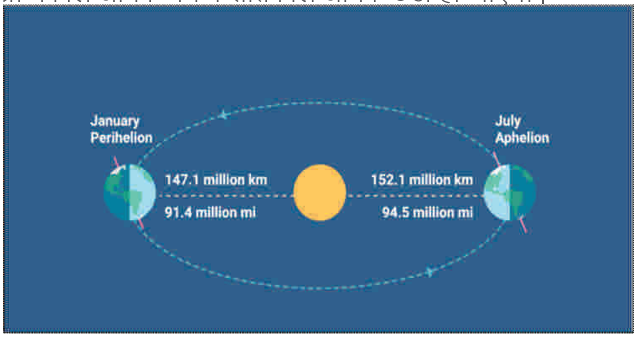

1.पृथ्वी की काल्पनिक धुरी के कोण में परिवर्तन—सूर्य की परिक्रमा करते समय पृथ्वी की धुरी (Axes) अपने कक्ष के साथ एक कोण बनाती है।वर्तमान युगमें यह कोण 23°30"डिग्री का है, लेकिन प्रत्येक 41—42 हजार वर्षों के बादपृथ्वी की धुरी के कोणमें 1.5 डिग्री का अंतर आ जाताहै। यह झुकाव 22—24 डिग्री के बीच रहता है।पृथ्वी के झुकाव में परिवर्तन मौसमी उशाओं व तापमान में तो अंतर होंगे ही साथ ही भौगोलिक पेटियों की भिन्नताएँ कम या विलुप्त हो जाएगी।

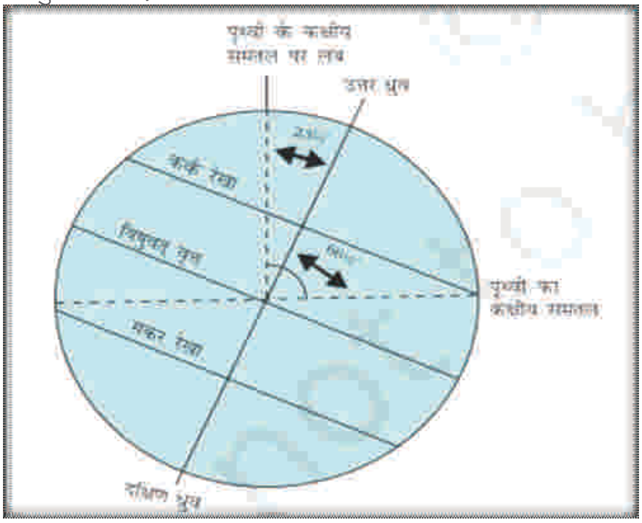

1. पुरस्सरण—वर्तमान में चार मौसमी दिवसों की स्थितियां इस प्रकार से हैं— 21 मार्च—बसंतविषुव, 23 सितंबर—शरद विषुव, 21 जून—कर्क संक्राति तथा 22 दिसंबर—मकर संक्राति।प्रत्येक 22 हजार वर्षों में इन स्थितियों में परिवर्तन आता है जिसका सीधा प्रभाव जलवायु पर पड़ता है।

2.सौर विकिरण की प्राप्ति में भिन्नता—समस्त पृथ्वी पर उर्जा का एकमात्र स्त्रोत सूर्य है।सूर्य में होने वाले उतार—चढ़ाव से पृथ्वी को मिलने वाली ऊर्जा में अंतर आ जाता है।सूर्यातप की मात्रा में परिवर्तन वायुमंडल द्वारा सौर विकिरण के अवशोषण की मात्रा में परिवर्तन से भी हो सकताहै।

(ब)पार्थिवकारण (Terrestrial Causes)

1. महाद्वीपीय विस्थापन—भू—गर्भिक काल में महाद्वीपों के विखंडन व विभिन्न दिशाओं में संचलन के कारण विभिन्न अलग—अलग भू—खंडों में भिन्न—भिन्न प्रकार के परिवर्तन हुए। ध्रुवीय क्षेत्रों के निकट स्थित भू—भागों का भूमध्य रेखा के निकट आनेपर जलवायु परिवर्तन होना एक सामान्य प्रक्रिया है।दक्षिणी भारत में हिमन दों के चिह्नों तथा अंटार्कटिका में कोयले का मिलना इस जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्रमाण हैं।

2.पर्वतनिर्माण—प्रक्रिया—यह प्रक्रिया जलवायु को दो प्रकार से प्रभावित करती हैं—प्रथम पर्वतों के उत्थान तथा घिसकर उनके नीचे हो जाने से स्थला कृतियों की व्यवस्था भंग हो जाती है।इसका प्रभाव पवन प्रवाह, सूर्यातप तथा मौसमी तत्वों; जैसेता पमान एंव वर्षा के वितरण पर पड़ता है। द्वितीय पर्वत निर्माण की प्रक्रिया से ज्वालामुखी उद्‌गार की संभावनाएँ प्रबल हो जाती हैं।ज्वाला मुखी उद्‌गार से वायुमंडल में विभिन्न प्रकार की गैसें तथा जलवाष्प भारी मात्रा मे निकलते हैं तथा लंबे समय तक वायुमंडल में विद्यमान रहते हैं। ये सौरविकिरण को पृथ्वी की सतह पर आने में रूकावटउत्पन्न करतेहै।जलवाष्प उद्भेदन से निष्कासित सामग्री प्रवेशी सौर विकिरण तथा पार्थिव विकिरण द्वारापृथ्वी के ऊष्मा संतुलन में रूकावट पैदा करती है।

3.मनुष्य के क्रिया—कलाप—मनुष्य अपनी विकासात्मक गतिविधियों से हरित—गृह गैसों (कार्बन डाईआक्साइड, ओजोन, जलवाष्प) की मात्रा वायु मंडल में बढ़ाता रहता है।वायु मंडल में इन अवयवों के प्राकृतिक संकेद्रण में भिन्नता आने से भू—मंडलीय ऊष्मा संतुलन प्रभावित होता है।इससे वायुमंडल की सामान्य ऊष्मा प्रणाली, जिस पर जलवायु भी निर्भर करती है, प्रभावित होती है।

4.जलमंडलीय तथा वायुमंडलीय प्रक्रियाएं—महासागरों के जल स्तर में उतार—चढ़ाव से भी जलवायु में परिवर्तन होता रहता हैं। समय के साथ—साथ विभिन्न गैसों तथा धूलकणों का अनुपात भी बदलता रहता है।इससे पृथ्वी पर सूर्याताप की मात्रा बदलती है और जलवायु में परिवर्तन होता है।

जलवायु परिवर्तन में मानव की भूमिका मानव ने प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक अपनी आर्थिक क्रियाओं द्वारा, जीवन शैली और विकसित प्रौद्योगि की जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार रही हैं।प्रारंभ में मनुष्य ने आखेट को आसान तथा भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए उसने आग का प्रयोग करना शुरू किया जिससे वन—विनाश को बढ़ावा मिला।कृषि के विकास के लिए बड़े स्तर पर वनों को साफ किया गया। वन—विनाश से ऑक्सीजन की मात्रा में ह्रास हुआ तथा कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा में बढ़ोतरी हुई।इससे तापमान में बढ़ोतरी हुई।स्टीमईंजन के अविष्कार से इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति आई।फलस्वरूप विश्व में बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का ह्रासहोने लगातथा जलवायु में परिवर्तन होने लगा।बदलते भूमि उपयोग से भी वायुमंडल के एल्बिडा में परिवर्तन आया।आधुनीकीकरण तथा बढ़ते प्रौद्योगि की करण भी जलवायु परिवर्तन की देन है।

ग्लोबलवार्मिंग एंव जलवायु परिवर्तन

ग्लोबलवार्मिंग एक ऐसा शब्दहै जिसका उपयोग पृथ्वी की जलवायु प्रणाली के औसतता पमान और इसके संबंधित प्रभावों में शताब्दी—स्तर की वृद्धि के लिए किया जाता है।वैज्ञानिक 95 प्रतिशत से अधिक यह मानते हैं कि लगभग सभी ग्लोबल वार्मिंगग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता तथा मानव जनित उत्सर्जन के कारण होती है। हमारी पृथ्वी के वायुमंडल के अंदर जलवाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और ओजोन जैसी ग्रीन हाउस गैसों का

संचय वायुमंडल में उपस्थित गैसें हैं जो ऊष्मा विकिरणको अवशोषित और उत्सर्जित करती हैं।वायुमंडल में उपस्थित ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा सूर्य से आने वाले विकिरण की मात्रा को प्रभावित करती हैं।कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, क्लोरो फलोरो कार्बनया अन्य ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि के साथ हमारे वातावरण की ऊपरी परतों को अत्यधिक मात्रा में गर्म कर देती हैं जिसके प्रभाव के कारण हमारा वातावरण अधिकगर्म और अशांत होता जा रहा है।ग्लोबल वार्मिंग का अनुमान पृथ्वी के औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि से लगाया जाता है।हमारे वर्तमान में बढ़ते औसत वैश्विक तापमान के साथ पृथ्वी के कुछ हिस्से वास्तव में ठंडेहो सकते हैं जबकि अन्य हिस्से अत्यधिक गर्महो जाएगें।सूखा, जंगली आग और अत्यधिक तापमान ग्रीनहाउस गैसों के कारण वायुमंडलीय ताप भी मौसम और जलवायु की अप्रत्याशितता को बढ़ाते हैं और तूफानों की गंभीरता और आवृति में भी वृद्धि करते हैं।ग्लोबलवार्मिंग के बढ़ते हुए स्तर से मानवता और पृथ्वी पर सभी जीवों का अस्तित्व खतरें में पड़ जाएगा तथा समस्त वैश्विक जलवायु को तेजी से बदलने का कारण बन जाएगा। कार्बन डाइऑक्साइड वर्तमान में संबधित सबसे महत्वपूण ग्रीन हाउस गैस है।सबसे लंबे समय तक हमारे वैज्ञानिकों का मानना था कि एक बार वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड लगभग 100 वर्षों तक रहताहै। नए शोध से पता चलता है। कि यह सच नहीं है। उस कार्बन का 75 प्रतिशत हजारों सालों तक गायब नहीं होगा।अन्य 25 प्रतिशत हमेशा के लिए रहता है।हम एक ऐसा ग्लोबलवार्मिंग संकट पैदा

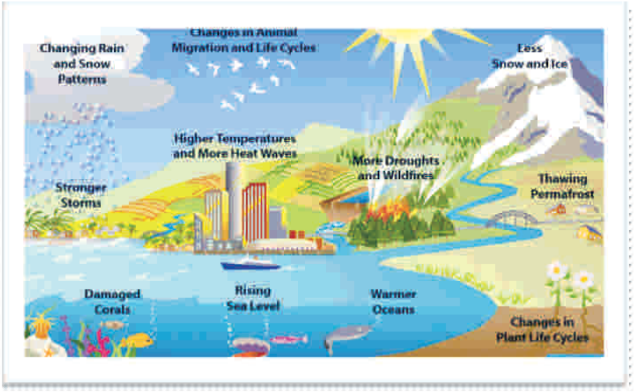

कर रहें हैं जो हमने सोचा भी नहीं था और उससे कहीं अधिक समय तक ये वातावरण में उपस्थित होगा।इसलिए हमने भविष्य को बेहतर बनाने के लिए अपने वायुमंडल कोइन हानिकारक गैसों से बचाना होगा।

ग्रीनहाउस गैसें तथा जलवायु परिवर्तन

हमारे वातावरण में अनेक प्रकार की गैसें पाई जाती हैं।सभी गैसों में उपस्थित गैस कार्बनडाइऑक्साइड की उपस्थिति मुश्किल से आधा प्रतिशत से भी कम हैं।सूर्य से पृथ्वी की ओर आने वाली विकिरण उर्जा जिसे हम सूर्याताप कहते हैं, लधुतंरगों के रूपमें होती है। इस प्रवेशी सौर विकिरण से पृथ्वी गर्म रहतीहै।वायुमंडल तो इस उर्जा का केवल 20 प्रतिशत भागही अवशोषितकर पाताहै।जबपृथ्वीको यह उष्मादीर्धतंरगों के रूपमें वापस लौटने लगती है तो वायुमंडल में उपस्थित गैसें इसे अवशोषित कर लेती हैं।वे गैसें जो विकिरण की दीर्ध तरंगों कर अवशोषण कर लेती हैं, ग्रीन हाउस गैसें कहलाती हैं।वायुमंडल का उष्मन करने वाली प्रक्रियाओं को सामूहिक रूप से ग्रीन हाउस प्रभाव कहा जाता है।

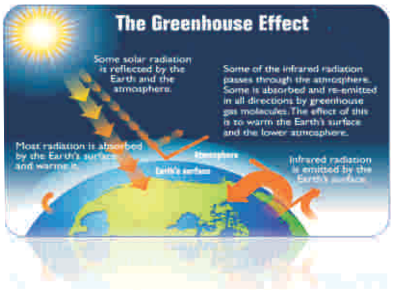

कार्बन डाइऑक्साइड गैस की उपस्थिति के कारण ही हमारी पृथ्वी गर्म रहतीहै, नहीं तो इसके बिना हमारी पृथ्वी एक ठंडा निर्जन स्थान होती और मानव तथा जीव–जन्तुओं का जीवन संभव नहीं होता।अन्य ग्रहों पर भी तापमान वहां पर पाई जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा मे अनुसार ही है। शुक्र ग्रह पर वर्तमान में कार्बन डाइऑक्साइड की घनी परत होने के कारण वहां का तापमान 427°डिग्री सेल्सियस है।इसके विपरीत मंगलग्रह का तापमान 53°सेल्सियस है, क्योंकि वहाँ पर कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा नहीं के बराबर है।ग्रीनहाउसमें जलवाष्प का सबसे बड़ा योगदान है।जब कि वातावरण में सभी जलवाष्प प्राकृतिक प्रक्रियाओं से आते हैं। यहाँ परस बसे चिंता जनक गैस कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रॉसऑक्साइड प्रमुख जी. एच. जी. गैस हैं। कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में 1,000 वर्षों तक, लगभग एक दशकत कमीथेन तथा 120 वर्षों तक नाइट्रॉसऑक्साइड रहती है जो जलवायु परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण रूप से भागी दार हैं।

जलवायु परिवर्तन के परिणाम (Consequences of Climate Change)

जलवायु परिवर्तन के परिणाम वर्तमान और दूरगामी दोनों हैं जिनका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

1.बर्फ का पिघलना–वर्तमान में तापमान के बढ़ने से हिमाच्छादित भागों में तापमान हिमांक से ऊपर हो गया हैं।और बड़े पैमाने परबर्फ के पिघलने का काम शुरू हो गया है।

2.समुंद्रतल का ऊपर उठना–बर्फ के पिघलने से प्राप्त जल नदियों के माध्यम से समुद्र में गिरता है और समुद्र का जल स्तरऊपर उठने लगता है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2000 की तुलना में सन् 2100 में समुद्रतल 30 से 43 सें. मी. ऊपरउठजाएगा।पुलिन, बन्दरगाहें तथा तटीय नगरपानी से डूब जाएगें।पतनों के जलमग्न होने से अन्तराष्ट्रीय व्यापार को नुकसान होगा।

3.महासागरीय धाराओं में परिवर्तन–ग्लोबलवार्मिंग से शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के निम्न अक्षांशों में उष्ण कटिबन्धीय जलवायु का विस्तार हो जाएगा।परिणाम स्वरूप उपोष्ण उच्चदाब तथा उपध्रुवीय निम्नदाब की पेटियाँ भूमध्य रेखा से दूर ध्रुवों की ओर खिसक जाएँगी।इससे सन्मार्गी पवनों के प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि होगी तथा ध्रुवीय पवनों के प्रभाव क्षेत्र में कमी हो जाएगी।

4. वर्षा के प्रारूप में परिवर्तन–भूमंडलीय ऊष्मन से उष्ण

कटिबन्धीय क्षेत्रों की अपेक्षा ध्रुवीय क्षेत्रों के तापमान में वृद्धि होगी जिससे वर्षा की पेटियां ध्रुवों की तरफ विस्थापित हो जाएंगी।वर्षा की अवधि की बजाय वर्षा की गहनता अथवातीव्रता में अधिक वृद्धि होगी जिससे शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में तूफान तथा बाढ़े आने की संभावना बढ़ सकती है।

5. उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की संख्या में वृद्धि –शीत क्षेत्रों में बर्फ के पिघलने से महासागरों का जल स्तर बढेगा तथा उनके आकार में वृद्धि होगी। विस्तृत जल स्तर और उच्च तापमान के कारण वाष्पीकरण अधिक होगा।अधिक आर्द्रता तथा गुप्त ऊष्मा के कारण उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में वृद्धि होगी और वे पहले से अधिक शक्तिशाली बन जाएंगे।वर्षा की तीव्रता तथा उसकी परिवर्तन शीलता में वृद्धि हो जाएंगी।मृदा अपरदन से कृषि उपज पर प्रति कुल प्रभाव पड़ेगा। बाढ़ और सूखे का प्रकोप बढ़ेगा और मरूस्थ्लीकरण का विस्तार होगा।

6.कृषि के प्रारूप में परिवर्तन–प्रत्येक फसल के लिए एक निश्चित तापमान तथा वर्षा की मात्रा की आवश्यकता होतीहै।वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड में वृद्धि होने का एक लाभ यह होगा कि इससे पौधों को प्रकाश–संश्लेषण में सहायता मिलेगी और गेहूँ, चावल, सोयाबीन जैसी फसलों में 30 से 100 प्रतिशत की वृद्धि होगी जिससे शीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में कृषि का प्रारूप परिवर्तित हो जाएगा।

7.उष्णकटिबंधीय बिमारियों का फैलाव–अतिगर्म, अतिठंडी, अतिआर्द्र अथवा अति शुष्क परिस्थितियाँ कीटाणुओं, जीवाणुओं, वायरस आदि को जन्म देती हैं जिनसे बीमारियां फैलती हैं। ये बिमारियाँ उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रोंमें अधिक फैलती हैं क्योंकि इन इलाकों में तापमान अधिक होता है।उष्ण एंवआर्द्र मौसम में फैलने वाली बिमारियों में मलेरिया, चेचक, हैजा, पीलिया, प्लेग तथा डेंगू आदि प्रमुख हैं। यदि वायुमंडल का तापमान 2°से० बढ़ जाए तो मलेरिया से प्रभावित क्षेत्र विश्व के वर्तमान 42 प्रतिशत से बढ़कर 60 प्रतिशत हो जाएगा।

निष्कर्ष

ऊपर दिए गए लेख में यह स्पष्ट किया गया हैं कि ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में परिवर्तन जलवायु परिवर्तन का कारण बनता है। यहांपर यह स्पष्ट किया किस प्रकार वातावरण में इनगैसों की सांद्रता में वृद्धि हुई है और अभी भी तेजी से होर ही हैऔर जलवायु परिवर्तन हो रहा है।वर्तमान में हो रहे परिवर्तन निश्चित रूप से मानव गतिविधियों के कारणग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन के कारण है। यदि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन निरंतर जारीरहताहै तो भविष्य मेंहोने वाले परिवर्तन अब तक हुए परिवर्तनों से काफी अधिक होंगे।भविष्य के परिवर्तन के परिमाण और क्षेत्रीय अभिव्यक्ति के अनुमानों की एक श्रृंखला बनी हुई है लेकिन जलवायु के चरम में वृद्धि होती है जो प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र औरमान व गतिविधियों और बुनियादी ढांचे पर प्रतिकुल प्रभाव डाल सकती है।इसलिए नागरिकों तथा सरकारों को चाहिए कि वे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को सीमित करने के लिए ऊर्जा उत्पादन और उपयोग के अपने प्रति रूप को बदल सकते हैं और इसलिए जलवायु परिवर्तन से सुरक्षा तथा परिवर्तनों के घटित होने की प्रतिक्षा कर सकते हैं और उत्पन्न होने वाले नुकसान, क्षति और कष्ट को स्वीकार कर सकते हैं।तेजी से बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों की संभावना के लिए कृषि क्षेत्रों को तैयार करने के लिए कार्रवाई की तत्काल आवश्यकता है।स्थिरता प्राप्त करने, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने की आपस में जुड़ी चुनौतियों का सामना करने के लिए कृषि उत्पादन प्रणालियों और खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने और सुरक्षित रखने और जलवायु परिवर्तन में अल्प विकास महत्वपूर्ण योगदान देने के लिए संसाधन दक्षता मेंवृद्धि आवश्यक है।जलवायु परिवर्तन को संभालने के लिए जलवायु–स्मार्टकृषि लक्ष्यों के उद्देश्यों को इस व्यापकनीति के संदर्भमें एकीकृत करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

1.आई एस एस सी एंड यूनेस्को (2013). वर्ल्ड सोशल सांइस रिपोर्ट 2013. चेजिंगग्लोबल इन वायर मेंटस पेरिस : ओ इ सीडीपब्लिसिंग एंड यूनेस्को पब्लिसिंग. डीओआई : 10.1787&9789264203419-en.

2.कुकजे. एट एल. (2013). क्वालिफाइंग द कंसेन ससऑन एंथोपो ग्राफीक ग्लोबल वार्मिंगइन द साइंटिफि कलिटरेचर, इन वायर मेंटल रिसर्च लेटरस. आई ओपी पब्लिसिंग. वॉल्यूम 8(2), पीपी 024024. डीओआई : 10.1088 / 1748–9326 / 8 / 2 / 024024.

3.ग्लोबल कार्बन प्रोजक्ट (2014). कार्बनबजट एंडट्रेंडस 2014. ग्लोबलकार्बनप्रोजक्ट. डीओआई : WWW.globalcarbonproject.org/carbonbudget.

4.ग्रीनजे. एट एल. (2010). ट्रांजिशन टूसस्टेन एबल डेवलपमेंट. न्यूयार्क : रूटलजड.

5.जेसनॉफ एस. (2010). ए न्यूक्लाइमेट फॉरसोसाइटी ; थ्योरी, क्लचर एंडसोसाइटी. सगेपब्लिकेशनस. वॉल्यूम 27(2–3), पी. पी. 233–253. डीओआई : 10.1177 / 0263276409361497.

6.जेसनॉफ एस. (ईडी) (2004). स्टेटसऑफनॉलेज. लंदन : रूटजल्ट.

7.डॉ. अशोक दिवाकर (2022). भौतिक भूगोल एंवप्रयोगात्मक भूगोल. ज्योति बुक डिपोप्रा. लि.

8.नेशनल अकेदमी ऑफ साइंस (2020). क्लाइमेटचेंज एविडेंस एंडकोजिज. एन ओवरव्यूय फरोम द रोयलसोसाइटी एंड द यू.एस. नेशनल अकेदमी ऑफसांइस.

9.हैकमैन एच. एंड एस टीक्लेयर ए. (2012) ट्रांसफोर्मेटिवकोर्नरस्टोनऑफसोशलसाइंसरिसर्चफॉरग्लोबलचेंज इंटरनेशनलसोशलसाइंसकाउंसिल. डीओआई : http://www.worldsocialscience.org/documents/transformative-cornerstones.pdf.

वेबसाइट :

1 - https://www.jobonefor humanity.org/global_warming?gclid=Cj0KCQiAm5ycBhCXARIsAPldzoUcqGOD1sQLN1JI_aHlLlgbSH1UfFzJWrE0-vQcCG1kbn5aXw8yvQgaAsIbEALw_wcB.

2- https://energyeducation.ca/encyclopedia/Greenhouse_effec

t.
3-https:/ www. imperial. ac.uk/grantham/ publications /climate- change- faqs/.
4-https://bit.ly/2QDAF0n.
5-https:// www.ipcc. ch/site/assets/uploads/ sites/2/2018/12/ST1.5_OCE_LR.pdf.

Nisha Devi D/. Ram Chander
H.No.-367, Gali No.-2, Chopra Colony
Gohana,Sonipat (Haryana)
PIN : 131301
Mob. No.- 9050466795
nishasangwancdrjm@gmail.com

55 भारतीय संस्कृति और संगीत : पर्यावरण संरक्षण का आधार

डॉ॰ संतोष कुमारी

सारांश

'पर्यावरण' शब्द अंग्रेजी के 'Environment' का हिन्दी अनुवाद है, जो 'परि' और 'आवरण' दो शब्दों के मेल से बना है। जिनका शाब्दिक अर्थ है– 'परि' अर्थात चारों ओर तथा 'आवरण' का अर्थ है– घेरा । अर्थात् हमें चारों ओर से घेरने वाला पर्यावरण है।

जीवित प्राणियों के अस्तित्व जीवन और पुनरुत्पादन को प्रभावित करने वाले सभी तत्व और कारक पर्यावरण कहलाते है। पर्यावरण के अन्तर्गत जीव–जन्तु, वनस्पति, वायु, जल, प्रकाश, ताप, मिट्टी, नदी, पहाड़ आदि सभी जैविक तथा अजैविक घटकों का समावेश है। इसमें वह सब कुछ समाविष्ट है, जो पृथ्वी पर दृश्य तथा अदृश्य रूप में विद्यमान है।

पर्यावरण और उसके महत्व व संरक्षण के कार्यों में कलात्मक अभिव्यक्तियाँ बेहद सशक्त भूमिका निभाती है। भारतीय संस्कृति में मानव तथा प्रकृति के बीच अटूट रिश्ता कायम किया गया है। जो पूर्णतः वैज्ञानिक तथा संतुलित हैं। भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधों, नदी–पर्वत, ग्रह–नक्षत्र, अग्नि–वायु सहित प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गए है।

संस्कृति का अर्थ एवं परिभाषा :

संस्कृति मनुष्य की अमूल्य निधि है। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है। और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है।

संस्कृत भाषा में "सम" उपसर्गपूर्वक, 'कृ' धातु में 'ति' प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द उत्पन्न होत है। संस्कृति = सम् + कृति अर्थात् "अच्छी प्रकार से सोच–समझ कर किए गए कार्य।"

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू विभिन्न विधियों, प्रविधियों, उपकरणों, रीति–रिवाजों तथा प्रथाओं को जन्म दिया है। ये सब पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। इन सबके योग को संस्कृति कहते हैं।

एडवर्ड टायलर का कथन है कि संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, कानून, प्रथा एवं अन्य किन्हीं भी आदतों एवं क्षमताओं का समावेश होता है, जिन्हें मानव ने समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त किया है।

डॉसन के अनुसार – "संस्कृति जीवन का एक सामान्य तरीका है, जिसमें मानव अपने प्राकृतिक वातारण एवं आर्थिक आवश्यकताओं के साथ समायोजन करता है।"

किसी देश की संस्कृति अपने को विचार, धर्म, दर्शन, काव्य, संगीत, कला आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है।

दुनियाँ में कितनी ही भाषाएँ क्यों ना हो जाएँ, परन्तु संगीत से उतम कोई भी भाषा नहीं हो सकती। यही एक ऐसी भाषा है, जिसे हर प्राणी समझ जाता है। केवल मनुष्य ही नहीं, अपितु जीव–जन्तु एवं पेड़–पौधे भी।

संगीत की परिभाषा एवं महत्व :

"लय और स्वर के संतुलित संबंध के माध्यम से अपनी भावनाओं को मोहक ढंग से प्रकट करने की क्रिया को 'संगीत' कहते है।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही संगीत हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व संगीतमय है। कलकल करती नदियाँ हो या फिर सन्तूर की तान छेड़ते झरने । मनुष्य को संगीत का मनोरम उपहार प्रकृति से ही प्राप्त है, अर्थात् संगीत प्राकृतिक नादजन्य कृर्जा है। संगीत के सात स्वरों का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से ही है।

'संगीत दर्पण' के रचनाकार पं॰ दामोदर के मतानुसार पशु–पक्षियों द्वारा सात स्वरों की उत्पत्ति मानी गई है। उनके अनुसार मोर से 'सा' स्वर, चातक से 'रे', बकरे से 'ग', कौए से 'म', कोयल से 'प', मेंढक से 'ध' तथा हाथी से 'नि' स्वर की उत्पति हुई ।

एक फारसी विद्वान के अनुसार पहाड़ों पर 'मुसीकार' नामक एक पक्षी की चोंच में बाँसुरी की भाँति सात सुराख होते हैं और इन्ही सात सुराखों से सात स्वर उत्पन्न हुए।

एक अन्य विद्वान के मतानुसार हजरत मूसा जब पहाड़ों पर घूम रहे थे, तो उसी समय आकाश से एक आवाज हुई कि 'या मूसा हकीकी तू अपना असा इस पत्थर पर मार!' (असा एक प्रकार का डंडा होता है, जो फकीर लोग अपने पास रखते है।) इस आवाज का अनुसरण कर जब हजरत मूसा ने अपना असा जोर से पत्थर पर मारा तो उस पत्थर के सात टुकड़े हो गए और प्रत्येक टुकड़े से पानी की धारा बहने लगी। इन्ही जलधाराओं की आवाज से हजरत मूसा ने सात स्वरों की रचना की

संगीत और प्रकृति दोनों ही जीवन मे पर्यावरणीय चेतना जगाने का कार्य करती है। संगीत मात्र एक संदेश संचार करने का जरिया ही नहीं बल्कि एक श्रोता के अंतःपटल पर गहराई तक किसी भी संदेश को बनाए रखने के लिए एक शक्तिशाली हथियार है।

प्रत्येक मनुष्य का जीवन प्रकृति के अकूत सौन्दर्य के साथ विचरण कर आत्म–आनन्दित होता है। मन और उससे जुड़ा मस्तिष्क जिस प्रकार हमारे भौगोलिक पर्यावरण को देखकर उस पर आसक्त होता है और शरीर को अच्छे स्वच्छ पर्यावरण का साथ मानव मन को सुख–शान्ति की ओर ले जाता है। हमारे भारतीय वाङ्मय में संगीत मनुष्य से नही अपितु परब्रह्म परमेश्वर ब्रह्मा जी से उत्पन्न माना गया है। भारतीय संगीत में विभिन्न राग–रागनियों का ध्यान पर्यावरण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसा सर्वविदित है कि एक अच्छी सोच, अच्छा विचार, अच्छा संगीत आदि सभी अच्छे पर्यावरण का निर्माण करते है। यहाँ पर्यावरण से तात्पर्य है – जल, वायु, आकाश, हरियाली, जंगल, नदियाँ, झीलें आदि है। संगीत इन सभी पर्यावरण के साधनों में बढ़ोतरी कैसे करता है, जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में कोशिकाएँ विकसित होती रहती है, तभी तक शरीर स्वस्थ रहता है। उसी प्रकार वृक्ष, हरियाली जंगल, नदियाँ, झीलें सुरक्षित रहेगी तो पर्यावरण भी सुरक्षित होगा ।

प्रकृति के जितने भी कार्य संचालित होते है, उनमें एक नियमबद्धता अर्थात लय होती है। नदियों का बहना, हवा का सांय–सांय चलना, सूर्य, चन्द्र और तारे सभी लयबद्ध होते है। मानव भी प्रकृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसलिए यह कतई आश्चर्यजनक नहीं है कि मनुष्य का झुकाव संगीत की ओर हो, क्योंकि 'संगीत भी क्रमबद्ध ध्वनियों तथा लय का ही समूह है।'

प्रकृति में सब कुछ समय चक्र के अधीन है। या ऐसा भी कह सकते है कि समय में बंधकर कार्यरत होना अनुशासन है। यही अनुशासन प्रकृति के चर–अचर सभी तत्वों में विद्यमान है, जैसे– सुबह होना सूर्य का आगमन तथा रात्रि के आगमन पर चाँद–सितारों का आकाश में सुशोभित होना । इसके अतिरिक्त फल–फूलों तथा पेड़–पौधो का खिलना और बढ़ना भी समय सीमा से चलता है। इसके साथ ही भिन्न–भिन्न प्रकार के मौसम तथा ऋतुएँ और तीज–त्यौहार अनुशासन में रहकर समयानुसार अपना समय व्यतीत करते है और सम्पूर्ण जगत इससे प्रभावित है। भारतीय संगीत भी सृष्टि में व्याप्त है। हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का निर्धारण भी प्रकृति के विविध रंगों के अनुरूप ही किया गया है। प्रभात बेला में गाए जाने वाले राग अलग है, संध्या बेला एवं रात्रि में गाए जाने वाले राग अलग है।

विभिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न रागों को गाने से उनका प्रभाव बढ़ जाता है, जैसे– बसंत या बहार राग बसंत ऋतु तथा मल्हार आदि राग वर्षा के मौसम में गाने–बजाने से अधिक प्रभावशाली होते है। ऐसी मान्यता है कि तानसेन जैसे सिद्धहस्त संगीतज्ञ अपनी गायकी से प्रकृति के नियमों को भी बदल देते थे, जैसे– मेघ मल्हार गाकर बारिश करा देना, बिना किसी अग्नि के दीपक जला देना आदि। ये चमत्कार संगीत और प्रकृति की साम्यता का ही परिणाम है।

भारतीय संस्कृति के अधिकतर त्योहार जैसे–मकर संक्रान्ति, बसंत पंचमी, वैसाखी, ओणम, नवरात्र, दीपावली, अन्नकूट, गोवर्धन पूजा, हरियाली तीज आदि प्रकृति संरक्षण का ही संदेश देते है। हिन्दू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर माना जा सकता है। भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधे, पुष्पों, पहाड़, झरने, पशु–पक्षियों, जंगली जानवर, नदियाँ, वन, मिट्टी, घाटियाँ यहाँ तक कि पत्थर भी पूजे जाते हैं और उनके प्रति स्नेह तथा सम्मान की भावना रखी जाती है। प्राचीन समय से ही भारत के वैज्ञानिक ऋषि–मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी जानकारी थी। वे जानते थे कि मनुष्य अपने क्षणिक लाभ के लिए कई मौको पर गंभीर भूल कर सकता है और अपना ही भारी नुकसान कर सकता है, इसलिए उन्होंने प्रकृति के साथ मानव के संबंध विकसित कर दिए। ताकि मनुष्य को पर्यावरण को क्षति पहुँचाने से रोका जा सके ।

भारतीय परम्पराओं ने सदैव ही किसी न किसी रूप में प्रकृति का संरक्षण किया है। भारतीय जीवन पद्धति 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त पर आधारित हैं। वैदिक वाङ्मयों में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और सम्वर्द्धन के निर्देश मिलते हैं। हमारे ऋषि–मुनि तथा पूर्वज जानते थे कि पृथ्वी का आधार जल और जंगल है, इसीलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्षों और जल को अति महत्वपूर्ण माना है।

भारतीय संस्कृति में पेड़ों की तुलना संतान से की गई है, तो नदियों को माँ की उपमा दी गई है। ग्रह–नक्षत्र, पहाड़ और वायु देवरूप माने गए हैं। हमारे ऋषि–मुनि भली–भाँति जानते थे कि पेड़ो में भी चेतना होती है, इसलिए वे वृक्षों को मनुष्य के समतुल्य मानते थे। हिन्दू दर्शन में एक वृक्ष की मनुष्य के दस पुत्रों से तुलना की गई है। वृक्षों की पूजा करने की परम्पराओं के कारण भारतीय स्वभाव से ही वृक्षों के संरक्षक हो जाते है।

हिन्दू संस्कृति मे सम्भवतः तुलसी और पीपल को देवता मानकर पूजने की परम्परा इसी कारण है क्योंकि तुलसी और पीपल का पेड़ अधिक मात्रा में ऑक्सीजन प्रदान करते है। इसीलिए गृहणियाँ धार्मिक परम्परावश आँगन में तुलसी का पौधा लगाती है।

तथा उसकी पूजा करती है। पीपल के पेड़ को काटना पाप माना जाता है।

हिन्दू धर्म के सभी देवी–देवता पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों से लेकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण का संदेश देते है। भगवान शिव पर बेलपत्र चढ़ाया जाता है तथा नन्दी बैल उनका वाहन है, तो इस कारण एक शिवभक्त को बेलपत्र के पेड़ एवं बैल की रक्षा करनी ही पड़ेगी। माँ सरस्वती को पीले फूल पसंद है तथा हंस उनका वाहन है। धन की देवी लक्ष्मी को कमल व गुलाब के फूल से प्रसन्न किया जाता है। श्री कृष्ण को गाय अत्यधिक प्रिय है। इस प्रकार सभी देवी–देवता किसी न किसी रूप में हमें प्रकृति के संरक्षण का संदेश प्रदान करते हैं।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा आदि नदियों का उल्लेख जल संरक्षण की ओर संकेत करते है। हिन्दू धर्म में अनेक अवसरों पर नदियों, तालाबों और सागरों की माँ के रूप में उपासना की जाती है।

भारतीय संस्कृति में जीव–जन्तुओं की भी देवरूप में पूजा–अर्चना की जाती है। मनुष्य तथा पशु परस्पर एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं। भारतीय संस्कृति में गाय, कुता, बिल्ली, चूहा, हाथी, शेर यहाँ तक कि विषधर नागराज की भी पूजा की जाती है। हिन्दू परिवारों में आज भी पहली रोटी गाय और आखिरी रोटी कुते के लिए निकाली जाती है। पितृपक्ष में कौओं को बकायदा आमंत्रित करके दाना–पानी खिलाया जाता है। नागपंचमी के दिन नागदेवता की पूजा की जाती है। निश्चित रूप से इन सभी मान्यताओं के पीछे जीव संरक्षण का संदेश है।

परम्परागत माध्यम या लोकमाध्यमों की जड़े ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में गहरी पैठ है। इनके माध्यम से न केवल ग्रामीण जन–जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है, बल्कि ये माध्यम पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरणीय चेतना के प्रसार में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य, नौटंकी, कठपुतली आदि लोक माध्यम के साधन है। ये माध्यम श्रोताओं से सीधा सम्पर्क बनाते है।

संगीत की सहजता, सरलता और उसकी अपारशक्ति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमारे यहाँ देवी–देवता भी बिना मुरली, डमरू, शंख, वीणा के पूरे नहीं समझे जाते है मानव की तो बात ही क्या । भारतीय संगीत प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप से प्रकृति से जुड़ा रहा है, इसीलिए भारतीय संगीत हमारी आत्मा को गहराई से झंकृत करता है।

पर्यावरण और उसके महत्व एवं संरक्षण के कामों में कलात्मक अभिव्यक्तियाँ बेहद सशक्त भूमिका निभाती है। इसीलिए पर्यावरण संरक्षण के लिए यदि जैविकी वानस्पतिकीय व वैज्ञानिक प्रयासों के साथ–साथ भारतीय संस्कृति और संगीत का सहारा लिया जाए तो वह उतम और बेहद सशक्त साधन होगा।

निष्कर्ष–

संस्कृति मनुष्य की अमूल्य निधि हैं। संस्कृति एक ऐसा पर्यावरण है, जिसमें रहकर व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी बनता है और प्राकृतिक पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता अर्जित करता है।

भारतीय परम्पराओं ने सदैव ही किसी न किसी रूप में प्रकृति का संरक्षण किया है। भारतीय जीवन पद्धति 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधे, पुष्प, पहाड़, झरने, पशु–पक्षी, जंगली जानवर, नदियाँ, वन, मिटटी, घाटियाँ यहाँ तक कि पत्थर भी पूजे जाते है। और उनके प्रति स्नेह तथा सम्मान की भावना रखी जाती है। प्राचीन समय से ही भारत के वैज्ञानिक ऋषि–मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी जानकारी थी। वे जानते थे कि मनुष्य अपने क्षणिक लाभ के लिए कई अवसरों पर गहरी भूल कर सकता है और अपना ही भारी नुकसान कर सकता है। इसलिए उन्होंने प्रकृति के साथ मानव के संबंध विकसित कर दिए । हिन्दू धर्म के सभी देवी–देवता पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों से लेकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण का संदेश देते है।

भारतीय संस्कृति में पेड़ों की तुलना संतान से की गई हैं, तो नदियों को माँ की उपमा दी गई है। भारतीय संस्कृति में जीव जन्तुओं की भी देवरूप में पूजा–अर्चना की जाती है।

किसी देश की संस्कृति अपने को विचार, धर्म, दर्शन, काव्य, संगीत कला आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है। दुनियाँ में कितनी ही भाषाएँ क्यों न हो जाए, परन्तु संगीत से उतम कोई भी भाषा नहीं हो सकती। यही एक ऐसी भाषा है, जिसे हर प्राणी समझ जाता है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण के लिए यदि जैविकी, वानस्पतिकीय व वैज्ञानिक प्रयासों के साथ–साथ भारतीय संस्कृति और संगीत का सहारा लिया जाए तो वह उतम और बेहद सशक्त साधन होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ॰ ए॰ के॰ मित्तल, भारतीय संस्कृति का इतिहास
2. नितिन सिंघानिया, भारतीय कला एवं संस्कृति
3. दामोदरकृत, संगीत दर्पण
4. भरत, भरतनाट्यशास्त्र
5. प्रो॰ स्वतन्त्र शर्मा, रस एवं संगीत
6. डॉ॰ राकुेश कुमार शर्मा, पर्यावरण प्रशासन एवं मानव परिस्थिति की
7. इरफान हबीब, मनुष्य और पर्यावरण

डॉ॰ संतोष कुमारी
अस्सिटेंट प्रोफेसर
संगीत वादन
एस॰ एन॰ आर॰ एल॰ जयराम
जयराम गर्ल्स कालेज,
लौहार माजरा

56 राजनीतिक व्यवस्था सिद्धांत : अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य

डॉ0 ममता वालिया

सारांश

ईस्टन ने व्यवस्था की शोध सम्बन्धी सृजनात्मक अवधारणा को 1953 में "The Political System" में वर्णन किया था। 1965 में "A frame work for political analysis and "A system Analysis of Political Life" में विस्तार से विवेचन किया। अन्तः अनुशासनात्मकता, अनौपचारिक प्रक्रियाओं का भी अध्ययन किया। डेविड ईस्टन – "राज व्यवस्था किसी भी समाज में अन्तः क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम से बाध्यकारी या आधिकारिक निर्णय लिए जाते हैं।" एस. पी. वर्मा – "व्यवस्था वस्तुओं या तत्वों का वह समूह है जिसमें परस्पर विशिष्ट संरचनात्मक सम्बन्ध होता है जो विशिष्ट पद्धति द्वारा अन्तः क्रिया करते रहते हैं।"

हॉल व फ्रेगन – "विभिन्न वस्तुओं का एक संकलन जिनके उद्देश्यों तथा गुणों में नजदीक का सम्बन्ध हो, उसे ही राजनीतिक व्यवस्था कहा जाता है।

प्रभुदत्त शर्मा – "न्यायपूर्ण व औचित्यपूर्ण शक्ति वह सामान्य धारा है जो राजनीतिक व्यवस्था के सम्पूर्ण कार्य से प्रभावित है और इसे एक विशिष्ट गुण या महत्ता प्रदान करती है।वाइजमैन ने राज व्यवस्था में चार बातें मानी –

(1) राजनीतिक संरचना

(2) राजनीतिक कार्य करने वाले कर्ताओं की भूमिका

(3) राजनीतिक कर्ताओं की अन्तः क्रियाएं

(4) राजनीतिक प्रक्रिया

विशेषताएँ –

– एकता और अखण्डता की विचारधारा का सूत्र।

– राजनीतिक व्यवस्थाओं की अन्तः क्रियाओं का अध्ययन।

– एक राष्ट्र की व्यवस्था का दूसरे शब्द की व्यवस्था से अन्तः क्रियात्मक अध्ययन और विभिन्न क्रियाओं का भी परस्पर अन्तः क्रियात्मक अध्ययन।

– राजनीतिक सजीवता व गतिशीलता का अध्ययन – समाज में मूल्य अवधारणा, निष्ठा, विश्वास आदि में बदलाव आ रहा है। वैसे ही राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यशैली, संरचना, शक्ति व प्रभाव में भी तेजी से परिवर्तन आ रहा है।

– राजनीतिक व्यवस्थाएँ कभी खत्म नहीं होती। यह अनेक स्त्रोतों के माध्यम से भी सदैव अपनी सजीवता और गतिशीलता बनाए रखने का प्रयास करती है।

ईस्टन के अनुसार, "राजनीतिक–व्यवस्था, सामान्य व्यवस्था की सीमाओं के पार, पर्यावरण से परस्पर, अन्तः क्रिया करने वाली संरचनाओं, प्रक्रिया तथा संस्थाओं का समूह है।"

10. व्यवस्था सम्बन्धी धारणा समन्वयात्मक व व्यापक है।

11. राजनीतिक व्यवस्था समाज व्यवस्था की उप–व्यवस्था है।

ईस्टन – "मैं समूहों और संगठनों की आन्तरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं को सह राजनीतिक व्यवस्थाएँ कहूंगा और राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को, समाज में समाहित राजनीतिक जीवन की सर्वाधिक समावेशी इकाई के लिए सुरक्षित रखूँगा।"

– राजनीतिक व्यवस्था एक खुली व्यवस्था है।

– खुलेपन के कारण ही राजनीतिक व्यवस्था अनेक अन्तः क्रियाएं करती हैं।

– समाजिक व्यवस्था राजनीतिक वातावरण की भूमिका का मुख्याधार है।

– राजनीतिक व्यवस्था ही समस्त प्रकार के कार्यों का संचालन करती है।

वाद–संवाद–प्रतिवाद

ईस्टन का निवेश–निर्गत विश्लेशण –

ईस्टन के व्यवस्था विश्लेशण की मूल इकाई अन्तःक्रिया है। वह व्यवस्था के सदस्यों के व्यवहार को जब से व्यवस्था के सदस्यों के नाते कार्य करते समय उत्पन्न होती है। व्यक्तियों की क्रिया से प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया से अनुक्रिया, पुनः क्रिया आदि आदि के क्रम को अन्तःक्रिया कहा जाता है।

अन्तः क्रियाओं के सेट से ईस्टन की चार महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं –

(क) व्यवस्था

(ख) पर्यावरण

(ग) अनुक्रिया

(घ) प्रतिसम्भरण

(क) राजनीतिक–व्यवस्था – ईस्टन

1) यह सम्पूर्ण समाज की उपव्यवस्था है।

2) यह समाज की आवश्यकता पूर्ति का माध्यम ही होते हैं।

3) राजनीतिक व्यवस्था के मूल आधार सामाजिक स्त्रोत ही होते हैं।

4) सम्पूर्ण राष्ट्रीय सरकारों को राजनीतिक व्यवस्था का नाम दिया जाता है।

(इसमें कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका, राजनीतिक दल, दबाव समूह, विरोधी दल, राज्य शासन प्रणाली आदि की राजनीतिक व्यवस्था में ही समायोजन किया जाता है।

5) राजनीतिक व्यवस्था क्षमतायुक्त होनी चाहिए।

अतएव विश्लेशण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उस राजनीतिक व्यवस्था के दबावों का सामना करने हेतु सततता या निष्पादन–क्षमता का निरन्तर मूल्यांकन किया जाए। यदि उसमें संकटों का सामना करने की क्षमता नहीं है तो वे मिट जाते हैं या उनका क्षय हो जाता है।

6) जो संकट व्यवस्था के समक्ष उत्पन्न हो उसके समाधान की क्षमता व्यवस्था में होना जरूरी है।

7) राजनीतिक व्यवस्था साधारण व असाधारण महत्त्व के कार्य सम्पन्न करती है।

8) राजनीतिक व्यवस्था में मांग–समर्थन–निर्णय नीतियाँ एक अनवरत प्रक्रिया चलती रहती है।

9) समाज के मूल्यों को सही तरह विनियोजित करने की व्यवस्था राजनीतिक व्यवस्था को करनी चाहिए।

(ख) पर्यावरण – डेविड ईस्टन के मॉडल के अन्तर्गत पर्यावरण से तात्पर्य है कि समाज और राजनीतिक व्यवस्था के बीच अनेक प्रकार की उप–व्यवस्थाएँ होती हैं। इनके बीच में होने वाली अन्तः क्रियाएँ जिनके माध्यम से राजनीतिक पर्यावरण एवम् परिवेश की उत्पत्ति होती है।

1) समाज व राजनीतिक व्यवस्था के बीच अनेकों उप–व्यवस्थाएँ होती हैं जिनके बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं से पर्यावरण की उत्पत्ति होती है।

2) सामाजिक पर्यावरण से राजनीतिक पर्यावरण की अवस्था तब आती है जब समाज में कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटती है।

3) राजनीतिक व्यवस्था के पर्यावरण में राजनीतिक संस्कृति व सामाधिकरण की प्रक्रिया भी निरन्तर चलती रहती है।

पर्यावरण में विभिन्न कारकों की भूमिका होती है जैसे –

(1) राजनीतिक दलों की भूमिका

(2) राजनीतिक संगठनों की भूमिका

(3) दबाव समूहों की भूमिका

(4) गैर राजनीतिक संघों की भूमिका

(5) सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में होने वाली घटनाएँ।

राजनीतिक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि मुक्त व्यवस्था होने के नाते वह पर्यावरण के प्रति अपने क्रिया करने की क्षमता रखे, विघ्नों का सामना करे, परिस्थितियों के प्रति अपने को अनुकूल बनाये।

(ग) अनुक्रिया –

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया करती है। वह अपने प्रति आने वाले संकटों, दबावों आदि का सामना करती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था पर पर्यावरण के द्वारा अनन्त प्रकार के प्रभाव, दबाव डाले जाते हैं। व्यवस्था इन दबावों, प्रभावों आदि का सामना करने के लिए अनेक प्रकार की अनुक्रिया करती है। विश्लेषण की सुविधा की दृष्टि से इसे निवेश या निर्गत कहा जाता है।

(A) निवेश – यह व्यवस्था की ओर अन्दर आने वाली सामग्री है। आदा या निवेश पर जनित सभी दबावों, प्रभावों, संकटों, मांगों, आंदोलनों आदि को कहते हैं। ये व्यवस्था को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित, परिवर्तित या संशोधित करते रहते हैं। व्यवस्था अपनी क्षमता के अनुसार उससे निपटने का प्रयास करती रहती है। व्यवस्था निवेश को प्रक्रमित करके निर्गतों में रूपान्तरित करती है। निवेश दो प्रकार के होते हैं –

(1) मांगे

(2) समर्थन

(1) मांगे – पर्यावरण या जनमानस द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में वह कार्य, दायित्व, विधि निर्माण में आशापूर्ति, प्रदर्शन आदि कराए जाते हैं। इन्हें मांगे कहा जाता है। ये प्रायः सामूहिक एवं सार्वजनिक वृत्ति की होती है।

– जनता अपने मूल्यों के अनुसार व्यवस्था के समक्ष मांगे प्रस्तुत करती है।

– मांगे उत्पन्न होने पर व्यवस्था प्राथमिकता के आधार पर मांगों को स्वीकार करती है।

– मांगे, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, एकता, अखण्डता सुरक्षा आदि के संदर्भ में भी हो सकती है।

–मांगे उत्पन्न होना राजनीतिक व्यवस्था के लिए एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

–कुछ मांगे गम्भीर, कुछ सामान्य, कुछ स्थाई या अस्थाई प्रकार की हो सकती हैं।

–राज. व्यवस्था में मांगों की पूर्ति होते ही पूरक मांगे सामने आती हैं।

(2) समर्थन – शासन व्यवस्था के प्रति समर्थन का अर्थ उसकी संवैधानिकता बनाए रखने में योगदान करना है। संवैधानिकता में व्यवस्था के लक्ष्यों, मूल्यों, नियमों, मानकों प्रत्याशाओं व सत्ता

संरचना को शामिल किया जाता है। ये समर्थन भौतिक रूप से कर चुकाने के रूप में, नियमों के आज्ञापालन के रूप में, मतदान आदि के सहभाग के रूप में या सार्वजनिक प्राधिकारियों के प्रति सम्मानभाव प्रदर्शित करने के रूप में हो सकता है।

– समर्थन का स्वरूप, शैली–प्रकट या गुप्त, विधेयात्मक या निशेधात्मक, विस्तृत या विशिश्ट हो सकती है।

–मांगों की उत्पत्ति के साथ ही किसी प्रकार का समर्थन अवश्य जुड़ा रहता है।

–समर्थन के कारण ही मांगों के मूल को स्वीकार भी किया जाता है।

–समर्थन गुप्त, मौन, विरोधी, स्वतंत्र या खुला आदि रूप में हो सकता है।

–समर्थन राजनीतिक व्यवस्था के आन्तरिक स्तर पर या बाहरी रूप में समाज के नाम संगठनों द्वारा भी हो सकता है।

– समर्थन देने के तीन उद्देश्य हो सकते हैं।

(क) राजनीतिक समुदाय द्वारा।

(ख) शासन पद्धति द्वारा।

(ग) सरकार द्वारा समर्थन।

– मांगे व समर्थन के बीच संतुलन होना चाहिए।

– सार्वजनिक महत्त्व की मांगों को व्यापक समर्थन मिलता है।

– समर्थन के माध्यम से शासक का औचित्य सिद्ध किया जाता है।

(B) निर्गत (Output)– व्यवस्था द्वारा रूपान्तरित निवेशों को निर्गत कहा जाता है। इन्हें 'मूल्यों का अधिकारिक आबंटन', बाध्यकारी निण्ज्ञय एवं क्रियाएँ अथवा व्यवस्था व पर्यावरण के मध्य आदान–प्रदान कहा जाता है।

– यह क्रियाओं की वह धारा है जो अधिक की ओर से व्यवस्था या पर्यावरण में जाती है।

– निर्गत निवेशों का रूपान्तरित रूप या परिणाम होता है।

– जब राज. व्यवस्था के समझ मांग समर्थन के साथ शासन व्यवस्था के समक्ष आती है तो व्यवस्था उनके अनुसार बाध्य होकर कानून, नीति व निर्णय बनाती है। यही आउटपुट कार्य है। राजनीतिक व्यवस्था समाज के अधिकतम हित की पूर्ति का प्रयत्न करती है।

निर्गत के दो प्रकार –

(1) निर्णय

(2) नीतियाँ

(1) निर्णय – ईस्टन – "अधिकारियों के निर्णय और आदेश राजनीतिक व्यवस्था निर्गत है, जो व्यवस्था के सदस्यों के व्यवहार से उत्पन्न परिणामों को पर्यावरण के लिए एक संगठित रूप देने का कार्य करते हैं।"

– निर्णय प्राथमिकताओं के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं।

– निर्णय में मंत्रिमण्डल, दबाव समूह, विरोधी दल व विशेषज्ञों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका होती है।

– निर्णय समाज की अन्तः क्रियाओं द्वारा किया गया वह कार्य है जो शासन व्यवस्था द्वारा ही परिवर्तन किया जाता है।

– निर्णय के कई स्तर हो सकते हैं।

– निर्णय से समस्त राजनीतिक व्यवस्थाएं व समाज प्रभावित होता है।

– निर्णय साधारण–असाधारण समस्याओं के समाधान का प्रतीक होता है।

(2)नीतियाँ –नीतियाँ ही राजनीतिक व्यवस्था के लोकप्रिय व पतन का कारण होती हैं। इस तरह नीतियां जन भावनाओं के अनुकूल होनी चाहिएं। यही समस्त प्रकार के परिवर्तन का प्रतीक है।

– राजनीतिक व्यवस्था नीतियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष क्षमता को प्रकट करती है।

– नीतियों के कारण व नीतियों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का मूल्यांकन किया जाता है।

– नीतियां जन–भावना के अनुकूल होनी चाहिए।

– नीतियां उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिए।

– नीतियों का निर्माण संतुलन के आधार पर होना चाहिए।

4-प्रतिसम्भरण / पुनः निवेशन (Feedback)– यह पर्यावरण तथा निर्गतों के विषय में सूचनाओं को व्यवस्था संचारण या सम्प्रेशण करने की प्रक्रिया है। वैसे तो सूचना निवेश बन कर आती है किन्तु जब रूपान्तरित निवेश या निर्गतों के विषय में सूचनाएँ आती हैं तो सूचना पत्र पुनः संचारण या निवेशों की पुनः निवेशन लौट आना हो जाता है। ऐसा करने से राजनीतिक व्यवस्था को अपने व्यवहार या रूपान्तरण में अनुकूल और सुधार करने का अवसर मिल जाता है। वह आपको और भी अधिक अच्छी तरीके से बनाए रख सकती है। अन्यथा प्रतिसम्भरण नहीं होने देती। जैसा कि इन्दिरा सरकार (1977) तथा ईरान के शाह (1979) तथा सोवियत रूस (1991) या यूगोस्लाविया (1996) के साथ हुआ।

– प्रतिसम्भरण सूचनाओं की प्राप्ति, प्रतिक्रिया और परिणाम की निरन्तरता का नाम है। इसे निर्गत–सूचना–पुनः निवेशन पुनः सूचना–पुनः निर्गतन प्रक्रिया कहा जा सकता है।

प्रतिसम्भरण के दो प्रकार –

(1) निशेधात्मक –

(2) लक्ष्य परिवर्तनकारी प्रतिसम्भरण

आलोचना

1. मानव व्यवहार के मूर्त, प्रतिमानों पर विचार करने के बजाय अमूर्त एवं विश्लेशणात्मक व्यवहार पर विचार करने के कारण ईस्टन नियंत्रण, शक्ति और प्रभाव जैसे तथ्यों को छोड़ बैठा है।

2. उसमें मतदान, नेतृत्व आदि से सम्बन्धित जन–राजनीति का कोई स्थान नहीं है।

3. स्पष्टतः उसमें व्यक्तियों, व्यक्ति–समूहों, व्यक्ति कार्यों आदि का अत्यन्त गौण स्थान है।

4. अपने अमूर्तीकरण के कारण उपागम औपचारिकता, और बुद्धिवाद के खतरों से अभिभूत है।

मीहान – "तार्किक दृष्टि से संदेहास्पद, अवधारणात्मक आधार पर धुंधली तथा अनुभाविका के बिन्दु से लगभग अनुपयोगी है।";। बतपजपब of Eastern's systems Analysis)

क्रैर्स – "ईस्टन का विश्लेषण आनुभाविक आधार पर न होने के कारण तथ्य शून्य खोखला है।

5. अत्यन्त सूक्ष्म, संदिग्ध, उलझी हुई तथा निराशा संकल्पना का प्रणेता।

6. राजनीतिक व्यवस्था के कार्यों के बारे में एकमत का अभाव।

7. राजनीतिक व्यवस्था का वैज्ञानिक विश्लेशण संभव नहीं।

8. राजनीतिक व्यवस्था के स्थूल तथा सूक्ष्म व्यवस्था के बीच भेद करने में असफल।

9. मूल्यों पर अत्याधिक बल।

10. राजनीति की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

11. राजनीति व्यवस्था को अन्य व्यवस्थाओं से स्वतन्त्र मान लेना सही नहीं।

12.अनुदारवादी और असहमतिवादी सिद्धांत या परिवर्तन और क्रांतियों का विश्लेशण नहीं।

13.ईस्टन व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में नहीं देख पाया है।

हैनी ए रेण्ड (Six Exercises in political system) & "हम प्रत्येक वस्तु को व्यक्ति की प्रक्रिया सम्बन्ध में देखने और सोचने का प्रयत्न करते हैं जबकि हमें व्यक्तियों में कोई रुचि नहीं।"

ईस्टन के व्यवस्था सिद्धांत का योगदान –

1. इस उपागम को व्यवहारवादी क्रांति का सैद्धान्तिक शिशु माना जा सकता है।
2. व्यवस्थाओं की प्रक्रियाओं की गतिशीलता का विश्लेषण करने में सक्षम। सी.बी. गेना – "ईस्टन का राजनीतिक विष्लेशण व्यवस्था के सातव्य के साथ–साथ व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन और उसकी गतिशीलता को भी ध्यान में रखता है।"
3. नई दिशाओं का संकेत।
4. तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण में योगदान प्रदान करता है।
5. वैचारिक संरचना और निश्चित संकल्पन पर आधारित है।
6. ईस्टन केवल व्यवस्था के भीतर ही नहीं झांकता बल्कि टनय व्यवस्थाओं, उपव्यवस्थाओं तथा सम्पूर्ण पर्यावरण की ओर भी उसकी दृष्टि ळें अतः राजनीतिक व्यवस्था सिद्धान्त, डेविड ईस्टन द्वारा प्रस्तुत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, उपयोगी अवधारणा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- गाबा ओ.पी.–राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
- मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2003
- वर्मा प्रो. एस.एल.–उच्चतर आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त
- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2002
- गेना सी.बी.–तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं
- विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2003
- जौहरी जे.सी.– आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त,
- स्टर्लिंग पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006

डॉ0 ममता वालिया
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
राजनीतिक विज्ञान विभाग
कालिज

57

ओमप्रकाश गुप्त का कृतित्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. कमलेश दूहन

सारांश

डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ऐसे गिने–चुने कवियों में हैं, जिन्होंने तथाकथित अहिन्दी भाषी प्रदेश में रहते हुए भी आधुनिक काव्यों में अपना स्थान बनाया है। डॉ. गुप्त का जन्म वर्तमान पाकिस्तान के नगर स्यालकोट में 1 मार्च, 1939 ई. को हुआ इनके पिता स्वर्गीय श्री मनीराम वहाँ डाक विभाग के सुपरिटेण्डेंट के कार्यालय में हेडक्लर्क थे। इनकी माता का नाम श्रीमती दुर्गा देवी था।

वस्तुतः उनका परिवार जम्मू कश्मीर राज्य के जम्मू प्रांत की तहसील अखनूर के गांव हमीरपुर सिदधड का निवासी था। इनके दादा का नाम श्री मोहनलाल था। परिवार अपनी सज्जनता के लिये प्रसिद्ध था। श्री मनीराम जम्मू के मुख्य डाकघर के पोस्टमास्टर के पद से रिटायर हुए। विभाग में यह अपनी कर्मनिष्ठता तथा ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध थे । सन् 1947 में भारत–पाक विभाजन के साथ श्री मनीराम सपरीवार जम्मू पहुंचे तथा परिवार को अखनूर छोड़कर नौकरी के लिए फीरोजपुर चले गए। पाकिस्तानी आक्रमण के फलस्वरूप ओमप्रकाश जी के दादा भी अखनूर आ गए। बालक ओमप्रकाश ने पहली बार दादा के सान्निध्य एवं स्नेह का अनुभव किया । पारिवारिक कारणों से दादा अपने भतीजे के पास दिल्ली चले गए और पिता की नियुक्ति जम्मू में हो गई। पितामह से लगभग दो वर्ष के सान्निध्य ने इनके कोमल बाल हृदय पर अमिट छाप छोड़ी।

सन् 1954 में मैट्रिक की परीक्षा उतीर्ण करके यह कालेज में प्रविष्ट हुए, किन्तु नियमित शिक्षा जारी न रख सके और शिक्षा विभाग में क्लर्क बन गए। सन् 1960 में हायर सेकेण्डरी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। इसी बीच इन्होंने प्रभाकर तथा बी.ए. की परीक्षाएं पास कर ली थीं। इनकी निष्ठा तथा कार्यक्षमता से प्रभावित होकर प्रिंसीपल महोदय ने मात्र इक्कीस वर्ष के इस युवक कोउच्चतम ग्यारहवीं कक्षा का प्रभारी अध्यापक फार्म मास्टर नियुक्त कर दिया । इन्होंने अपने पिता के सत्यनिष्ठा तथा कर्तव्य निष्ठा के गुणों को अपने चरित्र का अंग बनाया। सन् 1963 में हिन्दी में एम.ए. तथा सन् 1964 में केन्द्रीय, हिन्दी संस्थान, आगरा से षहिन्दी शिक्षण निष्णात की उपाधियाँ प्राप्त कीं। सन् 1970 में जम्मू विश्वविद्यालय से परिनिष्ठित हिन्दी तथा डोगरी के पर– प्रत्ययों का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर उन्हें पीएचडी की उपाधि प्राप्त हुई।

इसी बीच सन् 1962 में इनका विवाह सुश्री सुभाष गुप्ता जी से हुआ जो अपनी शालीनता तथा सोम्यता के कारण गुप्त जी की साधना में सहायक हुई। गुप्त जी के दो पत्र है सर्वश्री मृत्युंजय तथा दिग्विजय। बड़े डॉ. पुत्र मृत्युंजय एम. डी . हैं तथा छोटे दिग्विजय कृषि के विषय में एम एस सी हैं। दोनों अपने क्षेत्रों में सरकारी सेवा में कार्यरत है। इस प्रकार उनका पारिवारिक जीवन सफल एवं सुखद है।

अखनूर, कठूआ तथा जम्मू के हायर सैकेण्डरी स्कूलों में कार्यरत रहने के पश्चात् सन् 1971 में डॉ गुप्त गवर्नमेंट कालेज, क्ठुआ में हिन्दी प्रवक्ता नियुक्त हुए और इसी वर्ष जम्मू विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में आ गए । सन् 1984 में रीडर तथा 1995 में प्रोफेसर बने । संप्रति इसी विभाग में आचार्य तथा अध्यक्ष हैं ।

डॉ. ओमप्रकाश गुप्त को प्रेम पैतृक दाय के रूप में हुआ। इनके पिता जी आध्यात्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। उपनिषद् गीता पुराण के नियमित अध्येयता थे तो आर्य समाज के सत्संग में भी भाग लेते थे इसी प्रभाव से बालक ओमप्रकाश ने विद्या के उपवास और शिया का अनुभव प्राप्त किया तो शीघ्र आर्य समाज से प्रभावित होकर अपना चिन्तन बदल लिया। धर्म को कभी संस्था और डाग्मा के रूप में इन्होंने स्वीकार नहीं किया। नियमित रूप से न आर्य समाज मन्दिर जाते हैं, न प्रतिमा–पूजन द्वारा ईश्वर की प्राप्ति में विश्वास करते हैं व्यापक अध्ययन तथा स्वतंत्र दृष्टि ने इन्हें अनेक पूर्वाग्रहों से मुक्त रखा है ।

कृतित्व

स्कूल के दिनों से ही डॉ गुप्त एक प्रभावशाली वक्ता तथा कवि के रूप में माने जाने लगे थे । इनकी प्रतिभा बहुमुखी है । नाटक, कहानी, कविता के साथ–साथ इन्होंने बाल – साहित्य की भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। भाषा–विज्ञान तथा लोक–साहित्य के भी यह अधिकारी विद्वान हैं । इनकी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या लगभग चालीस है । इनमें निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

क. रचनात्मक साहित्य

काव्य : जम्मू–क्षेत्र में कविता आन्दोलन के प्रवर्तन का श्रेय डॉ. गुप्त को दिया जाता है।

सागर के तीर 1967ः— लेखक का यह काव्य—संकलन प्रथम प्रकाशित कृति भी है। इसमें एक ओर यथार्थ से जूझने की ललक स्पष्ट है तो दूसरी ओर आयु के अनुरूप रोमांटिकता भी है ।

सेतुओं की खोज 1978 :—इस काव्य—संग्रह में कवि का चिन्तन अधिक गहन है तथा शैली पर पकड़ भी सुदृढ़ हुई है। इस कविता संकलन से कवि अपनी विशिष्ट पहचान बनाने लगता है इस पुस्तक की कविताओं पर दैनिक क्रियूनष 19—3—1979में प्रकाशित प्रहलाद सूर्य की समीक्षात्मक टिप्पणी इस प्रकार है ष्नयी कविता में पुरातन आस्थाओं, मूल्यों को बदलते परिवेश की कसौटी पर कसते हुए कवि ने आधुनिकता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। लेकिन कोव कुण्ठा, ऊब और निराशा की शब्दावली से स्वतंत्र नहीं हो पाया। यथा————

ष्पत्तियों पर वही धूल
मटमैले, शोर बच्चों के—से
खिले फूल
अधखिले गुलाब
जैसे हर सवाल का
गलत जवाब ।

भाग्य की सूली पर लटकती लाशें नामक कविता में भी अनास्था हीझलकती है————————

ष्जोर लगाकर सभी लोगों ने,
चाँद को पकड़ लिया है,
लेकिन दलदल पैरों को
नहीं छोड़ता है।
हम अधर में लटके रह गए हैं ।

ष्सव्यसाची कौन हो तुमष एक सशक्त कविता है । इसमे परम्परा केकर्णधार पर तीखा व्यंग्य है :

तुम्हें ढोते मर गया मेरा सुनहला इतिहास,
कल ही कहा था तुमने हमारे ही दम से है
दीपकों में आग, फूलों में बाँस, क्रान्ति में तूफान
और ————————————————————————————————————
और हर लाल कोपल में है अपना ही रंग,
अपनी ही उमंग ।
मरे हुए चमगादड के डैनी से सजे बिजूखे भी नहीं हो तुम,
कौन हो तुम ?
सत्य के दावेदार, कौन हो तुम ?

दुर्भाग्य कविता में क्रांति का आह्वान सरल व स्पष्ट शब्दोंपरिलक्षित होता है——

ष्मल्लाह सभी बैठे—बैठे थक चुके हैं,
डांड—
फोटो उतरवाने के लिए
कंधो पे रख चुके हैं,
लेकिन अब यूं लगता है——
इसे धकेल कर
धार में फेंक देने वाला हजूम
बहुत पास है,
यह हमारा दुर्भाग्य है
कि हमारा
एक बहुत बूढा इतिहास है ।

सेतुओं की खोज कविता में कवि ने संग्रह कासार दे दिया है जोआस्था, नवनिर्माण और पुरातन से नूतन की ओर जाते मूल्यों की ओर संकेत करता है ——

ष्आओ। सेतु बांधे ।
पक्के इस्पात के न सही,
रस्सियों के ही सहारे आर—पार जा सके।

लेखक को इस पुस्तक पर जम्मू कश्मीर की साहित्य अकादमी ने श्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार से सम्मानित किया है।

सुनो मार्कण्डेय 1983ः ष्सुनो मार्कण्डेय मुक्त छंद में लिखी तेरह लम्बी कविताओं का संकलन है ।पुस्तक के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा 8 ऋतुचक्र सितम्बर, 19848 लिखते हैं कि कविता में प्रतीकों की जटिल गुंजलक पर उन्हें, ऐतराज है, किन्तु प्रतीकों के अश्वों पर आरूढ़ विचार यात्रा उनकी विवशता भी है। और इसीलिये भूमिका में उनकी यह स्वीकारोक्ति अपनी जगह सही है कि अन्तर्विरोध उनके व्यक्तित्व और परिवेश में ही विद्यमान है ।

लम्बी कविता की संरचना में फंतासी की उपस्थिति उनकी स्फीति कोसंवारने के लिये अनिवार्य है। प्रमुख तत्व है दृष्टि, जो समसामयिकता के परिपेक्ष्य में कवि के अनुभव को खराद पर चढ़कर चमकीला और नुकीला बनाती है ।

कवि चिन्तित है दीवारों से उतरते काले सायों से कृ
पलकों के स्पर्श से मन्त्रपूत करके
जो सूरजमुखी हवाओं के हवाले किए थे
ये साये उन क्यारियों पर उतर आते हैं ।

कवि को ऐसे में उस दुनिया की याद आती है, जहाँ शब्दों की लाशें सफेद ओलों की तरह टपकती हैं, किन्तु साथ ही सुनता है यह दूर गरजते तूफान की आवाज़ और पहचान लेता है कि दूर के जंगल में कहीं बेशुमार पलाश उग चुके हैं। यही अहसास उनकी संघर्षोन्मुखी चेतना का सम्बल बन जाता है।

शब्द
अपने भरपूर रंगों के साथ चमके
और बोले————————
हर जंगली घोडे की अयाल हम थाम लेंगे
भरपूर अंधेरे के बावजूद
हम अपना लक्ष्य पहचान लेंगे ।

सावन की एक रात संग्रह में संकलित कुन्ती और कर्म कविता महाभारत के प्रसंग पर आधारित एक आत्मसंघर्षपरक मिथकीय रचना है, किन्तु इसमें कहीं–कहीं सामाजिक सत्य सहज उद्घाटित हो उठते हैं, जैसे ——

रिश्तों की चक्की में
मानव पिस जाता है ।

इस त्रासदी के बावजूद प्रस्तुत पंक्तिय आधुनिक चिन्तन को नया आयाम देती हैं। कुन्ती और कर्ण में कर्ण की व्यथा को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तोलने का प्रयास है । हिन्दुस्तान, बैसाख कृष्ण 14 संवत् 2041 ।

व्यस्त स्वार्थो के अजगर की कुंडली में जकडी आजादी की छटपटाहट को महसूस करते हुए कवि रोशनी के चकत्ते पर अजदहा क्यों कविता में कहता है ————

और उन लोगों ने
मेरे देखते ही देखते
रोश्नी के समन्दर को
एक चकते में बदलकर एक अजदहा उस पर बिठा दिया था ।

उसे शिकायत है तो सिर्फ यही कि झन से गिरने वाली पत्ती का दर्द लेखक की कलम से क्यों नहीं बहता, अजदहे के चंगुल में फंसे, रोशनी के चकत्तेकी चीख कोई क्यों नहीं सुनता ?

सुनो मार्कण्डेय संग्रह की सर्वश्रेष्ठ रचना है बैताल की आखिरी कथा महसूस करते इस कविता को हिन्दी की श्रेष्ठ सम्बी कविताओं में परिगणित किया जासकता है। ष्बेताल की आखिरी कथा में स्वतन्त्रता के संघर्ष की यात्रा को एक से अधिक प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया गया है जिनमें आस्था के स्वरों की झंकार सर्वत्र व्याप्त है ।

डॉ. आनन्दनारायण शर्मा "प्रकर अगस्त 86–14के शब्दों में ष्इस कविता में बेताल – विक्रमादित्य के मिथक के माध्यम से देश की विशाल निर्माण– के विज्ञापित महत्व और आम आदमी की नियत को उद्घाटित करने का प्रयास है कवि ने वर्तमान जीवन की असंगतियों को निकट से देखा है और विभिन्न प्रतीकों व उन्हें व्यक्त करना चाहा है। कहीं उसे रोशनी के चकत्ते पर अजदहा नजर आता है तो कहीं वह स्वयं को काठगोदाम में घिरा पाता है, जहाँ——

पलक की हर थिरकन
काठ हो
गयी है
होठों से फिसलती हर लय
लाश बनकर गिर पडी है ।

काठगोदाम में आतंकित मैं संग्रह की अन्तिम कविता सुनो मार्कण्डेय में पुनः एक पौराणिक प्रतीक के माध्यम से आधुनिक मनुष्य में नयी चेतना और आत्मविश्वास भरने का प्रयास है———

सुनो मार्कण्डेय
किनारे पर खड़ा
मैं तुम्हें पुकारता हूँ
आओ
बाँहों से बाँहे बाँधे
सर्पीले प्रश्नों की आँखों में
एक बार
फिर विश्वास के साथ झाँके । पृ. 59

सुनो मार्कण्डेय संग्रह पर डॉ. अनन्दनारायण शर्मा की टिप्पणी है ष्कुल मिलाकर सुनो मार्कण्डेय की कवितायें कम की जागरुकता, तीव्र यथार्थबोध और सृजन–सामर्थ्य का विश्वास दिलाती हैं और आस्था उत्पन्न करती हैं आने वाली सुबह के प्रति । इनके बिम्बों में नवीनता है और भायोद्बोधन की क्षमता।

अन्त में डॉ. रामविलास शर्मा शब्दों में कहा जा सकता है कि इन कविताओं में पुराने मूल्यों की जांच–पड़ताल तथा नये मूल्यों की खोज के प्रयास के साथ ही मिथकों की आधुनिक भाषा–बोध से संप्राक्त मी विद्यमान है । ऋतु चक्र, सितम्बर 1984 ।

यह पुस्तक भी 1985 ई. में जम्मू कश्मीर राजकीय साहित्य अकादमी जय श्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार के लिये चुनी जा चुकी है ।

अरुणोदय 1992–इस महाकाव्य में डॉगुप्त शकुन्तला आख्यान को केन्द्र में आधुनिक समाज के विभिन्न प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट करते चलते हैं । दस सर्गों में विभाजित ष्अरुणोदय" में मानवीय प्रतीकों का प्रयोग करता हुआ। इस आख्यान को नये भाव–बोध से मंडित करता है । नायक को अरुण का प्रतीक और विधाता को चरखा कातने वाली बुढ़िया मानकर यह कथा – काव्य अनेक अभिप्राय तथा आद्य बिम्बों को लेकर चला है । डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ के शब्दों में ष्वर्तमान साहित्य चिन्तन के क्षेत्र में आयातित पाश्चात्य संस्कृति का घालमेल करके उसे ही सिरमौर दिखाने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है और जो भारतीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों की चर्चा के सन्दर्भ आते हैं, उनकी उपेक्षा वर्तमान में उपेश समझा जाता है। यहीं इस महाकाव्य ष्अरुणोदयष का कवि डॉ. गुप्त सांस्कृतिक

मूल्यों से राहत किसी भी आधुनिकता को अस्वीकार करने का जो दुःस्साहस दिखातेहै वह श्लाघनीय ही नहीं, वरेण्य भी समझा जाना चाहिए ।

डॉ. गुप्त का यह महाकाव्य भी जम्मू कश्मीर राज्य अकादमी द्वारापुरस्कृत– अभिनन्दित होचुका है।

फिर मुझे पहचान 1993रू–काव्य–संग्रह में ष्सेतुओं की खोजष के बाद कीछोटी कवितायें संग्रहीत है ।इस में कवि की कमिक प्रगति का दस्तावेज है यह काव्य–संग्रह।

युद्ध और शान्ति 1967ः–यह हमारे कवि के एकाकी नाटको का एकमात्रसंकलन है ।

लहर–लहर हर नैया नाचे 1974ः– यह लेखक की कहानियों का संकलन है। संकलन के पश्चात् यद्यपि डॉ. गुप्त कहानियाँ लिखते रहे हैं और वे विविध संकलनों में छपी भी, किन्तु कोई स्वतंत्र कहानी–संकलन इस पुस्तक के पश्चात नहीं आया । वस्तुतः लेखक ने धीरे–धीरे कविता को ही अपने सृजन की पहचान बना लिया है ।

कविता जो साक्षी है 1983 रू दस आलोचनात्मक लेखों के इस संग्रह में मुक्तिबोध, सर्वेश्वर, लीलाधर जगूडी तथा बलदेव वंशी की कविताओं को विशेष रूप से दृष्टि में रखा गया है । विचार कविता तथा कविता में आक्रोश जैसे विषयों पर भी गंभीर चर्चा की गई है। किसी भी विषय का स्पर्श करते समय लेखक कवि और काव्य से संबंधित समग्र पृष्ठभूमि का आकलन करता है, चिन्तन करता है और तब अपनी बात बेलाग ढंग से कहता है । डॉ. इन्द्रनाथ मदान इस पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखते हैं ष्डॉ. गुप्त ने इसेछोटी–सी किताब में आज की कविता का सर्वेक्षण किया है, और इसके मुख्य स्वरों को पकड़ने की कोशिश की है।

डॉ.गुप्त ने मुक्तिबोध की कविता में अचेतन को खोजने का प्रयास किया है जो इनकी पैनी दृष्टि की साक्षी देता है। मुक्तिबोध की कविता का विश्लेष्ण गहन और गंभीर है जबकि विचार कविता का विवेचन सतही है । आलोचक ने मुक्तिबोध की दो कविताओं अंधेरे में और ब्रह्म राक्षस की पहचान और परख गहरे स्तर पर की है। इनका कहना है कि इनकी काव्य यात्रा अंधकार में से, अंधकार से जूझते हुए, प्रकाश तक पहुंचने की यात्रा है ।ष यह काफी हद तक सही है।

सर्वेश्वर की कविता का विवेचन चार बिम्बों के आधार पर किया है—– बजना, सजना, तजना और मंजना । यह आलोचक की मौलिक दृष्टि का परिणाम है।

लेखक की आलोचना से संबंधित प्रकर कार्तिक 2042 में प्रकाशित डॉ. मंगोरानी की टिप्पणी द्रष्ट्य है – सर्वेश्वर की कविताओं में बिम्ब प्रकार एक–के– बाद एक नवीन सन्दर्भ को स्पष्ट करते हैं। इसका विवेचन लेखक ने कुशलतापूर्वककिया है।

आत्मदान में मिथकीय प्रयोग का विश्लेषण किया गया है। और लगता है कि डॉ गुप्त ने मिथकशास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से किया है ।

बलदेव वंशी की कृति आत्मदान पर डॉ. मंगोरानी की यह टिप्पणी मिथकीय प्रयोग सन्दर्भ आत्मदान का नामक लेख में मिथ का दृष्ट्य है जन्म क्यों होता है? इस विषय पर विचार करते हुए डॉ गुप्त ने तीन प्रमुख मान्यताओं को स्पष्ट किया है। मिथ, जैसा कि लेखक ने सही कहा है, लोकमानस की वस्तु है, न कि मुनि मानस या शिष्ट मानस की । वलदेव वंशी काव्य आत्मदान अहिल्या आस्थान पर आधारित है। अहिल्या मिथ को लेकर कवि ने आज के जीवन के यथार्थ को अधिक गहराई से परखने का प्रयास किया है । बलदेव वंशी के इस काव्य पर विचार करने से पहले डॉ गुप्त ने नरेन्द्र कोहली की कृति रामकथा, डॉ चन्द्रशेखर के नाटक शिवधनुष तथा श्री शरण बिहारी गोस्वामी पाषाणीष में इस मिथ का प्रयोग किस प्रकार किया गया है, इस पर विचार किया है इन तीनों कृतियों के परिक्रय में बलदेव वंशी के योगदान को आंकते हुए डॉ. गुप्त ने यह प्रकट किया है कि आत्मदान में मिथ का विकास न होकर उसका प्रत्यावर्तन हुआ है ... ।

लीलाधर जगूडी की कविता में चिड़िया के केन्द्रीय विश्व को आंका गया है जो घरेलू आदमी की नियति को उजागर करता है। डॉ. मंगोरानी के शब्दों में ष्लीलाधर जगूडी की कविता के केन्द्र बिन्दु को स्पष्ट करते हुए लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि जगूडी के कवि का लक्ष्य हर मामूली चिडिया को अपनी उडान शक्ति से परिचित कराना है, स्वाभिमानी बनाना है। जगूडी आज के जीवन के सन्दर्भ उनकी कविता के उपादान बने हैं । परन्तु इसे कवि की कारयित्री प्रतिभा ने इस तरीके से इस्तेमाल किया है कि निराशा का स्वर आशा और विश्वास के स्वर मेंबदल जाता है और कवि कह उठता है। ––

काले अन्धेरे के आखिरी छोर पर
बुढे दरख्तों के हरे अन्धेरे से निकलकर
तमाम घरों से निर्वासित चिडियाएँ
एक ठोस मगर अपूर्ण दिन रचने वाली हैं।

जगूडी का यह विश्वास ही उसकी कविता की अमोध शक्ति है ।

आज की कविता में आक्रोश के स्वर को उजागर करने के लिए राजीव सक्सेना, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय (तीनो कायस्थ) की कविता को आधार बनाया गया है और इस स्वर की भिन्नताओं पर विचार किया गया है। ष्शशिशेखरष स्थानीय कवि हैं, जिनकी कविता

का परिचय बाहर वालों के लिये उपयोगी है । जम्मू और कश्मीर की कविता को रेखांकित किये बिना यह पुस्तक अधूरी रह जाती है। कुमार विकल की कविता को गुरिल्ला कविता का नाम देकर इससे निजात पा लेना कठिन है इनकी कविता की विकास यात्रा रोमांटिक दौर से निकलकर (पारो देवदास) अस्तित्ववादी बोध को उजागर करती हुई, गुरिल्ला चेतना से गुजरकर रोमांटिक बोध को फिर से आजमाने लगी है। कुल मिलाकर डॉ गुप्त की समकालीन कविता पर गहरी पकड़ है। 'शीराजा हिन्दी' में प्रकाशनार्थ समीक्षा।

डॉ. मंगोरानी के शब्दों में........ डॉ. ओमप्रकाश गुप्त ने आज की कविता को सही परिप्रेक्ष्य में देखने का जो प्रयास इस पुस्तक के माध्यम से किया, वह सराहनीय है।

डॉ. गुप्त ने इस पुस्तक के प्राक्कथन में कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाए हैं जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है। उनका कहना है–देश की राजधानी में बैठा कोई भी लेखक राष्ट्रीय स्तर का लेखक बन जाता है और साहित्यिक केन्द्रों से दूर रहने वाला लेखक स्थानीय बनकर रह जाता है जिन प्रदेशों की शरारतन अहिन्दीभाषी कह दिया जाता वहाँ के हिन्दी लेखकों की स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। राजनीति साहित्य में घुस आई है और इस राजनीतिक अखाड़े में स्थनीय भाषाओं के घटिया लेखक राष्ट्रीय स्तर के इश्तिहारों मेंनाम पा जाते हैं ।

हमारे विचार से बात यहीं तक सीमित नहीं है, उससे भी कहीं अधिक गहरी है। राजनीति के साथ–साथ अधीनति ने भी साहित्य में विशेषकर हिन्दी साहित्य में, प्रवेश कर समस्या को अत्याधिक जटिल बना दिया है और साहित्य तथा भाषा दोनों के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह बना दिया है।

लेखक ने स्वयं को गुटों से दूर बैठे एक खामोश लेखक के रूप में माना है इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं है वह यह भी महसूस करता है कि गुटहीन व्यक्ति स्वयं को आज के समान में बेहद असहाय स्थिति में पाता है । यह बात उनकी इन पंक्तियों से ध्वनित होती है ––अस्वीकृति और विद्रोह के साथ–साथ एक तीसरा कोण विचार का है यही कारण है कि इन तीनों नामों से चलने वाले आंदोलनों के अन्तर्गत प्रायः उन्हीं कवियों के नाम चर्चित होते हैं । हमारे मन से विचार के स्थान पर प्रचार होना चाहिए। तभी यह स्थिति बनी है । विचार कर, किसी सही निष्कर्ष पर पहुंच सकें, ऐसे लेखकों का हिन्दी में घोर अभाव है ।

इस पुस्तक के लिये लेखक को भारत सरकार के मानव संसाधन मन्त्रालय ने पुरस्कृत किया है।

एक संस्कृतिक अनुष्ठानः हिन्दी कविता 1992

इस आलोचना कृति के आमुख में कवि लिखता है कि ष्साहित्य सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है––––– साहित्य यदि विचार–––––––––प्रवाह की कलात्मक अभिव्यक्ति है तो आलोचना उस प्रवाह का बृहत् सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में इतिहास प्रस्तुत करती है ।

इस ग्रंथ के सम्बन्ध में डॉ. वीरेंद्र सिंह के विचार अवलोकनीय हैं कवि, आलोचक और कथाकार ओमप्रकाश गुप्त जहाँ एक ओर कवि के रूप में जाने जाते हैं, वही एक आलोचक के रूप में भी उन्हें जाना गया है और यही कारण है कि ष्कविता जो साक्षी हैष की विवेचनात्मक पद्धति का विकास हम उनके नवप्रकाशित आलोचना ग्रन्थ ष्एक सांस्कृतिक अनुष्ठान आधुनिक हिन्दी कविताष में पाते हैंसाहित्य में सांस्कृतिक आशयों का एक रचनात्मक सन्दर्भ प्राप्त होता है और यह पुस्तक इस सन्दर्भ को आधुनिक कविता द्वारा प्रस्तुत करना चाहती है। लेखक के अनुसार ष्साहित्य यदि विचार प्रवाह की कलात्मक अभिव्यक्ति है, तो आलोचना इस प्रवाह का –– वृहद् सांस्कृतिक परिक्ष्य में इतिहास प्रस्तुत करती है।ष (आमुख) यह एक व्यापक सन्दर्भ है और लेखक अपने निबन्धों द्वारा इस परिप्रेक्ष्य को ष्अर्थष प्रदान करने का यत्न करता है ।

1960–65 के बाद मूल्यों का विघटन, द्वंद्वात्मकता, जनसंस्कृति के प्रति रुझान परिवर्तन की अदम्य आकांक्षा, सामाजिक चिन्ताओं के प्रति अधिक आग्रह तथा विषानुभूति (रसानुभूति से अलग) की भिन्न कोटियाँ–– ये सभी तत्व एक संघर्षशील सांस्कृतिक चेतना को गति एवं अर्थ देते हैं फिर भी, जितने भी निबन्ध इस संग्रह में हैं, उनमें सांस्कृतिक बोध के भिन्न आयाम अवश्य मिलते हैं जो आगे के काल खण्डों के कवियों को प्रभावित अवश्य करते हैं। ऐसे ही कुछ सन्दर्भों का यहां उल्लेख है ।

राष्ट्रकवि से सम्बन्धित दो निबन्ध हैं जिनमें उनके प्रबन्ध काव्यों के आधार पर परिवार की पुरी बहु तथा दूसरे में राजनीतिक सन्दर्भों को विवेचित किया गया है। पहले निबन्ध में परिवार के महत्व को दिखाया गया है तथा रोमांस और कर्तव्य में बंधी बहू के बिम्ब को एक सांस्कृतिक अर्थकता दी गयी है।

दूसरा निबन्ध राजनीतिक सन्दर्भ को प्रस्तुत करता है जिसमें राजा के ईश्वरीय रूप का खंडन, व्यक्ति का समष्टि में लय तथा किसान– चित्रण का रूप आदि पर विचार किया है यहाँ लेखक यह मत नहीं है कि आदर्शीकरण की अधिकता के कारण गुप्त जी किसान जैसे विषय का सतही वर्णन करके रह गये हैं । क्रान्ति व विद्रोह का स्वर अत्यन्त क्षीण है । इसका कारण यह है कि गुप्त जी का काव्य अधिकतर मिथकीय प्रसंगों पर आधारित है, और वहाँ पर जो भी दो अनुगूंज है, वह परोक्ष है––– मारक नहीं है लेखक ने इस तथ्य की उपेक्षा की है। गुप्ता ज़ी के काव्य में राजनीति प्रच्छन्न है, वे

सीधे व्यवस्था से टकराते नहीं हैं ।

इस संग्रह में दो निबंध ऐसे है जो दर्शन, युद्ध, कर्म, भावना ओर जनसाधारण के प्रत्ययों से टकराते हैं ये दोनों निबन्ध इस संग्रह के उत्कृष्ट निबंध कहे जाने चाहियें, जहाँ लेखक विशद् सन्दर्भों को उठाता है। "धरती पर दिव्य जीवन का साधक——— सत्यकाम निबन्ध में अरविंद के दिव्य जीवन (द लाइफ डिवाइन) का विवेचन करते हुए लेखक ने पंत के वय सत्यकाम का विश्लेषण कर सत्यकाम के सत्य को मानव की परिधि के अन्दर माना है । वह किसी परलोक का सत्य नहीं है । यहाँ पर देवों और मानवों के अन्तर को भावना के स्तर पर अलगाया गया है। (पृ— 31—328) । एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिसे लेखक देता है, वह है कामायनी, उर्वशी से सत्यकाम की तुलना। कामायनी मनु को सारस्वत प्रदेश में ले जाती है, उर्वशी पुरुरवा को गंधमादन पर्वत पर ले जाती है जबकि पंत सत्यकाम को निर्जन से उत्तरदायित्वों के लोक में लौटाते हैं। (पृ. 34)

सरा निबन्ध एक वृहद ष्एक वृहद सांस्कृतिक अनुष्ठान की साहित्यिक अभिव्यक्ति है जिसमें कुरुक्षेत्र, उर्वशी, अंधायुग, एक प्रश्न मृत्यु (विनय) जैसे खण्डकाव्यों के आधार पर युद्ध दर्शन और भावना — कर्म के द्वंद्व को एक सांस्कृतिक फलक प्रदान किया गया है। युद्ध एक आदिम प्रवृत्ति है जो विकास के साथ है । कुरुक्षेत्र में दिनकर ने युद्ध को समाज सापेक्ष माना है जो कल्याण का सूचक है।कुरुक्षेत्र में भावना और विवेक के द्वंद्व को प्रेम और कर्म के द्वंद्व के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है । इस द्वंद्व को कुरुक्षेत्र भीष्म, उर्वशी तथा ष्युग में लेखक ने विस्तार से दिखाया है, जो मनोवैज्ञानिक इन्द्र को स्पष्ट करता है यह सारा प्रसंग विवेचना की दृष्टि से प्रभावशाली है और हमें सोचने को विवश करता है आलोचना का एक धर्म यह भी है कि वह हमें सोचने को विवश करे।

सर्वेश्वर की कविता का लेखक ने जो विवेचन किया है, वह भी सार्थक है क्योंकि लेखक कुमानी नदी तथा उनके काव्य—संग्रहों के आधार पर आपात्काल के कवि कर्म को दृढ़ता से शान्त खड़े रहकर मुक्ति का उपाय खोजने वाला कवि अंत में, आकर अपनी ही उर्जा के सामने नतशिर हो जाता है, अनुत्तरित हो जाता है।लेखक का अंत में यह मत कि इन अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर पाना आज के हिन्दी कवि का उत्तरदायित्व है (पृष्ठ 47) यही कारण है कि लेखक अपने निबन्धों में सांस्कृतिक प्रश्नों से जूझता है और भावी संभावना के प्रति जागरूक है ।

समग्र रूप से यह कहना उचित होगा कि लेखक की यह पुस्तक आलोचना के उस रूप को प्रकट करती है जो आलोचना को मात्र भाव तक सीमित न कर उसे विचार संवेदना के भिन्न आयामों तक ले जाती है ।

हिन्दी डोगरी परसर्ग (1966)तथा हिन्दी डोगरी पराप्रत्यय (1974)

प्रथम पुस्तक केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में हिन्दी—शिक्षण निष्णात— उपाधि के लिए लघु शोध प्रबन्ध है तो दूसरी जम्मू विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के लिये स्वीकृत बोध प्रबन्ध प्रथम पुस्तक कुछ संशोधनों के साथ दूसरे शोध—प्रबन्ध का भाग बन गई है तुलनात्मक भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस पुस्तक का अपना महत्व है। हिन्दी होगी तुलनात्मक व्याकरण के क्षेत्र में ये दोनों पुस्तकें प्रथम शोध कार्य हैं। मंत्री डोरी रिसर्च इंस्टीट्यूट को लिखे डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा के 10—10—66 के पत्र से उद्धृत ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं ——इस कृति को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। मुझे 25 वर्ष पहले स्वप्न में भी असंभव प्रतीत होता कि जम्मू के लोग भी ऐसी कृतियाँ किसी दिन लिखकर दिखाएंगे । इस पुस्तक की प्रमुख सेवा अभिप्रायों की पेटर्नीकरण है । उदाहरणार्थ सम्बंध प्रत्ययों द्वारा द्योतित अभियान अभय गुण गुणी आदि के आधार पर (पृष्ठ88 से लेकर अनेक आकृतियाँ दिलाई गई हैं।

चण्डीगढ़ की शब्द— ब्रह्म परिषद् ने इस सामग्री का उपयोग डोगरी के एक धातु पाठ—गण पाठ के लिए प्रारम्भ कर दिया है ।

इसके अतिरिक्त लेखक का दृष्टिकोण बडा विशाल है । पृष्ठ 10 में यह मार्के का वचन बधाई के योग्य है रू ष्तथाकथित कारक चिह्न या विभक्ति तक ही इन तत्वों की इतिश्री नहीं हो जाती ।ष कारकवाद मुहावरे और रूढि प्रयोग की सरहद पर प्रतिष्ठित है । भाषा का प्रतिपादन तब ही सजीव और प्रभावशाली हो सकता है जब इन सम्बन्धित विशेषताओं को भी जतलाया जाए।

थिरके पत्ता पिपल का 1974ः—इस पुस्तक में लेखक ने चुने हुए डोगरी लोक— गीतों का हिन्दी में छन्दोबद्ध अनुवाद किया है । डोगरी लोकगीत (1979) : इस पुस्तक में कुछ नये गीतों का संकलन कियागया है तथा बहुआयामीय परिचयात्मक लेख भी संकलित है ।

सुगम बाल गीत (1983) तथा परियों की रानी (1984)नामक पुस्तकों पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने लेखक को हिन्दी बाल— साहित्य में योगदान के लिये पुरस्कृत किया है।

सूरज का रथ में अपेक्षाकृत लम्बे बाल—गीत संग्रहीत हैं ——————अपेक्षाकृत बड़े बच्चों के लिए

समग्र रूप से डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में कह सकते हैं कि जम्मू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. ओमप्रकाश गुप्त एक हरफनमौला रचनाकार हैं जिन्होंने कविता के साथ ही साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी लाठी घुमायी है जैसे आलोचना, भाषा विज्ञान

और व्याकरण, लोक साहित्य, एकांकी, कहानी तथा बालसाहित्य । ४

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. गुप्त डोगरी भाषी होते हुए भी हिन्दी के प्रति अटूट आस्था रखते हैं हिन्दी–संसार को उनसे बहुत अपेक्षाएँ हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ.ओम प्रकाश गुप्तःअरुणोदयस्तारवीयन पब्लीकेशन्स गाँधी नगर, दिल्ली – 31
2. गुलाबराय काव्य के रूप, प्रतिभा प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, 1947
3. नगेन्द्र, काव्य में उदात्त तत्व, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, दिल्ली संस्करण, 1958
4. नगेन्द्र एवं सावित्री सिन्हा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1972
5. सत्यदेव चौधरी एवं शान्ति स्वरूप गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1978

डॉ0 कमलेश दूहन

असोसिएट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय,

हिसार (हरियाणा)

58

नागार्जुनः एक जनकवि

डॉ.कीर्ति खत्री

सारांश

नागार्जुन जी एक ऐसे साहित्यकार के रूप में उभरे हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, आर्थिक विशमता, राजनैतिक स्वाथ र्परता,रूढ़िवादिता आदिज्वलंत मुदद्ों को अपने साहित्य काविशय बनाया।जनता को केंद्र में रखकर अपना सम्पूर्ण साहित्य रचा।देश–प्रेम, सामाजिक समता, आर्थिक समता आदि को स्थापित करने के लिए जन–जनको उठ खड़े होने का संदेश दिया।मजदूर, किसान, दलित सभी वर्गों को उनका हक दिलाने के लिए पुरजोर आवाज उठाई समाज में सकारात्मक परिर्वतन लाने के लिए नवयुवकों को प्रेरणा देकर समाजको एक नयी दिशा देने के लिए अग्रसर किया।वास्तव में उन्होंने जनकवि के पद को सुशोभित किया।किसी की परवाह किये बगैर जनता का साथ हर परिस्थिति में दिया तथा उन्हें प्रेरणा भी दी और मार्ग दर्शन भी किया।

हिंदी के प्रगतिवादी कवि नागार्जुन का जब साहित्य के क्षेत्र में आर्विभाव हुआ, उस समय भारत अंग्रेजों के अधीनथा।भारतीय जनता शोशित व उत्पीड़ित थी।देशमें स्वतंत्रता आंदोलन की गूंज सुनाई पड़ रही थी।जनता गुलामी की बेड़ियोंतोड़ने के लिए खड़ीहो चुकी थी।विदेशों में भी पूंजीवादी व्यवस्था धीरे–धीरे समाप्त होने लगी थी तथा नागार्जुन जी के व्यक्त्वि को इनसभी परिस्थितियों ने प्रभावित किया।

नागार्जुन जी ने अपने साहित्य में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन का यथार्थ चित्रण कियाहै। इनके साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव निराला जी व राहुल सांकृत्यायन कापड़ा। इनके साहित्य मेंनिरालाजी के समानवही सहजता, व्यंग्य, आक्रोश नजर आताहै। शोषण के विरोध, विद्रोहीभावना, जन–जीवन की आशा, आकांक्षाएं, शोषितों के प्रति सहानुभूति, अन्याय–अत्याचारकाविरोध आदि सभी बातें नागार्जुन जी के साहित्य में मिलती हैं।पीड़ित मानव के स्वर को बुलंद करके नागार्जुन जी ने कवि के कर्तव्य काभली–भांति निर्वाह किया है।समाज में रहते हुए ये देख पा रहे थे कि भारत देश की स्थिति क्या हो गयी है।आजादी के बाद भी ये समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई थी।किसान अनेक समस्याओं सेलड़ रहा था, मजदूर के परिवार को भर पेट खाना भी नहीं मिल पार रहा था, तो कहीं अकाल की स्थिति थी।उन्होंने कहा है :–

'कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी, कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तकलगी, भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूल्हों की भी हालात रही शिकस्त।'

वहीं दूसरी तरफ उनकी दृष्टि समाज के उच्चवर्ग, पूंजीपति वर्ग पर भी थी, जिन पर देश की इस स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था।वे अपनी दिनचर्या उसी प्रकार भोग–विलास मेंबितारहेथे

:जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं।
अन्दर–अन्दर विकटक साई बाहर खद्दरधारी हैं।'

कवि नागार्जुन जी ने साधारण जन के लिए अपना समस्त साहित्य रचा।देश की स्थिति के लिए जागरूक वकर्तव्य निष्ठनागार्जुन ने अपनी कविताआ में शोषितों के संघर्ष चित्रित किया।नेताओं की स्वार्थ परता, उनकी कथनी–करनी के अंतर पर उन्होंने अपनीकविता ओंद्वारा कुठाराघात कियाता ेकभीदेशमेंव्याप्त असमानता पर आक्रोश व्यक्त किया।नागार्जुन जीवन की सम्पूर्णता के कवि थे।इनकी कविताएँ अपने समय के परिदृष्य का जीवंत दस्तावेज हैं।उन्होंने अपनी कविताओं का धरातल यथार्थ को ही बनाया, जिसे आम आदमी जीताहै और जो ज्यादा महत्वपूर्ण व स्थिर भी है।इनकी प्रकृति प्रेम संबंधी कविताएं भी उसी तरह भारतीय जन चेतना को साथ लेकर चलती हैं जिस तरह सामाजिक कविताएं लेकर चलती है–

'खेतहमारेभूमिहमारीसारादेशहमाराहै।
इसीलिए तोहम को इसका चप्पाचप्पा प्यारा है।'

कवि नागार्जुन जनता के कवि हैं।उन्होंने जनता के संघर्ष को अपने जीवन का संघर्ष बना लिया।जनता की भावनाओं को मूर्त करने का प्रयास किया, इसी कारण इनकी कविताएँ जन–मन में गहरे उतरने में कामयाब रहीहैं।देश के स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारतीयों को राम राज्य का सपना तो दिखाया गया पर भारतीयों का यह सपना, सपना ही रह गया। उनके हाथ केवल निराशा लगी।नागार्जुन ने इस दिशा को समझा व इस पर

आक्रोश भी व्यक्त किया–

'रामराज में अब की रावण नंगा हो करना चा है।

सूरत शक्ल वही हैं भैया बदला केवल ढांचा है।'

नागार्जुन ने आर्थिक समानता को भी समाज में स्थापित करने के बार ेमें सोचा।दूसरी ओर भ्रष्टाचार, राजनेताओं की छलवाली राजनीति का भी अपने साहित्य में साक्षात्कार किया है :

'नयातरी का अपनाया है राधे ने इस साल

बैलों वाले पोस्टर साटे, चमक उठी दी वाल।'

समाज में व्याप्त ढोंग, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, गलत मान्यताओं का पुरजोर विरोध अपनी कविताओं के द्वारा किया है–

'कितना खून पिया है, जाती नहीं खुमारी,

सुर्ख और लंबी है मईया जीभ तुम्हारी।'

राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अस्थिरता, दल–बदल, राजनेताओं की स्वार्थ परता आदि जीवंत विषयों को अपनेकाव्य में उकेरा हैं।उन्होंने तत्कालीन मिली–जुली सरकार की विफलता को चित्रित करते हुए लिखा–

'खिचड़ी विप्लव देखा हमने

भोगा हमने क्रांति विलास

अबभी खत्म नहीं होगा क्या

पूर्ण क्रांति का भ्रान्ति विलास।'

नागार्जुन में देश–प्रेम भी कूट–कूटकर भरा था जिसकी अभिव्यक्ति काव्य द्वारा हुई हैं।चीन के भारत पर आक्रमण के समय उनका कवि हृदय अपने देश–प्रेम को इस प्रकार व्यक्त करता है :

'आज तो मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा

पुत्र हूँ भारत माता

और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी हूँ महज

प्राणों से भीप्यारेहैं मुझे अपनेलोग

प्राणों से भी प्यारी हैं मुझे अपनी भूमि।'

जहाँ एक तरफ'मंत्र'कविता में राजनीतिक दलोंव राजनेताओं की वीभत्स राजनीतिक दलों व राजनेताओं की वीभत्स राजनीतिका चित्रण हैं, वहीं दूसरी तरफ'कर दोवमन'में उन्होंने अर्थिक विशमता पर प्रकाश डालाहै।'हजिजन गाथा'कविता में उन्होंने दलितों परहोने वाले अत्याचार को चित्रित किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से लेकर अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक बाबा ने लोगों में शोषण का विरोध करने, अपने अधिकारों के लिए लड़ने, गलत परम्पराओं–मान्यताओं को समाज से निकालकर बाहर करने का साहस भरने का प्रयास किया है।सताधारी दल, राजनेताओं के खिलाफ खड़ा होना, अपन`साहित्य में परम्परा से हटकर यथार्थ कोलाना यही विशेषता है नागार्जुन की ।इन सभी बातों के कारण ही इन्हें जन कवि का खिताब दिया जाता है।इन्होंने हमेशा जनता के साथ दिया, सत्य का साथ दिया, तभी तो जनता ने भी इन्हें सर–आखों पर रखा है।इनका साहित्य समाज सापेक्ष व जीवन वादी भाव भूमि पर आधारित है।इनका साहित्य आत्म संघर्ष की जगह खुले संघर्ष के पक्ष में है। ये अपने पूरे जीवन जनता से जुड़े रहे।जनता के लिए लिखतेरहे। ये सच्चे अर्थों में जनकवि हैं।जनता के दुःख–दर्द, उनकी संवेदनाओं के कवि हैं।अपने कवि कर्तव्य का निर्वाह करते हुए इन्होंने कहा भी है–

जनता मुझसे पूछ रही हैं क्या बतलाउँ

जन कवि हूँ, मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाउँ।'

डॉ. कीर्ति खत्री

सहायक प्राध्यापिका हिंदी

शहीद दलबीर सिंह राजकीय महाविद्यालय,

खरखोदा (सोनीपत) पिन कोड 131001

59

आधुनिक नारी 'मल्लिका' के जीवन में चुनौतियाँ और संघर्ष (मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'मल्लिका' के संदर्भ में)

डॉ. विवेक शंकर, पूजा शर्मा

सारांश

विकासशील युग में जब हम किसी स्त्री का नाम प्रेरणास्रोत के रूप में लेते है तब बारम्बार यह याद आता है कि किसी भी क्षेत्र विशेष में प्रथम महिला का जिक्र आते ही सर गर्व से ऊंचा तो उठ जाता है परंतु तब हम यह क्यों भूल जाते है कि उस क्षेत्र विशेष में वह प्रथम महिला है, तो बाकी महिलाओं की दशा व दिशा कैसी है ?या प्रकृति की तरह विश्व के विकास में योगदान दे चुकी महिलाओं का नाम इतिहास में कहाँ छिपा है?यह प्रश्न अपने आप में बेचौन करने वाला है जिसे मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी समर्थ रचनाकार ने समझा और अपनी लेखनी द्वारा हिंदी साहित्य जगत को उपन्यास विधा से परिचित कराने वाली व हिंदी का प्रथम उपन्यास लिखकर अपनी बौद्धिकता का परिचय देने वाली भारतेंदु हरिश्चंद की प्रेमिका **'मल्लिका'** के जीवन संघर्ष को विषय बनाकर जीवनी परक उपन्यास का सृजन किया।

भारतीय प्राचीन परंपरा व वेदों, उपनिषदों में कई बौद्धिक व स्वाभिमानी स्त्री पात्रों का वर्णन मिलता हैं परंतु उनकी संख्या अपवाद स्वरूप या समुन्द्र में बून्द बराबर ही जान पड़ती हैं, जिसका प्रमुख कारण स्त्रियों को ज्ञान व शिक्षा के क्षेत्र से दूर रखा जाना था। महान ऋषि वचक्नु की पुत्री गार्गी जो अपने पिता से शिक्षार्थ हुई उसने महाज्ञानी ऋषि याज्ञवल्क्य से बराबर शास्त्रार्थ किया। हमारे इतिहास में ऐसे अनगिन उदहारण व्याप्त हैं जिसने मनुवादी, स्त्री विरोधी संकीर्णता को मुंह तोड़ जवाब देकर इतिहास रचा परंतु जाने कब इतिहास में स्त्री को हर उस बौद्धिक क्षेत्र से दूर रखने के कड़े नियम व मापदंड स्थापित कर भारतीय समाज व संस्कृति के सम्मुख स्त्री जाति को कमजोर व अबला की छवि में कैद कर दिया गया। रही सही कसर उन पितृसत्तात्मक, ब्राह्मणवादी इतिहासकारों ने पूरी कर दी जिन्हें स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व ही पुरुषों के समांतर कंधे से कंधा मिलाकर सशस्त्र विद्रोह करती स्त्री दृष्टिगोचर न हो सकी इसलिए देश की आजादी में प्राण न्यौछावर करती स्त्रियों का इतिहास उनके संपूर्ण अस्तित्व, हिस्सेदारी के मुताबिक अधलिखित ही लिखा गया।

ईलीना सेन के मतानुसार– ''महिलाएं सभी प्रकार की राजनीतिक कार्यवाइयों धरने, घेराव, पिकेटिन आदि में शामिल रही।... चिपको आंदोलन, मुंबई का गिरणी कपड़ा मिलों के कामगार आंदोलन, केरल के मछुआरों का आंदोलन, नशाखोरी विरोधी आंदोलन, बिहार का बोधगया आंदोलन, असम आंदोलन से सम्बंधित अखबारों की रिपार्ट तथा फोटोग्राफों से पता चलता है कि प्रदर्शन और बैठकों में बड़ी संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। पर वह सांगठनिक अनुभव कभी भी पर्याप्त रूप से अभिलिखित नही है।''

80 के दशक के उपरांत ही महिला आंदोलनकारी अपने हकों के खिलाफ चल रही इन स्त्री विरोधी नीतियों को भांपने लगी। तबसे प्रारम्भ हुआ यह नारीवादी आंदोलन वर्तमान में भी अपनी दिशा व दशा के प्रति प्रगतिशील रवैया बरत रहा हैं।

समकालीन प्रख्यात कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ जो हिंदी–साहित्य जगत का सुप्रसिद्ध व जाना माना नाम है, भी इतिहास के पन्नों से उस जीती जागती नारी के जीवन अस्तित्व व संघर्षों से पाठकों का साक्षात्कार **'मल्लिका' उपन्यास** के माध्यम से कराती है, जो इतिहास में मौजूद थी परंतु हिंदी साहित्य में उनके जीवन के समांतर उनके रचनात्मक कृत्य को भी साहित्य इतिहासकारों ने भुला दिया।

उपन्यास की भूमिका में लेखिका कहती हैं। ''जिसने हिंदी जगत को बांग्ला उपन्यास से परिचित करवाया, साहित्य के इतिहास में जिसका नाम तक शामिल न हो सका उसके जीवन की विडंबना और प्रेम पर एक औपन्यासिक वितान रचा है मैंने।''

मनीषा कुलश्रेष्ठ ने आधुनिक हिंदी के जनक कहे जाने वाले साहित्यकार की प्रेमिका को आधार बनाकर आधुनिक चित्तवेता व स्वाभिमानी नारी **'मल्लिका'** के जीवन अस्तित्व को इस जीवनी–परक उपन्यास के माध्यम से बड़ी ही बारीकी व भावों की सजीवता के साथ रूपायित किया हैं।

'मल्लिका' जो बालपन से ही दुख सहने की आदी हो गयी थी। मां की मृत्यु, बहन की उपेक्षिता से उसका शांत व सरल मन क्षित– विक्षित हो चुका था। आठ वर्ष की आयु में विवाह व चौदह वर्ष की अल्पायु में वैधव्य प्राप्त कर **'मल्लिका'** का विशुद्ध चित्त समझौते की और कभी नही झुका। नवजागरण युग की इस स्त्री का जीवन उन सभी स्त्रियों के लिए अप्रतिम उदहारण हैं जो जीवन में मिले कसैले अनुभवों की अंधकारमय छाया में स्वयं को स्वाहा नहीं होने देना चाहती। वह जीवन में विश्वास रखती है। **'मल्लिका'** के समक्ष भी वहीं भारतीय समाज था, वहीं सांस्कृतिक परम्पराएं, वहीं रूढ़ियाँ एवं वहीं पितृसत्तात्मक मान्यताएं। परन्तु

बालपन से ही रिश्ते के भाई बंकिमचंद्र की साहित्यिक कृतियों का **'मल्लिका'** के जीवन अस्तित्त्व पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जीवन में कितना कुछ खोने के उपरांत अपनी प्रखर साहित्यिक प्रतिभा से आधुनिक हिंदी के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र का ध्यान न केवल अपनी और आकृष्ट किया अपितु उपन्यास विधा से अपरिचित हिंदी साहित्य जगत को भारतेंदु हरिश्चंद्र के माध्यम से परिचित भी कराया।

'मल्लिका' का जीवन संघर्ष जितना साधारण प्रतीत होता हैं वास्तव में उससे कहीं अधिक असाधारण है। स्त्रीं जाति को लेकर भारत जैसे पारम्परिक व सांस्कृतिक मान्यताओं वाले देश ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में लगभग समान दोयम दर्जे का नजरियां विद्यमान रहा हैं। यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने स्त्री अधिकारों व स्त्री अस्मिता मूलक विचारों को लेखकीय अभिव्यक्ति व आंदोलनों का रूप देकर जन–सामान्य तक पहुचाने का जो महत्त्वपूर्ण बीड़ा उठाया वह यूरोप के जरिए बंगाल, महाराष्ट्र होते हुए धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में नवजागरण युग का मुख्य विषय बनता चला गया, जो बरसों पुरानी अतीत की मजबूत जड़ों में समाए होने के कारण आज भी अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में विधमान तो न हो सका परन्तु विश्व की आधी–आबादी अर्थात (स्त्री), स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण आज अपने अधिकारों के प्रति सजग व सचेत जरूर हो पाया हैं।

'क्रांतिकारी युग' के समय को आधार लेकर लिखा **'मल्लिका'** का चरित्र दुख, संत्रास व अबला स्त्री का चित्र नही अपितु जीवन की प्रत्येक छोटी–बड़ी खुशियों से वंचित , भौतिक सुख–सुविधाओं से अभावग्रस्त परन्तु बौद्धिक, नित आशायमान एवं स्वाभिमानी नारी **'मल्लिका'** का चित्त है। जो नवजागरण के प्रारम्भ में स्वतन्त्रचित्त आधुनिक नारी की जीवन– गाथा का प्रतिरूप जान पड़ती हैं। **'मल्लिका'** का बीमार पिता चारों और निराशा के वातावरण से ग्रस्त अपनी बाल–विधवा पुत्री का विवाह मजबूरीवश एक व्रद्ध से कराने का प्रस्ताव स्वीकार करता है परन्तु **'मल्लिका'** का स्त्री मन समाज के इस दरिद्र बहकावे को कतई बर्दाश्त नही करता।

उपन्यास से– '' **'मल्लिका'** चीख पड़ी ... भागों यहां से, बाबू ! मेरे बाबू ऐसा कभी नही कर सकते।''

अपनत्व के अभाव और नव जीवन की आस **'मल्लिका'** को काशी के गलियारों तक पहुचाँ देती हैं। जहाँ भारतेंदु के मकान से सटा हुआ मकान अब **'मल्लिका'** का आसरा बनता हैं।

पिता के मृत्यु शोक से **'मल्लिका'** का मन अभी उभरा भी न था, उधर पिता की वसीयत में **'मल्लिका'** के नाम अधिक धन लिख दिए जाने के कारण बड़ी बहन शेफालिका द्वारा **'मल्लिका'** को दिए तंज के बाद **'मल्लिका'** को गहरी पीढ़ा पहुँचती है और वह चुपचाप अपने हिस्से की वसीयत का कुछ भाग बड़ी बहन के हवाले छोड़ जीवम–यापन लायक धन ले काशी जा बसती है।

उपन्यास सेः– ''अपने हिस्से का बगीचा, शेफालिका को सौंप, मां के गहने और नकद पूँजी लेकर वह काशी लौट आई थी।''

समाज **'मल्लिका'** जैसी बाल– विधवा को चाहे जिस कुदृष्टि से देखे या उसके प्रति कृपा दृष्टि बनाएं रखे, परन्तु उपन्यास की नायिका **'मल्लिका'** जीवन जीने को उमंग और जीवन के संत्रास व विडम्बना को जीवन का एक हिस्सा मानती हैं वह मानती है जैसे अच्छा समय स्थिर नही रहता उसी प्रकार बुरा समय भी मनुष्य के जीवन में चिरंन्त तक कहाँ टिक पाता है?

''ज्यूँ से मिलकर लगा कि अब मैं एक नए अस्तित्व की खोज कर, अलग और स्वतंत्र जीवन चाहती हूँ। मैं किसी मृत की अस्थियों संग बह आएं फूल की तरह गंगा की लहरों पर यहां–वहां तिरते रहना नही चाहती थी। अध्ययन कर मैं राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और चन्द्र भैया द्वारा बरगलाई हुई स्त्री बन गई थी। जिसे पूर्ण विश्वास था उसके कहे में कि ''विधवा को सामान्य जीवन जीने का अधिकार हैं।''

'मल्लिका' का जीवन संघर्ष अभी कहाँ समाप्त हुआ था, उस स्वतंत्रचित्त स्त्री को प्रेम हुआ भी तो हिंदी साहित्य जगत के महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र से! दुर्भाग्य से भारतेंदु पहले से ही विवाहित थे। गौरतलब हैं कि उपन्यास में लेखिका साफ तौर पर स्पष्ट करती चलती हैं कि **'मल्लिका'** का यह एकनिष्ठ प्रेम भारतेंदु की दयादृष्टि की स्वीकृति न होकर **'मल्लिका'** के जीवन का भावनात्मक आश्रय अवश्य बनता हैं परंतु **'मल्लिका'** इसे भौतिक सुख–सुविधाओं का आगमन कतई नही बनने देना चाहती। प्रेम के कोमल क्षणों में भारतेंदु द्वारा दिए भौतिक सुख सुविधाओं के प्रस्ताव के प्रतिउत्तर में **'मल्लिका'** कहती है–

''ऐश्वर्य! मुझ सी अल्पाहारी, साधारण वस्त्रों में रहने वाली को भला क्या ऐश्वर्य चाहिए। धन सम्पति नहीं, मैं तुम्हारे रूप–गुण की भिखारिन हूँ– वही मुझको चाहिए। उजाड़ में भी आपका संग–साथ हो तो वही स्वर्ग हैं। हाँ पुस्तकों का व्यसन हैं मुझे।''

उपन्यास पुष्टि करता चलता हैं कि यह बाल–विधवा **'मल्लिका'** बालपन से मिले जीवन के अथाह दुख एवं प्रेम से अभावग्रस्त जीवन पाकर भी स्वंय को इतना कमजोर नही बनने देती कि उसे किसी भी व्यक्ति पर बोझ बनना पड़े। बहन व भाभी से मिली उपेक्षिता के उपरांत भी **'मल्लिका'** के मन में अपनों के प्रति कोई मैल व दुर्भावना जन्म नही लेती। भारतेंदु के रूप में मिली बौद्धिक संतुष्टि उसे उजाड़ वीरान जीवन में उमंग से भरने लगी। उपन्यास की नायिका **'मल्लिका'** सच ही आधुनिक व स्वाभिमानी स्त्री का प्रतीक भर ही नही अपितु प्रेम के लिए अपना अस्तित्व सौप प्रेमी

साथी के जीवन में रंग भरने वाली भारतेंदु की धर्मग्रहिता भी थी।

उपन्यास में वह कहती हैं:– ''ज्यूँ कितनी पूँजी लगेगी छापेखाने में ?– आप बुरा न माने तो मैं भी एक निवेशक बन जाऊं?आप सर्वेसर्वा रहें। मैं शरीर से क्षीण हो सकती हूं लेकिन व्यक्तित्व से अबला मालूम देती हूं क्या?''

भारतेंदु के जीवन में जाने कितनी वारवनिताएँ आई, उनसे आश्रय लिया परन्तु वह **'मल्लिका'** ही थी जो भारतेंदु ही नही अपितु उनकी पत्नी मन्नो देवी को भी भली लगी।

भारतीय समाज ही नही बल्कि पाश्चात्य जगत में जन्मी व पली– बड़ी स्त्री भी अपने पति या प्रेमी को अन्य महिला के संग प्रेम प्रसंग में देख बर्दाश्त नही कर सकती परन्तु भारतीय स्त्री अपने ग्रहस्थ जीवन को बचाएं रखने व बच्चों के लालन–पालन हेतु सम्पूर्ण जीवन उस पति या प्रेमी की प्रतीक्षा में बिता देती है, मन्नो देवी भी इस भारतीय संस्कृति में जन्मी स्त्री का प्रतिरूप हैं। भारतेंदु की मृत्यु के पश्चात वे **'मल्लिका'** को भारतेंदु की दूसरी पत्नी होने का स्थान स्वतः ही भेंट स्वरूप दे देती है जो उसने अन्यत्र किसी महिला को कभी न दिया था, परन्तु दुर्भाग्य **'मल्लिका'** के जीवन में यह सुख भारतेंदु के जीवित रहते कभी न आ सका। कुछ समय पूर्व उनकी पुत्री के विवाह के सुअवसर पर भारतेंदु के बुलावे पर अपनी सहायिका **'कजरी'** संग भौज में आयी **'मल्लिका'** को उन कर्णकटु शब्दों का सामना करना पड़ता हैं जो भारतीय समाज व संस्कृति में किसी अबला विधवा के प्रति समाज के नजरिए में आमतौर पर बोला जाना उतना ही स्वभाविक हैं जितना उसकी नियति को बेरंग और अपशगुन माना जाना।

उपन्यास से:– ''मोहल्ला भर कहता हैं, हरिचंद ज्यूँ तो आजकल बंगालन के जादू में हैं। मुझे इनका बुरा नही लगता, वह तो मैं सुनती आई हूं। बुरा लगता हैं, लोग बिना जाने– बूझे तुम्हे कलंकित करते हैं। अभी तुम्हारा बहुत जीवन हैं, एक बार नाम खराब हुआ तो देखा–देखी और पुरुष सांकल खटकाएँगे।''

रचनाकार ने अतीत की उन विस्मृतियों में जाकर एक ऐसे स्त्री पात्र को ढूंढ निकाला हैं जिसके जीवन को विधाता ने शायद दुख भरी स्याही में डुबोकर लिखा। परन्तु जब तक हो सका उसने हौसला नही खोया। बालपन से ही स्वाभिमानी **'मल्लिका'** ने अपने जीवन की विपरीत परिस्थितियों से जूझकर भी स्वयं फैसले लिए। वह चाहती तो पिता के कहे अनुसार व सामाजिक दबाव के चलते अपने पिता की उम्र के लगभग बराबर अधेड़ **'मजूमदार चाचा'** से ब्याह कर भौतिक सुख–सुविधाओं से लैस जीवन जीकर फिर से सुहागन होने के सुख का रास्ता चुन सकती थी पर **नवजागरण काल** में **क्रांतिकारी गतिविधियों** के समय जन्मी **'मल्लिका'** पर **'बंकिम चन्द्र'** की किताबों का ऐसा असर हुआ जो उसे अकेले काशी तक खींच लाया।परन्तु वह कहाँ जानती थी कि **'सुब्रत'** की तरह भारतेंदु भी उसे हमेशा के लिए अकेला छोड़ एक बार फिर विधवा बना जाएंगे। जीवन को सहजता से देखने व जीने वाली वह स्त्री जो सम्पूर्ण उपन्यास में जीने का सबल बनती है वह अपने प्रिय के बिछोह से मिले दुःख व संत्रास से भीतर तक टूट जाती है।

उपन्यास से:– ''कुंजड़िनों– कहारिनों, नौकरों सबको गला फाड़ कर रोने का अधिकार था किंतु **'मल्लिका'** को नहीं।– ज्यूँ भरतार तो नहीं लेकिन मेरे जीवन की सार्थकता थे आप। लक्ष्यहीनता तो मेरे जीवन का देय हैं नही।... हर बार घूम फिर कर में लक्ष्यहीनता की आकाशगंगा पर पाती हूँ स्वयं को... **'मल्लिका'** के ह्दय से संकोच का पत्थर हट गया ... वह उच्च स्वर में विलाप कर उठीं। हा! ज्यूँ! आपने तो मुझसे प्रतीक्षा तक छीन ली ...।''

निष्कर्षतः मनीषा कुलश्रेष्ठ अपनी सजग व समर्थ लेखनी से पाठकों के बीच अपनी खास पहचान बना चुकी हैं। वे स्वयं भी कहती हैं कि यह उपन्यास लिखते समय यह डर सर्वथा बना रहा कि कही यह जीवनी– परक उपन्यास **'मल्लिका'** की जगह भारतेंदु की जीवन–गाथा न बन जाये। **'मल्लिका'** के संदर्भ में कही भी सम्पूर्ण जानकारी न मिल पाने के बावजूद भी लेखिका ने इतिहास के पन्नो में भुला दी गयी इस स्त्री पात्र की छवि को जीवटता के साथ सहेजा हैं। कहना गलत न होगा कि भारतेंदु हरिश्चंद की प्रेमिका **'मल्लिका'** के जीवन व्रतों को गहराई से उकेरता यह उपन्यास हिंदी साहित्य जगत की अनुपम निधि है।

संदर्भ ग्रंथ सूच

1. संघर्ष के बीच : संघर्ष के बीज, इलीना सेन, सारांश प्रकाशन, दिल्ली,पृष्ठ संख्या– 17
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– भूमिका से।
3. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– 45
4. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– 19
5. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां–12
6.मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– 22
7. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्या– 103
8. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– 139

9. मनीषा कुलश्रेष्ठ, 'मल्लिका', प्रकाशन वर्ष– 2019, राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 110006, पृष्ठ संख्यां– 157

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. विवेक शंकर

सह आचार्य, हिंदी विभाग,

राजकीय कला महाविद्यालय,

कोटा, (राजस्थान)

घर का पता– 102, संरचना एवेन्यू, नयापुरा, कोटा, राजस्थान,

पिन– 324001

mob– 9461946044

email:-vivekshankar17@gmail.com

ँ, शोधार्थी

पूजा शर्मा

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, (राजस्थान)

घर का पता– 1/3467 राम नगर एक्सटेंशन, गली नम्बर– 5,

नियर इंदिरा पिआउ, शाहदरा, दिल्ली–110032

mob– 7982758517

email:-poojasharmaomshiv@gmail.com

60

हिंदी साहित्य में मानव मूल्य

रीना मलिक

सारांश–

मानव मूल्यों का इतिहास बहुत पुराना है तथा क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। जब से मनुष्य की व्युत्पत्ति हुई है, तब से इन मूल्यों का आर्विभाव माना जाता है। किसी भी समाज को विशिष्ट स्थान प्रतिष्ठित करने के लिए जीवन मूल्यों का गहरा संबंध होता है – ''जिस समाज के मूल्य मनुष्य के आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास के विविध सोपानों को इंगित करके उसे प्रगति की ओर अग्रसर करने में सहायक बनते हैं, उस समाज एवं राष्ट्र की गणना विश्व के महानतम सुसंस्कृत राष्ट्रों में होती है। दूसरे शब्दों में सामाजिक मूल्य किसी समाज के वे प्रचलित वे आदर्श और लक्ष्य होते हैं जिनके प्रति समाज के सदस्य श्रद्धा व्यक्त करते हैं और जिन्हें सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।[1]

इन जीवन मूल्यों की प्रस्थापना में 'राष्ट्रीय एकता' का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। भारत विभिन्न संस्कृतियों, जातियों का देश है, फिर भी यहाँ राष्ट्रीय एकता के कारण नये मूल्यों की स्थापना की गई। समय अनुसार मूल्यों में भी परिवर्तन होते रहते हैं तथा परिस्थितियों के अनुसार नये मूल्यों की स्थापना की जाती है। जिस देश में राष्ट्रीय एकता नहीं होती, जहाँ पर धर्म, कर्म का अस्तित्व नहीं होता वहाँ पर मानवीय मूल्यों को स्थापित करना खोखला जान पड़ता है। वहाँ उन मूल्यों का कोई अस्तित्व नहीं होता तथा अराजकता, हिंसा तथा त्रासदी, उत्कण्ठा सा साम्राज्य होता है।

भारत के प्राचीन इस महान ग्रन्थ ऋग्वेद, उपनिषद, ब्रह्म ग्रन्थआदि जीवन मूल्यों के प्रतीक हैं तथा इन्होंने उन मूल्यों की स्थापना में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जब सिकन्दर भारतको विजित वापस अपने देश जाने लगा तो उसने अपने गुरु सुकरात से पूछा था कि भारत से लौटते समय क्या लाये?इस पर सुकरात ने सिकन्दर से कहा कि – ''ला सकते हो तो भारतसे श्रीमदभागवत गीता ले आना। ऋग्वेद, उपनिषद, श्रीमदभागवत आदि भारत के महान तथा मूल्यों से परिपूर्ण ग्रन्थ हैं तथा महान ग्रन्थ उन्हीं ग्रन्थों को माना जाता है, जिनमें मानव कल्याण की भावना हो, तथा धर्म जाति, सहिष्णुता,

बन्धुता, राष्ट्रीय एकता आदि उच्चतम सामाजिक मूल्यों का समावेश हो।

मध्यकाल में प्रेम, अहिंसा, दया, अध्यात्म, सत्य, उदारता, करुणा, शांति, सद्भावना, एकता इत्यादि जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने तद्युगीन जन सामान्य को राष्ट्रीय एकता के प्रतिमानों से परिचित करवाया। यह सत्य है कि जब कोई जाति किसी दूसरी जाति की अस्मिता पर आघात करती है तब उसे विशिष्टता को बनाये रखने और मूल्यों को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इसी संघर्ष में गुरु जी ने अपने परिवार को दांव पर लगा दिया और एक ओजस्वी जाति का उदय किया जो आज भी गतिशील है। किसी भी राष्ट्र की महत्ता उसके द्वारा अर्जित उपलब्धियों से नहीं बल्कि उसकी जीवन्त सस्कृति, गतिमान परम्परायें तथा मूल्यों द्वारा पता चलती हैं। जो देश मानव मूल्यों, अहिंसा, प्रेम, सेवाभाव, उदारता जैसे गुणों को अपने समाज में बीज की भांति बोता है वहाँ पर फलदार तथा छायादार वृक्ष उत्पन्न होते हैं अर्थात् शान्ति तथा बन्धुत्व की भावना बनी रहती है तथा देश खुशहाल बनकर तरक्की की ओर अग्रसर होता है।

मानव मूल्य दो प्रकार के होते हैं – स्थायी तथा अस्थायी। अस्थायी मूल्य वे होते हैं जो समय तथा परिस्थितियों के अनुसार चलते रहते हैं तथा स्थायी मूल्य हमेशा से चलते आ रहे हैं तथा आज भी उतने ही प्रासांगिक हैं जितने प्राचीन समय में दया, प्रेम, सेवा भावना, बन्धुत्व की भावना आदि। विश्व में प्रत्येक दिशा में अविश्वास की मनोवृत्ति अधिकार जमाती जा रही है, जिससे संबंधों में बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और मानव मूल्यों का ह्रास होता है। भक्तिकाल 'मानवता' के संदेश को सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रसारित करने वालाकाल है। इस काल में कबीर, नानक जैसे महानायक उत्पन्न हुए जिन्होंने मानवता तथा प्रेम के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किये तथा क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठकर प्रत्येक कवि ने सामंजस्य की प्रधानता को स्थान दिया।

''कबीर ने मनुष्य की जातिपरक संकुचित अवधारणाओं का खण्डन करते हुए कहा है कि जब एक 'मल मूतर' से सबका शरीरबना है तो फिर यह भेदभाव कैसा।''[2] संतों की यही परम्परा सूफी काव्य में भी नजर आती है। सूफी काव्य हिन्दु तथा मुस्लिम एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है। जायसी ने गोरा और बादल हिन्दुवीरों के ओजस्वी व्यक्तित्व को उतने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है जिसे पढ़कर व्यक्ति के मन में उत्साह का संचार होता है। मुसलमान कवि होते हुए भी जायसी ने हिन्दु नायकों की मनोदशा

का वर्णन हिन्दु पृष्ठभूमि पर ही किया तथा इन्हें पुण्य भूमि का रक्षार्थ के रूप में रचा।

निगुर्ण कवियों की भांति ही सगुण कवियों ने भारतीय संस्कृति को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। इस काल में मुगलशासन के अत्याचार के कारण हिन्दओं में उत्कण्ठा तथा अराजकता का काल था। हिन्दुओं की मनोवृति को समझते हुए तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, सुन्दरदास, रज्जष आदि महान कवियों ने राम तथा कृष्ण का वर्णन कर नये नैतिक मूल्य का उद्गार किया तथा भारतीय संस्कृति को गतिशील तथा समृद्ध बनाने का भरसक प्रयास किया। तुलसीदास ने इन सामाजिक मूल्यों के आधार पर 'रामचरितमानस' जैसे महाकाव्य की रचना कर डाली तथा मनुष्य को नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास बनाये रखने के लिए प्रेरित किया। तुलसी राम धर्म के अवतार थे, किन्तु वे बाल्मीकि के भगवान राम नहीं थे, अपितु तत्कालीन समाज में मर्यादा और आदर्श की स्थापना के लिए अवतरित हुए राम थे तभी तो तुलसी कहते हैं –

''जब–जब होई धर्म की हानि, बढ़हि असुर अधम अभिमानी,
तब–तब धरि प्रभु विषधसरीरा, हरीहं कृपानिधि सज्जन पीरा।।''[3]

आधुनिक युग में भारतेन्दु जी ने रीतिकालिन रूढ़िग्रस्त कविता को राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिवर्तनों के आधार पर नवीन चेतना प्रदान की। भारतेन्दु तथा उसके समकालिन लेखकों तथा कवियों मूल्यों को स्वर्णाक्षरों में अंकित कर जीवन मूल्यों के गौरव को पुनः दिव्यता प्रदान की। डॉ. देवराज शर्मा के अनुसार – ''भारतेन्दु युग का समस्त साहित्य प्रायः राष्ट्रीय देश–प्रेम एवं राष्ट्रीय गौरव के ताने–बाने से रचा गया है, जिसमें एक अनोखा तेज, एक अनोखी सुगन्द और एक अनोखी पावनता विद्यमान है, परवर्ती साहित्यकारों पर इस युग की एक अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है।''[4]

भारतेन्दु जी ने अपने अतीत का गौरव गान करते हुए लिखा है –

''भारत के भूजबल जग रक्षित।
भारत विद्यालह जग सिच्छित।
किनिक मिसिर सीरीय यूनाना।
ये पंडित लहि भारत ढाना।।''[5]

भारतीय संस्कृति का आधारभूत गुण मानवता है। द्विवेदी युगीन कविता में मानवीय मूल्यों का सबसे प्रखर स्वर सुनायी पड़ता है। इस युग के राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत–भारती रचना में भारत की महान परम्परा के इतिहास का वर्णन किया है। गुप्तजी ने भारत को 'विश्वगुरु' स्वीकारते हुए कहा है –

''हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है/
ऐसा पुरातन
देश कोई विश्व में क्या और है?/ भगवान की भवभूतियों का
यह प्रधान भण्डार है। विधि ने किया नर–सृष्टि का पहले यही विस्तार है।''[6]

भारत देश में धर्म, कर्म का मुख्य स्थान रहा है तथा धर्म और कर्म ही देश की संस्कृति का आधार होते हैं। धर्म हमें कर्म करना सिखाता है तथा धर्म के आधार पर अच्छे–बुरे मूल्यों का निर्धारण होता है। आज भी सांस्कृतिक वैभव के कारण भारत का सबसे ऊँचा स्थान है। प्राचीन काल से भारत का वैभव दूर–दूर तक फैला होने के कारण यहाँ की संस्कृति भी अत्यन्त रोचक रही है जो विश्व धरोहर के रूप में मानी जाती है।

भूनवेश्वर गुरुमैता के अनुसार, – ''भारत में संस्कृति की जो गंगा प्रवाहित की, वह गंगा के समान सर्वसमावेशी है, उसमें अनेक धाराये समय–समय पर मिली हैं, किन्तु वे सभी धाराएं मूल धारा के साथ रच–बस गयी। यह पवित्र धारा सदा प्रवाहित रहे, इसलिए सम्पूर्ण समाज ने साधना की, किसी ने बलिदान दिया, किसी ने तपस्या की, किसी ने ज्ञान दिया, किसी ने शोध किया तो किसी ने सम्पूर्ण समाज की हस्ती बनाये रखने की समझा दी ... लाख–लाख पीढ़ियाँ लगी, तभी अपनी मानव कल्याणकारिणी संस्कृति उपजी। समय–समय पर कोटि–कोटि सिर चढ़ाकर हमने इसकी रक्षा की ... भू–भाग नहीं, विश्व मानव ह्दय को जीतकर तथा अपने सांस्कृतिक स्वरूप की उज्ज्वल रश्मि फैलाकर जगतगुरु के आसन पर विराजमान हुए।''[7]

संदर्भ

1. ममता गुप्ता, गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में जातीय संघर्ष, पृ. 200
2. कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, पृ. 105
3. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ. 342
4. डॉ. देवराज पथिक, हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा, पृ. 65
5. भारतेन्दु, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ. 178
6. मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, पृ. 140
7. भुवनेश्वर गुरुमैता, प्राचीन भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय अस्मिता, पृ. 28

रीना मलिक
मकान. नं. 10
पी.टी.सी. सुनारिया

61

सामाजिक–राष्ट्रीय मूल्य एवं गिरते शैक्षिक मूल्य : शिक्षक–शिक्षा के सन्दर्भ में

डॉ0 हनुमान प्रसाद मिश्र

सारांश

आज समाज के चारों ओर अविश्वास का, बेईमानी का, ईर्ष्या का, लूट, भ्रष्टाचार, असम्मान, माता–पिता की अवहेलना जैसे मानवीय मूल्यों के पतन का माहौल बना हुआ है जिसके परिणामस्वरूप समाज में सकारात्मकता के स्थान पर नकारात्मकता की सोच निर्मित हो रही है। ऐसे विकृत व बिगड़े हुए माहौल को सुधारने व संवारने के लिये शिक्षा का साथ ही कारगर साधन है।

मूल्य वे अमूर्त अवधारणाएँ या मानक हैं, जिनके आधार पर समाज में भावनाओं, विचारों, कार्यों, गुण, वस्तुओं, व्यक्तियों, समूहों, लक्ष्यों, साधनों आदि का मूल्यांकन वांछनीय या अवांछनीय, अधिक प्रशंसनीय या कम प्रशंसनीय, अधिक सही या कम सही आदि के रूप में किया जाता है, मूल्य कहलाते हैं। मूल्य प्रत्येक समाज के लिये अति संवेदनशील व महत्वपूर्ण होते हैं। समाज में सामाजिक सन्तुलन व व्यवहार में एकरूपता बनाए रखने में सहायक होते हैं। मूल्य (Value) शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Valere शब्द से हुई है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है। भारतीय धर्मग्रन्थों में भी मूल्य के स्थान पर शील शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें त मूल्य वस्तुतः एक प्रकार का मानक है जो समाज के व्यक्तियों तथा समाज के स्तर परम्पराओ सिद्धान्तों की पहचान तथा समाज के व्यक्तियों से उनके प्रति सम्मान की भावना को परिलक्षित है।

अर्बन के अनुसार, "मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि कर सके।"

काने के अनुसार, "मूल्य वे आदर्श विश्वास या प्रतिमान हैं जिनको एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने ग्रहण कर लिया है।"

अध्यापक–शिक्षा एक शैक्षिक आयोजन है, जिनमे विभिन्न स्तरीय एवं वर्गीय अध्यापको को इस प्रकार से शिक्षित करने के लिए प्रयत्न किया जाता है कि अग्रिम प्रजन्म को ज्ञान एवं मूल्यों के हस्तान्तरण तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक संचेतना, संसाधन सम्पन्नता तथा नवाचारिकता के साथ सांस्कृतिक उद्दीपना एवं मानवताबोध का समन्वयात्मक विकास करना सम्भव हो सके। शिक्षण को एक उद्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है। अध्यापक–शिक्षा को इसलिए यदि उद्यम के रूप में माना जाता है, तो गलत नहीं है। वस्तुतः शिक्षक–शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक मर्यादाताओं की शिक्षा और उनका प्रचार–प्रसार है। इस उद्यम का मुख्य उद्देश्य राश्ट्रीय प्रजातांत्रिक मूल्यो का विकास करना है।

अध्यापक–शिक्षा मात्र एक कार्यक्रम नहीं है, अपितु एक ऐसा संकल्पमय आयोजन है जिसके माध्यम से राश्ट्रीय सन्दर्भ में अध्यापक–समुदाय अपने शिक्षण–दायित्वों के निर्वहन के साथ–साथ विभिन्न दक्षताओ और कुशलताओं के लिए छात्राध्यापकों को तैयार करता है।

शिक्षा, किसी भी सभ्य राश्ट्र की प्राणवायु है। इसके अभाव में वह स्वतंत्र होकर भी परतंत्र है। दूसरे शब्दों में वह बिना आत्मा के शरीरवत है। वर्तमान भारत 2020 तक विकसित राश्ट्रों की कतार में खड़े होने के लिए तैयार है। यह मिशन तभी पूरा हो सकता है, जब हमारे देश की शिक्षक–शिक्षा चुश्त और दुरूस्त हो, यहां का शिक्षक–समुदाय अपनी जवाबदेही को ईमानदारी से समझे और अपने कार्य की गुणवत्ता में सुधार लाये। समाज, अभिभावक एवं प्रशासन–ये मिलकर शिक्षा की जवाबदेही के लिए मानक तय करे।[3] जवाबदेही का सिद्वान्त शिक्षा के क्षेत्र में उद्योग के क्षेत्र से आया है। जवाबदेही की प्रवृत्ति भी उत्पादनोमुख होती है। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रवृत्ति का श्रीगणेश 1970 से हुआ है। शिक्षक से अपेक्षा यह की जाती है कि वास्तविक शैक्षिक प्रभाव बच्चों में उत्पन्न करे।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) ने शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा तैयार किया है, जिसे मार्च 2009 में परिचालित किया गया था। यह ढांचा एन सी एफ, 2005 की पृष्ठभूमि में तैयार किया गया है और निरूशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में निर्धारित सिद्धांतों ने शिक्षक शिक्षा पर परिवर्तित ढांचा अनिवार्य कर दिया है, जो एन सी एफ, 2005 में संस्तुत स्कूल पाठ्यचर्या के परिवर्तित दर्शन के अनुकूल हो। शिक्षक शिक्षा का दर्शन स्पष्ट करते हुए इस ढांचे में नए दृष्टिकोण के कुछ महत्वपूर्ण आयाम हैं–

परावर्ती प्रचलन, शिक्षक शिक्षा का केन्द्रीय लक्ष्य

बच्चों के पर्यवेक्षण एवं शामिल करने, बच्चों से संवाद करने और उनसे जुड़ने का अवसर। इस ढांचे ने फोकस, विशिष्ट उद्देश्यों, सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक शिक्षा के अनुकूल विस्तृत

अध्ययन क्षेत्र और पाठ्यचर्या अंतरण और विभिन्न प्रारंभिक शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए मूल्यांकन कार्यनीति उजागर की हैं। मसौदा आधारभूत मुद्दों को भी रेखांकित करता है, जो इन पाठ्यक्रमों के सभी कार्यक्रमों का निरूपण निदेशित करेगा। इस ढांचे ने सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दृष्टिकोण और रीति विधान पर अनेक सिफारिशें भी की हैं और इसकी कार्यान्वयन कार्यनीति भी रेखांकित की गई है। एन सी एफ टी ई के स्वाभाविक परिणाम के रूप में एन सी टी ई ने विभिन्न शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों का श्आदर्शश पाठ्यक्रम भी तैयार किया है।

आज पूरा राश्ट्र मूल्यों की ह्ासमानता से चिन्तित है। शिक्षा का स्तर गिर रहा है। श्रम–मानवीय संसाधन और बजट प्रावधान–सभी कुछ है लेकिन परिणाम आशानुकूल नहीं है। आज का अध्यापक समुदाय न तो अपने अध्ययन के प्रति यथोपेक्षा गम्भीर हैं, न ही अपने अध्यापन कर्त्तव्य के प्रति। उसमें प्रतिबद्धता का अभांव दिखा रहा है। उसमें अपने शिक्षार्थी, छात्र–समुदाय के प्रति उदासीनता प्रायः दिखाई देती है। अपने अध्यापकीय कर्म के प्रति उसका रूझान घटा है। यह प्रवृत्ति ठीक नही है। आज जिस रफ्तार से हमारा समाज सूचना एवं ज्ञान से लैस हो रहा है, उस गति से हमारा अध्यापक–समुदाय अपने को तैयार नहीं कर पा रहा है। यह चिन्तनीय हैं। शिक्षक मात्र लिखें हुए शब्दों, वाक्यों, पाठों का भाश्यकार नहीं होता, अपितु एक स्वतंत्र एवं सृजनात्मक ईकाई के रूप में भी वह कार्य करता है और स्वनुभव का स्वाद भी चखता है। यही स्वनुभव के आंच पर पके पाठ सूचनांए बच्चों के जेहन में रच–बस जाती है। इसी तथ्य को दृश्टिगत करते हुए राश्ट्रपति अब्दुल कलाम ने शिक्षक दिवस पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि शिक्षा ही वह संसाधन है जो पीढ़ियों के मानस को प्रभावित करता है। यही वह साधन है जो बालको में उत्साह और ऊर्जा भर सकता है। उन्होंने आगे कहा कि अध्यापन अकेला ऐसा पेसा है जिस पर आप गर्व कर सकते है। कलाम साहब ने इसी सन्दर्भ में अपने विचार करते हुए यह कहा कि जब शिक्षक, शिक्षण कर्म की आखिरी पेशे के रूप में चुनता है, तब वह इस शिक्षण व्यवसाय के प्रति न्याय नहीं कर पाता। प्रायः देखा गया है कि अध्यापक, जीवन भर अभाव सहता है। उसके ऊपर चारों ओर से दबाव बना रहता है। यह दबाव चाहे भावनात्मक हो या सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक हो या परिवारिक। ऐसी परिस्थिति में उलझनों से जकड़े होने के कारण वह अपने शिक्षण कर्म के प्रति न्याय नहीं कर पाता। इस प्रवृत्ति का प्रभाव छात्रों पर पड़ता ही है। प्रायः शिक्षक अपने शिक्षण–प्रशिक्षण कार्य में पूरी रूचि और निश्ठा का विनियोग नहीं करते।[5] अध्यापक समाज में मूल्यहीनता निम्नांकित कतिपय रूपों में दिखाई पड़ती है–

- शिक्षकों को प्रायः शिक्षण का सही वातावरण नहीं मिलता।
- शिक्षकों को प्रायः यथेश्ट स्वतंत्रता नहीं मिलती ।
- शिक्षक–समुदाय प्रायः अपने बालको को मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं करते।
- शिक्षक–समुदाय के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक दायित्वों से जकड़ें रहते है।
- अध्यापकों की सेवानिवृत्ति की आयु अवधि अब इधर 60 से बढ़ाकर 62 कर दी गयी। प्रायः अध्यापक इस आयु अवधि में गिरते स्वास्थ और उत्साह के शिकार दिखाई देते है। ऐसी दशा में समुचित न्याय की आशा कैसे की जा सकती है?
- प्रायः प्राध्यापक वर्ग अकादमिक प्रयोगों को अपने शिक्षण में स्थान नहीं देते। शिक्षक–जगत में हो रहे नये अनुसंधानों, पाठ्स्तरीय विवादों से अपने को असम्बद्ध रखते है।

  इन दिनों प्रायः अध्यापक–समुदाय 'चुप्पी की संस्कृति के शिकार दिखाई देते है। जिसका परिणाम यह होता है कि उनके छात्र परीक्षा तो अवश्य पार कर लेते है, किन्तु वे वास्तविक समझ और विश्लेशण की प्रवत्ति से दूर ही रह पाते है।
- अध्यापकों में से अधिकांश अपनी संस्थाओं में अनिवार्य कर्त्तव्यों के सम्पादन तक ही अपने को सीमित रखते हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाओं में अधिकांश अध्यापक सक्रिय प्रतिभाग नहीं करते।

वर्तमान भारतीय शिक्षा–व्यवस्था भी पाश्चात्य नैतिक मूल्यों की ओर बढ़ती चली जा रही है। इसका प्रभाव यह पड़ा रहा है कि हमारा आत्मिक विकास उपेक्षित हो रहा है। यह हमारे युवा छात्र–छात्रों में दैवी गुणों का विकास नहीं कर पा रही है। ऐसी दशा में हमारे छात्र–छात्राओं के शरीर, मन और बुद्विका विकास नहीं हो पा रहा है।

वस्तुतः शिक्षा का सम्पूर्ण तंत्र शिक्षक विद्यार्थी के ही चारों ओर घूमता है। ऐसी दशा में यदि शिक्षक का व्यक्तित्व मूल्य प्रधान नहीं रहेगा तो निश्चय ही छात्रों में श्रेश्ठ मनवीय मूल्यों का विकास नहीं हो पायेगा। नैतिक मूल्यों की शिक्षा, सच पूछिये तो बिना व्यावहारिक आचरण के नहीं दि जा सकती, यदि अध्यापक अपने स्तर से श्रेश्ठ आचरण से सबलित है, तो छात्र स्वतः अपने गुरूजनों के व्यावहारिक आचरण की नकल कर अपने को नीतिवान बना लेगें। आशय, यह निकला कि शिक्षा–जगत में यदि श्रेश्ठ मूल्यों का संचार किया जाना है, तो फिर शिक्षक–समुदाय की सर्वथा नीतिवान, चरित्रवान, धैर्यवान, ईमानदार, श्रमशील होना ही होगा। इसलिए हमारा मानना है कि शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र मे मूल्य की शिक्षा सबसे बढ़कर आवयक है।

शिक्षक–शिक्षा लोक मे मानवीय मूल्यों की शिक्षाः

इस समय पूरे विश्व में जो प्रवृत्ति बलवती दिखाई पड़ रही है, वह प्रवृत्ति भौतिक उत्कर्श की है। प्रायः जीवन के सभी क्षेत्रों में मानवीय चरित्र और गुणों पर भौतिकता हावी हो रही है।

21वीं सदी मे विश्व के प्रायः सभी गम्भीर चिन्तक यह मान रहे है कि नैतिकता के लोक को आज जिस तरीके से भौतिकता डसती हुई उसे क्षतिग्रस्त कर रही है, इसे मात्र मूल्याधारित शिक्षा से ही सुधारा जा सकता है अभी भी समय है यदि निश्ठापूर्वक मूल्यउन्मुखी शिक्षा की व्यवस्था कर दी जाए, तो निश्चय ही शिक्षा और समाज से इस कैंसर का इलाज किया जा सकता है। शिक्षक–शिक्षा उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र का वह आयाम है। इसलिए, इसके द्वारा उच्च शिक्षा के संकल्पित आज के उद्देश्यों की परिपूर्ति में अधिकाधिक योगदान किया जाना चाहिए।

अतएव, आवश्यकता इस बात की है कि हमारे शिक्षक इस प्रकार के अधिगम अनुभावों की शिक्षा दें कि जिससे बालकों के शरीर और मन, बुद्दिऔर संवेग–सबका विकास हो सके। शिक्षक–शिक्षा लोक के समाने यह एक बड़ी चुनौती है कि वे देश के बालकों, किशोरों और युवको के सम्पूर्ण विकास का लक्ष्य अपने सामने रखें, और इसके लिए उन्हें स्वयं नीति और विवेकसम्मत आचरण करना होगा। डीलर्स कमेटी (1996) का प्रतिवेदन जो अधिगम से सम्बन्धित रहा, ने इस बात पर बल दिया है कि बालकों और युवकों में उनके अन्तर (आत्मा) के खजाने की बढ़ोत्तरी पर बल डाला जाए। सेवापूर्व और सेवाकालीन दोनों प्रकार के शिक्षक कुल के लिए यह व्यवस्था की जाए, कि वे समय–समय पर नीति शिक्षा के अभिनव कार्यक्रमों में जाने का अवसर पायें। राश्ट्रीय शिक्षा नीति तथा प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1992) दोनों के द्वारा मूल्य–उन्मुखी शिक्षा को रेखांकित किया गया और यह सुझाव दिया गया है कि इसे शाला–पाठ्यक्रम का एक अभिन्न अंग बनाया जाए, किन्तु क्लेश है कि ऐसी संस्तुति के बाद भी इस अभियान को यथापेक्षा व्यावहारिक नहीं बनाया जा सकता।

संदर्भ सूची

1. **डॉ0 जी0सी0 भट्टाचार्य** : अध्यापक–शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2, 2004–5, पृश्ठ–12।
2. **डॉ आर0के0 श्रीवास्तव** : नई शिक्षा–नीति, डॉ0 रामशकल पाण्डेय (सम्पादक), विनोद पुस्तक मंदिर, पृश्ठ–119।
3. **कौशलेन्द्र प्रतापः** शिक्षण के प्रति उदासीन अध्यापक, योजना नवम्बर, 2006, पृश्ठ–25।
4. **रंजना भाटिया** : शिक्षक–शिक्षा में मूल्य शिक्षाः सरोकार के बिन्दु : यूनीवर्सिटी न्यूज 44 (51) दिसम्बर, 2006 पृश्ठ–11।
5. वहीं,
6. स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
7. **Ranjana Bhatia :**Valu Education in Teacher Education: Issue of concern: University News, 44 (51) December 18-24] 2006 Page No. 11.
8. Sarkari guider.in
9. शिक्षक–शिक्षा शोध पत्रिका अंक 6 (2), 2012।

डॉ0 हनुमान प्रसाद मिश्र

असि0 प्रोफेसर

शिक्षक शिक्षा विभाग

62

सामासिक–सांस्कृतिक एकता में हिंदी की भूमिका/योगदान

डॉ0 चक्र धर त्रिपाठी कुलपति

सारांश

भारत जननी एक ह्रदय हो,
एक राष्ट्र भाषा हिंदी में,
कोटि कोटि जनता की जय हो,
भारत जननी एक ह्रदय हो।
स्नेह सिक्त मानस की वाणी,
गूंजे गिरा यही कल्याणी.
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो,सदा अजय हो,
भारत जननी एक ह्रदय हो।

पं. रामेश्वर दयाल दूबे ने अपनी कविता की उपर्युक्त पंक्तियों में जिस भाषा की जय और भारत जननी के एक ह्रदय होने की बात कही है– वह भारत की भारती हमारी राष्ट्र भाषा हिन्दी है।भारत जैसे बहुभाषा–भाषी देश में सांस्कृतिक और वैचारिक विभिन्नताओं के बीच अनेकता में एकता को मूर्त करनेवाली शक्ति के रूप में हिन्दी की भूमिका विशिष्ट रही है।विभिन्न जातियों, संप्रदायों और भाषा परिवारों के लोग इस देश में सांस्कृतिक स्तर पर एकीकृत हैं और सब मिलकर भारत राष्ट्र की कल्पना को साकार करते हैं।भारत में विभिन्न स्रोतों से आए सांस्कृतिक सूत्र इसी कारण बिखराव ग्रस्त नहीं हो सके कि इस बहुभाषी राष्ट्र को ,समूचे देश की जनता को सामासिक और सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बांधने वाली कड़ी के रूप में हिंदी विद्यमान है।महाकवि डा उमा शंकर चतुर्वेदी श्कंचनश ने अपने शहिंदीश खण्ड काव्य में इसी एकता की ओर संकेत करते हुए लिखा है किरू –

संस्कृति को इक हार के रूप में,
जोड़ सके वो कड़ी है ये हिंदी।
लेके सहारा चले अन्हरा उस
अंधे के हाथ छड़ी है ये हिंदी।
जीवन दान मिले जिससे,
विष मार सके वो जड़ी है ये हिंदी।
प्यार से भारत माता कहें,
कि सुनो हमसे भी बड़ी है ये हिंदी।

कन्या कुमारी में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी की जो एकता है,प्रयाग राज इलाहाबाद में जो गंगा, यमुना और सरस्वती का जो संगम है,उसी के समानांतर हिंदी में इस विशाल देश की सांस्कृतिक परंपराओं, वैचारिक दिशाओं, भाषिक विविधताओं और भावात्मक परिकल्पनाओं को एकीकृत करने की विलक्षण सामासिकता है।हिंदी भाषा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने अनगिनत चिंतन धाराओं को अभिव्यक्ति दी है,सभी संप्रदायों को वाणी दी है और विभिन्न भाषाओं की जातीय विशेषताओं के बीच अपनी विराट् सामासिक शक्ति का परिचय दिया है।यह सामासिकता किसी भी जीवंत भाषा की पहली पहचान होती है।इसी सामासिकता के कारण आज हिन्दी विश्व मंच पर प्रतिष्ठित है।भारत के कोने कोने में और भारत के मानचित्र से बाहर मारीशस, सूरीनाम, फीजी, गुआना, ट्रीनीडाड,नेपाल, म्यांमार आदि देशों में हिंदी बोलने समझने और लिखने वाले लोग उपलब्ध हैं।इन सबने मिलकर हिंदी की साहित्य–संपदा का विस्तार किया है,लेकिन इसका केंद्रीय कारण यही है कि हिंदी में अद्भुत सामासिक क्षमता है।

आप कन्याकुमारी के समुद्र तट पर खड़े हों,तो एक विचित्र दृश्य नजर आएगा। हिंद महासागर की जलराशि, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के पानी को अपने में समेटती दिखाई देगी।दूर दूर से आने वाली विभिन्न अंतर्धाराएँ जिस तरह महासमुद्र में पहुंच कर एक हो जाती हैं, उसी तरह भारत जैसे विशाल देश में फैली विभिन्न सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को हिंदी ने एकसूत्र में आबद्ध किया है।श्संस्कृति के चार अध्यायश में राष्ट्र कवि दिनकर ने भारत की जिस सामासिक संस्कृति की चर्चा की है,उसका निखरा हुआ रूप हिंदी में लक्षित होता है। प्राचीन आर्य भाषाओं की परंपरा से लेकर नई भारतीय भाषाओं तक की सारी उपलब्धियों को समेटने का कार्य हिंदी ने किया है।

सारे संसार से आगत ,भाषाओं और संस्कृतियों की श्रेष्ठ उपलब्धियों से भारतीय मूल के लोग जहाँ कहीं भी गए हैं,वहां की परंपराओं का समाहार करनेवाली यह भाषा समन्वय का आदर्श उदाहरण है।वास्तव में हिंदी की प्रकृति सामासिक समन्वय के लिए निरंतर अनुकूल रही है और इसी कारण वह किसी सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा नहीं रह गई है।वह इस विशाल देश के किसी राज्य, जाति या संप्रदाय विशेष की भाषा न होकर संपूर्ण भारतवर्ष की भाषा है,सबकी भाषा

है;इसीलिए कहा जाता है किरू–

कोटि कोटि कंठों की भाषा,

जन–मन की मुखरित अभिलाषा।

हिंदी है पहचान हमारी,

हिंदी हम सबकी अभिलाषा।

अनेकता के बीच एकता के साम्राज्य को स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देनेवाली यह भाषा स्वाधीनता आंदोलन के दिनों से लेकर आज तक इस देश के विभिन्न भाषा भाषियों के बीच एक सशक्त कड़ी है।यह किसी एक धर्म द्वारा स्वीकृत भाषा नहीं है,बल्कि इसने सभी प्रचलित धर्मों को वाणी दी है।दर्शन और विचार धारा की किसी एक लीक पर चलना भी हिन्दी का स्वभाव नहीं है,बल्कि उसने मनुष्य की सुदीर्घ चिंतन परंपरा की सारी विचार दिशाओं को अपने भीतर समेटा है।समन्वय की इस गंगा में न जाने कितनी देशी –विदेशी भाषाओं की शब्द संपदा का समाहार हुआ है।पिछली अनेक शताब्दियों में विभिन्न संप्रदायों और देशों के भाषा साहित्य के संपर्क से हिंदी ने इतना अधिक ग्रहण किया है कि अब उन शब्दों के मूल स्रोतों को खोजना भी कठिन है।किसी को विश्वास भी नही होगा कि अंचार मूलतः पुर्तगीज शब्द है और रिक्शा चीनी भाषा से आया है।फ्रेंच से रेस्तरां, तुर्की से बीबी,फारसी से तमाशा अरबी से कचहरीऔर डच से बम जैसे प्रचलित शब्दों को हिंदी ने सहर्ष अपनाया है।अंग्रेजी, अरबी और फारसी से आए शब्दों की सूची तो बहुत लंबी है,जिन्हें हिन्दी ने सहर्ष स्वीकार किया है।भारतीय भाषाओं के विभिन्न शब्दों को भी हिंदी ने उदारता पूर्वक स्वीकार किया है।बंगला से संदेश, पंजाबी से मंगेतर, मराठी से चालू,गुजराती से हड़ताल, तेलगु से झंडा और तमिल से कूप्पी जैसे अनगिनत शब्दों का स्वागत हिंदी ने किया है।हिंदी की इस समन्वयात्मक प्रकृति के संदर्भ में ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में स्पष्ट निर्देश किया गया है किरू–ष्केन्द्र सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा के विकास को इस प्रकार उन्नत बनाए कि वह भारत की मिश्रित संस्कृति के समस्त तत्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में उपयोग में लाए जाने के लिए विकसित हो सके।ष

संविधान के इस निर्देश के अनुसार राजभाषा हिंदी के सामासिक रूप की चर्चा तो अब शुरु हुई है,जबकि हिन्दी शताब्दियों से अपने विराट् सामासिक सांस्कृतिक रूप का परिजय दे रही है,वस्तुतः सांस्कृतिक समन्वय और राष्ट्रीय एकता की कड़ी के रूप में हिंदी ने जो स्थान प्राप्त किया,उसका आधार न तो कोई राजदरबार था और न कोई संविधान सभा थी।जिनकी मातृभाषा हिंदी है और जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है–उन सब लोगों ने सहज माध्यम के रूप में हिन्दी को स्वीकारा है।यहाँ तक की इस देश के तीर्थ–यात्रियों की भाषा हिंदी है।इस रूप में हिंदी न जाने कब से विभिन्न भाषा भाषियों के बीच व्यवहार में प्रचलित है। सैकडों वर्ष पहले मध्य काल के संतों और महात्माओं ने अपने विचारों को सारे देश में फैलाने के लिए हिन्दी माध्यम को अपनाया।इसके बाद हिंदी साधुओं और फकीरों की भाषा बनी।आजादी के बहुत पहले से कुछ देशी रियासतों में हिंदी को प्रशासन की भाषा बनने का सौभाग्य मिला था।स्वतंत्रता के बाद हिन्दी को संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर 1949 को राजभाषा का दर्जा दिया –यह हिंदी के लिए गौरव का संदर्भ है।इस नयी भूमिका ने हिंदी के प्रयोजन मूलक रूप को समूचे राष्ट्र के धरातल पर स्थापित किया है।

हिन्दी की अन्यतम विशेषता उसकी उदारता, सहजता और सहिष्णुता है।बेहद खुले मत के साथ हिंदी ने उन सारी संस्कृतियों और व्यवहारों को अपनाया है,जो उसके संपर्क में आईं।देश के एक छोर से दूसरे छोर तक बसे लोगों को प्रेम और बंधुत्व की डोर से बांधने वाली भाषा हिन्दी ही है। अमीर खुसरो और तानसेन के समय से लेकर विष्णु दिगंबर पलुस्कर और बड़े गुलाम अली खां जैसे संगीतकारों ने प्रमाणित किया है कि हिंदी ही इस देश में राग,पाग और संगीत की समर्थ भाषा है।गीतकार मोहम्मद रफी,कुंदन लाल सहगल,लता मंगेशकर और किशोर कुमार के गाए हिंदी गीतों ने पंजाबी, मराठी और बंगाली की पहचान भुलाकर इन्हें भारतीय भाषा हिन्दी का गायक सिद्ध किया है। हिंदी साहित्य के संपूर्ण इतिहास में अनगिनत ऐसे लोगों का अवदान है,जो मूलतः हिंदी भाषी नहीं थे।भक्ति और चिंतन,प्रेम और संगीत, संपर्क और व्यवहार के बहुत सारे आयामों को हिंदी ने स्वीकार किया है।नये तकनीकी संसाधनों, विज्ञान की उपलब्धियों औ अत्याधुनिक संचार माध्यमों ने एक बार फिर से हिंदी में छिपी भावनात्मक एकता को साकार किया है।हिंदी का द्वार सभी भाषाओं, सभी व्यवहारों और सभी अभिव्यक्तियों के लिए खुला है।केवल हिंदी में ही यह सामर्थ्य है कि वह इस देश की विभिन्न भाषाओं से छनकर आने वाली भारत की सामासिक संस्कृति को स्वस्थ स्वरूप दे सके।केवल हिंदी में ही यह क्षमता है कि वह विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों को समेटकर ईकार के रूप में भारत के सामासिक मानचित्र को तैयार कर सके।उसका संकल्प समन्वय की विराट् चेष्टा है।इस कारण युग के अनुरूप अभिव्यक्ति कौशल और परिवेश की आवश्यकताओं के साथ जुड़कर हिंदी ने निरंतर एकता और समन्वय की भावनाओं को प्रोत्साहित किया है।

शताब्दियों से इस देश के लोग भावनात्मक एकता के जिस सूत्र में बंधे हुए हैं उस सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में हिन्दी की क्षमता पर संदेह नहीं किया जा सकता

है।हिंदी ने भारत की विभिन्न भाषाओं में संचित ज्ञान राशि को एकीकृत कर विभिन्न संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय एकता का विलक्षण प्रयास किया है।हिन्दी के पास वह राष्ट्र–दृष्टि है,जिससे भारत की एकता के तंतु जुड़ते हैं।हिंदी के बिना न तो भारत की सामासिक संस्कृति की पहचान हो सकती है और न इस विराट वैविध्यपूर्ण देश में एकता के मंत्र का संचार हो सकता है।इसी विशिष्टता के कारण आज हिंदी भारत भर में फैले महामानव समुद्र के स्नेह का पात्र बनी है।

डॉ0 चक्र धर त्रिपाठी
कुलपति
उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कोरापुट (उड़ीसा)
चलभाषः–9434210155

63

राजा राम की न्याय प्रियता

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय तारेश

सारांश

राम भारतीय आस्था और संस्कृति के प्रतीक हैं। रामकथा की मंदाकिनी महर्षि वाल्मीकि मुखारविंद से निरूसृत हुई और फिर वेद व्यास,मुरारि,जयदेव, भवभूति कालिदास के मुखारविंदों से प्रवाहित होती हुई तुलसी को प्राप्त हुई।यद्यपि महर्षि वाल्मीकि रामकथा के आदि जनक हैं,लेकिन रामकथा को सर्वव्यापकता और लोकप्रियता के शिखर पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय महाकवि तुलसी को है।यही कारण है कि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने लिखा कि:–

संसार को बनाया राम ने,
उस राम को संवारा आपने।
जिस राम को लोग थे भूलने लगे,
उस राम को हर जिह्वा पै बिठाया आपने।

संसार में दो सेतु प्रसिद्ध हैंरू–रामकृत रामेश्वरम में राम सेतु और लोक में तुलसीकृत मानस–सेतु। राम का बनाया हुआ राम सेतु आज जीर्णशीर्ण हो गया और तुलसी का बनाया हुआ मानस सेतु आज भी लोक में ज्यों का त्यों बरकरार हैं।राम सेतु से राम सेनानी(भालू बंदर) समुद्र पार कर लंका गए थे लेकिन तुलसी के मानस सेतु ने संसार के लोगों को भवसागर से पार कर स्वर्ग पहुंचा दिया।किसी कवि ने ठीक ही कहा है किरू–

राम का बनाया हुआ सेतु आज टूट गया।
तुलसी ने सेतु ध्रुव अटल बना दिया।
राम ने बनाया सेतु दूर देश दक्षिण में।
तुलसी ने सेतु गांव गांव में बना दिया।
तारेश बनाया राम ने तो सेतु सिंधु में ही।
तुलसी ने सेतु भव सिंधु में बना दिया।
सेना के समेत राम सागर से पार हुए,
तुलसी ने पार सारे विश्व को करा दिया।

राम की न्यायप्रियता जगजाहिर है।राम ने अपने अनुज लक्ष्मण तक को मृत्यु दण्ड दे डाला।वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख है।राम कलियुग से गुप्त मंत्रणा कर हरे थे।लक्ष्मण पहरे पर थे,हिदायत थी कि जब तक मंत्रणा चले,कमरे में बिना अनुमति प्रवेश करनेवाला मृत्यु दंड का भागी होगा।इसी बीच दुर्वासा ऋषि राम से मिलने के लिए पहुंच गए।लक्ष्मण ने राम से मिलाने में अपनी असमर्थता बतायी,दुर्वासा ने श्राप का भय दिखाया।किंकर्तव्यविमूढ़ लक्ष्मण राम के कमरे में दुर्वासा ऋषि के आगमन की सूचना देने पहुंच गए और शर्तानुसार मृत्यु दंड के भागी बने।राम भक्त हनुमान ने कहा भगवन्! लक्ष्मण को प्राण दण्ड न देकर इनका परित्याग कर दिया जाए।शास्त्रानुसार आत्मीय का परित्याग भी मृत्यु दण्ड के समकक्ष माना गया है और राम ने भक्त राज हनुमान की सलाह पर क्षणमात्र में अपने प्रिय अनुज लक्ष्मण का परित्याग कर दिया। ये राम की कठोर न्याय प्रियता का उदाहरण है। धोबी के कहने पर उन्होंने गर्भवती सीता तक का परित्याग कर दिया।वाल्मीकि ने अपनी श्रामायणश में तथा भवभूति ने उत्तररामचरितम् मे विस्तार से इस मार्मिक आख्यान का वर्णन किया है।भवभूति के राम कहते हैं कि रू–

स्नेहं,दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीं अपि।
आराधनाय लोकस्य ,मुच्यतो नास्ति मे व्यथा।

अर्थात् लोक की आराधना के लिए स्नेह,दया,मित्रता यहाँ तक की प्राणप्रिया सीता तक का परित्याग करने में मुझे तनिक पीड़ा नहीं होगी।

उसी न्यायप्रिय राम के जीवन का एक मार्मिक प्रसंग है।एक दिन (संध्या के समय) सरयू के तट पर.....तीनों भाइयों संग राम टहल रहे थे। श्री राम से भरत भैया ने कहा , ष्एक बात पूछूँष? भईया !!

माता कैकई ने आपको वनवास दिलाने के लिए मँथरा के साथ मिल कर जो षड्यंत्र किया था ,क्या वह राजद्रोह नहीं था ?

उनके षड्यंत्र के कारण....एक ओर राज्य के भावी महाराज राम और महारानी सीता को (14) चौदह वर्षों का वनवास झेलना पड़ा....तो दूसरी ओर पिता महाराज दशरथ की दुरूखद मृत्यु हुई । ऐसे श्षड्यंत्रश के लिए (सामान्य नियमों के अनुसार) तो मृत्युदण्ड दिया जाता है , फिर आपने माता कैकई को दण्ड क्यों नहीं दिया ?

राम मुस्कुराए३....बोले, ष्जानते हो भरत !! किसी कुल में एक चरित्रवान और धर्मपरायण पुत्र जन्म ले ले तो उसका जीवन उसके असंख्य पीढ़ी के पितरों के अपराधों का प्रायश्चित कर देता है । जिस मा ने तुम जैसे – महात्मा को जन्म दिया हो , उसे दण्ड कैसे दिया जा सकता है ..भरत ?

महाकवि तुलसी ने प्रयागराज में भारद्वाज के मुखारविंद

से भरत के संदर्भ में यह उक्ति कहलाई हैरू–
तात भरत तुम सब विधि साधू।
रामचरन अनुराग अगाधू।
बादि गलानि करहु मन माहीं।
तुम सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं।
भरत ! स्वयं मैंनें चित्रकूट की आध्यात्मिक सभा में तुम्हें पिता की सौंगध खाकर यह प्रमाण पत्र निर्गत किया हैरू–
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई।
भयउ न भुअन भरत सम भाई।
(भरत सन्तुष्ट नहीं हुए)
कहा , ष्यह तो मोह है भईया ; और ष्राजा का दण्डविधानष मोह से मुक्त होता है । कृपया एक राजा की तरह उत्तर दीजिये कि आपने माता को दण्ड क्यों नहीं दिया ?.......समझिए कि आपसे यह प्रश्न आपका अनुज भरत नहीं , अयोध्या का एक सामान्य (आम) नागरिक पूछ रहा है ।

(राम गम्भीर हो गए)......कुछ क्षण के मौन के बाद कहा , ष्अपने सगे–सम्बन्धियों के किसी अपराध पर कोई दण्ड न देना और उसका सामूहिक तिरष्कार कर देना ही इस सृष्टि का कठोरतम दण्ड है भरत !!"

माता कैकई ने अपनी एक भूल का बड़ा – कठोर दण्ड भोगा है । वनवास के (14) चौदह वर्षों में हम – चारों भाई अपने – अपने स्थान पर परिस्थितियों से लड़ते रहे हैं ; पर माता कैकई हर क्षण मरती रही हैं । क्या यह दण्ड नहीं हुआ भरत!

(अपनी एक भूल के कारण) उन्होंने अपना पति खोया , अपने चार – बेटे खोए , अपना समस्त सुख – सम्मान खोया , फिर भी वे उस ष्अपराध–बोधष से कभी मुक्त न हो सकीं । वनवास समाप्त हो गया....... तो परिवार के शेष – सदस्य प्रसन्न और सुखी हो गए ; पर वे कभी प्रसन्न न हो सकीं । कोई राजा किसी ष्स्त्रीष को इससे कठोर – दण्ड क्या दे सकता है ?

मेरे प्राण प्रिय भरत! तुमने मेरी सब बात मानी,परंतु मां कैकेयी के अनुरोध पर मैंने कैकेयी के लिए तुमसे एक बार मां संबोधन का अनुरोध नहीं आदेश दिया था, लेकिन तुमने मेरे आदेश को यह कहकर ठुकरा दिया था कि,जिसने पिता के प्राण लिए,राम जैसे भाई को बनवास दिया,उसे मैं ताउम्र मां नहीं कहूंगा, जिसके एवज में मुझे अगले जन्म (कृष्णावतार में देवकी कैकेयी बनी थी ।)में कैकेयी की केख से जन्म लेने का बचन पूरा करना पड़ा :–
बोले रघुनाथ सुनो भइया लाल,
एक बात मानो जो आदेश करूँगा मैं।
बोले भरत कर जोरि रघुनाथ जूं सों,
जो हो आदेश शिरोधार्य ही करूँगा मैं।
एक बात छाड़ि दूसरे आदेश पर, चाहो तो प्राण भी अर्पण करूंगा मैं।
निष्ठुर केकैइया,पितु प्राण को हेरइया,
तोहि वन को भेजइया,ताहि मइया ना कहूंगा मैं।
भरत!एक पुत्र के द्वारा अपनी मां को मां नहीं कहने से बड़ा दण्ड और कुछ हो सकता है क्या? तुम मां कैकेयी को और कौन सा दण्ड दिलाना चाहते हो ।उसे अपनी करनी से अधिक दण्ड मिल चुका है भरत!

मैं तो सदैव यह सोचकर दुखी हो जाता हूँ कि मेरे कारण (अनायास ही मेरी माँ को इतना कठोर – दण्ड भोगना पड़ा ।

राम के नेत्रों में जल उतर आया था और भरत – आदि भाई मौन हो गए थे ।

(राम ने फिर कहा)....... और उनकी भूल को अपराध समझना ही क्यों भरत !!......ख्यदि मेरा वनवास न हुआ होता, , तो संसार भरत और श्लक्ष्मणश जैसे भाइयों के अतुल्य भ्रातृ – प्रेम(को कैसे देख पाता ? (मैंने) तो केवल अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन मात्र किया था , पर (तुम – दोनों) ने तो मेरे – स्नेह में (14) चौदह वर्षों का ष्वनवासष भोगा । महाकवि तुलसी ने भरत के त्याग का वर्णन करते हुए लिखा है किरू–
राम लखन सिय कानन बसहीं।
भरत भवन बस तप तन कसहीं।
ष्वनवासष न होता तो यह संसार सीखता कैसे?.......कि भाइयों का सम्बन्ध होता कैसा है ?ष भरत के प्रश्न मौन हो गए थे । (वे अनायास ही बड़े भाई से लिपट गए) !!
अपने को गौणकर और दूसरो को गरिमा प्रदान करने वाले श्रीराम जैसा चरित्र संसार में दुर्लभ है।वे एक साथ करुणा, मंगल,क्षेम और सत्य के प्रतीक हैः–
राम प्रतीक निरामय उसके,
जिसके मन में प्रेम रहे।
प्राणिमात्र के लिए ह्रदय में,
करुणा मंगल क्षेम रहे।
रामकथा तो उसकी निष्ठा,
की आदर्श कहानी है।
सत्य न्याय के लिए सदा,
संघर्ष व्रती जो प्राणी है।
रामाख्यानःगोवर्धन प्रसाद सदय
राम कोई नारा नहीं हैं । राम एक आचरण हैं , एक चरित्र हैं , एक

जीवन जीने की शैली हैं ।

महाकवि डा.राजेश जैन राही ने अपने काव्य ष्रग रग में हैं राम में लिखा है किः–

रग रग में हैं राम, पग पग पै हैं राम,
राम का प्रमाण पूछ देश न लजाइए।
शबरी के भाव में हैं,केवट की नाव में हैं,
रामजी दिखेंगे आप खुद को जगाइये।
राम संस्कार में हैं, आपस के प्यार में हैं,
भरत सरीखे आप भाई बन जाइए।
राम सुप्रभात में हैं,राम मीठी बात में हैं,
राम राम बोल जग अपना बनाइये।

अस्तु श्रीराम व्यक्ति नहीं, आदर्श और न्याय की प्रतिमूर्ति हैं,इनके बिना भारतवर्ष की कल्पना नहीं की जा सकती हैरू–

राम व्यक्ति नहीं,
वृत्ति को प्राप्त हुई संज्ञा है।
राम हमारा चिंतन दर्शन,
प्रीति ,प्रकृति, प्रज्ञा है।
राम चिरंतन जीवन मूल्यों
के स्वर्णाभ शिखर हैं।
राम हमारी संस्कृति के,
सारस्वत हस्ताक्षर हैं।
राम हमारा धर्म,हमारा कर्म,
हमारी मति हैं।
राम हमारी भक्ति, हमारी शक्ति,
हमारी गति हैं।
बिना राम के आदर्शों का,
चरमोत्कर्ष कहाँ है?
बिना राम के इस भारत में,
भारतवर्ष कहाँ है!

जय श्रीराम

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय तारेश
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाष : 9431595318, 8797687656
kd:pandey&ru05@yahoo-co-in

64

बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहा है? (लोकमंगल के महाकवि : गोस्वामी तुलसीदास)

डॉ0 तारामणि पाण्डेय

सारांश

भक्त शिरोमणि कविकुल दिवाकर गोस्वामी तुलसीदास भारत के मंदिर को आलोकित करने वाले सर्वोत्तम प्रकाश–स्तम्भ हैं। उन्होंने अपनी काव्य–साधना द्वारा भारतीय जीवन, धर्मदर्शन तथा संस्कृति को अनुप्राणित किया है। उनका साहित्य काव्य दर्शन तथा भक्ति की त्रिवेणी है। तुलसीदास हिंदी साहित्य में विशिष्ट गौरव के अधिकारी हैं।

शीलोत्कर्ष विधायिनी भारतीय संस्कृति के उन्नायक तुलसी भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की महान विभूति है। भारतीय समाज जिस समय अत्याचार सामाजिक वैष्मय एवं राजनीति शोषण तथा धार्मिक आडम्बरों से घिरा हुआ था। उस समय कवि की सर्वोत्तन्मुखी पाण्डित्य–प्रतिभा ने उसे जीवन का आधार देकर सशक्त बनाया था। तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं।अस्तु राम व्यक्ति नहीं आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं'

राम व्यक्ति को नहीं,
वृति को प्राप्त हुई संज्ञा हैं।
राम हमारा चिंतन दर्शन,
प्रीति प्रकृति प्रज्ञा है।
राम चिरंतन जीवन मूल्यों,
का स्वर्णाभ शिखर हैं।
राम हमारी संस्कृति काश
सारस्वत हस्ताक्षर हैं।
राम हमारा कर्म ,हमारा धर्म
हमारी मति है।
राम हमारी भक्ति, हमारी शक्ति
हमारी गति है।,
बिना राम के आदर्शो का चर्मोत्कर्ष कहाँ है?
बिना राम के इस भारत में भारत वर्ष कहाँ है?

उन्होंने राम के चरित का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा की है उतनी हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि ने नहीं की है। इस समीक्षा के साथ ही उन्होंने लोकशिक्षा का भी ध्यान रखा और मानव जीवन में ऐसे आदर्शो की स्थापना की जो विश्वजनीन है और समय के प्रवाह से नहीं बह सकते। तुलसी ने इन आदर्शो की भिति पर अपनी भक्ति के स्वरुप की इतनी अच्छी विवेचना की कि वह तत्कालीन धार्मिक अवस्था में पथ–प्रदर्शन का काम कर गयी ।उनकी भक्ति में नीति की धारा मिली हुई है। उन्होंने अपने साहित्य को समाज की आधारभूत आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित किया, यही उनकी सबसे बड़ी देन है। तुलसी ने अपने काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कीरति भनीति भूति भली सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की चारित्रिक उदारता एवं महानता को लेकर रामचरितमानस और विशिष्ट बन गया है। मानस में शील, शक्ति और सौंदर्य सर्वत्र परिव्याप्त है। मानस के सभी आदर्श पात्र तप, त्याग परोपकार और प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का पुत्र प्रेम में देह त्याग ,राम का पितृ–प्रेम में अयोध्या के सुख का त्याग, कोमलागिनी सीता का पति प्रेम में ऐश्वर्य–त्याग, भाई राम के लिए लक्ष्मण का पत्नी का त्याग, भाई भरत का राम के लिए अयोध्या के सिंहासन का त्याग किया, मानस आदि से अंत तक त्याग की महागाथा है। तुलसी की गुणोत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'यदि कोई पूछे कि जनता के ह्रदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिंदी का सबसे बड़ा कवि कौन है? तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत ह्रदय, भारतीय कंठ भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास।

एक बार रामकथा के मर्मज्ञ विदेशी विद्वान डॉ फादर कामिल बुल्के ने तुलसी जयंती के पावन पुनीत अवसर पर बोलते हुए कहा था – 'अगर भारत से स्वदेश (बेल्जियम) लौटते समय मुझे केवल एक ही पुस्तक ले जाने की इजाजत दी जाए ,तो वह बाईबिल नहीं ,तुलसी का रामचरितमानस होगा।

भारत की भव्यता और विशालता को दृष्टि में रखकर इस देश के लिए कहा जाता रहा है – 'आसमुद्रात हिमालयरू अर्थात हिमालय इसकी उच्चता और भव्यता का प्रतीक है, तो सागर इसकी व्यापकता और विशालता का । तुलसीदास एक साथ ही भारत की भव्यता के प्रतीक हिमालय, और उसकी व्यापकता और विशालता के प्रतीक सागर दोनों की ही सम्मिलित प्रतिमूर्ति हैं। उनका व्यक्तित्व भारतीय धर्म–साधना का

माप है। भारतवर्ष में दो गंगाऐं हैं – एक भौगोलिक, दूसरी सांस्कृतिक। भौगोलिक गंगा गोमुखी से निकलकर उपत्यकाओं में प्रवाहित होती हुई अंत में अनन्त सागर से जा मिलती है, सांस्कृतिक गंगा तुलसी मुखारबिंद से निकलकर मानस के रूप में जनमानस को परिपल्लावित करती हुई अंत में अनन्त सागर में शेषशायी विष्णुरूपी राम के चरणों में समर्पित हो जाती है।

डॉ0 तारामणि पाण्डेय
कृतकार्य शिक्षिका,(हिंदी–अंग्रेजी)
महारानी प्रेम मंजरी प्रोजेक्ट
बालिका उच्च विद्यालय, रातू,
रांची 835222

द्वारा/डॉ जंग बहादुर पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाष : 9431595318
8797687656,7250189839
Mkd:pandey&ru05@yahoo-co-in

65

रामायण और महाभारत में मौलिक अंतर

डॉ0 पुष्पा द्विवेदी

सारांश

रामायण और महाभारत दोनों अद्भुत महाकाव्य हैं और तत्कालीन भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति के दस्तावेज हैं।दोनों ज्ञान विज्ञान से परिपूर्ण हैं और आधुनिक युग को दोनों से शिक्षा लेने की अपेक्षा है।परंतु दोनों में कुछ मूलभूत अंतर हैं, जो निम्नांकित हैंरू–

1रामायण में त्याग और महाभारत में स्वार्थ की कथा है।

2 त्याग से रामराज्य की स्थापना होती है और स्वार्थ से महाभारत होता है।

3 त्याग से व्यक्ति महान बनता है,स्वार्थ से पतित होता है।

4 त्याग से प्रेम और स्वार्थ से घृणा और द्वेष उत्पन्न होता है।

5 रामायण में दो संस्कृतियों (आर्य और अनार्य) का युद्ध है,जबकि महाभारत में एक ही आर्य संस्कृति (भारतीय) का द्वंद है।

6 रामायण मे दो देशों (भारत और श्री लंका) का युद्ध है ,जबकि महाभारत में केवल भारत वर्ष का युद्ध है।

7 रामायण में दो परिवारों का(राम और रावण) का युद्ध है,जबकि महाभारत में एक ही परिवार (कुरुवंश)का युद्ध है।

8 रामायण का युद्ध श्री लंका में लड़ा गया और महाभारत का युद्ध भारत मे ही कुरुक्षेत्र(हरियाणा) में हुआ।

9 रामायण युद्ध में श्री लंका का विनाश हुआ, जबकि महाभारत युद्ध में कौरवों का विनाश हुआ।

10 रामायण का युद्ध कर्म–युद्ध था जबकि महाभारत का युद्ध धर्म–युद्ध था।

11 रामायण का युद्ध अहर्निश(रात–दिन)चला ,जबकि महाभारत का युद्ध सूर्योदय से सूर्यास्त तक चला।

12 रामायण युद्ध में भारत की न्यूनतम और श्रीलंका की अधिकतम क्षति हुई।जबकि महाभारत युद्ध में केवल भारत की ही क्षति हुई।

13 रामायण में श्री राम ने भालू बंदरों की सेना तैयार की ,सेतु बांधा रू–

राम भालू कपि कटक बटोरा।
सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोड़ा।

और श्री लंका पर चढ़ाई की और विजय प्राप्त की,जबकि महाभारत युद्ध मे कुरुवंश की सेनाओं (11अक्षौहिणी कौरव दल+7अक्षौहिणी पाण्डव दल)का पूर्ण संहार हुआ।

14 रामायण युद्ध में राम की सेना अकेले लड़ी,जबकि महाभारत युद्ध में संपूर्ण आर्यावर्त्त के राजे महाराजों पाण्डेयश्ता इच्छाओं से पाण्डवों और कौरवों में बट गई थीं और सबका संहार हुआ।

15 प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर सेतु निर्माण में 5 दिन का समय लगा था।श्रीराम 111 दिन श्रीलंका में रहे ,श्रीलंका में 87 दिन युद्ध चला ;जबकि राम–रावण युद्ध 8 दिन चला था।राम रावण का युद्ध आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया से आरंभ हुआ था और दशमी तिथि पर भगवान् राम ने रावण का वध किया था।इसीलिए दशहरा के अवसर पर रावण दहन किया जाता है।जबकि महाभारत युद्ध 18 दिनों तक चला था।

16 रामायण का युद्ध केवल सुग्रीव के सेनापतित्व में लड़ा गया था,जबकि महाभारत के युद्ध में सेनापति बदलते गए थे यथा भीष्म,द्रोण, शल्य, कर्ण आदि।

17 रामायण युद्ध में मारे गए भालू कपि एवम् अन्य राम सेनानी अमृत वर्षा से जीवित हो गए थेरू–

सुधा वृष्टि भई दुहुँ दल ऊपर।
जिय भालू कपि नहि रजनीचर।

जबकि महाभारत युद्ध में ऐसा कुछ नहीं हुआ था।

18 रामायण का युद्ध अपूर्व था महाभारत का युद्ध अभूतपूर्व था।कहा जा सकता है– भूतो न भविष्यति

19 रामायण युद्ध का संहार वस्तुतः एक पक्षीय था जबकि महाभारत का संहार उभय पक्षीय था।

20 दोनों युद्धों के केन्द्र में नारी थी लेकिन एक(सीता) पराये रावण द्वारा हरी गई थी जबकि दूसरी (द्रौपदी)अपने ही देवर (दुर्योधन और दुरूशासन)द्वारा राजसभा में अपमानित की गई थी।

21 रामायण युद्ध में विजयी राम प्रसन्न हुए थे और अयोध्या आकर राम राज्य की स्थापना की थीरू–

राम राज बैठे त्रैलोका।
हर्षित भए गए सब सोका।

जबकि महाभारत युद्ध में विजयी युधिष्ठिर को ग्लानि और पाश्चताप हुआ था और वे अपने पोते परीक्षित को राज्य सौंप कर द्रौपदी एवम् भाइयों सहित हिमालय मे समाधिस्थ हो गए थे।

रामायण में 7 काण्ड और 24 हजार श्लोक हैं,जबकि महाभारत में 18 पर्व और एक लाख श्लोक हैं।रामायण के रचयिता आदि

कवि महर्षि वाल्मीकि हैं जो सकल शास्त्र निष्णात हैं और महाभारत के रचयिता महर्षि पाराशर्य श्री कृष्ण द्वैपायन बादरायण वेद व्यास हैं,जो त्रिकालदर्शी और सकल वेद शास्त्र ज्ञाता हैं।अस्तु दोनों ग्रंथ भारत की जातीय अस्मिता के प्रतीक हैं और परवर्ती रामकाव्य और कृष्ण काव्य के उपजीव्य हैं।हमें ऐसे ग्रंथों पर नाज और ताज है।प्रत्येक भारतीय को कम से कम एक बार अवश्य ही इन ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए,ताकि वे अपने गौरवशाली अतीत से परिचित हो,वर्तमान को संवार कर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकें।अपने इन ग्रंथों में वर्णित पुरुषार्थ चतुष्टय– धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष तथा ज्ञान विज्ञान से प्रेरणा लेकर हम अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। अर्जी मेरी और मर्जी आपकी है।अंत में सबके मंगल की प्रार्थना हैः–

सर्व भवंतु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चित् दुरूख भाग्यभवेत।

डॉ0 पुष्पा द्विवेदी
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी–विभाग
एच.डी.जैन कालेज, आरा
वीर कुअंर सिंह विश्वविद्यालय, भोजपुर,
आरा 802301
चलभाषः 7651903537

66

धरती आबाःभगवान बिरसा मुण्डा
15.11.1875—9.6.1900

डॉ0 तपन कुमार शाण्डिल्य

सारांश

सात समुंद की मसि करूं, लेखन सब बनराय।
धरती सब कागद करुं, धरती आबा गुण लिखा न जाय।।

××××××××××××××××××××

जय हो जग में जले जहां भी, नमन पुनीत अनल को।
जिस नर में भी बसे हमारा,
नमन तेज को, बल को।।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में,
पर नमस्य है फूल।
सुधी खोजते नहीं गुणों का,
आदि शक्ति का मूल।।
रश्मिरथी (प्रथम सर्ग) – दिनकर

उपर्युक्त नमस्कारात्मक काव्य पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने महाभारत के अप्रतिम दया वीर, युद्धवीर और दानवीर महारथी कर्ण को ध्यान में रखकर लिखी हैं लेकिन इन सारगर्भित पंक्तियों की व्यंजना कर्ण तक ही सीमित नहीं है, अपितु इनकी व्यंजना बहुत विस्तृत व्यापक एवं सूक्ष्म है। जंगल के किसी भी वृंत पर खिलने वाला फूल आदर एवं सम्मान का अधिकारी है ।वे सभी लोग नमनीय एवं वंदनीय हैं जो तेजप्रताप एवं गुणों की खान हैं। सुधी जन गुणों के आदि एवं अंत के लिए व्यग्र नहीं होते अपितु गुनी जनों का समादर करते हैं।

किसी धरती आबा के सुदीर्घ राजनीतिक सारस्वत साधना का आकलन एवं मूल्यांकन करना आसान कार्य नहीं है, विशेषतरू उस धरती पुत्र की साधना का आकलन एवं मूल्यांकन तो और भी कठिनतम कार्य है, जिसका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी हो जिसके चिंतन का आकाश बहुत व्यापक एवं विस्तृत हो और जिसकी समझ की गहराई सागर वत हो और जो एक साथ कई गुणों से युक्त हो, ऐसे राजनीतिक साधक का बहिरंग जितना व्यापक होता है अंतरंग उससे कहीं अधिक गहरा।धरती आबा भगवान बिरसा मुण्डा झारखंड की धरती के ऐसे ही वरद् पुत्र थे।

किसी को समय बड़ा बनाता है और कोई समय को बड़ा बना देता है। कुछ लोग समय का सही मूल्यांकन करते हैं और कुछ आने वाले समय का पूर्वाभास पा जाते हैं,तो कुछ लोग परत दर परत तोड़कर उसमें वर्तमान के लिए ऊर्जा एकत्र करते हैं और कुछ लोग वर्तमान की समस्याओं से घबराकर अतीत की ओर भाग जाते हैं। धरती आबा बिरसा मुण्डा कभी समस्याओं से विमुख नहीं हुए और जब तक आजादी नहीं मिली, चौन की नींद नहीं सोए।

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।।

राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी ने पुष्प की अभिलाषा के माध्यम से उपर्युक्त पंक्तियों में जिन भावों की अभिव्यक्ति की है ,उसके जीवंत प्रतीक थे– धरती आबा बिरसा मुण्डा। जो भले ही स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद नहीं हुए हों लेकिन उन्हें शहादत के लिए साहस और दिल में सच्चा मान जरूर था। बिरसा मुण्डा का जन्म झारखंड प्रांत के खूंटी जिलान्तर्गत उलीहातु ग्राम में 15 नवंबर 1875 को एक साधारण आदिवासी किसान परिवार में हुआ था तथा स्वर्गारोहण लंबी बीमारी के बाद रांची जेल में 9 जून 1900 को। इनके पिता का नाम श्री सुगना मुण्डा तथा माता का नाम करमी देवी था।दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के थे ।इनकी प्रारंभिक शिक्षा पिता माता के संरक्षण में गांव में ही प्रारंभ हुई।मिडिल की शिक्षा चाईबासा मिशन स्कूल में हुई।लेकिन सरना की जमीन पर चर्च निर्माण को लेकर चाईबासा में बक–झक हुई और बिरसा ने अपने मिशन स्कूल के फादर का जमकर विरोध किया फलस्वरूप मिशन स्कूल चाईबासा से इनका नाम काट दिया गया।तभी से इनके मन में अंग्रेजों के प्रति नफरत की आग सुलग गई। देश की पुकार पर इन्होंने अपनी चलती और चमकती हुई गुरुआई छोड़ दी और स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े।अमर स्वतंत्रता सेनानी बिरसा मुण्डा आजादी की लड़ाई में न जाने कितनी बार जेल गए, परंतु जब तक जीवित रहे, वे चौन की नींद नहीं सो सके और अंतिम सांस भी रांची के सेंट्रल जेल(9.6.1900) में ही ली।

बिरसा मुण्डा के व्यक्तित्व और कृतित्व के कई आयाम हैंरू–

1कर्मठ और दृढ़ संकल्पी योद्धारू–

अंग्रेजों के विधि विधान से आदिवासी समाज दिनों दिन निर्धन तथा भूमिहीन होता जा रहा था।उस समय हवा चली कि जो ईसाई धर्म स्वीकार कर लेंगे उनके साथ अंग्रेजी सरकार न्याय

करेगी और उनका दुख दूर हो जाएगा। इसी लोभ में बिरसा मुण्डा के परिवार ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था।उनके पिता सुगना मुण्डा ने जर्मन मिशन में वपतिस्मा लिया और उनका नाम मसीह दास पड़ा और बिरसा मुण्डा का नाम दाऊद।परंतु ईसाई बनने पर भी इनकी निर्धनता दूर न हो सकी।अभाव में बिरसा को अपनी मौसी जौनी के घर कुंदी गांव में बकरी चराने जाना पड़ा।यहीं वे बचपन में बकरी चराते और बांसुरी और टुहिला बजाना सीखा।जंगल में बकरी चराते हुए उन्हें बाघ दिखाई पड़ा।वह बाघ बकरियों पर आक्रमण करने की फिराक में था लेकिन बिरसा मुण्डा ने अपनी कुल्हाड़ी के एक वार में उसके दो टुकड़े कर दिए।इस घटना से बिरसा की वीरता की तूती बोलने लगी।

2 मिशन और अंग्रेजों के परम विरोधीरू– बिरसा मुण्डा जब अपर प्राईमरी की शिक्षा चाईबासा के जर्मन मिशन में ले रहे थे,तभी वहां सरना के जमीन पर चर्च निर्माण को लेकर मिशन के पादरियों के साथ झगड़ा हुआ और एक पादरी नोतरोत ने मुण्डा सरदारों को बेईमान कह दिया, क्योंकि वे ईसाई धर्म को नहीं स्वीकारते थे।बिरसा का स्वाभिमान यहीं से जागा और उन्होंने पादरी नोतरोत का जमकर विरोध किया और मिशन को त्याग दिया।बिरसा को यह समझते देर न लगी कि ये अंग्रेज हमारे धन,धरती,धर्म और धाक को लूट रहे हैं।चाईबासा से लौटकर वे गौरबेड़ा आ गए।यहां एक कपड़ा बुनने वाले गुरु पाण्डेय का आश्रम था,इसमें वे उनके शिष्य बन गए।यही बिरसा को रामायण ,महाभारत और धार्मिक ग्रंथों की शिक्षा मिली कि किस तरह युवा राम ने अत्याचारी रावण और कृष्ण ने दुराचारी कंस का राज समाप्त किया। चाईबासा मिशन में पढ़ते हुए बिरसा मुण्डा ईसा मसीह के धर्म परायण सेवा और त्याग से प्रभावित हुए थे।ईसा मसीह की 10 आज्ञाओं को उन्होंने आत्मसात कर लिया था।इस तरह बिरसा मुण्डा ने अपने जीवन में ईसा मसीह,राम और कृष्ण के आदर्श को ग्रहण कर लिया था।उन्हें लगा कि जिस तरह ये महापुरुष अपने युग का नेतृत्व कर सकें, तो क्या मैं अपने समाज और देश(अबुआ दिशुम) का नेतृत्व नहीं कर सकता?उन्होंने जड़ी बूटियों से इलाज करना और सेवा भाव को अपने जीवन में प्रेम से स्वीकार करना शुरू किया।उनका इलाज चमत्कारी प्रभाव डालने लगा।बिरसा का व्यक्तित्व आकर्षक, जादुई और चुंबकीय तो था ही।इनकी वाणी में भी ओजस्विता थी।ये राम की तरह तीर धनुष चलाते,कृष्ण की तरह मधुर बांसुरी बजाते और ईसा मसीह की तरह लोगों की सेवा और प्रेम करते थे।मिशनरियाँ और अंग्रेज सरकार इनके बढ़ते प्रभाव से आतंकित हुई।ये बिरसा को पागल घोषित करने में लग गए।बिरसा ने अंग्रेजों तथा मिशन के प्रति आग उगलना शुरू कर दिया और अबुआ दिशुम अबुआ राज के लिए लोगों को तैयार किया।

1881 से 1890 तक बिरसा मुण्डा ने अंग्रेजों और ईसाई मिशनरियों के केन्द्रों को अपना निशाना बनाया क्योंकि ये दोनों इनके खून पसीने से बनाए खूटकट्टी जमीन हड़प रहे थे और लालच देकर धर्म परिवर्तन कर रहे थे।आरंभ में इनका आंदोलन अहिंसक रहा,परंतु हिंसा का रास्ता अपनाए बिना इनके धर्म और धरती की सुरक्षा संभव प्रतीत नहीं हो रही थी।इन्होंने एलान कर दिया कि साहब साहब एक टोपी;जो अंग्रेज हैं और जो इनको मानते हैं ,वे सभी एक हैं।फलतः थानों और गिरिजा घरों में आग लगायी जाने लगी और पुरोहितों पर तीरों से आक्रमण किया जाने लगा।

3 महात्मा और भगवानरू–1890 से 1900 तक बिरसा मुण्डा महात्मा बिरसा मुण्डा हो गए थे और फिर ये धरती आबा के नाम से पुकारे जाने लगे।बाद में लोग इन्हें बिरसा भगवान भी कहने लगे और लोग इनके दर्शन के लिए दूर दूर से आने लगें।आदिवासियों के सर्वागीण शोषण से मुक्ति के लिएअंग्रेजों और उनके अनुयायियों को समाप्त करने की योजनाएं बनने लगी।केले के थम्भ को जैसे एक ही वार में काटकर गिरा दिया जाता है ,उसी तरह देश के इन गोरे और उनके सहयोगियों को काट डालने की घोषणा हुई।यह देश मुण्डाओं का है,ये दिकू अंग्रेज कहाँ से हम पर शासन करने आ गए!

बिरसा की योजना से अंग्रेज बहादुर के कान खड़े हो गए। 26 अगस्त 1893 को अंग्रेज एस.पी.मियर्स,फादर लास्टी और अन्य लोभ में फंसे मुण्डाओं के सहयोग से बिरसा मुण्डा पकड़ा गए। सुगना मुण्डा ने अपने बेटे की गिरफ्तारी का जमकर बिरोध किया।सुगना को भी कैद कर लिया गया।

महारानी विक्टोरिया के जुबली समारोह में ढ़ाई साल की सजा काटकर बिरसा मुण्डा जेल से रिहा हो गए।अपने पिता के हत्यारों के प्रति बिरसा मुण्डा का उलगुलान और उग्र हो गया।डोम्बारी पहाड़ और शैल रकब पहाड़ियों पर क्रांति कारियों की सभा होने लगी कि कैसे मुण्डा देश को अंग्रेज हीन कर दिया जाए। 7 जनवरी 1900 को बिरसाइयो ने खूंटी थाना घेरकर उसमें आग लगा दी। बिरसा पकड़े न जा सके।ये जंगलों में गुप्त सभाएं करते थे। 9 जनवरी 1900 को जिलाधीश स्ट्रीट फील्ड, कमीश्नर फोरबीस ने बिरसा मुण्डा को समर्पण के लिए आदेश जारी किया।शैल रकब में सभा चल रही थी।बिरसा क्योंकर समर्पण करता!फलतः दोनों ओर से युद्ध शुरू हो गया।एक ओर तीर धनुष, ढेलकुसी तो दूसरी ओर गोली बंदूक चलने लगी।इस युद्ध में शैल रकब की पहाड़ी लाल हो गई।बिरसा के लगभग 400 क्रांतिकारी साथी मारे गए,जिसमें जवान बूढ़े बच्चे और औरतें भी थी।बिरसा अपनी साली(सहयोगिनी) के साथ चाईबासा के घने जंगलों में भाग गए।अंग्रेज उन्हें ढूढते रहे और घूम घूम कर

उनकी सभाएँ चलती रही।

बिरसा मुण्डा पर 500/रुपये का इनाम घोषित हुआ।गया मुण्डा के घर छापा मारा गया।गया मुण्डा का सारा परिवार बहादुरी के साथ लड़ता रहा।गया मुण्डा और उनके परिवार को उनकी वीरता और बलिदान के लिए सदा याद किया जाएगा। पर बिरसा को पकडने का सारा प्रयास निष्फल रहा।

4 फरवरी 1900 को जराईकेला के रोगतो गांव के सात मुण्डाओं ने–रात में सोए हुए बिरसा को खाट समेत बांधकर बंदगांव ले आए और अंग्रेजों के हवाले कर दिया।बंदगांव से बिरसा को खूंटी लाया गया।स्ट्रीट फील्ड जिलाधीश ने रांची के मजिस्ट्रेट डब्ल्यू एस. कुटूस की अदालत में मुकदमा कर दिया।वैरिस्टर जैकब ने बिरसा की पैरवी की।लेकिन फैसले के पहले ही 9 जून को रांची जेल में बिरसा को मार दिया गया और हैजे से उनकी मृत्यु घोषित कर दी गई।बिरसा की मृत्यु आज भी संदिग्ध है।आनन फानन में बिरसा को कोकर ,रांची के डिस्टलरी पूल के पास गोंयठे से आधा अधूरा जलाकर नाले में बहा दिया गया।इस तरह महान स्वतंत्रता सेनानी झारखंड का धरती आबा शहीद हो गया।

4 छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम के जनकरू–बिरसाइयतों ने अपने गुरु के प्रति आस्था बनाए रखी।अल्पायु में जिस वीरता,सूझ बूझ,राष्ट्र प्रेम,जाति,धर्म,समाज प्रेम का परिचय बिरसा मुण्डा ने दिया वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।बिरसा आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि है–छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908,सी.एन.टी.एक्ट जिसके कारण आज भी आदिवासियों की जमीन बची हुई है।यह बिरसा मुण्डा की देन है।इतिहास में ऐसे महामानव सदियों में कभी कभी जन्म लेते हैंरू–

हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर अल्मा

इकबाल की ये पंक्तियां महापुरुषों के प्राकट्य का संकेतन है।

इतिहास साक्षी है कि भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के अथक प्रयास से 15 अगस्त 1947 को जब भारत आजाद हुआ, उनका सपना मानो साकार हुआ। इसी 15 अगस्त 1947 को विदेशी शासन के काले बादल छटे थे, विदेशियों के अत्याचारों का करका पात बंद हुआ था। उनके शोषण का शोणित स्राव रुका था, उस दिन की उषा वंदिनी नहीं थी ,उस दिन की सुहावनी किरणों पर दासता की कोई परछाई नहीं थी, उस दिन कहीं भी गुलामी की दुर्गंध नहीं थी ।उस दिन का सिंदूरी सवेरा पक्षियों की चहचहाहट और देशवासियों की खिलखिलाहट से अनुगूंजित हो रहा था ।जनजीवन ने मुद्दत के बाद नई अंगड़ाइयां ली थी, एक नई ताजगी का ज्वार सर्वत्र लहरा रहा था।

5 तप त्याग की मूर्तिरू–धरती आबा ने ना घर की चिंता की न परिवार की अपितु उनके समक्ष राष्ट्रहित ही सर्वोपरि रहा ।ऐसे ही स्वतंत्रता सेनानियों को नमन करते हुए राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा हैरू–

नमन उन्हें मेरा शत बार।
सूख रही है बोटी बोटी,
मिलती नहीं घास की रोटी,
गढ़ते हैं इतिहास देश का, सहकर कठिन सुधा की मार।
नमन उन्हें मेरा शत बार।
जिनकी चढ़ती हुई जवानी, खोज रही अपनी कुर्बानी, जलन एक जिनकी अभिलाषा, मरण एक जिनका त्योहार।
दुखी स्वयं जग का दुख लेकर, स्वयं रिक्त सबको सुख देकर,
जिनका दिया अमृत जग पीता, कालकूट जिनका आहार।टेक
वीर तुम्हारा लिए सहारा,
टिका हुआ है भूतल सारा,
होते तुम ना कहीं तो कब का, उलट गया होता संसार।
चरण धूलि दो शीश लगा लूं,
जीवन का बल तेज जगा लूँ,,
मैंन निवास जिस मुक स्पन का,
तुम उसके सक्रिय अवतार।
नमन उन्हें मेरा सत बार।

6 स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ योद्धा रू–बिरसा मुण्डा स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ योद्धा रहे हैं। लिए गए संकल्प से वे कभी भी पीछे नहीं मुड़े। चाहे कितनी ही विपत्तियां राह में रोड़े बनकर आईं, लेकिन वे ना तो मुड़े न ही पीछे हटे। ऐसे ही भारत मां के कर्म वीरों के लिए खड़ी बोली के प्रथम महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने अपनी श्कर्मवीरश शीर्षक लिखा है–

देख कर बाधा विविध बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं।
काम कितना ही कठिन हो,
किंतु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो,
वीर दिखलाते नहीं।
हो गए एक आन में,
उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में,
वे ही मिले फूले फले।।

भारत के ऐसे कर्मयोगी पर भारतवासियों को नाज और ताज

है।

7 झारखंड के नव निर्माताः–

आधुनिक झारखंड के नव निर्माण में जिन अनेक महापुरुषों का प्रमुख योगदान है,उनमे बिरसा मुण्डा का स्थान सर्वोपरि है।उनके उलगुलान के कारण ही आजादी की लड़ाई में गति आई।उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और पूरी जवानी जेलों में काट दी।

8 निष्काम कर्मयोगीः–

बिरसा मुण्डा निष्काम कर्मयोगी थे। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि ष्योगरू कर्मसु कौशलम् ष्अर्थात् कर्म की कुशलता का नाम ही योग है। बिरसा मुण्डा जीवन पर्यंत अपने कर्म से विमुख नहीं हुए ,अपितु अपने कर्मों को कुशलता पूर्वक निष्पादित करते रहे।

9 परोपकारी व्यक्तित्व के धनीरू–

बिरसा मुण्डा स्वयं तो आगे बढ़े ही समाज के दूसरे लोगों को भी अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़ाया।राष्ट्र कवि दिनकर ने लिखा है कि यह सुधा गरल वाली धरती उसका नमन, वंदन और अभिनंदन करती है,जो स्वयं के साथ साथ दूसरों का भी बेड़ा पार कराएरू–

कौन बड़ाई चढ़े श्रृंग पर,
अपना एक बोझ लेकर?
कौन बडाई पार गए यदि,
अपनी एक तरी खेकर?
सुधा गरल वाली यह धरती,
उसको सीस झुकाती है।
खुद भी चढ़े साथ ले झुककर,
गिरतों को बाहें देकर।

10 पारस एवम् चुंबकीय व्यक्तित्व के स्वामीरू–

बिरसा मुण्डा का आचरण एवम् स्वभाव ऐसा था कि जो भी व्यक्ति एक बार उनसे मिलता, वह नहीं चाहने पर भी उनका हो जाता था।जिस प्रकार पारस बिना किसी भेदभाव के हर प्रकार के लोहे को अपने संस्पर्श से सोना बना देता है,उसी प्रकार धरती आबा अपने से मिलने वालों को सोना बना देते थे।गया मुण्डा एवम् अन्य इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।ऐसे ही पारस एवम् चुंबकीय व्यक्तित्व वालों के लिए महाकवि तुलसी ने लिखा हैरू–

सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई।

11 अप्रतिम उदार एवम् दानीरू–

लोग कहते हैं कि झारखंड में अनेक राजनेता हुए और भविष्य में भी होंगे,लेकिन धरती आबा की तरह होंगे या नहीं इसमें पूरा पूरा संदेह है।आज तक उनके दरबार से कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी कुल,धर्म या जाति का हो,निराश या खाली हाथ नहीं लौटा–ऐसी थी उनकी उदारता और दानशीलता।तुलसी की विनय पत्रिका के शब्दों में कहना चाहें तोः–

ऐसो को उदार जग माही।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।

सुप्रसिद्ध कथाकार सुदर्शन की कहानी श्हार की जीतश के शब्दों को उधार लूं तो कहा जा सकता है कि श्ऐसा मनुष्य मनुष्य नहीं बाबा भारती की तरह देवता होता है,जिन्होंने निज की हानि को मनुषत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया है।श्धरती आबा ऐसे ही देव तुल्य महापुरुष थे,जो स्वर्ग से इस भूलोक को स्वर्ग बनाने आए थे।

संस्कृत की नीति परक सूक्ति में कहा गया है कि स्वर्ग से आए हुए जीवात्मा में 4 लक्षण पाए जाते हैंरू दानशीलता, वाणी में मधुरता, देवार्चनता और आचार्यतारू

स्वर्गाच्युतानामिह जीवलोके,
चत्वारि चिह्नानि वसंति देहे।
दान प्रसंगो, मधुरा च वाणी,
देवार्चनं पंडिततर्पणश्च।।

चाणक्य नीति श्लोक में यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार सोने की परीक्षा घर्षण, छेद, ताप और पीटने से होती है ,उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष की परीक्षा उसकी विद्वता, सुशीलता कुलीनता और कर्मठता से होती है–रू

यथा चतुर्भिरू कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणाच्छेदेनतापताडनै
तथा चतुर्भिरू पुरुषरूपरीक्ष्यते,
श्रुतेन,शीलेन,कुलेन कर्मणारू।।

इन कसौटियों पर धरती आबा बिरसा मुण्डा सोलह आने खरे उतरते हैं। ऐसे नश्वर संसार में थोड़े नरवर हैं जो मरणोपरांत भी अमर हैं।महाकवि तुलसी ने इसकी घोषणा की है कि ते नरवर थोड़े जग माही। ऐसे महान अमर स्वतंत्रता सेनानी कर्मयोगी ,धरती आबा का परलोक गमन 9.जून1900 को हो गया।हम उनके बताए मार्ग पर चलें और उनके सपनो को साकार करें यही उनके प्रति सच्ची जयंती और श्रद्धांजलि होगी।

बचपन में हिन्दी की पाठ्य पुस्तक में एक पाठ पढ़ा था जो आज तक मानस पटल में है,जो उनकी वीरता की कहानी पर केन्द्रित हैरू–बिरसा ने बाघ मारा।यह शीर्षक द्वै अर्थी है।जंगल में बाघ मारा और अंग्रेज जैसे बहादुरों को भी मारा।उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक शोध कार्य हुए हैं और काव्य ग्रंथ लिखे गए हैं उनमें कुमार सुरेश सिंह का शोध ग्रंथ बिरसा मुण्डा और उनका आंदोलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।न्याय मूर्ति विक्रमादित्य प्रसाद ने उनपर 15 सर्गों का एक महाकाव्य लिखा है।बिरसा मुण्डा को श्रद्धांजलि अर्पित

करते हुए लिखा है किः–

भगवान कभी क्या मरता है,
है उलगुलान भी अंतहीन।
बिरसा के मर जाने से,
क्या यह आभा होगी कभी क्षीण?
जय हो इस क्रांति ज्वाल की,
जय हो उस भीषण आंधी की।
जय हो धरती के आबा की,
जय हो उस पहले गांधी की।

धरती आबा का संकल्प और नारा थाः–

सारा लहू बदन का,जमीं को पिला दिया,
हम पर वतन का कर्ज था,हमने चुका दिया।
जय हिंद,जय झारखंड जय श्री धरती आबा।

डॉ0 तपन कुमार शाण्डिल्य कुलपति
डा श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय ,
रांची
चलभाषः 9431049871

67

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में जनवादी बोध

पुनीत शर्मा

सारांश–

जनवादी कवि अपनी कविता में जनता के सुख–दुःख को व्यक्त करता है। वह अपने काव्य में जनता को महत्त्व देता है तथा जनवाद का समर्थक या अनुयायी होता है। जनकवि जो अपनी खुली आँखों से देखता, समझता व परखता है, उसी अनुभूति को अपने काव्य में अभिव्यक्त करता है। जब जनता पर भ्रष्टाचार, महंगाई, अन्याय व दमन के काले बादल मंडरा रहे हो तथा जनता का शोषण हो रहा हो तो वह मौन कैसे रह सकता है ? स्वतंत्रता के पश्चात् आम आदमी के संजोए हुए सपने टूट चुके थे। लोकतंत्र भ्रष्टाचारी नेताओं, न्याय के ठेकेदारों, मुजरिमों, बलात्कारियों के लिए सुरक्षा कवच साबित हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् के जनवादी कवियों ने जनता को न्याय दिलाने के लिए शासक वर्ग के सामने अपनी पुरजोर मांग उठाई और उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था से मुक्ति दिलाने का भरसक प्रयास किया।

मुख्य–शब्दः जनवादी कवि, जनवादी बोध, लोकतंत्र में भ्रष्टाचार।

भारत पर सैंकड़ों वर्षों तक विदेशी शक्तियों ने शासन किया। इस पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए हमारे असंख्य महापुरूषों ने अपना बलिदान दिया। अंततः भारतवासियों की विजय हुई और भारत देश परतंत्रता की बेड़ियों से सदा–सदा के लिए मुक्त हो गया। भारतीय जनता के हितार्थ भारतीय संविधान में लोकतंत्र की स्थापना की गई। जिन सुनहरे स्वप्नों को पूर्ण करने के लिए असंख्य क्रांतिकारियों ने अपना बलिदान देकर आजादी प्राप्त की थी, शासन वर्ग की लूट, भ्रष्टाचार, अन्याय व कालाबाजारी के कारण वे सभी स्वप्न नष्ट हो गए और भारतीय जनता स्वयं को ठगा सा महसूस करने लगी। एक सच्चा जनवादी कवि सच्चा जन हितैषी होता है और उसकी लेखनी जनता की आवाज बनकर शासक वर्ग के कानों तक पहुंचती है। वैसे तो स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक जनवादी कवि हुए हैं लेकिन यहाँ कुछ प्रमुख जनवादी कवियों का उल्लेख किया जा रहा है जैसे– नागार्जुन, सुदामा पांडेय 'धूमिल', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, अरूण कमल। इन कवियों का जनता के प्रति समर्पित भाव सराहनीय है।

जनवाद का अर्थ

जनवाद शब्द अंग्रेजी के 'डेमोक्रेसी' शब्द का हिन्दी रूपातंरण है। हिंदी में डेमोक्रेसी शब्द के लिए जनवाद के अतिरिक्त प्रजातंत्र, लोकतंत्र, जनतंत्र, लोकशाही आदि शब्दों का प्रयोग होता है। यह डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक भाषा के देमोस और क्रेटिन नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। देमोस का शाब्दिक अर्थ है–'जनता का शासन'। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के अनुसार, 'लोकतंत्र में सरकार का रूप जनता की, जनता के द्वारा एवं जनता के लिए (गवर्नमैंट ऑफ दि पीपुल, बाई द पीपुल, फॉर दी पीपुल) होता है।' जनवाद को समझने के बाद बोध शब्द का अर्थ जानना भी अनिवार्य है। बृहत् हिंदी कोश में बोध शब्द का अर्थ दिया है–''ज्ञान, जानकारी, जताना, सांत्वना, तसल्ली।' इस प्रकार जनवादी बोध का अर्थ हुआ–जनता हितार्थ चिंतन मनन करने वाला ज्ञान।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में आया जनवादी बोध

स्वतंत्रता के पश्चात् जनता का सरकार से विश्वास उठ गया था। देश में बढ़ती हुई महंगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय व दमन के विरूद्ध विद्रोह के स्वर गूंज उठे थे। तत्कालीन सरकार राजनेताओं तथा पूंजीपतियों की पोषक बन चुकी थी और आम जनता का शोषण हो रहा था। इस अराजकता के विरूद्ध साधारण जनता में बड़ा आक्रोश था। ऐसे में सम्पूर्ण क्रांति के प्रेरक जे.पी. नारायण जी का उदय हुआ और उनके नेतृत्व में प्रताड़ित व्यवस्था के खिलाफ साधारण जनता एकजुट होने लगी। नागार्जुन जी जनवादी कवि हैं और आम जनता की मनोदशा से परिचित हैं। अपनी कविता 'क्रांति सुगबुगाई है' में इनका क्रांति को समर्थन चित्रित है।

'क्रांति सुगबुगाई है/करवट बदली है क्रांति ने
मगर वह अब भी उसी तरह लेटी है
एक बार इस ओर देखकर/उसने फिर से फेर लिया है
अपना मुंह उसी ओर'

जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति के समय सभी युवा क्रांतिकारी एक जुटता के साथ प्रदर्शन कर रहे थे। सरकार ने इस आंदोलन को दबाने के लिए बर्बरता दिखाई। अनेक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। जनवादी कवि अरूण कमल ने अपनी कविता 'खबर' में मारे गए लोगों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त की है

एक खबर जो कहीं नहीं थी
किश्ता गौड़ को फांसी हो गयी
एक खबर जो खबर नहीं थी

भूमैया को फांसी हो गई।

जनवादी कवि सुदामा पांडेय 'धूमिल' ने अपनी कविता 'रोटी और संवाद' में आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त किया हैं। वे कहते हैं कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में संसद की मौनता, आँखे होकर भी अंधा होना बहुत बड़ी विडम्बना है। देश में लूट मची है और लूटेरों को राजनीतिक सहयोग है। अर्थात् संविधान और संसदीय प्रणाली में अवैध को वैध बनाने का गोरखधंधा चल रहा है। काम करने वाले मेहनतकश का पसीना पानी–सा बहाया जा रहा है, उसका खून चूसा जा रहा है। पेट भरने के बाद रोटी से खेलता अमीर कवि ने हमेशा देखा और दूसरी तरफ भूख से तड़पते लोगों को भी। अतः धूमिल का मन विद्रोह कर उठता है–

''एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ......
यह तीसरा आदमी कौन है ?
मेरे देश की संसद मौन है।''

26 जून, 1975 को अंतरिम आपातकाल की घोषणा कर दी गई। जो राजनेता और लोग इसका विरोध कर रहे थे, उन्हें पकड़कर जेलों में बंद कर दिया गया। उन्हें तरह–तरह की मानसिक व शारीरिक यातनाएँ दी गई। इस अमानवीय कृत्य को देखकर भला जनता का हित चाहने वाले कवि कैसे मौन रह सकते थे। आपातकाल के समय सरकार द्वारा सत्ता के दुरूपयोग का वर्णन नागार्जुन ने अपनी कविता 'सूरज सहम कर उगेगा' में इस प्रकार किया है–

''लगता है / हिंद के आसमान में
सूरज पर भी लागू होंगे / आपातकाल स्थिति वाले आर्डिनेंस
लगता है / हिंद के आसमान में
अब सूरज सहम कर उगेगा।''

भारत एक विशाल देश है जिसमें अनेक भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं। हमारे देश के राजनेता अपने संकुचित स्वार्थ की पूर्ति हेतु भाषाई आधार पर दंगे करवाते हैं। भाषाई आधार पर एक राष्ट्र के लोगों को बांटने का कार्य अत्यंत निंदनीय है। भाषा, धर्म, जाति और वर्ग की राजनीति किसी भी राष्ट्र के लिए विष के समान होती है। सुदामा पांडेय 'धूमिल' जी की कविता 'भाषा की रात' में इस कड़वे सत्य का उद्घाटन किया गया है–

'हाय! जो असली कसाई है / उसकी निगाह में
तुम्हारा यह तमिल दुःख / मेरी यह भोजपुरी पीड़ा का भाई है
भाषा उस तिकड़मी दरिंदे का बोध है
जो सड़क पर और है / संसद में और है।'

जनवादी कवि त्रिलोचन जी अपनी कविताओं में समाज में व्याप्त पुरातनता व जड़ता का विरोध करते हैं और समाज कल्याण के लिए नए मूल्यों का खुले ह्रदय से स्वागत करते हैं। वह अपने देश की जनता से नए राष्ट्र के निर्माण में भागीदारी का आह्वान करते हैं। उनकी यह भावना उनकी कविता 'यह चिंता वह चिंता' में स्पष्ट परिलक्षित होती है–

'नये विश्व की रचना हमको ही करनी है
इस पुराने विश्व के पुराने पाप
जीवन के पुण्य खाये जा रहे हैं
जीवन का त्रास हटे ऐसी जुगत करनी है
फिर अपने भारत की खोज में।'

जनवादी कवि सुदामा पांडेय 'धूमिल' कहते हैं कि आजादी के बाद लोगों की भलाई के लिए लोकतंत्र की स्थापना की गई। लेकिन स्वार्थी राजनेताओं ने कभी भी लोगों की भलाई के लिए प्रयास नहीं किया। अब जनता का राजनेताओं से विश्वास उठ चुका है, जो कुर्सी का प्रयोग सिर्फ अपने फायदे के लिए करते हैं। हमारे देश में राजनेताओं ने जनतंत्र को एक मजाक बना दिया है। इस विषय में सुदामा पांडेय 'धूमिल' की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

'यह जनतंत्र
जिसकी रोज सैंकड़ों बार हत्या होती है
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है।''

आज भी हमारे देश में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। देश के कुटिल राजनीतिज्ञ चुनाव के समय तो गरीबों का हमदर्द बन 'गरीबी हटाओ' का नारा लगाते हैं परन्तु चुनाव जीतने के पश्चात् उन्हें खून के आँसू पीने पर मजबूर कर देते हैं। सरकार पूंजीपतियों की मित्र और गरीबों की दुश्मन बन जाती है। इसी प्रकार का कटु सत्य कवि नागार्जुन की कविता 'काली माई' में चित्रित है। इसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री की गरीब विरोधी नीति का पर्दाफाश हुआ है।यथा–

'मुण्ड माल के लिए गरीबों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है
कितना खून पिया है जाती नहीं खुमारी
सूर्ख और लम्बी है मइया जीभ तुम्हारी।'

तत्कालीन प्रताड़ित करने वाली व्यवस्था में आम आदमी का जीवन दुभर हो गया था। चुनाव के समय अनेक दल प्रकाश में आते हैं। सत्ता पक्ष के खिलाफ पुरजोर आवाज उठाते हैं और जनता से वादा करते हैं कि यदि हमारी सरकार बनी तो हम लोगों के जीवन में सुधार कर देंगे और देश से बेरोजगारी और गरीबी को खत्म कर देंगे। लेकिन सत्ता मिलने पर वो भी जनता के समक्ष आंखे तरेरने लगते हैं। भोली–भाली जनता स्वयं को ठगा सा महसूस करती है। धूमिल जी की कविता 'पटकथा' में कुर्सीतंत्र की यह घृणित राजनीति अंकित है। यथा–

'हाँ, यह सही है कि कुर्सियां वहीं हैं
सिर्फ टोपियां बदल गयी हैं और
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल–उछल कर
अपनी जगह बदल रहे हैं।'

सरकारी जनसेवक बन जनता को प्रताड़ित व लूटने का कार्य करने वाले पुलिसतंत्र पर केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता 'एक ठेठ देहाती, कार्यकर्त्ता के प्रति' में करारा व्यंग्य–प्रहार किया है। यथा–

'एक और कोई चेहरा
जिसे थाने पर बुलाया गया है
मुझे थाने से चिढ़ है
मैं थाने की धज्जियाँ उड़ाता हूँ।'

पुलिस का कार्य जनता की रक्षा करना है, परन्तु जब जनता के रक्षक ही भक्षक बन जाएंगे तो व्यवस्था किस के भरोसे की जाए ? यह ज्वलंत प्रश्न समाज के समक्ष उभर कर सामने आया है।

क्रांति को सफल बनाने के लिए कवि समाज के सभी वर्गों को अपने आपसी मतभेद भूलाकर एकजुट होने के लिए कहता है। क्रांति कभी एक व्यक्ति से सफल नहीं हो सकती। जनवादी कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी कहते हैं कि सभी लोगों को अपने मन–मुटाव भूलाकर इस दमनतंत्र के विरोध के लिए तैयार होना होगा, तभी सफलता संभव है। क्रांतिकारियों की एकता का पाठ सक्सेना जी की कविता 'आग' में इस प्रकार स्पष्ट है–

'अब उनका और मेरा चेहरा एक हो गया है
हम सब एक अंगार हैं, एक लपट, एक आग
एक शब्द, एक अर्थ, एक राग
एक चरण, एक यात्रा, एक राह
एक सकंल्प, एक नारा, एक चाह
समर्पित, एक क्रांति को।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जनवादी कवि जनता के सुख–दुःख का सच्चा साथी होता है। जनकवि समाज में जिस कटु सत्य को देखता, समझता व परखता है, उसी को अपने काव्य में अभिव्यक्त करता है। जब जनता पर महंगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय व दमन के काले बादल मंडरा रहे हों तो वह मौन कैसे रह सकता है ? स्वतंत्रता के पश्चात् आम आदमी के संजोए हुए सपने टूट चुके थे। स्वार्थी नेता कुर्सी का प्रयोग सिर्फ अपनी भलाई के लिए कर रहे थे, न की जनता की भलाई के लिए। देश में महंगाई और भ्रष्टाचार दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। स्वतंत्रता के पश्चात् के जनवादी कवियों ने जनता की वकालत करते हुए शासक वर्ग के सामने अपनी पुरजोर मांग उठाई और उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था से निजात दिलाने का भरसक प्रयास किया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में जनवादी कवियों द्वारा जनता को सरकार की गलतियों के विरूद्ध जाग्रत करना सराहनीय व प्रेरणादायक है।

संदर्भ सूची

1. बृहत् हिन्दी कोश, पृ0 825
2. इनसाइक्लोपीडिया, ब्रिटानिका, भाग–1, पृ0 1206
3. नागार्जुन, चुनी हुई रचनाएँ, भाग–2, (सम्पादक–शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014) पृ0 210
4. सुदामा पांडेय 'धूमिल', संसद से सड़क तक, (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009) पृ.93
5. अरूण कमल, अपनी केवल धार,(वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1980) पृ0 17
6. नागार्जुन, चुनी हुई रचनाएँ, भाग–2, (सम्पादक–शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014) पृ0 140
7. सुदामा पांडेय 'धूमिल', संसद से सड़क तक, (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009) पृ. 124
8. केदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो,(राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019) पृ. 11–12
9. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जंगल का दर्द, (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019) पृ. 19

पुनीत शर्मा

नेट, एम.ए., बी.एड़,

भिवानी (हरियाणा)

मोबाईलः 8529439625

झारखण्ड़ में बोकरो जिला के बिरहोर जनजाति का आर्थिक स्थिती

हरिलाल यादव

सारांश–

भारत में प्रमुख जनजातियों में से एक बिरहोर जनजाति है। यह झारखण्ड़ राज्य में बोकरो जिला का एक बहुत गरीब और पिछड़ी हुई जनजाति है। इस जनजाति के लोग पहाड़ी चोटियों तथा जंगलो के बाहरी इलाकों में छोटी–छोटी समूहों में अस्थायी झोपडियों में रहतें थें। किन्तु वर्तमान समय में बिरहोर जनजाति के लोग गांव के किनारें या इस के आस–पास कच्चा मकान जो लकडी और पेड़ के टहनी तथा बांस से स्थायी घर बनाकर निवास कर रहे है। बोकरो जिला में बिरहोर जनजाति कई प्रखण्ड़ो में बसें है। इस बिरहोर जनजाति के जीवन–यापन का मुख्य स्रोत प्रकृति पर ही आधारित था। किन्तु आज बिरहोर जनजाति के लोगो को छोटानागपुर की जंगली जनजाति के नाम से जाना जाता या पुकारा जाता है। इस बिरहोर जनजाति के लोगों को आर्थिक जीवन ठीक से नहीं चल पाता था, पुरी मेहनत करने के बाद भी भर पेट भोजन नसीब नहीं हो पाता था। बिरहोर जनजाति की आर्थिक अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृशि पर निर्भर नहीं है। भूमि की कमी के कारण बिरहोर जनजाति के लोग कृशि कार्य नहीं कर पाता क्योंकि अधिकांश बिरहोर जनजाति के पास स्वंय की भूमि नहीं है। इस बिरहोर जनजाति के लोगों के पास जो कुछ थोड़ी बहुत भूमि है, उससे मोटे अनाज, चावल, गेहूँ तथा तिलहन दलहन आदि के खेती करते है। किन्तु इससे अपने परिवारों की सभी आवश्यकताओं के पुरा नही कर पाते।

बिरहोर जनजाति के परिवार पितृवंशी तथा पितृसत्तात्मक है। कुछ समय पहले तक बिरहोर जनजाति के लोग खाद्य–संग्रह करने, शिकार करने, मछली मारने, बन्दरों के खाल तथा जंगलों का जडी–बुटी छोटे–छोटे बिमारियों की उपचार हेतु बेचा करते थें। इस जनजाति की एक और विशेश बात यह है कि बन्दरों के नाच देखाना मुख्य पेशा था। किन्तु अब यह केवल नाम मात्र का ही रह गया है। इस बिरहोर जनजाति के लोग मांसाहारी है। जो कई प्रकारों की पशुओं, पक्षियों तथा बन्दरों की मांस बडी चाव से खाते थे। किन्तु अब नहीं के बराबर है। अब वर्तमान समय में बिरहोर जनजाति के लोग आद्युनिक व्यवसायों सडकों, खानों तथा कारखानों में अदक्ष श्रमिक के रूप में कार्य करने लगे है एवं कुछ सरकारी नौकरियाँ भी करने लगे है। जिससे बिरहोर जनजाति के लोगों के जीवन सुधर रहें है। बिरहोर जनजाति की स्त्रियाँ भी सब्जी, फलों, मछली इत्यादी के व्यवसाय करने लगी है, इतना ही नहीं पुरूशों के साथ कन्धो से कन्धा मिलाकर रोजगार की ओर बढ़ने लगी है। जैसे सड़को, कार्यलयों, खानो तथा कारखानों इत्यादि में कार्य करती है जिससे अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहयोग कर रही है। बिरहोर जनजाति शिक्षा की कमी के कारण अपनी आवश्यकताओं को पुरा करने मे असमर्थ है। शिक्षा विकास की कुँजी है। चाहें वह शारीरिक विकास हो मानसिक विकास, आर्थिक विकास, राजनितिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांस्कृतिक विकास है। शिक्षा के आभाव में किसी भी प्रकार का विकास असम्भव है। यही वजह है कि इस जनजाति के लोग काफी पिछड़ी हुई है। बिरहोर जनजाति के लोग मांसाहारी होने के कारण मांस खाते है, तथा हडिया, महुआ का शराब भी पीते है। इस जनजाति शराब को पवित्र मानते है, गंगा जल के समान । इस जनजाति के परिवारो के लोगों द्वारा कई धार्मिक अनुशठान तथा संस्कार भी करते है। इनका मुख्य देवता है, 'बोंगा' जो सूर्य देव को मानते है।

बिरहोर जनजाति में मृत्यात्माओं को पशु बली देने का प्रचलन है और हडियाँ तथा शराब चढाने का भी रीति–रिवाज है। इस लिए बिरहोर जनजाति के लोग हडियाँ तथा शराब को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते है। परन्तु हडियाँ शराब को पीने की आदत बना लेना गलत है। शराब पीने से लोगो को कई प्रकार की हानि होती है। जैसे आर्थिक क्षति, शारीरिक क्षति, मानसिक क्षति तथा सामाजिक क्षति। शराबियों को परिवार के हेतु भोजन की व्यवस्था हो या नही, किन्तु शराब चाहिए। जिससे परिवार की आर्थिक क्षति होती है। शराबी का शरीर कमजोर होता चला जाता है, और गंभीर बिमारी से ग्रसित हो जाता है। जो कुछ बचा हुआ धन संपत्ति इसके ईलाज में सब समाप्त हो जाता है। शराबी का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। इतना ही नही शरावियों को आते–जाते देख लोग अपना रास्ता बदल लेते है। इस शराबियों को न तो परिवारों में सम्मान मिलता है और न समाजो में। बिरहोर जनजाति का गरीब होना तथा पिछड़ी हुई रहना सबसे बड़ी कारण हडियाँ तथा शराब पीता रहा और पशुओं की भाँति अपना जीवन बिताने लगे।

बिरहोर जनजाति अपने विकास के बारे में, अपने परिवार के विकास के बारे में, तथा अपने समाज के विकास के बारे में चिंतन करना बिल्कुल छोड दिए। एक कारण यह भी रहा कि इस जनजाति की जनसंख्या घटते चली गयी, क्योंकि कुपोशण हावी रहा। सरकार द्वारा पक्का मकान अर्थात प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत मिल रहा है और इस जनजाति के लिए विशेश राशन कार्ड के द्वारा विशेश

राशन दिया जा रहा है, साथ ही साथ व्यवसाय हेतु विशेश सहायता राशि मिल रहा है। इससे स्वेच्छा अनुसार व्यवसाय कर सकते है : जैसे गोपालन, बकरी पालन तथा मुर्गी पालन इत्यादि। बिरहोर जनजाति में अर्थव्यस्था में सुधार हो रहा है। किन्तु केवल सरकार पर ही निर्भर रहना इस जनजाति के उत्थान सम्भव नही है। इसके लिए शिक्षित वर्ग, पूँजीपति वर्ग, सामाजिक वर्ग तथा राजनीतिक वर्ग अर्थात सभी वर्गो को अपने–अपने स्तर से सहयोग करने की आवश्यकता है तभी बिरहोर जनजाति के उत्थान हो सकता है और अपने समाज में एक स्थान सुनिश्चित कर सकते है।

प्रजातीय आधार पर बिरहोर जनजाति की शरीरिक विशेशताएँ प्रोटो–ऑस्ट्रेलॉयड स्कन्ध के अधिक समीप नही है। इस जनजाति के लोगो का शरीर की बनावट इस प्रकार था। काला रंग, छोटा कद, लम्बा कपाल, चौडी नाक, काले और लहरदार बाल तथा मोटे होंठ किन्तु अब वर्तमान समय में इस जनजाति के शारीरिक बनावट में परिवर्तन है। खान–पान में भी कुछ सुधार हो रहा है। रहन–सहन में भी पहलें की अपेक्षा अच्छा है। पहनावा–ओढावा में भी काफी बदलाव देखने को मिल रहा है। शिक्षा के प्रति कुछ जागरूक एवं अग्रसर होते जा रहें है। राजनीतिक चेतना भी हो रहा है। मतदान के अधिकार को भी समझने लगें है। चुनाव में अपना मत का मुल्य को समझते है।

बिरहोर जनजाति के लोगों का कोई स्थायी घर नही था। इस जनजाति जंगलों में रहने से इन क्षेत्रो की जलवायु में भी बहुत विशमता होने को मिलती, गर्मियों के मौसम में यह स्थान बहुत गर्म हो जाते है, जबकि जाड़े के मौसम में इनका तापमान इतना कम हो जाता है कि उसमें रह सकना बहुत कठीन हो जाता है। जंगली जलवायु के कारण इस क्षेत्र में काफी वर्शा होती है जिससे इस जनजाति की मृत्युदर बढती चली गयी और इनकी जनसंख्या घटती चली गयी। किन्तु अब वर्तमान समय में इस जनजाति का स्थायी अपना–अपना मकान है।

बिरहोर जनजाति के लोग संकुचित मानसिकता के होते है। इस जनजाति के लोग दूसरे समुदायों के लोगों से दूरी बनाकर रहते थे। इतना ही नहीं जंगल के ऐसे रास्ते को चयन करते कि किसी अन्य समुदायों से भेंट न हो। बिरहोर जनजाति के लोग गरीब और पिछड़ी हुयी रहने का एक कारण यह भी है कि अन्य समुदायों से अलग–थलग रहना। किन्तु आज के समय में दूसरे समुदायों से मिलने–जुलने में कोई संकोच नही करता है। इस जनजाति के लोग अपनी भाशा के साथ–साथ हिन्दी भाशा का भी प्रयोग करने में कोई दिक्कत नही होती है। बिरहोर जनजाति की भाशा मुड़ारी भाशा से लिया गया है। इस जनजाति की संस्कृति, धर्म, पूजा अनुश्ठान, विवाह इत्यादि बहुत कुछ मुंडारी जनजाति से मिलता–जुलता है।

निश्कर्श स्वरूप हम कह सकते है कि बिरहोर जनजाति अत्यन्त गरीब और पिछड़ी हुई जनजाति है। इस जनजाति के लोग संकुचित मानसिकता को त्याग कर दूसरे समुदायों के लोगों से मिलना–जुलना, उठना–बैठना तथा कन्धा से कन्धा मिलाकर कार्य करना, तथा साथ–साथ चनला, रहना, खाना सिख लिया है। बिरहोर जनजाति दूसरे समुदायों के सम्पर्क में आने के बाद शिक्षा के महत्व को समझने लगा है, और अपने बच्चे–बच्चियों को स्कूल भेजना, पढने हेतु, प्रेरित करना, प्रोत्साहित करना। इस जनजाति को सरकार द्वारा प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत पक्का मकान मिला है और दिया जा रहा है। विशेश सरकार द्वारा इस जनजाति को पिला कार्ड मिला है जो मुफ्त में एक मुफ्त राशन मिलता है। इससे इस जनजाति को रहने तथा परिवार की भरन–पोशण करने में दिक्कत कम होती है। इसके अतिरिक्त पेंशन योजनाओं का लाभ तथा बैंक द्वारा कम दर पर ऋण दी जाती है। जैसे गोपालन, मुर्गीपालन, तथा अन्य व्यवसाय हेतु। जिससे बिरहोर जनजाति के अर्थव्यवस्था पहले की अपेक्षा ठीक होती जा रही है।

बिरहोर जनजाति का उत्थान केवल सरकार की योजनाओं पर ही नही हो सकता । इस जनजाति के उत्थान हेतु तथा इसके सर्वागींण विकास के लिए सभी वर्गो के सहयोग की आवश्यकता है। जैसे शिक्षित वर्ग, पूँजीपति वर्ग, राजनीतिक वर्ग, सामाजिक वर्ग, तथा सांस्कृतिक वर्ग। बिरहारे जनजाति के लोगो को सभी वर्गो की सहयोग से ही समाजो में अपना एक स्थान सुनिश्चित कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथसूची :–

(1) कुमारी पी0 (2004) बिरहोर इन एथनोग्राफिक एटलस ऑफ इन्डियन ट्राईब्स इडीसस बाइ मेहता आर0 सी0 न्यू डेहली डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस।

(2) प्रेमी जे0 के0 (2014) बिरहोर द इनकांसिकोटला एकस्ट्रआर्डिनरी प्रीमिटिव ट्राइबल ग्रुप पी0 टी0 बी0 ऑफ इन्डियन रिसर्च जनरल एल हमेनिटीज एण्ड सोसियल साईसेस।

(3) डॉ. जी0 के0 अग्रवाल सेवा निवृत्तर प्रोफेसर समाजशास्त्र कुमायू विश्वविद्यालय, नैनीताल 2017 ट्राईब्स ओफ झारखण्ड़ साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

हरिलाल यादव (शोधार्थी)

ग्राम– मदनपुर, पो0 कुरूम्बा

थाना, चन्द्रपुरा, जिला–बोकारो

झारखण्ड़ पिन न0 828403

फोन न0– 7280922346

69

'संशय की एक रात' और आधुनिकताबोध

पुनीत शर्मा

सारांश–

श्री नरेश मेहता का खण्डकाव्य 'संशय की एक रात' नई कविता की विशिष्ट कृति है। इस कृति में कवि ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से समकालीन परिवेश के आधुनिक बोध को उभारा है। 'संशय की एक रात' में भगवान राम का व्यक्तित्व मर्यादा पुरूषोत्तम, रघुकुल शिरोमणि श्रीराम की अपेक्षा आधुनिक मानव के अधिक निकट है। इस कृति के 'राम' के माध्यम से कवि ने आधुनिक मानव के संशयग्रस्त और अधूरेपन की स्थिति को काव्यबद्ध किया है। प्राचीन रामकथा में राम उच्च मानवीय आदर्शों का रूप हैं, लेकिन श्री नरेश मेहता के राम आधुनिक मानव के खण्डित और विभाजित व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस कृति के चारों सर्गों–साँझ का विस्तार और बालूतट, वर्षा भीगे अंधकार का आगमन, मध्यरात्रि की मंत्रणा और निर्णय, तथा संदिग्ध मन का संकल्प और सवेरा में राम आधुनिक जीवन की संगति–विसंगतियों, विघटन, अनिश्चय और अनास्था के संदर्भ को प्रस्तुत करते हैं।

मुख्य–शब्दः आधुनिक मानव, आत्ममंथन, खण्डित व्यक्तित्व, सांस्कृतिक दृष्टि का बोध।

आधुनिकताबोध का अर्थ है– स्वचेतना अर्थात् अपने वातावरण और परिवेश के परिप्रेक्ष्य में अपने आप को देखना। नरेश मेहता के खण्डकाव्य 'संशय की एक रात' में आधुनिकताबोध के विभिन्न आयामों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। कवि के सृजनात्मकबोध ने सार्वभौम मानवीय दृष्टि को आत्मसात् किया है, फलतः उनकी रचना की परिधि और अंदाज स्वाभाविक रूप से आधुनिकताबोध से संपन्न हो गये हैं। कवि आधुनिकताबोध के विस्तार के मूल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्राथमिकता और प्राबल्य को स्वीकार करता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण निष्ठुर होकर सत्य को खोजता है और इस खोज के क्रम में श्रद्धा–विश्वास, परम्परा और धर्म किसी भी बाधा को सहने के लिए तैयार नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि तर्क की कसौटियों पर विषय को कसकर स्वीकार करती है। 'संशय की एक रात' में वैज्ञानिकता जनित आधुनिकता की अभिव्यक्ति मिलती है। काव्य में राम आस्था–अनास्था, विश्वास–अविश्वास, भ्रम एवं संशयग्रस्त आधुनिक प्रज्ञा के प्रतीक हैं। आज का मनुष्य इसी आधुनिकता से पीड़ित है। उसकी वैज्ञानिकता ने उसे किसी विषय के प्रति स्थिर विश्वास प्रदान नहीं किया है। हर विषय के प्रति तर्क–वितर्क करना उसका स्वभाव हो गया है। अनिर्णय एवं दोहरे मानदंडों का जीवन उसकी नियति है। 'संशय की एक रात' में राम आधुनिक मानव की भांति कहने लगते हैं कि–

''दो सत्य
दो संकल्प
दो–दो आस्थाएँ
व्यक्ति में ही
अप्रामाणिक व्यक्ति पैदा हो रहा है।''

श्री नरेश मेहता प्रकृति, अध्यात्म, निर्वेद, प्रेम और रोमानियत के रंग में रंगे होकर भी आधुनिकताबोध से परिपूर्ण हैं। ''नया तो मेरा युग है, मेरी प्रकृति है और सबसे नया मैं हूँ।'' प्राचीन के प्रति सम्मान और नवीनता का उद्घोष, श्री नरेश मेहता के कवि व्यक्तित्व को आधुनिकता का सार्थक संस्पर्श देता है।

''आधुनिक बोध से तात्पर्य उससे है जिसमें कवि समसामयिक जीवन में व्याप्त प्रश्निल स्थितियों, दारूण यंत्रणाओं, विवश जीवन, अभिशप्त व्यक्तित्व और अस्तित्व के प्रति खतरा अनुभव करता हुआ संकट के हर उस क्षण पर अपनी उपस्थिति बताता है, जहाँ जीवन निस्सार, बोझिल, अकेला और विवशता का पर्याय बन गया है।'' श्री नरेश मेहता सजग कलाकार हैं। उनके काव्य की भावभूमि उन्हें संस्कृति से समाज और सामाजिकता से आधुनिकता की ओर प्रेरित करती है। ''नरेश का काव्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से चार बिंदुओं का स्पर्श करता है– प्रकृति, संस्कृति, आधुनिक जीवन और तत्संबंधी समसामयिक चिंतन।''

''संशय की एक रात मूल्यों और मान्यताओं के ऊहापोह को प्रस्तुत करने वाला काव्य है। परस्पर संघर्ष, विपरीत मूल्यों और मान्यताओं को कवि ने वाणी दी है। एक प्रकार से नरेश ने प्राचीन मान्यताओं को समकालीन मूल्यों की कसौटी पर कसते हुए यह फेरबदल किया है।'' राम के द्वारा कवि ने आधुनिक मनुष्य की विवशता, पराजय और संकट को अत्यंत प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया है।

'' एक अनुत्तरित संशय का
सर्पवृक्ष
हरहरा रहा मुझमें
पीपल–सा

अहोरात्रा।''

आधुनिक विसंगतियों का राम में आरोपण तथा उनके माध्यम से अपने युग की समस्याओं का समाधान तलाशना और एक संतुलित दृष्टि अपनाना ही कवि नरेश का अभिष्ट रहा है। 'संशय की एक रात' में कवि ने अनेक ज्वलंत प्रश्नों को उठाया है जो आधुनिक युग के मानव की नियति भी है और विडम्बना भी। राम कथारम्भ से लेकर अंत तक एक ही संशय से घिरे हैं जिसमें युद्ध, अनास्था, अनिश्चय, कुण्ठा, घुटन, दिशाहीनता, विवेक आदि की मनःस्थितियों को आज का प्रश्न बनाकर खड़ा किया गया है। राम युद्ध के प्रश्न को लेकर संशयग्रस्त हैं। युद्ध का औचित्य और युद्ध का निमित्त यह दो प्रश्न राम को बार–बार झकझोरते हैं। अपनी व्यक्तिगत समस्या के कारण सारे राष्ट्र को युद्ध की विभीषिका में झौंकना, राम को न्यायसंगत नहीं लगता। राम युद्ध के भीषण परिणामों को लेकर चिंताग्रस्त हैं–

''ऐसा युद्ध
ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति
सब मिथ्यात्व है।''

'राम' सीता की स्वतंत्रता के लिए रक्तपात, युद्ध और युद्ध के परवर्ती प्रभावों को लेकर संशयग्रस्त हैं। इस प्रश्न को सामने रख वह जितना आत्ममंथन करते हैं, उतना ही घिरते चले जाते हैं। 'क्या हो क्या न हो' का प्रश्न जब–जब राम को मथता है तो आधुनिक मनुष्य का संकल्प–विकल्प ग्रस्त उद्विग्न मन ही साकार हो उठता है–

'क्या हो
क्या न हो
के प्रश्न ने
थका डाली मुट्ठियाँ।''

निर्णय–अनिर्णय में घिरे 'राम' आधुनिक युग के मनुष्य की तरह अपने संशय को काट नहीं पाते। युद्ध का प्रश्न उन्हें व्यथित करता रहता है। रात्रि के नीरव अंधकार में विचारमग्न राम का संशयी व्यक्तित्व जीवन के मिथ्यात्व से मुक्ति चाहता है। नरेश मेहता ने इस संशय को मानव अस्तित्व से सम्बन्ध रखने वाली युद्ध की समस्या से जोड़ा है–

''युद्ध के उपरांत होगी शांति
उपलब्धियों की सिद्धि
इस मिथ्यात्व से
इस मरीचिका से
मुक्ति दो।''

'संशय की एक रात' में केवल राम ही नहीं, विभीषण भी संशयग्रस्त हैं। विभीषण का व्यक्तित्व भी आधुनिक मानव के खण्डित व्यक्तित्व का प्रतीक है। विभीषण जिस विभाजित व्यक्तित्व की पीड़ा को भोग रहे हैं। वहीं पीड़ा आधुनिक मानव को भी व्यथित कर रही है। विभीषण की यह आत्मस्वीकृति आज के व्यक्ति की ही वाणी प्रतीत होती है–

'द्वंद्व
मुझमें भी कहीं पर है
मुझे भी सालता है
स्वयं का संघर्ष,
मैं भी विभाजित हूँ।''

विभीषण सोचता है कि यदि वह अपने ही राष्ट्र के विरूद्ध आक्रमणकारी का साथ देगें तो भावी इतिहास उन्हें राज्यलोभी तथा देशद्रोही ही ठहरायगा तथा राम का साथ न देने पर वे असत्य तथा अधर्म का साथ देने वाले माने जायेंगे। इन दोनों उलझनों के बीच वे अनिश्चय की स्थिति में पड़ जाते हैं, परन्तु शीघ्र ही विभीषण अपने संशय से उबर जाते हैं। युद्ध का वह प्रश्न जो विभीषण को व्यथित कर रहा था, उसे स्वत्व और अधिकार अर्जन का अंतिम मार्ग मान विभीषण अपने सवालों का जवाब पा लेते हैं और तत्पश्चात् राम को भी यह कहकर संशयमुक्त करना चाहते हैं–

''युद्ध मंत्रणा नहीं
दर्शन है राम
अंतिम मार्ग है
स्वत्व और अधिकार अर्जन का।''

श्री नरेश मेहता आधुनिकता के साथ विद्रोह के संबंध को स्वीकार करते हैं। विद्रोह हिंदी साहित्य की एक प्रवृत्ति बनकर रहा है। यहाँ विद्रोह का अर्थ कुछ स्पष्ट कर लेना उचित होगा। डॉ. हरदयाल विद्रोह के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं– ''विद्रोह से हम समझते हैं कि किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा किसी सत्ता, व्यवस्था, परम्परा, रूढि आदि का अस्वीकार और उसे व्यक्त करने का प्रयत्न ही विद्रोह है।'' 'संशय की एक रात' में रावण की निरंकुश सत्ता को अस्वीकार करते हुए, उसे समाप्त करने के प्रयत्न को विद्रोह माना गया है। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संघर्ष तथा विद्रोह का सहारा लेना एवं उन भावों को प्रकट करना आधुनिकता का ही प्रतिफलन है। ऐसी आधुनिकता के संबंध में हनुमान राम जी से कहते हैं–

''ओ
राघव
ये लाघव
अब होंगे न पराभव
किसी शक्ति से

हम साधारण जन
युद्ध प्रेमी थे कभी नहीं
और न लंका युद्ध लड़ेंगे
युद्ध भाव से

''संशय की एक रात' में 'हनुमान' लघुमानव के प्रतीक बनकर उभरते हैं। राम के खण्डित व्यक्तित्व को हनुमान जैसे लघुमानव की सहजता की आवश्यकता पड़ती है। लघु या साधारण मानव स्वयं निर्णय नहीं लेते, वे सदैव दूसरों का अनुकरण करते हैं। राजतंत्र बनाम रावण के अत्याचारों से पीड़ित यह लघुमानव अपनी स्वतंत्रता के लिए तत्पर हो उठता है।

इस कृति में हनुमान जी का स्वर जनवादी है। वें लक्ष्मण से कहते हैं कि सीता माता चाहे किसी की पत्नी, बेटी अथवा बहू ही क्यों न हो, किंतु वास्तव में वह हम साधारण जनों की छीनी हुई स्वतंत्रता का प्रतीक है। अतः रावण के बंधन से सीता की मुक्ति हम सबके लिए पराधीनता से मुक्ति है। हनुमान जी कहते हैं कि—

''रावण अशोकवन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता।''

हनुमान के चरित्र की लघुता जनित आस्था आधुनिक बोध का पर्याय है। ''हनुमान लघु मानव में सन्निहित शक्ति और पौरूष का व्याख्यान करते हैं। उनकी विनम्र किंतु अर्जित वाणी में दलित एवं शोषित जनसमूह की अखण्ड विश्वासभरी साहसिक वाणी सुनाई देती है।''

'संशय की एक रात' में लक्ष्मण का चरित्र एक सबल, संकल्पवान और कर्मठ व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। वें राम को संशयग्रस्त तथा बार—बार परिताप—अनुताप करते हुए देख चिंतित होते हैं। वे राम की चिंता तथा संशय को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं इसलिए वे राम के पीछे छाया से लगे हुए 'कारण' को खोजने का प्रयास करते हैं। लक्ष्मण मनुष्य के कर्म को ही महत्त्वपूर्ण मानते हुए किसी भी प्रकार की दुविधा अथवा आत्ममंथन को कर्म के समक्ष छोटा मानते हैं। वह चाहते हैं कि राम भी संशय का परित्याग कर कर्म अर्थात् युद्ध में उद्धत हों—

''संधि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं है
नहीं है हम
केवल परिचालित यंत्र मात्र
किसी अदृश्य अंधे
हाथों के।''

संकल्पित प्रज्ञायुक्त लक्ष्मण युद्ध के शुभाशुभ परिणाम से नहीं डरते, जिस समस्या को लेकर राम संशय में घिरे हैं, उसकी चिंता लक्ष्मण को भी है परन्तु यह चिंता आत्मपीड़क नहीं है। अपनी चिंता का समाधान वह कर्म और पौरूष के माध्यम से खोजते हैं।

''कितने ही लघु हों
इससे क्या ?
सार्थक है।
स्वत्व है हमारा
कर्म।''

इस कृति में लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, नल—नील, जामवंत, राजा दशरथ और जटायु की आत्मा सब अपने—अपने तर्कों द्वारा 'राम' को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और उन्हें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अपने स्वत्व और अधिकारों को पाने के लिए रावण से युद्ध करना ही अंतिम मार्ग है। सभी पक्ष—विपक्ष सोच विचार कर भी राम किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाते और 'स्व' को 'पर' के आगे समर्पित कर देते हैं। राम कहते हैं कि—

''संशय की बेला अब नहीं रही
अब मैं केवल प्रतीक्षा हूँ
कवचित कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ
निर्णय हूँ सबका सबके लिए।''

'संशय की एक रात' के अंत में 'राम' का सबके निर्णय को अपना निर्णय घोषित करना उनके अधूरे व्यक्तित्व का संकल्प है, इसी संकल्प के द्वारा कवि ने आधुनिक मनुष्य की संशयग्रस्त स्थिति का मानो निराकरण किया है। व्यष्टि का समष्टि हित में 'स्व' का विलय ही आधुनिक युग के विकल्पों का उत्तर हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 'संशय की एक रात' श्री नरेश मेहता की ऐसी कृति है, जिसमें राम के माध्यम से आज के संशयग्रस्त व्यक्तित्व को निरूपित किया गया है। इस प्रकार नरेश जी की काव्य कृतियाँ प्रकृति बोध से प्रारम्भ होकर आधुनिक बोध के उस शीर्ष पर प्रतिष्ठित है, जहाँ समकालीन परिवेश में स्पंदित विभक्त मानस, टूटती—बनती मान्यताएँ, भविष्य का सूर्योदयी विश्वास और नये मूल्यों की स्थापना के संदर्भ मुखरित हो उठे हैं।

संदर्भ सूची

1. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 23
2. प्रभाकर शर्मा, नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन, पृ0 30
3. प्रभाकर शर्मा, नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन, पृ0 46
4. डॉ0 हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल, पृ0 157
5. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, लोकभारती प्रकाशन,

संस्करण 2012) पृ0 30
6. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात,(लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 93
7. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 4
8. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात,(लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 25
9. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात,(लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 72
10. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 71
11. डॉ0 हरदयाल, आधुनिकता बोध और विद्रोह, पृ0 9
12. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 65
13. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 64
14. डॉ. तिवारी, संशय की एक रातः व्याख्या और विवेचना, पृ0 81
15. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 14
16. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, (लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012) पृ0 62–63

पुनीत शर्मा
नेट, एम.ए., बी.एड़,
भिवानी (हरियाणा)
मोबाईलः 8529439625

70

Indo-Pacific and its importance for India

Peeyush Phogat

This paper discusses the evolution of the term 'Indo-Pacific' and how it was popularized. Indo-Pacific is a decade-old concept that gained momentum in recent years. The region was earlier called Asia-Pacific as it only covered the areas of the continent Asia and America. Now the concept has changed to Indo-Pacific covering the continents of Africa, Asia and America. In the later part of the paper, three different approaches or understanding of the concept are discussed explaining different viewpoints of the approach providers. The Indian interpretation is considered a widely accepted interpretation as it is the middle path of the other two approaches. In the next section of the paper, the importance of the Indo-Pacific is discussed focusing primarily on India. After that, the major challenges to the Indo-Pacific approach are discussed. The paper is concluded in the last section with the takeaways of the paper emphasising the way forward.

Keywords : Indo-Pacific, ASEAN, Asia-Pacific

Introduction

Indo-Pacific is not a new concept, rather it is a decade old. In 2007 addressing the Indian Parliament, late Japanese Prime Minister Shinzo Abe referred to the “confluence” of the Pacific and Indian oceans as “the dynamic coupling as seas of freedom and of prosperity”.[1] David Scott observes that from 2010 onwards, the term 'Indo-Pacific' gained salience with the Indian government and has seen been used quite often by the Indian leadership.[2] However, it gained currency recently. It is based on the understanding that in the modern times, the Indian Ocean and the Pacific Ocean, though, are seemingly diverse theatres, make a connected strategic theatre and combined strategic heft. It is a “natural region” ranging “from the shores of Africa to that of America”. The increase in the use of the term 'Indo-Pacific' recognizes the rise in the stature of India. It is a multipolar world which contributes more than half of the world's GDP and population. This region houses four big economies i.e. the USA, China, Japan and India increasing the importance of the region.

It is quite natural for countries of a region to come together and talk about the security of that region by establishing certain orders to ensure peace and security. Various countries are using the term Indo-Pacific in similar fashion in their official statements. Indian Minister of External Affairs S Jaishankar said that in the changing world, Indo-Pacific has evolved in a new concept and approach. In 2018, Indian Prime Minister Narendra Modi during the Shangri La summit spoke about the Indo-Pacific. He called the Indo-Pacific a 'shared future'. Recently, the Indian Prime Minister during his meeting with French President Emmanuel Macron stressed the need of safeguarding the freedom of navigation and the stability of the Indo-Pacific. In May 2021, 'Track 1.5' dialogue was held among Australia, France and India which focused on the identification of security challenges and long-going conflicts and issues in the Indo-Pacific. Track 1.5 dialogues are non-official dialogues where government officials and non-governmental experts meet and sit at the same table.

Different interpretations of Indo-Pacific

There are three different interpretations of Indo-Pacific given by India, the US and the ASEAN:

1. According to the Indian version, Indo-Pacific is an inclusive space for all the stakeholders and is based on common interests and common responsibilities. Indian viewpoint also sees a strategic interconnection due to the common opportunities and the common challenges shared by both the oceans i.e. the Indian Ocean and the Pacific Ocean. The Indian version includes the area from the Pacific shores of America to the Indian Ocean shore of Africa.

2.According to the version presented by the United States, the Indo-Pacific should be a free and open region based on a rules-based order where no country could exploit the region.This version excludes any country from the cooperation in the region which does not abide by certain rules and the expected norms of conduct. This version only includes the area from the Pacific shores of America to the Bay of Bengal excluding the area between India and the Indian Ocean shore of Africa. Not a lot of countries accept this version.

3.The third version is presented by ASEAN countries. This version is based on the principle of consociation. Consociation refers to a political system which is formed by cooperation of opposing and different social groups based on

the principle of sharing of power. The ASEAN argues for practical cooperation of Indo-Pacific countries with China. According to the ASEAN website, China is the largest trading partner of the ASEAN followed by the EU and the US. So, though the ASEAN know and oppose the aggressive policies of China, it cannot do much about them. The ASEAN is important for economic and strategic reasons for both India and the US. For this reason, they accept the stand taken by the ASEAN. The ASEAN also realise the need for India to balance China, especially after the continuous withdrawal of the US from international alliances. They also see India playing a major role in the region protecting the interests of ASEAN from the bullying of China. If all these three versions are analysed, the US version can be placed on the right, the ASEAN version on the left and the Indian version in the centre of the spectrum. India is trying to balance the three narratives taking support from other major players in the region like Japan, Australia, France etc.

Importance of Indo-Pacific for India

It is impossible to overstate the significance of the Indo-Pacific area in India's foreign policy. The profusion of bilateral and multilateral initiatives in the Indo-Pacific, in which India is increasingly taking part, shows a rising convergence of world powers there. China's escalating rivalry and provocations highlight the need for India to define a practical and strategic role for itself in the Indo-Pacific.With more than half of the world's population and GDP, the Indo-Pacific region presents huge strategic significance. India's geographical location makes it necessary for every alliance to include India giving strategic development opportunities. India's strategic alliances with other nations, primarily the United States, are based on a stable, safe, and wealthy Indo-Pacific region and India should use these alliances to advance its national interests.

Territories along the coasts in the Indo-Pacific region have started to be recognised as important resource depository areas for everything from fish stocks to minerals to offshore oil and gas. For instance, the South China Sea is estimated to contain 10% of the world's fish catch, 11 billion barrels of oil, and 190 trillion cubic feet (tcf) of gas making these areas extremely important for fulfilling India's growing needs. The Indo-Pacific area is the largest single contributor to global growth, producing over 60% of the world's GDP, according to research conducted by the Asian Development Bank (ADB). This area houses important raw material-producing countries which can be a boon for India's manufacturing industry. This region also includes a ready market for Indian exports that can help to increase India's GDP. India's latest target for its economy is 5 trillion dollars which makes this region very important for India. India faces a big trade deficit with China which is the largest manufacturing hub in the world. The Indian manufacturing industry is underdeveloped at the moment. It can develop its manufacturing industry by signing trade agreements with more countries. The United States can be a big help to India in this regard. The US has reach in the whole world. It can help in the negotiations of trade agreements between India and other parties. Also, the US is the largest economy in the world. It is a big exporter and importer. With India, the US is a net importer meaning India exports more and imports less from the United States. India can also look at more areas of trade with the US which can help with the development of India's manufacturing industries.

Pacific islands are very important from India's perspective as they are strategically located in the Pacific Ocean. They are located in distant locations in the ocean. They provide a wonderful location for the establishment of checkpoints, the stationing of radars etc to monitor the region. India needs to develop relations with these island nations if it sees itself as a potential superpower. These islands are also located astride important sea routes in the region. India use these sea routes for its trade with the Americas. These islands can help in communication with ships sailing through these routes. They can also provide with naval bases for India to secure its trade and strategic routes.

With 32.2 million barrels of crude oil passing through the region annually and 40% of the world's exports coming from there, the Indo-Pacific region also serves as a crossroads for worldwide trade.Many of the world's most important trade choke points are located in this area, including the Straits of Malacca, which is crucial to the expansion of the global economy.The Strait of Malacca is extremely important for Indian interests in the region. This route is used by India to trade with the many countries in the region. Due to China's aggressive policy in the region, security and free access to the straight are endangered. India needs the help of the QUAD and the ASEAN to protect its national interests in the region. China's increasing reach in the region also puts India's strategic interests in harm's way. Hambantota Port's transfer of ownership to China from Sri Lanka is a prime example. India is not self-sufficient when it comes to its energy needs. India imports crude oil from a number of countries that reaches India mainly through the Arabian Sea via the Gulf of Oman and Gulf of Aden. Protecting these crucial trade routes is vital for India's national interests.

China's increasing assertion along with the already prevalent problem of sea piracy in the region is threatening Indian interests in the region. Indo-Pacific grouping can help with both these issues. Underlying the Indo-Pacific is the security domain. Delving into cybersecurity, maritime security and human security in the Indo-Pacific gives a multi-dimensional view of the issues in the region.The Indo-Pacific region, where nations have a range of capabilities, requires a lot of technological interaction. By utilising its current infrastructure and technical capacity, India can contribute to international cooperation on data, digitisation, and earth observation satellites. It also requires the support of technologically advanced countries in the region for the development of its manufacturing industry. Out of all the exports made by India, defence exports have contributed one of the least. Defence exports bring lots of revenue for a state in addition to making the state self-sufficient. Indian defence industry requires technical expertise that Indo-Pacific countries like the United States and Japan can provide which they did not in the past due to their interests. After the change in the Chinese policies, their interests have aligned with Indian interests making advanced arms development in India possible. India is planning to put much greater energy into the IORA (Indian Ocean Rim Association) because the centre of its Indo-Pacific policy is placed or rooted in the Indian Ocean. This combines the blue economy part of Indian policy with the security part. India has repeatedly put the ASEAN at the focus of its policy in the Indo-Pacific diplomacy framework. The ASEAN as discussed earlier in its interpretation of Indo-Pacific wants to work with all the different parties in the region. It doesn't speak as a united entity especially when confronted by China's threatening presence. Yes, it is worried by Chinese policies but it is equally worried of the US and its allies. So, India needs to integrate much better with the ASEAN to protect its national interests in the region.

Challenges

The Indo-Pacific unification faces many challenges. The region is very heterogeneous in terms of the economic size and the levels of development, with very high differences in security establishments and resources. The region also faces hard challenges in terms of the security, the economy and the environmental aspect. China is very wary of the new grouping rising in the region. It is keeping a close watch on India's engagement with Indo-Pacific countries. India is engaging with these countries through strategic dialogues, security agreements and military exercises. One major challenge for the region is the assertive and aggressive policies of China in the region. China is increasing its dominance in the region. It is bullying its neighbouring countries like Japan and India. It is using force to settle its border disputes with its neighbouring countries. China is also using its big pockets to lure small but strategically important countries into its fold. China's One Belt One Road project is the practical aspect of its policies where developmental projects are financed in small economies and in the later stages using its predatory tactics, China captures strategic locations in these countries. A recent example is in Sri Lanka where China debt trapped Sri Lanka and has secured the ownership of the Hambantota Port for 99 years. Apart from the threat posed by China, terrorism is a huge threat, especially for India. A hotbed for terrorism is operating in the Indo-Pacific region the effects of which have already been seen by the world. Containment of the roots of the terrorism in this region isa responsibility of the Indo-Pacific countries. Maritime domain awareness and maritime securityare also central to the concept of Indo-Pacific. The rise in the rate of climate change also poses threat to the region. The climate Risk Index published by an international environment think tank 'Germanwatch' in 2021 highlighted the impact of climate change on the region. The report highlighted that the poorest countries are affected the most by climate change and the Indo-Pacific house the poorest countries of the world, this region is worst affected by climate change (Germanwatch, 2021).

Way forward

Indian Prime Minister's Keynote Address at Shangri La Dialogue, 2018 highlighted the vision that India has for the region. It wants to make the region free, open and inclusive for all the countries in the region whether they are small or large, weak or strong powers. India also views the Southeast Asian region as the centre of the Indo-Pacific. For that India is trying to develop better ties with the ASEAN as a group as well as with every single country. In India's future plans, it wants to establish a common rules-based order in the region which will adhere to values like equality for all nations, faith in the dialogue process, respecting sovereignty and territorial integrity. India is also working to ensure equal access to the common spaces on sea and air, as a right under the international law which would help to necessitate open business, peaceful resolution of differences between parties, and unrestricted travel in the region obeying the international law. India is also working and would continue to work in the direction of circumventing power rivalries through an important partnership which would help in

conflict prevention. India supports regional grouping and architecture and anticipates partnerships in the region which should be based on similar values and interests.

India needs to increase its naval power so that it can reach the depths of the region. Diplomacy is another tool that allows India to influence events far away from its borders. India has a strong relationship with countries in the region when it comes to trade and commerce. It needs to use these relations to formulate mini-lateral diplomacy, blue water policy and deeper economic integration through FTAs (Free Trade Agreements). India's vision of SAGAR (Security And Growth for All in the Region), upon which schemes such as SAGARMALA are founded needs to be used or leveraged better for growing international confidence over India's important role in the region of Indo-Pacific.

Conclusion

The Indo-Pacific region is a strategic geopolitical region which offers a number of opportunities and challenges for India as well as for other stakeholders. It provides an excellent opportunity to raise India's global position and visibility. Due to its positioning in the region, India has the strategic advantage which no other country has, and should be used effectively to advance India's national interests. Economic and military assertion and appropriate diplomatic manoeuvring is important for implementation of Indian interests in the region. These strategies are important for leveraging the space as a building block for a multipolar world order.

References

1. ""Confluence of the Two Seas" Speech by H.E.Mr. Shinzo Abe, Prime Minister of Japan at the Parliament of the Republic of India". Ministry of Foreign Affairs of Japan.22August2007.https://www.mofa.go.jp/region/asia-paci/pmv0708/speech-2.html. Accessed on 2 November2022.
2. Scott, David (July–October 2012). "India and the Allure of the 'Indo-Pacific'". International Studies. 49 (3–4): 165–188. doi:10.1177/0020881714534038.
3. Germanwatch (2021). Global Climate Risk Index 2021. https://www.google.com/url?sa=t&rct=j&q=&esrc=s&source=web&cd=&ved=2ahUKEwiJ_Pqc1b77AhVFTmwGHcuaD8YQFnoECAwQAw&url=https%3A%2F%2Fgermanwatch.org%2Fsites%2Fdefault%2Ffiles%2FGlobal%2520Climate%2520Risk%2520Index%25202021_1.pdf&usg=AOvVaw28wzkdq2ZrDPl-e20sugbs.
4. https://asean.org/our-communities/economic-community/integration-with-global-economy/asean-china-economic-relation. Accessed on 2 November 2022.
5. PM's Keynote Address at Shangri La Dialogue.2018. https://www.pmindia.gov.in/en/news_updates/pms-keynote-address-at-shangri-la-dialogue. Accessed on 20 October 2022.
6. Sundararaman, Shankari (2017). "Indo-Pacific economic corridor: A vision in progress". Observer Research Foundation.https://www.orfonline.org/research/indo-pacific-economic-corridor-a-vision-in-progress.Accessed on 9 November 2021.
7. Khurana, Gurpreet S. (2007). "Security of Sea Lines: Prospects for India–Japan Cooperation". Strategic Analysis.31(1):139–153.doi:10.1080/09700160701355485.
8. Georgieff, Jack (2013). "An Indo-Pacific Treaty: An Idea Whose Time Has Come?". The Diplomat. https://thediplomat.com/2013/05/an-indo-pacific-treaty-an-idea-whose-time-has-come.Accessed on 7 August 2022.

Peeyush Phogat
Ph.D. Research Scholar
Department of Political Science
Maharshi Dayanand University,
Rohtak, Haryana-124001
Contact no. 8818016963
Email. peeyush.s.phogat@gmail.com

71

Export Performance Of Indian Manufacturing Sector In Post Liberalization Period

Dr. Upasana

Abstract

This paper attempts to assess the export performance of the Indian manufacturing sector in the post-liberalization era. For the purpose of examining the long-term trend and assessing the performance of Indian manufacturing exports, the years 1991-1992 to 2017-2018 were selected. The Laspeyer Volume and Pasache Unit value indexes were developed in order to evaluate the contribution of quantity and unit value to the expansion of manufacturing exports. For determining the Compound Annual Growth Rate (CAGR) for quantity and unit value indices, the log-lin approach was utilised. Using the Michaely technique, the Export Concentration Index for India's manufacturing commodities was established to determine if the manufacturing sector's exports are reliant on a small number of selected commodities. The findings indicate that India's manufacturing exports were lopsided and dependent on a few selected commodities during the initial phase of reforms, but have experienced ups and downs in the 2000s, and commodity concentration has seen a slight decline in the post-liberalization period.

Keywords

Laspeyer volume Index, CAGR, Export Concentration Index.

I. Introduction

Because of two big oil jolts in the 1970s, India suffered from heavy increase in the cost of oil imports and a poor liquiditycondition in foreign exchange reserves. The Indian currency rupee also depreciated, because it was then attached to the UK pound, and this presumably led to an increase in Indian export growth in relation to global exports. This time was also marked by a stronger policy of import substitution and intensified regulation of business activities by the government, and this policy was continued even after the Indian-Pakistan war in 1971 and the first oil-price shock. The total trade of India, however, was downsized between 1979 and 1981, due to oil price shocks, even the import prices of crude oil got more than doubled. In the late 1980s, the manufacturing sector in India shifted from a stringent regulatory market climate in Nehru-Mahalanobis model to a partly licensed system in the planned industrialization process. The trade system in India has been massively skewed both by protectionist measures and by dominance of public sector for over four decades.

To deal with these problems and improve the deteriorating condition in BOP, the export-enhancing measures such as duty drawback, subsidized credit and direct subsidies were introduced by the government of India under the external financial strain to increase foreign exchange earnings. In 1991, India launched market-friendly and external trade promoting measures to liberalize the economy. Given its large economic consequences, the economic policy reforms in the 1990s were seen as a crucial factor for the growth and expansion of economy. These reforms were intended to relax the economy from the cob-web of pointless restrictions and regulations and boost the economic efficiency both in manufacturing sector and the economy as a whole. Industrial de-regulations and lifting of various quantitative restrictions from the manufacturing export activities were assumed to encourage the competitive environment and efficiency in domestic market and competitiveness of the manufacturing sector in the international market.

Table 1

India's Export and Import

Year	Volume of Exports and Imports (Billion USD)			Percentage Growth	
	Exports	Imports	Difference	Exports	Imports
2015-16	262.29	381.01	-118.72	-15.49	-14.96
2016-17	275.85	384.36	-108.50	5.17	0.88
2017-18	303.38	465.58	-162.20	9.98	21.13

Source: Compiled from Economic Survey, various issues.

Looking at the export data, it is found that India's commodities exports rose only by 8 per cent per annum during the first decade of the reforms up to 2001-02. However, in 2003-07 the economy benefited remarkably from a rise of the global trade and in these five years before the international economic meltdown, the export of goods achieved an average growth rate of 24%. In the period 2009-10 and 2012-13, negative growth in exports were reported, with negative impacts on jobs opportunities and economic growth. Manufactured goods have also constituted a significant part of the export of goods. Its share changed significantly over time, however. The share of manufactured

goods increased gradually from just over 50% in 1970 to almost 80% in 1999. The percentage of goods produced in general exports of merchandise declined over the next two years to 72% in 2004 and then a further 67% in 2007. This is really a policy concern as it reveals a loss of competitiveness of Indian manufacturing sector in international markets. After hitting $314 billion in 2013-14 and $310 billion in 2014-15, Indian export of commodities decreased to $262.29 billion in 2015 16, experiencing the negative growth of 15%. However, in 2016 17 there was marginal increase and reached to $275.85 billion. In 2017-18 the exports crossed the $300 billion and registered a growth of 10 percent over the previous year (2016-17). The amount of imports was quite high ($450 billion) in 2013-14 declined to $ 380 billion in 2015-16. But in 2017-18, there was substantial growth in imports almost by 20% over the 2016-17. The manufactured sector is most significant part of the economy as it plays significant role foreign exchange earnings from exports, in job creation and growth and expansion of economy. The growth and expansion of this sector supplements other economic sectors. Therefore, there is need of analyzing the performance of India's exports after liberalization.

I. ANALYSIS AND DISCUSSION

The table 4 indicates the compound annual growth rate (CAGR) for the period1991-92 to 2017-2018. It shows that engineering goods sector has emerged as the fastest growing and big earner of foreign exchange in the manufacturing sector. The driving force behind engineered exports from India was competitive advantage over peers as regards production expenses, skills for professional, technology, and innovation. The engineering goods industry has recorded high CAGR in most of the years followed by chemical and allied products, other manufactured goods, gems and jewellery industries. However, the performance of handicrafts has been quite dismal in second phase of economic reform. Its CAGR became negative in this phase which a great cause of concern both from foreign exchange earnings and employment. The export of textiles increased by around 9.28%, and export of apparel increased at compound growth rate of 6%. Likewise, poor growth in clothing exports with the exception of fur has resulted in a decreasing percentage of clothing in the exports of India.

Table 5

Quantity and Unit Value indices of India's Manufacturing Exports

(1999-2000=100)

Source: Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics.

Note: **Q**: Quantity index **U**: Unit value index

Commodity/ Year	2010-11		2011-12		2012-13		2013-14	
	Q	U	Q	U	Q	U	Q	U
Manufactured goods classified chiefly by material	257	185	226	228	217	255	256	265
1. Leather & leather manuf. and dressed fur skins	245	107	279	120	237	169	270	196
2. Textile yarn, fabrics &related products	217	129	234	142	264	145	333	146
of which : (a) Textile yarn	208	150	227	161	272	164	359	169
(b) Cotton fabrics woven	112	116	137	137	153	144	176	147
(c) Textile fibers other than cotton	342	124	397	115	373	114	459	115
(d) Made-up articles of textile materials	257	138	267	178	304	182	365	186
(e) Floor coverings	155	136	129	152	164	157	202	157
3. Pearls and precious/ semiprecious stones	232	198	158	293	130	346	153	367
4. Iron & steel	494	218	529	222	561	235	623	244

In addition to the failure to benefit from economies of magnitude the weaving, spinning and processing systems in the country are spoiling game for this sector. The table 5 and 6 indicate the quantity and unit value indices of India's manufacturing exports. There have been up and downs in the quantity index but the unit value index is showing upward trend. For textile yarn more variations can be observed from the table (5 & 6).Pearls and precious the variation in quantity index are deep during the period 2010-11 to 2013-14, however, for the 2014-15 to 2017-18there has been almost constancy. The textile sector is making a significant contribution to approximately 1.9% of India's GDP and 12% to the country's manufacturing production. The sector has faced a number of issues and challenges both during the pre and post economic reform period, which have led other countries to take India's share in the global market. The year 2003-04 has been particularly a dreadful period with negative growth in the exports. Owing to the large number of difficulties faced by the sector, the increase in fabric and spun yarn production itself decreased that year.

Table 3
Quantity and Unit Value indices of India's Manufacturing Exports

(1999-2000=100)

Commodity/ Year	2014-15		2015-16		2016-17		2017-18	
	Q	U	Q	U	Q	U	Q	U
Manufactured goods classified chiefly bymaterial	246	284	231	278	259	275	269	278
1. Leather & leather manufactures and dressed	267	208	222	216	202	212	198	210
2. Textile yarn, fabrics, made-up articles and related products	276	178	273	180	273	180	273	178
of which : (a) Textile yarn	327	167	334	157	321	163	311	171
(b) Cotton fabrics woven	199	143	201	142	199	138	209	132
(c) Textile fibers other than cotton	514	108	514	107	493	103	498	95
(d) Made-up articles of textile materials	361	197	361	207	383	207	398	203
(e) Floor coverings	210	176	204	183	204	194	188	194
3. Pearls and precious/ semi-precious stones	132	393	131	385	131	385	128	389
4. Iron & steel	617	244	432	242	652	240	789	242

The slow growth has been observed through exports of spun and woven textile fibers. The picture of India's oldest industry is obsolete technology, a lack of skilled labor, higher price levels of indigenous manufacturers' cotton and increased dependence on processed imported products. The table 7 shows that duringthe almost 27-years' (1991-92 to 2017-18) India's manufacturing exports were nearly 17 per cent CAGR. The increase in volume has raised the value growth of manufactured export. The unit value contribution to export growth was almost negligible, which clearly shows need of focus on intensifying the competitiveness in the world markets. India's manufacturing exports registered a compound annual growth rate (CAGR) of 11.31 % in terms of quantity, whereas unit value growth has been a merely 5.23% (table 7). Over the 27 year period the volume indices were steadily higher than the unit value, and the quantity index has gone up dramatically since 2005-06. In 2002-03 the sharp and abrupt changes within the volume index were primarily due to a rise in exports of diamond stub gold jewellery

Table 7

CAGR of Volume, Unit and Value of Manufacturing Exports 1991-92 to 2017-18

Code	Description	Volume	Unit	Value
15	Food products and beverages	8.25	5.97	14.89
16	Tobacco products	6.19	9.14	14.63
17	Manufacture of textiles	4.87	4.81	9.28
18	Manufacture of wearing apparel; dressing	3.09	3.11	6.05
19	Tanning & dressing of leather; manf. of luggage	1.44	6.08	7.83
20	Wood and of products of wood and cork	7.38	7.86	15.47
21	Paper and paper products	15.52	3.27	18.75
22	Publishing and printing	13.98	3.08	17.86
23	Coke, refined petroleum products and	37.47	5.44	44.90
24	Chemicals and chemical products	11.24	8.13	20.18
25	Rubber and plastics products	13.73	4.18	17.64
26	Manufacture of other non-metallic mineral p	15.39	-4.51	11.20
27	Basic metals	11.61	9.67	21.86
28	Fabricated metal products	7.93	10.14	17.85
29	Machinery and equipment	14.38	7.07	21.97
30	Office, accounting andcomputing	15.97	-1.27	14.89
31	Electrical machinery and apparatus	19.37	3.21	22.94
32	Manufacture of radio, TV and communication	1.89	14.38	16.73
33	Medical, precision and optical	19.69	3.98	23.47
34	Motor vehicles, trailers and semi-trailers	9.92	6.63	17.28
35	Other transport equipment	27.24	-3.64	23.97
36	Furniture; manufacturing	10.37	8.37	19.64
Total	**Manufacturing Total**	**11.31**	**5.23**	**16.45**

Source: Authors' calculation

This trend has been driven by improved market demand conditions and market recovery from the USA and Europe. The sharp increase on transport equipment exports in 2010-2011 again contributed to a leap in the volume index, however in 2010-2011 the unit value index has declined significantly. In comparison to the volume index, the unit value index has thus undergone a very steady improvement over the years. There has been a radical shift from cotton and textile-oriented export to more industrial and technological items, like pharmaceuticals (drugs), engineering goods and electronic devices etc., in post liberalization period.

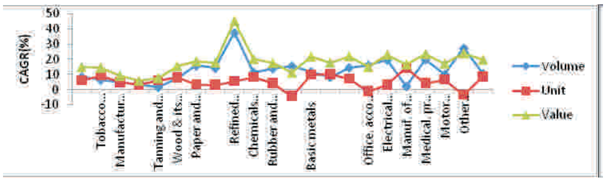

Fig.2CAGR of Quantity, Unit Value and Value of Manufacturing Exports

The gems and jewelry sector which is a major foreign exchange earner for India experienced an absolute decrease in growth for the first time in the years 2001-02 with manufacturing sector. Many large sectors like textiles, fashion goods and arts and crafts displayed the signs of export slowdown. Chemical export growth in 2006-07 was nearly half that of 2005-06. But there was a positive stimulating contribution from the engineering goods side, whose exports grew at 37.9% the fastest among manufacturing. Although this sector also experienced a slight decline in its growth rate compared to previous year. This steady decline in the export market was the result of a lack of constant growth in the demand for exports, a lack of brand awareness regarding the marketing strategy for exports, and above all speculation about government policy regarding the trading in finished leather products. Gems and jewellery and engineering goods industries have performed well both in pre and post liberalization period. Although in post liberalization period their performance has been relatively higher. The handicraft sector has suffered very badly after liberalization. In fact, it registered negative growth. In leather manufacturing sector CAGR was 4.19 % in the pre liberalization period and it increased to 9% in the post globalization period. In the post-globalization period

the government of India withdrew its support for the lead cap scheme. Food and beverage, textiles, chemicals, metal and metal products, machinery and transport, equipment industry contributes around 70% of the commodity exports from India.

Table 8

Test for Equality of Means between Volume, Unit and Value

I. CHANGING COMPOSITION OF INDIA'S EXPORT MARKETS

Analysis of direction of exports reflects the country's trade relation with the rest of the world. Direction of India's exports has also experienced a remarkable change since independence. As political and diplomatic relation of the country developed with advanced countries, international trade relation also made headway. Based on the external political considerations, diversification in trade and economic relations has reduced the vulnerability of the economy. The share of UK in India's total exports which was 26.9% in 1960-61(occupied the first position) but it later on declined sharply to 4.7% in 2003-04. Since 1970-71, with the diversification of export markets for manufactured goods among various Easter European, OPEC and other developing countries, the trajectory of India's exports has reported a considerable change. If we look at country wise figures it is observed that during 1991-2001 the USA was the largest market for India's exports. Its share was around 21% during the period 1991-2002. However, it came down to 14.2% in 2011-18. The share of UAE has almost become double in 2011-18 compared to its share in 1991-2001. During 2011-18 period, the UAE's share in India's exports is also double than China.

Table 11

Composition of India's Export Markets during 1991 to 2018 (% share)

S. No.	Country	1991-2001	2002-2010	2011-18
1	USA	20.93	16.32	14.2
2	UAE	5.64	8.87	9.96
3	China	2.03	5.32	4.78
4	Singapore	2.18	3.97	4.26
5	Hong Kong	5.93	4.28	3.92

Source: Economic Survey and RBI Bulletin (various issues)

The main the commodities exported to United States are precious and semi-precious stones, gems and jewellery products and apparels, pearl, and medicine formulations. Throughout this period, UAE remained the second largest export destination. The export of India to the UAE amounted to about $ 28 billion. Gems and jewels and oil were the major goods shipped to the UAE. Such two group items accounted for about 55 % of total exports to UAE. The UAE which accounted to 5.64% in total export of India in 1991-2001 (table 11), doubled it share and occupied the first position in India's export market during the global slump period of 2009-2011. Although in the subsequent year, its position slipped to second rank during the 2012-13. In 2017-18, USA with a share of 15.63% occupied the top position. For the year 2017-18, Hong Kong was the second biggest export destination with the export of $14.7 billion. The sale of gems and jewelry formed almost 90 percent of the overall exports to Hong Kong. The analysis of above facts reveals that India's manufacturing exports are reflecting the tendencies of switching away from traditional exports to increasingly manufactured products.

Table 12

India's Top Export Destinations and their Share (2015-16 to 2017-18)

Country	Volume of Exports (Billion USD)			Percentage share		
	2015-16	2016-17	2017-18	2015-16	2016-17	2017-18
U S A	40.17	42.19	47.73	15.29	15.26	15.63
UAE	30.29	31.26	28.26	11.62	11.36	9.34
Hong Kong	12.17	14.22	14.72	4.58	5.05	4.75
China	9.13	10.28	13.47	3.51	3.74	4.39
Singapore	7.59	9.63	10.18	2.87	3.52	3.42
U K	8.79	8.47	9.68	3.29	3.21	3.17

Source: RBI, Handbook of Statistics on the Indian Economy

The export earnings from China were around $ 13.34 billion in 2017-18.Indian export destinations are considerably diversified by browsing activities in the structure of India's export markets from 1991 to 2017. One notable thing is that India has dramatically decreased its total reliance on its most powerful conventional market- the USA. Even if around 20% of India's total exports were directed to US alone during 1991- 2011, its share continued to decrease and remained around 12% in 2012–2013 and 14.2% during the period 2011-18. Although, USA is currently retaining its first position in India's exports but other countries like UAE, China, Singapore and Germany have come in to picture with their significant role. The direction of India's exports has changed remarkably in the mean time. The rising significance of Asian countries as an export destination for India is the most amazing view. Asia's share in overall exports has risen appreciably and in 2010-2011 it was almost 55%. It is because of the "Look East Policy" of India and a persistent attempt to establish close relations with

neighboring and ASEAN countries.

I. CONCLUSION

There has been some diversification in export composition of manufactured goods from gems and jewellery and textiles to machinery and chemical products. The share of textiles comparatively declined however, the share of machinery and engineering goods in India's manufactured goods increased considerably. As far as growth is concerned, manufacturing exports have a 16% compound annual growth rate (CAGR) mainly supported by an increase in volumes. The contribution of unit value is lower in stimulating value growth (at approximately 5%). The growing areas of manufacturing sector like machinery, electrical equipment and transport equipment need to be strengthening further. India needs to capitalize the trend of outsourcing. There is a growing global tendency for outsourcing; India should take its advantage. India needs to be established as a recognized supplier of these products in the global market to improve the performance of export sector. Export stimulus provisions and export duty cuts, structural transformation of industrial sector and changes in indirect tax system (GST) would have a positive impact on the export performance. Some important issues like information on potential markets, improvement in export infrastructure, removal of bureaucratic obstacles in promotion of exports and branding of products in the international market, requires the strategic policies to encourage and accelerate the growth in manufactured export.

References

I. Bhatachariya, B., and Prithivis, K. De (2000). Change in India's Export Composition in the Post Liberalisation Era', Foreign Trade Review, Vol. 12, No. 2

II. Chakraboty, D. and P.Chakraboty, (2005). India's Exports in Post WTO Phase. Foreign Trade Review, Vol. XL, No. 1, April-June, pp. 3-26.

III. Michaely, M. Trade (1984). Income Levels and Dependence Vol.8, North-Holland,

IV. Sharma, K. Dinesh and H. Masood,(2006). WTO-GATS and India: Destination or Crossroads' in 'WTO and India', Deep and Deep Publication, New Delhi.

Dr. Upasana
Associate Professor,
Department of Commerce,
Hindu Kanya Mahavidyalaya, Jind,
Haryana, India

72

QUAD and its importance for India

Peeyush Phogat

Abstract

This paper discusses the meaning, development and importance of QUAD for the member countries and the world focusing primarily on India. QUAD stands for the Quadrilateral Security Dialogue where India, Japan, the United States and Australia form the group. This is an economic and defence grouping made primarily to tackle the policies of China threatening the Indo-Pacific region which these countries form a part. The paper discusses in detail the various stages in the development of the group from 2004 to 2022. The paper also highlights the importance of QUAD for the member countries and the rest of the world and concludes with the answer to the question of why QUAD is important for the world.

Keywords

QUAD, Malabar exercise, NATO, ASEAN, Indo-Pacific, Indian Ocean Region

Introduction

The QUAD or the Quadrilateral Security Dialogue is a strategic security dialogue between Australia, India, Japan and the United States that is maintained by talks between member countries.The reason for such a name is because of the number of countries that are part of the group and because the acronyms are a better way of addressing long and complicated names.

Figure : Map highlights the member countries of the QUAD. Source: InsightIAS.

The member countries started cooperating in maritime areas after the Indian Ocean tsunami of 2004. Today the countries—all democracies and vibrant economies—work on a far broader agenda, which includes tackling security, economic, and health issues.Throughout these years, the groups' diplomacy has waxed and waned. The group is not a formal alliance which is quite visible through the action of the member countries. Initially, Japan wanted to work together keeping the democratic identity in mind. India has always emphasized on functional cooperation principle so that it can safeguard its interests better. The United States has been trying to control the increasing influence of China as the next superpower and a direct threat to the interests of the United States. Australia, on the other hand, does not want to control China, rather it wants to cooperate with it which is quite visible in the reluctance of Australia in joining the group. 2021 saw the unity in the interests of the member countries that led to the strengthening of the group. China's increasingly assertive behaviour in the region became the turning point. All four countries that form a part of the group joined the first joint naval exercise hosted by India called Exercise Malabar in November 2020.

Evolution of QUAD

The origins of the grouping can be traced back to 2004. In 2004, India and its neighbouring countries suffered fromthe tsunami which led to huge losses of lives and money. India during this tsunami conducted rescue and relief operations for itself as well as for its neighbouring countries. India's efforts were joined by many countries including the United States, Australia and Japan that form the group with India. In the same year, Exercise Malabar was also conducted. Exercise Malabar is a naval exercise conducted by India with partner countries. 2004 exercise was conducted along India's west coast in partnership with the United States. In 2007, the present countries of QUAD met for the first time. The meeting took place on the sidelines of the ASEAN (Association of Southeast Asian Nations). During this meeting, then-Japanese Prime Minister Shinzo Abe pitched the idea for the formation of the group. He was the first person to come up with the idea of QUAD.

In 2008, Australia withdrew from the group. It was a forum at that time. The reason for the exit of Australia from the forum was that the Chinese government viewed the forum as a threat to its sovereignty and time and again raised its concerns with the QUAD members. As China was a very important trade partner for Australia, Australia withdrew from the forum keeping its interest in mind. This weekend the forum as Australia is a very important power in the Indo-Pacific. In 2010, to bring back Australia in the scheme of things, the US increased its military cooperation with Australia which led to the joining of QUAD by Australia.In

2012, it was the late JapanesePrime Minister Shinzo Abe again who tried to revive the group. He pitched a new idea called Asia's 'Democratic Security Diamond' which will comprise the US, Japan, India and Australia. Through this group, the member countries could ensure the security of the continent.

2017 saw an increase in threats from China to the Indo-Pacific countries. To tackle these threats, the four countries revived the QUAD.It was in 2017 when the first official talks under the Quad took place in the Philippines. They broadened the objectives and created a mechanism that could ensure a rule-based international order. In 2020, Australia joined the trilateral India-US-Japan Malabar naval exercises. This led to the first official grouping of the QUAD since its resurgence in 2017. This was also important as this was the joint exercise of the members after a decade.In March 2021, the leader of the QUAD met virtually. They released a joint statement titled 'The Spirit of the Quad'. This statement outlined the objectives of the group and the approach it will take to address the security challenges caused by the policies of China. The first in-person meeting of the group took place on 24 September 2021 in Washington D.C.

Is it an "Asian NATO"?

China has repeatedly complained that the group is an attempt at forming an "Asian NATO". In defence of the group, the QUAD has no common or mutual defence policy, unlike the European alliance where thereis a mutualdefence pact in effect. Quad members say that the group is made to deepen or strengthen economic, diplomatic and military ties among the four countries in particular and other partner countries of the area in general. Though the group don't often explicitly say it, those partnerships are meant to be a bulwark against Chinese aggression. The same can be understood by the declaration made inthe March 2021 declaration laying out the "Spirit of the Quad," the leaders said, "We bring diverse perspectives and are united in a shared vision for the free and open Indo-Pacific. We strive for a region that is free, open, inclusive, healthy, anchored by democratic values, and unconstrained by coercion" (taken from the joint statement).

Principles of QUAD

QUAD is created to ensure the sea routes in the Indo-Pacific are not threatened or controlled by any one country so that these strategic routes can be kept free from political and military influence. After Xi Jinping became the leader of China, China became aggressive in its naval policy targeting Indo-Pacific trying to assert its dominance in the region. So, this group came into being primarily to tackle this aggression from China. The central objectives of QUAD are:

1. Ensuring a rule-based world order where no one powerful state can use its strength to harass and assert its dominance.
2. Ensuring the freedom of navigation in the Indo-Pacific region.
3. Creating a liberal trading system in the region and outside the region.
4. Providing alternative debt financing for nations that fall in the region.

After these core principles, there are several areas that are key to the interests of the member as well as other partner countries. These are:

1. Critical and emerging technologies
2. Connectivity and infrastructure
3. Cyber security
4. Maritime security
5. Humanitarian assistance
6. Disaster relief
7. Climate change
8. Pandemic
9. Education

Interests of the United States, Japan and Australia in the QUAD

The Indo-Pacific region spans two oceans and many continents which makes it extremely important for the US interests. In 2019 alone, the United States' trade worth $1.9 trillion passed through this region. Not only for the United States, but this area is also a very important region for world trade. A large portion of the world's exports and imports including those of Japan, Australia and India pass through this region. So, ensuring the freedom of navigation in this area is tremendously important for the member countries and their partner countries for their trade interests.

As highlighted earlier, China's maritime policy changed after 2012. It became more assertive and started expanding its areas of influence. China and Japan have a long conflict on the Senkaku islands which both countries claim their own. China and the Philippines also have similar disputes. China's aggression rang the alarm bells for these countries. The South China sea which is surrounded by ASEAN countries also became a hotbed of conflict. China started making artificial islands in the region so that it could claim the area as its own and could dominate the area more easily. As China is second to only the United States in terms of strength, countries in this region are no match to China's power and cannot stop its encroachments in the region. So, it was and is natural that these countries look towards the United States to put a check on China.

The United States is the sole superpower in the world. It has the sole power to control international waters. But the rise of China as the next superpower has threatened the status quo. The United States is threatened,and so is the

rest of the world. The United States is threatened because the rise of China harms the national interests of America. The rest of the world is threatened because of many reasons. China is not a democratic country. Its policies are hard to understand. It has shown signs of establishing its hegemony in the world. The interests of small and weak states would not be taken into consideration by China as its policies are aggressive in nature.

The countries worried about China started coming together to protect their interests. This happened in the case of the QUAD as well. Australia, India and Japan came together with the United States to protect their and their partner countries' interests in the region. Several pacts and treaties have been signed by these states with each other to strengthen their cooperation in the region.

Importance of QUAD for India

QUAD is just as important for India as it is important for Australia, Japan and the United States. From this group, China is only India's neighbour sharing a 3488km long border. Though Japan is also China's neighbour, it does not share a contentious border. In June 2020, Indian and Chinese troops clashed which resulted in the deaths of atleast 24 soldiers and increased animosity in the border region. The relationship between both countries deteriorated. China claims a large part of India's border territory as its own. It also annexed part of the erstwhile Jammu and Kashmir state after the 1962 war. The 1962 Sino-India or Indo-China war resulted in India's defeat resulting in the rejection of Panchsheel principles and the introduction of pragmatism and realism in India's relationship with China. So, the importance of QUAD for India is primarily to counter the threat presented by China. India can use the grouping by asking for its support to its favour if there is any rise in hostilities between both countries. It can also use the access to the pacific region that this group provides to increase its reach and power in the region.

The primary goal of the group, as highlighted by the joint statement released in 2021 by the QUAD countries is: to ensure a "free, open, inclusive and unconstrained Indo-Pacific region".This is extremely important fromthe Indian standpoint as China has been increasing its patrolling in the Indian Ocean area targeting the Strait of Malacca and Bab-el-Mandeb which are India's main paths of trade with the world. The aggressive and coercive nature of China's policies in the Indian Ocean Region also affects the strategic advantage that India enjoyed till now. The QUAD sees India as the main provider of security and stability in the region. The Malabar naval exercises that India conducts in the Indian Ocean with its partner countries are important for India. The 2020 and 2021 editions saw all members of QUAD taking part in the exercise. These joint exercises help in better coordination, transfer of ideas and principles and development of skills. All the member countries of the group are defence equipment developers, the cooperation that an organization provide also opens a path for future arms deals and technological transfer which India needs the most as it sees China as a threat to its security and also has a vision of developing itself as a regional superpower and eventually a world superpower.

India has always supported rule-based world order where the interests of even the weakest countries are also protected. The aggressive and assertive policies incorporated by China in recent years are against India's views. The grouping which constitutes democratic countries that also share India's view on rule-based order provides India with the support it needs.India has been trying to acquire permanent membership in the security council of the United Nations. It needs the support of the United States as it is a permanent member of the security council and has veto power. India also needs the support of Japan and Australia as these countries have a lot of influence in the United Nations which is essential for India's needs.

After the Covid-19 pandemic, the world has changed drastically. The pandemic disrupted the global value chains which made one thing clear: reliance on one country is harmful to everyone. This has led to the beginning of a movement of shifting some of the manufacturing facilities that were present in China to someplace else. This is a wonderful opportunity for India. This can attract FDI (Foreign Direct Investment)to India to its manufacturing and services sector. This can result in the growth of Indian exports and develop its economy faster. Work has already begun in this direction. Many international companies especially from countries which feel threatened by Chinese policies have started shifting out of China. This movement can also reduce India's reliance on China. India has a trade deficit of USD 72.9 billion in the financial year 2022 with China. If the manufacturing shifts to India, then this trade deficit can be reduced and can even be reversed.

Conclusion

The QUAD will play an important role in the future. The group is based on the principle of cooperation which is very important for a democratic and rule-based system that can ensure lasting peace and progress. Grant Wyeth thinks that "This narrative plays well with an attempt to create a "values-based" partnership of liberal-democratic states with both the capability and desire to administer global public goods". This group can put a check on the expansionistic, aggressive and assertive policies of China

and can ensure the peace and stability in the region. And only peace and stability can bring progress which is crucial for this region which houses the largest population of poor people in the world.

References

1. Joe Biden, Narendra Modi, Scott Morrison, and Yoshihide Suga, "Op-Ed: Our Four Nations are Committed to a Free, Open, Secure and Prosperous Indo-Pacific Region," U.S. Embassy & Consulates. https://au.usembassy.gov/op-ed-our-four-nations-are-committed-to-a-free-open-secure-and-prosperous-indo-pacific-region-washington-post. Accessed on 5 August 2022.
2. https://en.wikipedia.org/wiki/Quadrilateral_Security_Dialogue. Accessed on 01 September2022.
3. Sheila A. Smith (2021). https://www.cfr.org/in-brief/quad-indo-pacific-what-know. Accessed on 08September 2022.
4. https://www.whitehouse.gov/briefing-room/statements-releases/2021/03/12/quad-leaders-joint-statement-the-spirit-of-the-quad. Accessed on 10 October 2022.
5. https://www.business-standard.com/article/economy-policy/spike-in-imports-fall-in-exports-widen-india-s-trade-deficit-with-china-122072000476_1.html. Accessed on 5 August 2022.
6. https://thediplomat.com/2017/11/why-has-australia-shifted-back-to-the-quad. Accessed on 10 October 2022.
7. 2017 Foreign Policy White Paper," Australian Department of Foreign Affairs and Trade, 2017, 46–7.
8. Ronald Rajah, Alexandre Dayant, and Jonathan Pryke, "Ocean of Debt? Belt and Road and Debt Diplomacy in thePacific,"LowyInstitute.https://www.lowyinstitute.org/sites/default/files/Rajah%2C%20Dayant%2C%20Pryke_Belt%20and%20Road%20and%20the%20debt%20diplomacy%20in%20the%20Pacific_WEB.pdf. Accessed on 5 September 2022.

Peeyush Phogat
Ph.D. Research Scholar
Department of Political Science
Maharshi Dayanand University,
Rohtak, Haryana-124001
Contact no. 8818016963
Email. peeyush.s.phogat@gmail.com

73

: Effects of Air Pollution on Crops/Plants Growth :

Dr. Govind Prakash Acharya

Abstract :

Enormous increase in human population raised the demand for development and increased the consumption of various natural resources resuling in environmental deterioration. The term environment describes the sum total of physical and biotic conditions influencing the response organisms. This paper provides the just round the corner view about the effects of environment pollution in the outlook of air pollution, water, soil iet. on crop/plants. Study finds that these kinds of pollutions are not only seriously affecting crop/plants but also injured when exposed to high concentrations of various environmental pollution.

Air Pollutants consist of gaseous pollutants, odor, and spm, such as dust, fumes, mist and smoke. The concentration of these in and near the urban areas causes severe Pollution to the surroundings. The Largest sources of human- created air Pollution are energy generation, Transportation, and industries that use a great deal of energy sources.

Keyword : Air Pollution, Gaseous Pollutants, Particulate Pollutants, Interaction with crop/plant.

Introduction :

Different types of gases are found in the atmosphere in a certain ratio in normal state. In Generally, nitrogen in air is 78 percent , oxygen 21 percent , carbon dioxide 0.3 percent , remaining inert gases are water vapor. These gases keep on cycling between different living beings and the atmosphere. As a result of this cycling process, the proportion of these gases remains permanently in the atmosphere. When undesirable elements enter the air, the basic ratio and balance of the gases present in the air get disturbed. This condition is known as air pollution. In fact, air pollution means dust and fine particles of carbon and harmful gases in the air exceeding a limit , the amount of nitrogen dioxide , sulfur dioxide and carbon monoxide and those fine particles dissolved in the air which are harmful to the naked eye. Not visible to the eyes , they are called P-M 2.5 . In fact, the main criterion of air pollution is their exceeding the standard set by the World Health Organisation. According to the World Health Organization, the amount of these particles should not exceed 25 micrograms per meter in the air. If their quantity in the air becomes 100 micrograms, then such air will be called polluted.

Industrial and technological development was born as a result of the increasing needs of man and his intellectual development. To meet the rapidly growing needs, man started exploiting natural resources. As a result of the selfish nature of man and the pressure of increasing population, the exploitation of nature increased, which gradually created an imbalance in the various components of nature. Uncontrolled exploitation of natural resources , establishment of various types of multipurpose projects , construction of roads , industrial and technological development made human life comfortable and convenient on the one hand and on the other hand gave rise to the problem called 'environmental pollution'.

Crop/Plant can be injured when exposed to high concentrations of various environemntal pollutants. Injury ranges from visible markings on crop leaves, to reduced growth and yield, to premature death. The development and severity of the injury depends not only on the concentration of the particular pollutant but also on a numner of other factors. These include the length of exposure to the pollutant, the plant species and its stage of development as well as the environmental factors conductive to a build up of the pollutant and to the preconditioning of the plant, which makes it either susceptible or resistant to injury. Some of these pollutants may directly affect the soil leading to infertile and acidic soil content, if used for farming will lead to low yields. Most common pollutants, which end up affecting agricultural acitivity, include sulphur dioxide, fluorides, ammonia, chlorine and particulate matter. But experts say widespread Ozone, the major component of oxidants, s produced in the atmosphere during a complex reaction involving nitrogen oxides and reactive hydrocarbons, componenets of automobile exhausts and fossil fuel burning. As this process proceeds only in sunlight, it is called a photo-chemical

reaction leading to injury on crops.

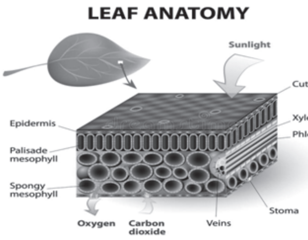

A. Effects of Gaseous Pollutants :

1. Effect of Sulfur Dioxide (SO_2) - SO_2 is the main pollutant released from industrial units where coal is burnt . Its effects are as follows:

(i) This gas enters plants mainly through stomata. As a result of action with atmospheric moisture, it gets converted into sulfuric acid and gets deposited on the surrounding soil . In such a state, it is separated in the form of sulphate and absorbed by the roots. Due to its presence in excess, the pH of the soil decreases. As a result, the aluminum present in the soil becomes free, which after being absorbed by the roots of the plants, causes extreme adverse effects . Not only this , as a result of low pH , the essential elements present in the soil get eroded and gradually the fertility of the soil decreases. As a result, the lack of these elements in plants stops their growth. It is worth considering that sulfur is also an essential element, so a small amount of this gas acts as a fertilizer in plants.

(ii) Chlorophyll in the leaves starts decreasing due to excessive amount of this gas , as a result of which chlorosis disease occurs in the leaves and due to its excessive amount cells start dying and tissue decay (necrosis) starts in the leaves. Is. Tissue decay is initially visible as small spots between the primary veins. Gradually it spreads over the entire leaf and the leaves die. These specific necrotic spots , the presence of SO2 in the atmosphere is known. Excessive chlorosis and necrosis reduce the process of photosynthesis in plants, as a result of which the growth of plants stops and the yield decreases.

(iii) This gas stimulates the peroxidase enzyme present in plants, as a result of which the lipids present in the cell wall break down. In this process, a gas called ethane is released. Therefore, this type of ethane emission is considered as an indicator of adverse effects of SO_2 .

(iv) SO_2 also decomposes proteins and sugars present in cells and inactivates many enzymes like rubisco , phosphoenol pyruvate carboxylase , malate dehydrogenase , catalase etc.

(v) This gas reduces the germination of pollen grains as well as reduces the process of formation and development of fruits and seeds. As a result of which the agricultural productivity decreases.

(vi) The presence of this gas for a very long time leads to extinction of highly sensitive plant species. Some bryophytes and lichens are very sensitive to SO_2 , therefore these plants are considered as indicators of SO_2 pollution .

2. Effect of Nitrogen Oxides (NOx) - NO and NO_2 are mainly found in polluted air . Although the amount of NO is high (about 75%), but NO_2 is a more toxic gas. Their effects are as follows:

(i) NO_2 enters the plants mainly through the stomata , like SO_2, this gas is also absorbed by the roots of the plants after being deposited on the soil and in the same way the pH of the soil changes . By reducing the pH , it has adverse effects on the plants . Nitrogen is an essential element for the growth of plants, so a low amount of NO increases the growth of plants. As a result the yield increases. As is often seen in polluted air, if SO is present along with NO, its side effects increase if it is present in small amounts. This is called Synergistic effect .

(ii) Excess amount of NO2 causes chlorosis in the leaves, at higher doses , necrosis occurs which first develops as small spots on the upper surface of the leaf and gradually progresses to larger spots of irregular shape. gets converted into These necrotic spots can now be seen on both sides of the leaf and are located between the large secondary veins, towards the edge of the leaf. In this way, due to chlorosis and cell decay, the process of photosynthesis in plants slows down considerably.

(iii) Due to NO_2 gas, the amount of protein and total nitrogen in plants increases in the initial stage. This gas stimulates an enzyme called nitrate reductase , which reduces the amount of nitrate nitrogen.

(iv) NO and NO_2 react with hydrocarbons present in the atmosphere in sunlight to form highly toxic secondary pollutants ozone (O) and peroxy acetyl nitrate (PAN) . These secondary pollutants are important components of photochemical smog and are highly harmful.

3. Effect of Carbon Monoxide (CO) : CO is a very poisonous gas in carbon compounds . More than 75 percent of carbon monoxide (CO) is produced by self-driving vehicles.

It is not harmful to plants at low concentration , but if the concentration increases beyond 1000 ppm , this gas also has harmful effects on plants. Premature falling of

leaves , curling , shortening of leaves etc. are the harmful effects of CO . As a result, plants remain small in size. CO inhibits cellular respiration by acting on cytochrome oxidase enzymes.

4. Effect of fluoride : HF and SiF_4 are found in gaseous form in fluoride compounds. Fluoride compounds are released in abundance from aluminum factory , phosphate fertilizer factory , glass factory etc. This has the following effects:

(i) Fluoride from SO_2 enters the leaves mainly through stomata. Plants are also more sensitive to this gas. Therefore, side effects can be seen in plants even at its low concentration. This is mainly due to the tendency of fluoride to accumulate in the tissues. Fluoride accumulates in greater quantity on the edges and top of the leaves. As a result, Marginal injury and tip burn are the main visual symptoms of fluoride side effects.

(ii) Leafy vegetables and turgid plants are more sensitive to accumulate fluoride. Marginal necrosis & tip burn of leaves due to fluoride is a good example of accumulation and damage.

(iii) Many enzymes like enolase, phosphoglucomutase, phosphatase, hexokinase, malic dehydrogenase, nitrate reductase etc. are highly sensitive to fluoride resulting in metabolic disturbances.

(iv) Fluoride slowly accumulates in grasslands which can enter the food chain and has a toxic effect on animals.

5. Effect of ozone (O_3) : O_3 in the Troposphere is a secondary pollutant. In the stratosphere (11 to 50 km above the earth) , it is formed from oxygen. This ozone prevents the sun's ultraviolet rays from reaching the earth.

(i) This gas enters plants mainly through stomata. The absorption of O_2 by the roots is not possible. Reaching the leaves, ozone gradually destroys the palisade cells. As a result, necrotic spots are mainly found on the upper surface of the leaves. The color of these spots is white or light brown. These damage symptoms on grapes , lemon and tobacco 0.02 ppm concentration can be seen only on Tip burn occurs in the leaves of Chahan due to the effect of O_3.

(ii) O_3 reduces the amount of chlorophyll in the leaves. In this way, due to reduction in the amount of chlorophyll, necrosis on the leaves and reduction in the size of the leaves, the rate of photosynthesis becomes very low, as a result of which the growth of the plant stops.

(iii) Hypersensitivity to O_3 amino acids like cysteine, methionine, tryptophan , tyrosine etc. are sensitive. As a result the plasma membrane in which these amino acids are present gets affected by O_3 .

(iv) Ozone forms free radicals of super oxides inside the cell which harms the present DNA etc.

(v) This gas reacts with dyes , rubber , fibers like cotton , nylon , polyester etc. and exerts a damaging effect. Makes rubber hard and cracks occur in it. Its 0.45 ppm amino concentration causes rubber to crack in three minutes.

6. Effect of peroxy acetyl nitrate (O_3) -

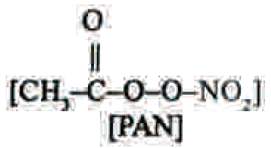

[PAN]

PAN is a secondary pollutant and oxidizer like ozone. It is an integral part of photochemical smog . It is so toxic that its 0.1 ppm concentration can kill plants within minutes. Its effects are:

(i) It enters plants through stomata. The alkyl group present in it increases its solubility in water due to which it enters the tissues easily. Presence of light Its injurious potential increases in. The middle stage of the leaves are most susceptible to PAN .

(ii) After entering through the stomata, PAN first affects the parenchymatous cells surrounding the stomata. Gradually the mesophyll cells die and are replaced by air spaces , which can be seen mainly as bright spots on the lower surface of the leaves. This is a typical symptom of PAN damage.

(iii) In this way, the photosynthesis of leaves decreases due to necrosis and the growth of plants stops.

(iv) Some other enzymes like cellulose synthetase and glucose - 6 -phosphate dehydrogenase are hypersensitive to PAN . This gas also oxidises NADPH .

(v) It enhances the breakdown of proteins. Sulfur containing amino acids are sensitive to PAN .

(vi) They interfere with the action and synthesis of phytochrome, as a result of which photoperiodic activities are affected in plants.

(vii) PAN damages purine and pyrimidine nitrogenous bases present in nucleic acids, which inhibits protein synthesis.

(viii) The effect of PAN on growth hormone has also been observed in some plants. It reacts with auxin and destroys its original quality. As a result of which the growth of plants stops.

7. Effect of Carbon Dioxide CO2 :- Increase in the amount of atmospheric carbon-dioxide affects the process of photosynthesis in plants, due to which the rate of photosynthesis increases. Thus, carbon dioxide affects plant growth through trophic effects.

Due to increase in the amount of carbon-dioxide in the

atmosphere, there is delay in flowering of crops. Due to the increase in the temperature in the environment, the soil moisture also starts decreasing, the moisture does not remain accumulated for a long time, due to which the crops ripen before one to two weeks, as a result, the production of crops decreases.

8. Green House Effect: The increase in the amount of CO_2 in the atmosphere increases the atmospheric temperature.

In this way, due to increase in the amount of carbon-dioxide, the temperature of the earth will increase further. As a result, the frozen ice on the poles and mountains will melt and come into the sea and will raise its water up to 60 feet, thus changing the ratio of sea and land on the surface of the earth, the climatic balance will deteriorate, as a result food production and agriculture in the world will be affected. There will be side effects.

B. Effects of Particulate Pollutants : Particles of different sizes of different substances remain suspended in the atmosphere. Those suspended particulate matter whose size is 3 microns (3μ) or less are called Respirable Suspended Particulate Matter (RSPM) . They cause more side effects on animals and humans.

(i) Particles of metals like cadmium, lead, mercury etc. also highly toxic in particulate matter. These metals which have a density of 6 g cm^{-3} or more are called heavy metals. In plants, their effect is seen on greater compatibility. Due to their excessive compatibility, there is chlorosis in the leaves and the growth of the plants stops. Cadmium displaces copper present in enzymes. As a result, many metabolic activities are affected. Some metals hinder the synthesis of chlorophyll and enzymes.

(ii) Fluoride may also be present in particulate form near its specific sources. $3NaF.AlF_3$; CaF_2 and AIF_3 are its main particulate forms . Fluoride in particulate form also exerts the same effect as that described with gaseous fluoride.

(iii) Particulate matter containing more coal particles reduces the yield of leguminous plants. This is due to two reasons- firstly, such particulate matter kills the apical buds and secondly, it prevents the germination of pollen grain and formation of fruit. This has been observed with mango and lemon.

(iv) Ca, K, Na, Si, Al, Fe, Mn, Mg and S are abundant in particulate matter coming out of cement factories . The calcium silicate and calcium aluminate present in these react with the moisture present on the leaves to form an impenetrable layer on the leaves. As a result of which the lack of light and gaseous exchange of the leaves gets affected and the process of photosynthesis slows down considerably. Particulate matter of cement also kills the top buds and hinders the development of fruits.

In this way, the particulate matter of the atmosphere has adverse effect on human beings, animals and plants. The presence of particulate matter in the atmosphere reduces the amount of visible light rays reaching the earth, affecting the process of photosynthesis. Some particulate matter act as condensation nuclei and form aerosols . Aerosols in the atmosphere reflect the sun's rays. As a result, the temperature of the earth decreases. Some particulates and substances like soot particles absorb sun rays and increase the earth's temperature.

Impact of air pollution on plants:

Plants prepare their food by the process of photosynthesis by taking carbon dioxide from the air and sunlight. As a result of air pollution, due to accumulation of dust particles on the upper surface of the leaves, there is disturbance in photosynthesis and emission activities.

Due to lack of light period, after a few days due to disturbance in the food system, the plants turn yellow and die. Sulfur dioxide and nitrous oxide gases from burning fuel come in contact with atmospheric moisture to form sulfuric acid and nitric acid. Which burns the crops in the form of acid rain .

Coming out of various types of vehicles and factories contains gases like carbon monoxide , carbon dioxide , nitrous oxide , sulfur dioxide, etc. , which are transparent to the micro wave radiations coming to the earth , but returning to the space from the earth's surface. causes interference to long wave radiation. As a result, there is a danger of continuous increase in the temperature of the atmosphere, due to which the possibility of melting of polar ice also increases the possibility of submerging the low-lying areas of the world. For this reason, the time of sowing and ripening of crops is also changing, due to which the yield of crops has started getting affected.

Due to the increase in the amount of carbon dioxide in the atmosphere, there is delay in flowering of crops. in ambient temperature Due to growth, soil moisture also starts decreasing. The moisture does not get accumulated for a long time due to which the crops ripen one to two weeks earlier. As a result the crop production decreases.

Plants :

The effects of air pollution on human life are encountered to some extent in other organisms as well. Plants too are faced with the harmful effects of polluted air. Plants have a very close interrelation with the environment

through absorbing CO_2 from the atmosphere and releasing oxygen in the air. All forms of life on this earth are directly or indirectly dependent upon plants as a source of food. Plants also act significantly improving our environment ecologically, aesthetically, physically and chemically. In brief, man depend upon plants for his survival, and the level to which he enjoys his life on this earth is greatly affected by the kind and quality of vegetation within the geographical area of his habitation. Godson-ibeji and Chikaire (2016) concluded that environmental pollution reduces the level of soil nutrients and fertility. Hence, crop growth and yield are negatively affected by pollution.

The nature of injuries to plants by various gases can be categorised into two parts i.e. (i) visible effects, and (ii) suppression of growth. The most frequently encountered air contaminants which damage the vegetation are sulphur dioxide (SO_2), hydrogen fluoride (H_2F_2), chlorine (Cl_2), hydrogen chloride (HCl), nitrogen oxides (NO, NO_2) , Hydrogen sulphide (H_2S), ammonia (NH_3), hydrogen cyanide (HCN), mercury vapour (Hg), ethylene (C_2H_4), Spray of weed killers, and constituents of photochemical smog.

The extent of injuries or damage to individuals plants depends (i) the nature and amount of pollutants, (ii) type of soil, (iii) relative humidity, (iv) amount and type oof plant food materials, (v) stage of plant growth, (vi) viability of the plant, (vii) time of exposure, and (viii) amount of light (Rossano, 1974). Burney and Ramanathan (2014) reported that two potent Short-lived Climate Pollutants (SLCPs), tropospheric ozone and black carbon, have direct effects on crop yields beyond their indirect effects through climate.

: Table Shows the effects of air pollutants on plants :

Chemical	Symptoms	Sensitive Plants	Examples of Concentration for sensitivity
Chlorine	Bleaching, leaf tip and margin browning, dropping of leaves, yellow spots.	Raddiesh, alfalfa, peach, buck-wheat, corn, tobacco, oak, white pine	Raddies, 1.3 ppm
Fluorides	Leaf tip and margin yellowing (chlorosis), drawfing, leaf abscission, decreased yield.	Gladiolus, tulip, apricot, blueberry, corn, graphe, blue spruce, white pine	Gladiolus, apricot 0.1 ppm
Nitrogen oxides	Brown spots on leaf, suppression of growth	Azalea, sunflower, mustard tobacco, pinto beans	Pinto beans, 3 ppm
Sulphur dioxide	Blleached spots on leaf, chlorosis, early abscission, reduced yield.	Barley, pumpkin, alfalfa, cotton, wheat, lettuce, apple, oats, aster, zinnia, birch, elm, white pine, ponderosa pine.	Alfalfa, barley, cotton 0.3 ppm
Ozone	Reddish brown flecks on upper surface of leaf, bleaching, suppression of growth, early abscission, premature aging	Alfa, barley, beans, onion, corn, apple, grape, tobacco, tomatoes, pinach, maple, privet, white pine, ponderosa pine.	Tomato, tobacco, 0.05 ppm
Other oxidant gases, e.g. pero - xy acetyl nitrate (PAN)	Glazing, silvering or bronzning of lower surface of leaf	Pintobeans, mustard, oat, tomato, lettuce, petunia, blue grass	Petunia, lettuce, 0.2 ppm
Unsaturated hydrocarbons, e.g. ethylene	Leaf abscission, d ropping of flowers, loss of flower buds, chlorosis, suppression of growth	Orchid blossom, carnation blossom, azalea, tomato, cotton, cucumber, peach	Orchids, 0.005 ppm Tomatoes, 0.1 ppm

*** Certain varieties of these plants are sensitive**

Source : Kupchella and Hyland (1989)

A list of air pollutants and their effect on direct field crops, vegetables, fruit trees and ornamental plants is presented in the above given table. Some of the toxic gases causing air pollution slow down the process of photosynthesis by entering the pores of plants during respiration. This negative effect, particularly, on agricultural plants, causes a decline in crop yield. The plant species most affected by sulphur dioxide are certain important grain crops. The discolouration seen inthe leaves of trees is another example of damage caused to plant life by air pollution. Another pollutant, ozone, casues trees to lose their leaves prematurely and is especially harmful to young plants. The damage to vegetation as a result of air pollution is important from the points of view of both agricultural production and the ecological balance.

Conclusion :

Effect on Vegetation : Air pollutants go inside through the 'stomata' located on the leaves and destroy the chlorophyll. As a result, photosynthesis stops. This is it. These pollutants also damage the oily layer present on the leaves. As a result, the excretion of water from plants and the infection of insect diseases become easier. Leaf curling, yellowing and shedding are visible effects due to the effect of pollutants on the leaves. Due to this effect, all the vegetation can also be destroyed.

References :

1. Ahmed Shakil (2007). Impact of air pollution on plant diseases - a review. Pak. J. Phytopathol (2): 192-198.
2. Angell J K and Korshover J (2005). Quasi-biennial and Long term Fluctuations in Tota Ozone," Monthly Weather Review vol. 101, pp.426-43.
3. Anita Singh and Madhoolika Agrawal (2008). Acid rain and its ecological consequences Journal of Environmental Biology 29(1): 15-24.
4. Anwar Fakhra, Chaudhry Fahad Nazir, Nazeer Saiqa, Zaman Noshila and Azam Saba (2016) Causes of Ozone Layer Depletion and Its Effects on Human: Review. Atmospheric and Climate Sciences 6: 129-134 http://dx.doi.org/10.4236/acs.2016.61011
5. Avdeev O and Korchagin P (1994). Organization and Implementation of Contaminated Waste Neutralization in the Ukraine National Report II, Central. European Journal of Public Health, 2(suppl), pp. 51-52.
6. Baciak M, Warminski K and Bes A (2015). The effect of selected gaseous air pollutants on woody plants. Forest Research Papers 76 (4): 401 - 409.

7. Botkin D B and Keller E A (2007). Environmental science: Earth as a living planet. Hoboken, NJ: Wiley.
8. Burney J and Ramanathan V (2014). Recent climate and air pollution impacts on Indian agriculture. PNAS Early Editionwww.pnas.org/cgi/doi/10.1073/pnas.131727511
9. Department of Environment, Food and Rural Affairs (Defra) (2013). Impact pathway guidance for valuing changes in air quality. May 2013.
10. Devi Saroj, Gupta Charu, Jat Shankar Lal and Parmar M S (2017). Crop residue recycling for economic and environmental sustainability: The case of India.
11. European Public Health Alliance, (2009). Air, Water Pollution and Health Effects. Retrieved from http://www.epha.org/r/54
12. Fereidoun, H., Nourddin, M. S., Rreza, N. A., Mohsen, A., Ahmad, R. & Pouria, H., (2007). The Effect of Long-Term Exposure to Particulate Pollution on the Lung Function of Teheranian and Zanjanian Students, Pakistan Journal of Physiology, 3(2), pp. 1-5.
13. Gautam A, Mahajan M and Garg S. (2009). Impact of Air Pollution on Human Health In Dehra Doon City.Retrieved from http://www.esocialsciences.com/data/articles/ Docu ment12882009311.130313E- 02.pdf
14. Godson-ibeji CC and Chikaire) U (2016). Consequences of Environmental Pollution on Agricultural Productivity in Developing Countries: A Case of Nigeria. International Journal of Agricultural and Food Research 5(3): 1-12.
15. Government of Pakistan (2009), Economic Survey of Pakistan, Finance Division, Economic Division Wing, Islamabad.
16.Greenpeace (2017), Airpocalypse: Assessment of air pollution in Indian cities. pp. 40. Hari Mohan Meena (2014), Acid Rain-The Major Cause of Pollution: Its Causes, Effects and Solution. International Journal of Chemistry and Applications. 6(2): 95-102.

Dr. Govind Prakash Acharya
(Asso. Professor (Agri.)
SGG Govt. College, Banswara
M :9460545836 / Email : gpacharya.6@gmail.com

74

Effects of Air Pollution on Health

Manju Mishra, Dr. Govind Prakash Acharya

Abstract :

Air Pollutants enter in the body via Lungs. Air Pollution is a Major environmental health problem affecting the developing and the developed countries alive. The effects of air pollution on health are very complex as there are many different sources and their individual effects vary from one to the other. It is not only the ambient air quality in the cities but also the indoor air quality in the rural and urban areas that are causing concern Air pollutants that are inhaled have serious impact on human health affecting the lungs and respiratory system they are also en up by the blood and pumped all round the body.

Air Pollutants consist of gaseous pollutants, odor, and spm, such as dust, fumes, mist and smoke. The concentration of these in and near the urban areas causes severe Pollution to the surroundings. The Largest sources of human- created air Pollution are energy generation, Transportation, and industries that use a great deal of energy sources.

Keywords : Air Pollution, Primary Pollutants, Secondary Pollutants, Human Health

Introduction :

Different types of gases are found in the atmosphere in a certain ratio in normal state. In Generally, nitrogen in air is 78 percent , oxygen 21 percent , carbon dioxide 0.3 percent , remaining inert gases are water vapor. These gases keep on cycling between different living beings and the atmosphere. As a result of this cycling process, the proportion of these gases remains permanently in the atmosphere. When undesirable elements enter the air, the basic ratio and balance of the gases present in the air get disturbed. This condition is known as air pollution. In fact, air pollution means dust and fine particles of carbon and harmful gases in the air exceeding a limit , the amount of nitrogen dioxide , sulfur dioxide and carbon monoxide and those fine particles dissolved in the air which are harmful to the naked eye. Not visible to the eyes , they are called P-M 2.5 . In fact, the main criterion of air pollution is their exceeding the standard set by the World Health Organisation. According to the World Health Organization, the amount of these particles should not exceed 25 micrograms per meter in the air. If their quantity in the air becomes 100 micrograms, then such air will be called polluted.

Industrial and technological development was born as a result of the increasing needs of man and his intellectual development. To meet the rapidly growing needs, man started exploiting natural resources. As a result of the selfish nature of man and the pressure of increasing population, the exploitation of nature increased, which gradually created an imbalance in the various components of nature. Uncontrolled exploitation of natural resources , establishment of various types of multipurpose projects , construction of roads, industrial and technological development made human life comfortable and convenient on the one hand and on the other hand gave rise to the problem called ' environmental pollution ' .

Environmental pollution today is not only a regional or country level problem , but has taken the form of a universal problem. Whether it is a developed country or a developing country , the problem of pollution is taking a formidable form. If this problem is not curbed in time, then it can become a threat to human civilization.

Based on the reading of the Air Quality Index, the air quality is divided into 6 categories:-

Categories	AQI	Quality
1	0-50	Good
2	51-100	Satisfactory
3	101-200	Medium
4	201-300	Bad
5	301-400	Nasty
6	401-500	Serious

Sources : Rajashtan Patrika 4th Nov. 2022 Jaipur Edition

AQI in different cities :- Air quality test done in different cities on November 5, 2022 :

State name	Name of the city	AQI	Quality
Punjab	Bathinda	220	Bad
	Chandigarh	145	General
	Jalandhar	223	Bad
	Ludhiana	299	Bad
	Panchkula	115	General
Uttar Pradesh	Bulandshahr	215	Bad
	Ghaziabad	411	Dangerous
	Noida	406	Dangerous
	Lucknow	425	Dangerous
	Prayagraj	290	Bad
	Agra	204	Bad
Chhattisgarh	Bilaspur	57	Satisfied
Bihar	Begusarai	315	Nasty
	Bhagalpur	212	Bad
	Motihari	363	Bad
	Muzaffarpur	250	Bad
Haryana	Bahadurgarh	452	Dangerous
	Ballabhgarh	372	Nasty
	Charkhi Dadri	412	Dangerous
	Faridabad	402	Dangerous
	Gurugram	416	Dangerous
	Hisar	440	Dangerous
Gujarat	Gandhinagar	115	General
	Ahmedabad	201	Bad
Rajasthan	Alwar	237	Bad
	Bhiwadi	433	Dangerous
	Jaipur	199	General
	Jodhpur	140	General
Delhi	Delhi	509	Dangerous

Sources : Rajashtan Patrika 5th Nov. 2022 Jaipur Edition

Categories of Air Pollutants:

On the basis of physical state, air pollutants are of the following two types.

1. Gaseous air pollutants:

Those substances whose abundant presence in the atmosphere directly or indirectly hinders the comfort , safety and health of man or the full enjoyment of his property or his enjoyment are called air pollutants . " According to the Indian Air (Pollution Control and Prevention) Act , 1981 (Air Prevention and Control of Pollution) Act 1981 , those solid , liquid or gaseous substances (including noise) present in the atmosphere, which are harmful to humans and other animals and plants and property And if it is harmful for the feeling of happiness , it is called pollutant.

SO_2 , CO_2 , H_2S, NO_2 , HE, O_3 etc. are very important in gaseous pollutants . Their specialty is that they travel in the air for a long distance from their main source. The effect of such pollutants can be spread over a large area.

2. Particulate air pollutants :

Particles of different shapes and sizes of different substances are present in the atmosphere. On the basis of the size of the particles, they can be divided into two parts-

(1) Total Suspended Particulate Matter (TSPM)] : Size of particles in it 10 μm (10 u) or smaller. They can cover more distance in the air, so their side effect can be in more area.

(2) Settleable Particulate Matter (SPM)] : These particles are larger than 10 microns in size and hence gradually settle on a surface . That's why their side effects are in a limited area.

Particles of metals , carbon , wires , particles of resins , pollen grains , spores of fungi , bacteria, etc. come under the category of particulate air pollutants. On the basis of source and origin, air pollutants can be divided into two parts. they are -

(a) Primary air pollutants - air pollutants that are emitted directly from a source. For example, compounds of sulfur (SO_2 , H_2S etc.) , carbon compounds (CO) , nitrogen oxides (NO, NO_2) , fluoride compounds (HF, SiF_4) etc.) and particulate matter containing hydrocarbons , metals , Fungicide particles etc. are mixed.

(b) Secondary air pollutants - These pollutants are produced as a result of the reaction of primary pollutants in the atmosphere. Among the secondary pollutants, ozone and peroxy acetylnitrate (PAN) are prominent. These pollutants are formed by the reaction between nitrogen oxides and hydrocarbon carbon in sunlight.

Smog - (formation made of mixture of smoke and fog)

Formation of smog is a common phenomenon in polluted cities and industrial areas. The word smog is derived from the words smoke and fog . There are two types of smog :

1. Photochemical smog : The smoke emanating from the combustion of gasoline in urban areas , in which nitrogen oxides and hydrocarbons are found in excess , when smog is formed in sunlight, it is called photochemical smog. Smog) says. In the 1940s , this comet caused immense damage in the US state of Los Angeles, which is why this comet is called Los Angeles Smog or LA Smog . This is called brown air . They also say Its nature is oxidizing and ozone and peroxy acetylnitrate (PAN) are mainly found in it.

2. Sulphurous Smog - is formed in industrial areas where SO_2 is released in abundance . In 1952 , a lot of damage was done in London due to sulphurous fumes. That is why it is called London smog or L-type smog . It is also called industrial smog or gray air . Their nature is destructive. Due to formation of inversion level in industrial smoke at low

temperature, their quantity becomes denser. In this, SO_2 and particulate matter are found in large quantities. In this way, primary pollutants are present in sulfurous comets and secondary pollutants are present in photochemical comets.

Effects of Air Pollution:

Metalic Particles, Carbon particles and different types of harmful gases , smoke etc. found in the polluted air cause disturbance in human breathing. Breathing in polluted air causes liver and kidney damage, damage to the alimentary canal, decay, diabetes and cancer etc. The oxygen carrying capacity of blood hemoglobin decreases due to increase in the amount of carbon monoxide in the air. Suffocation occurs due to excess of carbon dioxide in the air. The problems of asthma and COPD patients are increasing due to pollution. If the pollution continues, then their microns go into the lungs and blood. Problems like irritation in the eyes, itching , cold , trouble in the nose are also due to this.

Effects of Gaseous Pollutants :

1. Effect of Sulfur Dioxide (SO_2) - SO_2 is the main pollutant released from industrial units where coal is burnt . This gas causes irritation in the eyes and respiratory tract. By reacting with the moisture present in the environment, it forms sulfuric acid, which causes skin diseases.

2. Effect of Nitrogen Oxides (NO_2) - NO and NO_2 are mainly found in polluted air . Although the amount of NO is high (about 75 %) , but NO_2 is a more toxic gas. NO gas causes irritation in the eyes and diseases related to the respiratory system. NO_2 irritates the alveoli of the lungs. Long-term exposure to high levels of NO_2 can lead to emhysema, inflammation in the lungs, and eventually edema .

3. Carbon Monoxide Effect of (CO) - CO is a very poisonous gas in carbon compounds . More than 75 percent of carbon monoxide (CO) is produced by self-driving vehicles. That's why the amount of this toxic gas increases more in big cities especially on busy roads. It is a colourless , tasteless , odorless and non-stimulating gas. That's why its presence is not immediately known. Its high concentration causes death within a few hours. CO enters our body through respiration. The binding ability of hemoglobin present in the blood is about 200 times greater for carbon monoxide than for O_2 . This gas binds with hemoglobin to form carboxyhemoglobin.

CO + Hb (hemoglobin) → COHb (carboxyhemoglobin)

As a result, there is a decrease in the oxygen carrying capacity of the blood cells. As a result , there is a deficiency of O_2 in the body, which is called hypoxia . Severe lack of oxygen leads to cerebral anoxia and ultimately the death of the animal.

4. Effect of fluoride - HF and SiF_4 are found in gaseous form in fluoride compounds. Fluoride compounds are released in abundance from aluminum factory, phosphate fertilizer factory, glass factory etc. This has the following effects:

Small amount of fluoride is necessary for the strength of our teeth and bones. Its side effects can be seen at high concentration. Stomach pain , indigestion , diarrhoea , gas formation etc. are important in the initial symptoms of fluoride pollution. These symptoms appear quickly in children. Due to its excessive quantity, dermatan sulphate starts accumulating in the teeth and bones. As a result of which, due to caries, porous discolored spots are formed on the teeth and bones. Eventually the teeth and bones become weak. The legs are turned outward from the knee. This is called Knock knee syndrome . Animals that graze near polluted places also get fluorosis.

5. Effect of Ozone (O_3) - O_3 is a secondary pollutant in the Troposphere . In the stratosphere (11 to 50 km above the earth) it is formed from oxygen. This ozone prevents the sun's ultraviolet rays from reaching the earth. This gas is formed in the troposphere by the action of primary pollutants in sunlight.

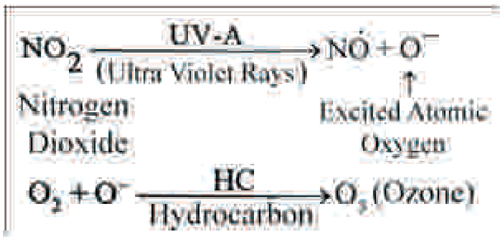

Ozone is a toxic gas, which in excess has harmful effects on our health. Its presence causes burning sensation in the eyes , nose and throat. Slowly it starts getting hot. High amount of O_3 causes pulmonary edema . The number of phagocytes present in the lungs , which remove bacterial infections , decreases. Emphysema due to prolonged exposure to O_3] Diseases like chronic bronchitis and asthma occur. Ozone also effects central nervous system and DNA. Its high concentration causes cancer.

6. Effect of peroxy acetyl nitrate (O_3) -

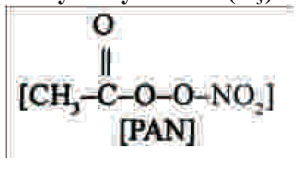

PAN is a secondary pollutant and oxidizer like ozone. It is an integral part of photochemical smog . It is so toxic that its 0.1 ppm concentration can kill plants within minutes. PAN is an eye irritant. Its presence causes watery eyes and vision becomes weak. Staying in PAN polluted air for a long time causes a disease called Asthma and Bronchitis.

Effects of Particulate Pollutants : Particles of different sizes of different substances remain suspended in the atmosphere. Suspended particulate matter whose size 3 microns (3μ) or less are called Respirable Suspended Particulate Matter (RSPM) . They cause more side effects on animals and humans , because being microscopic, they easily cross the alveolar membrane of the lungs .

The side effects of particulate matter vary according to their nature , which are as follows:

(i) Hydrocarbon particles react with other primary pollutants present in the atmosphere to form secondary pollutants like O_3, PAN etc. which are more harmful. They also participate in the formation of smog . Some hydrocarbons such as Benzo (ά) pyrene are also carcinogenic . They cause cancer in the lungs. Most of the hydrocarbon particles are deposited on the soot particles along with the metal pollutants.

In addition to benzopyrene, non-methane hydrocarbons, polycyclic aromatic hydrocarbons and volatile organic carbons are toxic and carcinogenic. The concentration of benzopyrene has been measured up to $1 \mu m^{-3}$ in Lalbagh area of Mumbai . This is a dangerous sign for the cityzens.

(ii) Particles of metals like cadmium , lead , mercury etc. are also highly toxic in particulate matter. Those metals which have a density of $6g\ cm^{-3}$ or more are called heavy metals. Thus aluminum does not come under the category of heavy metals . Lead and mercury especially affect the nervous system. Lead and arsenic increase the chances of cancer. Metals also cause more damage to the respiratory , blood transport and excretory systems. Some metals like lead and arsenic cause limb deformities and mental disorders in the unborn child.

(iii) Fluoride may also be present in particulate form near its specific sources. $3NaF\text{-}AlF_3$; CaF_2 and AIF_3 are its main particulate forms . Fluoride in particulate form also exerts the same effect as that of gaseous fluoride.

The effect of air pollution on human health depends upon nature of the pollutants. Length of the time period, concentration of pollutants present in the air, contact or breathing of pollutants and state of health of the receptors. Various studies have shown than there is a wide variation in measurable effects among subjects. Types of effect noticed and measured include detection of odour, eye, nose, and throat irriatation, variation in lung capacity, breathing frequency, pulse rate, reduction in physical activity and many other physiological responses.

WHO has estimated that some 12.6 million deaths a year are associated with environmental pollution. Of these, an estimated 6.5 million deaths (11.6% of all global deaths) are associated with air pollution, from household and outdoor sources. A report of Greenpeach India (2017) has reported that deadly air pollution is not a problem restricted to Delhi-NCR (National Capital Region) or even to India's metros. It is a national problem that is killing 1.2 million Indians every year and costing the economy an estimated 3% of GDP. Thus, if the country's development is important, fighting air pollution has to be a priority.

Health problems due to Air Pollution :

- Individuals with heart disease- such as coronary artery disease or congestive heart failure.
- Individuals with lungs disease-such as asthma. emphysema.
- Pregnant women
- Outdoor workers
- Children under age 14, whose lungs are still developing.
- Aggravated cardiovascular and respiratory illness.
- Added stress to heart and lungs, which must work harder to Supply the body with oxygen.
- Damaged Cells in the respiratory system Accelerated aging of the lungs.
- Loss of Lung capacity.
- Development of diseases such as asthma., bronchitis, emphysema and possibly Cancer.
- Shortened Life span.

Air Pollution Control Measures:

A. Control of particulate air pollution - Control of emissions of particulate matter is an important step in reducing air pollution in the atmosphere. Following are the ways to remove particulate matter

(i) Gravity settling chamber - Large grains which are 50μ or more are removed from this plant.

(ii) Cyclone collector - 5-20μ by this method size particles can be easily removed.

(iii) Wet scrubbers - With the help of these, small particles and gaseous pollutants are removed. It is a very suitable plant in which the pollutants are separated with the help of water jets.

(iv) Electrostatic precipitator - This plant is essentially used in most of the industrial units. In this, electricity is

passed to ionize the particulate matter. The ionized particles gradually collect at the collecting electrode from where they are separated.

(v) Air filters - Air filters are also called bag houses **.** It consists of cloth and fiber bags of different thicknesses which help in filtering of particulate matter. These are of different types according to the requirement of the industrial units.

B. Control of gaseous air pollutants :

(i) Wet scrubbers and electrostatic precipitators (ESP) are mainly used for the separation of gaseous air pollutants . Some gases such as nitrogen that do not readily absorb electrons cannot be separated by precipitants (ESP) . ESP is a suitable plant for the separation of SO_2.

(ii) Biological filters Volatile organic compounds are separated by biological filtration . The polluted gas is passed through a biologically active medium where the pollutant gas is decomposed by viruses. Apart from the use of plants, there are several measures of air pollution control as follows-

a) Creating awareness about the environment and pollutants through meetings , education meetings , seminars , etc. related to the side effects of air pollution is also a good step in this direction.

b) Emphasis should be given on more use of community vehicles, this will reduce the number of personal automatic vehicles, resulting in saving of gasoline and reducing pollution in urban areas.

c) New and good technical efficiency plants should be used in industrial units. As a result, the use of sulphur-rich fuel and gasoline will be reduced.

d) The Environment Protection Acts made by the Central and State Governments should be strictly followed.

e) In order to encourage industrial units to control pollution, the Government of India has put in place several types of fiscal incentives . There is a provision of special discount on the prices of new equipment , machines and plants used in pollution control. The chimneys of the factories should be tall.

f) Use of e-vehicles should be encouraged.

g) Plantation should be encouraged.

h) The vehicles should be checked from time to time.

i) The use of chemicals in agriculture should be minimized.

j) Industries should be established in remote areas from villages , cities.

k) There should be a provision of severe punishment for breaking environmental laws.

l) Burning of stubble in the fields should be banned.

Conclusion :

By alerting the public about air pollution, information should be given about its harmful side effects, under which the general public should be made aware of the harmful effects on the human body. Apart from common citizens, government institutions and employees, officials, politicians and industrialists should also be informed about the fatal consequences of air pollution. The production and consumption of deadly polluting materials and elements should be stopped immediately, such as the consumption and production of chlorofluorocarbons, etc., which harm the ozone layer, should be cut drastically. CNG, Euro-4 and Euro-5 fuel standards should be strictly followed in vehicles. Automatic vehicles that produce more smoke should be banned. "Air Pollution Act 1981" should be strictly followed. Plantation should be done on both sides of mining areas, railway tracks and roads. If any citizen or institution makes any complaint related to pollution, then keeping it secret, action should be taken by the State Pollution Prevention and Control Board within a certain period and it should be made public.

Therefore, joint efforts at all levels are necessary for the control of air pollution. Since ' Environmental Conservation ' is a long term, challenging and multidimensional process. To maintain a clean atmosphere in the country, continuous financial and political support from the government , technical facilities and public cooperation of environmentalists , environmental organizations as well as common citizens is an essential condition. Everyone will have to make a practical and cooperative contribution with a true heart for environmental protection. Only then we will be able to hand over a clean environment to the coming generation as a legacy.

References :

1. GoI (2002). High Powered Committee (HPC) on Disaster Management Report. HPC Report. National Center for Disaster Management, Ministry of Agriculture.Govt of India. 2002.
2. GOI (2004a) Disaster Management in India - A Status Report. National Disaster Management Division, Ministry of Home Affairs, Government of India, MHA/GOI/28/06/2004, 10 June 2004.
3. Gosain A K, Rao Sandhya, et al (2006). Climate Change Impact Assessment on Hydrology of Indian River Basins. Current Science 90 (3): 346-353.
4. Mall R K, Attri S.D and Kumar Santosh. 2011. Extreme Weather Events and Climate Change Policy in India.

Journal of South Asia Disaster Studies 4(2): 21-39.
5. Shah A J. 2011. An overview of disaster management in India. WIT Transactions on the Built Environment, Vol 119 doi:10.2495/DMAN110081
6. Sivakumar M.V.K. (2005). Impacts of natural disasters in agriculture, rangeland and forestry: an overview. Pages 1-22 In: (M.V.K. Sivakumar, R.P. Motha and H.P. Das eds.) Natural Disasters and Extreme Events in Agriculture. Berlin: Springer.
7. Swaminathan M.S. and Rengalakshmi R. (2016). Impact of extreme weather events in Indian agriculture: Enhancing the coping capacity of farm families. Mausam, 67(1): 1-4.
8. United Nations International Strategy for Disaster Reduction (UNISDR). 2010. Synthesis Report on South Asia Region Disaster Risks. New Delhi: RMSI Private Limited. Available at: http://www.unisdr.org/files/18873_southasiadisasterrisk assessmentstud.pdf

Manju Mishra
(Asso. Professor (Physics)
SPC Govt. College, Ajmer
M : 9414708738 /
Email : manjumishragca@gmail.com

Dr. Govind Prakash Acharya
(Asso. Professor (Agri.)
SGG Govt. College, Banswara
M :9460545836@
Email : gpacharya.6@gmail.com

Effect of Education of Consumer Protection Laws On Rural Youth in Haryana

Varishti, Dr. Renu Chaudhary

ABSTRACT

A study was conducted to investigate the effect of education among rural youth of Haryana regarding consumer protection laws. The study was carried out in 4 villages of Patwapur, Baniani, Bahu Akbarpur and Bhali Anandpur. The data was collected in the month of June 2021. The data was analysed to draw inferences between the villages, gender and age groups. The results were highlighted and presented with the help of bar charts and line graphs. Results revealed that out of four villages, three namely Bhali, Baniani and Bahu Akbarpur have shown good awareness about their consumer rights while one of them still lag behind in the field of consumer awareness. In the study it was concluded that the reason behind the good awareness is the reach of multimedia and social media to these section of people in the abovefore mentioned 3 villages because of their better economical status. Whereas in the village Patwapur there is still lack of awareness as their social economic status is less and also because of its location far away from cities.

Introduction

Now a days consumer awareness is an important issue. Consumer Awareness means having acquainted with the various consumer protection laws, redress mechanism and the consumer rights like right to be informed about quality, quantity, price, potency, purity, and standard of goods; right to protection of health and safety from goods and services that the consumers buy; right to consumer education; right to choose the best from a variety of offers, right to get representation if there is any grievance or suggestion, and right to seek redress against unfair trade practices or unethical exploitation of consumers. The powers and functions conferred on central consumer protection authority under section 18 of the Consumer Protection Act 2019 , some guidelines have been issued by the central authority to prevent misleading advertisements and endorsements of misleading advertidements. Decisions of consumer courts like Gurugram Consumer Forum which directs Municipal Corporation of GurugramTo Allow Maximum One Pet Dog For One Family and banned certain breeds of dogs in a recent case of: **Munni v. Neetu Chhikara and Another** CC No. 7741of2022 is a welcome step .People have started realizing that consumer issues though are petty in amount but have huge consequences.

OBJECTIVE OF THE STUDY

- Ø To identify the existing Protection framework in India and level of consumer awareness in rural youth.
- Ø To determine the awareness level of rural consumers about their consumer rights.
- Ø To study whether individuals in rural youth make informed decisions while spending their available resource of money, time and effort on consumable items.
- Ø To suggest to improve the awareness level based on the findings of the study

Scope Of The Study

The Data collection was confined from villages Patwapur, Baniani, Bahu Akbarpur and Bhali Anandpur. In the study, consumer's awareness level towards consumer rights, and consumer protections laws was studied. The data was collected in the month of June 2021

Hypothesis

In India rural people are less aware about Indian laws and in particular consumer laws also.

Materials And Methods

- **Primary Data: Data is collected from the target respondents through Structured Questionnaire.(25 respondents from each village out of which 50 % were male and 50 % were female.**
- **Sample size: 100**
- **Sampling Method: Simple random sampling. 25 samples from each Village named Bhali, Baniani, Patwapur and Bahu Akbarpur. Data is collected from rural youth with varied age groups.**

Results And Discussion

TOTAL NUMBER OF CORRECT ANSWERS OF FEMALES IN EACH VILLAGE RESPECTIVELY

FEMALES	TOTAL	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
BHALI	12	12	12	11	12	12	11	12	11	12	12
BANIANI	13	13	13	13	13	12	13	13	11	12	13
PATWAPUR	13	9	10	7	6	11	7	8	5	2	7
BAHU	12	12	10	10	10	12	10	12	11	4	11

Bhali females who gave correct answers=117/120=97.5 %

Baniani females who gave correct answers=126/130=96.92%

Patwapur females who gave correct

answers=72/130=55.38%

Bahu Akbarpur females who gave correct answers=114/120=95%

Total correct answers by females=429/500=85.8%

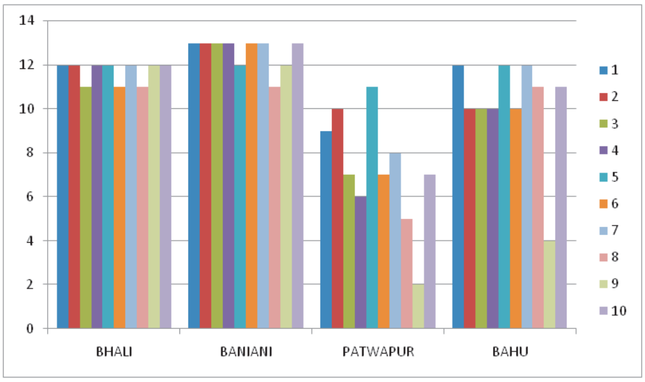

TOTAL NUMBER OF CORRECT ANSWERS OF MALES IN EACH VILLAGE RESPECTIVELY

MALES	TOTAL	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
BHALI	13	13	13	13	13	13	13	13	13	13	13
BANIANI	12	12	11	11	12	12	12	12	8	8	12
PATWAPUR	12	10	10	8	8	8	7	7	5	2	6
BAHU	13	13	8	13	13	12	10	13	11	6	10

Total males of Bhali who Gave correct answers=100%

Total males of Baniani who gave correct answers=110/120=91.6%

Total males of patwapur who gave correct answer=71/120=59.16%

Total males of bahu who gave correct answers=109/130=83.84%

Total correct answers by males=420/500=84%

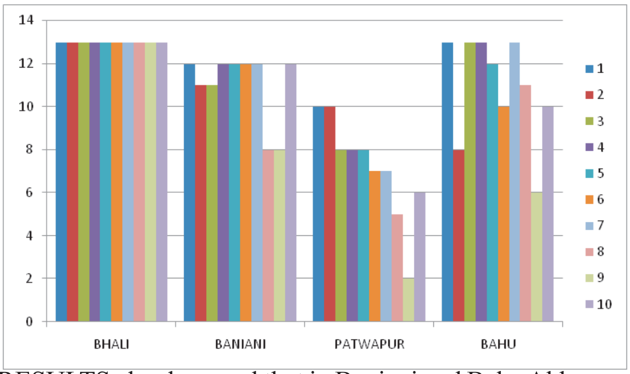

RESULTS clearly reveal that in Baniani and Bahu Akbarpur 94.4% is aware of their rights, in Bhali 98.8 %are aware of their rights. While in Patwapur only 57.2 % are educated.

The awareness in Bhali is 98.8 % may be because of a sugar mill situated near the village which provides employment opportunities to the people of this village.

Overall 86.2 % is educated which is a good score.

The females in Bhali have given 97.5% correct response Baniani 96.92% response, Bahu Akabarpur 95% response while Patwapur village females gave 55.38% correct response.

The males in Bhali have given 100% correct respose,Baniani 91.6%, Patwapur 59.16% and Bahu Akbarpur 83.84 %

The females in Patwapur have got the lowest score(55.38%) which shows that their socio economic condition is worst. The males in patwapur secured second lowest score with 59% score which is also not good.

The level of awareness in aggregate among females(85.8%) is slight more than level of awareness among males(84%).

But the males in Bhali have shown 100 percent correct response which shows their level of awareness is highest.

While females in Bhali have shown second highest response ie 97.5% and after that females in Baniani.

The village Bhali has shown highest response as there are more educated people. The data shows there were 11 graduates (highest amongst all villages).

The people in Patwapur are least educated. There are three 8 th pass people,6 people in 10 th and 12 th respectively and only 7 graduates.

The village Baniani have second highest number of graduates(8), 12 th pass people are 10 in number and there are 2 postgraduates also.

References

- *"Consumer Rights and Protection in India"* by Mohammed Kamalun Nabi Mohammed Irshadun and Nabi Kishore C. Raut New Century Publications (Edition, 2015)
- *"Bharat Consumer Protection (Law & Practice)"* by Professor V K Agarwal (Edition, 2022)

Varishti

194-R Model Town Rohtak

PIN:124001

PH:8168514899

Endangered Identity in Kahild Hosseni's Novel The Thousand Splendid Suns

Dr. Naresh Rathee, Dr. Anu Rathee

The most common and most sought-after question in a person's life is—Who am I?, To where do I belong? This is the question that shapes the identity of a person. Today'sfast-changing modern world offers a wide range of opportunities, new ways of self-realization, and prospects of experiencing cultural differences, which provides a special milieu in an individual's life. Ever Changing social and cultural conditions often disturb people to ascertain their permanence in time, and prompt them to ask themselves whether they are still the same person as before.Gergen says that Sometimes changes are so significant that people have difficulty finding a sense of their continuity. He says, " for it is the sense of continuity—that I know I am I by virtue of my sense of continuous sameness—that for centuries has served as the chief criterion by which a self is to be identified" (133). The question about personal identity becomes a problem and there are situations when a threat to identity occurs.

After the huge success of his bestselling 2003 debut novel *The Kite Runner,*Afghan-American author Khaled Hosseini wrote *A Thousand Splendid Suns* in 2007.

Hosseini has remarked that "he regards the novel as a 'mother-daughter story' in contrast to *The Kite Runner*, which he considers a 'father-son story' and friendships between men (Book Browse)". Instead of focusing primarily on female characters and their roles in contemporary Afghan society, he continues to use some of the themes which are used in his previous work, for instance, familial dynamics.

The title of the book comes from a line in Josephine Davis' translation of the poem "Kabul", by the 17th-century Iranian poet Saib Tabrizi:

Every street of Kabul is enthralling to the eye
Through the bazaars, caravans of Egypt pass
One could not count the moons that shimmer on her roofs
And the thousand splendid suns that hide behind her walls
(Qtd. in Castillo 69)

Hosseini explained "I was searching for English translations of poems about Kabul, for use in a scene where a character bemoans leaving his beloved city when I found this particular verse. I realized that I had found not only the right line for the scene but also an evocative title in the phrase 'a thousand splendid suns,' which appears in the next-to-last stanza (Book Browse)".

When asked what led him to write a novel centered on two Afghan women, Hosseini responded:

I had been entertaining the idea of writing a story of Afghan women for some time after I'd finished writing The Kite Runner. That first novel was a male-dominated story. All the major characters, except perhaps for Amir's wife Soraya, were men. There was a whole facet of Afghan society which I hadn't touched on in The Kite Runner, an entire landscape that I felt was fertile with story ideas...In the spring of 2003, I went to Kabul, and I recall seeing these burqa-clad women sitting at street corners, with four, five, and six children, begging for change. I remember watching them walking in pairs up the street, trailed by their children in ragged clothes, and wondering how life had brought them to that point...I spoke to many of those women in Kabul. Their life stories were truly heartbreaking...When I began writing A Thousand Splendid Suns, I found myself thinking about those resilient women over and over. Though no one woman that I met in Kabul inspired either Laila or Mariam, their voices, faces, and their incredible stories of survival were always with me, and a good part of my inspiration for this novel came from their collective spirit (web).

The novel *A Thousand Splendid Suns* opens on the outskirts of Herat, the central character Mariam, is an illegitimate daughter due to an extra-marital relationship between her cynical mother, Nana and Jalil, a wealthy local businessman, who lives in an isolated hutconfronting Jalil's three wives and nine legitimate children. Nana is not happy with the attitude of Jalil for his ill-treatment of her and his suspicious attitude towards Mariam, whom he pays visits on every Thursday. Mariam on her fifteenth birthday requests her father to take her to see Pinocchio at a cinema he owns and to acquaint her to her siblings. Jalil promises her that soon he will come and take her along but when he does not turn up, disheartened Mariam alone travels to Herat, against the wishes of her mother. Mariam reaches her father's home, where she is not allowed entry and is informed that Jalil is out of the station on a business trip. Mariam is bound to spend the night on the street. On the

next morning, Mariam trespassesthe house's garden and discovers that Jalil is at home. She comes back and finds her mother died who has hanged herself. For the time being, Mariam stays with Jalil but is soon married off to Rasheed, a widowed shoemaker from Kabul who is thirty yearsolder and settles with him in Kabul. Initially, Rasheed is kind to Mariam and takes care of her, but after she becomes pregnant and encountered multiple miscarriages, their relationship becomes sour and he becomes increasingly abusive to her for her inability to rear him a son.

Meanwhile, Mariam's young neighbor Laila grows up close to her father, Hakim, an educated school teacher, but worries about her mother, Fariba, who is neurotic and phobic because of the untimely death of her two young sons fighting for the *Mujahideen* against the Soviets. Laila is close to Tariq, a local *Pashtun* lame boy, and with the passage of time closeness turns into a romance between them.

In Afghanistan, the regime, the country's name and the flag changed frequently. After the departure of the Soviet troops, the war in Afghanistan did not stop. In March 1992, Dr. Najibullah resigned from the post of President of Afghanistan. This throws Afghanistan to the brink of civil war, because the hostile forces of the *Mujahedeen*, who had fought together against the Soviet occupation forces, were totally against the division of power: "The Mujahideen, armed to the teeth but now lacking a common enemy, had found the enemy in each other." (Jaan 169). The bloody civil war turned Afghanistan into a heap of debris littered with dead Afghans. There was an exodus of well-educated persons, about ninety percent migrated to Iran or Pakistan. The same is the fate of Tariq's family, during this time they decided to leave the city and risked their life amid intermittent bomb shelling. Before departure, Laila and Tariq have sex. Shortly afterward, Laila's family also decidesto flee from the city, but fate has something other in their store, before their departure, a rocket hits their home. This attack kills Hakim and Fariba and injures Laila who is then taken into the custody of Mariam and Rasheed.

Laila gets attracted to Rasheed and this dismay Mariam, she is feeling like a fish out of the pond, because she has no say in these matters. Laila intimated that Tariq and his family succumbed to injuries when they were hit by a bomb on their way to Pakistan. In the meantime, Laila realizes that she is pregnant and the father of this child is Tariq. Laila agrees to marry Rasheed to shield herself and her baby from the scorn of the orthodox and conservative Afghan community. Rasheed readily agrees to marry Laila because he believes that Laila is carrying his child. Laila gives birth to a girl child, Aziza, Rasheed disowns the baby for being a girl. This incident turns the attitude of Mariam towards Laila who was initially cold and hostile towards her. Now she is sympathetic to her as they are both the victim of abuse and maltreatment at the hand of a patriarch. They come closer and plan to elope from Kabul but they do not succeed in their plan and are soon caught by Rasheed and severely reprimanded him.

The majority of the Talibanis had grown up in refugee camps, some were even born there. They were educated in Pakistani *madrasas*, where they were taught *Sharia* by the *mullahs*. Brainwashed by this education to establish an ideal society by adhering to Islamic law as commanded by Sharia, Talibanis believed that this was the ideal way for Afghanistan, hence influencing the formation of Afghan identity. In the novel *AThousand Splendid Suns*, we learn about "the commands called the Voice of Short'a" (269), "The same message played from loudspeakers perched atop mosques, and on the radio, which was now known as the Voice of Short 'a. The message was also written in flyers, tossed into the streets. Mariam found one in the yard" (269). Once again, the country was renamed the Islamic Emirate of Afghanistan. Hosseini says:

"Our *watan* is now known as the Islamic Emirate of Afghanistan. These are the laws that we will enforce and you will obey: All citizens must pray five times a day. If it is prayer time and you are caught doing something other, you will be beaten. All men will grow their beards. The correct length is at least one clenched fist beneath the chin. If you do not abide by this, you will be beaten. Ml boys will wear turbans. Boys in grade one through six will wear black turbans, higher grades will wear white. All boys will wear Islamic clothes. Shirt collars will be buttoned. Singing is forbidden. Dancing is forbidden. Playing cards, playing chess, gambling, and kite flying are forbidden. Writing books, watching films, and painting pictures are forbidden. If you keep parakeets, you will be beaten. Your birds will be killed. If you steal, your hand will be cut off at the wrist. If you steal again, your foot will be cut off. If you are not Muslim, do not worship where you can be seen by Muslims. If you do, you will be beaten and imprisoned. If you are caught trying to convert a Muslim to your faith, you will be executed (269).

Sharia law was stricter for women. Hosseini says:

Attention women: You will stay inside your homes at all times. It is not proper for women to wander aimlessly about

the streets. If you go outside, you must be accompanied by a *mahram*, a male relative. If you are caught alone on the street, you will be beaten and sent home. You will not, under any circumstance, show your face. You will cover with *burqa* when outside. If you do not, you will be severely beaten. Cosmetics are forbidden. Jewelry is forbidden. You will not wear charming clothes. You will not speak unless spoken to. You will not make eye contact with men. You will not laugh in public. If you do, you will be beaten. You will not paint your nails. If you do, you will lose a finger. Girls are forbidden from attending school All schools for girls will be closed immediately. Women are forbidden from working. If you are found guilty of adultery, you will be stoned to death Listen. Listen well. Obey. *Allah-u-akbar* (269-270).

The Taliban closed all the universities and dictated the students go home. They destroyed everything around them and turned the books into ashes except the Qur'an. This was the period under the Taliban regime, Afghanistan was destroyed in terms of economy, education, and culture. Health care was in the most deplorable state. Hosseini compares the Taliban rule with the Titanic, a gigantic ship destined to perish. The passengers on board, like the Afghans, hope to be rescued: "Everybody wants Jack to rescue them from disaster. But there is no Jack. Jack is not coming back. Jack is dead" (Hosseini 192).

Laila gives birth to Zalmai in a painful cesarean process because hospitals were running out of medicines and no lady doctor was available in the hospital because of *shari'a*law. Rasheed does not want any male doctor to treat Laila. Laila is helpless to undergo this painful process. Later on, Laila and Mariam struggle with raising Zalmai, whom Rasheed gives more attention to than Aziza. This over-care and attention turn Zalmai into a stubborn child, it becomes difficult to manage Zalmai'sbehaviour. During a drought, Rasheed's workshop caught fire, and he is forced to take other petty jobs. Due to a lack of resources, Rasheed sends Aziza to an orphanage. Several times when Rasheed refuses to accompany Laila as her guardianwhen she attempts to visit Aziza in the orphanage, Laila was beaten severely by the Talibanis for traveling alone.

Suddenly Tariq appears andreunites with Laila. Helearns that Rasheed hired a man to falsely claim that Tariq had been killed so that she would agree to marry him. When Rasheed returns home from work, he starts beating Laila and Tariq but Mariam comes to rescue them and hits Rasheed with a shovel. The blow was fatal, Rasheed died on the spot. She confesses her crime and she was executed publicly by the Taliban for this crime.

Laila and Tariq leave Afghanistan and move to Murree, Pakistan, where they get married. After the fall of the Taliban, they decide to return to Kabul to contribute actively to the rebuilding of Afghan society. They stop *en route* to Herat, the native village of Mariam. She meets the son of the mullah who taught Mariam. Jalil gives a box to the family of the mullah and requested them to hand over this bixto Mariam when she returns to Herat. The box contains a videotape of Pinocchio, a small sack of money, and a letter, in which Jalil expresses regrets to disown her. He is remorseful that instead of sending Mariam away, he should have fought for her and raised her as his legitimate child. Tariq and Laila return to Kabul and utilized the money for the repair of the orphanage Aziza had stayed in, and Laila works there as a teacher. She becomes pregnant with her third child, whom she will name Mariam if it is a girl.

In *A Thousand splendid Suns,*"the one thing [we learn that] the communists had done right-or at least intended to–ironically, was in the field of education . More specifically, the education of women" (Hosseini 140). Women have always had a difficult time in Afghanistan, "but they're probably more free now, under the communists, and have more rights than they've ever had before" (140). In the novel Babi says:

"It was a good time to be a woman in Afghanistan. Women's freedom and status were also reasons why some men fought. In Kabul, women taught at universities, ran schools, and held government positions. However, in remote regions, especially in Pashtun, where women were rarely seen on the streets and then, only when shrouded in a burqa and accompanied by a man; men still lived according to the old tribal laws. They rebelled against the Communists and their orders to give women rights, to abolish forced marriages, and to raise the minimum marriage age to sixteen" (140-141).

These men especially Talibanisperceived such changes as an insult to their centuries-old traditions and will ruin the country.

At the end of the novel, Hosseini hopes for a better future for Afghanistan. Laila followed what her father had once told her: "when this war is over, Afghanistan is going to need you as much as its men, maybe even more. Because a society has no chance of success if its women are uneducated. No chance"(118).Khalid Hosseini expresses hope for a new and vibrant Afghanistan through young, free, and educated women. "The fate of Afghanistan is still unclear. Neither Russian-style socialism nor the victory of the Mujahedeen

brought the people of Afghanistan what they wanted most, peace and a happy life" (Jaan 28). In a multi-ethnic country where the government regime, name, and symbols are changing like clothes, it is next to impossible to establish a unified national identity.

Works Cited:

"An interview with Khaled Hosseini". *Book Browse*. 2007. Retrieved July 2, 2018.http://www.bookbrowse.com/author_interviews/full/index.cfm/author_number/900/khaled-hosseini.

Castillo, Graciana del. *Guilty Party: The International Community in Afghanistan.* Xlibris, 2014.

Gergen, K.*The Saturated Self: Dilemmas of Identity in Contemporary Life*. Basic Books, 1991.

Hosseini, Khalid. *A Thousand Splendid Suns.* Bloomsbury Publications, 2008.

Jaan, Zaher Zahir.*Afganistan: HistÒria, Boje, Prežitie,* Zaher International Trade, 2014.

Dr. Naresh Rathee
Associate Professor
Chhotu Ram Arya College, Sonipat

Dr. Anu Rathee
Associate Professor
Chhotu Ram Arya College, Sonipat

77

A Bend In The Ganges: A Trauma Of Partition

Dr. Dinesh Kumar

Abstract

The action of the novel starts in 1930 and extends upto the dawn of Independence in Aug, 1947, encompassing a saga getting independence from the British rule and the partition of the country into Hindustan and Pakistan. But before the arrival of the result of partition, hell is let loose in many provinces, cities and villages. Manohar Malgonkar says: "Twelve million people had to flee, leaving their homes; nearly half a million were killed. Over a hundred thousand women, young and old, were abducted, raped and mutilated "[1].

The novel opens with Mahatma Gandhi's bonfire of the British cloth under the Impact of Swadeshi Movement and with the burning of foreign clothes, but now it is indian cities that are on fire, it is the Hindus and the Muslim who are killing one another in tens of thousands.

GianTalwar becomes a follower of Mahatma Gandhi. Debi Dayal, College mate of Gian, Joins terrorist movement directed against the British regime' ShafiUshman, dressed as a Sikh, being leader of the terrorist group starts teasing GianTalwar by ridiculing the Gandhian creed of Non Violence. ShafiUshman says to Gian: "Non-Violence is the philosophy of sheep, a creed for cowards. It is the greatest danger to this country:"[2]. His firm belief is that freedom has to be won by sacrifices and shedding tears.

Presently, this terrorist movement also known as Ram and Rahim Club is totally dedicated to the cause of freedom despite their different religious background. 'Jai Ram', answered by 'Jai Rahim' is the secret mode of greeting of this club, Their aim is only to get freedom from the tyrannical British rule: "We are all soldiers, soldiers in the army of liberation. Our aim is to free our motherland, India, from the British and we shall not rest till the victory is won".[3]

This terrorist group is still free from venom of communalism. Under the able guidance of ShafiUshman, the terrorists indulge in burning of government buildings and wooden sleepers of railway tracks, "dropping fistfuls of sand into their oil tanks"[4]. Surprisingly enough, after announcement of the partition, the communal relations of the club marked by lull, co-operation harmony mutual faith etc. turn into communal discord leading to revenge, violence, destruction on one another. All major Characters of the novel like Basu, Debi-Dayal, GianTalwar, Shafi-Usman, Hafiz Khan, Dhan Singh separated by the barrier of communalism. When a military plane is burnt out by Debi-Dayal and Shafi Usman, the latter escapes from the raid of the police indicating the whereabouts of those who belong to Hindus and Sikh communities. Betrayal of Debi-dayal by Shafi Usman symbolizes the parting ways of two communities. Now, the Muslims begin to consider Hindus, and not the British, their enemies. Hafiz says: "The Hindus have shown that Hindustan is for Hindus. Now we Mulsim have to look after ourselves ..... A new country apart from India. Yes a new nation. Not apart from India, but a part carved out of India that will be wholly Muslim, 'Pure uncontaminated."[5]

Importantly enough, after analysing the historic facts critically, it can be said that religious differences were the main root cause of India's slavery and how the British had learnt to take the fullest advantage of these communal differences. Moonis Raza, quoting Nehru, remarks"

"Communalism is essentially a hunt for favour from a third party-the ruling power".[6] Debi Dayal laments: "The British have succeeded in what they set out to do. Set the Hindus and Muslims at each other's threat. What a lovely sight".[7]What startles me to point out that as soon as the communal hatredness between Hindus-Sikhs and Muslims reached its climax, the communal riots start taking place in all over India Debi-Dayal is astonished to find:"Tens of millions of people had to flee, leaving everything behind: Muslims from India, Hindus and Sikhs from the land that was soon to become Pakistan".

Malgonkar shows how Hindus and Muslims indulged themselves in general massacre and genocide. He conveys the horror of communalism through the metathor of 'exodus' Trains packed with muslim refugees, all them killed, arrived in Pakistan with the message, 'A Gift from India'. In turn Muslims sent back train loads of butchered Sikhs and Hindus with the message: 'A present from Pakistan'. The novelist delineates the account

of the attack on non-muslim residents of Harnoli, a rich market town in Mianwali district: "more than half the population were massacred and burnt alive. Children were snatched away from their mother's arms and thrown into the boiling oil. Hundreds of women saved their honour by jumping into wells.... Girls of 8 to 10 years of age were raped in the presence of their parents. The breasts of women were cut and they were made to walk naked in row of five in the bazars of Harnoli."[9]

Against this backdrop, it can be said unhesitatingely that the Novel*A Bend in the Ganges* presents disheartening picture of the trauma of partition. It is the bloody communal 'apportionment' which swept the whole country in an unimaginative tragic figure. The brutal actions which took place between two communities were really shocking. The age old friendship turned into fierce enemity. Consequently, this very fierce enemity still exists between the Independent Hindustan and Pakistan.

References:

1. Manohar Malgonkar, *A Bend in the Ganges*. New Delhi: Orient, 1946, P-6.
2. Ibid, P -18.
3. Ibid, P -08.
4. Ibid, P -75.
5. Ibid, P -90.
6. Moonis Raza, *Communalism the Dragon's Teeth, in Towards understanding communalism*, Pramod Kumar, ed., Chandigarh, CRRID, 1990, P-126.
7. *A Bend in the Ganges*, P-289.
8. Ibid P-332.
9. DA Low and Howard Brasted: *Freedom, Trauma and Continuities North India and Independence*, New Delhi, Sage, 1998, P-58.

Dr. Dinesh Kumar
Associate Professor of English
MNS Govt. College, Bhiwani
#3538, Sector-13, HUDA, Bhiwani
Contact No. : 9416630340
e-mail :dineshsharma1254@gmail.com

78

A Comparison of Parenting Stress Among Mothers And Fathers of Visually Impaired Children

Pinki Rani, Dr. C K Singh and Rajpal

Abstract

Stress as "a physiological, cognitive, emotional strain or tension. Stress is experienced by all people throughout the lifetime. Parenting stress may undermine the quality of parent-child interactions as well as the quality of relationships between parents; it also has been linked to behavior problems in young children. The present study will be conducted in Haryana state. Two districts will be selected from Haryana state i.e. Hisar and Sirsa. The location was selected purposively due to availability of sample. 200 parents (mothers and father) were selected randomly from both the location for the sample. Parenting Stress Index-short form (PSI-SF) developed by Abidin in 1995 was used to assess the parenting stress among parents. Result revealed that that significant difference was observed between mothers and fathers of visually impaired children on the aspect of parenting stress. The mean score showed that mothers have higher level of parenting stress than fathers of visually impaired children.

Key words: Parenting stress, visually impaired children, disability, emotional strain, psychological strain and behavior problems

Introduction:

Stress is experienced by all people throughout the lifetime. Pipp-Siegel et al. (2002) defines stress as "a physiological, cognitive, emotional strain or tension." Stress may often be recognized as the consequence of a crisis; however, it also manifests itself as a long-term part of some people's lives. Stress can accumulate over time and may require intervention (Lederberg and Golbach, 2002).

Pinki Rani*, Ph.D Scholar, Deptt. of Human Development and Family Studies (HDFS), CCS HAU (Hisar) and Assitt. Prof., Deptt. of Home Science, FGM Govt. College, Adampur

Dr. C K Singh, Prof., Deptt. of Human Development and Family Studies (HDFS), CCS HAU (Hisar)**

Rajpal*, MA, Deptt. of Sociology, Subharti University Meerut and Presently working as Superintendent CBIC**

Parenting stress as, a set of processes that lead to aversive psychological and physiological reactions arising from attempts to adapt to the demands of parenthood. This is often experienced as negative feelings and beliefs toward and about the self and the child. By definition, these negative feelings arise directly from the parenting role," Deater-Decker (2004).

Parenting is a challenging process. The crucial role of parents and family in caring, nurturing, protecting and socializing young children is well established across the cultures. Webster-Stratton (2020) reported that parenting stress is created when there is a mismatch between the demands or stresses of parenting and the parent's resources (e.g., psychological wellbeing, social support, cognitive appraisal of a stressor) to meet those demands. Chovatiya *et al.*, (2015) revealed that 70 % mothers of disabled children were suffering with mild to moderate level of parenting stress. Behavioural problems of children and the parenting stress felt by parents are interrelated (Puff and Renk, 2014). A longitudinal study conducted by Neece and Baker (2008) found that children's behavioural problems are an effective predictor of parenting stress.

According to WHO (2022) Disability is part of being human. Almost everyone will temporarily or permanently experience disability at some point in their life. Over 1 billion people – about 15% of the global population – currently experience disability, and this number is increasing due in part to population ageing and an increase in the prevalence of non-communicable diseases.

Parents of children with disability exhibit a great amount of stress which may include stress related to the child's characteristics, particularly behavioural problems, inadequate support and long term care. Additional sources of stress may include parental conflict associated with caring for their child with disability, lack of financial and social support, and alteration in family's lifestyle and leisure activities due to care giving responsibilities (Hock *et al.,* 2012). Parenting stress reflects unique challenges of parents of speech and hearing impaired children. Both language delays and child behaviour problems were associated with increased parenting stress Quittner *et al.* (2010). Mothers face more stress as compared to fathers because mothers bear uneven share of responsibilities in raising their disabled child. Rodrigue et al., 2010, reported that mothers of

disabled children experience greater parenting stress and lower parenting competency.

Objectives:

· To compare the stress among mothers and fathers of visually impaired children.

Methodology: The present study will be conducted in Haryana state. Two districts will be selected from Haryana state i.e. Hisar and Sirsa. The location will be selected purposively due to availability of sample. 200 parents (mothers and father) of disabled children were selected randomly from both the location for the sample. Parenting Stress Index-short form (PSI-SF) developed by Abidin in 1995 was used to assess the parenting stress among parents.

Result and Discussion:

Table: 1 Comparison of parenting stress among parents of visually impaired children

Parenting stress	Mothers	Fathers	Z-value
	Mean ± SD	Mean ± SD	
Parenting stress (Visually impaired)	143.02±23.98	134.34±18.63	2.55*

*Significant at 5% level of significance

Table showed that significant difference was observed between mothers and fathers of visually impaired children on the aspect of parenting stress. The mean score showed that mothers have higher level of parenting stress than fathers of visually impaired children.

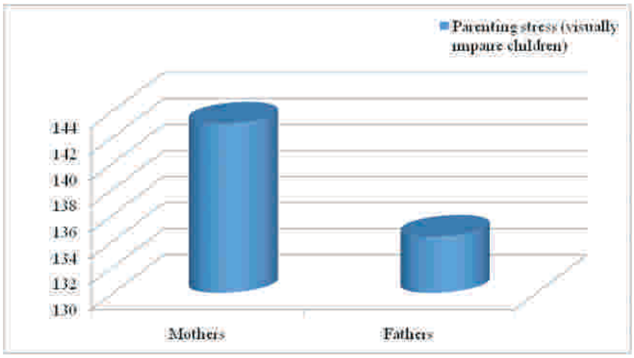

Fig: 1 Comparison of parenting stress among parents of visually impaired children

Conclusion:

It was found that significant difference was observed between mothers and fathers of visually impaired children on the aspect of parenting stress. The mean score showed that mothers have higher level of parenting stress than fathers of visually impaired children. Patiyal (2018) pinpointed that parenting stress in mothers of hearing and visual impaired children. In hearing impaired the percentage of mothers parental stress was high in 83.3% and low in 16.7%. In visual impaired the percentage of parental stress was high in 93.3% and low in 6.7%. This stress reaction on the part of mothers is part of a complex response with many dimensions (Orsmond, 2005). It certainly represents responses linked to their child's characteristics, including stress often generated by their child's inability to adapt to new situations, problems with mood and emotional stability, as well as overall difficulties presented by daily challenges in meeting their child's needs. Beyond these child-related dimensions, stress is represented by its more general effects on parental well-being. This form of stress is experienced due to increases in depressive symptoms as well as concerns regarding restriction of roles, health, ability to bond with their child, and sense of competence with respect to their ability to parent a child with a disability.

References:

Abidin, R., 1995, Parenting Stress Index: professional manual (3rd ed.). Odessa FL: Psychological Assessment Resources.

Asberg, K. (2008).Exploring correlates and Predictors of Stress in Parents of Children Who are Deaf: Implications of Perceived Social Support and Mode of Communication. *Journal of Child and Family Studies*.17 **(4)**:486-499.DOI:10.1007/s10826-007-9169-7

Chovatiya, S. K., Gajera, N. B. Aand Soni, V.C. (2015). People's perception onmalaria: A case study in rural areas of Rajkot district, Gujarat-India. Health Science International Journal, 2: 1 – 5.

Deater-Deckard, K., 2017, Parenting stress: Current perspective of Psychology, Yale University Press.

Hock, R. M., Timm, T. M., & Ramisch, J. L. (2012). Parenting children with autism spectrum disorders: A crucible for couple relationships.

Child & Family Social Work, 17(4), 406-415.

Holly LE, Fenley AR, Kritikos TK, Merson RA, Abidin RR, Langer DA. 2019. Evidence-Base Update for Parenting Stress Measures in Clinical Samples. J Clin Child Adolesc Psychol. 48(5):685-705.

Neece C, Baker B. Predicting maternal parenting stress in middle childhood: the roles of child intellectual status, behaviour problems and social skills.J Intellect Disabil Res. 2008 Dec; 52(12):1114-28.

Puff J, Renk K. Relationships among parents' economic stress, parenting, and young children's behavior problems. Child Psychiatry Hum Dev. 2014 Dec; 45(6):712-27.

Quittner, A.L., Baker, D.H., Cruz, I., Snell, C., Grimly, M.E. and Botteri, M., 2010, parenting stress among parent of deaf and hearing children: Associations with Language Delays and Behaviour Problems, Parenting, Science and Practice, 10(2):136-155.

Rangaswamy, K. and Bhavani, K., 2008, Impact of disability on the family and needs of families of disabled children, J. Commu. Guid. Res., 25(1): 121- 130

Rangaswamy, K. and Bhavani, K. (2008). Impact of disability on the family and needs of families of disabled children. J. Commu. Guid. Res., 25(1): 121- 130.

Shyam (2014).Stress and Family Burden in Mothers of Children with Disabilities. *International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies (IJIMS),* 2014, Vol 1, No.4, 152-159. Available online at http://www.ijims.com

Sudeepa Patiyal1, Dr. Ashok Parasar2, Dr. Deapti Mishra3 (2018). A comparative study: Stress level in the mothers of children with hearing and visual impairment. *International Journal of Humanities and Social Science Research.*Volume 4; Issue 2; March 2018; Page No. 47-50

Vijesh, P.V. and Sukuraman, P.S., 2017, Stress among the Mothers of Children with Cerebral Palsy Attending Special Schools. Asia Pacific Disability Rehabilitation J., 18(1): 76-91.

Webster-Stratton, C., & Reid, M. J. (2020). The incredible years parents, teachers and children training series: A multifaceted treatment approach for young children with conduct problems. In A. E. Kazdin & J. R. Weisz (Eds.), *Evidence-based psychotherapies for children and adolescents* (pp. 224–240). The Guilford Press.

World Health Organization (WHO) 2022. International Classification of Functioning, Disability and Health. Geneva: WHO

Dr. Pinki Rani
Assistant Professor,
Deptt. of Home Science,
FGM Govt college, Adampur
Mob. No- 8930709148

79

How Education can be an effective tool in Gender Senitization and Women Empowerment

Dr. Bhupinder

Abstract

Women constitute almost half of the population in the world. But the hegemonic masculine ideology made them suffer a lot as they were denied equal opportunities in different parts of the world. The rise of feminist ideas has, however, led to the tremendous improvement of women's condition throughout the world in recent times. Access to education has been one of the most pressing demands of theses women's rights movements. Women education in India has also been a major preoccupation of both the government and civil society as educated women can play a very important role in the development of the country.

Education is considered as a basic requirement and a fundamental right for the citizens of any nation. It is a powerful tool for reducing inequality as it can give people the ability to become independent. Women, who come across discrimination in many spheres, have a particular need for this. Women Empowerment is a global issue and discussion on women political right are at the fore front of many formal and informal campaigns worldwide. The concept of women empowerment was introduced at the international women conference at NAROIBI in 1985.

Education is regarded as an important milestone of women empowerment because it enables them to face the challenges, to confront their traditional role and change their life. Education of women is the most powerful tool of change their position in the society. Still large womenfolk of our country are illiterate, backward, weak, and exploited. Education also reduces inequalities and functions as a means of improving their status within the family. Empowerment and capacity building provides women an avenue to acquire practical information and learning for their improved livelihoods. India can become a developed nation only if women contribute to the best of her capacity and ability which is possible when she is educated and empowered. Women Education Status The constitutional directive to provide free and compulsory education for all children up to the age of 14 years has remained unfulfilled till now. Educational experts admit that this failure is mainly due to the slow progress of education among girls. Literacy and educational levels are increasing for Indian women still there is gap between male and female literacy rate.

In 2011 the percentage of educated persons increased to 74.04% of which male percentage was 82.14% and female percentage was 65.46% respectively. Literacy rate among rural women is only 58.8 percentages as per 2011 census. Female literacy was at a national average of 65.46 % whereas the male literacy was 82.14%. Within the Indian states, Kerala has shown the highest literacy rates of 90.02% whereas Bihar averaged lower than 50% literacy, the lowest in India. India is the world's largest democracy where billions of people live and of course almost of half of these are women. So how does women education effect India's development? If girls are not educated, families suffer too. Educated mothers use their knowledge to improve the health of their children and other family members. Their knowledge about health risk protects their families against illness. Child mortality rate is much higher where mothers lack education than in families where mothers are educated. Girls education emerging as one of the top priorities of Indian society "Educating girls is not an option, it is a necessity". We all want to eliminate gender disparities in education. AdiShankaracharya, Raja Ram Mohan Roy, IshwarchandraVidyasagar, Swami Vivekanand, Mahatma Gandhi, Jawaharlal Nehru spoke against the inhuman oppression and crimes perpetrated on woman in the name of tradition and warn out religious section.

Margaret Cousins, worked hard to elevate the status to create social awareness and to increase legal and constitutional rights of women. Annie Besant, Mutthulakshmi Reddy, Kamla Devi Chattopadhaya, Durga Bai Deskmukh, Sarojini Naidu are the other prominent crusader for equality of women's rights. Barriers of Women Education in Indian family's especially rural areas, girl children play the role of second mother by shouldering the responsibilities of household work such as looking after the sibling, fetching water, collecting wood, cleaning and cooking etc. and discourage girl child to go school. The second social evil is bonded labor system, which quite discouraging phenomenon which stands as barrier for girl's education for the underprivileged families of washer man and agricultural labour.

Dowry system and other social practices act as main causes of the neglect of the girl child and discrimination against girl child. In many families especially poor and down- trodden think that if their daughters are educated more, they have to accumulate more assets and properties to provide as dowry in the lower enrolment of girls in school is one of the foundational factors which stand as stumbling block for women education. In India, more than 50% of the girls are non-starter. According to the year, every ten girls in the age group of 6-11 are still not enrolled inschools. The incidence and prevalence of Dropouts among girls especially in rural, tribal and slums areas seem to be quite high. The main reason was poor academic record of the trainees which difficult to cope up with the subjects and mere not able to concentrate on the practical's.

The second reason was that some of the trainees were able to get job before the completion of the course. The third reason was the teachers did not teach well and also students poor economic background. According to available sources, occurrence of Dropout and stagnation amongst girls are nearly twice that of boys all over India. In India, the school environment for girls is not really interesting and encouraging. The methods of teaching are mostly outdated, rigid and uninteresting. There are many schools with poor basic facilities such as drinking water, latrine and toilet facilities, no good infrastructure and no experienced teachers especially female teachers preferable for any parents for safety of their girl children. According to the UN sources, India is the most child labour populous nation in the globe with more than 50 million child labourers worked in carpet making, domestic works, beedi works, glass bangles, construction etc. In most of their industries girl children are preferred for high productivity and low cast. In many Poverty stricken families, children especially girls are considered as economic assets as they bring income for livelihood as well to save from economic crises due to death or incapacity of parents.

Need of Women Education in Women Empowerment the concept of Women empowerment is a recent one. The first year of New Millennium 2001 was declared as "WOMEN EMPOWERMENT YEAR". Education of a women leads to a better family and ultimately an ideal society to a progressive nation. A progressive nation is one where all the people of the country in respective of sex, religion, caste, creed and color are economically, socially, culturally, politically and through all thoughts are independent. New UNESCO data proves education transforms development. It says: If all children enjoyed equal access to education, per capita income would increase by 23% over 40 years. If all women had a primary education, child marriages and child mortality could fall by a sixth and maternal deaths by two-thirds.

Education of women enhances the women empowerment in the following ways: An education of women can bring change in the attribute of family members and society. It also helps in removing mal-traditions like Sati-Pratha, Early marriage, Dowry etc. S Education plays an important role in removing economic poverty by opening various job avenues for her so that she can work hand in hand with man and give support to the family. Education promotes team work rather than making women individualistic. Education makes her an opportunity to choose a career which is best suited for her. Every woman has got her own aspiration which may be high or low, but education helps to maintain a balanced aspiration knowing her interest, ability and potential which further helps her to choose a correct field of her work. Education helps in balanced personality development by giving due weight to various aspects of personality. Education of women also plays an important role in teaching her expression of feeling or through effective communication which can solve disputes and adjustment problems of any level. An educated women is a guiding light for the children, family members,

society and nation, she knows how to have a happy family and balanced and healthy relations with others. Education gives power to a women to become strong physically by giving her knowledge about sports, exercise, health-related aspects and good physical health; this will definitely benefit her mental health. Education helps to improve the sex ratio and in controlling population.

Conclusion:-

To conclude the present scenario, it may be said that woman in the modern hi- tech society which is moving very fast under the shadow of population explosion, conflicts, chaos and corruption can mold the personality of the adolescent and youth in a proper direction and perspective, provided the woman are themselves in power. There is a positive relationship between education and woman empowerment. Another important aspect in this regard is that, in these societies the issue of women empowerment has been facing certain serious challenges, which are outcome of some certain evil norms and attitude such as child labour, child marriage, illiteracy, superstition, partial attitude of the parents, female feticides, etc. and in such a situation women

empowerment is an urgent necessity. In order to promote women's empowerment, it is necessary to create an environment that will allow women to participate in educational programs and share the benefits. The educational and other policies for women empowerment should be implemented in reality for empowering women in the world. The evils of poverty, unemployment and inequality cannot be eradicated by man alone. Equal and active participation of women is obligatory. Unless women are educated they will not be able to understand about their rights and their importance. Empowerment of women aims at striving towards acquiring higher literacy level and education, better health care for women and their children, equal ownership of productive resources, increased participation in economic and commercial sectors, awareness of their rights, improved standard of living and to achieve self-reliance, self-confidence and self-respect among women. Recently the Government has launched BetiBachao, BetiPadhao scheme which aims at making girls independent both socially as well as financially and which will help in generating awareness and improving the efficiency of delivery of welfare services meant for women. Such schemes should be implemented nationwide to bring the desired changes. What should never be forgotten is that women like men need to be proactive in the process lifelong learning. That is true empowerment. From "women for development" the time has come to shift focus to "women in development", with the cooperation of men through group engagement and management. That will indeed be a "quality" change for equality. While being attracted by modernization and globalization we must be confident to say no to marginalization.

References

1 Suguna M. (2011) Education and Women Empowerment in India .International Journal of Multidisciplinary research, vol. 1 issue 8.

2 Sindu J. (2012) Women's Empowerment through education, Abhinav Journal :volume 1 issue- 11 P3

3 k. Mahalinga (2014) . Women's Empowerment through Panchayat Raj Institutions, Indian Journal of research: volume 3 issue 3

4 Chibber B.(2010).Woman and the Indian political process maistream weekly Journa: volume 26.

5 Bhat T. (2014) women education in India Need of the ever Human Rights, International research Journal :vol. 1 P3.

6 Kar, P.K.(2000).Indian Society, Cuttack: Kalyani Publishers.

7 Rao Shankar, C.N.(2005). Indian Society, New Delhi: S.Chand & Company Ltd.

Postal Address
Dr. Bhupinder
H. No. 46 Friends Colony,
Behind Nakstra Property
Near Omaxe City Gate, Delhi Road Rohtak
Haryana, PIN 124001,
Mobile No 9812138717
Mail I'd -bhupinderahlawat1981@gmail.com

80

THEME OF PARTITION IN *SUN LIGHT ON A BROKEN COLUMN*

Dr. Dinesh Kumar

Abstract

The novel *Sun Light on a Broken Column* written in 1961 by AttiaHosain deals with a young woman's personal crisis set against the historical background of the partition of India. The novel depicts how the heroine Laila and other characters bear a drastic change in their life as the country's political situation changes. Laila, the narrator-heroine revolts against the traditional norms of her family and continues to grow and change. Similarly, the country also revolts against its rulers, the Britishers, and undergoes a drastic change.

The novel covers a period of about twenty years 1932-1952 in the life of Laila who lives in an orthodox aristocratic Muslim family. She comes to aware regarding political activities when she is informed by her cousins Asad and Zahid that both Hindus and Muslims are together in a political procession against the Britishers. The sound of voices comes in chanting unison thus:

> "Inquilab... Zindabad! British Raj... Murdabad ! Death to British Imperialism.... Azad Ki Jai! Hail Freedom"[1].

Moreover, this political amity between the Hindus, the Sikhs and the Muslims becomes clear from the composition of Laila's family which consits of Hindus, Muslims and christians. For instance, the Englishman, Mr-Free Mantle requests in his 'Will' that he should be buried near his friend Syed Mohammed Hasan, Laila's Babajan. Just as the Ram Lila ground adjacent to the English Cemetry in Sialkot in ChamanNahal'sAzadi symbolizes composite culture, similarly in *Sun Light on a Broken Column*, the graveyard at Hasanpur which gives shelter to the corpses of Muslims and the Christians suggests the atmosphere of communal trust and communal harmony, Laila's uncle Hamid says:

> "I always found that it was possible for Hindus and Muslims to work together on a political level and live together in a personal friendship".[2]

Despite this age old cordiality between two communities, we are also aware of the fact that there are accepted differences among close friends. The novelist says: "Ranjit's grandfather did not eat with Babajan, but was his greatest friend".[3] Its because of their different religion, they are not touching each other's food.. This very religion, indeed, injects the poison of communalism into the minds of characters. The novelist asks:

> "What can you expect from a religion which forbids people to eat and drink together? when even a man's shadow can defile another, how is real fridnship or understanding possible".[4]

As the movement against the British for freedom touches its peak, the characters of the novel find themselves in opposite camps. Hamid tells saleem sarcastically: "The Muslim League in which you are so interested, I have heard it communal and reactionary by nationalist Muslims".[5] On the contrary, Saleem retorts forcefully and accuses the congress of having anti-Muslims elements, communal hatredness starts taking place among different characters. Saleem is afraid of the Hindus for taking revenge and states:

> "The majority of Hindus have not forgotten or forgiven the Muslims for having ruled over them for hundred years. Now they can democratically take revenge."[6]

With the announcement of partition, the exodus of the Muslims to Pakistan and that of the Hindus and the Sikhs to India becomes a common sight. The partition, creates a strange dilemma for 'Ashiana' household . This effect of partition can be noticed when Laila's two cousins Saleem and Kemal for Pakistan and Hindustan respectively. Laila tells us that it is very easy for them there-after to visit the whole world than the home which had once been theirs. Urvashi Butalia says" thousands of families were divided, homes were destroyed, crops left to rot, villages

abandoned".[7]

Importantly enough, the partition of united India leads to communal riots, rape, abduction, blood bath, massacre, on both sides of the border. Communal Violence in the train has been pathetically depicted by the novelist. Zahid is killed brutally. Hosain says:

> "Full of bright hope and trimuphZahid had boarded the train on that thirteenth day of August which was to take him to the realization of his dreams. On the even of the birth of the country for which he had lived and worked, when it had reached its destination not a man, woman or child was found alive".[8]

Love affair of Laila-Ameer and that of SitaKernal is also thwarted in the erupted volcano of partition. The structural and thematic contours of AttiaHosain's*Sun Light on a Broken Column* roughly confirms to a broader pattern discernible in partition fiction. It is, however, one of the few novels where in the story of the three generations is provided with a big canvas to build up the various shades of the socio-political reality. The novel is, thus, a good attempt at showing the bitter fruits of the partition of India.

References:

1. AttiaHosain, *'Sunlight on a Broken column:* New Delhi: Arnold, 1987, P. 162.
2. Ibid, 234
3. Ibid, 197
4. Ibid, 197
5. Ibid, 233
6. Ibid, 234
7. Urvashi Butalia, *'The other side of Silence voices from the partition of India',* New Delhi: Viking, 1998, P-3.
8. *Sunlight on a Broken Column*, P-310

Dr. Dinesh Kumar
Associate Professor of English
MNS Govt. College, Bhiwani
#3538, Sector-13, HUDA, Bhiwani
Contact No. : 9416630340
e-mail :dineshsharma1254@gmail.com

81

Introducing Classroom Activities With The Help Of Newspapers

Dr. Priya

Abstract

The present study focus on the importance of Newspapers in the classroom. The term "Classroom Activities" applies to a wide range of skill-based games, strategies and interactive activities that support students' educational development. The goal of all activities is to enhance student understanding, skill or effectiveness in a specific area by engaging multiple styles of learning. The school activity also serves to infuse fun into learning as well as bolster student confidence and the ability to think critically. Interesting classrooms always maintains space for activities which engage the students and teachers resulting in an effective and dynamic learning.

Key Words:- Activity, Classroom, School, Teacher, Newspaper.

Introduction:-

A classroom is where students spend most of their daytime. Therefore it is important that classrooms should be active in order to generate energy among the students. When students engage with each other in learning tasks, they remember material better and they figure out how to apply and extend their new knowledge more effectively. In addition, this approach promotes learning among students from diverse backgrounds and diverse learning styles. Active learning strategies are also simply more interesting, both for the teacher and for the students. Some kinds can be done with relatively little preparation; others require more careful logistical preparation.

Classroom activities are helpful for the students to learn in an environment of their interest. It makes students develop a new theory of learning and understanding. It is equally important that each activity is meaningful, and ensures student development and advancement through subsequent units. Activities should build on previous activities and avoid being repetitive; they should enable students to engage with and develop their skills, knowledge and understandings in different ways. Classroom activities play a pivotal role in the teaching-learning process not only at the primary level but even in higher classes also because they arouse the interest of the learners and makes them-creative minded. To highlight the role of classroom activities in the teaching-learning process we must ensure that the activities are helpful for their students.

David Walker in his book *Exploring Newspaper* is of the view that:

> *"Reading a newspaper in a foreign languageis a useful and sometimes necessary skill."*[1]

The flexibility of the newspaper has long made it an attractive instructional tool for classroom teachers. The teachers have used the newspaper as a motivational device to develop basic skills and to promote learning in various subject areas. Additionally, some teacher have integrated the study of newspaper into their courses. Newspapers help students become informed and involved citizens who can determine and guide their own destinies in a democratic society.

Main Thrust:-

Newspaper-based activities in the classroom may engage students in enjoyable activities and encourage further reading. They are an invaluable source of authentic materials. The more they read, the more they want to explore. They also help develop skills of critical and analytical reading. They provide teachers with an economical effective, and exciting teaching vehicle for lessons in writing about language.

Everyday classroom activities provide meaningful authentic opportunities for your students to regularly listen and speak English. Such small activities can include things like greeting your students, taking attendance, introducing a new topic or giving instructions, foster students' personal growth through the use of the newspapers to provide information, entertainment, and skills necessary for modern life. The daily newspaper is the most effective means of spanning what has been called the "textbook lag." In each curriculum area, it bridges the gap between textbooks and the new developments that outrace their contents. Textbooks simply cannot be written, published and selected fast enough to keep pace with today's "knowledge explosion." The daily newspaper reinforces the academic textbook by linking yesterday and today. The 'newspaper is by far the most

important chronicle of society ever invented. It is a living, daily record of a living, changing world - from births and obituaries, to advertisement to news pages, to comics - it is a "mirror of the society in which students will spend the rest of their lives". My attempt has been to provide the best practical suggestions based upon research findings on account of various successful newspaper activities- the use of newspapers for teaching English and the kind of exercises that are useful to introduce students to various characteristics of newspapers which would help them make progress in their language learning. The activities can be done by student individually or in groups in the classroom. There are several reasons why English newspapers will make a good study material for studying English and the English language classroom has long been a center of research interest. In the last several years, attempts to examine the English language classroom differs from what is available outside the classroom and how language classrooms differ among themselves have been increasingly guided by a shared set of goals and premises. Classroom process research is based on the priority of direct observation of second language classroom activity and is directed primarily at identifying the numerous factors which shape the second language instructional experience. The result has been a marked departure from earlier research on the nature and effects of classroom instruction in second language learning and teaching. The teachers can plan many exercises from the English Newspaper. Selection of activities for classroom use is a challenging task for a language teacher as it provides a platform through which students learn English language and also impact their learning.

Tony Dudley Evans and Maggie Jo Saint John in their book *Developments in English for Specific Purposes: A Multi - Disciplinary Approach* is of the view see that:

> *"They outline the same and reiterate those materials which play a crucial role in exposing learners to the language. Moreover, they provide students a lens through which students develop awareness about local and global events, a familiarity with various genres of literature, a consciousness of the present and the past and discernment about the future."*[2]

They are thus, a gateway to understand the world around them. Presentation of appropriate, relevant and engaging materials is therefore, the prime responsibility of the material developers and the teachers.

Kenji Kitao and S. Kathleen Kitao in their research paper *Selecting and Developing Teaching/ Learning Material states* that:

> *"Those materials are the center of instruction and one of the most important influences on what goes on in the classroom. Selection of the right materials makes teaching and learning a worthwhile activity and creates a classroom environment which is efficient, effective and meaningful."*[3]

Activities play a dominant role in the teaching - learning process at all levels because they engage the learners meaningfully and facilitate the teachers especially providing a practical environment to the learners forutilizing their talents in excelling through classroom activities increasing their knowledge regarding various things in the surroundings. The promise is to encourage students to learn actively and constructively. In a cooperative atmosphere the role of teachers is different as they assist learners like midwives to give birth to their healthy ideas and constructive thoughts. They are facilitates to true knowledge.

George Jacobs, an educator in his book *Cooperative Learning and Teaching* state that:

> "*As they interact with each other, they learn more in the process. They soon discover the significance of peer communication. Research indicates that Cooperative Learning reduces misbehavior in the classroom leaving more time for academic instructions and student growth."*[4]

Newspapers are printed on a particular paper,

usually without a cover, folded rather than bound together, with a masthead and are 15”(381mm) wide by 223/4” (578mm) long generally. They may include supplements such as colour paper or other inserts for special features or an event. Learning with the help of English newspapers is always innovative. In thousands of classrooms across the country, teachers are using newspapers to teach their students. Students and teachers both like it. Newspaper in classroom as a teaching aid is a different approach to learning. They capture the attention of the students and teachers at once. They benefit the students by sharpening their thinking skills. Newspapers motivate students in learning as they are relevant to their lives and develop better reading skills of the students.

Newspapers work as a mentor for the students in the classroom. They make the class more interactive for the students who want to come to class and learn with the most interactive way of learning. Involving them in the classroom activity to help the students in improving their LSRW (Listening, Speaking, Reading and Writing) skills. Newspapers also present these skills as interconnected. Newspaper activities are fun-loving and can be done in the class with classmates. These activities help the students and teachers both in making the classroom innovative altogether.

1. Writing Stories :

Olien Rebecca in her book *Getting The Most out Of Teaching with Newspapers* state that:

> *“When we read or see something, we start imagining about that thing. Imagination is a very important part of our life, every student imagines about anything that they read.”*[5]

When a student reads a story in an English newspaper she/he makes another story in the mind. When they read a news they start imagining about the event. While using this imagination the teacher takes some news articles and distributes them in the class amongst the students and tells them to write a story within a certain word limit using the idea given.

The students share their ideas with their classmates and the teachers. They state the reason why they chose that article to write a story. The teacher may organize a story-writing competition for the benefit of the students. The teacher gives some topics to the students like “Happy Christmas Celebrations”, “Winter Vacation trip”, “Holiday Destination” as per the choice of the students. The teacher asks the students to write a story choosing one topic from the given topics declaring that the best story would be awarded. Students write a full-fledged story and presentation for their next class. All this gives wings to the imagination of the students as these activities are different from the usual course book. Writing with the help of English newspapers gives a different dimension to the students. They also get the choice to use their imaginative skills and frame it in paragraphs. The stories are a work of their imagination, creativity and learning and what they have learnt from the English newspapers and other sources as well. When students read English newspapers on a daily basis, they get a creative idea from every sort of reading. Every day they get new ideas as every day newspapers bring in new stories. The world is full of happening and new emerging life every day. So, the newspaper comes as fresh as a blossom. When it comes in the hands of a student, they also experience that freshness and the new way of learning. All these are implemented in their learning and writing works. This also presents their awareness about the society. When they learn about the society from the English newspapers, they also become aware about what is happening in their nearby society. Students come to know about the news of their surroundings and they implement it when they get a chance to do so.

2. Guessing the Headline:

English newspapers are full of fun activities for the students, which can be planned in such a way that students from lower classes to college - going can benefit from it. English newspapers also helps the teachers. The teacher who can plan so many activities from the English newspapers for example, “Guessing the Headline” is such an activity. The teacher cuts out a number of headlines from the English newspapers. The teacher omits one interesting word from each head line. For example, “Cultural Centers” to help promote Tribal language.” In this headline, the word 'promote' and 'language' could be omitted. The next headline 'PM rally today in UP' The word 'today' can be omitted in this. The teacher thus presents the incomplete headlines in the classroom, writing them on the blackboard and distributing the photocopy to the students. The teacher asks the student one by one to come and fill in the blanks with two possible answers for each headline. Each student gives their opinion. Finally, the teacher tells them the correct word and then students correct their answers.

Paul Sanderson in his book *Using Newspaper in the*

Classroom states that:

> "*Guess The Headline" is a very interesting activity. The teacher and students both participate in equal manner and make efforts to find the missing word.*"[6]

The teacher can thus plan such an assignment in a very less time for the class. No extra efforts are needed in preparing these kinds of assignments. The teachers can do this activity for the next class also. Students easily understand what they have to do in this exercise. Students do not need much training in it also. Smart students can do it easily and weak students can also learn to tackle it soon with a little help from the teacher. They can do it by themselves also, without teachers in their free period. This can give them a chance to read and learn more from the English newspapers.

3. Finding The Article :

"Finding The article" is also one of the best activities for class room. In this activity the teacher selects three or four articles from the newspaper and writes one or two lines from that article on the blackboard. The photo copy of the article is distributed to the students. The teacher asks the students to match the article from which the line has been taken. Now the students have to show their efforts and quick answering ability to match the article. This activity can be done in other ways also; in that the teacher brings the last day English newspaper to the classroom and writes the head line of the article on the blackboard asking the students to find the article from. If they have developed a continuous habit of reading they would easily guess the headline and match it with the article. This shows the regularity of the students.

Paul Sanderson states further that:

> *"Finding The Article" is a very interesting activity done in the classroom. This can be done in many ways with different formats so that the students develop interest in word reading and learning."*[7]

Every day the teacher finds a new thing to teach the students everyday. The teacher finds it very easy to prepare the assignments for the next class. By doing this activity, students unknowingly go through the newspaper in finding the answer. It is exciting and innovative and they can understand it easily.

Newspaper and news can play an important role in the development of education in any country. Students for example, both of in college and school, may study about demonetization methods and then disadvantages and advantages. In that case, the teachers can showcase the demonetization content from the newspaper. They can include how demonetizations affects society and real - life examples. The benefit of using the news for students so that they can understand the subject better is a practical aspect of classroom subjects, particularly today.

In civics, students learn about the powers of Prime Minister in India. The teachers can explain those powers by informing the students about daily activities of the honourable Prime Minister.

From the examples given above, I think, a newspaper can play a very important role in the development of practical education. Students can get various benefits from newspaper reading. Students from other subjects like Hindi, Math, Economics etc. or Science students can also learn English from the newspaper without any difficulty. Newspaper reading not only benefits students in their subjects but also improves their general knowledge and knowledge of culture and trends in various parts of the country. More than this supplements entitled Career Pages, Career Point, are published weekly in a newspaper that helps students to learn and get knowledge about various jobs, exams and career-related issues.

Conclusion:-

News impacts people differently. Some use the news as a part of political issues, some use as lessons, some as a general knowledge and some find it funny or a subject of joy.However, only the teachers can understand why it is happening so they can use this information to guide students. They can show the methods and ways to handle economic conditions in various situations. Students can learn more about the details that are impactful for them rather than the news anchor or reporter or politicians. That's why I would recommend all to read the newspapers. So that all can handle future economic, social and personal problems with the best possible methods. This is because they are expert in that subject, and know why something is happening and what will be the best solution so that the same kind of problems never happen again. Students can learn on the internet, but must remember that on the internet people do the analysis based on their situations or knowledge. In the classroom the teachers do the analysis based on classroom goals. The goal

is a reason. Teacher's goal is to make students powerful and knowledgeable. Hence, newspaper reading is the prime practical source of information for students. If students are not aware of the current activities happening in the country then teachers can update students with proper methods. They can learn how to read the newspaper from teachers so that they can understand the news better.

References:

1. David, Walker. (1993). *Exploring Newspaper.* Germany: Macmillan Publisher.
2. Dudely, T. E. and Maggie Jo John, St. (1998). *Development In English For Specific Purpose: A Multi-disciplinary Approach*. Cambridge: Cambridge University Press.
3. Kitao, Kenji and Kathleen, S. Kitao. (1997). *Selecting And Developing Teaching/Learning Material.* Canada: Teacher of English as a Second Language Journal.
4. Jacob, George. (2013). *Cooperative Learning And Teaching.* Cambridge: Cambridge University Press.
5. Olien; Rebecca. (2002). *Getting The Most Out Of Teaching With Newspapers* New York : New York University Press.
6. Sanderson, P. (1999). *Using The Newspaper In The Classroom.* Cambridge : Cambridge University Press.
7. Ibid.

Dr. Priya
Address-C/O Shiwendra Kumar
Dubey, krishi Vigyan Kendra,
Chatra kullu.
Post- Tapej Pin Code - 825401.
Jharkhand
Contact No - 7488460046, 9431325610.

82

Challenges and Opportunities on the Educational System

Dr. Govind Prakash Acharya

Abstract:

The National Policy on Education, 1986 and the Programme of Action, 1992 envisaged free and compulsory education of satisfactory quality to all children below 14 years. While the act has ensured education to all, the prevailing challenges of the education system remained there by hindering the growth of Indian education system to the global level. The recent education policy by the Government of India is the first in 34 years replacing the National Policy of Education of 1986. The new policy introduced many reforms in the Indian education system beginning with reformation at central level and renaming the Ministry of Human Resource and Development to Ministry of Education. The NEP proposes revision and revamping of education structure, including its regulation and governance, to create a new system aligning with the aspirational goals of 21st century education. The NEP proposes sweeping changes including opening up of Indian higher education to foreign universities, dismantling of the Universities Grants Commission and the All India Council for Technical Education. The policy, while focusing on various facets of education, also tries to bridge the gap between education and technology.

One of the key highlights of NEP 2020 is the decision to make mother tongue or regional language as the medium of instruction up to Class 5. Further, the policy emphasizes the need for formative assessments and encouraging peer review system of assessment by creating National Assessment Centre and developing a system such as Performance Assessment Review and Analysis of Knowledge for Holistic Development for monitoring the achievement of learning outcomes and guide the boards of education to make learning more contemporary and suited to future needs. The biggest highlights of the NEP 2020 are that there would be single regulation for higher education institutions with setting up of Higher Education Commission of India that will eventually replace the existing regulatory bodies like the UGC or AICTE. The long-term plan of the policy is to do away with the current system of colleges affiliated to universities and numerous tiny colleges that are pedagogically unviable and financially costly would be merged with larger HEIs. The NEP 2020 aims to address various gaps existing in the education system of India and through this policy, India is expected to achieve sustainable development goal of 2030 by ensuring inclusive and equitable quality education.

Keywords: National Education Policy 2020, Higher Education Institutions, Curriculum

Introduction

The world has realized that the economic success of the states is directly determined by their education systems. Education is a Nation's Strength. A developed nation is inevitably an educated nation. Indian higher education system is the third largest in the world, next to the United States and China. Since independence, India as a developing nation is contentiously progressing in the education field. Although there have been lot of challenges to higher education system of India but equally have lot of opportunities to overcome these challenges and to make higher education system much better. The current study aims to highlight the challenges and to point out the opportunities in higher education system in India.

Given the 21st century requirements, quality higher education must aim to develop good. thoughtful, well-rounded, and creative individuals. It must enable an individual to study one or more specialized areas of interest at a deep level, and also develop character. ethical and Constitutional values. Intellectual curiosity, scientific temper. creativity. spirit of service. and 21st century capabilities across a range of disciplines including sciences. Social sciences, arts, humanities, languages, as well as professional. technical. and vocational subjects. A quality higher education must enable personal accomplishment and enlightenment, constructive public engagement, and productive contribution to the society. It must prepare students for more meaningful and satisfying lives and work roles and enable economic independence.

At the societal level. higher education must enable the development of an enlightened, socially conscious, knowledgeable, and skilled nation that can find and

implement robust solutions to its own problems. Higher education must form the basis for knowledge creation and innovation thereby contributing to a growing national economy. The purpose of quality higher education is. therefore. more than the creation of greater opportunities for individual employment. It represents the key to more vibrant. socially engaged. cooperative communities and a happier. cohesive, cultured. productive, innovative, progressive, and prosperous nation.

Need and Significance of Education

Education is a movement that is considered crucial for the development of human resources. The various kinds of developments, such as, cognitive, intellectual, social, personal are enhanced through education. In the system of education, higher education incorporates management, engineering, medicine, technology, science etc. These fields contribute a major role in the impartment of knowledge, information, values and skills amongst the individuals (Chakrabarty, 2011). It also plays a vital role in increasing the growth and productivity of the nation. The development of the society, community and the nation is an imperative concern; human resources can work towards the development of the community and nation, when they possess the knowledge, awareness and the skills, hence, the generation of knowledge, awareness and the development of skills will be applicable only through education.

Besides, management, engineering, medicine, technology, science, there are number of other fields in education such as, mathematics, English, Hindi, arts, education, political science, history, geography, hotel management, business administration and so forth that contributes in enriching the aptitude, capabilities and proficiency amongst the individuals, so that they are able to accomplish their desired goals and objectives. In educational institutions, the subject that people select are usually on the basis of their interest, hence, in order to understand the subject in an efficient manner and to make use of it in employment opportunities, a person should be diligent, resourceful, creative and ingenious. It entirely depends upon the individual how he understands his field and works towards it. Teachers and instructors can guide the learners towards the right direction, but the learners themselves have to follow the right path through dedication and hard work.

India's higher education system is the world's third largest in terms of students, next to China and the United States. In future, India will be one of the largest education hubs. India's Higher Education sector has witnessed a tremendous increase in the number of Universities/University level Institutions & Colleges since independence. The number of Universities has increased 34 times from 20 in 1950 to 677 in 2014. Despite these numbers, international education rating agencies have not placed many of these institutions with in the best of the world ranking. Also, India has failed to produce world class universities.

Today, Knowledge is power. The more knowledge one has, the more empowered one is. However, India continues to face stern challenges. Despite growing investment in education. 25 per cent of its population is still illiterate; only 15 per cent of Indian students reach high school, and just 7 per cent graduate (Masani, 2008). The quality of education in India whether at primary or higher education is significantly poor as compared to major developing nations of the world.

Higher Education System in India

Higher education system for science in India is a part of Indian Higher Education system. Recently, University Grant Commission (UGC) released a report "Higher Education in India at a Glance" (Covering period from 1950 to 2011) summarizing key data points for policy makers and administrators. Three important observations of the report are given below.

1 Massive expansion in supply of colleges: India added nearly 20,000 colleges in a decade (increased from 12,806 in 2000-01 to 33,023 in 2010-11) which translate into a growth of more than 150%. Number of degree granting universities have more than doubled from 256 to 564 (634 in December 2011) including deemed and private universities.

2 Lesser growth in students' enrolment: Although the number of students enrolled in higher education doubled from nearly 8.4 million to 17 million in a decade, it grew at a slower pace than number of colleges which grew 2.5 times in the same period, creating a paradoxical situation of excess capacity in the country where gross enrolment ratio is less than 20% (in 2010-11, total enrolment = 1,69,75,000; out of it girls= 70,49,000).

3 Enrolment in three years degree and engineering courses: Faculty-wise and stage-wise students' enrolment in higher education during 2010-11 is given in Table-1 and Table-2.

Table-1

Faculty-wise Students' Enrolment in Higher Education during 2010-11

Faculty	Enrolment	Percent	Boys (000)	Girls (000)
Science	3127042	18.42	1778	1349
Engineering / Technology	2862439	16.86	2062	801
Medicine	652533	3.85	322	330
Agriculture	93166	0.55	68	25
Veterinary Science	27423	0.16	20	7
Arts	6177730	36.39	3273	2905
Commerce / Management	2904752	17.11	1768	1137
Education	569961	3.36	246	324
Law	327146	1.96	243	84
Others	232691	1.37	145	87

Source: UGC report on higher education

Table-2

Student's Enrolment by Stages in Higher Education 2010-11

Stage	Enrolment	Percent
Diploma/Certificate	171616	1
Graduate	14616473	86
Postgraduate	2049124	12
Research	137668	1

Source: UGC report on higher education

The above-mentioned Table-1 and Table-2 indicate that maximum number of students from both sexes choose humanities stream followed by science, engineering and management streams. It has also been noticed that there is a lack of interest among students to opt for research after postgraduation.

From the above UGC report data on Indian Higher Education system, it is clear that science education occupies second preference of students next to humanities. So, it attracts attention of Indian government for the development of proper infrastructure/ facilities all over country for science education.

Growth of Higher Education Sector in India

Since independence India has progressed significantly in terms of higher education statistics. This number has increased to 659 Universities and 33023 colleges up to December 2011-12. Central Government and state Governments are trying to nurture talent through focusing on the number of Universities and Colleges for expansion of higher educations. There is no doubt to the fact that much of the progress achieved by India in education has come from private sector. In fact the public sector and private sector is not in opposition to each other but they are working simultaneously in Indian education sphere. UGC is the main governing body that enforces the standards, advises the government and helps coordinate between center and states.

The chart 1.1 & 1.2 shown below depicts the growth of universities and colleges in India from 1970 to 2012 respectively. The number of universities has grown more than six times in last four decades and the number of colleges has been increased from 3603 in 1970-71 to 33000 colleges in 2011-12.

The growth of universities and Colleges in India from 1970 to 2012

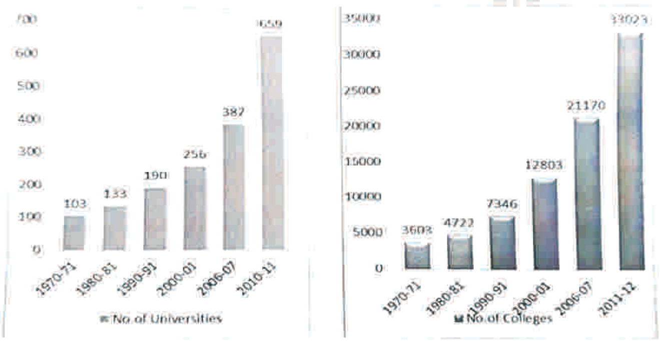

National Education Policy 2022

This National Education Policy 2020 is the first education policy of the 21st century and aims to address the many growing developmental imperatives of our country. This Policy proposes the revision and revamping of all aspects of the education structure. Including its regulation and governance. To create a new system that is aligned with the aspirational goals of 21st century education. Including SDG4, while building upon India's traditions and value systems. The National Education Policy lays particular emphasis on the development of the creative potential of each individual. It is based on the principle that education must develop not only cognitive capacities both the 'foundational capacities' of literacy and numeracy and 'higher-order' cognitive capacities. such as critical thinking and problem solving but also social, ethical and emotional capacities and dispositions

The Vision of this Policy :

This National Eudcation Policy envision an education system rooted in Indian ethos that contributes directly to transforming India, that is Bharat, sustainable into an equiable and vibrant knowledge society, by providing high quality education to all, and thereby making India a global knowledge superpower.

The vision of the policy is to instill among the leaners a deep rooted pride in being Indian not only in thought, but also in spirit, intellect, responsible, commitment to human rights, sustainable development and living, and global well-being thereby, reflecting a truly global citizen.

CHALLENGES OF PRESENT HIGHER EDUCATION SYSTEM IN INDIA :

1. Quality of education : The quality of education we are providing has declined to such an extent taht it faded the picture of higher education sector of India on global front.
2. Lack of Sufficient better institutions as a result of mushroomed privatization.
3. Paucity of quality faculty members : As the higher education institutes in country are not providing talented academicians, adequate and sufficient resources and systematized and integrated development opportunities are not there.
4. Deviation of bright and potential students to corporate sector than academic field.
5. Lack of competitive and professional applied curriculam in a number of universities proviing higher education.
6. Poor infrastructure and lack of technology inbuilt structures for higher education.
7. Issues of declining quality with privatization of technical education.
8. Caste based Reservation : Due to the caste based reservation better talent coming from non served category is deprived of the admission in good institution, which creates social unrest adn used as a tool to make vote bank by the political parties.
9. Accreditation : As per the data provided by the NAAC, as of June 2010, "not even 25% of the total higher education institutions in the country were accredited. An among those accredited. only 30% of the universities and 45% of the colleges were found to be of quality to be ranked at 'A' level.
10. Cost of education : Government funding on higher education has been diminishing every year for more than one decade.
11. Shortage of teachers : It is a big challenge for higher education sector to sustain in future due to lack of availibility of faculty.
12. Quality : The higher education institutions suffer from large quality variation.
13. Access to higher education : The Gross Enrolment Rate (GER) measures the access level by taking the ratio of persons in all age groups enrolled in various programmes.

14. Autonomous Colleges : The number of colleges functioning as autonomous colleges are increasing in the country. It is a good initiative from government but needs to be promoted acros the country.

15.Global Competition : Due to lack of proper policy provisions in time, higher education sector in the country is adversely affected.

OPPORTUNITY IN HIGHER EDUCATION AND SUGGESTIONS FOR IMPROVING THE PRESENT HIGHER EDUCATION SYSTEM OF INDIA :

There are opportunities for strategic engagement and capacity building in higher education leadership and management at the state level. There are opportunities for India to colloboration at national and international level on areas of systemic reform, including quality assuracne, international credit recognition, and unified nationl qualifications famework. Equality of educational opportunity in higher education is considered essential because higher education is a powerful tool for reducing or eliminating income and wealth disparities. The idea of equalising educatonal opportunities also lies in the fact that "the ability to profit by higher education is spread among all classes of people. There are great reserves of untapped ability in the society; if offered the chance they can rise to the top. A great deal of talent of the highest level is, in fact, lost by an inegalitarian system of education" (Balachander, 1986).

Higher Education System of India is very wide. There are some suggestions from experts, governments, corporate and educational institutions as well as expectations from parents and students to have the Higher Education System of India more job oriented as well as conducive to the present environment. The main suggested improvements are as follows:-

Ø More emphasis must be given on industry and academia Interface activities to reduce the gap between curriculum and skills.

Ø Establish Entrepreneurship Development Cell at College & University Level

Ø Academic curriculum must be according to the need of corporate needs.

Ø Information Communication Technology (ICT) significantly use in all academic work and programme at college and university level.

Ø Employability skills must be emphasized to more job orientations.

Ø Higher Educational Institute need to improve quality and reputation.

Ø Incentives must be provided to technology as well as

orientations.

- Ø There shall be a good infrastructure of college and university.
- Ø Innovative practices must be adopted and encouraged.
- Ø Universities and colleges in both public and private must be away from the political affiliation.
- Ø Mobilization and proper utilization of available scarce resources.
- Ø There should be a multi disciplinary approach in higher education so that student knowledge may not be restricted only upto his own subjects.
- Ø Provision of timely updated information system.
- Ø Favouritism money making process should be out of education system.
- Ø Need based job orientation courses.
- Ø There is a need to implement innovative and transformational approach to higher educational level to make Indian educational system globally more relevant and competitive.
- Ø Improvements in Quality of education as personality development.
- Ø Provision of stipends to researchers to create more interests in research.
- Ø High-Tech library system to provide need based information.
- Ø Examination reforms to have students support centres to help students.
- Ø Special incentives to the universities performing best in research and development activities.
- Ø International Level of Collaboration only in Research and development.

Conclusion

Education is a process by which a person's body, mind and character are formed and strengthened. It is bringing of head, heart and mind together and thus enabling a person to develop an all round personality identifying the best in him or her. Higher education in India has expanded very rapidly in the last six decades after independence yet it is not equally accessible to all. India is today one of the fastest developing countries of the world with the annual growth rate going above 9%. Still a large section of the population remains illiterate and a large number of children's do not get even primary education. This is not only excluded a large section of the population from contributing to the development of the country fully but it has also prevented them from utilising the benefits of whatever development have taken place for the benefit of the people. No doubt India is facing various challenges in higher education but to tackle these challenges and to boost higher education is utmost important. India is a country of huge human resource potential, to utilise this potential properly is the issue which needed to discuss. Opportunities are available but how to get benefits from these opportunities and how to make them accessible to others is the matter of concern. In order to sustain that rate of growth, there is need to increase the number of institutes and also the quality of higher education in India. To reach and achieve the future requirements there is an urgent need to relook at the Financial Resources, Access and Equity, Quality Standards, Relevance, infrastructure and at the end the Responsiveness.

References

- Ø Shaguri. Obadya Ray, Higher Education in India Access, Equity, Quality, EAN World Congress Scholar, Global Access to Postsecondary education, 2013.
- Ø Masani, Zareer, India still Asia's reluctant tiger, BBC Radio 4,27 February 2008.
- Ø Newsweek, Special Report: The Education Race, August 18-25, 2011.
- Ø Science and Technology Education". Press Information Bureau, Retrieved 2009 08-08.
- Ø Mitra, Sramana, How To Save The World's Back Office of Forbes, 03.14.2008.
- Ø Henard. Fabrice, Report, Learning our Lesson: Review of Quality teaching in Higher Education, 2008.
- Ø Higher Education in India: Twelfth Five Year Plan (2012-17) and beyond FICCI Higher Education Summit 2012.
- Ø Kumar, Anuj & Ambrish, Higher Education: Growth, Challenges And Opportunities. International Journal of Arts, Humanities and Management Studies, Volume 01, No.2, Feb 2015.
- Ø Sharma, Sahil, Sharma, Purnendu, Indian Higher Education System: Challenges And Suggestions, Electronic Journal for Inclusive Education, Vol. 3, No. 4, 2015, pp.3-4.

Dr. Govind Prakash Acharya

(Asso. Professor (Agri.)

SGG Govt. College, Banswara

M :9460545836 / Email : gpacharya.6@gmail.com

83

QUEST FOR SELF EXPLORATION: *THE DARK HOLDS NO TERROR*

Dr. Dinesh Kumar

Abstract

'The Dark Holds No Terror' is the first novel of Shashi Deshpandewhich depicts the portrayal of a woman's struggle against the patriarchal society. The present paper deals about the Journey of a female protagonist through different phases of her life. Childhood, adulthood, youth and how she determines to defy exploitation of man dominated society with high spirit. The heroine is determined to transform the sign of darkness into a mere challenge with her strong 'will' power and Indomitable courage.

The Novel projects the life of Sarita (Saru) who is always neglected and ignored in favour of her brother Dhruva. She suffers from gender discrimination right from her birth. She is unwelcomed in the family because the preference of the parents was for a male child as their first born. She is given no importance, no special love and care even on her birthday. On the contrary, she is shocked to see a kind of jubilation in the family on the birthday of her brother Dhruva. She even remembers the naming day of her brother: "They had named him Dhruva. I can remember, even now vaguely, faintly, a state of joyous excitement that had been this naming day."[1]

It is beyond any doubt that Sarita's childhood is full of miseries and full of bitter memories. Her mother makes her feel guilty of her brother's death. Saru had seen her brother Dhruva while drowning in the water. She even tried her best to save her brother but all her endeavours proved futile.

Her mother all the time accuses Sarita of the death of Dhruva. The mother says: "You Killed him. Why didn't you die? Why are you alive, when he is dead?"[2] Sarita says: "I didn't. I didn't know. I never saw him"[3].Sarita is unnecessarily held responsible for the death of Dhruva. She puts herself in dock. The guilt haunts her like a ghost. Dhruva's death results in a rejection of her as a child and this curse of rejection pursues her throughout her life.

Add to this, Sarita's parents never bother about her education, casting her a desperate feeling of unwantedness. She feels totally ignored and alienated in her own house. She develops hatredness towards mother who every time tries to create obstacle in her path of progress. When Sarita expresses her desire to study medicine while staying at hostel in Mumbai. Sarita's mother turns down the proposal saying "Saru is a girl".[4] But Saru decides to be a doctor and says to mother. "You don't want me to have anything. You don't even want me to live".[5] Thus, her final decision to join the medical college is an act of rebellion which is a step towards liberation from a traditional existence to modern livelihood.

What is more, the first experience of menstruation proves horrible for Sarita. During these three/four days, the mother never allows Sarita to enter the kitchen, puja-room. She is even forced to sleep on straw-mat. A separate plate is provided to her to make her excluded completely. While studying medicine, the hostel life for her proves 'rebirth' into a totally different world where she does not have to feel excluded for those three/four days. In this way, she accepts her womanhood: "Things fell, with a miraculous exact, exactness, into place. I was a female. I was born that way, that was the way my body had to be, those were the things that had to happen to me. And that was that" [6]. Shashi Deshpande focuses on Saru's awareness of her predicament and her wanting to have an independent social image. Simon de Beauvoir in 'The Second Sex' Observes rightly: "One is not born, but rather becomes a woman. It is civilisation as a whole that produces this creature which is described as feminine."[7]

Surprisingly enough, after completion of her medical degree, Saru revolts against her parents becoming adamant to choose Manohar (Manu) a lower caste man as her husband. She frees herself from matriarchal and patriarchal bondage. She marries Manohar who is underpaid college teacher. The first phase of her married life is upto her utmost satisfaction. But slowly & steadily,the social acceptance and recognition, she gains as a doctor, Manu feels irritated when the people greet her and ignore him. He says out of irritation: "I am sick of this place. Let's get out of here soon".[8] He suffers from inferiority complex and psychological upheavals Saru realises that he does not love her the way he used to earlier. Saru realizes it: " Now I know that it was there it began........... this terrible thing that has destroyed our marriage."[9].

The alarming fact is that the marital discord starts erupting due to Saru's achieved social position and the ascribed position of Manohar. The financial ascendance of Sarita makes Manu inferior being underpaid college teacher. The only way to regain his superiority is through sexual assault upon Sarita. The loving husband during day turns into a rapist at night. Sarita is now 'two-in-one woman' who is the day-time is a successful doctor and at night 'terrified trapped animal' in the hands of her husband. Saru feels so much frightened and humiliated that she even does not speak to him: "And each time it happens and I don't speak, I put another brick on the wall of silence between us. May be one day, I will be walled alive within it and die a slow painful death"[10]. For the world, she is a confident and competent doctor but in reality she is a scared and tortured woman Sarita is now so frustrated so depressed and thus finally, decides to go back to her parental house in search of solitude and peace. Outwardly, the reason to come back to her home after fifteen years is to see and serve her ailing father but in reality she is unable to bear the sexual aggression of her husband. She confesses her mental trauma before her father. She now introspects all episodes minutely and ultimately decides to confront the situation courageously. She decides to assert herself and fight her own battle lonely.She has now a quest to explore herself in every crisis of life. She introspects philosophically and concludes that escapism is a ridiculous idea. This is obviously the rise of 'new woman'who now decides to go to her husband's house to confront the situation boldly but judiciously. The novelist, Shashi Deshpande,succeeds in transforming her from a wife to a caretaking philanthropist as she belongs to a noble profession and she is answerable to her patients too.

References:

1. Shashi Deshpande, *'The Dark Holds No Terror,* New Delhi: Penguin Books, 1989, P-152.
2. Ibid, 191
3. Ibid, 197
4. Ibid, 143
5. Ibid, 142
6. Ibid, 143
7. Simon de Beauvoir: *The Second Sex Trans and ed.* by HM Parshley, Pan books, London 1989, P-288.
8. *The Dark Holds No Terror* P-37.
9. Ibid - 37
10. Ibid-96
11. Vijay Sheshadri: *Women in the novels of Shashi Deshpande and Margaret Laurence*, New Delhi: Creative Books, 2003.
12. Miralini, Sebastian: *The Novels of Shashi Deshpande in Post-Colonial Argument*. New Delhi: Prestige Books, 2000.

Dr. Dinesh Kumar
Associate Professor of English
MNS Govt. College, Bhiwani
#3538, Sector-13, HUDA, Bhiwani
Contact No. : 9416630340
e-mail : dineshsharma1254@gmail.com

84

Soil Pollution : Effect on Plant and Human

Dr. Govind Prakash Acharya, Manju Mishra

Abstract :

Soil is the upper surface of the earth's crust which is formed by the erosion of rocks. The presence of organic matter in soil is essential for the survival of organisms. Soil pollution has occurred due to mixing of various types of domestic and industrial wastes in the environment. Garbage , paper , waste from factories , plastic , harmful chemicals etc. from the houses are responsible for soil pollution. Washout from sanitary landfills is also a source of soil pollution.

Industrial units engaged in chemical manufacturing , paper mills , textile industry , leather industry , iron-ore factories , oil refining plants , pesticide and fertilizer manufacturing units, etc. produce a large amount of polluted water and sludge. The waste and garbage coming out of the industrial units are immersed without treatment. Fly ash from thermal power stations is a major cause of soil pollution. Chemicals and fertilizers used in agriculture are reducing its fertility by mixing in the soil. Most of the insecticides are long lived and are reaching humans through the food chain from the soil. Heavy metals present in industrial waste are injurious to health and also cause soil pollution. Mercury , lead , cadmium , arsenic etc. are health hazards.

Soil is also the place of excreta and urine in cities and villages. This action produces germs in the soil. Waste from nuclear plants and radioactive substances released from nuclear testing get mixed in the soil. Radium , thorium , uranium , plutonium , strontium , iodine, etc. combine in the soil and cause chronic effects. The sewage and sludge that affect the soil ultimately affect human health. Various types of chemicals like acids , alkalis, pesticides , heavy metals etc. reduce the fertility of the soil and are responsible for the change in the properties of the soil.

Some harmful chemicals affect other organisms, affect the microorganisms present in the soil and directly or indirectly reduce the fertility of the soil. These deadly chemicals reach humans through the food chain. There are different types of germs in sewage which cause diseases and ailments in humans and other living beings. Radioactive substances also adversely affect health by reaching humans through food . For example, strontium - 90 keeps getting deposited in the bones instead of calcium and makes them weak. Nitrates and phosphates present in soil dissolve in water and give rise to the problem of eutrophication in surface water or pollute ground water.

Keyword : Soil Pollutants, Agricultural Waste, Industrial Waste, Land Pollution, Radio Active Waste, Metallic Waste.

Introduction :

Land is an important component of our environment. It is the basis of different types of vegetation and crops. The fertility of the upper surface of the land called soil is the main basis of the productivity of crops. This fertility of the soil is based on the presence of many nutrients (such as nitrogen , phosphorus , calcium , potassium, etc.) , various types of micro-organisms (such as bacteria, fungi , protozoa , nematodes, etc.) , moisture and its temperature. Various activities of human development have an impact on air , water as well as on the lithosphere. At present, the land is getting infected in many ways, in which the use of agricultural chemicals , disposal of waste materials, construction of buildings and roads , obtaining raw materials for industries, etc. are the main reasons. This kind of contamination of land which affects its beauty , fertility and other physical and chemical properties is called land pollution. Its upper surface (soil) is most affected by land pollution.

Land is a unique free gift of nature to the society. It has the ability to create and nurture, therefore it is the basis of existence of all living beings. Because of this basic utility, land has got the highest position of mother in the society. It is from this that useful substances like grains , forest produce , medicines , various minerals , water etc. are obtained. That's why it is called ' Ratna Pranasana ' . There is land on one-fourth part of the earth's surface, but in that human useful land is only 4448 lakh square km. Is. Due to the increase in population, there has been systematic and intensive use of

land. As a result, any unwanted change in the physical, chemical or biological properties of the land , which has adverse effects on human beings and other living beings or which destroys the natural quality and usefulness of the land. " Due to the presence of industrial and domestic wastes, agricultural chemicals, polluted water etc., changes in the physical , chemical and biological properties of the soil which affect human and other organisms , flora and fauna . Putting adverse effect on the crops or reducing the land surface or its beauty is called ' land pollution ' . By ' soil pollution ' is meant the change in the physical , chemical and biological conditions of the soil by various human activities or misuse of the land, due to which the quality and fertility of the soil deteriorates, it is called soil pollution or soil pollution. In land pollution, any such unwanted change in the physical and biological properties of the land, which affects humans and plants and animals or which destroys the natural quality and utility of the land , is called pollution.

Soil pollution is mostly caused by air , water , fertilizers , pesticides , or herbicides. The CO_2 gas in the air reacts with rain water to form CO_2 CO_4 which gets mixed in the soil. Similarly, in order to get maximum production from the soil, by using the maximum amount of chemical fertilizers, fertilizers, pesticides, insecticides, etc., they create harmful effects with the soil, due to which the soil gets polluted.

1. Causes of soil pollution : The natural quality of soil is destroyed due to the following reasons:

(a) Entry and concentration of different types of pollutants in the soil

(b) Rapid soil erosion due to forest destruction and change in land use

(c) Decrease in micro-organisms living in the soil

(d) Decrease in the amount of humus in the soil

(e) Excessive use of chemical fertilizers and insecticides , pesticides , herbicides

(f) Use of polluted water of urban and industrial areas as irrigation

(g) dumping of waste solids of industrial and urban areas.

Soil Erosion is the main source of soil pollution. Soil is an important natural resource. Soil provides all kinds of food items necessary for human beings. Soil provides the basis for the life of all living beings and plants. 1 cm of soil to 3 cm It takes about 1000 years for the formation of the top layer , but humans destroy this fertile layer of soil in a short period of time through their various economic activities. Due to excessive erosion by human activities, the soil gets depleted and cannot be replaced. This is called man-made soil erosion. Peoples accelerates soil erosion by his following activities.

(a) Mass destruction of blind forest areas and grasslands.

(b) Plowing of fields, maximum use of machines, spraying of chemical fertilizers and insecticides and manipulation of crops etc.

(c) To expand agricultural land.

(d) To meet the demand of necessary space for the expansion of the city and establishment of industries.

(e) Construction of roads , railways , airports , dams , reservoirs , canals , mining , blasting , platforms in hilly areas.

(f) Excessive grazing in a wide area by domesticated animals etc.

2. Metallic particulate matter : Limited amount of some solid elements like copper, zinc, sulfur are necessary in soils for the growth of vegetation. As long as these elements are present in the soil within acceptable limits, these elements are not pollutant, but as soon as their quantity exceeds the permissible limit, they affect the growth of different layers of the soil (soil) and vegetation. become harmful for The presence of Nickel , Lead, Mercury, Chromium, Cadmium etc. in the soil is harmful. These solid elements reach different layers of the soil naturally from rocks and under man-made sources by mining and refining of ores and raw metals. These elements are not decomposed by the organisms living in the soil and are also insoluble. In this way, due to their presence and concentration in the soil, the soils become contaminated and their properties change.

3. Industry : Many types of air pollutants reach the atmosphere from the chimneys of factories, chemical laboratories, spray paint, automatic vehicles, thermal power plants, atomic bomb blasts and domestic sources. These pollutants later fall on the land, due to which the soils get polluted. Acid rain increases the acidity of soils and their pH value decreases. It is harmful for crops. In Norway, Sweden, Finland in Europe and Canada in North America, acid rain has caused extensive damage to forests.

4. Waste material : The process of fulfillment of human

utility, the substances which remain useless without use are called waste material. In definition, " Wastes are excess or discarded materials generated from the normal practices of the human community, it includes garbage , sewage , street garbage , ash and industrial waste .

5. Mining Wastes : Coal, mineral oil, iron ore, bauxite, copper, mica and rock wastes are lying near the mining areas which pollute the land by chemical reaction with air and water. The foul smell emanating from them also pollutes the air.

6. Industrial Wastes : The sources of industrial wastes are the main different types of industries , such as nuclear plants , thermal power plants , heavy industries , chemical industries , leather industries , pharmaceutical industries, textile industries etc. These wastes are non-biodegradable, toxic, foul smelling, inflammable. These wastes pollute the land by mixing with water and air. Hazardous waste materials are released from copper smelting, zinc manufacturing, and aluminum factories. These substances are very harmful to the flora and fauna living in the soil.

7. Agricultural waste : Waste materials are also generated from agricultural activities in rural areas. During the processing of crops in the fields, many wastes are generated, which include leaves , stalks , roots , straw , cow dung etc. When water falls on these waste piles, this organic debris starts rotting and causes wind. Also, the part of chemical fertilizers and biocidal chemicals in these waste materials reduces the quality of land by coming in contact with water.

8. Radioactive waste : Radioactive substances from nuclear explosion pollute the land of those areas wherever they fall on the land. These radioactive wastes reach the human body through the food chain and cause harmful effects. Radioactive radiation called strontium 90 is absorbed by plants which is very harmful to human health. The waste generated from nuclear fission has given birth to a serious problem for the environment by causing pollution on water , air and land at the national and international level.

Efftects of Land Pollution :

1. The food chain and flow of energy in every ecosystem starts with autotrophic plants growing on the soil. The side effect of land pollution not only falls on the quality of soil but also on living beings and human life. Soil pollution also causes water and air pollution. The side effects of land pollution are as follows. The fertility of the soil decreases, due to which there is a huge reduction in agricultural production.

(a) Due to the pollution of the land, the soil gives rise to many diseases by reaching the pollutant elements to humans through vegetation. According to an estimate, 5 lakh people die every year due to the use of biocidal chemicals in the world.

(b) The number of disease-carrying organisms , such as flies , mosquitoes , insects , and rats, increases due to the accumulation of waste materials on the ground. Along with this, germs of various types of diseases also grow rapidly in these waste materials. Due to this, diseases like gastroenteritis , tuberculosis , conjunctivitis , dysentery and allergies occur.

(c) Due to the tendency of people to defecate in the open in rural areas, along with land pollution, water pollution also occurs , as a result, people in rural areas are more prone to diseases like enteritis , cholera , dysentery , polio , typhoid etc. .

(d) The waste materials coming out of the cities and metros are deposited on the land of remote places. Where there is a loss of re-cyclable materials from this type of waste material , there is pollution of the land by the unwanted elements present in the waste material.

2. Effects of Soil Pollution : It is well known that soil is the only basic resource. Deterioration in its qualities definitely affects human life. Due to soil pollution, its fertility power decreases and the production is greatly reduced, which is the cause of great crisis for an agricultural country like India. The toxic elements of polluted soil reach humans through vegetation and cause diseases. Following are some of the side effects of soil pollution –

(a) Irregular deposition of different types of wastes not only pollutes the environment and causes foul smell, but also increases the number of various types of animals. Among these mosquitoes , flies , rats and insects are prominent. Various types of germs increase due to the rotting of wastes, due to which many diseases of the eyes, chronic fever , dysentery , enteritis , cholera , malaria , jaundice , rickets, etc. spread.

(b) Due to lack of proper arrangement of polluted water coming out of public institutions , industrial units , hotels , homes , factories, water gets accumulated , mud , swamp at many places, due to which land-pollution happens , as well

Only the germs of the disease increase.

(c) Most of the population of our country lives in villages, where in the absence of flush toilets, people defecate in the open, which pollutes the soil and environment , as well as spreads various diseases. Dysentery , cholera , malaria , jaundice , typhoid enteritis , hepatitis etc. are prominent in these diseases.

(d) Due to pollution of soil or water sources by industrial wastes, harmful chemicals reach animals and humans which are harmful to their health.

(e) On continuous irrigation of the land with 6-20 water containing wastes and excreta, the soil fertility decreases, due to which the air circulation in the soil is obstructed, which obstructs the respiration of roots and micro-organisms. It happens.

(f) Harmful toxic elements of the waste reach the soil, due to which the soil becomes polluted, by the use of crops produced in such soil, these elements reach animals and humans, causing many diseases.

3. Effects of Chemical and Pesticides on the Land : Today, to increase the production, the use of chemical fertilizers, pesticides, herbicides and fungicides in the fields is increasing day by day, due to which the land is getting polluted due to the increase in the amount of harmful elements in the land. For example, continuous use of ammonium sulphate fertilizer in the fields increases the amount of acid in the soil. Similarly sodium nitrate is causing alkaline disorder. DDT to kill insects , Due to excessive use of more harmful poisons like B.H.C., traces of these chemicals remain in the soil for many years, due to which the soil gets polluted, as well as contamination of poisons in grains, new diseases and diseases occur in human beings. are spreading which are a curse for the human society. D. D. T. and B.H.C. in grains, vegetables etc. by the Government of India . It is recommended not to use chemicals like BHC. If chemical fertilizers and insecticides are used continuously in large quantities, then due to soil pollution, the production power of the soil will continue to decrease, as well as the adverse effect of this pollution will continue to be on human health. In order to increase the production, by reducing the use of chemical fertilizers and insecticides, priority should be given to organic fertilizers , land-refining/mechanical activities, only then we can protect human health from land pollution.

4. Effect of different sources on land : Due to pollution from different sources of land, there are far-reaching effects on human and biological community. The following effects can be seen due to soil pollution :

a) Urban waste destroys the quality of the soil.

b) Due to the wastes of the industries, the fertility of the land is affected.

c) Wastes such as plastic which do not end up in the soil destroy the fertility of the land.

d) Chemical fertilizers provide essential nutrients, but their excessive use causes drastic changes in the physical and chemical properties of the soil. As a result of this, the natural properties of the soil, which maintain fertility , are being destroyed.

e) Due to the widespread effect of soil pollution, there is a serious decrease in the quantity of essential elements like calcium , magnesium , sulphur , iron , copper , zinc , boron , molybdenum , manganese , nitrogen, potassium and phosphorus in the soil.

f) Due to the canals, the underground water becomes salty and the predominance of alkaline elements increases in it, that is, the problem of beans arises , due to the problem of beans, the land around canals and dams becomes infertile.

g) Air 2 present in polluted air gets converted into sulfuric acid and goes to the ground through rain. This acid affects various biological functions of plants.

h) All toxic substances have become part of the food chain through soil pollution. Food containing these causes various diseases in humans and animals. For this reason, D.D.T in America , Sweden , Canada , Hungary and Denmark. use is banned. Today the soil is badly affected by pollution. India had 329 million hectares of land, out of which 174 million hectares of land has been eroded due to pollution.

Direct effect :

a) The beauty of the land and the quality and fertility of the upper surface (soil) are destroyed.

b) Toxic pollutants like insecticides , herbicides , fungicides , metals etc. kill micro-organisms present in the soil, as a result of which the decomposition of organic matter and the cycling of nutrients are interrupted and the fertility of the soil is destroyed.

c) Some toxic substances such as chlorinated hydrocarbons (DDT, 2,4-D, 2, 4, 5, T etc.) do not decompose. As a result, they get accumulated in the soil and are gradually absorbed

by the plants. Thus, they harm different trophic levels of the food chain. Through herbal plants and vegetables, they directly reach the human body and cause many types of disorders. Some insecticides delay the process of ovulation in birds and inhibit the development of gonads.

d) Similarly, radioactive elements present in polluted soil such as strontium- 90, cesium-137, cobalt- 60 etc. enter the food chain through plants, ultimately reaching the human body and causing many types of diseases such as cancer , bones. cause distortion etc.

e) Mining operations destroy the fertile layer of the land. Due to the explosions carried out in the mining process, the soil pores of the particular area are closed and the soil becomes solid , as a result of which the production capacity decreases.

Indirect effects :

a) Due to excessive waste and its decomposition, the environment becomes foul smelling.

b) The population of many types of disease-carrying organisms (Cpemenum ambjavate) like flies , cockroaches , mosquitoes increases considerably due to the heap of solid waste and garbage.

c) The number of rats also increases with the collected garbage and wastes, which along with being disease carriers also harm agriculture.

d) Many types of disease causing bacteria and viruses are also generated due to the rotting of garbage and wastes.

Strategies to control Soil Pollution :

Soil is an important natural resource. It has importance in various forms. Soil is essential not only for humans but for the existence of all living beings. That's why it is necessary to save the soil from getting polluted and to improve the polluted soil. The following measures can be used to control soil pollution -

1) Different types of waste materials should be deposited properly. Waste should not be thrown here and there arbitrarily.

2) The polluted water carried in the soil should be made harmless by chemical methods.

3) Industrial institutions should be prevented from immersing their waste materials without proper treatment and proper arrangements for deposition should be made.

4) Citizens should not throw the garbage of their homes on the road like this, but should put it in the designated garbage container. It is advisable to dispose of the garbage from the villages in compost pits.

5) Various chemicals used for agriculture should be of such an ideal level that they should be completely decomposed under the soil. As far as possible , their use should be limited. The use of chemicals that cause harmful effects in the soil should be stopped.

6) The disposal of urban waste should be done away from the city in such a way that it does not cause soil pollution. For this, plants for composting should be established at various places.

7) Municipal corporations and municipal authorities should give priority to waste disposal. The management of collection , removal and disposal of wastes should be tight.

8) Citizens should not go for defecation in open places. For that, arrangements should be made for accessible toilets and flush toilets.

9) To reduce soil pollution, the inappropriate activities of humans and animals should be banned.

10) Emphasis should be laid on the measures to reduce the degradation caused by earth-excavation and soil erosion.

11) Citizens should be made aware and sensitive towards cleanliness. They must publicize regarding the harms generated through different types of mediums..

12) Different medicines should be used to cause disease.

13) Domestic sick animals should be properly looked after and treated , after death they should be buried in the soil so that diseases do not occur in humans and other animals.

14) Proper arrangements should be made to control the acidity and alkalinity of the land so that their spread and expansion can be reduced.

15) Underground testing of nuclear bombs should be banned.

16) To prevent soil pollution, we should prevent unnecessary water logging and make balanced use of soil, under which crop cycle , general soil treatment , giving rest to the land as needed, etc. can be included.

Measures of Control of Land Pollution :

Control over land pollution is the major necessity in current circumstances becuase of regular supply of food to the growing population, raw material for factories, and fodder for animals is required by land depend on the quality. The following measures can be used to maintain the quality of the soil-

(A) By preventing soil erosion: Soil erosion can be

prevented by adopting the following methods:

(i) On sloping ground by ploughing , planting and harrowing parallel to the contour lines of the slopes.

(ii) By adopting tied-ridging construction method. Under this method, hill slopes are plowed across the slope and bunds are constructed in the direction of the slope.

(iii) Mixed farming Aggregation, crop rotation, proper selection of crops, maintaining proper vegetation cover in the fields after harvesting of crops to maintain the aggregation of soil particles.

(iv) To maintain soil fertility, crop rotation , planting leguminous crops and grasses , adding micronutrients to the soil along with fertilizers so that soil fertility remains. ,

(B) Controlled use of chemical fertilizers and biocidal chemicals:

(i) Use of such insecticide chemicals which can be easily biodegraded in the soil.

(ii) To make maximum use of improved varieties of seeds which have high disease resistance so that the use of pesticides is minimized.

(iii) Mixing cow dung and plant residues in soil in place of chemical fertilizers.

(iv) Keeping the maximum time gap between the last spraying of pesticides and harvesting of the crop.

(v) Educating farmers for proper use of chemical fertilizers and bio-pesticides.

(C) By treating industrial wastes : Only after treating the sewage water of the factories, that water should be used in irrigation works. Also, only after treating the waste materials, they should be deposited at the proper place.

Conclusion :

The following measures should be taken for disposal of solid wastes :

1. Recyclables from household waste should be segregated and reused.
2. Biogas , electricity generation etc. can be used by using organic wastes.
3. Metals from industrial waste can be separated and recycled.
4. Mining wastes can be used to fill pits formed by mining.
5. Polluted water can be purified and used for irrigation.
6. The infected waste of the hospital should be disposed of away from the city by installing an incinerator. ,
7. The wastes should be collected separately and should not be disposed of in open places.

Recycling and reuse : Recycling and reuse have been considered very beneficial for disposal of solid waste. Some wastes of solid wastes like paper, glass, tin, aluminum, iron etc. pieces , plastic bags etc. are substances which do not decompose easily. They can be recycled and reused by separating them from the waste. In today's era, the recycling industry has gained an important place in the economic development. Recycling is not only useful in preventing solid waste pollution , but this process has also become helpful in conservation of natural resources and economic development. The United States effectively recycles about thirty percent of all its solid waste. State and central governments also provide financial and technical assistance to promote the recycling industry. Unwanted entry of radioactive substances into the land should be reduced. For this work like nuclear testing should be banned. The use of chemical fertilizers and toxic chemicals like insecticides, pesticides , fungicides etc. in agriculture should be reduced as much as possible. The problem of soil pollution is becoming serious. To solve the problem, it is also necessary that the public should be made aware of the importance of land and soil, the dangers arising from land pollution, so that the sense of responsibility for the protection of land can be awakened in them.

References :

- Bhardwaj Tulsi and Sharma J P (2013) Impact of pesticides application in agricultural industry: An Indian scenario, International Journal of Agriculture and Food Science Technology 14(8): 817-822.
- Chibuike G U and Objora S C (2014). Heavy metal polluted soils: Effects on plants and bioremedial methods. Applied and Environmental Soil Science. 12 pages. http:// dx.doi.org/10.1155/2014/752708
- Devi P I (2010) Pesticidesin agriculture-A boon or a curse? A case study of Kerala. Economic and Political Weekly 45: 26-27.
- Devi P I, Thomas J and Raju R K (2017). Pesticide consumption in India: A spatiotemporal analysis. Agricultural Economics Research Review 30 (1): 163 172. DOI:10.5958/ 0974-0279.2017.00015.5
- Forget G (1993). Balancing the need for pesticides with the risk to human health: Impact of pesticide use on

health in developing countries. Proceedings of symposium held in Ottawa, 17-20 September, 1990. P. 2-16.

- Jeyaratnam J (1990). Acute pesticide poisoning: a major global health problem. World Health Stat Q. 4 (3): 139 - 44.
- Kansal B D (1994). Effect of domestic and industrial effluents on agricultural productivity. In: G.S Dhaliwal, B.S. Hansra and N. Jerath (eds). Management of Agricultural Pollution in India. Commonwealth Punlishers, New Delhi, pp. 157-176.
- Mukherjee D, Roy B R, Chakraborty J and Ghosh B N (1980). Pesticide residues in human food in Calcutta. Ind. J. Med. Res. 72: 577 - 582.
- Nyakundi W O, Muruga G, Ocharaand J and Nyenda A B (2010) A study of pesticide use and application patterns among farmers: A case study from selected horticultural farms in Rift valley and central provinces, Kenya. Available at: https://eleaning.jkuat.ac.ke/journals/ojs/indexphp/jscp/Article /view/ file/ 744/686.
- Sharma R C, Bhaskaran N and Bhide N K (1979). A simplified chemical method of DDT estimation in the body fat. Ind. J. Exp. Biol. 17: 1367 - 1370.
- Singh P P and Chawla R P (1988). Insecticide residues in total diet samples in Punjab, India. Sci. Total Environ. 76: 139 - 146.

Dr. Govind Prakash Acharya
(Asso. Professor (Agri.)
SGG Govt. College, Banswara
M :9460545836 / Email :
gpacharya.6@gmail.com

Manju Mishra
(Asso. Professor (Physics)
SPC Govt. College, Ajmer
M : 9414708738 / Email :
manjumishragca@gmail.com

85

Fusion Of Tradition And Modernity In Second Thoughts

Dr. Dinesh Kumar

Abstract :

The emergence of many women novelists live NayantaraSahlgal, Shashi Deshpande, Kamala Das, Anita Desai, Kamala Markandaya, NamitaGokhale, Shobha de etc. have focused their attention on feminine issues. They make woman as the focal point of the Indian English novel bringing man on the periphery. These women novelists have emphasized how the new woman of today has started questioning the age old opression. This very woman tries to emerge strong and independent grasping the freedom now to lead the life she desires and refuses to be suppressed or dominated by patriarchal society.

Almost all novels of shobha De are considered as the 'Protest Novels' against the male dominated Indian society where women are denied the freedom of expression and the freedom of fulfilling their own dreams. A woman, like a man, is born to be free but in reality everywhere she is controlled by man-made norms victimizing her in many ways. The same phenomenon in depicted in portrayal of the protagonist Maya in the novel *'Second Thoughts'* wherein she becomes the victim of marital disharmony.

Maya, the central character of the novel a textile designer from Calcutta, is married to Ranjan Malik, bank Executive of Bombay. But this arranged marriage is doomed to failure because of the entirely different attitude of life. She is fascinated by the glamour of metropolitan city, Bombay "I was looking grate. And you know why? I felt great being in Bombay".[1] But all her expectations and Imaginations collapse when she enters into the reality of married life. She is forced to follow the traditional pattern of life led by woman in India. Even though, her mind wishes to flyover but her wings were tied out within the new environment. In response to her wish to go out on weekends in Bombay, Ranjan says:

"Sometimes, you talk like such a kid. Life isn't a picnic, you know. And you aren't in Bombay on holiday. As a married woman, you have to learn to deal with responsibilities."[2]

Add to this, Maya is asked to live inside the four walls of the house the whole day without a company. She is not allowed even to talk to neighbours. She feels suffocated in her husbands house. "But... but I have nobody else to talk all day. I am so lonely."[3]Ranjan never cares for Maya's loneliness. His mother is everything for him. Maya being an educated girl always wishes to get a job in metropolitan city like Bombay. When she presents this before Ranjan, he speaks unfavourably and astonishes: "A Job? in Bombay".[4]

Sadly, enough Maya now suffers from marital disharmony. Her husband Ranjan considers her mere object. Its because of Ranjan's feeling of superiority, and his traditional attitude, Maya feels herself trapped in a family whom she discovers as rigidly conservative, indifferent to her desire and not respecting her feelings.She remembers how Ranjanmade his effort to save his money by cutting the freedom of Maya. The novelist writes:

"Ranjan, of course, had locked the out station phone facility before leaving, saying you won't be needing it. .... I hear there is a lot of misuse there days. And God knows our bills are high enough".[5]

In this patriarchal society, it is the man who shouts, hurls, abuses, beats and it is the woman who only listens, tolerates, remains passive. But shobhaDe's Maya is different. She is 'new woman' who resists, and fights back. She decides to give second thought of fulfilling her desires by falling in love with Nikhil, a college going neighbour. Now, Conversation within Nikhil is quite relaxing for Maya. She starts ruminating this conversation in her sleepless nights. She starts liking Nikhil so much that she indulges in sexual affair with him. She feels herself the happiest woman when Nikhil comments: "You look like a beautiful garden today"[6] in a parrot green sari with a narrow black woven border. Surprisingly, traditional Indian wife like Maya does dare to indulge in love and sex to another man. However, she has crossed this limit because of the attainment of superiority over her by Ranjan and the love and care for which she was hungry now getting the same from the world of Nikhil. Interestingly, she mentions about her outing with Nikhil:

"I am not sorry. I have no regrets. And if you were to ask me to come out with you again. I probably would. This time with less guilt."[7]

In this way, she finds every thing in Nikhil. She says:

"He was there in my thoughts ..... I awoke with him in my

mind's eye. I went to bed thinking of him. Each and every action of mine, even in the nursing home involved Nikhil in some way."[8]

While analysing the character of Maya critically, we find that she is now rebelious and betryaingRanjan by maintaining illegal physical relationship with Nikhil without knowing the fact that he is exploiting and misusing her. She does try to escape from her real life with Ranjan by entering into the world of fantasy with Nikhil putting the mask of a modern woman. But Nikhil is proved as experienced &shrewedBombayite. He exploits this innocent Maya. The reality comes before Maya when his mother informs her about Nikhil's marriage with another girl. All dreams of Maya break down. She feels shattered and shocked. She realizes that "there is no escape route in a tightly organized tradition bound society".[9] She accepts Ranjan again and rejoins him as he is. Maya is a new woman but does not dare third time to go into the world of fantasy and dreams like a traditional Indian woman, She accepts Ranjan.

Critically, Maya, the protagonist, of this novel fails to understand that her sexual freedom is being used and abused by the men like Nikhil. Actually, whenever women, whether circumstantially or ambitiously, disregard morality, they cannot escape disaster and consequent suffering. Although Shobha De has presented women who indulge in free sex, live fashionable and healthy life, yet she in no way seems to support the way of life adopted by these so called modern women. On the contrary, she shows her contempt and dislike for their unethical and socially unacceptable bahviour.

Thus, the novel presents the fusion of tradition and modernity. It represents new Indian Woman's voice of Maya who is in search of self Indentity, seeking liberation in all walks of life but ultimately accepts Ranjan in the traditional Image of Indian wife.

References:

1. Shobha De, *'Second Thoughts,* New Delhi: Penguin India, 1996, P-119.
2. Ibid, 37-38
3. Ibid, 41
4. Ibid, 39
5. Ibid, 226
6. Ibid, 63
7. Ibid, 257
8. Ibid, 392
9. Ibid, 31
10. G.D. Barche: *The fiction of Shobha De JaydipsinghDodiya, ed.*New Delhi, Prestige, 2000
11. Bhaskar Shukla,*Feminism and Female Writers,*Book Enclave, 2007
12. ShantaKrishnaswamy: *The woman in Indian Fiction in English,* New Delhi, Ashish Publishing House, 1984
13. Sonia Ningthoujam: *Traditional Woman versus Modern Woman: A Study of ShobhaDe's Novel.* New Delhi, Prestige Books, 2012.

Dr. Dinesh Kumar
Associate Professor of English
MNS Govt. College, Bhiwani
#3538, Sector-13, HUDA, Bhiwani
Contact No. : 9416630340
e-mail : dineshsharma1254@gmail.com

86

The Feministic approach in the novel Raj by Gita Mehta

Prof(Dr.) Punita Jha Archana

Abstract :

My article is a humble attempt to explore the woman character, Jaya as projected by Gita Mehta in the novel "Raj " who is the victim of the patriarchal system. Gita Mehta is an eminent Indian writer who has successfully projected her all-female characters basically in her first novel Raj where the protagonist Jaya represents the agony of the suppressed female who did not have a voice. Raj is a historical novel which traces the society, culture, and tradition of the colonial period where one can discover a royal woman who is the sufferer of the patriarchal society and the victim of male chauvinism. A detailed study of her novel brings the abnormalities of persistent Indian conventional society. In this novel Jaya, the princess of Balmer is marginalized, her westernized husband never gave importance to her as a wife and because of this, she had a constant struggle to live with dignity. In this novel due to the reverse logic of the post-colonial text, it is Jaya who exerts real power after confronting numerous turmoils from colonial to post-colonial in establishing her self-esteem.

KEYWORD: traditional, historical, marginalized, taboos, turmoils

Introduction

The portrayal of female subjectivity and self-identity in the works of Indian women novelists is well known. The middle of the nineteenth century saw an increase in the number of female writers in English. Women's literature has contained recurring feminine experiences, which have influenced the cultural and linguistic traditions of Indian literature. Over time, feminist perspectives have begun to have an impact on the field of Indian English writing. Women's rights and dignity are frequently maintained in historical records of India.

Feminists believe that women must be liberated from patriarchal social norms and thought patterns. They vehemently fight for women's human rights and dignity who were once docile and reverent in a world ruled by men. Western feminism as a result emerged. Women's liberation philosophy is heavily influenced by the media. It now spreads around the globe. In today's male-dominated world, authors like Anita Desai, Kamala Markandaya, Shashi Deshpande, Nayantara Sahgal, and Gita Mehta have decided to focus their books on the difficulties and dilemmas that women confront. Among the various

writers working with the feminist idea in Indian writing in English, Gita Mehta holds a special place among the other authors experimenting with the feminist philosophy in Indian writing in English. She is distinctly Indian, and her use of language highlights Indian culture and traditions. She does not write for foreign readers. She writes for Indians and is essentially Indian. Gita Mehta is a renowned novelist who has a keen understanding of the psychology of women. She aims to expose the custom that trains a woman to play her subservient role in the home by focusing on the marriage relationship. Her books portray the discomfort of the contemporary Indian lady in participating in man-made patriarchal norms. Gita Mehta makes use of this idea to highlight how women experience today's societal realities.

Gita Mehta is one of the finest writers in India born in 1943 and brought up in Delhi. She is well acquainted and has in-depth knowledge of politics due to her political background as her father Biju Patnaik was a renowned political figure and chief minister of Orissa. Her younger brother Navin Patnaik is currently the chief minister of Orissa. She took her early education in India and completed her higher education at Cambridge University. She began her career as a journalist and was the television war columnist for US television networks during 1970. Her four most popular documentaries on the Bangladesh revolution, Dateline Bangladesh were shown both in India and abroad. She also made films on elections in the famous imperial states. To date, she has written very few books based on Indian society, culture, tradition and western perception of it. Her works have become bestsellers in Europe, the US, and India and have been translated into 21 other languages. Gita Mehta is convinced that her stories are about the blending of cultures since they are set on the precipice between modernity and tradition, where individual freedom and cultural identity are on the line. Her writings all have significant political insight due to her background as a journalist. Her writings are insightful analyses of Indian ideologies, history, mythology, and characters. She has the

rare opportunity to amass the wealth of having lived on three continents, and it is this peculiarity of viewpoint that gives her the capacity to define her picture of India in a particularly funny and honest way through her writing. Even though Mehta uses mostly male narrators, expectations for women frequently dominate her topics. The male narrator is a suitable choice from a feminist standpoint since it draws attention to the power differences between Indian men and women. While she projects and defines a collection of ideas, places, scents, and tradition that constitute modern India, she acknowledges her power as a writer without attempting to win the reader over to her point of view. Gita Mehta wrote two essay collections Karma Cola: Marketing the Mystic East and Snakes and Ladders: Glimpses of Modern India, muse on all things Indian, from politics and social unrest to the never ending clash of religions and cultures, spirituality, and the Indian textile industry to Indian literature and film, among other topics. Additionally, she published two books: Raj, a historical fiction book set in the early years of India's struggle for independence from Britain and A River Sutra, a contemporary revision of long-standing Indian aesthetic and philosophical traditions. Her first novel Raj is a historical novel set in colonial India which is revolving around the life of the Indian princess and her struggle which she overcomes and made her self-identity as an individual.

Raj, Mehta's first novel, highlights the issues of Hindu women in colonial and post colonial India in a very realistic way. Raj is evaluated:

"Gita Mehta weaves the story of Jaya, the princes of Balmer and Maharani of Sirpur. It is intricately interwoven with political events, but it has the tears and romance of a woman's existence in India which saves the work from being a mere record of the all too-well-known history of our freedom struggle, or a racy account of the grandeur and frivolity of the exorbitant lifestyle of the princes."1

The protagonist of this novel Jaya - is a woman who constantly fights for the right to live with dignity. In her childhood, she gains insight from the Renaissance. After marriage,

she faces a lot of trouble because her husband does not treat her like a true life- partner and eventually also loses her son and husband. She is not, however, dissatisfied. In the end, she defines her identity in the "New India" as a human being.

The gist of the novel

The novel starts with the first chapter Balmer the tiny state of Rajasthan. Princess Jaya Singh is the intelligent, beautiful, and compassionate daughter of the ruler Maharaja Jai Singh and Maharani of Balmer. Her birth was not celebrated in a traditional way like her elder brother's(Tikka) because in that orthodoxy system birth of a girl is not celebrated but maharaja Jai Singh has a different perspective on female childbirth. He never differentiates between his son and daughter. On the other hand, Maharani had a different approach regarding her daughter Jaya. As a mother, she believed and insisted that Jaya should be educated according to the customs of the Balmer princesses. She believed that the princess should be raised conventionally to help her settle into marital life. Maharaja wishes to break the conventional ways of following Purdah. According to him, Purdah is similar to being imprisoned under a lovely veil, much like a nightingale in a golden cage. He, therefore, desired that Jaya, his daughter, not grow up in purdah. When his son was taught by a tutor Maharaja also provided Mrs Roy as a tutor for Jaya who taught English as per the maharaja's request. Jaya also picked up shooting and polo. Additionally, she shot a tiger when she was ten years old.

Maharaja was aware of the future dangers looming over his kingdom, so he kept her daughter under the supervision of Rajguru from whom she learns of Rajniti, the lesson of Saam, Daam, Dand, and Bhed. While Jaya was only twelve years old, Maharani wanted Jaya to learn Solah Shringar's sixteen feminine arts when she was twelve years old. The concubine informed Jaya about the place of women in relationships between men and women.

"No one understands how the attraction between a man and a woman is born, Bai-sa. Even worse, no one understands why it suddenly dies. We poor creatures must use every aid to keep a man's affections constant."2

Jaya is therefore learnt that as a woman her responsibility is towards her man. Jaya's life experiences drastic changes over time. Both her fat and her brother, passed away, leaving Maharani a widow. It is a hard reality that the widow is not treated with honor in conventional society. Soon after, Jaya was married to Prince Pratap of Sirpur arranged by Raja Man Singh. As a result, Jaya is taken from Balmer, where she was born, leaving him in a helpless state. The tremendous wish of the Maharaja to raise his daughter to be an independent woman is not fulfilled.

The second chapter of the novel Sirpur is about the marital life of Jaya and her husband, Prince Pratap, in Sirpur, a small state in Assam where She met her husband after two years of marriage who was totally under the influence of western culture and expected the same from his wife when he

said after first meeting with her where she was in traditional attire.

"Wash all that nonsense off your hands and feet. And change out of these Christmas decorations."3

In this book, we can find the shifting of Jaya from the dry and ruined land of Balmer to the productive land of Brahmaputra. Jaya felt various awful experiences from her husband as well as from the Maharani of Sirpur. Her husband never gave her the love and honor she was expecting from him. However, she always obeyed everything as a devoted wife whatever her husband told her. With the help of Lady Modi, she started to learn the art of living in a western way to please her but he only came to her in a drunken state and the need for an heir. She was aware of the bitter truth that her husband had an extramarital affair but she tolerates everything for the sake of her married life. At the end of the chapter, prince Pratap is declared the king of Sirpur and Jaya becomes Maharani. In the third chapter, Jaya became the Maharani of the state of Sirpur but this status does not decrease her pains. She expects devotion, happiness in life, and honor which she never got from her husband. With the hope of love, Jaya conceived the child and gave birth to a son but the nightmare didn't end there. Pratap took her maternal rights by preventing her to not feed her son Arjun.

Jaya explained her agony to lady Modi :

"He can't touch his wife until she is turned into a toy who no longer represents a woman. Or until he is so drunk, he can no longer pass for a man. He shrinks from the sight of his wife giving breast to his son, but not from wearing his ancient crest on his feet to visit a brothel. Is this the conduct of a husband? Of a king? "4

Jaya lives a pitiful life with the only hope of pleasure in her son. In due course, the Nationalist-led liberation movement was in full force. The British and their policy faced fierce opposition. Due to some odd circumstances, Pratap died in an accident and Jaya became a widow. To follow the custom, she had to shave her head and broke her bangles. Her four years old son Arjun is officially declared as the king of Sirpur and Jaya as the Regent Maharani. The fourth chapter of the novel is Regent. It is a grievous time for Jaya as Raj Guru of Sirpur keeps her away from the administration and from her son, Arjun declaring her as unclean. Her widowhood was a curse on her. She was treated thus:

"There were no bangles to be slipped onto her wrists; no long minutes spent combing the thick hair that had once fallen to her knees, no sindoor to mark the circle of matrimony on her forehead. She did not even have to cover her shaven head. A widow was not considered desirable, only unlucky."5

Jaya went to Benaras to purify herself in the holy river. During that period 'Quit India Movement was launched by the Indian National Congress. Arjun, the maharaja of Sirpur lost his life in a riot. It was a difficult time for Sirpur and Jaya, also. She lost everything and became lonely. she went to meet Raj Guru of Balmer to get advice, who reminded the lesson of Rajniti, the wish of her father, Maharaja Jai Singh. Following the advice of Raj Guru, she took leadership of Sirpur and allowed Sirpur State to merge with the United States of the Republic of India where She contested as the representative of her state as an independent candidate. The novel ends here.

Conclusion

We can see that Jaya endures a great deal of suffering throughout the entire narrative. She battles continuously throughout the entire book. Mehta described Jaya as a wealthy, educated woman who was nurtured partially within and partially outside of the purdah and Hindu ceremonial practises that had prevailed uncaged for generations before her. Her father gave her the necessary training when she was young so that she could handle situations. She frequently suffered injustice because of the male-dominated and traditional society. Even if Pratap engages in an adulterous relationship with another lady, she cannot oppose him. She is helpless to fight Raj Guru of Sirpur when he separates her from her son and declares her filthy because she is a widow. But over time, her education and her exposure to technology have given her the strength to rise above any challenging situation and speak out against injustice. She is afterwards recognised as Sirpur's Regent Maharani. Additionally, she finally establishes herself as an autonomous lady of the Indian Republic, whom the Hindu orthodoxy cannot oppress. As a result, it is not just historical fiction but also a tale of a woman's battle to define her identity as a person.

Mehta claims that Indian women are strong because of their purported superiority and spiritual strength. Women were expected to keep the inner sanctum hidden from prying eyes. Due to the colonisers' inability to comprehend the mystery of the Indian woman during the colonial era, they created their personas or viewpoints in India. This invisibility became the subject of much discussion. Raj was written by Gita Mehta in the 1980s, and it was released in 1989. Mehta benefits greatly from hindsight. She takes advantage of her post-colonial position by giving Jaya access to her skills and intelligence, giving her more

prominence in the book. Jaya is the oppressed woman in the traditional culture, and her husband is the patriarch. The present and past are intricately linked in Gita Mehta's
notion of the image of an Indian lady in her novel, which she portrays in the setting of India. Most of her female acquaintances frequently become lost in their childhood memories. With impeccable precision, sarcasm, and joyful, tolerant passions, Mehta portrays these priceless, enduring, and charming moments of worth in her Indian women characters.

Works cited :

1. 5. Bande, Usha. 'Raj: A Thematic Study', Indian Women Novelists, Vol. 5 ed. By R. K. Dhawan, Prestige, New Delhi, 1991, p. 239.
2. Mehta, Gita. Raj, Penguin Books, India, 1993, p.98.
3. Mehta, Gita. Raj, Penguin Books, India, 1993, p.189
4. Mehta, Gita. Raj, Penguin Books, India, 1993, p.329
5. Mehta, Gita. Raj, Penguin Books, India, 1993, p.355

Prof(dr.) Punita Jha Archana
Department of English Research Scholar
L.n. Mithila University Department Of English
Darbhanga, Bihar L.n. Mithila University
Mobile – 9110936161 Darbhanga,
Bihar Mobile – 9545372569
Email – archana4r@gmail.com

87

Psychological & Social Impact of Social Media

*Dr. Renu Kansal**Prof. Dr. ArunaAnchal***Dr. Sushila Saini

Abstract :

Over the past two decades, the use of social media in human life has increased significantly. This continued development has enabled social media users to communicate anywhere in the world, shop online, use social media as a means of education, work remotely, and conduct financial transactions. You can go Unfortunately, this rapid development of social media has adversely affected our lives, leading to various phenomena such as cyberbullying, cyberpornography, cyber-suicide, social media addiction, social isolation, and cyber-racism. causing it. The main purpose of this whitepaper is to record and analyze all these social and psychological effects experienced by users through the extensive use of virtual networks. MATERIALS AND METHODS: This review study was an exhaustive search of bibliographic data conducted through social media and library studies.Online social media is a ubiquitous means of communication. For many people, it has become an integral part of their daily lives, offering new and diverse ways to communicate with others. Both have been reported, but recent research suggests that internet communication can complement rather than reinforce or weaken traditional social behaviors.

Keywords : Social media, Cyber fraud, Psychological Impact, addiction

Introduction

The role social media plays in mental health

Humans are social beings. We need to be with others to be successful in life, and the strength of our connections has a huge impact on our mental health and well-being. Connecting socially with others can relieve stress, anxiety, and depression, boost self-esteem, bring comfort and joy, prevent loneliness, and even add years to your life.

In today's world, many of us rely on social media platforms like Facebook, Twitter, Snapchat, YouTube and Instagram to find each other. have connections. Each has its benefits, but it's important to remember that social media is by no means a substitute for real-world relationships. You need face-to-face contact with other people to trigger hormones that reduce stress and make you feel happier, healthier, and more positive. Ironically, with technology designed to bring people closer together, spending too much time engaging with social media can lead to feelings of loneliness and isolation, exacerbating mental health problems such as anxiety and depression. There is a possibility.

If you spend too much time on social media and feelings of sadness, unhappiness, frustration, or loneliness are interfering with your life, it may be time to re-evaluate your online habits and find a healthier balance. I can't.

*Assit.prof.,**Professor, Dept.ofEdu.BabaMastnath University, Asthal Bohar, Rohtak

***Principal, DCS COE, Gohana

Psychological Effect of Social Media

Social media attacks the mental state of the human brain, causing mood swings, failure to think and act rationally, loss of self-confidence, and overall poor quality of life. Comparing your parents' lives to those of today's generation, it's clear that they didn't seem all that emotional or psychological. you already know the answer. In other words, social media. A

study found that 27% of his teenage girlfriends who used social media extensively showed high levels of mental stress. Only 17% of teens who used social media less frequently reported psychological distress.

Most students start using social media for communication. But the more time you spend on social media, the more likely you are to become addicted. Instead of opening a book, they are more likely to use social media, leading to psychological effects such as depression and anxiety, isolation, lack of self-confidence, self-harm, and loss of self-worth.

Why Social Media Is Harmful

The inability of students to distinguish between real life and social media is a major cause of social media's ramifications. When students scroll through social media and find that their friends are enjoying their lives, they feel a range of emotions, such as sadness and jealousy, and assume that their lives are boring while theirs is perfect.

One of the root causes of the negative effects of social media is the inability of students to distinguish between real life and

social media. When you start to believe that everything that happens on social media is right, you are almost overwhelmed by the negative effects of social media.

Some students may even see models and actors as perfect and compare themselves to them.

Overall, this leads to self-confidence, lack of self-esteem, and even depression and anxiety. The more students use social media, the more time they spend comparing themselves to others, the more sadness and I can't help but feel emptiness.

Some of the negative aspects of social media are:

- Anxiety/Social Anxiety
- Depression
- Fear of Missing Out (FOMO)
- Cyberbullying
- Self-Image/Esteem Issues
- Isolation/Loneliness
- Addiction due to Social Media
- Self-harm/Suicide Ideas

Why Social Media Affects Mental Health

As we saw above, social media is associated with depression, anxiety and isolation, especially among heavy users.

A 2015 Common Sense Survey found that teens spend up to nine hours online each day. Many of these individuals are concerned that they are spending too much time browsing social networks. This wave of concern suggests that social media may be affecting users' mental health.

The researchers behind a 2017 Canadian study confirmed this finding. Students who used social media for more than two hours a day were significantly more likely to rate their mental health as fair or poor than students who used social media only occasionally. Her 2019 study by Trusted Source linked social media use to disturbed or delayed sleep. Regular, quality sleep is essential for good health, and there is evidence that sleep problems contribute to adverse mental health effects such as depression and memory loss. Aside from its detrimental effects on sleep, social media can cause mental health problems by exposing individuals to cyberbullying. In a survey, researchers found that about half of them had experienced cyberbullying.One of the disadvantages of social media platforms is that they allow individuals to initiate or spread harmful rumors and use offensive language that can leave people with lasting emotional scars.

Statistics

Social media has received a lot of criticism, and there are many reports of its use leading to serious consequences. National surveys and population-based studies show that the world of social media can have a devastating effect on users' mental health. In the United States alone, the survey found that her teenage suicide attempts increased by 25% between 2009 and 2017.

Social media is not involved in all of these incidents, but the timeframe correlates with increased use of these platforms. A 2021 study confirms this effect. Researchers found that social media use had a minimal effect on suicide risk in boys, but girls who used social media for more than 2 hours a day from age 13 had an increased clinical risk of suicide in adulthood. reported to be higher.

In addition, results from a population-based study show a decline in mental health in the United States, with a 37% increase in the likelihood of a major depressive episode in adolescents.According to her 2019 study by Trusted Source, her teens who use social media for more than three hours a day are more likely to suffer from mental health issues such as depression, anxiety, aggression and antisocial behavior. You are more likely to suffer from health problems.

Positive effects

Despite its shortcomings, social media remains an efficient means of connecting communities and individuals around the world.Small group social media-based networks are an advantage for many. Social media enables young people struggling with social skills and anxiety to express themselves and socialize. It is especially beneficial for marginalized groups, such as the LGBTQIA+ community, as it allows them to meet and interact with other like-minded people.

Social media also serves as a platform to give voice to the voiceless. For example, people who have experienced violence or abuse can use communities like the #MeToo community to voice their opinions, talk about future plans, and find support. Social media can also educate, inform and provide outlets for creativity and self-expression.

Positive effects of social media on relationships

- Helps improve connectivity
  - o Recent research shows that social media use has a positive impact on social connections when people actively use it.
  - o Family members and friends do not necessarily live in the same city, state or country. Social media platforms like Instagram and Facebook are a quick and convenient way to keep in touch with loved ones who are far away.

- o People can post updates about their lives and the lives of others. Share photos of vacations and other important family events, including your spouse and children. Additionally, users can customize their privacy and share more personal information and photos via individual or group messaging.
- o This social media app and other social media apps provide the ability for people to video chat in real time to make them feel more connected.

Helps improve communication

- o Margaret E. Morris, PhD, clinical psychologist and author of Left to Our Own Devices: Outsmarting Smart echnology to Reclaim Our Relationships, Health, and Focus, 2020 Conducted a review. The type of relationship uses technology. Morris realized that it wasn't the specific type of technology people used that could add value to the partnership, but how they used it.
- o Morris explains the benefits of different types of technology. One example is a parent sharing a self-help app with their child to resolve a dispute. When discussing romantic relationships, Morris stresses that sharing photos on her social media also feels like an additional way of communicating. Using tools such as WhatsApp or messaging via discussion may also help with written communication.

Negative effects of social media on relationships

- • Fuels functional impairments
- o Substituting social media interactions for face-to-face communication may impact not only existing relationships but also the ability to form new relationships.
- o For example, while some researchers note the necessity for more research on social anxiety and social media use, it is possible Trusted Source for people with social anxiety to experience continued functional impairments — e.g., being uncomfortable or unable to form and engage in face-to-face relationships — when they replace in-person interactions with social media use.
- o Furthermore, failing to make or maintain in-person relationships may also appear as a consequence of social media use.
- o During a 2021 study at Prince Sattam bin Abdulaziz University in Saudi Arabia, researchers found that more than half (59%) of the 300 participants reported prolonged use of social media had impacted their social interactions, negatively affected family relationships and friendships while also made face-to-face communication more difficult. However, the study consisted only of students who identified as female aged 17–29 years, so more research is necessary.

Reduces quality time and relationship satisfaction

- o Excessive use of social media negatively impacts quality time, causes conflict, and affects people whether the relationship is romantic or not. It can reduce relationship satisfaction. In a
- o 2021 study, the researcher used time tracking features on his Instagram and apps to delve into the link between social media and relationship satisfaction.
- o They found that increased Instagram usage was associated with lower relationship satisfaction and increased conflict and negative outcomes. Additionally, dissatisfaction, conflict, and negative outcomes have driven habitual use of Instagram.
- o On the other hand, making daily sacrifices for the relationship partner had a positive impact on relationship satisfaction and reduced the likelihood of conflict and negative outcomes.
- o However, there is also the problem of fabbing. This is the act of stealthily soothing someone in a social setting by focusing on your smartphone. For example, if two people are sitting and having a face-to-face conversation, and one keeps scrolling through her social media app and checking notifications, that person is already fab one of hers. I'm here.
- o Numerous studies and surveys have shown that many people consider fubbing to be disrespectful and contrary to social norms.

Managing the effects

An individual can make their use of social media positive by:

• Turn off your smartphone's data connection during certain times of the day. B. Driving, Working, or Meeting Family Keeping Your Smartphone Out of Reach While Sleeping Turning Off Notifications to Help Resist Distracting Beeps and Vibrations Use your smartphone instead of using social media on your computer.

Preventing negative effects

People can avoid some of the negative effects of social media by limiting their social media usage to 30 minutes a day.

By being more mindful of the time you spend on social media, you may notice improvements in your overall mood, focus, and overall mental health.

Conclusion

After reading the above and gaining knowledge about how social media affects psychological and social life and affects people's minds, I found that while there are positive effects,

there are also negative effects. I realized that, in my opinion, social media has helped solve problems, but it has brought problems to today's society. The importance of social interaction for humankind cannot be overemphasized. It is how humans create the world and shape the future. Over the years, social media has increased human interaction in many ways. This makes the world appear smaller and makes connecting and interacting much easier.

Gourmand et al. (2016) note that social scientists in the 1950s and his 60s argued that the media had little to no impact on how people perceive the world. Researchers also point out that the media has no influence on how people think or act. Almost everything in our society is now surrounded by social media and captured on camera. Social media is highly accessible and has a negative impact on many people because it keeps you informed of where people are and what they are doing.

It can be harmful, but it has the following advantages: B. social media to help solve youth perceptions of diversity. For example, Facebook wants to "empower people to share and make the world more open and connected" (Baym, 2015). Today, more and more young people are aware that there are different world societies based on things like racial identity and class origin. Social media platforms such as Facebook, Twitter, and YouTube expose young people to different cultures, challenges, and realities.

As a result, young people today are more aware of the reality of their physical environment and the communities around them than they were thousands of years ago. Today's diversity awareness reality helps address underlying issues such as racism and other forms of discrimination caused by a lack of knowledge or awareness of diversity.

Abuse of social media can do more harm than good. "In 2015, approximately 99% of her teens in the United States said they had access to one or more of their media, such as game consoles, smartphones or mobile phones, desktop or laptop computers, and tablets. was doing" (Gruman et al. 2016). This quote is important because spending 10+ hours on technology instead of communicating with colleagues is bad for your health. In addition, many young people waste time scrolling through Instagram or his TikTok, analyzing what others are doing and being jealous of others. So, while social media can be beneficial, it can also cause depression, jealousy, and lack of social skills.

References:

?Baym, N. K. (2015). Social Media and the Struggle for Society. Social Media + Society, 1(1). https://doi.org/10.1177/2056305115580477.

?Gruman, J. A., Schneider, F. W., & Coutts, L. M. (Eds.). (2016). Applied social psychology: Understanding and addressing socialand practical problems. SAGE Publications, Incorporated.

?https://www.medicalnewstoday.com/articles/social-media-and-relationships#positive-effects

?https://aboutleaders.com/psychological-effects-of-social-media-on-students/

?https://bettermood.asia/psychological-effect-of-social-media/

?https://www.helpguide.org/articles/mental-health/social-media-and-mental-health.htm

?Siddiqui, S., & Singh, T. (2016). Media its Impact with Positive and Negative Aspects. International Journal of Computer Applications Technology and Research, 5, 71 - 75.

?Bala, K. (2014). Social Media And Changing Communication Patterns Global Media. Journal-Indian Edition, 5, 2249-5835.

?Lauren, I., Labrecque, Jonas, v. d., Esche., Mathwick, C., Thomas, P. N., & Charles, F. H. (2013). Consumer Power: Evolution in the Digital Age. Journal of Interactive Marketing, 27, 257-269.

?Rebecca, S., (2011). The Impact of New Social Media on Intercultural Adaptation. Senior Honors Projects, 242.

?Regina, J.J.M., Eijnden, V. D., Jeroen, S., Lemmens, P. & Valkenburg, M. (2016). The Social Media Disorder Scale. Computers in Human Behavior, 61, 478-487.

?Bhargava, A., & Rani, M. (2015). The Influence Of Social Media On Indian Teenagers. International Journal of Science, Technology & Management. 4, 2394-1537.

?Ahn, J. (2011). The Effect of Social Network Sites on Adolescents? Social and Aca demic Development: Current Theories and Controversies. Journal Of The American Society For Information Science And Technology, 62, 1435-1445.

?Pantic, I. (2014). Online Social Networking and Mental Health. Cyberpsychol Behav Soc Netw, 17, 652-657.

?Liu, Y. L., Sidani, J. E., Shensa, A., Radovic, A., Miller, E., Colditz, J. B., Hoffman, B. L., Giles, L. M., & Primack, B. A. (2016). Association between social media use and depression among u.s. Young adults. depression and anxiety, 1-9.

?McGee, T. R., Wickes, R., Corcoran, J., Bor, W., & Najman, J. (2011). Antisocial behaviour: An examination of individual, family, and neighbourhood factors. Trends & issues in crime and criminal justice, 410.

?Charita, B., LasalaRegina, P., Galigao, J., & Boquecosa, F. (2013). Psychological impact of Social Networking Sites: A Psychological Theory. U V journal of research, 81-86.
?Arulmani, M., Hema Latha, V.R. (2014). Jallikattu Is Dravidian Veteran Sport? (A new theory on "Dravidian Lion"). American Journal of Engineering Research (AJER), 3, 223-229.

*Dr. Renu Kansal
**Prof. Dr. ArunaAnchal
***Dr. Sushila Saini

88

Biblical Concerns in John Milton's *Paradise Lost*: An Appeal to Obey Your Elders for Salvation

Dr. Arvind Kumar, Jyoti

Abstract :

This paper conveys the biblical concerns through the depiction of various characters such as God, Satan, Angels, Adam and Eve and others and makes the difference between good and evil by their characterizations. The poem is considered as an epic for literary lovers especially who have deep interest in literature. It has a great place for Christian as same as *Bhagavad Gita* for Hindus, Quran for Muslims, and *Guru Granth Sahib* for Sikhs. As per the opening lines of *Paradise Lost* we must obey elders for making our life safe from others especially in the sense opposite situation – our lives become meaningful or fruitful by their valuable advices if we obey them otherwise we face difficulties and miseries in our life or sometimes its effect has disastrous result or conclusion. So, John Milton, a poet of this poem *Paradise Lost* put many examples of religious sensibility to show his deep interest in sublime thoughts which are more valuable and wise for the readers.

Keywords: *Paradise Lost***,** Obedience, Disobedience, Biblical Concerns, Moral Values, Meaningful and Frightful life.

For example:

"Of Mans First Disobedience, and the Fruit
Of that Forbidden Tree, whose mortal taste
Brought Death into the World, and all our woe,
With loss of EDEN, till one greater Man
Restore us, and regain the blissful Seat…"
(Milton)

Above mention are the opening lines of epical poem *Paradise Lost* deal with moral and valuable thoughts to us in better understanding that God instructed to Adam and Eve many times not to eat the fruits whose taste undoubtedly mortal but provoking by Satan who is the symbol of sin and evil, first time dare to eat the fruit and as a result the supreme power of paradise expels the creators of universe whose names are Adam and Eve. Milton addresses heavenly Muse to help him to compose this poem which has religious subject as Man's first disobedience to God. It is certainly an indication to worldly people to learn by their mistakes which are first committed by universe creators.

As per manuscripts of Bible there is only one residence (Paradise) for one and all (God, Satan, good and bad Angels, lived happily with one another but it is also a fact that goodness and badness can't be merged and at last work can be concluded in positive sense. We can define it with famous quote; "Goodness triumphs over evil." With same concern we have many examples happen in our society where the people are different from their qualities either good, bad or both because of none one is perfect in this world. If one has some good qualities, certainly bad also exited in opposite. So we can say that world is totally different from people by their qualities.

For Example:

"Who first seduced them to that foul revolt?
The infernal Serpent; he it was, whose guile,
Stirred up with envy and revenge, deceived
The mother of Mankind, what time his pride
Had cast him out from Heaven, with all his host of rebel Angels…" (Milton)

It was the name as devilish Serpent who seduced to universe creators. By using trickery, he dared to up the supreme power and he had huge jealous feelings and revengefulness act to get paradise from God. A renowned critical author mentions that "Satan practiced his trickery at the time when he, on account of his pride, had been expelled from Heaven in company of the multitude of rebellious angels with whose help, aspiring to achieve a position of glory above his equals, he believed he could rise to the same status as God" (Ramji Lall 161)

Satan's Condition after Expulsion from Paradise:

Satan and his horrible companions expelled from paradise and in all nine days and nights by his defeated heart he rolled in the fiery lake in hell. Although Satan was immortal in many ways, yet he was totally confused because of no accommodation live after completely expulsion from paradise. Here, Satan missed luxurious life of paradise with other companions or under the proper command of God. It is justified in following lines as; "No light, but rather darkness visible served only to discover sights of woe, Regions of sorrow, doleful shades, where peace and rest can never dwell" (Milton) it was a real world of true thoughts and experiences of Satan by act of revenge and willing to become

master like God. Here, we have many valuable thoughts to gain that the human beings take the wrong path for comfort life but the truth is that nothing is left after death.

Satan's speech with depth knowledge:

He put an insightful observation in following lines as "A mind not to be changed by place or time. The mind is its own place, and in itself can make a Heaven of Hell, a Hell of Heaven. What matter where, if I be still the same…" (Milton). The poet speaks the truth through Satan's mouth that our mind is commanded by us weather to right direction or wrong direction; it is only a matter of our command. Milton hints us to the people who make their mind heaven by joining the good company and perceiving the valuable and wise thoughts and some who make their mind hell by bad company with filling negative thoughts so it is only our responsibility to command the mind in right direction or wrong.

Conclusion:

To conclude the paper is mainly a message to the readers that we should respect elders and obey their advices for making life comfort and meaningful otherwise result can be experienced in beginning lines of *Paradise Lost.* Generally, human beings work independently and feel barriers if someone guides them especially elders such as grandfather, father, grandmother, mother, brother, sister, all advise their juniors for their life better by using such a valuable statements like "Haste makes waste," "Adversity flatters no man," "Better today than tomorrow," "Honesty is the best policy," "As you sow, so you reap" "Tit for tat," and so on. We find same advice in following lines of John Milton.

For Example: the popular quote; "Better to reign in Hell than serve in Heaven." Justifies the right possession for own self weather great or small. Last but not least Milton appeals to us obey your elders and to value of things.

Work sited:

Lall, Ramji. *Paradise Lost: Critical Book.* New Delhi: Rama Brothers India Pvt. Ltd, 2013.

Miller, Timothy C. *A Critical Response to John Milton's Paradise Lost.* Edited, University of Michigan, 2008.

Lewis, C.S. *A Preface to Paradise Lost.* New Delhi: Atlantic Publishers and Distributers, 2005.

Nafi, Jamal Subhi Ismail. "Milton's Portrayal of Satan in Paradise Lost and the Notion of Heroism." *International Journal of Literature and Arts* (May 11 2015): 22-28.

P.C. Kumlilly. "A Study of John Milton's Analysis of *Paradise Lost* with Epic Poem." *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research:* Vol 6, Issue 5 (May 2019): 74-78.

Peek, H.W. "The Themes of Paradise Lost" *Modern Language Association:* Vol 29, no 2 (1914): 256-269.

Dr. Arvind Kumar
Assistant Professor, dept. of English
GMV Rampur Maniharan Saharanpur
Uttar Pradesh, India
Email id: arvindkumarsisana91@gmail.com
&
Jyoti
Teaching at dept. of English
GMV Rampur Maniharan Saharanpur
Uttar Pradesh, India

89

A Heap of Broken Images: Depiction of Modern World in Graham Greene's The Man Within.

Dr. Sudhir Kumar Yadav

Abstract :

The present research paper deals with the presentation of the Modern Corporeal World in the fictional world of Graham Greene. Graham Greene has been acclaimed as the most popular serious novelist of the 20th century. His reputation as a novelist has been on the increase since 1930's when his novels began to appear. He chose the best of the stream-of-consciousness novel and also from the traditional novel and gave a new chemical mixture of both the forms. It is true that all authentic creative arts spring from inner impulse beyond the touch of tradition. But it is equally true that the moment such an impulse is put into expression, it is connected with matters of method, materials and environment which vary from novelist to novelist and from age to age. Certain distinctive qualities make their own history of racial and social popularity of art experience. The thought and feelings that moved the ancients to creative expression were potent in their periods, but they bring its elaborations and sophistication to life even today and move the foundation of inner life.

Key Words: Depiction, stream of consciousness, innocence, experience, sophistication, etc.

Research Paper: Graham Greene, the fourth of the six children, was born on 2nd October, 1904. His father was the Headmaster of an English public school at Berkhamsted. Hence Greene was brought up in a comfortable intellectual background. Greene found the confines of his father's school barren and unresponsive. The barbed wire atmosphere and the excessive do's and don'ts made him ill at ease. While at home, he was alienated from his parents because of a team of servants, at school, being the headmaster's son, he was detached from other boys who took him to be a 'Quisling'. School rules the censorship of books from home, the lavatories without locks and walking in pairs even on Sunday mornings gave no solitude to the imaginative boy. He fidgeted and got disgusted with the attitude of the school authorities that privacy could be misused.

The memories of Greene's unhappy childhood and school life exercised a great influence on his imagination and there are frequent references to these, unhappy exercises in his works. Once he saw a man running into an almshouse to cut his throat with a knife, having no hope, and without God in the world. He also heard of a boy of twenty and a girl of fifteen found headless on a railway track. Thus he was aware of evil and unhappiness from the early childhood of his life. As mentioned by Peter Quennell, Grreene's contemporary at the school, Greene found the school dull and the town drab. Yet the school proved to him the place of almost unfathomable iniquity. The 'awareness of evil' experienced by Greene during his childhood accounts for the recurrence in his writing of the theme of childhood as the period during which innocence is betrayed and corrupted.

Greene's childhood was divided between hatred of school and the boredom of holidays. This boredom seemed to him the only alternative to the "black and gray" evil of human nature. He ran away from school and his parents sent him to a psycho-analyst. The psycho-therapy was intended to correct his aggressiveness, to curb his rebellious spirit and get him adjusted to the world. For some time, the therapy worked but then he switched over to dangerous games with which to escape boredom. Once he had patiently drunk a quantity of hypo under the impression that it was poisonous. On another occasion, he had drunk a bottle of hay fever lotion. Once he had eaten a bunch of deadly nightshade which produced only a slight narcotic effect on him. He would try to scare himself on a horse or play with his brother's revolver with one of its six chambers loaded and pulling the trigger.

It is not that he loved life less. It was not a romantic deathwish. Paradoxically, his simulated suicides show his zest for life. The thrill he got out of it is beautifully described by Greene himself: "I remember an extraordinary sense of jubilation. It was as if a light had been turned on". He had made a discovery that it was possible to enjoy again the visible world by risking its total loss. "It was like a young man's first experience of sex-as if in that Ashridge glade, one had passed the test of manhood".

From Berkhamsted, Greene went to Balliol College, Oxford. But even at Oxford he found no relief from the boredom which had been afflicting him at school. Even at Oxford he felt the uselessness and the evil of human life. Oxford produced hardly any impression upon his mind. Nor did he win any scholastic distinctions at Oxford. He obtained a second class in modern history, and also became

acquainted with an attractive girl by the name of Vivien Dayrell-Browning who was Roman Catholic by faith while Greene had been brought up as an Anglican. It was at the end of his Oxford career, in 1925, that Greene published a collection of poems under the heading of **Babbling April**. The chief interest of this volume is a poem called "The Gamble" which Greene subsequently expanded into a biographical essay, "The Revolver in the Cupboard." There is a feeling of despair in the poem, and Greene toys with the thought of suicide. The despair was the result of his feeling of boredom and his realization of the evil of human nature.

Turning from such feelings and thoughts to Vivien Dayrell-Browning, Greene proposed marriage to her. At this time he became friendly with a Roman Catholic priest, Father Trollope, whose association evidently had an immense impact upon his mind because he got himself converted to Roman Catholicism. The conversion to Roman Catholicism had a profound influence on Greene's thought, outlook and writings. Nothing is known of the spiritual conflict that brought about Greene's conversion and he has been somewhat reluctant to talk about it. Perhaps he was deeply dissatisfied with life, and the Roman Catholic faith offered him some land of consolation. The same priest performed the marriage ceremony of Greene and Vivien. The marriage took place in October, 1927. A son and a daughter were born of the marriage in course of time. However, after a few years of happiness, Greene's relations with his wife cooled, and he started living separately from her, though on friendly terms.

After leaving Oxford, Greene worked as a journalist for four years, first in Nottingham and later as a sub-editor on **The Times** in London. He continued as a sub-editor in the letters department of this newspaper until 1930, and in the later years he often contributed to it. He gave up this job soon after the publication of his first novel **The Man Within** in 1929. It is a novel about betrayal and is set against a background of skeptical romance. Greene's major pre-occupation in later days, the sense of sin, does not make itself felt in this novel until near the end. Andrews, the central character has betrayed his friend and leader, but will not admit that he has sinned. The word "sin" is first used in connection with his seduction by Merriman's mistress. The novel dramatises the tensions of life. It shows the loss of innocence as the result of social conditioning. Later he wrote two novels which he withdrew afterwards.

Graham Greene (1904-1991) is arguably the greatest English novelist of the later 20th century. His oeuvre spanning a period of about sixty years includes novels, travelogues and plays. These works show his evolution from an agnostic nihilist to a catholic apologist, a journey that closely resembles the spiritual biography of T.S. Eliot.

When Graham Greene came to write his first novel, English Literature was enthralled by the apocalyptic vision of T.S. Eliot's **TheWaste Land (1922).** Eliot's portrayal of his world as a God forsaken planet bereft of love, of water, a planet slowly getting burried in filth and rubbish, a planet dominated by whores and charltans, moulded the vision of the whole generation to which Greene belonged. Eliot's ringing lines must have haunted the young mind of Graham Greene:

What are the roots that clutch, what branches
grow out of this stony rubbish?
A heap of broken images, where the sun beats.
And the dead tree gives no shelter, the cricket no relief.
And the dry stone no sound of water.'

Eliot's influence is evident not only in the Waste-landish qualitiesof Graham Greene's early novels but also in the Catholic direction whichthe later ones take.

A vague outline of the 'Greeneland' begins to take shape in three early novels - **The Man Within, It's A Battle Field, andEngland Made Me**. There is a general impression of abandonment and decay, of filthiness and seediness, of urban congestion and pollution, that blightsthe landscape giving it a wastelandish aspect. The 'Greeneland' takes definite contours in the three central novels-**Brighton Rock, The Power and the Glory, and TheHeart of the Matter**. Greene handles hisimagery of setting with growing confidence as the outer and inner landscapes fuse into a harmonious whole. In the next three novels, The End of The Affair, The Quiet American, and A Burnt out case, the exotic locales continue to work as narrative strategies but they slowly recede into background and the imagery thins out. Yet the narrative purpose of using setting as an obiective correlative for a formula of emotions remains consistent in all these major novels.

The Man Within, which Greene began at the age of twenty-two and published three years later, is in many ways what one might expect of a very young novelist's first published work. In the author's note to the uniform edition, he admits that he gave up the attempt to revise the novel thirty years after it appeared: the "embarrassingly romantic" story and the"derivative" style remain intact. Greene's self-criticism only adds to thedifficulty of approaching the novel objectively, for one must guard againstimposing upon the preconceptions conventionally brought to bear upon a novelist's early work, preconceptions that emphasize initial

failures in order to magnify later successes. Certainly not even the most sympathetic reader could consider **The Man Within** an unqualified success: butdespite its weaknesses, the novel does demonstrate early evidences of Greene's characteristic method of image-making, as well as the basicoutlines of the vision that remains fundamentally consistent throughouthis career.

Before beginning to analyse the novel's imagery one must considerthe thematic and structural framework within which its imageryfunctions. In planning the novel Greene made two important decisionsthat considerably influence his performance. By choosing the narrative point of view of his hero, Greene imposes severe limitations upon himself as narrator. Furthermore, the decision to set the action some time in the past, forces the novel over into the area of romance. As a result we find amixture of modes, since Greene attempts, on the one hand, to create aromantic texture for the setting and action, and, on the other, todemonstrate the inadequacies of Andrews' approach to the human predicament.

As the title and epigraph from Browne suggest, Andrews' characterization and the thematic content of the novel find their structurein the traditional conflict between the outer and the inner man or, thestruggle between body and soul. In this way, Andrews' experience may be seen as an attempt to free himself from the call of physical demands inorder to achieve the 'peace' associated with religion. Within the framework of this theme, the three-part division of the novel becomes athree stage journey in Andrews' spiritual 'progress. His potential for spiritual triumph through his meeting with Elizabeth is depicted in part one, his betrayal of that promise through self-debasement with the harlot Lucy in the second section, and his triumph in rejecting the outer man and this world through his suicide in the lacto part.

Notes and references

1. "Graham Greene", **Commonwealth**, 25Oct. 1940, p.12.
2. "Graham Greene", **Writers of today**, ed. Denys Val Baker (London: Sedgwick and Jackson, 1946), p. 15.
3. "The **Works of Graham Greene**", Horizon, 1 (1940), 367-75.
4. "Graham Greene and the Intelligentsia", **Partisan Review**, 11 (194-1), 229.
5. "Felix Culpa", **Commonwealth**, 16 July 1948, pp. 323, 324.
6. T.S. Eliot **Selected Poems**, (Delhi, OUP, 1992), p.43
7. G. Greene **The Man Within** (London, Heinemann, Uniform Edition, 1980), p.126. All subsequent references are to this edition only and the page numbers have been given in parenthesis.
8. G Greene **It's A Battlefield**, (London, Heinemann, Uniform Edition ,1980), p.20 . All subsequent references are to this edition only and the page numbers have been given in parenthesis.

Dr. Sudhir Kumar Yadav
Principal,
Govt. College Kosli,
Email; yadavsudhir45@gmail.com
Mob. 9416089911

Ecofeminine Sensibility In Tony Morrison's Novel Beloved

Vipul Kumar Singh, Dr Sunita Rai

Abstract :

Feminism is a literary, political, theoretical, and conceptual term that seeks to understand the world's relations and advocate changing them to the advantage of women. The traditional notion that a woman is inferior to a man is no longer acceptable to modern women in general and feminists in particular. Feminist writers aim to make a woman the subject of their work to present the current situation of gender discrimination. The women writers started struggling to discover their impulses, reactions, desires, and needs. Their quest for self-knowledge and self-realization and the real obstacles in their way are the prominent points of their discussion. They struggle against the superiority complex of male dominancy with the hope to lead a relationship based on mutual understanding and respect. They aim to overthrow all kinds of traditional and social practices that lead to the oppression and victimization of women. Second, ecology is the study of interaction among natural objects. The ecologist studies at various levels, such as organic species, community relationships, biosphere, and ecological systems. Ecofeminist prepares a bridge between ecology and feminism. The ecofeminist analyses nature and women putting side by side over past decades. Tony Morrison, the first black female Nobel Prize winner novelist (1993) obtains Nobel Prize for literature because she describes novels that featured visionary force and American reality. Her fifth novel Beloved is the most successful novel mainly focused on its poetic language, postmodern characteristics, maternal love, narrative strategy, and gothic elements. It beautifully discusses the aspects of nature and women; the two basic and most important subjects which ensure the possibility of using ecofeminist theory to analyze it. This research paper is aimed at filling the research gap by using ecofeminist theory to research the connections between nature and women discussing the story of the novel Beloved.

Keywords: Ecology, feminism, civilization, feminism, exploitation

Ecofeminism as a theory developed in the 1970s with the publication of Rachel Carson's (1907-64) The Silent Spring (1962). As a term 'ecofeminism' first appeared in Françoise d'Eaubonne's (1920-2005) work Le feminisme ou la mort in 1974. According to ecofeminism, women have a positive relationship with nature. Both females and nature have a reproductive role in the universe. This unique relationship between them brings them closer. To ecofeminists, the role of women and nature as nurturers is priceless. They believe that there is a direct link between these two in adoration and oppression both. They believe that the oppression of nature and the oppression of women are completely equal. To them, it is impossible to separate sexism and naturism. To understand the way of women's oppression, there is a great need to understand the oppression of nature. Mary Mellor in Feminism and Ecology defines ecofeminism thus, Eco-feminism brings together elements of the feminist and the green movement, while at the same time offering a challenge to both. It takes from the green movement the concern about the impact of human activities on the non-human world and from feminism the view of humanity as gendered in ways that subordinate, exploit and oppress women. (1)

Simone de Beauvoir's phrase 'the second sex' concerning woman cut ice. She opines that woman's idea of herself as inferior to men springs from her realization. She admits that the world is masculine on the whole and males ruled it and still dominate the others (de Beauvoir, 298). She has written several works which deal with the theoretical aspects of women's sensibility. The important works are The Second Sex (1949), She Came to Stay (1943), The Ethics of Ambiguity (1947), All Men are Mortal (1970), etc. In her most famous work, The Second Sex, she admits that 'one is not born but rather become a woman'. To her, the concept of gender is not biological construction but it is a social construction, and gender-based behaviors part of social norms. She boldly presents the impact of patriarchy throwing light on the social construction of gender superiority where 'man is the default and woman is the other'.

Helene Cixous (1937- present) has reiterated the demand for self-assertion by women writers and leaders. She is one of three mothers of Poststructuralist Feminist Theory who represents the feminist movement in unequivocal terms. In her most famous work, The Laugh of Masuda (1975) she talks about Ecriture Feminism. To her, a woman must put herself into the text into the world, and into history through

her movement. In this work, she talks about binary opposition. She admits and advocates that gender should be evaluated as a biological structure, not as social and linguistic construction. Toril Moi (1953-present) another important Norwegian Feminist and Cultural Critic, talks about the sense of marginality. The term 'marginality' implies exclusion based on the issue of race, gender, ethnicity, or sexuality. To her, in our social construction male is in the center, and the female is set on the margin. In her famous work, Sexual Textual Politics (1985), she differentiates the words female and feminine. To her, female is physical appearance and feminine is a cultural construction.

Elaine Showalter (1941-present), another prominent American Feminist literary critic suggests that feminist criticism should not relate to male critical theory but to female criticism. She terms it Gynocriticism. In her Ph.D. thesis, she analyses the works from Bronte to Doris Lessing. In her famous work, Towards Feminist Poetics (1979), she divides feminist literature into three important parts; Feminine (1840- 1880), Feminist (1880-1920), and Female (1920-present). She calls sexual anarchy gender-based discrimination in her famous work Sexual Anarchy; Gender at Culture (1990).

Margaret Atwood (1939-present) is another important Canadian novelist and literary critic who encompasses her works with the theme of gender, identity, myth, climate change, and power politics. Her important works are; The Edible Woman (1969), Surfacing (1972), and The Handmaid's Tale (1985) are regarded as feminine novels, and she is regarded as a feminist writer. Her other texts like Survival (1972) and Bodily Harm (1981) too reveal her feminine attitude in unmistakable terms. Surfacing has been interpreted in various ways as a novel of self-discovery, a blueprint for revolution, and finally as a feminist novel. Margaret Atwood reacted against the so-called optimism of the post-feminist era in the 1980s and after (it is presumed that the feminist era ended in the 1970s and the post-feminist era began in the 1980s). In several novels, She deals with women's experiences in a male-dominated world. She presents the women characters as the victims of male dominion and oppression, trying to create a female space for themselves. These characters refuse to play second fiddle to man and challenge the so-called theory of male superiority.

Tony Morrison (1931-2019), a well-known American contemporary novelist has written many novels related to the theme of empowering the female and enriching the ecosystem. In the long list of her works, her fifth novel Beloved won Nobel Prize for literature in 1993. The work is the most successful novel of her from different aspects. In the novel, nature and women are the two primary and most important subjects. In her novel Beloved, Morrison narrates a life story of a girl named Sethi from her childhood to old age. The story of the novel is located in an American city, Kentucky, and Cincinnati City, Ohio. In the novel, these are two important places where the whole story happens. The protagonist of the novel Sethi leads a life as a downtrodden African woman who has taken shelter in America to sell her labour. At the beginning of the novel, she is presented as a girl of 13 years who sells her labour in Sweet Home Plantation in Kentucky. Her relatives also work in the firm governed by Mr. and Mrs. Garner. The owner of the plantation, Mr. Garner is a good gentleman who takes full care of and supports all the African labours. With time, Sethi falls in love with an African labour name Halle and marries him. They bore two sons (Howard, and Bugler) and one daughter (Beloved) and were again pregnant for a fourth baby. One day Sethi hears the news of the death of Mr. Garner, the owner of the plantation. After the death of Mr. Garner, Mrs. Garner calls her brother-in-law far take care of the plantation firm. But her brother-in-law is known as Schoolteacher, a man of cruel nature. When he takes the charge of the plantation house, he started to exploit the labours. He brutally kills the labour name Paul A and hangs on another labour named Sixo. Seeing the brutal activities of Schoolteacher Sethi becomes surprised and decides to send her children to the care of her mother-in-law who lives in Cincinnati City, Ohio. Her three children two boys and a girl are enjoying the special care of their grandmother. Hearing the news of the activities of Sethi, Schoolteacher, the cruel new owner becomes angry and orders his nephews to rape her. The Nephews brutally rape Sethi in front of her husband Halle. Seeing this brutal activity of two rapists, Halle becomes shocked and takes suicide. Sethi complains about those two rapists and Mr. Schoolteacher to Mrs. Garner but she expresses sorry for her ability and not do doing anything against them. One night, Sethi decides to leave Kentucky and settled in Cincinnati City, Ohio, and she leaves the firm silently and crosses the river and reaches Cincinnati City. She was pregnant at that time so she feels pregnancy pain because of her fatigue and extra struggle. With the help of Amy Denver, she begets her 4th child named Denver. Now, she is fully happy with her baby and mother-in-law in that city. But after a month, she hears news of the arrival of Schoolteacher with some cruel followers. She is completely fears of the news of their arrival so she takes a dangerous step to kill her babies so that they cannot kidnap their children for

multiple exploitations. So she kills first her third girl child named Beloved. Seeing the murder of Beloved by her mother Schoolteacher became surprised and admit she is mad. He imprisons her and sends jail. After ten years of imprisonment, Sethi comes back home and finds that her mother-in-law and her youngest daughter Denver live a life of threat. They were fear that there is a supernatural soul in their house. After coming back from jail, Sethi again marries Paul D, another African labour who works on Sweet Home plantation. One day they see a girl sit in the middle of the door gate and confirm that the supernatural soul has taken the form of a young girl of 16 and started to live in their house forcefully. The soul starts to threaten family members because of her supernatural power. She seduces Paul D, the second husband of Sethi, and became pregnant. The whole family of Sethi faces a unique kind of exploitation in fear and pain. The whole family lives a life of beggars because they have a single piece of food in their house. One day the youngest daughter of Sethi, Denver cries in her neighborhood for the help of her family. Some Christian religious women of her neighborhood gathered in her house and started to pray the Christ. After some time of their prayer, the soul presented as a young pregnant nude woman in front of them and disappeared forever. Then Sethi with her husband Paul D and Denver enjoy a happy life and the novel ends.

Passing to the whole story of the novel, the whole story represents the exploitation of a female worker, Sethi, and the psychological solace and refuge provided by nature. Here, Sethi felt "as a person rather than a structure" (Beloved 17). As a woman with free will and desires, she faces patriarchal hierarchies of power. She feels oppressed equally as nature. The tree from Sethe's back represents the whole sentiments of women. The scar inscribed by the white man's authority equally exploits to enter the virgin landscape of a Woman's landscape. Sethi a victim of social and sexual abuse, continues to accept the dominion of men to rule over her natural self. She always sacrifices her individuality and fights for the natural setting of the family. She also believes that the past should not be forgotten, but integrated into the present. She accepts slavery as a gift of nature and compares her pain with the deforestation of the "tree". There are various themes are in the novel as gender discrimination, women's friendship, marriage and sex, evil and goodness, etc. The novelist presents his ecofeminist concern for nature and the story correlate the relationship equally the nature and women as a source of exploitation. Beloved shows the history of African-American women's views of nature. The novel centers his attention on the story of Sethi and presents a realistic view of how slavery fractured African-American relationships. The novel tries its best to picture the relationship between females and nature and demonstrates the strong desire of black women to get rid of the miserable condition of exploitation and slavery. The novelist, Tony Morrison pursues the liberation of African-Black women and presents an alive picture of women and nature as an oppressed one. In the novel, she shows these two as victimized sources of patriarchal society. To her, a woman is a life-giving creature to humanity where trees are unavoidable sources of healing and comfort.

The novel focuses the main attention on the runaway laborer, Sethi who is a slave in Sweet Home Plantation and displays multiple conflicts. She starts her fight in her childhood against unstable status, social structures, and the pitiable condition of slavery. She has an internal desire for individual identities and freedom to recover her social status. She tries her best to reunite the painful moments of the past with the present but become fails because of male dominance. She becomes part of the culturally unanimated nature with the objectified slaves by the dominant white male owner who has decided to manufacture the urban medium to be a natural part of the environment and black people to be part of slavery in so-called democratic American society. With the psychological points of the story, the novel has many approaches to enlarge the ecocritical engagement in the novel. The feminine sensibility of the novelist is clearly expressed in the whole tale. She narrates the historical picture of African American relationships. Black African ancestry is an important part of her work. She narrates the history paying attention to the downfall of a woman and nature during the industrial revolution.

In conclusion, we can say that Morrison asserts herself as an engaged ecofeminist in her novel. She depicts the interlocking relationship of sexism (male & female), racism, and realism to eradicate all these kinds of oppression. The novel Beloved widens the field of different other oppression to include the exploitation of animals by white men, of black men by white men, of black women by white men, of any woman by any man, and also of white women by white men. This novel explores the wide range of oppression that marks Morrison as an ecofeminist and magical realist. She interconnects nature and women as both of them are in great need of support to save their exploitation. Through this

novel, she aims to demonstrate that nature and women are sources of intrinsic values of the origin of humanity. . The novel can be adequately explained in terms of ecofeminism, and hence, this paper seeks to interpret it as an ecofeminist novel. At the outset, it would briefly discuss feminism and ecofeminism in the literature of our time and then proceed to analyse Beloved in terms of ecofeminism

Works Cited:

Das, Vijay Kumar. Critical Essay on Post-Colonial Literature. Atlantic Publishers. New Delhi. 2012. Print

Dipesh. Provincialising Europe: Postcolonial Thought and Historical Difference. Princeton University Press. 2000

Fletcher, Robert.J. The Concise History of English Literature. Dominant Publishers. Dariya Ganj, New Delhi.

Morrison, Tony. *Beloved.* Alfred A Knopt. New York. Print

Mukhopadhyay, Arpita. *Feminisms.* Orient Blackswan. Hyderabad. 2019. Print

Vipul Kumar Singh
Research Scholar
K. N. I. P. S. S., Sultanpur (UP) India
Dr Sunita Rai
Associate Professor
K. N. I. P. S. S., Sultanpur
(U. P.) India

91

Functions & Monetary Management Of Reserve Bank Of India

Dr. Upasana

Abstract :

The central bank is the apex bank of the nation and, as such, plays a significant role in the monetary and banking system. In addition to maintaining economic stability, the central bank plays a vital role in the process and development. It has the issuance of currency notes. A central bank is a financial entity that has privileged authority over the generation and distribution of money and credit for a nation or group of states. In contemporary economies, the central bank is often responsible for monetary policy development and the regulation of member banks. Most developed nations' central banks are institutionally independent from political meddling. Still, the executive and legislative branches have limited influence.

KEYWORDS

Reserve Bank of India.

INTRODUCTION

Subtract of RBI

·A central bank is a financial institution that is responsible for overseeing the monetary system and policy of a nation or group of nations, regulating its money supply, and setting interest rates.

·Central banks enact monetary policy, by easing or tightening the money supply and availability of credit, central banks seek to keep a nation's economy on an even keel.

·A central bank sets requirements for the banking industry, such as the amount of cash reserves banks must maintain vis-à-vis their deposits.

·A central bank can be a lender of last resort to troubled financial institutions and even governments.

The Main functions of the Reserve Bank

The Principle function of RBI is to regulate the monetary system of the country in such a way that the balance economic growth of the country is achieved along with economic stability. According to the RBI act 1934 " the main function of bank are to regulate the issue of bank notes and keeping a reserve with a view to securing monetary stability in India and generally to operate the currency and credit system of country.

General Functions of RBI are as follows:-

- Monetary policy
- Regulation and supervision of the banking and non-banking financial institutions, including credit information companies
- Regulation of money
- Government securities markets as also certain financial derivatives
- Debt and cash management for Central and State Governments
- Management of foreign exchange reserves
- Foreign exchange management—current and capital account management
- Functions of a central bank may include:
- setting an official interest rate used to manage both inflation and a country's exchange rate – and ensuring that this rate takes effect via a variety of policy mechanisms
- controlling a state's entire money supply
- Acting as a government's banker and as the bankers' bank ("lender of last resort")
- Managing a country's foreign-exchange and gold reserves and government bonds
- Regulating and supervising the banking industry

These Functions may be classified into three parts:-

1. Traditional Function
2. Development Function
3. Regulatory Function

TRADITIONAL FUNCTION

Issue of Currency: RBI undertakes issue of currency and the system adopted in India is the minimum reserve system. All the currency notes from Rs. 2, Rs 5, Rs. 10, Rs. 50, Rs. 100, Rs. 500 and Rs. 1,000 are issued by RBI and they carry the signature of Reserve Bank of India Governor. They are called unlimited legal tender and any amount of payment can be made with these currencies subject to the regulations of Income Tax Act, 1961.

The one rupee note and smaller coins are issued by the government and they are called limited legal tender which means that they can be demanded as a medium of payment only to a limited extent. The one rupee note carries the signature of secretary to the Ministry of Finance.

Banker to Government: Reserve Bank of India acts as a banker to the government by maintaining the account of

Central government and also that of the State government. It also provides overdraft facility to both State and Central governments. The public borrowings of government are done through Reserve Bank of India. Payments to the government such as income tax is also accepted by Reserve Bank of India.

Bankers' Bank: The other traditional functions of RBI consisting of bankers' bank is done in the following manner:

1. **Issuing license to banks** and allowing them to open branches under the provisions of Banking Regulation Act.
2. RBI also **controls the working of commercial banks** and **undertakes periodical inspection** of these banks.
3. In case of violation of the Banking Regulation Act by any of the commercial banks, RBI will order for the closure of these banks.
4. The management of the commercial banks will also be controlled by Reserve Bank of India. All the top level management appointments of commercial banks require prior approval of RBI.
5. The credit requirements of commercial banks are met by discounting and re-discounting eligible securities at the bank rate.

Credit Control functions: RBI exercise the following credit control measures

The quantitative weapons of bank rate, open market operation and variable reserve ratio are exercised by Reserve Bank of India.

The modern weapon of selective credit control is also being exercised by RBI particularly on agricultural commodities.

The seasonal fluctuations in the money market is balanced by Reserve Bank of India through adequate finance during a period of financial stringency.

1. The quantitative weapons of bank rate, open market operation and variable reserve ratio are exercised by Reserve Bank of India.
2. The modern weapon of selective credit control is also being exercised by RBI particularly on agricultural commodities.
3. The seasonal fluctuations in the money market is balanced by Reserve Bank of India through adequate finance during a period of financial stringency.

RBI acts as lender of last resort: The commercial banks have to maintain as a part of statutory requirements certain percentage of their deposits with RBI which is called cash reserve ratio.

By increasing or decreasing this percentage of cash reserve ratio, RBI allows adequate funds for lending purpose by commercial banks. When all the commercial banks are depositing with Reserve Bank of India in the form of cash reserve ratio, a sizable amount of fund is available with RBI. This fund will be extended by RBI to any commercial bank which is facing crisis.

Exchange control function: In India, we have the exchange control since independence and RBI is given enough powers to exercise exchange control. Without the license of Reserve Bank of India no one can deal in foreign exchange. The exchange rate with different foreign currencies is provided by RBI to its authorized dealers consisting of nationalized and other private commercial banks.

All the foreign exchange earnings in the country are kept by RBI in the form of foreign exchange reserve. RBI also has the responsibility of maintaining the value of domestic currency and take adequate measures so that its value does not depreciate abnormally in relation to foreign currencies.

Clearing house: In all big cities Reserve Bank of India has its branches and clearing house operations are undertaken. Where RBI does not have its branch, the clearing house operations are undertaken by State Bank of India and its subsidiary banks. All the commercial banks in India are members in clearing house and they take part in the clearing of cheques.

DEVELOPMENT FUNCTIONS OF RBI

The development functions are country specific functions and can change according to the requirement of that country. The RBI has been performing as a promoter of the financial system, since its inception.

Some of the major development functions of the RBI are as follows:

Development of Agriculture

Right from the beginning, RBI has an Agriculture Credit Department. The principal function of this department is to conduct research regarding the various problem of agricultural credit.

Promotion of Industrial finance

Rapid industrial growth requires the adequate and timely availability of credit to the small, medium and large industry. For this RBI has been instrumental in setting up special financial institutions such as ICICI, IDBI, SIDBI and EXIM bank etc. Reserve bank provides significant financial assistance for the industrial development of the country.

Promotion of expert through Refinance

RBI tries to encourage the facilities for providing finance for

foreign trade especially export from India. The Export-import bank of Indian(EXIM bank of Indian) and the Export Credit Guarantee Corporation of India(ECGC) are supported by refinancing their lending for export purposes.

Development of Bill markets reserve

Bank has made concerted efforts for the development of bill market. In this regard, it initiated its first plan in 1952. RBI made this plan applicable to all the scheduled banks from 1954 onwards. In 1958 export bills also came within the purview of this plan. In 1970 Reserve bank started New Bill Market program. As a result of the development of the bill market, it can be possible to make the monetary policy more successful.

Development and Regulation of Banking System

Because of the notable efforts of RBI that banking system in Indian ha assumed the status of the development banking. Also, there is a notable spread of branch banking in rural areas. RBI arranged appropriate credit facilities for the priorities sectors. In order to regulate the functions of the banks, In 1993, Board of financial Supervision came into existence. Since 1994, banks in the private sector got licences.

REGULATORY FUNCTION

Greater Monetisation:

Over the years, the R.B.I, has been mobilising savings through its members (commercial banks) and other financial institutions for productive purposes.

By putting pressures on commercial banks to open branches in rural and semi-urban areas the R.B.I, has succeeded in developing banking habits of the people. This has led not only to greater monetisation of the economy but has helped to reduce the dependence of the people on indigenous banks and private moneylenders.

Providing Security to the Depositors:

A major obstacle to the development of banking institutions in India has been frequent bank failures. This has always acted as a major hindrance to deposit mobilisation. This is why the R.B.I, took initiative in establishing the Deposit Insurance Corporation of India in 1962. The basic objective was to provide security to the depositors.

Provision of Rural Credit

From the very beginning the development of institutional credit for agriculture has been a major function of the R.B.I. It developed the ARDC in 1963. It was replaced by NABARD in 1982.

Setting up Term-Lending Institutions:

The R.B.I, has also taken the initiative in setting up several specialised financial institutions after Independence. The basic objectives was to meet the long-term credit needs of large scale industries. The public financial institutions have, no doubt, made a significant contribution to the industrialisation of the country.

Giving Advice:

Finally, R.B.I.'s advisory function has increased considerably in view of the Central Government's attempts to accelerate the pace of industrialisation as also pace of development. Now the R.B.I, not only advises the Government on purely financial matters but also in general economic problems. Thus, the R.B.I, has been playing a dynamic role in the process of development of the country.

MONETARY MANAGEMENT

Monetary Policy

One of the most important functions of central banks is formulation and execution of monetary policy. In the Indian context, the basic functions of the Reserve Bank of India as enunciated in the Preamble to the RBI Act, 1934 are: "to regulate the issue of Bank notes and the keeping of reserves with a view to securing monetary stability in India and generally to operate the currency and credit system of the country to its advantage." Thus, the Reserve Bank's mandate for monetary policy flows from its monetary stability objective. Essentially, monetary policy deals with the use of various policy instruments for influencing the cost and availability of money in the economy. As macroeconomic conditions change, a central bank may change the choice of instruments in its monetary policy. The overall goal is to promote economic growth and ensure price stability.

Essentially, monetary policy deals with the use of various policy instruments for influencing the cost and availability of money in the economy. As macroeconomic conditions change, a central bank may change the choice of instruments in its monetary policy. The overall goal is to promote economic growth and ensure price stability.

Over time, the objectives of monetary policy in India have evolved to include maintaining price stability, ensuring adequate flow of credit to productive sectors of the economy for supporting economic growth, and achieving financial stability. Based on its assessment of macroeconomic and financial conditions, the Reserve Bank takes the call on the stance of monetary policy and monetary measures

. Its monetary policy statements reflect the changing circumstances and priorities of the Reserve Bank and the thrust of policy measures for the future. Faced with multiple

tasks and a complex mandate, the Reserve Bank emphasizes clear and structured communication for effective functioning of the monetary policy. Improving transparency in its decisions and actions is a constant Endeavour at the Reserve Bank. The Governor of the Reserve Bank announces the Monetary Policy in April every year for the financial year that ends in the following March. This is followed by three quarterly reviews in July, October and January. However, depending on the evolving situation, the Reserve Bank may announce monetary measures at any point of time.

The Monetary Policy in April and its Second Quarter Review in October consist of two parts:

Part A provides a review of the macroeconomic and monetary developments and sets the stance of the monetary policy and the monetary measures.

Part B provides a synopsis of the action taken and the status of past policy announcements together with fresh policy measures. It also deals with important topics, such as, financial stability, financial markets, interest rates, credit delivery, regulatory norms, financial inclusion and institutional developments. However, the First Quarter Review in July and the Third Quarter Review in January consist of only Part 'A'

The monetary policy framework in India, as it is today, has evolved over the years. The success of monetary policy depends on many factors.

Operating Target

There was a time when the Reserve Bank used broad money as the policy target. However, with the weakened relationship between money, output and prices, it replaced as a policy target with a multiple indicators approach. As the name suggests, the multiple indicators approach looks at a large number of indicators from which policy perspectives are derived. Interest rates or rates of return in different segments of the financial markets along with data on currency, credit, trade, capital flows, fiscal position, inflation, exchange rate, and such other indicators, are juxtaposed with the output data to assess the underlying trends in different sectors. Such an approach provides considerable flexibility to the Reserve Bank to respond more effectively to changes in domestic and international economic environment and financial market conditions.

Monetary Policy Instruments

The Reserve Bank traditionally relied on direct instruments of monetary control such as Cash Reserve Ratio (CRR) and Statutory Liquidity Ratio (SLR). Cash Reserve Ratio indicates the quantum of cash that banks are required to keep with the Reserve Bank as a proportion of their net demand and time liabilities. SLR prescribes the amount of money that banks must invest in securities issued by the government. In the late 1990s, the Reserve Bank restructured its operating framework for monetary policy to rely more on indirect instruments such as Open Market Operations (OMOs).

In addition, in the early 2000s, the Reserve Bank instituted Liquidity Adjustment Facility (LAF) to manage day-to-day liquidity in the banking system. These facilities enable injection or absorption of liquidity that is consistent with the prevailing monetary policy stance. The repo rate (at which liquidity is injected) and reverse repo rate (at which liquidity is absorbed) under the LAF have emerged as the main instruments for the Reserve Bank's interest rate signalling in the Indian economy.

Financial Markets Committee

Financial Markets Committee (FMC) Constituted in 1997, the inter-departmental Financial Markets Committee is chaired by the Deputy Governor in-charge of monetary policy formulation. Heads of various departments dealing with markets, and the head of the Monetary Policy Department (MPD) are its members. They meet every morning and review developments in money, foreign exchange and government securities markets. The FMC also makes an assessment of liquidity conditions and suggests appropriate market interventions on a day-to-day basis.

Monetary Policy Strategy Group

The Monetary Policy Strategy Group is headed by the Deputy Governor incharge of MPD. The group comprises Executive Directors (EDs) in-charge of different markets departments and heads of other departments. It generally meets twice in a quarter to review monetary and credit conditions and takes a view on the stance of the monetary policy

Technical Advisory Committee (TAC) on Monetary Policy

The Reserve Bank had constituted a Technical Advisory Committee (TAC) on Monetary Policy in July 2005 with a view to strengthening the consultative process in the conduct of monetary policy. This TAC reviews macroeconomic and monetary developments and advises the Reserve Bank on the stance of the monetary policy and monetary measures that may be undertaken in the ensuing policy reviews. The Committee has, as its members, five external experts and two Directors from the Reserve Bank's Central Board. The external experts are chosen from the areas of monetary

economics, central banking, financial markets and public finance.

Pre-Policy Consultation Meetings

The Reserve Bank aims to make the policy making process consultative, reaching out to a variety of stakeholders and experts ahead of each Monetary Policy and quarterly Review.

Resource Management Discussions

The Reserve Bank holds Resource Management Discussions (RMD) meetings with select banks about one and a half months prior to the announcement of the Monetary Policy and the Second Quarter Review. These discussions are chaired by the Deputy Governor in-charge of monetary policy formulation. These meetings mainly focus on perception and outlook of bankers on the economy, liquidity conditions, credit outflows, developments in different market segments and the direction of interest rates. Bankers offer their suggestions for the policy. The feedback received from these meetings is analyzed and taken as inputs while formulating monetary policy.

REFERENCES

I. Ananya Mukherjee Reed: Corporate Governance Reforms in India in Journal of Business Ethics, Volume 37, Number 3 / May, 2002, p. 253.

II. Reserve Bank of India Act, 1934 (As modified up to 27 February 2009)". Reserve Bank of India (RBI). Retrieved 20 November 2010.

III. Reserve Bank of India: Platinum Jubilee (PDF)". RBI.org.in. 2010. Retrieved on 15 April 2012.

IV. Reserve Bank of India, Central Office Building, {onlineby site} Shahid Bhagat Singh Marg, Mumbai - 400 001

V. Manmohan Singh, "Reserve Bank ofIndia: Functions andworkine " (1983) p. 132, Bombay.

Dr. Upasana

Associate Professor,

Department of Commerce, Hindu Kanya

Mahavidyalaya, Jind, Haryana, India

92

Crime Against Children In India: A Spatio-temporal Analysis

Dr. Vineet Bala

Abstract :

"Crime against Children" when we hear these word we feel bad and hurtful that we cannot even provide a safe environment to our own children in this world especially in a country where people believe that God resides in Children and they are considered to be innocent and pure form of God. There are many type of crimes commit against children in our society. There are numerous law made to protect children and to punish the accused so that more crimes would not commit in future. Many laws have been made in try to provide a safe and healthy environment for the growth of children. In this we attempted to show the crimes which commit maximum against children in India, the year rate of Crimes against children, the states which have maximum crime rates and the rate of case dispose of by the Police and Courts in the year of 2021. In this paper the crime rate is mainly divided among the two main acts under which crime against are registered. 1. Indian Penal Code, 1860 2. Special & Local Laws. Special laws have made because in IPC, 1860 especially in sexual offences there is discussion about the crime against women, but there is not mention of male modesty. To provide justice and punish the accused those who outrage the male modesty the special act has been named as Protection of Children from Sexual Offences Act. Under this act if any person outrages the modesty, to commit sexual offence with children whether it is male or female the accused will be punished, this act is gender neutral and provides justice to the victim irrespective of its gender. In this paper we will discuss about the cases registered under crime against children in whole of India including the Union Territories.

Introduction:-

In India children are considered as a form of God. They are innocent and not aware about the way of working of world and society. In our society children are treated with respect and they are kept safe from all the evilness of the world. But sometimes parents and society fail to save the children from the crimes. Sometimes the accused are the family member or the ones whom people trust blindly. Mostly in India children are victim of sexual offences, kidnapping and abduction. The reason behind kidnapping of children to get some ransom from the parents or sometime to sell the children and earn money. In the India, Indian Penal Code,1860 deals with the crime happened against children but some special act has been made to deal with the offences of children like Protection of Children From Sexual Offences Act because in IPC the offences which covered there is only justice provide to the women in the sexual offences. But male are also victim of sexual offences and IPC did not provide any punishment in that scenario so in that case the POCSO act has been made. In this the sexual offence is gender neutral for any person who under the age of 18 years. To protect the male modesty the new act has been enacted to provide justice to them.

Objective:-

This paper is descriptive in nature and focuses on the spatial and temporal patterns of crime against children in India. In this paper we will analyze the weightage of different crimes against children and the states which have maximum crime rate against children with the disposal rate of these cases.

Keyword:-

Crime against Children.

Study Area:-

The Study area of the paper is whole of India including the Union Territories of India. India stands at 2nd place in term of population in world. The total area of India is 3.3 Million sq.km which makes India stands at 7th place in term of land area. The tropic of cancer passes through the mid of India. India is a diverse country with different religion and cultures.

Source of Data:-

The data used in this paper is a secondary data. The report named " Crime In India 2021" an annual report publish by National Crime Records Bureau (NCRB) under Ministry of Home Affairs is used in this paper to provide the statistics.

Process:-

India is a country of different religion and cultures which make india a perfect example of diversification. In India children are treated with respect and here people believes that God resides in Children, and they are pure form of God. But we all know there is no place perfect to live even though it is a culture of India to protect children there are still so many crimes commit against children in India. The number of Crime against children are increasing every except in the year 2020 there is a fall of crime cases against children because the whole world is impacted with COVID-19 and

people stay inside there home which plays an important role in declining number of crimes. But even in the time of COVID there are many crime committed against children which shows that children are not even safe in their home.

Yearly change in the number of cases

As we can see in the graph below w can see the trend of increase in number of cases of crime against children. We see in the graph below the number of cases filed in the year 2015 and in 2021 there is growth of 58.6%. In the year 2020, the cases of crime against children filed are lower than the number of cases filed in the year 2019. In the year 2020, the affect of the COVID-19 can be seen. There are many which could be responsible for the rise in the cases 1. Increasing awareness among children. 2. Decreasing pressure from the society of getting judged. 3. Support from the parents. 4. Education. These factors can be one of the reaosns of increase in rate if the children get more educated regarding than the accused will get punished and they will not get away with the crime they had done. If the accused get punishement of their crimes then the fear among them will increase which can contribute in the decrease in rate of crime against children.

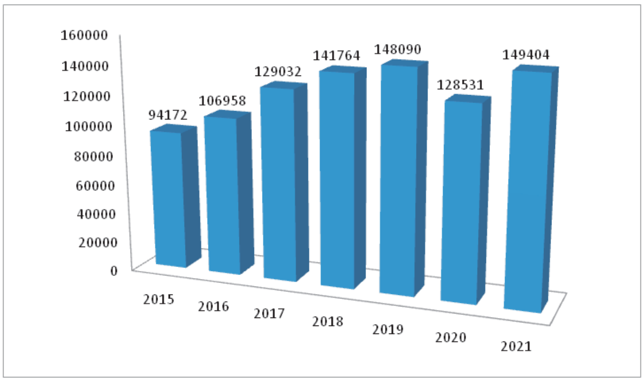

* Yearly cases of crime against children.

Crime rate in different States And Union Territories in India

In the Graph below we can see the rate of the crime against children in the differen States and Union Territories. This data is taken from the Crime In India 2021 report of NCRB. Delhi stands at the first place with the maximum crime rate against children in India. Delhi is the Capital of India, being the capital of India it is shameful that our administration and society is fail to save our children from the crimes. At the second place we can see the A&N islands stands followed by Lakshwdeep, Sikkim, Chandigarh, Madhya Pradesh, Haryana, Chhattisgarh, Odisha, D & N Haveli and Daman and Diu, Telengana, Kerala, Maharashtra, Assam with the rate of 128.5, 110.4, 85.4, 72.4, 72.2, 66.7, 62.5, 61.6, 54.8, 54.1, 49.8, 48.2, 47.8, 43.7 respectively. The difference between the crime of Delhi and Assam is 194%.

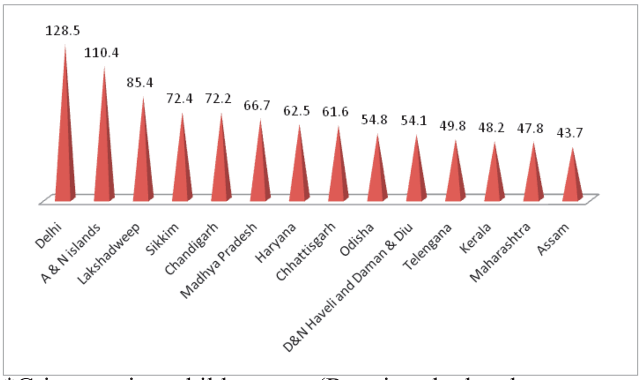

*Crime against children rate (Rate is calculated as per one lakh population)

Rate of different crimes in crime against children

We divided the cases in main two heading the cases which filed under the Indian Penal Code, 1860 and Special & local laws.

Total crime rate in 2021 is 33.6

Crime rate of offences committed under Indian Penal Code, 1860 is 20.4.

Crime rate of offences committed under Special & local laws is 13.2.

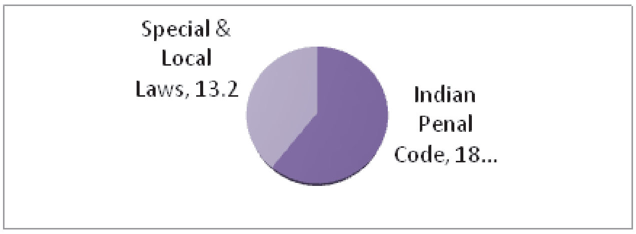

*Pie diagram showing the distribution of rate of crime against children.

1. Crime rate under Indian Penal Code, 1860

In the Pie diagram below we saw the crime rate of different offences under Indian Penal Code, 1860 committed against children. The offence of Kidnapping and Abduction has the crime rate amongst all the other offences. Then the other IPC crime placed at 2nd place followed by Assault on women with intent to outrage her modest, Hurt (simple hurt + grievous hurt), Rape, Murder, Exposure and Abandonment with the crime rate of 15.1, 2.1, 0.9, 0.9, 0.7, 0.6, 0.2 respectively.

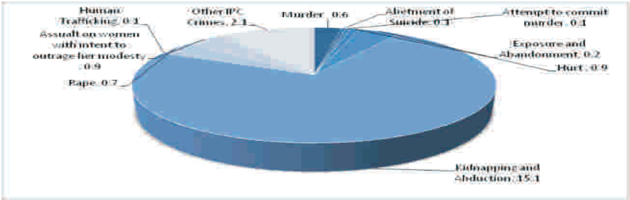

*Distribution of rate of different crimes.

2. Crime rate under Special & Local Laws

Many offences are registered under special and local laws because of the victim of the offence or sometimes the ingredients of the offences make those offences to be registered under special and local laws. There are many special and local laws namely, Protection of Children from Sexual offences act, 2012, Prohibition of child marriage act, 2006, Child Labour (Prohibition and Regulation) Act, Juvenile Justice (Care and Protection) Act, Cyber crimes/ Information Technology Act with crime rate of 12.1, 0.2, 0.1, 0.4, 0.4 respectively. Majority of the cases are reported under the POCSO Act, 2012. The rate of crime against children in cyber crimes/ information technology act is same.

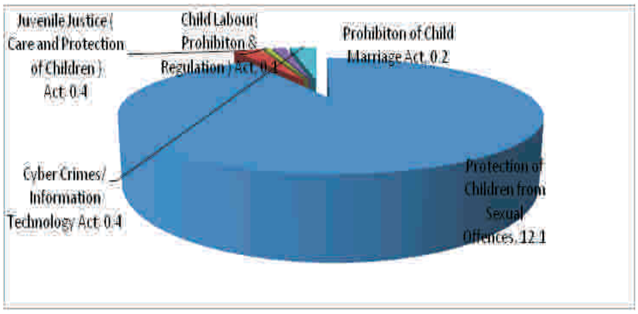

*Crime under different special & local laws.

Disposal of case by Police

The cases which got registered in year do not get completely disposed of by the Police in that year. If we see the number of cases of the year 2021, we see the weightage of the number of cases pending from the previous year is more than the number of cases registered in the year 2021 which makes the total number cases open for investigation for police is 229703 for the year 2021. The speed of disposing of the cases by the police is slow which is taking the rate of crime against children high every year.

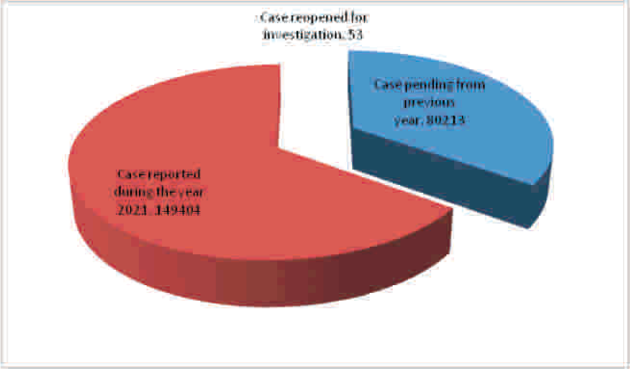

*Police Disposal of Crime Against children (Crime head-wise).

Disposal of case by the Court

The pendency of the cases related to crime against children in court is increasing every year. The cases pending from the year 2020 is 416512 and the case sent for trial during the year 2021 is 98138 which make the total number of cases pending in the court for trial is 514650. The number of cases withdraw by the prosecution in the 2021 is 14. The delay in dispose of the cases by the court not only increasing the burden on the court it also impacting the child who is the victim of that offence.

Finding and Conclusion:-

In this paper we find that the most of the offences done against the children are of kidnapping and abduction. Our capital Delhi stands at first in the most number of cases of crime against children. The reason behind the high number of cases in Delhi could be the awareness among the children and the parents. Now the victims are becoming braver and reporting the crimes. The children are getting more educated and the bond between the parents and children are becoming stronger both sides are feeling comfortable in sharing the things with each other. But there is need of more efficiency in Police and courts in order to increase the trust among the children and the parents who became the victim of these offences. If the pendency of these cases started to decrease people will report crimes in order to get justice. The increase number of cases is good as well as bad. The increase is good because it shows that now people are reporting the crimes. But it is bad because we are not able to provide a safe environment to our children. The laws need to be stricter and the society needs to be safer place for children to do their growth of life. To lower the number of crimes against children more awareness workshops can be arranged in school where it is taught to the children that whether they are victim of one of these crimes. Many cases are not getting registered because children are not aware that they are getting sexually assaulted or something wrong is happening with them. The parents did not teach them even in school teachers did not aware them about these crimes. So it needs to increase awareness. One thing also can be done which is self defense; it can be taught to the children for their own safety. Sometimes even they were aware that wrong is happening with them but they are not able to save so this can also helpful in saving children from these. These steps can be helpful in decreasing the number of cases against children.

References:-

1. Crime in India, 2021 report by National Crime Record Bureau.
2. Offences Against Children and Juvenile Offence By Dr. S.K. Chatterje

3. Law relating to Women and Children 4th Edition by Mamta Rao.
4. Crime against children in India Preventive and Protective laws by Dr. Govind Singh Rajpurohit and Abhimanyu singh.

Dr. Vineet Bala
Associate Professor,
Vaish College,
Rohtak.

93

Planning : An Introduction

Dr. Anita Rani

Abstract:

Planning concentrates on setting and achieving objectives of an organisation. Planning is the first management function. Before any action is taken place, it is essential to think about planning and design the future course of action, otherwise functioning would be ambiguous and performance of the organisation could not be up to the level of desired standards. This paper give a detail introduction of planning.

Key word: planning,principles

MEANING OF PLANNING :

Every human activity undertaken with a view to achieve something must be proceded by planning. For instance, a student desirous of securing a good grade in the examination has to plan his study. A person intending to set up a business cannot do so unless he has done a lot of previous thinking. He has to plan within the available resources, the location, the products to be sold, customers to be approached or the markets to be entered.

Managerial operations must be based on suitable and sufficient planning. It has to plan not only in the beginning but throughout the operations.

Definitions :

" Planning is deciding in advance what is to be done"

"Planning bridges the gap between where we are to where we want to go".

"Planning will involve deciding a course of action from amongst a number of alternative courses which would help the enterprise to achieve its objectives most expeditiously and economically. "Planning ensures proper application of resources for the attainment of desired ends"

Concept Of Planning :

Planning is not only the first function of management, it is an

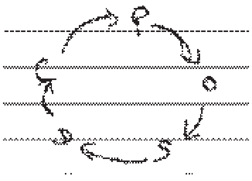

P- Planning
O- Organisng
S- Staffing
D- Directing C- Controlling

To plan is to look ahead and chart out the future course of operations. It is the determinant of a course of action to achieve a desired result. It is one of the corner stones upon which success- ful enterprise depends. Planning is meant for the following

1. For the analysis of a problem
2. Thinking out the forward solutions to that problem
3. outlining the steps that must be taken to reach the objectives.

A planner has to think about the following aspects.

a. What is to be done ?
b. How it is to be done ?
c. When it is to be done?
d. By W

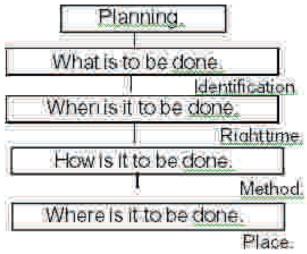

Figure 1. Stages in Planning

Principles Of Planning:

Principle of contribution to objectives : Both major and derivative plans are prepared to contribute to the objectives of the enterprise. Planning is used as a means to reach the goals.

(B) Principle of Primacy of Planning : This principle states that planning is first or primary function of every manager. Other managerial functions are organised to reach the objectives set in planning.

(C) Principle of Planning Premises : This principle lays emphasis on properly analysing the situation which is going to Practise in future. In order to make planning effective, some pre- sumptions have to be made on the basis of which planning has to be undertaken.

(D) Principle of Alternatives : Planning process involves developing of many alternatives and then selecting one which will als .

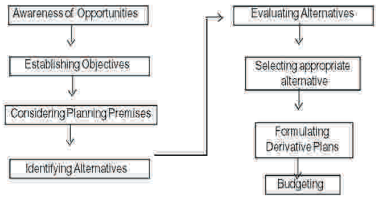

Figure 2: Steps in Planning

Steps In Planning Process:

i) Awareness of opportunities : while planning basically managers are needed to know the availability of opportunities to the organisation. Opportunities are available from environment. The new project can be had from changing needs of customers, technological changes, competitors weaknesses and innovative patterns of the organisation. Awareness of opportunities involves preliminary understanding and estimation of opportunities and analysing them in the light of strengths and weakness of the organisation for the purpose of assuming them. When the manag- ers are utilising the opportunities, they should be free from threats.

ii) Establishing Objectives : The second step in planning is to setup objectives for the enterprise as a whole, and for the departments and individuals. Objectives are to be set for the long run as well as for the short run. These are the end points for managerial course of action and they are the destination for all the activities. Objectives specify the expected results and show how the destination is to be achieved and where emphasis is to be placed.

Objectives of enterprise are to be translated into departmental objectives, and depart- mental objectives are to be converted into individual goals. Then only overall objectives for which the organisation is established can be achieved. Enterprise objectives give direction to major plans, in turn they are used to setup objectives for lower levels. Objectives appear in different forms, they are mission, overall objectives, divisional objectives, departmental objectives and indi- vidual objectives etc.

iii) Planning Premises : Once the objectives are determined the next step is establishing the planning premises. planning premises refer to the environmental conditions or surrounding cir- cumstances in which plans work. Plans will operate in future, hence it is appropriate to expect future conditions and should plan accordingly.

iv) Identifying the Alternatives : In order to achieve the objectives under expected conditions managers first must identify various alternative courses of action. For instance, to achieve the objectives of securing desired profits, necessary plant and machinery should be established in the organisation. The machinery can be of different types like - manual plant

semi automatic plant, complete automatic plant.

These are known as alternatives. While developing the alternatives, organisational frame work like constraint of capital, manpower and philosophies may be taken into account.

v) Evaluating the Alternatives : After identifying the alternatives, the following stage is to evalu- ate their advantages and disadvantages. Their evaluation should be done in the light of the enter- prise objectives.

vi)Selecting a Course of Action : Choice of a particular alternative is the next step after evolution. Evaluation explains the merits and demerits. Selection is the real point of decision mak- ing. At any time, it is confirmed that selection of two or more alternatives is better than choosing only one alternative. Hence managers should plan in such a manner to select right combination.

vii) Formulating Derivative Plans :The departmental plans are known as Derivative plans. For instance, in order to generate desired profits for the organisation, production department should have production plans regarding number and quality of units to be produced.

viii) Budgeting : A budget is forecasted statement of revenue and expenditure, it is a numberised plan. It allocates the various resources to the required activities keeping in view of objectives.The organisation and each department working in it can have their own budget. Hence, budgeting is the last stage of planning which puts the plan into action.

The planning sequence discussed above, is almost similar to all the managers but may differ according to the complexity and time duration of plans like some steps may be prolonged and some stages may be shortened. Future plans must be cost-effective. Thus, proper planning should be done keeping in view the circumstance, the need, the magnitude and the level of commitment.

Techniques Of Planning :

Planning will be useful only when it is effectively implemented. The following techniques makes the planning effective.

1. Consciousness for Planning : Planning will be effective only when there is a proper climate for it. The superiors should try to set objectives, review various goals and redraft them as is required for their effective implantation. The hurdles in the ways of planning should be removed. Every body should extend willing and co-operation for making the plans successful.

2. Initiative at top level: The initiative and support of top level management is essential for making the plans effective. The involvement of lower level management is also essential be- cause execution will be more at these levels.

3. Proper communication : Communication among different levels in the organisation is very essential. If plans are not properly understood by those who are to implement them then these may not achieve the desired results. Communication provides a channel for the exchange of information among various persons. Without a proper communication system planning is bound to fail.

4. Participation in planning : The method and extent of participation will depend upon the type of organisation participation of persons at different levels may help in proper implementation of plans.

5. Emphasis on planning : Both long term and short term plans should get proper emphasis. For effective implementation of planning both long- term and short-term plans should be given on equal weightage.

6. Timing : Since the planning process is complex of any major and derivative plans and since plans are necessarily related to one another, it is important that they fit together, not only in terms of content and action, but also in terms of timings.

Significance Of Planning :

1. Minimises uncertainity : Planning certainly minimises future uncertainties by basing its deci- sions on past experiences and present situations.

2. Better utilisation of resources : All the resources are first identified and then operations are planned. All resources are put to best possible uses.

3. Economy in operation : The operations selected being better among possible alternatives, there is an economy in operations.

4. Better co-ordination: Planning will lead to better co-ordination in the organisation which will ultimately lead to better results.

5. Encourage innovation : Planning helps innovative and creative thinking among managers be- cause they will think of many new things while planning.

6. Planning makes control possible : Control cannot be exercised without planning. With the help of planning the actual output can be compared the desired one, difference is acquired and reasons are located to get necessary action towards unfavaurable differences .

7. Planning helps motivation : The manager cannot only verify but can encourage workers to attain the targets. When tangible goals are insight it is easier to encourage the workers to reach those levels.

8. Planning ensures against failures and setbacks: Planning is based on estimates. It is an effort to visualise the future and attain goals through present action.

9. Management by exception possible : Planning fixes objectives of the organisation and all efforts should be made to achieve these objectives. Management should interfere in other as- pects only when things are not going well. Thus by the introduction of management by exception, managers are given more time for planning. The objectives rather than wasting their time in directing day-to-day work.

Limitations of Planning:

Despite of many advantages of planning there may be some obstacles and limitations in this process. The follow are some of the limitations of planning.

1.Lack of Reliable data: Planning is based on various facts and figures supplied to the planners, which are difficult to procure absence of accurate data will upset the plan.

2.Expensive: Planning is an expensive process. The gathering of information and testing of various courses of action, setting up the planning machinery, require huge amount of money. Small companies can not afford to prepare plans.

3.Time consuming exercise: As planning involves a number of steps, a lot of time has to be devoted to plan before actual operations start.

4.Lack of workers initiatives : Under planning exercise worker has to act only mechanically. It robs him of his interest in the work .

5.External factors may reduce utility : Besides internal factors, there are external factors to which adversely affect planning. These factors may be economic, social, political, technological or legal.

6.Psychological hurdle : Human psychology also to an extent, places some hurdles in the suc- cess of planning. There is a certain degree of conservatism in people which implies resistance to change.

7.Sudden emergencies : In case certain emergencies arise then the need of the hour is quick action and not advance planning. These situations may not be anticipated.

Conclusion:

Thus in the context of management, planning is the function of forecasting, framing of the objectives, policies, procedures, schedules, budgets etc,. It involves the consideration of all anticipated problems and a future course of action. Planning basically makes a choice from a number of alternative courses of action.

References:

1. Burge, R. (2008). Ready, set, change: How to reduce resistance to Six Sigma projects. *Industrial Engineer, 1*(1), 35-39.
2. Burke, W. W. (2008). *Organization change: Theory and practice.* London, Sage Press. *Academy of Management Journal, 11*(1), 67–82.
3. Robinson RB, Pearce JA, Voziks GS, Mescon TS (1984) The Relationship between stage of Development and small firm planning and performance. Journal of small

Business Management 22: 45-52.

4 . Davidsson P, Hoing B (2003) The role of social and human capital among nascent entrepreneurs. Journal of Business Venturing 8: 301-331.

5 . Abor J, Quartey P (2010) Issues in SMEs in Ghana and south Africa international Research. Journal of finance and Economics 39: 218-228.

6. Rue LW, Hara NA (1998) The relationship between planning and sophistication and performance in small Businesses. Journal of small Business Management 36: 24-32.

7. Abor J, Biekpe N (2006) Small Business financing initiatives in Ghana problems and perspectives in management 4: 69-77.

8 . Alvarez S, Busenitz LW (2001) The Entrepreneurship of resource based theory. Journal of Management 27: 755-775.

9 Bowman C, Swart J (2007) Whose Human Capital? The challenge of value capture when capital is embedded. Journal of Management studies 44: 488- 505.

Dr. Anita Rani
Assistant professor
Department of Commerce
Kanya Mahavidhyalaya Kharkhoda
E-mail : anitapanwar1986@gmail.com

94

Problems Faced By Milk Producers In Haryana: A Study of Sampla Block, Rohtak District (Haryana)

Dakshita, Dr. Pardeep Kumar Sharma

Abstract :

Milk co-operatives are an integral part of the milk marketing and dairy development programme in Haryana. To meet the India's rapidly increasing need for milk and its product, one of the world's largest rural development programme, the operation flood ever undertaken. Its main aim was to setting up of the modern dairy industry. Operation flood helped dairy farmers to direct their own development, placing control of the resources they create in their own hands. A national milk grid links milk producers throughout India with consumers in over 800 towns and cities, reducing seasonal and regional price variations while ensuring that the producer gets fair market prices. Milk producers are involved in joint action to pull their product and market them in an organized way & its greatest strength lies in collective action. The present study provides the analysis of problems and difficulties faced by the respondents in the study area.

KEYWORDS:

Milk Co-operatives, Milk Producers, Productivity, Problems.

INTRODUCTION:

Milk has been identified as an integral part of the food throughout the world for centuries. Milk is essential for our life, it has good nutritive value and also rich in fat. Milk contains significant amounts of saturated fat, protein and calcium as well as vitamin C. For its properties, milk is an important food for pregnant women, growing children, adolescent, adults and patient alike. In many parts of the world humans continue to consume milk beyond infancy.

Milk co-operatives are an integral part of the milk marketing and dairy development programme in India. One of the world largest rural development programme, popularly known as 'Operation Flood' launched by the government of India in collaboration with the world food programme of the United Nations in July, 1970. Operation flood aims at the setting up of the modern dairy to meet the India's rapidly increasing need for milk & milk product. Operation flood helped dairy farmers to direct their own development and placing control of the resources they create in their own hands. A national milk grid was set up to links milk producers throughout India with consumers in over 800 towns and cities, reducing seasonal and regional price variations while ensuring that the producer gets fair market prices and in a transparent manner on a regular basis.

The base of operation flood has been village milk producers. They procure milk and provide inputs & services, marking modern management and technology available to members. The main objectives of the 'Operation flood' are- (a) Increase milk production (b) Augment rural incomes (c) Reasonable prices for consumers.

Through Operation flood a national milk grid has been created to linking milk producers throughout India with consumers in over 800 towns and cities, reducing seasonal and regional price variations by cutting out middlemen. By reducing malpractices, it has helped dairy farmers direct their own development, placing control of the resources they create in their own hands. The milk industry in India has spread over the entire country in the forms of small units in a very much disorganized form.

In recent years, the Indian dairy industry is on the way of many changes that would totally transform the dairy scene. Greater emphasis is to be needed in the areas of milk production, processing, marketing and research. In this task of development of dairy industry, co-operatives have been recognized as an effective institution to improve the milk production potential and thereby ameliorate the socio-economic life of millions.

Dairy farming has been growing rapidly in the state and national level. More than 93% of total villages of Haryana have the potential capacity to produce milk In Haryana, dairying including processing and selling of products, engaged thousands people, even then more persons are required to process the dairy activities like packaging, delivering of fluid milk and other milk related products due to the progress of dairy farming in milk production.

The agriculture is seasonal in nature, so that most of the agriculturists have to live idle in the off season. Due to the development of the dairy farming sector, the farmer can get work throughout the year along with ways of earning income.

The process of production and marketing of milk and milk products has been helpful to provide the employment to the disguised unemployment of agriculture

sector and other weaker sections. Therefore, dairy farming has been become the supplementary source of earnings to the poor, weaker section, small and medium farmers.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY:

In the seven decades after independence, the milk co-operative movement has shown a remarkable growth. It has attained commanding heights in dispensation of credit, production & distribution of inputs, milk processing and urban banking. The milk co-operative movement has been recognized as an indispensable instrument of planned economic growth. By combining initiative, mutual benefit and social purpose, co-operative has emerged as a vehicle for implementing the economic programmers of the planning period. In the last few decades, it has been a practice by government to entrust the implementation of important social and economic development programmers to the co-operatives.

The milk co-operative movement in Haryana has made good progress and its activities have been considerably diversified. There is no village or town in India without a co-operative presence. The profile of the Haryana milk cooperative is spectacular. They have managed to attain a good financial as well as infrastructural base. They are the most recognized providers of inputs to the milk producing community throughout the state.

LITERATURE REVIEW:

Diansheng Dong (2007), in his work, Modelling Milk Purchasing Behavior with a Panel Data Double-Hurdle Model, explained that the double-hurdle model typically used in cross-sectional data extends to panel data structures. In this model, a flexible error structure is assumed to account for state dependence and household-specific heterogeneity.

Aden I.M. et al. (2008), in their study observed that the major constraints identified by the farmers irrespective of their categories, include lack of quality fodder, land holding, animal purchase, lack of animal health cover, animal feeding, guidelines and training and credit facilities. Animals' productivity can be enhanced only through better feeding management strategies along with the better health cover.

Artukoglu M.M. Oplgun A. (2008), in their article on Co-operative tendencies and alternative milk marketing channel of dairy producers in Turkey A case of Menemen, determines the milk marketing structure in Menemenizmir in West Turkey conclude that 70% of the producers are the shareholders of the co-operatives.

Ellis, K. A. (2009), in his study, Public Opinion on UK Milk Marketing and Dairy Cow Welfare, found that fifty percent of respondents gave UK dairy animal welfare a positive rating.

Biradar et al. (2009), has pointed out the constraints related to financial, human resources, policies and administrative aspects that hamper the effective functioning of dairy co-operatives.

Sekar Murugan. (2012), in his work, A Study on the Marketing Practices of the Kovilpatti Co-Operative Milk Supply Society Ltd., review the structure and functions of the Co-operative milk supply society, to find out the existing marketing practices and to identify the problems which it has to face in the marketing of milk, to analyze the cost structure involved in the price of milk, to assess the functioning of the society from the consumer's point of view, to offer suitable solutions to overcome the problems identified.

Rathod et al. (2012), in his work on Gokul Dairy Co-operatives in Western Maharashtra pointed out that sample respondents acquired knowledge and skills in improved dairy management practices from the dairy co-operative staff. Different improved practices included heat detection, health care and disease management, selection of breeds.

RESEARCH METHODOLOGY:

The present study is descriptive and analytical study and is based on both primary data and secondary data. The researcher collected the primary data by using pre-determined and well structured interview schedule. The primary sources of data were interview schedule by meeting all respondents individually. The secondary data was collected from department of economics and statistics, government of Haryana and milk co-operatives societies all over the Haryana in general and Sampla block of Rohtak district in particular.

Total 872 respondents were surveyed in the study area.

DATA ANALYSIS:

(i) COMMON LAND USING:

Regarding the land use pattern, 95.3 per cent of the respondents have not used the common land in their area and 04.7 per cent of the respondents have used the common land. It is observed that the common land size decreases due to the government free land distribution scheme in Haryana state. So, the respondents faced the problems and difficulties of common land for grazing.

(ii) DOCTORS ATTENDED THE RESPONDENTS PLACE:

Regarding the veterinary doctors' treatment given to the animals on time, 78.3 per cent of the respondents have expressed that the doctors have come and gave treatment to the animal on time and 21.7 per cent of the respondents revealed that the doctors did not give treatment for the animals in emergency situations. From this analysis, it is concluded that some respondents faced doctor's treatment problem with time.

(iii) **Distance Between Respondent's House And Veterinary Dispensary:**

Regarding the distance between the respondent's house and veterinary dispensary, 17.7 percent of the respondents have the distance between the respondents place and veterinary dispensary as 5-6 kilometers, 67.0 percent of the respondents have the distance between the respondents place and veterinary dispensary as 3-4 kilometers, 15.3 percent of the respondents have the distance between the respondents place and dispensary as 1-2 kilometers which is lower. From this analysis the researcher observed that the veterinary dispensary is located in an around the respondent's house. There is no private hospital and dispensary in the study area.

(iv) Milk Price Expected By The Respondents:

It has been observed that, 30.7 per cent of the respondents expected the milk price to be Rs.58 per liter which is higher. 1.7 per cent of the respondents expected the milk price to be Rs.63 per liter which is lower. From this analysis, it is concluded that 85.3 per cent of the respondents expected the milk price from Rs.50 to Rs.60 per liter and 14.7 per cent of the respondents have expected the milk price from Rs.62 to Rs.65 per liter.

(v) **Problems, Difficulties And Constraints Faced By Respondents:**

It has been observed that 11.0 per cent of the respondents faced the credit (loan) problem and could not get from the bank, 26.0 per cent of the respondents faced the grazing land problems for their animals. The present study pointed out that.12.7 per cent of the respondents faced the fodder problem of green fodder, dry fodder and particularly paddy straw. 37.3 percent of the respondents have the marketing problem and 13.0 per cent have a storage problem due to lack of milk co-operative society and common storage facilities in this study area. The present study shows that there is a veterinary dispensary and hospital problem. It is found that there is no private hospital and dispensary in this study area.

(vi) Cattle Insurance Taken By The Respondents:

It has been observed that, 59.0 per cent of the respondents have not taken cattle insurance and 41.0 per cent of the respondents have taken cattle insurance for their cattle. From this analysis the researcher observes that the respondents have not given priority to take insurance for their cattle.

(vii) Problems Faced By Milk Producers:

It has been observed that the main problem faced by the respondents in the marketing of milk in society is the low procurement price with a mean score of 70.04 followed by non availability of loan facilities with a mean score of 66.89. High fodder cost and improper treatment (health care) of the milch animal are the third and fourth problems with a mean score of 66.42 and 62.01 respectively. Lack of Sufficient Veterinary Facilities with Non availability of labour and inadequate basic infrastructure facilities is the fifth and sixth problems with a mean score of 60.66 and 60.08 respectively. The seventh, eighth and ninth problems are the low production of milk, Lack of cross Breed animals and Delay in Payments, with a mean score of 60.06, 57.52 and 50.05 respectively. However, it is noteworthy to mention that the respondents' opined delay in payment is the last problem of marketing of milk. Therefore, it indicates that most of the respondents are satisfied with the timely payment of procurement price by the society.

CONCLUSION:

The present study indicates that the main problems faced by the respondents in the marketing of milk in society are the low procurement price, non availability of loan facilities and high fodder cost. In addition to these improper treatments of the milch animal, non availability of labour, inadequate basic infrastructure facilities, lack of cross breed animals and delay in payments are other problems faced by the respondents. The present study indicates that all the respondents are highly dissatisfied with the procurement price given by the society.

References:

1. Aden, I. M. (2008). Impact of Dairy Herd size on Milk production cost, marketing and farm income in peri-urban areas of Falsalabad, Pakistan. *Journal of Agricultural Science, No. 45, Vol. 2.*

2. Akaruese, L.A. (2002). Scientific culture: The solution to the developmental problems in Africa. *Philosophy and Social Action*. *28(2), pp. 91-96.*

3. Artukoglu, M. & Oplgun, M. (2008). Co-operative tendencies and alternative milk marketing channels of dairy producers to Turkey. *A Agriculture Economics Zech,* N o .

54, Vol. 1, pp. 65-69.

4. Banerjee, Animesh. (January-March, 1996). Indian Dairying: An Overview. *Productivity*. Vol.36. No.4, *pp. 525-532.*
5. Basu, P. & Chakraborty, J. (2008). Land, Labor and Rural Development - Analyzing Participation in India Village Dairy Co-operatives. *The Professional Geographer, No. 60, Vol. 3.*
6. Biradar, C. (2009). *Evaluation of Livestock Service Delivery by Different Agencies in Karnataka.* Unpublished Ph.D thesis of Indian Veterinary Research Institute, Izatnagar, India.
7. Chander, Mahesh. Kumar, Sanjay & Arya, H. P. S. (2009). An appraisal of Support to Training and Employment Programme for Women. *Indian Research Journal of Extension Education, No. 45, Vol. 1 & 2, pp. 79-83.*
8. Diansheng, Dong. (2007). *Modelling Milk Purchasing Behaviour with a Panel Data Double-Hurdle Model.* Unpublished Ph.D thesis, University of Agricultural Sciences, Dharwad.
9. Dwivedi, R.C. (1996). Role of Co-operatives in Rural Economy. *Indian Journal of Agricultural Economics, 51*(4), *pp. 712-727.*
10. Ellis, K. A. (2009). Public Opinion on UK Milk Marketing and Dairy Cow Welfare. *A Agriculture Economics Zech, No. 58, Vol. 3, pp. 18-23.*
11. Haryana Dairy Development Cooperatives Federation. (2021) *Introduction*. http://www.vitaindia.org.in /introduction
12. Haryana Dairy Development Cooperatives Federation. (2021). *Milk Union Rohtak*. http://www.vitaindia.org.in/ societies/rohtak
13. Haryana Dairy Development Cooperatives Federation. (2021). *Milk Unions*. http://www.vitaindia.org.in/ societies/milk-unions
14. Rathod, P., Nikam, T. R., Landge, S. P. & Hatey, A. (2012). Farmers Perception towards Livestock Extension Service: A Case Study. *Indian Research Journal of Extension Education, Special Issue, Vol. 2, pp. 1-5.*
15. Sekar, Murugan. (2012). A Study on the Marketing Practices of the Kovilpatti Co-Operative Milk Supply Society Ltd. *International Journal of Commerce and management, Vol. 3(5):63.*

Dakshita
dakshita26121971@gmail.com
09466233358, 09813352691
Research Scholar, Department of Geography, Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak
Dr. Pardeep Kumar Sharma
Associate Professor, Department of Geography, Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak

Renewable Energy In India: A Spatio And Temporal Variation

Dr. Vineet Bala

Abstract :

Renewable energy is a very vast term and has a broad meaning. This word holds a lot of importance in today's world to achieve various sustainable development goals like Sustainable development goal no. 7, 11, 13, 14 given by United Nation. In today's time the need for energy of whole world is lot of dependent on fossil fuels and non-renewable energy sources. The non- renewable energy sources are limited in nature and will get exhausted after a few times because these resources do not get replenished in a life time of our lives. The non- renewable source of energy takes a lot to time to form they are not quick like renewable energy sources. India is set to reduce its dependence on non renewable source of energy because India spends its lot of budget on completing its energy needs by buying petroleum and natural gas from other countries. There is not only a economic reason to reduce dependence on non-renewable energy but also to achieve India's goal of achieving Net Zero by 2070. The position of India is favorable for producing a lot renewable power, all type of renewable energy are available in India to use like access to coastal area, Mountains, and receiver of lot of sunlight. This paper focuses on the distribution of renewable energy and its distribution in India, it also discuss about the potential of Renewable energy in various parts of India. This paper is descriptive in nature. This study is based on Secondary Data "Energy Statistics India 2022" report by Ministry of Statistics and Programme implementation, Annual reports 2021-22 of Ministry of New and Renewable Energy, Annual Report 2021-22 by Ministry of Power and India brand equity Foundation August report, 2022.

Introduction:-

Natural Energy Resources are those resources which we drive or extract from the nature to fulfill human needs related to energy. There are mainly 2 types of natural resources:-

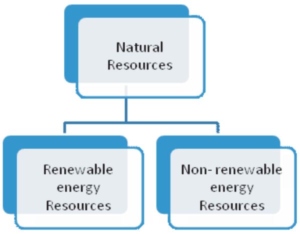

- Renewable energy resources are those energy resources of nature which replenished at higher rate than they are consumed by human. Renewable energy resources are Sunlight, Water, Wind etc.
- Non- renewable energy sources are energy sources which cannot replenished in our life time. These rate to replenishing is very low than renewable source of energy.

Renewable energy is very broad in meaning there are a lot of different energy resources available for humans to use like water, sunlight, wind and waste produce to produce bio gas for use. Whole world is shifting to renewable energy sources to achieve net zero and sustainable development goals related to environment. Renewable source of energy is also a more dependable source of energy than non-renewable source of energy, it also a long lasting source of energy. Using of coal, petroleum, and natural gases impacting not only the environment but also increasing the global surface temperature and contributing in global warming. India also announced 5 ambitions at Glasgow, U.K

1. To increase non-fossil energy capacity to reach 500GW by 2030.
2. By 2030 India will meet its 50% capacity of its energy requirements.
3. India will reduce its projected carbon emissions by 1 billion tones to 2030.
4. By 2070, India will achieve the target of net zero by 2070.
5. India will reduce carbon intensity of its economy to less than 45% by 2030.

Objective:-

This paper is descriptive in nature and focuses on the spatial variation of renewable energy in India. Its aim is to study the distribution and potential of renewable energy in India.

Keyword:-

Renewable Energy.

Study Area:-

Study area of this paper is India. India is the 7th largest country according to land and 2nd largest country according to population. The position of India made it a tropical country, the tropic of cancer passes through the mid of India. It lies in the Northern Hemisphere. J & K is the northernmost point at 37° 6'N and southernmost point, i.e. the Indira Point (Great Nicobar) at 8°4'N latitude, Western to Easternmost

point is from Sarasota 68º7' E to 97º 25' E longitude.

Source of Data:-

Data which is collected and used in this paper is based on secondary data sources. The data are collected from the official reports of Ministry of Power, Ministry of New and Renewable Energy annual reports and India brand equity Foundation August, 2022 reports. Energy Statistics India 2022 by Ministry of Statistics and Programme Implementation

Process:-

India has a potential of renewable energy in different forms like Hydro energy, Solar energy, Wind energy, Bio mass energy. India has total installed renewable energy capacity by 31^{st} December, 2021 is 104.88 GW with 56.31 GW under implementation and 26.82 tender issued. The distribution of different renewable energy is different in each state of India. The coastal state has capacity to produce more wind energy than any other state in India likewise the capacity to produce Hydro energy is more in Hilly region than region of India.

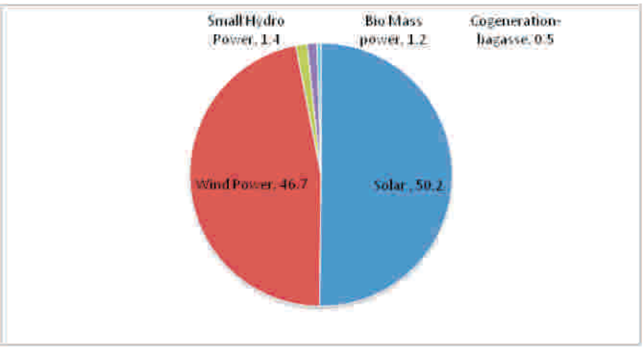

*In cogeneration bagasse waste to energy is also added.

The estimation of the potential of various renewable energies is different in India. The capacity of Solar energy is the maximum among all of them with (50.2%) solar power of 7,48,990MW, followed by wind energy with (46.7%) of 6,95,509MW, and small hydro power with (1.42%) of 21,134MW, biomass power with (1.18%) of 17,538MW, 5,000MW (0.34%) from bagasse- based cogeneration in sugar mills and 2,556MW (0.17%) from waste of energy.

State wise distribution of Potential Renewable Energy

The contributions of different renewable energy sources are differ from each other. The distribution of the potential of renewable energy as on 31-03-2021 shows us that Rajasthan has the highest potential of about 18.2% followed by Gujarat (12.1%), Maharashtra (11.2%), Karnataka (10.3%) , Andhra Pradesh (7.7), Jammu & Kashmir (7.6). If we see we found that top 4 states has more than 50% of the potential of renewable energy.

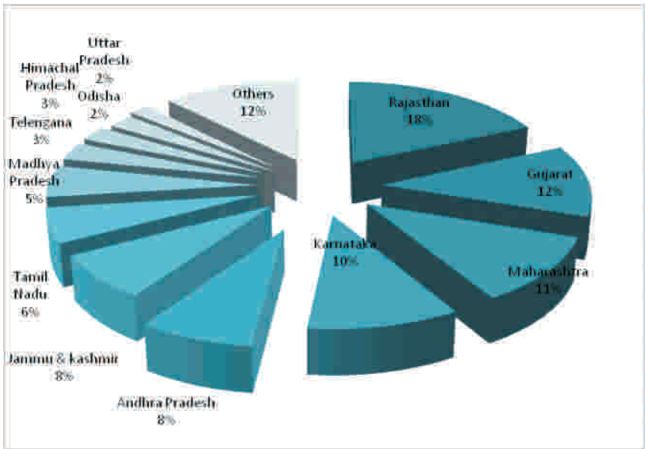

State wise estimated Potential of Renewable energy in India 31.03.2021.

Sector-wise distribution of Installed Grid-Interactive Renewable Energy Capacity 2020-21

Renewable energy showing a growth in India, Installed capacity in 2020 was 87,078MW which is increased to 94,434MW in 2021, showing growth of 8.45%. Installed capacity of grid is highest in Karnataka with 15,462.80MW in 2021 then Tamil Nadu at second place with 15,225.35MW with fewer gaps. These states showing highest capacity mainly because of the availability of wind and solar power. Tamil Nadu and Karnataka are close to tropic of cancer and these states are costal states too which give these states opportunity of producing renewable energy.

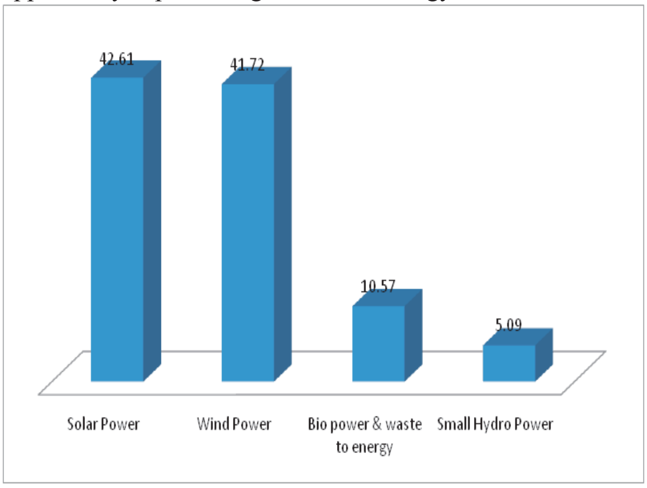

Hydro energy:-

Hydro energy remains a main source of the India's Power sector for a long. Hydro energy produced by using power of moving water to generate electricity. Now other form of energy has been introduced in India and their share in renewable energy is also increasing. India has set its target to

achieve 500GW by 2030. Installed Renewable energy has been increased from 76.37GW in March 2014 to 159.95GW in May 2022, increase of 109.4%. Hydro power added in the last years from 2014 to 2022 in India. This includes projects from central sector, state sector and private sector.

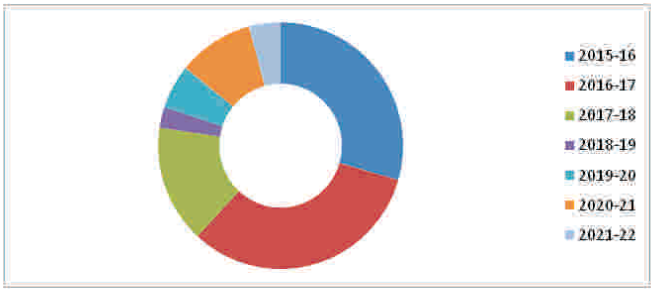

Year wise addition of hydro power in India.

Hydro energy is beneficial and also contributing a lot to the renewable energy sector of India, it also fulfilling the energy needs in the present time. But there are some demerits of this production of energy. To produce hydro energy Dam needs to build on the river. To build Dams a lot area required and there are a lot of places where dams cannot be built because of the sensitive nature zone. Any kind of construction in that is harmful not only for nature but also create problem in future for ourselves. If any dam build in sensitive nature zone that dam will always be in danger. To build dam many villages in that area needed to be shifted, there is a lot of destruction to nature and livelihood of the people.

Solar energy:-

Solar energy is emerging as a new source of renewable energy source in India. As the tropic of cancer passes through the mid of the India, because of the India receive a great amount of sun rays which makes India a suitable place to produce Solar energy. Solar energy produced by converting sunlight through photovoltaic panels or through mirrors that concentrate solar radiation.

To produce solar energy a lot of area is needed to plant the solar panels. A great area of land is needed and that area and cannot be used for other purposes. So it is also a limited in nature. Solar energy is also not available at all the time of the year in some zones of India. In northern zone specially, during summer season northern zone receives enough sun rays to produce solar energy but in winter season and rainy season it becomes difficult to fulfill the energy requirements as the amount of sun rays received in winter is less than the rays received in winter season. To store solar energy lithium battery is required, and lithium is limited in nature, this also

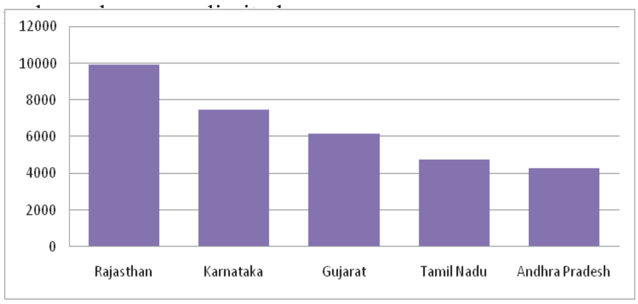

Top 5 States in Solar Installation Capacity in MW as on 31.12.2021

Wind energy:-

Wind energy produced at places where the wind flow is more than the wind flow rate. The coastal states of India are more favorable for producing wind energy. Major producing wind energy states are Tamil Nadu (9846MW), Gujarat (9007MW), Karnataka (5077MW), Maharashtra (5012MW), Rajasthan (4326MW) and Andhra Pradesh (4096MW). Government is also now focusing on producing wind energy to achieve the target of renewable source of energy.

Wind energy is also a great contribution to the renewable energy sector of India but it also has its limitations. For wind energy production there are not many favorable places to produce it. It also creates threat to wildlife. Building wind turbines is also costly. Where wind turbines are built it produce a lot noise and create noise pollution. Wind energy is unpredictable. It is difficult to predict how much energy can be produce in a given time.

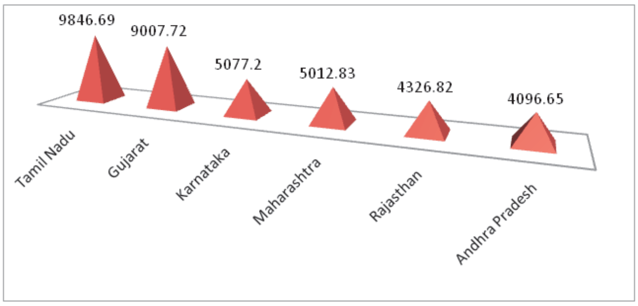

State-wise Wind Power Installed as on 31.12.2021.

The wind energy contribution in Renewable energy contribution yearly is 33768MW in year 2014-15, 33029MW in year 2015-16, 46004MW in year 2016-17, 52666MW in year 2017-18, 62036MW in year 2018-19, 64639MW in year 2019-20, 60149MW in year 2020-21,

58127MW in year 2021-22 (upto December, 2021).

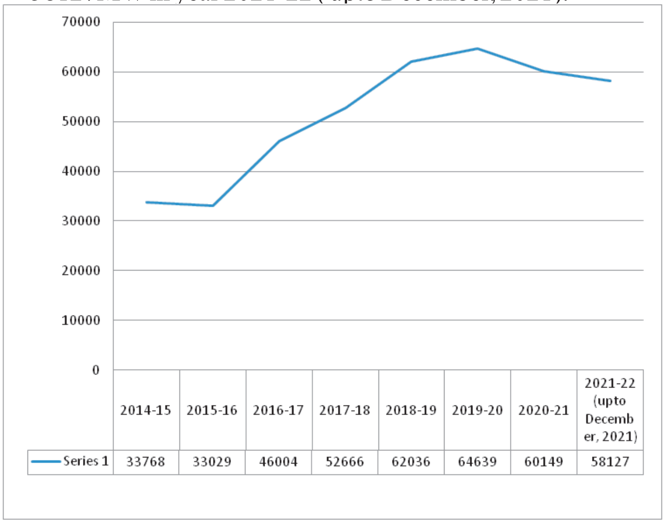

Year wise Electricity Generation from Wind Energy sources.

Finding and Conclusion:-

Renewable Energy sector is important for India because it contribute in India's energy sector and India's goal related to climate to achieve. India's position for producing renewable energy sources is favorable. All type of renewable energy can be produced in India and India is exploring all these different energy sources to produce so that India can reduce its dependence from fossil fuel energy. By reducing this dependence on this non-renewable energy sector not only beneficial economically but also for achieving country's international commitment of climate. From this paper we can conclude that India has a potential of producing 14,90,727MW. Rajasthan state of India has the highest potential to produce renewable energy. We also find that Solar energy has highest contribution in renewable energy sector followed wind energy, small hydro power, Biomass. The different region of India has capacity to produce different renewable energy. The northern region of India has a capacity to produce Hydro power, solar energy, the western region of India has a capacity to produce solar and wind energy, the southern region of India has capacity to produce solar, wind and hydro energy. The eastern and central region of India has capacity to produce hydro energy and solar energy. Renewable energy is the future of not only India but the whole world. The whole world is shifting from non-renewable energy of sources to renewable energy sources to fulfill the needs of energy. There are some limitations of renewable energy sources because they can be produce at certain places. Like area near equator receives a lot of sun rays all the time of the year, European countries are favorable to produce wind energy. India took initiative and made International Solar alliance, it is a group of countries which had capacity to produce solar energy and under this countries are focusing on using stored energy at the time of the year when solar energy is not produced enough. Countries can build a one world one grid, where countries produce the energy which is mostly produce there and store it. And then share that energy with each other.

Dr. Vineet Bala
Associate Professor in Geography,
Vaish College,
Rohtak

96

Self-concept of students who work along with formal education at senior secondary level in rural and urban areas of Sonipat

Miss Sonia Dahiya

Abstract

The present paper tried to compare the self-concept of rural and urban students who work for living along with regular schooling in government senior secondary schools of Sonipat, Haryana through Self-concept Rating Checklist developed by Dr. Pratibha Deo which contains 90 adjectives describing a person's self-concept.The result of the study indicates that students who work along with regular schooling from urbanarea have a better self-concept as compared to the students fromrural area. When the various dimensions of self-concept were analyzed, it was found that the students from urban area had better intellectual and social dimensions while in other dimensions no statistically significant differences were found.

Key Words: Self-concept, Students who work for living, Rural students, Urban students.

Through educationindividuals and society can improve personalendowments, build capacity levels, overcome barriers, and expand opportunities for a sustainedimprovement in their well-being and thereby improving their standard of living.But getting easy access to education is a difficult task for poor and needy,especially in the state of Haryana. The students who study in government schools generally belong to poor families and it is impossible for them to get regular education without their own efforts towards it. It was generally observed by one of the researchers that there are many students who do some work to get financial support for their family and education. At higher secondary level, the students from poor family background toil hard to do some work for their living along with regular schooling. The self-concept of such students' needs to be studied in order to know their individual perceptions of their behavior, abilities, and unique characteristics. It is essentially a mental image of who they are as a person. Therefore, self-concept is how one perceive once behavior, abilities, and unique characteristics. Forexample, beliefs such as "I am a good friend" or "I am a kind person" are part of an overall self-concept of an individual. Self-concept tends to be more malleable when the person is younger and still going through the process of self-discovery and identity formation. The students from rural area seem to have different self-concept as compared to students from urban area. In order to study the impact of location on students' self-concept, this study was initiated. The students who work for living in rural and urban area along with regular education have any significant difference in their self-concept, need to be studied. That's why investigators explored to compare self-concept of such groups in the present study.

Review of Related Literature

Reck (1980)in study titled "Self-concept, school, and social setting: a comparison of rural Appalachian and urban non-appalachian sixth graders" found that rural Appalachian children possess a significantly more negative self-concept, particularly in school-related and intellectual activities, than urban children.

Pugh(1990)compared the self-concept of 112 gifted urban and 99 gifted rural students in grades 9-12, as reported by students themselves and as perceived by their teachers and found thatteachers of gifted urban students perceived a higher learner self-concept than did teachers of gifted rural students; and urban gifted students reported a higher self-concept than did their rural counterparts.

Young (1998) in the study titled "Ambition, Self-Concept, and Achievement: A Structural Equation Model for Comparing Rural and Urban Students" found that there were no significant differences between rural and urban students in the paths for student aspirations, student self-concept, and student achievement.

Zhang and Li (2010)studied home location differences in university students' self-concept and found differences in the self-criticism dimension of self-concept where urban students scored higher than the rural students and the other dimensions hadn't had any significant differences.

Dramanu and Balarabe (2013)investigated the relationship between academic self-concept and academic performance of Junior High School students and found significant difference between theacademic self-concept of students inurban and rural Junior High Schoolswith students in urban schools recording higher scores.

Singh (2017)in the study "comparison of self-concept between rural & urban school going adolescent" found significant difference in the self-concept of

adolescents of urban and rural area.

Chaurasia and Singh (2019) compared self-concept of professional course students and found that self-concept of urban students is significantly better than that of ruralstudents.

Bindu et al. (2020)conducted a comparative study which aimed at assessing the influence of school's location on self-concept among middle school students, i.e. to see if the location of school (rural or urban) will influence the development of self-concept among middle school students and found that there was a significant difference in self-concept domains and the school's location. The study further reported that the rural children had more self-concept compared to urban children.

Thakur and Grewal (2020) studied the Self-Concept among adolescents and found insignificant difference between mean scores of self-concept of rural and urban adolescent students.

Objectives of the Study

1. To compare the self-concept of rural and urbanstudents who work along with regular schooling at senior secondary level.
2. To compare the dimensions of self-concept of urban and rural students who work along with regular schooling atsenior secondary level.

Hypotheses of the Study

1.There exists no significant difference in self-concept of rural and urban students who work along with regular schooling at senior secondary level.

2.There exists no significant difference in dimensions of self-concept of rural and urban students who work along with regular schooling at senior secondary level.

Delimitation of the Study

1.The study was delimited to 20government secondary schools of Sonipat, Haryana.

2.The study was delimited to 12th grade only.

3.The study was delimited to 400 students only.

Methodology

Descriptive Survey Method was used.

Sample

In the present study 20government senior secondary schools were selected randomly from Sonipat,Haryana. Out of 20 schools, ten were from rural area and ten from urban area. From each school twenty students were selected. Therefore, the total sample included 400 students, out of which 200 students were from rural area and 200 from urban area.

Tools Used

In the present study the researchers used Self-concept Rating Checklist developed by Dr. Pratibha Deo which contains 90 adjectives describing a person's self-concept. It is **based on self-reporting technique which is available as check test and as well as rating scale.**

Collection of Data

First of all, the researchers visited the selected government senior secondary schools of Sonipat, India and took permission from the principal to administer the tool. The main task before administering sample was to identify students who work for living along with regular schooling. Therefore, a question was asked to students whether they work for living or not. Then the students who responded positively were grouped together and then they were administered the tool. While administering the tool to selected students, a good rapport was made and how to fill the rating scale were explained to students.

Scoring Procedure

There were 90 adjectives describing a person's self-concept in the rating scale. The scoring for positive adjectives (4= Very much like this, 3= Much like this, 2= Uncertain, 1= Not like this, 0= Not all like this) and for negative adjectives were scored as vice versa.

Statistical Techniques Used

Mean, S.D., independent samples t-test were used.

Results and Discussions

Results of the study are discussed through the table given below:

Table

Difference in the mean scores of Self-concept of Rural and Urban students who work along with regular schooling senior secondarylevel

Sr. No.	Dimensions of Self-Concept	Student Groups	No.	Mean	S.D.	t-ratio	Table Value	Result
1.	**Intellectual**	Rural	200	14.50	5.60	5.88	1.97(at 0.05 level)	**Significant**
		Urban	200	18.10	6.60			
2.	**Social**	Rural	200	23.50	5.60	5.02	1.97(at 0.05 level)	**Significant**
		Urban	200	26.60	6.70			
3.	**Character**	Rural	200	45.50	10.10	1.04	1.97(at 0.05 level)	Not significant
		Urban	200	46.10	12.70			
4.	**Emotional**	Rural	200	9.65	2.60	1.50	1.97(at 0.05 level)	Not significant
		Urban	200	10.05	3.40			
5.	**Aesthetic**	Rural	200	18.10	4.90	0.74	1.97(at 0.05 level)	Not significant
		Urban	200	18.50	5.80			
6.	**Composite score of Self-Concept**	Rural	200	98.20	18.40	4.60	1.97(at 0.05 level)	**Significant**
		Urban	200	106.40	16.80			

An independent samples t-test was used to test the null hypothesis. The Table shows that mean score of rural students in composite score of Self-Concept is 98.20 with S.D. 18.40 whereas mean

score of urban students is 106.40 with S.D. 16.80. The t-ratio is calculated as 4.60 which is significant at 0.05 level. The null hypothesis is therefore not accepted. This indicates that there exists significantdifference in Self-Concept of Rural and Urban students who work for living along with regular schooling. It reflects that location has an impact on self-concept of students who work for living along with regular schoolings. Moreover, significant differences exist in Intellectual and Social dimensions only which indicate that the students from urban area have better intellectual and social aspect of self-concept as compared to students of rural area. Further, in other dimensions of self-concept no statistically significant differences were found.

Moreover, the present findings are consistent with the findings of Reck (1980), Pugh (1990), Young (1998), Zhang and Li (2010), Dramanu and Balarabe (2013), Singh (2017), Chaurasia and Singh (2019), Bindu et al. (2020) whichindicate thatlocation has an impact on self-concept. However, the present finding is inconsistent with the findings of Thakur and Grewal (2020) which indicates that location has no impact on self-concept.

Educational Implication

The findings of the study indicate that self-concept of students who work for living along with formal education in rural and urban area have significant difference in their self-concept. As positive self-concept of students is very important to be successful in every walk of live, therefore, it is important for policy makers, educational administrators and school districts officials to look at how self-concept of students could be improved. This issue must be considered seriously in every school.

References

Bindu, S., Lakhotia, C., & Pandey, P. (2020). Self-concept among urban and rural middle school children. *International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI),* 1(1,Se.1), 31-33. Retrieved from http://www.ijhssi.org/papers/vol9(1)/Series-1/G0901013133.pdf

Chaurasia, S.,&Singh, R. (2019). Self-concept of rural and urban professional course students. *International Journal Applied Social Sciences,6*(1),91-95.

Dramanu, B., Y., &Balarabe, M. (2013) Relationship between academic self-concept and academic performance of Junior High School students in Ghana. European Scientific Journal,9(34), 93-104. Retrieved from file:///C:/Users/drpoo/Downloads/2162-Article%20Text-6323-1-10-20131230%20(1).pdf

Pugh, A.F.(1990). A comparison of self-report and perceived self-concepts between rural and urban gifted students (ED335824). ERIC. https://eric.ed.gov/?id=ED335824

Reck, U. M. L. (1980). Self-concept, school, and social setting: a comparison of rural Appalachian and urban non-Appalachian sixth graders. *The Journal of Educational Research,74*(1), 49-54. Retrieved from https://www.jstor.org/stable/27539798

Singh, S. (2017). Comparison of self-concept between rural & urban school going adolescent. International Journal of Research. Retrieved from https://internationaljournalofresearch.com/2017/

01/24/comparison-of-self-concept-between-rural-urban-school-going-adolescent/
Thakur, S., & Grewal, K., K (2020). A study of self-concept among adolescent. Internal Research Journal on Advanced Science Hub,2(12S),68-72. Retrieved from https://www.rspsciencehub.com/pdf_6644_1105835931aac57840fcb87421f7b9f9.html
Young, J.D. (1998). Ambition, Self-Concept, and Achievement: A Structural Equation Model for Comparing Rural and Urban Students.*JournalofResearch in Rural Education, Spring,14*(1),34-44. Retrieved from https://jrre.psu.edu/sites/default/files/2019-08/14-1_4.pdf
Zhang, X., & Li, C. (2010). The study of university students' self-concept. International Educational Studies,3(1), 83-86. Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1066085.pdf

Miss Sonia Dahiya
Assistant Professor, Mange Ram Women's College of Education, Sonipat, Haryana
Email id-skm097842@gmail.com

97

A Study of Discrimination in the works of Mulk Raj Anand and Toni Morrison

Amardeep Singh, Dr. J. K. Sharma

Abstract :

The works of Morrison are grounded on the author's own experiences and insights. She has brought attention to the challenges and concerns faced by black Americans via the books she has written. Morrison discusses the biases and racism that African American women have to endure, as well as their battle based on racial prejudice. She also exposes the very long line of struggle that black people have had against the exploiting tendencies of white people. Morrison offers a fresh perspective on the history of the United States and its people's efforts to reinvent themselves within their own surroundings. As a consequence of the Hindu caste system being institutionalized in Indian culture for reasons both political and religious, members of the Dalit community have been subjected to prejudice that has persisted across many generations, many different fronts, and in many different forms. This practice of casteism has left a strong imprint of social separation and inequality, and it has caused significant harm to the identity of this group. In his short but intense novel Untouchable, Mulk Raj Anand, one of the pioneers in addressing this issue, provides a glimpse of what it entailed to be a Dalit or untouchable in pre-independent India. In the novel, he narrates episodes of verbal and physical violence and recurrent inter- and intra-caste discrimination, thus depicting the traumatic existence of this oppressed community. Anand was one of the pioneers in addressing this issue because

Keywords: Discrimination, Suffering, Exploitation, Trilogy, Sympathy

INTRODUCTION

Some people use the term "race to refer to a grouping of ethnic groups that have similar physical traits and are descended from populations that formerly lived in geographically close proximity to one another. There is a possibility of either racial discrimination (or ethnic enmity, ethnic conflict, and ethnic violence) or ethnic discrimination (or ethnic enmity, ethnic conflict, and ethnic violence) between groups that regard themselves to be of the same race. The discrimination that occurs on the basis of caste is quite similar. Because caste is something that is handed down from generation to generation, people who belong to the same caste are often confused with those who belong to the same race or ethnic group.

People in societies that use caste systems are categorised into social groups (castes) according to the birth, fixed, and inherited privileges that were allotted to them at birth. Never let fear prevent you from standing up for yourself. Caste Those at the top of the caste system have the fewest responsibilities but the most fundamental rights, whereas those at the bottom of the caste system have the most responsibilities but no fundamental rights. This unequal and hierarchical distribution of fundamental rights occurs within separate castes. In the event that there are any departures from the norm, the system is kept in place by the rigorous use of social exclusion (a system of social and economic punishments). The caste system is built on the foundation of inequality.

Her very first book, The Bluest Eye, is about a black girl who tries to assimilate herself to white culture. Pecola, a young black girl, has the desire to have blue eyes because she associates beauty with being loved. She thinks that if she is able to achieve her goal of having blue eyes, the unkindness that she has experienced in her life would be replaced with kindness and respect. Pecola's mother is a housekeeper for a white family, and she shows all of her love and attention to the children of her employer, but she abuses her own daughter because she thinks she is ugly. Pecola is the daughter of Pecola. Pecola is subjected to the most severe kind of violence and treachery at the hands of Cholly, her own father, when she is raped by him. However, regrettably, his sensitivity and protectiveness turn into desire and wrath, which he fires towards Pecola and all others like her who bore witness to her failure. He does this because Pecola is a witness to her own failure. As a result, Pecola retaliates against all of the signals and acts of mistreatment by keeping quiet. However, this causes her to lose her mind since she starts to believe that her lifelong ambition of having blue eyes has been realised. As a result, the storey conveys the black community's outrage against racism, which serves as the principal factor contributing to the subjugation of Africans.

In the 1930s, Mulk Raj Anand began publishing his writings that spoke against the class and caste structures that existed in our nation. Born on the 12th of December 1905 in

Peshawar, which was the capital city of India's North West Frontier Province before to the partition of the nation, he was known as the Grand Old Man of Indo-Anglican fiction. When the nation was in need of moral assistance and support to remove untouchability and superstition, Mulk Raj Anand transformed himself into an advocate for the subalterns. In 1935, he published his first book, titled Untouchable, and he rose to the challenge. It was praised as a minor masterpiece, and he was able to cement his reputation as an everlasting champion against the morally reprehensible system of untouchability. Bakha, the protagonist of the book Untouchable, was brought to life by Mulk Raj Anand, whose performance sent shockwaves through the consciousness of the audience. According to Naik, "It is immensely notable that Untouchable, Anand's very first book, is a victorious expression of his humanitarianism." To choose an untouchable as the story's protagonist in the year 1935 was, in a way, a groundbreaking act in Indian literature in general. The actual champion of the underdogs was Mulk Raj Anand. [Citation needed] He was the first person in the literary group to become aware of the oppression suffered by subalterns in the society. The unfairness and inequality that are pervasive throughout society are validated by Mulk Raj Anand's writings in his books. The most important thing that Mulk Raj Anand brought to the field of Indian literature was his realism, which helped pave the road for social transformation. The caste system that is practised in our nation is shown in graphic detail in the film Untouchable.

The social ill of untouchability has shattered the togetherness that once existed among the people of India, despite the country's well-known history and cultural wealth. All of Mulk Raj Anand's works were conceived with very specific goals in mind by the author. His mission was to right the wrongs done by the society as a whole. He was aware of the fact that the upper class was exploiting the ignorant people in the guise of caste and religion. This was something that he was mindful of. His compassion was always directed toward the people who were at a disadvantage, and he did everything he could to improve their level of life. The book Untouchable provides a realistic description of the deplorable conditions that afflicted the downtrodden members of the society. Nearly all of his heroes are helpless when it comes to fighting against the social order because they are outmatched by the evil organisations that exist inside society.

what is Discrimination

The practise of treating persons or groups unfairly or unfavourably on the basis of traits such as race, gender, age, or sexual orientation is an example of discrimination. "That sums up the response well. To explain why anything like this occurs, however, is a more difficult task. In order for the human brain to make sense of the universe, objects are automatically organised into categories. Young children immediately pick up on the gender differences between themselves and their peers, for example. However, the importance that we put on certain categories is something that we acquire via education, whether it is from our parents, our classmates, or the things that we see about how the world functions. Frequently, fear and misunderstanding are the root causes of prejudice.

There are interpretations of discrimination that are neutral, have good meanings, and have negative implications. On the one hand, the term may be used to refer to the act (or ability) of differentiating as well as excellent taste, refinement. These interpretations, which are frequently strengthened by modifying phrases (such as in a good or a lovely discrimination), emphasise an individual's capacity to recognise distinctions as a measure of exceptional intellect. On the other hand, when the perception of difference is marked by invidious distinction or hostility, the word (which is often followed by against) takes on very negative overtones. This is true in the senses of act of discriminating categorically rather than individually (discrimination against women, age discrimination), as well as a prejudiced outlook or course of action (racial discrimination). The first, unfavourable connotation of discriminating, which refers to the act of differentiating, did not enter the English language until the early 17th century. In the 18th century, the favourable connotation, which is connected with exceptional judgement, came into use. Since the early 19th century, or close to two centuries ago, people have been practising discrimination in the sense of prejudice.

Types of Discrimination

- Age Discrimination
- Disability Discrimination
- Sexual Orientation
- Status as a Parent
- Religious Discrimination
- National Origin
- Pregnancy
- Sexual Harassment
- Race, Color, and Sex
- Reprisal / Retaliation

Discrimination in the novels of Toni Morrison

The power of black people's voice and speech, which has been stifled for a long time, may be restored via the reading and writing of literature, which also holds the promise of reversing trends and recreating femininity. In the years after the end of the Civil War in the United States, women faced double discrimination, first for the fact that they were female and then for the fact that they were black. The writer of black literature is influenced by a complex mix of social and cultural circumstances, and these forces define their perspective towards life and language. Morrison is making an effort to bring to light both the explicit nature of the black struggle and the extensive history of black resistance against the exploitative tendencies of white people. Morrison offers a fresh perspective on the history of the United States and its people's efforts to reinvent themselves within their own surroundings.

Toni Morrison was the first woman of African descent to be awarded the Noble Prize in Literature. She was one of just eight women overall and the first black woman to achieve this accomplishment. Her writing has been recognised with awards from the National Book Critics Circle and the Pulitzer Prize. She has been awarded the Condorcet Medal, the National Humanities Medal, the Coretta Scott King Award, and the Enoch Pratt Free Library Lifetime Literary Achievement Award. All of these honours were given to her. In 1993, she was presented with the Noble Prize in Literature that had been granted to her.

Toni's ancestors were enslaved people, and she herself was subjected to racial prejudice throughout her life. Morrison gives an account of black people and their lives in the United States via the medium of her fiction. The works of Morrison have a strong connection to the history of black culture. People of African descent in the United States have historically been denied basic civil rights and treated as second-class citizens. Morrison conveys the anguish of being black, the viewpoint of a black female writer on the experience of black women, and the uprising against the hegemonic standards of domesticity, subservience, nurturing, and sexuality". The oppression that black women in America face at the hands of America's patriarchal culture is shown by Morrison. Her fiction, which explores the challenges of maintaining a sense of black cultural identity while living in a predominantly white world, has been praised by the Swedish Academy for its epic power, unerring ear for dialogues, and richly expressive depiction of black America. In addition, her writing has been called unerringly expressive.

Novels written by Morrison and Virginia Woolf are considered to be technological innovations. Both Woolf and Morrison have had their sense of self-identity impacted by the gender and racial issues at hand. Woolf was a member of the first wave of the feminist movement, which pushed for gender equality and individual freedom. Morrison was a part of the second wave of feminism, which emerged following the civil rights movement of the 1960s and prioritised concerns of social class and racial inequality in their activism. In spite of the fact that Woolf and Tony come from different origins, they both share their experience via the work that they produce.

The work of Morrison sheds light on the harmful and frightening effects of racial prejudice, as well as the ways in which African Americans seek to build a new society by relying on their power, vision, and resolve. The experiences and observations that Morrison had throughout her own youth, as well as those that she had during her actual life when living in a more impoverished area of the African American community, served as the basis for her works. The theme of race is central to the plot of the book The Bluest Eye, which is premised on the idea that white people are morally superior and that black people were brought to America as slaves. The narrative focuses on blue eyes and blonde hair as a representation of beauty, and it does so throughout. The white standards of beauty were represented by women with blonde hair and blue eyes during the time. The book is in part based on Morrison's life; in it, she describes the helplessness of a girl who, as a result of racial prejudice, gradually acquires the white culture that is believed to be elite. Morrison writes about these events in the novel. The author compares and contrasts the feminity and beauty of black Americans and white Americans over the course of the book. Pecola's idea of what constitutes physical beauty was influenced by her culture. Pecola is nothing more than a victim of inhumane treatment, but she is held up as an example of ugliness. She is referred to by Geraldine as a horrible black bitch.

She has brought attention to the challenges and obstacles faced by African Americans in her writings. The book "Bluest Eye" discusses the way in which black Americans see beauty, how this perception may have a negative impact on the human psyche, and the biases and racism that Afro-American women must contend with in their daily lives. Morrison illustrates the devastation caused by racism and sexism through the experiences of her female characters.

"Pecola Breedlove was shunned not just by her parents but also by the culture that surrounded him. Her father abuses her sexually and ultimately causes her to get pregnant as a result of their relationship. Pecola rejects herself as a result of the biases that exist in the society, and in her quest to have the bluest eye, she even murders a doll to achieve her goal. The author, Toni Morrison, uses the characters to focus attention on the overarching topic of racism. She sheds light on the difficulties they face as a result of racial discrimination.

> Beside published in 1970, a decade after civil right movement, *The Bluest Eye* speakspowerfully of the gap that has developed between those who have profited educationally and economically from the movement and those who live in ghettos and whose lot the movement has done little to change. (Walker, Mellisa. 47)

In the current day, there are very few people of African descent in the United States who can be considered decent citizens. In the storey A Mercy, it is discussed how a person's racial background might affect their place in a community. It demonstrates how racism may act as a barrier to upward social mobility and how Afro-American authors have been striving for a long time to eliminate racial prejudice. Slave narratives have always been seen as political documents in order to combat injustice and build an identity as an African-American. This has been the case from the beginning of recorded history. Beloved and A Mercy, two of Morrison's novels, both depict brutal treatment of members of the human race. Because of her work, the political agenda has been taken more seriously, and she has engaged herself in identity politics to bring about social change. Beloved has had a significant impact on the development of the slave narrative. The book functions as an open debate between black and white citizens of the United States about slavery and freedom. This dialogue enlightens the reader about the reality of slavery, since every person deserves the right to freedom and the ability to provide for themselves. As Molly Abel Travis explains in her article Speaking from the Silences of the Slave Narrative: Beloved and Afro-American women History, in the slave narrative of his time period, the rape of the slave by a white man who had her in his power was a subject that was frequently alluded to but never brought up in direct conversation.

Discrimination in the novels of Mulk Raj Anand

Mulk Raj Anand is widely regarded as both the most productive and the most dedicated Indian author writing in English. He attended Punjab University for his undergraduate education before continuing his education and philosophical studies in England. He was granted a doctoral degree in Philosophy and has contributed several papers to the magazine Criterion as well as other publications. Tagore, Bankim Chandra, Sharat Chandra, Munshi Premchand, Mahatma Gandhi, and Mohammad Iqbal, as well as western authors Gorky, Tolstoy, James Joyce, Chekhov, Flaubert, and Virginia Woolf, were significant influences on him. In addition to the work of Sarojini Naidu and Puran Singh, the writings of Harindra Nath Chattopadhyaya were an important inspiration for him. On the Origin of Species, which Darwin published in 1859, had a significant impact on him. He was an avid reader of continental literature, which included works by Marx, Mazzini, and Proudhon, amongst others. According to a piece that was written by Professor K. R. Srinivasa Iyengar, As a writer... Anand has been as successful virtually as Dickens himself.

M.R. Anand is a renowned Indo-English author who has garnered fame all over the world. Every single writer is also an artist, and the grandeur of a novelist is exactly proportionate to the creative quality of the work that they produce. The literary works of Anand have garnered praise from reviewers and critics not only in India but also in other countries for their high creative quality. He has exerted a lot of effort in order to comprehend the spirit of his homeland, which has been communicating with him via the Indian way of thinking and the Indian way of culture. It's a well-known fact that his books Untouchable and Coolie have been translated into 38 different languages throughout the globe. When compared to other Indo-Aryan authors, Anand stands out for his tenacity and unwavering dedication to his work.

In Indian English literature, Mulk Raj Anand is considered to be part of a great trio together with Raja Rao and R. K. Nayayan. These three distinguished writers have each shed light on a unique facet of Indian culture inside the pages of their books. Mulk Raj Anand was a novelist who wrote on societal issues and attempted to break down boundaries of caste and creed via his writing. His Untouchable is an effort to do away with the immoral practise of untouchability that is prevalent in Indian culture. The novel Coolie and the Two Leaves and a Bud centres on the themes of economic slavery as well as the colonial abuse of indigenous peoples.

M. R. Anand is an artist of the highest calibre on a global scale. The way in which his fiction addresses the existence of evil organisations is an essential component of his work. In each and every one of his books, he plays the role of a social commentator. The area of his work, which is society, is

something he has watched and witnessed. His publications conduct extensive research into the functioning of society. According to him, literature is an expression of society, and the vast majority of the concerns that he raises are social questions: questions of tradition and innovation or inflexible habits of exploitations and tyranny, and the struggle for existence with dignity.

M. R. Anand is highly regarded as a humanist as well. He is of the opinion that the majority of our issues were caused by man, and that man can also remedy these problems. He feels empathy and compassion for those who are disadvantaged and living in poverty. He has a high regard for other humans. Superstitions, prejudice, caste, class, capitalism, exploitation, overpopulation, tyranny, colonialism, fascism, atomic stockpiling, war, and genocide are his pet peeves. He despises all of these things. In his works, he sheds light on topics like as social hypocrisy and taboos, class exploitation and class struggle, social and economic inequality, and the horrible horrors committed during the former British administration.

In 1935, when the Gandhian movement for liberation was at its pinnacle, the author wrote his debut book, titled Untouchable. Gandhi's love and compassion for those who were considered untouchable had a significant impact on him. He compared the lives of those who were oppressed with those of those who perpetrated the oppression. The majority of people consider his early works to be examples of literature of resistance. The protagonist of Untouchable is a sweeper kid named Bakha, who is eighteen years old. He is the primary protagonist of the book and goes through the ordeal of being exploited and discriminated against. The people of the so-called higher castes would maintain their distance from the sweepers, even from their shadows, if they heard the drum being played by the sweepers as they approached the market. This was a tradition that required the sweepers to carry a drum with them at all times". One day, Bakha was feeling very joyful, so he went out and purchased some jalebis to eat. Unfortunately, when he tried to eat it, he was touched by a member of a higher caste, and that person verbally attacked him and caused him tremendous pain by calling him names like filthy dog and son of bitch, among other things. Untouchables were forbidden from entering temples and other religious buildings. There have been a number of incidences that have brought to light the pain that persons who are considered to be of higher caste have caused for untouchables.

Conclusion

As a consequence of the Hindu caste system being enforced in India for both religious and political reasons, the Dalit population has been subjected to prejudice, which has led to their oppression. The novel Untouchable by Mulk Raj Anand provides a look into what it meant to be a Dalit or an untouchable in India before the country gained its independence. Her first book, The Bluest Eye, depicts black life in the United States. In the 1930s, Mulk Raj Anand began publishing his writings that spoke against the class and caste structures that existed in our nation. He was considered to be the Great Grandfather of Indo-English fiction. His interpretation of Bakha, who plays a pivotal role in the book Untouchable, sent shockwaves through the consciousness of the general public. He was aware of the fact that the upper class was taking advantage of the ignorant people, yet he did nothing to stop it. His compassion was always directed toward the people who were at a disadvantage, and he did everything he could to improve their level of life. Toni Morrison was the first woman of African descent to be awarded the Noble Prize in Literature. Her writing has been recognised with awards from the National Book Critics Circle and the Pulitzer Prize. She has been honoured with the Enoch Pratt Lifetime Literary Achievement Award, the Condorcet Medal, the National Humanities Medal, and the Coretta Scott King Award. Toni Morrison, the American author, was a participant in the second wave of feminism, which battled for concerns relating to class and racism. Morrison illustrates the devastation caused by racism and sexism through the experiences of her female characters. The Bluest Eye is a book that discusses the aesthetic standards held by black Americans and the detrimental effects that these standards have on the human mind. Long-standing efforts are being made by Afro-American authors to eliminate racial prejudice. The tales of enslaved people have traditionally been seen as political documents in the effort to combat injustice. Mulk Raj Anand is widely regarded as both the most productive and the most dedicated Indian author writing in English. He was an avid reader of continental literature, and among of the authors he studied were Marx, Mazzini, Proudhon, Chekhov, and Woolf. When compared to other Indo-Aryan writers, Mulk Raj Anand stands out for his tenacity and unwavering dedication to his work. His Untouchable is an effort to do away with the immoral

practise of untouchability that is prevalent in Indian culture.

References

1. Mellisa Walker. Down From the Mountaintop:Black women's novels in thewake of the civil right movement 1966-1989 (London:university of Yale Press, 1991) 47-60.

2. https://www.researchgate.net/publication/305807292_The_Outburst_of_Racial_Discrimination_in_the_novels_of_Toni_Morrison

3. Anand, Mulk Raj. *Untouchable*. 1935. New Delhi: Arnold-Heinemann, 1984.

4. --. *Coolie*. New Delhi: Penguin, 1936.

5. ---. *Two Leaves and a Bud*. London: Lawrence &Wishart, 1937. Berry, Margarate. *Mulk Raj Anand: The Man and The Novelist*. Amsterdom: Oriental Press, 1971.

6. Molly Abel Travis, Speaking From the Silence of the Slave Narrative" , 1992. Texas Review 13. P.73

7. American Feminism in Tony Morrison's Sula. 123 Help Me.com. 16 May 2011.

8. Alex Haley, Roots (London:Picador, 1977) 396-7.

9. Fulton, Lara Mary (1997)An unblinking gaze:Readerly response ability and racial reconstructions in Toni Morrison's *The Bluest Eyes* and *Beloved.* (MA Thesis) Wilfred Laurier University

Amardeep Singh

Research Scholar

Dr. J. K. Sharma

Professor

Department of English,

BABA MASTNATH

UNIVERSITY, ASTHAL

BOHAR ROHTAK

98

Users Satisfaction with Library Information Service

Jai shree Sr. Librarian

Abstract:- Users satisfaction with library information services is to determine the level of users . In this random technique the instrument used for satisfaction of users in library i.e. lending service of library, to provide information service etc to provide international journals of uptodate.

Keywords:- information services, user satisfaction.

Introduction:- Library is the heart of an institution and fountain head of knowledge. In ainstitution the library store home 7 books contains a lot of Contains and Latest information services for the library users according to their needs. These information's satisfy the users. Library user's satisfaction implies how user feels after using the information's services. The level of the library depends on user's satisfaction with the information services.

User's satisfaction user's derive from the Library by using various types of information services .To fulfil user's information needs. When the user's are satisfied from library information service. They not only come back but speak well of the library others users.

Purpose of the study:- The purpose of the study is user's satisfaction with library services.

1. To provide user's satisfaction with Library information.
2. To provide user's satisfaction with library service.

Review of literature: User's need is satisfied by library. Library staff. Providing necessary information to the users according to their needs .They provide essential service up to data. It could be said that users of a library are satisfied with their necessary information services. A long with some user are dissatisfied of library services i.e. Library orientation, internet services, inter library lone services, Photocopying services, information resources, electronic library etc. Users are satisfied with opening hours of library. The lightning system of library and numbers of computers, inter library loan services. Must of dissatisfied users show that inter library loan because the information resources are not sufficient for their users.

The same users are satisfied with lending services, current awareness, inter library loan, library orientation photocopying ect. Same users satisfy with News papers, Books, journals, complete relevant journals and opening hours of library.

Methodology: - Thus this study is designs that all the library users are of satisfied for library services and information's. satisfaction of the users are depend upon library staff and their **services. So, the staff provide latest information & library services up to date to the users of library.**

Conclusion: - it is very interesting to say that library users are satisfied with current awareness services of the library. There is very useful service of libraries to the library users.

References

Ajibero, M.I.(2004).Donor support and sustainability: the experience of university libraries. In proceeding of SCAULWA 2003 conference, Erata Hotel, Accra, Ghana, p.11.

Edem, U.S. &Edem, N.B. (2002). Organization and utilization of reference resources in the University of *Calabar Library. African journal of Education and information Management,* 4(1), 95-101.

Ezeala , L.0.&Yusuff, E.O. (2011). User satisfaction with library resources and services in Nigerian agricultural research institutes. *Library Philosophy and Practice.*

lgben, M. J. (1993). Students' use of selected services in the polytechnic Ibadan Library. Nigeria *Library Information Science Review* ,2 (1 & 2), 6-17.

Ijiekhuamhen, 0.P., Aghojare, B. & Ferdinand O.A. (2015). Assess users' satisfaction on academic Library performance: a study. *International Journal of Academic Research and Refliction.* 3(5), 66-77.

Aiken, I. J. &Adegbilero- Iwari, I. (2014). Utilization and user satisfaction of public library services in south-west, Nigeria in the 21t[h] century: a survay. *International Journal of library Science,3* (1), 1-6.

Ikolo, V.E. (2015). User satisfaction with library services: a case study of Delta State University Library. *International Journal of Information and Communication Technology Education.* 11(2), 80-89.

lwhiwhu, B.E &Okorodudu, P.O. (2012). Public information resources, facilitied and services: User satisfaction with Edo State Central library, Benin City, Nigeria. *Library Philosophy and Practice.*

Motiang, I.P., Wallis, M &Karodia, A. M. (2014). An evaluation of user satisfaction with library esrvices at the University of Limpopo, Medunsaa Campus (Medical University of Southern Afarica). *Arabian Journal of Business and Management Review,* 3(11), 41-58.

Ntui, A.I. &Utuk, S.G. (2008). *Information resources and services in libraries.* In Lawal 0. Nkereuwem E. &Edem, M, Calabar: Glad Tidings press Ltd.

Odimegu- Ike, F.o. (2014). *Fundamentals of research in social science,* Lagos. Jola's Publishers.

Ogbuiyi, S.U., &Okpe, I.J. (2013). Evaluution of library

materials usage and services in private universities in *Nigeria. Kuwait Chapter of Arabian Journal of Business and Managment Review,* 2 (8), 33-41

Olaulokun, S.O. &Salisu, K. (1985). Library use pattern: the University of Lagos main Library. Lagos *Librarian,* 16 (1), 9-12.

Oyelekan, G.0, &lyortsuun, J.A. (2011). An evaluative study of reader services in University of Agriculture library Markurdi. *An international Journal of Information and Communication Technology* (ICT), 8 (2), 129-137

Saika, M.&Gohain, A. (2013). Use and user's satisfaction on library resource and services in TezpurUniversity (India); a study. Library Philosophy and Practice.

Zeitham, V. &Bitmar, M.J. (2000). *Service. Marketing: Integrating customer focus across the firm.* McGrawhill.

Jai shree Sr. Librarian
Govt. College Badli
Distt Jhajjar(Haryana)

99

Behaviour of P and SV Waves under the Effect of Magnetic and thermal Parameters at an interface between two viscoelastic solid half-spaces

Dr. Lakhbir Singh

Abstract :

In context of two linear generalized theory of L-S and G-L, a two dimensional problem of reflection and refraction of generalized magneto-thermo-viscoelastic waves at an interface between two different semi-infinite solids is studied in this paper. The amplitude ratios for different reflected and refracted waves have been calculated for P and SV wave incidence. The effects of viscosity, magnetic field and thermal field on reflection and refraction coefficients are studied. Numerical values of complex absolute amplitude ratios have been computed and plotted against the angles of incidence for L-S theory. The results are also compared with those without magnetic, thermal and viscous effects, graphically.

Keywords: Generalized thermoelasticity, magneto-thermo-viscoelastic solid, reflection and refraction, amplitude ratios, thermal relaxation times.

1. Introduction

Knot [1] derived the general equations for the problems of reflection and refraction of elastic waves at plane boundary. Lord and Shulman [2] developed a theory of generalized thermoelasticity by including a flux rate term into the Fourier's law of heat conduction, which avoids the unrealistic phenomena of infinite speed of heat propagation in classical model given by Biot [3]. They obtained a hyperbolic heat transport equation which ensures the finite speed of thermal signals. Green and Lindsay [4] formulated the another theory of generalized thermoelasticity known as temperature rate dependent thermoelasticity with two relaxation times, which obeys classical Fourier's law of heat conduction and also admits a finite speed of heat propagation. Various problems characterizing these two theories have been investigated and reveal some interesting phenomena. A detailed study of thermoelastic plane waves was made by [5-15].

Great attention has been devoted to the study of magneto-thermoelastic coupled problems based on generalized thermoelastic theories and problems of magneto-thermoelastic waves [16-19]. Also, extensive literature on the development of the interaction of the electromagnetic field, thermal field, elastic field and viscosity using Lord-Shulman (L-S) or Green-Lindsay (G-L) model and the phenomena of reflection of elastic waves, are available in many works [20, 21]. The nature of the layers beneath the earth surface is not known completely. One has therefore to consider various appropriate models for the purpose of theoretical as well as numerical investigation.

2. Nomenclature

K	complex bulk modulus
M	complex shear modulus
ρ	density of perfectly conducting thermo-viscoelastic solid
v	thermal constant
η	fluid viscosity
Θ	temperature variable
θ_0	initial uniform temperature
u	displacement vector
ui	the component of displacement vector
t_{ij}	components of force stress tensor
ij	Maxwell stress tensor
e_{ij}	components of strain tensor
δ_{ij}	Kronecker delta
K*	coefficient of thermal conductivity
C*	specific heat at constant strain
t0,t1	relaxation times
φ, ψ	scalar, vector potentials
∇	del. operator
α_t	coefficient of linear expansion
k	wave number
c	apparent phase velocity on the surface
ω	angular frequency
μ_0	magnetic permeability
ν_0	Alfven velocity
ε	thermo coupling coefficient
c_0	velocity of light
xk	components of position vector (x1 = x, x2 = y, x3 = z)

$$u_{i,j}=\frac{\partial u_i}{\partial x_j},\quad \bar{K}^*=K^*/\rho,\quad \nu=3K\alpha_t,\quad \bar{\nu}=\nu/\rho,\quad \bar{\gamma}=\bar{\nu}[1+t_1(\frac{\partial}{\partial t})]$$

$$\psi=(-\psi)_y,\quad \Theta=\nabla\cdot\mathbf{u},\quad i=\sqrt{-1},\quad \mathbf{h}=curl(\mathbf{u}\times\mathbf{H}),\quad H=(\mathbf{H})_y$$

$$v_0=(H_0^2\mu_0/4\Pi\rho)^{1/2},\quad E=-(\mu_0/c_0)[\frac{\partial\mathbf{u}}{\partial t}\times\mathbf{H}]$$

A superposed dot denotes differentiation with respect to time and a comma followed by a subscript denotes partial differentiation with respect to corresponding co-ordinates .

3. Formulation and solution of the problem

We introduce rectangular Cartesian co-ordinates (x, y, z) and place the origin at the interface separating the two homogeneous perfectly conducting generalized thermo-viscoelastic solid half spaces as shown in Fig 1. We consider these two half spaces in welded contact along a plane interface $z = 0$. The positive z-axis is taken in medium M_1 (lower half space). Following Borcherdt [23], Lord and Shulman [2], Kalski [24] and Green and Lindsay [4], the constitutive and field equations of motion for a perfectly conducting generalized thermo-viscoelastic solid without body forces, body couples and heat sources and external force loading can be written as

$$t_{ij}=(K-\frac{2}{3}M\frac{\partial}{\partial t})\delta_{ij}\Theta+2M\frac{\partial}{\partial t}e_{ij}-\nu(\theta+t_1\dot{\theta})\delta_{ij},\tag{1}$$

$$\tau_{ij}=(\mu_0/4\Pi)[H_ih_j+H_jh_i-\delta_{ij}h\cdot H]\tag{2}$$

$$(K+\frac{2}{3}M)\nabla(\nabla\mathbf{u})-M\nabla\times(\nabla\times\mathbf{u})-\nu\nabla(\theta+t_1\dot{\theta})+(\mu_0/4\Pi)[\nabla\times\mathbf{h}]\times\mathbf{H}=\rho\ddot{\mathbf{u}},\tag{3}$$

$$\rho C^*(\dot{\theta}+t_0\ddot{\theta})+\nu\theta_0[\dot{u}_{i,i}+\Delta t_0\ddot{u}_{i,i}]=K^*\nabla^2\theta\ .\tag{4}$$

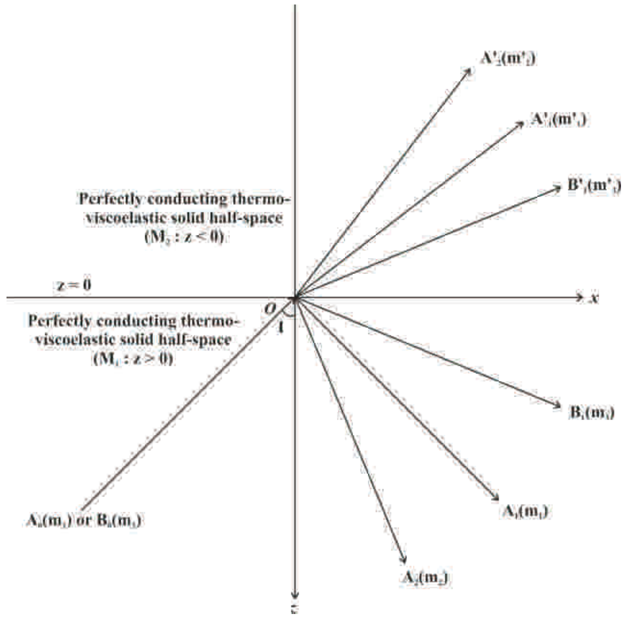

Fig. 1 The Complete geometry of the problem

The symbol Δ in the equation (4) makes these fundamental equations possible for the two different theories of the generalized thermoelectricity. As per the practical acceptability we assumed

$$\mathbf{u}=\nabla\varphi+\nabla\times\psi,\qquad \nabla\psi=0,$$

Using equation (5), equation (3) reduces to

$$\alpha^2\nabla^2\varphi=\ddot{\varphi}+\bar{\nu}(\theta+t_1\dot{\theta})$$

$$\beta^2\nabla^2\psi=\ddot{\psi},$$

where

$$\alpha^2=\left(K+\frac{4}{3}M\right)/\rho+v_0^2,\quad \beta^2=M/\rho,\quad \bar{\beta}=\beta/\rho,\quad \bar{\nu}=\nu/\rho$$

From equation (6) and equation (7), we see that the P-wave is affected due to the thermal wave and the SV-wave remains unaffected.

From equation (6), we have

$$\theta=(\alpha^2\nabla^2\varphi-\ddot{\varphi})/\bar{\gamma},\tag{9}$$

where

$$\bar{\gamma}=\bar{\nu}(1+t_1\frac{\partial}{\partial t}).$$

Eliminating θ from equations (4) and (9), we get

$$\nabla^4\varphi-[\frac{C^*}{\bar{K}^*}\{(1+t_0\frac{\partial}{\partial t})+\varepsilon(1+t_1\frac{\partial}{\partial t})(1+\Delta t_0\frac{\partial}{\partial t})\}+\frac{1}{\alpha^2}\frac{\partial}{\partial t}]\frac{\partial}{\partial t}\nabla^2\varphi+\frac{C^*}{\bar{K}^*}\frac{1}{\alpha^2}(1+t_0\frac{\partial}{\partial t})\frac{\partial^3\varphi}{\partial t^3}=0,\tag{10}$$

where

$$\varepsilon=\bar{\nu}^2\theta_0/\alpha^2C^*,\qquad \bar{K}^*=K^*/\rho.\tag{11}$$

We seek the solution of equation (10) in the form

$$\varphi=f(z)\exp\{ik(ct-x)\},$$

With the help of equation (12), equation (10) reduces to

$$\frac{d^4f(z)}{dz^4}+A\frac{d^2f(z)}{dz^2}+Bf(z)=0\tag{13}$$

where

$$A=k^2(\frac{c^2}{\alpha^2}-2)-kc(\frac{C^*}{\bar{K}^*})[(i-t_0kc)+\varepsilon(i-t_1kc)(1+ikct_0\Delta)]\tag{14}$$

$$B=k^4(1-\frac{c^2}{\alpha^2})+ck^3(\frac{C^*}{\bar{K}^*})[(i-t_0kc)+\varepsilon(i-t_1kc)(1+ikct_0\Delta)-\frac{c^2}{\alpha^2}(i-t_0kc)]\tag{15}$$

$c=V/\sin I$, where V is the velocity of an incident wave and I denotes an angle of incidence

The general solution of equation (13) may be written in the following form

$$f(z)=B_1\exp(m_1z)+B_2\exp(-m_1z)+B_3\exp(m_2z)+B_4\exp(-m_2z)\tag{16}$$

where

$$m_1=[-\{(A^2-4B)^{1/2}+A\}/2]^{1/2}\tag{17}$$

$$m_2=[\{(A^2-4B)^{\frac{1}{2}}-A\}/2]^{1/2}\tag{18}$$

correspond to P- wave and thermal wave respectively and B_1, B_2, B_3, B_4 are arbitrary constants.

Equation (7) can also be written as

$$\beta^2 \nabla^2 \psi = \ddot{\psi} \qquad where \qquad \psi = (-\vec{\psi})_y$$

We seek the solution of equation (19) in the form

$$\psi = g(z)\exp\{ik(ct - x)\}, \ (c > \beta)$$

From equations (19) & (20), we have

$$g(z) = B_5 \exp(m_3 z) + B_6 \exp(-m_3 z)$$

Where $m_3 = k(1 - \frac{c^2}{\beta^2})^{1/2}$

Which corresponds to transverse wave and B_5, B_6 are arbitrary constants

It is obvious that the P-wave is affected due to the presence of magnetic field, the viscosity and thermal field, while the SV wave is affected only due to the viscosity.

The displacement components of vector **u** in x-z plane are

$$u_1 = \frac{\partial\varphi}{\partial x} + \frac{\partial\psi}{\partial z} \qquad , \qquad u_3 = \frac{\partial\varphi}{\partial z} - \frac{\partial\psi}{\partial x}$$

The field variables and constants with primes in the following sections correspond to the upper half space M_2.'

4. Reflection and refraction

We consider the propagation of plane wave in x-z plane which makes an angle I with the normal to the boundary. For an incident longitudinal wave $c = m_1 / \sin I$ and for an incident transverse wave, $c = m_3 / \sin I$. For incidence of longitudinal wave and transverse wave, we get three reflected waves in lower half-space and three refracted waves in upper half-space. The complete geometry showing these reflected and refracted waves is shown in Fig.1. The appropriate potentials [after dropping the term exp {ik(ct-x)}] for lower and upper media are as follows:

For M_1:

$$\varphi = A_0 \exp(m_1 z) + A_1 \exp(-m_1 z) + A_2 \exp(-m_2 z) \qquad (24)$$

$$\theta = (\frac{1}{\bar{\gamma}_0})[b_1 A_0 \exp(m_1 z) + b_1 A_1 \exp(-m_1 z) + b_2 A_2 \exp(-m_2 z)] \qquad (25)$$

$$\psi = A_0 \exp(m_3 z) + A_3 \exp(-m_3 z) \qquad (26)$$

For M_2:

$$\varphi' = A_1' \exp(m_1' z) + A_2' \exp(m_2' z)$$

$$\theta' = (\frac{1}{\bar{\gamma}_0'})[b_1' A_1' \exp(m_1' z) + b_2' A_2' \exp(m_2' z)]$$

$$\psi' = A_3' \exp(m_3' z)$$

where, $A_i (i = 0,1,2,3)$ are arbitrary constants and

$$b_{1,2} = k^2(c^2 - \alpha^2) + m_{1,2}^2 \alpha^2$$

$$\bar{\gamma}_0 = \bar{\nu}(1 + i\omega t_1)$$

The expressions with primes similar to as given in equation (30) can be written for medium M_2

5. Boundary conditions

For two dimensional motion when the vector of initial magnetic field is parallel to the interface z=0 of two half spaces are the continuity of the normal force stress, tangential force stress, tangential displacement component , normal displacement component , normal heat flux component and temperature, i.e

$$t_{zz} + \tau_{zz} = t'_{zz} + \tau'_{zz} \qquad t_{zx} + \tau_{zx} = t'_{zx} + \tau'_{zx} \qquad t_{zz} + \tau_{zz} = t'_{zz} + \tau'_{zz}$$

$$u_1 = u_1' \quad u_3 = u_3' \quad \theta = \theta'$$

Making use of the potentials given by the equations (24) to (29) in boundary conditions (31), after using the equation (1), (2) and (23), we get a system of six non homogeneous equations as

$$\sum_{j=1}^{6} a_{ij} z_j = d_i (i = 1,2,3,4,5,6)$$

where

$$a_{11} = [\{(K + \frac{4}{3}M) + \rho\nu_0^2\}m_1^2 - \{(K - \frac{2}{3}M) + \rho\nu_0^2\}k^2 - \rho b_1]$$

$$a_{12} = [\{(K + \frac{4}{3}M) + \rho\nu_0^2\}m_2^2 - \{(K - \frac{2}{3}M) + \rho\nu_0^2\}k^2 - \rho b_2], \qquad a_{13} = -2M\, m_3 ik$$

$$a_{14} = -[\{(K' + \frac{4}{3}M') + \rho'\nu_0'^2\}m_1'^2 - \{(K' - \frac{2}{3}M') + \rho'\nu_0'^2\}k^2 - \rho' b_1']$$

$$a_{15} = -[\{(K' + \frac{4}{3}M') + \rho'\nu_0'^2\}m_2'^2 - \{(K' - \frac{2}{3}M') + \rho'\nu_0'^2\}k^2 - \rho' b_2'], \quad a_{16} = -2M'\, m_3' ik$$

$$a_{21} = \mathbf{2} m_1 ik, \quad a_{22} = 2m_2 ik, \quad a_{23} = (m_3^2 + k^2), \quad a_{24} = 2m_1' ik \frac{M'}{M}, \quad a_{25} = 2m_2' ik \frac{M'}{M},$$

$$a_{26} = -(m_3'^2 + k^2)\frac{M'}{M}, \quad a_{31} = 1, \quad a_{32} = \frac{m_2 b_2}{m_1 b_1}, \quad a_{33} = 0, \quad a_{34} = \frac{K'^* \bar{\gamma}_0 m_1' b_1'}{K^* \bar{\gamma}' m_1 b_1},$$

$$a_{35} = \frac{K'^* \bar{\gamma}_0 m_2' b_2'}{K^* \bar{\gamma}' m_1 b_1}, \quad a_{36} = 0, \quad a_{41} = -ik, \quad a_{42} = -ik, \quad a_{43} = -m_3,$$

$$a_{44} = ik, \quad a_{45} = ik, \quad a_{46} = -m_3', \quad a_{51} = m_1, \quad a_{52} = m_2,$$

$$a_{53} = -ik, \quad a_{54} = m_1', \quad a_{55} = m_2', \quad a_{56} = ik, \quad a_{61} = b_1,$$

$$a_{62} = b_2,$$

$$a_{63} = 0, \quad a_{64} = -\frac{b_1' \bar{\gamma}_0}{\bar{\gamma}_0'}, \quad a_{65} = -\frac{b_2' \bar{\gamma}_0}{\bar{\gamma}_0'}, \quad a_{66} = 0.$$

(a) For incident longitudinal wave

$$d_1 = -a_{11},\ d_2 = a_{21},\ d_3 = a_{31},\ d_4 = -a_{41},\ d_5 = a_{51},\quad d_6 = -a_{61} \qquad (33)$$

(b) For incident transverse wave

$$d_1 = -a_{13},\ d_2 = -a_{23},\ d_3 = 0,\ d_4 = -a_{43},\ d_5 = -a_{53},\quad d_6 = 0$$

$z_1 = \frac{A_1}{A_0},\quad z_2 = \frac{A_2}{A_0},\quad z_3 = \frac{A_3}{A_0}$ are the ratios of amplitudes of various reflected waves to the amplitude of incident wave.

$z_4 = \frac{A_1'}{A_0},\quad z_5 = \frac{A_2'}{A_0},\quad z_6 = \frac{A_3'}{A_0}$ are the ratios of amplitudes of various refracted waves to the amplitude of incident wave.

6. Particular cases

Case-I Neglecting magnetic effect

We obtain a set of six non-homogenous equations as obtained in equation (32) with Alfven velocity

$$\sum_{j=1}^{4} c_{ij} z_j = f_j,\quad (i=1,2,3,4) \qquad (35)$$

$$c_{11} = \{(\mathrm{K} + \frac{4}{3}M) + \rho v_0^2\}m_1^2 - \{(\mathrm{K} - \frac{2}{3}M) + \rho v_0^2\}k^2,\qquad c_{12} = -2M\, m_2 ik,$$

$$c_{13} = -[\{(\mathrm{K}' + \frac{4}{3}M') + \rho' v_0'^2\}m_1'^2 - \{(\mathrm{K}' - \frac{2}{3}M') + \rho' v_0'^2\}k^2],\qquad c_{14} = -2M'\, m_2' ik,$$

$$a_{21} = 2m_1 ik,\quad a_{22} = (m_2^2 + k^2),\quad a_{23} = 2m_1' ik\frac{M'}{M},\quad a_{24} = -(m_2'^2 + k^2)\frac{M'}{M},$$

$$a_{31} = -ik,\quad a_{32} = -m_2,\quad a_{33} = ik,\quad a_{34} = -m_2',$$

$$a_{41} = m_1,\quad a_{42} = -ik,\quad a_{43} = m_1',\quad a_{44} = ik.$$

where, m_1 given by equation (17) reduces to

$$m_1 = k\sqrt{(1 - \frac{c^2}{\alpha^2})}$$

(a) For incident longitudinal wave

$$f_1 = -c_{11},\quad f_2 = c_{21},\quad f_3 = -c_{31},\quad f_4 = c_{41}$$

(b) For incident transverse wave

$$f_1 = c_{12},\quad f_2 = -c_{22},\quad f_3 = c_{32},\quad f_4 = -c_{42}$$

7. Numerical results and discussion

We now consider a numerical example to explain the analytical procedure presented earlier for L-S theory only. The complex absolute values of amplitude ratios are computed for the angle of incidence varying from 0º to 90º. Numerical computations of these amplitude ratios are also made for the particular cases.

Following, Silva [27] the physical constants used for medium M_1 are

K= .019 dyne/cm^2, K^* = .048 cal/cm s C, C^*= .206 cal/gmC,

θ_0= 20 C, H= 9.76 x 10^5 oe, $\mu_?$= 1,

ρ= 2.6 gm/cm^3, $t_\circ$ .005 C

Following physical constants for medium M_2 are taken arbitrarily

K= .0028 dyne/cm^2, K^* = .045 cal/cm s C, C^*= .175 cal/gmC,

θ_0 = 18 C, H = 9.76 x 10^{5}oe, $\mu_?$ = 0.7.

ρ = 2.0 gm/cm^3, $t_\circ'$ = .002 C.

Nayfeh and Nasser [6] took $t_0 = 3\ K^*/\rho C^*\alpha^2$ The relaxation time t_1 is considered to be of same order as that of t_0. The thermal relaxation times with primes may be taken of same order as that of t_0. The system of equation (32) is solved for amplitude ratios by using a computer program of Gauss elimination method for different angles of incidence of the incident longitudinal wave and incident transverse wave. Using numerical values of the above material constants, numerical calculations of the absolute values of the reflection coefficients z_1, z_2 and z_3 and refraction coefficients z_4, z_5 and z_6 may be plotted versus these angles of incidence for the three models namely generalized magneto-thermo-viscoelastic solid (I), generalized thermo-viscoelastic solid (II) and magneto-viscoelastic solid (III).

8. Conclusions

Important phenomena are observed in all these theoretical as well as from numerical computations. It is clear that the presence of thermal and magnetic parameters on disturbances in the solid medium plays an important role in the phenomenon of reflection and refraction for the incident longitudinal and transverse waves. The final results also indicate that the problem of waves and vibration becomes more important in the field of seismology, when we study the problem with additional parameters (e.g. viscosity, thermal disturbances, magnetic effect, porosity, etc.) This problem introduces a more realistic model of earth's crust.

References

[1] C.G. KNOT, Reflection and refraction of elastic waves with seismological applications, *Philos. Mag.* **5** (1899) 64-97.

[2] H. LORD AND Y. SHULMAN, A generalized thermodynamical theory of thermoelasticity. *J. Mech. Phys. Solids*. **15** (1967) 299-309.
[3] M. BIOT, Thermoelasticity and irreversible thermo-dynamics. *J. Appl. Phys.* **27** (1956) 240-253.
[4] A. E. GREEN AND K.A LINDSAY, Thermoelasticity. *J. Elasticity.* **2**(1972) 1-7.
[5] H. DERESIEWICZ, Effect of boundaries on waves in a thermo-elastic solid: Reflection of plane waves from plane boundary. *J. Mech. Phys. Solids* **8**(1960)164-172.
[6] A. NAYFEH AND S.N. NASSER, Thermoelastic waves in solids with thermal relaxation. *Acta Mech.* **12(**1971) 53-69.
[7] A .N. SINHA AND S.B. SINHA, Reflection of thermoelastic waves at a solid half –space with thermal relaxation *.J. Phys .Earth* **22** (1974) 237-244.
[8] D.S. CHANDERASEKHARAIAH, Thermoelasticity with second sound *Appl. Mech. Rev.* **39** (1986) 355-376.
[9] S. B. SINHA AND K. A. ELSIBAI, Reflection of thermoelastic waves at a solid half –spaces with two relaxation times. *J Thermal Stresses* **19** (1996) 763-777.
[10] S. B. SINHA AND K. A. ELSIBAI, Reflection and refraction of thermoelastic waves at an interface of two semi-infinite media with two relaxation times. *J Thermal Stresses* **20** (1996)129-145.
[11] A.N. ABD-ALLA. AND A. A. S. AL-DAWY, The reflection phenomena of SV –wave in a generalized thermoelastic medium. *Int. J. Math. Sci*. **23(8)** (2000)529 - 546.
[12] J.N. SHARMA,V. KUMAR AND D. CHAND, Reflection of generalized thermoelastic waves from the boundary of half spaces. *J Thermal Stresses* **26** (2003) 925 - 942.
[13] B.SINGH, Reflection of P and SV waves from free surface of an elastic solid with generalized thermodiffusion. *J. Earth Syst. Sci.* **114** (2005) 159-168.
[14] B. SINGH, On plane waves in an isotropic linear thermoelastic solid with initial stresses. *J.App. Mech. Engg*.**11** (2006) 957-963.
[15] J. SINGH AND S.K TOMAR, The plane wave propagation in an infinite thermoelastic medium with void. *Mechanics of Materials* **39**(2007) 932-940.
[16] A. NAYFEH AND S. N. NASSER, Electromagneto-thermoelastic plane waves in solid with thermal relaxation. *J Appl. Mech, 39, Trans ASME*; **94**(1972) 108-113
[17] A. N. ABD-ALLA, Relaxation effects on reflection of generalized magneto-thermoelastic waves. *Mech Res Commun*. **27(5)** (2000) 591-600.
[18] H. TIANHU AND SHIRONG, A two-dimensional generalized electromagneto-thermoelastic problem for a half-space. *J Thermal Stresses* **29**(2006) 683-698.
[19] D.S. CHANDERASEKHARAIAH, On propagation of magneto-thermo-viscoelastic plane waves. *Ind. J. Pure Appl. Maths*. **3(6)** (1972) 1269-1277.
[20] Y. EROSY, Propagation of waves in magneto-thermo-viscoelastic solids subjected to a uniform magnetic field. *Int J Engng Sc* **19** (1981) 91-115.
[21] S.K. ROYCHOUDHURI AND S. BANERJEE, Magneto-thermoelastic interactions in an infinite viscoelastic cylinder of temperature rate dependent material subjected to a periodic loading. *Int J Engng Sc* **36** (1998) 635-643.
[22] B. SINGH, Reflection of thermo-viscoelastic waves from free surface in the presence of magnetic field. *Proc. Nat. Acad. Sci,* **72(A), II** (2002) 109-120.
[23] R.D. BORCHERDT, Energy and plane waves in linear viscoelastic medium *J. Geophys. Res*. **78**(1973) 2442-2453.
[24] S. KALISKI AND W. NOWACKI, *Int. Union Theo. Appl. Mech*., Brown university Providence(1963).
[25] W. SILVA, Body waves in layred inelastic solid, Bull. *Seism Soc. Am*. **66**(1976) 1539-1554.

Dr. Lakhbir Singh
Associate Professor,
Department of Mathematics,
Post Graduate Government College,
Hisar (Haryana), India.
Email: lsingh27@rediffmail.com
Mob.: 94161-07033

Role Of Micro Finance Institution In Funding Small And Medium Enterprises

Komal Saini

Abstract:
In the current political and monetary climate, occupations are at the focal point of political discussions in both created and creating economies. There are numerous assumptions that little endeavors can make new positions, albeit ongoing examinations propose that little ventures offer more to the work share in low-pay economies than in big time salary nations (Ayyagari, Demirgiiç-Kunt, and Maksimovic 2012). Worldwide advancement offices need to advance and fund little undertakings while the G-20 is likewise dedicated to further developing admittance to back for private ventures in non-industrial nations. Implanted in these endeavours is the suspicion that admittance to fund is a critical limitation to private venture development. In this Focus Note, we look at the experience and job of microfinance organizations (MFIs) in serving little endeavors. We beginning with an outline of little endeavors and their monetary necessities, recommending that they require something beyond credits. We then, at that point, break down the current and likely job of MFIs in serving this market. Add-on 2 gives an amalgamation of a writing audit on the commitment of independent ventures to work creation and monetary development.

Key Words : *SME, Microfinance Institutions, Challenges, problems etc.*

1. Introduction

For more than 30 years microfinance has been portrayed as a key policy and programme intervention for poverty reduction and 'bottom-up' local economic and social development. Microfinance (more accurately microcredit, but in practice the terms are interchangeable) is the provision of tiny loans to the poor to help them establish or expand an income-generating activity, and thereby escape from poverty.

The microfinance movement began with the work of Dr Muhammad Yunus in Bangladesh in the late 1970s, spreading rapidly to other developing countries. Most early microfinance institutions (MFIs), including Yunus's own iconic Grameen Bank, relied on funding from government and international donors, justified by MFI claims that they were reducing poverty, unemployment and deprivation.

In the 1980s, however, the expanding microfinance model operated in a transformed political and ideological environment. Market principles were in the ascendant, with growing emphasis on financial sustainability and the need to wean microfinance programmes off long-term donor support. It was felt that the poor should pay the full cost of any support received, rather than impose an additional tax burden on others.

This led to a push for MFIs to cover their own costs through greater commercialisation, private ownership and profit-driven incentives with market-based interest rates. It was thought that market forces and profits would ensure financial self-sustainability, generating a cost-free increase in the supply of microfinance to the poor.

To some extent this proved correct, with some MFIs making profits without subsidies. By the early 2000s, a number of developing countries – such as Bangladesh – had achieved the microfinance movement's 'holy grail': virtually every poor person had easy access to a microloan if they wanted one. Table 1 ranks the most microfinance-friendly countries in terms of microfinance penetration.

With so many of the poor now able to establish or expand simple income-generating projects, there were hopes that poor communities the world over would soon escape poverty on an unprecedented scale.

From small efforts of starting informal self-help groups (SHG) to access the much-needed savings and credit services in the early 1980s, the microfinance sector has grown significantly today. The fact that national bodies like Small Industries Development Bank of India (SIDBI) and National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) are devoting significant time, energy and financial resources on microfinance is an indication of the reckoning of the sector. The strength of the microfinance organizations (MFOs) in India is in the diversity of approaches and forms that have evolved over a period of time. While India has its home-grown model of SHGs, and mutually aided co- operative societies (MACS) there is significant learning from other microfinance experiments across the world, particularly Bangladesh, Indonesia, Thailand and Bolivia.

Microfinance penetration

Global ranking	Country	Borrower accounts/ population
1	Bangladesh	25%
	(Andhra Pradesh State, India)	17%*
2	Bosnia and Herzegovina	15%
3	Mongolia	15%
4	Cambodia	13%
5	Nicaragua	12%
6	Sri Lanka	10%
7	Montenegro	10%
8	Viet Nam	10%
9	Peru	10%
10	Armenia	9%
11	Bolivia	9%
12	Thailand	8%
13	India	7%
14	Paraguay	6%
15	El Salvador	6%

The fact that microfinance has grown in several forms, and has drawn lessons from several experiments, takes us back to basics. What does microfinance actually mean? It appears that what microfinance means is very well understood, but not clearly articulated. There are some definitions of microfinance offered in past literature. Robinson (2001) for instance says "microfinance refers to small-scale financial services – primarily credit and savings – provided to people who farm, fish or herd." However, she later admits that the definitions could be narrower and more focused, depending on the typology of lending. She however maintains that it would be good to keep the definition to "refer to all types of financial services provided to low-income households and enterprises."

In India, for instance, if a SHG gives a loan for kick-starting an economic activity, it is immediately seen as microfinance. But if a commercial bank does a similar loan on similar terms for the same person, as a part of its overall portfolio, this will not be immediately recognised as microfinance. This helps us to define microfinance in softer terms.

2.Objectives of the Study

To achieve these purposes the specific objectives of this study are to:

1.Identify the core business activities and auxiliary services rendered by microfinance institutions to small businesses

2.Examine the effects of the services on the growth of Small Businesses

3. Examine how effective the SBs utilise and manage MFI services for their business growth.

4.Identify the challenges faced by both MFIs and SBs in dealing with one another.

3. Conceptual Framework

The conceptual framework presents the key factors or variables and the presumed relationships among the variables of small businesses. To ease understanding of this research, it is important to be familiarized with the forecast/prospects of small businesses used.

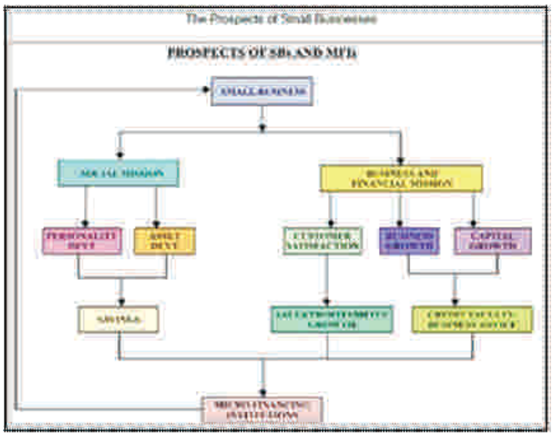

4.Literature Review

Small Businesses

Small Businesses (SBs) in this study refers to firms managed mainly by their owners, have relatively small capital base, limited by sales and assets value, have comparatively small market share, operates in locally and well specialized niches and is more independent from outside controls and pressure. The National Board for Small Scale Industries (NBSSI 2004) in Ghana classical definition which applies both the "fixed asset and number of employees" criteria in defining small businesses was used for this study. The NBSSI defines a small business as a firm with not more than nine workers, and has plant and machinery (excluding land, buildings and vehicles) not exceeding ten million Ghanaian cedes. However this study limited small business to firms with not more than nine workers, and has plant and machinery (excluding land, buildings and vehicles) not exceeding one million Ghanaian cedis to make it more centered on small businesses.

Microfinance institutions

Microfinance is a universal term that refers to the delivery of extensive variety of services including deposits, loans, payment services, money transfers and insurance to poor and

low-income households to grow their small enterprises to help develop the individuals (Khawari 2004). Microfinance institutions for the purpose of this study, was limited to semi-formal financial institutions which are set up by private individuals as a business entity to deal directly with the poor and SBs in their immediate environment to help promote individuals and economic growth through market-driven business creativities (Khavul 2010).

Effects analysis

The effects analysis dealt with the assessment of changes that small businesses clients had experienced in their businesses since they started benefiting from the credit schemes and other services of MFIs and to further examine the extent to which these changes in their businesses have affected other aspects of their social mission in life. Impact assessment is important in that it assists the microfinance institutions and SBs to remain true to their intended mission of work (Johnson & Rogaly 1997).

Needs of small businesses are diverse

Financial needs of small businesses are diverse and context specific. Thus, generalizing the results of the few market studies available is risky, but some patterns seem to be emerging regarding small business needs.

In the early stages of the business life cycle, small firms in developing countries often depend on informal sources of funding and have basic needs, such as managing cash flow through short- term loans and basic savings accounts. A FinScope pilot study in South Africa showed that most very small businesses need a short-term line of credit to weather brief (sometimes overnight) cash flow gaps (Bankable Frontier Associates 2009). The need for a savings buffer can be even more acute, because income is often irregular while business partners can be unreliable. As very small businesses grow, their needs extend beyond short-term lending and savings into other financial products, such as long-term debt, current accounts, transfers, and payments. For example, long-term debt finance is one of the most commonly cited needs of small enterprises (CGAP 2011, IFC 2010), but evidence from banks lending to small businesses suggests that long-term lending is often offered as a way to cross-sell other fee-based products and services, including payments and savings (de la Torre, Martínez Pería, and Schmukler 2010).

Small businesses also have many nonfinancial needs that are often unmet. For example, in the 2006–2009 World Bank enterprise survey, small enterprises in developing countries cited the lack of electricity as a bigger obstacle than lack of finance. Other key barriers include inappropriate regulations, taxes, and corruption.

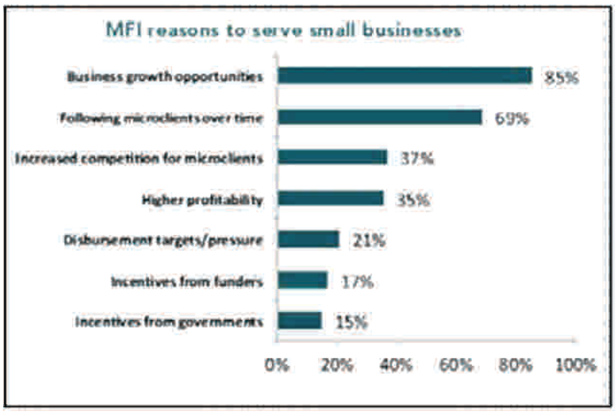

How Do MFIs Meet the Needs of Small Enterprises?

Many financial service providers serve small enterprises in developing countries, including commercial banks, cooperatives, MFIs, and others. These providers have different capacities and motivations, and target different specific sub segments within the small business landscape. Larger financial service providers, including commercial banks that want to serve small businesses, tend to focus on firms that are larger and formal. On the other hand, MFIs usually focus on enterprises that are smaller and often informal. Of the 300 MFIs surveyed, 78 percent reported that small enterprise is already part of their strategy, and almost 70 percent expect to increase their small business portfolio. Most MFIs are looking at small enterprise segments because they offer additional business growth opportunities. Another motivation is the MFIs' desire to continue serving a small number of growing micro clients (often their best clients).

By region, East Asia and Pacific (EAP), Latin America and the Caribbean (LAC), and sub-Saharan Africa (SSA) have the most MFIs whose small business portfolios are increasing (see Figure 3). By contrast, the small business portfolios of MFIs in Europe and Central Asia (ECA) and South Asia (SA) seem to be more stable (CGAP 2011). The extent to which the portfolio increase in MFI small business is due to attracting new clients, as opposed to accompanying current clients over time, needs further exploration.

MFIs' challenges in serving small business

Moving from the micro market into the small business market requires different staff capacities, management systems, and risk assessment tools.

Lack of appropriate risk assessment methodologies

Most of the surveyed MFIs report the lack of adequate risk assessment methods as the main challenge to serving small

businesses. Many institutions (51percent) do not have separate methodologies for micro and small enterprise risk assessment. Most of these institutions use their existing microfinance risk assessment tools for small business clients despite the fact that a different level of client analysis, including financial analysis, might be required. The lack of appropriate mechanisms to manage risks seems to have important implications for MFIs that are trying to expand to small business markets. Several MFIs noted that their portfolio at risk (PAR) greater than 30 days tends to be higher for small business than for microenterprises. Within the MFI spectrum, those MFIs that are set up as banks seem to be better equipped in terms of risk methodologies as compared to nongovernment organization (NGO) MFIs.

Recent research on banks that have a small business portfolio shows that those that are high performers in terms of returns on assets (ROA) conduct additional "validation" checks for small businesses with weak financial records. They underwrite on average seven times faster than low performers and allocate more time to monitoring the small business portfolio (Small Business Banking Network forthcoming).

- **Inadequate MFI products**
- **Lack of a specialized department and staff**
- **Weak portfolio management and data analysis**

Challenges Faced by Small Businesses in Dealing with Microfinance Institutions (MFIs)

The finding revealed that, most of the respondents were forced to save in order to secure loan to meet the needs of their businesses. Moreover, the result further shows that, the loan most respondents secured from MFIs was between GHC600.00 to GHC1,000.00 which was not adequate to meet the capital requirements of running of running small businesses in Ghana since the credit to be granted depended on the amount of savings. The low amount offered as credit also indicates that most MFIs are now operating the start-up and scale-up stages and had not reached the sustainable stage where adequate capital had been accumulated to offer higher amount as credit at low interest rate as well as provision of insurance packages to clients. The finding also shows that, most of the respondents pay their microfinance loans on daily and weekly basis at average interest rate of 50%-60% per the short period given which was too high to use such und to run a small business. Hence most respondents had been denied of microfinance loan because of delays or default in paying previous loans, The use of savings to determine loans to be granted to small businesses also threw challenge to SBs in ascertaining adequate capital to operate their businesses. Small savings base with no additional collateral security to pledge denies SBs from obtaining higher amount of loans. The respondents were not also allowed to withdraw their savings to support their working capital since it served as guarantee for the loan. However no significant interest was earned on such savings.

On respondents views on the challenges SBs faced in repayment of loans and their effect on the growth of their small businesses; Short duration for repayment in the form of daily or weekly instalment, high interest rate, demand of collateral for high amounts, and denial of auxiliary services were problems of loan repayment and have also affected the growth of their small businesses. It was again identified that some of the MFIs are now shifting their attention from supporting small businesses to granting loans to formally employed individuals with guaranteed monthly salaries instead of increasing the value of loans to the small businesses due to SBs frequent default in repayment. This is likely to affect SBs chances of securing loans from MFIs to support their businesses in the long run.

The study finally discovered that many of the microfinance institutions are now shifting their attention from doing business with small businesses to doing business with civil servants who earn monthly salaries since their ability to repay the credit on time is guaranteed to achieve the objective of being well by favouring others.

Serving Small Enterprises: What's next for MFIs?

The track record of MFIs serving small businesses is mixed, and providers should not add this new segment to their micro business without acquiring new data, capacity, and tools. MFIs are increasingly interested and aware of the need to improve their capacity to serve the small business market. Also, many networks and funders, private and public, are interested in helping MFIs improve their readiness to serve small enterprises. For example, CHF International, a commercial holding and network of MFIs is now developing a risk management system that will monitor MSE portfolio separately; it also plans to standardize small business appraisal over the next two years among its affiliates.

The Dutch development finance company (FMO) and a few other funders are funding pilot projects that help analyze and improve MFIs' capacity needs as they scale up into the small business market. The role of MFIs will also depend on the context, including the availability of other service providers. Analyzing the competitive environment is another important step that will help identify the MFI's competitive advantages

and priority market segments. While competition is minimal in some markets (e.g., Jordan, Colombia), other markets (e.g., Bosnia, Ghana) are highly competitive. In markets where mainstream commercial banks are active, MFIs find it difficult to compete on price or other services (CHF 2012).

Despite many challenges, MFIs might bring important advantages to the small business market. Compared to commercial mainstream banks, for example, MFIs may have closer relationships with their customers, making it easier for them to overcome the "opaqueness" of small business clients. Another advantage is that MFIs often have faster lending procedures and require less collateral than their competitors. Finally, MFIs can reach customers who do not have access to banks or who face serious obstacles, such as their own informality or high bank fees. There are some examples of particularly successful lending to the small business segment. For example, SME loans are now 53 percent of BRAC Bank's portfolio, with more than US$500 million outstanding at the end of 2011 (Rahman 2012).

5. Conclusion

To adequately support small enterprises, MFIs will need to better understand their unique needs and to tailor financial services and build appropriate infrastructure to meet them. Successfully serving small enterprises is a process, not a one-time event so careful planning is crucial. This will require a commitment from top management to create a client centric approach, hire dedicated and knowledgeable staff, and invest in appropriate technologies.

References:

1. Abor,J, (2006) Small Business Financing Initiatives in Ghana: Problems and Perspectives in Management/ Volume 4, Issue 3,
2. Afranne, S. (2000) Impact Assessment of Microfinance Institution in Ghana and South Africa, Journal of microfinance, Vol 4 No 1, UK.
3. Aryeetey E., Baah-Nuakoh A., Duggleby T., Hettige H. & Steel W.F. (1994), Supply and Demand for Finance of Small Scale Enterprises in Ghana, World Bank Discussion Paper No. 251. United Nations, New York, USA.
4. Aryeetey-Nanor, Michael. (2008), From Informal Finance to Formal Finance in Sub-Saharan Africa: Lessons from Linkage Efforts, Paper presented at the High Level Seminar on African Finance for the 21st Century , IMF and Joint Africa Institute, Tunisia
5. Asiama J. P. Osei (2007) Victor Microfinance in Ghana: An Overview, Research Department, Bank of Ghana
6. Banerjee, A., Duflo, E., Glennerester, R., and Kinnan, C. (2009).The miracle of Microfinance, Evidence from a randomizedEvaluation(Working Paper). The Abdul LatifJameel Poverty Action Lab at MIT andtheCenter for Microfinance at IFMR.Cambridge,
7. Bank of Ghana (2007), a note on microfinance in Ghana: Bank of Ghana working papers, WP/BOG-07/01. Research department, Ghana.
8. Battilana, J., and Dorado, S. (2010). Building sustainable hybrid organizations: The case of Commercial microfinance organizations. Academy of Management Journal, 56(6).
9. Bigsten A., P. Collier, S. Dercon, M. Fafchamps, B. Guthier, W. Gunning, M. Soderbom, Oduro, O. Ostendorp, C. Patillo, F. Teal and A. Zeufack (2000), Credit Constraints in ManufacturingEnterprises in Africa, Working Paper WPS/2000. Centre for the Study of African Economies, Oxford University, Oxford.
10. Binks, M.R. and Ennew, C.T. (1996), "Financing small firms, in Burns, P. and Dewhurst, J. (Eds.), Small Business and Entrepreneurship, 2nd ed., Macmillan, London.
11. Binks, M.R., Ennew, C.T. and Reed, G.V. (1992), "Information Asymmetries and the Provision of Finance to Small Firms, International Small Business Journal, 11(1), pp. 35-46.
12. Blanton, W.R. and Dorman, T.L. (1994), "Small Business Spotlight: SBA Loans for Community Banks , Journal of Commercial Lending, 02/01/1994.
13. Boapeah S.N. (1993), "Developing Small-Scale Industries in Rural Regions: Business Behavior and Appropriate Promotion Strategies With Reference To Ahanta West District of Ghana", spring, Dortmund.

Komal Saini

Contact : 7206501770

Komalsaini7391@gmail.com

Reflection of P and SV waves in a rotating Generalized Thermoelastic Solid Half-Space with Diffusion

101

Dr. Lakhbir Singh

The governing equations of rotating generalized thermoelastic solid with diffusion are formulated in context of Lord-Shulman theory of generalized thermoelasticity. The solution of the governing equation indicates the existence of four coupled plane waves. The reflection of plane waves from free surface of a rotating thermoelastic solid half-space with diffusion is considered. The required boundary conditions are satisfied by appropriate potentials for incident and reflective waves in a half-space to obtain the reflection coefficients of various reflected waves for an incident plane wave. These are found to depend on the rotation parameter, the angle of incidence of striking wave, thermo-diffusion parameters and other material constants. Complex absolute values of speeds and reflection coefficients are computed for a particular material representing the model.

1. Introduction

Lord and Shulman [1] developed a theory of generalized thermoelasticity by including a flex rate term into a Fourier's law of heat conduction to avoid the unrealistic phenomena of the infinite speed of heat propagation in classical model given by Biot [2]. A hyperbolic heat transport equation was obtained which ensures the finite speed of heat propagation. Green and Lindsay [3] formulated another theory of generalized thermoelasticity known as temperature dependent thermoelasticity with two relaxation time which obeys the classical Fourier's law of heat conduction and admits a finite speed of heat propagation. Various problems on wave propagation are studied in context of these generalized theories [6-8].

Nowacki [9-11], Dudziak and Kolwaski [12], Olesiak and Pyryev [13] studied some problems on thermo-diffusion in solids. They discussed the influences of cross effects arising of the coupling of the fields of temperature, mass diffusion and strain. Due to these cross effects the thermal excitation results in an additional mass concentration and the mass concentration generates the additional field of temperature. Sherief et al. [14] developed the theory of generalized thermoelastic diffusion, which allow the finite speeds of propagation of waves. Singh [15, 16] studied the wave propagation in thermoelastic solid with diffusion in context of Lord-Shulman and Green-Lindsay theories and studied the reflection. The objective of present paper is to study the behaviour of plane waves propagating in a rotating thermoelastic solid under the effect of rotation and diffusion.

2. Formulation of the problem

We consider a thermo-elastic half space with diffusion with free surface along x-axis and z-axis is taken downward into the half-space as shown in **Fig 1**. The medium is rotating uniformly with an angular velocity

(i) Equation of motion

(i) Equation of motion

$$\mu u_{i,jj} + (\lambda+\mu) u_{j,ij} - \beta_1 \Theta_{,i} - \beta_2 C_{,i} = \rho[\ddot{u}_i + \Omega\times(\Omega\times u) + 2\Omega\times\dot{u}], \qquad (1)$$

(ii) Heat conduction equation

$$K\Theta_{,ii} = \rho C_E(\dot{\Theta} + \tau_0\ddot{\Theta}) + \beta_1 T_0(\dot{e} + \tau_0\ddot{e}) + aT_0(\dot{C} + \tau_0\ddot{C}) \qquad (2)$$

(iii) Mass diffusion equation

$$D\beta_2 e_{,ii} + Da\Theta_{,ii} + (\dot{C} + \tau\ddot{C}) - DbC_{,ii} = 0, \qquad (3)$$

(iii) Constitutive equations

$$\sigma_{ij} = 2\mu e_{ij} + \delta_{ij}(\lambda e_{kk} - \beta_1\Theta - \beta_2 C), \qquad (4)$$

$$\rho T_0 S = \rho C_E\Theta + \beta_1 T_0 e_{kk} + aT_0 C \qquad (5)$$

$$P = -\beta_2 e_{kk} + bC - a\Theta, \qquad (6)$$

where $\beta_1 = (3\lambda+2\mu)\alpha_t$ and $\beta_2 = (3\lambda+2\mu)\alpha_c$

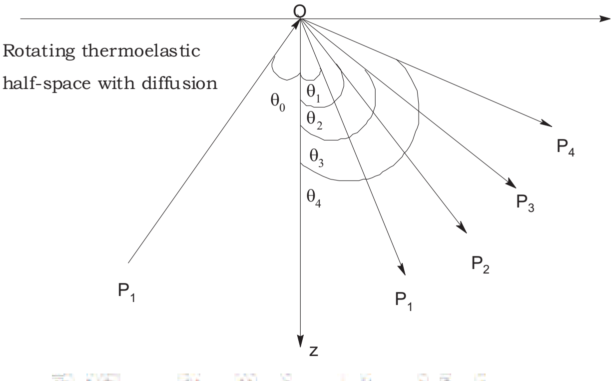

Fig. 1. Geometry of the problem showing incident and reflected waves.

For two dimensional motion in x-z plane, the equations (1) is written as

$$(\lambda+2\mu)u_{1,11} + (\lambda+\mu)u_{3,13} + \mu u_{1,33} - \beta_1\Theta_{,1} - \beta_2 C_{,1} = \rho[\ddot{u}_1 - \Omega^2 u_1 + 2\Omega\dot{u}_3],$$

$$(\lambda+2\mu)u_{3,33} + (\lambda+\mu)u_{1,13} + \mu u_{3,11} - \beta_1\Theta_{,3} - \beta_2 C_{,3} = \rho[\ddot{u}_3 - \Omega^2 u_3 - 2\Omega\dot{u}_1].$$

Similarly, the equations (2) & (3) are converted to the form

$$K\nabla^2\Theta = \rho C_E\tau_m\dot{\Theta} + \beta_1 T_0\tau_m\dot{e} + aT_0\tau_n\dot{C} \qquad (9)$$

$$D\beta_2\nabla^2 e + Da\nabla^2\Theta - Db\nabla^2 C + \tau_n\dot{C} = 0 \qquad (10)$$

Where $\nabla^2 = \frac{\partial^2}{\partial x^2} + \frac{\partial^2}{\partial z^2}$, $\tau_m = (1+\tau_0\frac{\partial}{\partial t})$, $\tau_n = (1+\tau\frac{\partial}{\partial t})$

λ, μ are Lame's constants, α_t is the coefficient of linear thermal expansion, α_c is the coefficient of linear diffusion expansion, T is absolute temperature, T_0 is temperature of the medium in its natural state, $\Theta = T - T_0$ the change in temperature such that $|\Theta/T_0| << 1$,

With the help of Helmholtz's representation of the displacement components u_1 and u_3 in terms of

$$u_1 = \frac{\partial\phi}{\partial x} - \frac{\partial\psi}{\partial z}, \qquad u_3 = \frac{\partial\phi}{\partial z} + \frac{\partial\psi}{\partial x}, \tag{11}$$

the equations (7) and (8) reduce to

$$(\lambda+2\mu)\frac{\partial}{\partial x}(\nabla^2\phi) - \mu\frac{\partial}{\partial z}(\nabla^2\psi) - \beta_1\frac{\partial\Theta}{\partial x} - \beta_2\frac{\partial C}{\partial x} = \rho\Big[\frac{\partial^2}{\partial t^2}\Big(\frac{\partial\phi}{\partial x} - \frac{\partial\psi}{\partial z}\Big) - \Omega^2\Big(\frac{\partial\phi}{\partial x} - \frac{\partial\psi}{\partial z}\Big) + 2\Omega\frac{\partial}{\partial t}\Big(\frac{\partial\phi}{\partial z} + \frac{\partial\psi}{\partial x}\Big)\Big], \tag{12}$$

$$(\lambda+2\mu)\frac{\partial}{\partial z}(\nabla^2\phi) + \mu\frac{\partial}{\partial x}(\nabla^2\psi) - \beta_1\frac{\partial\Theta}{\partial z} - \beta_2\frac{\partial C}{\partial z} = \rho\Big[\frac{\partial^2}{\partial t^2}\Big(\frac{\partial\phi}{\partial z} + \frac{\partial\psi}{\partial x}\Big) - \Omega^2\Big(\frac{\partial\phi}{\partial z} + \frac{\partial\psi}{\partial x}\Big) - 2\Omega\frac{\partial}{\partial t}\Big(\frac{\partial\phi}{\partial x} - \frac{\partial\psi}{\partial z}\Big)\Big], \tag{13}$$

Differentiating equation (12) w.r.t. x and equation (13) w.r.t. z and then adding we get

$$\Big(\rho\frac{\partial^2}{\partial t^2} - \rho\Omega^2 - (\lambda+2\mu)\nabla^2\Big)\phi + \beta_1\Theta + \beta_2 C + \Big(2\rho\Omega\frac{\partial}{\partial t}\Big)\psi = 0, \tag{14}$$

Again, differentiating equation (13) w.r.t. z and equation (14) w.r.t. x and then subtracting we get

$$\Big(2\rho\Omega\frac{\partial}{\partial t}\Big)\phi - \Big(\mu\nabla^2 + \rho\Omega^2 - \rho\frac{\partial^2}{\partial t^2}\Big)\psi = 0, \tag{15}$$

Using equation (11), the equations (9) and (10) reduce to

$$\Big(\beta_1 T_0 \tau_e \frac{\partial}{\partial t}\nabla^2\Big)\phi + \Big(\rho C_E \tau_o \frac{\partial}{\partial t} - K\nabla^2\Big)\Theta + \Big(a T_0 \tau_o \frac{\partial}{\partial t}\Big)C = 0, \tag{16}$$

$$(D\beta_2\nabla^4)\phi + (D a\nabla^2)\Theta + \Big(\tau_e\frac{\partial}{\partial t} - Db\nabla^2\Big)C = 0, \tag{17}$$

The equations (14) to (17) are coupled in Φ, Θ, C and ψ. For a harmonic wave propagating in x- direction, where wave normal lies in x-z plane, and makes an angle θ with z-axis, we consider the following form of solution for equations (14)-(17)

$$[\phi, \Theta, C, \psi] = [\phi_0, \Theta_0, C_0, \psi_0]\exp\{ik(x\sin\theta - z\cos\theta - vt)\}, \tag{18}$$

where k is wave number and v is complex phase speed.

Putting equation (19) into equations (14) - (17), we obtain the homogenous system of equations in ϕ_0, Θ_0, C_0 and ψ_0

$$[(\lambda+2\mu-\rho v^2)k^2 - \rho\Omega^2]\phi_0 + \beta_1\Theta_0 + \beta_2 C_0 - 2ik\rho v\Omega\psi_0 = 0, \tag{19}$$

$$(2ik\rho v\Omega)\phi_0 + [(\mu-\rho v^2)k^2 - \rho\Omega^2]\psi_0 = 0, \tag{20}$$

$$\{-\beta_1 T_0 k^3 v(i - kv\tau_e)\}\phi_0 + \{\rho C_E kv(i - kv\tau_o) - Kk^2\}\Theta_0 + \{aT_0 kv(i - kv\tau_o)\}C_0 = 0, \tag{21}$$

$$(D\beta_2 k^4)\phi_0 + (D a + \{k^2 Db - kv(i + kv\tau)\})C_0 = 0 \tag{22}$$

The homogeneous system (19)-(22) have non trivial solution if

$$Q_0\xi^4 + Q_1\xi^3 + Q_2\xi^2 + Q_3\xi + Q_4 = 0, \tag{23}$$

Here,

$$\xi = \rho v^2, \quad Q_0 = 4\frac{\Omega^2}{\omega^2} - \Omega_0^2, \quad Q_1 = \Big(\Omega_0^2 - 4\frac{\Omega^2}{\omega^2}\Big)(d_1 + d_2 + d_3) + \Omega_0(\lambda + 3\mu + \varepsilon),$$

$$Q_2 = -[d_1 d_2\Big(\Omega_0^2 - 4\frac{\Omega^2}{\omega^2}\Big) + \mu(\lambda+2\mu+\varepsilon) + \Omega_0\{d_2\varepsilon + 2d_4\varepsilon_1 - \varepsilon_2 + (\lambda+3\mu)(d_1+d_2+d_3)\}],$$

$$Q_3 = \mu(\lambda+2\mu)(d_1+d_2+d_3) + \Omega_0[(\lambda+3\mu)d_1 d_2 - d_1\varepsilon_2] + \mu[d_2\varepsilon + 2d_4\varepsilon_1 - \varepsilon_2],$$

$$Q_4 = \mu[d_1\varepsilon_2 - (\lambda+2\mu)d_1 d_2],$$

where,

$$\xi = \rho v^2, \quad \varepsilon = \frac{\beta_1^2 T_0}{\rho C_E}, \quad \varepsilon_1 = \frac{\beta_1\beta_2 T_0}{\rho C_E}, \quad \varepsilon_2 = \frac{\rho D\beta_2^2}{\tau_e^1}$$

$$d_1 = \frac{K}{C_E\tau_o^1}, \quad d_2 = \frac{\rho Db}{\tau_e^1}, \quad d_3 = \frac{Da^2 T_0}{C_E\tau_e^1}, \quad d_4 = \frac{\rho Da}{\tau_e^1}$$

$$\tau_o^1 = \frac{i}{\omega} + \tau_0, \quad \tau_e^1 = \frac{i}{\omega} + \tau, \quad \omega = kv, \quad \Omega_0 = 1 + \frac{\Omega^2}{\omega^2}$$

The bi-quadratic equation (23) is solved numerically by Ferarri's method which give four values of ξ, corresponding to four coupled waves, namely, P1, P2, P3 and P4.

3. Reflection

An incident wave at stress free thermally insulated surface z = 0 will result into four reflected coupled waves as shown in **Fig. 1**. The boundary conditions at free surface z = 0 are

$$\sigma_{zz} = 0, \quad \sigma_{zx} = 0, \quad \frac{\partial\Theta}{\partial z} = 0, \quad \frac{\partial P}{\partial z} = 0 \tag{24}$$

The appropriate potentials Φ, ψ, Θ and C satisfying the boundary conditions (24) are

$$\Phi = A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0) - i\omega t] + \sum_{j=1}^{4} A_j\exp[ik_j(x\sin\theta_j - z\cos\theta_j) - i\omega t], \tag{25}$$

$$\Theta = \varsigma_1 A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0) - i\omega t] + \sum_{j=1}^{4} \varsigma_j A_j\exp[ik_j(x\sin\theta_j - z\cos\theta_j) - i\omega t], \tag{26}$$

$$C = \eta_1 A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0) - i\omega t] + \sum_{j=1}^{4} \eta_j A_j\exp[ik_j(x\sin\theta_j - z\cos\theta_j) - i\omega t], \tag{27}$$

$$\psi = \chi_1 A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0) - i\omega t] + \sum_{j=1}^{4} \chi_j A_j\exp[ik_j(x\sin\theta_j - z\cos\theta_j) - i\omega t], \tag{28}$$

where the incident P1 wave makes an angle θ_0 with the positive direction of z- axis and reflected P1, P2, P3, and P4 waves make angles θ_1, θ_2, θ_3 and θ_4 with z- axis, and

$$\varsigma_i = \frac{\xi}{\beta_1}\Big[\frac{d_4\varepsilon_1 - \varepsilon(d_2 - \xi)}{d_3\xi + (\xi - d_1)(d_2 - \xi)}\Big], \qquad \eta_i = \frac{1}{\beta_2}\Big[\frac{d_4\varepsilon_1\xi - \varepsilon_2(\xi - d_1)}{d_3\xi + (\xi - d_1)(d_2 - \xi)}\Big]$$

$$\chi_i = \frac{2i\xi_i\frac{\Omega}{\omega^2}}{(\Omega_0\xi_i - \mu)}, \qquad (i = 1,2,3,4) \tag{29}$$

The ratios of amplitudes of the reflected waves to the amplitude of the incident P1 wave namely A_1/A_0, A_2/A_0, A_3/A_0, A_4/A_0 gives the reflected coefficients for reflected P1, P2, P3 and P4 waves, respectively. The wave number k_1, k_2, k_3, k_4 and the angles θ_1, θ_2, θ_3 and θ_4 are connected by the relation

$$k_1\sin\theta_1 = k_2\sin\theta_2 = k_3\sin\theta_3 = k_4\sin\theta_4 \tag{30}$$

The relation (30) may also be written in order to satisfy the boundary condition (24) as

$$\frac{\sin\theta_1}{v_1} = \frac{\sin\theta_2}{v_2} = \frac{\sin\theta_3}{v_3} = \frac{\sin\theta_4}{v_4}, \tag{31}$$

Using potentials (25) – (28) in boundary condition (24), we get a system of four non homogenous as

$$\sum_{j=1}^{4} a_{ij} Z_j = b_i, \quad (i = 1,2,..4) \tag{32}$$

where;

$$a_{1j} = [2\mu\cos^2\theta_j - \chi_j\sin\theta_j\cos\theta_j + \lambda + \beta_1\frac{\varsigma_j}{k_j^2} + \beta_2\frac{\eta_j}{k_j^2}]\Big(\frac{k_j}{k_1}\Big)^2, \qquad a_{2j} = [\sin 2\theta_j - \chi_j\cos 2\theta_j]\Big(\frac{k_j}{k_1}\Big)^2,$$

$$a_{3j} = \cos\theta_j\frac{\varsigma_j}{k_j^2}\Big(\frac{k_j}{k_1}\Big)^3, \qquad a_{4j} = \cos\theta_j[\beta_2 - a\frac{\varsigma_j}{k_j^2} + b\frac{\eta_j}{k_j^2}]\Big(\frac{k_j}{k_1}\Big)^3,$$

$$b_1 = -[2\mu\cos^2\theta_0 - \chi_1\sin\theta_0\cos\theta_0 + \lambda + \beta_1\frac{\varsigma_1}{k_1^2} + \beta_2\frac{\eta_1}{k_1^2}]\Big(\frac{k_1}{k_1}\Big)^2, \qquad b_2 = [\sin 2\theta_0 + \chi_1\cos 2\theta_0]\Big(\frac{k_1}{k_1}\Big)^2,$$

$$b_3 = \cos\theta_0\frac{\varsigma_1}{k_1^2}\Big(\frac{k_1}{k_1}\Big)^3, \quad b_4 = \cos\theta_0[\beta_2 - a\frac{\varsigma_1}{k_1^2} + b\frac{\eta_1}{k_1^2}]\Big(\frac{k_1}{k_1}\Big)^3, \qquad Z_j = \frac{A_j}{A_0}.$$

In absence of rotation, the system of equations (32) reduces to those obtained by Singh [15]

4. Numerical example

For numerical purpose, the following material constants are considered for the present model at $T_0 = 27^\circ C$

$\lambda = 5.775 \times 10^{11}\ dyne/cm^2$, $\mu = 2.646 \times 10^{11}\ dyne/cm^2$, $\rho = 2.7\ gm/cm^3$

$C_e = 2.361 cal/gm^0C$, $K = 0.492\ cal/cm\ s^0C$, $\tau_0 = 0.05\ s$, $\tau = 0.04 s$,

$\alpha_t = 0.05$, $\alpha_c = 0.06$, $a = 0.005$, $b = 0.05$, $D = 0.5$.

The complex absolute values of speeds and reflection coefficients of plane are computed numerically with the help of FORTRAN program of Ferrari's method.

5. Conclusion

The solution of governing equations of a rotating thermoelastic solid with diffusion indicates the existence of four coupled plane waves. For incident P1 wave at stress free and thermally insulated surface, the relations between reflection coefficients of reflected waves are obtained. For a particular example of the solid, the speeds and reflection coefficients are computed. From numerical analysis, it is concluded that the rotation and diffusion parameters affect very significantly the speeds and reflection coefficients of plane waves.

References

1.H. W. LORD, Y. SHULMAN 1967 *J. Mech. Phys. Solids* **15**, 299- 309. A generalized dynamical theory of thermoelasticity.

2.M.A BIOT 1956 *J. Appl. Phys* **27**, 249-253. Thermoelasticity and irreversible thermodynamics.

3.A. E. GREEN, A. LINDSAY 1972 *J. Elasticity* **2**, 1-7. Thermoelasticity.

4.A. N. SINHA, S. B. SINHA 1974 J. Phys. Earth **22**, 237-244.Reflection thermoelastic waves at a solid half space with thermal relaxation.

5. S. B. SINHA, K. A. ELSIBAI 1996 *J. Thermal Stresses* **19**, 763-777. Reflection of thermo elasticwaves at a solid half space with two thermal relaxation times.

6.S. B. SINHA, K. A. ELSIBAI 1997 *J. Thermal Stresses* **20**, 129-146. Reflection and refraction of thermoelastic wave at an interface of two semi-infinite media with two thermal relaxation times.

7.A.N. ABD-ALLA, A.S. AL-DAWY 2000 *Int. J. Math. Math. Sci.* **23**,529-546. The reflection phenomena of SV waves in a generalized thermoelastic medium.

8.J. N. SHARMA, V. KUMAR, D. CHAND 2003 *J. Thermal Stresses* **26**, 925- 942. Reflection of generalized thermoelastic wave from the boundary of a half space.

9.W. NOWACKI 1974 *I*, *Bull. Acad. Pol. Sci. Ser. Tech*. **22**, 55- 64.Dynamical problems of thermoelastic diffusion in solids.

10.W. NOWACKI 1974 *II, Bull. Acad. Pol. Sci. Ser. Tech*. **22**, 129- 135. Dynamical problems of thermoelastic diffusion in solids.

11.W. NOWACKI 1976 *Engg. Frac. Mech*. **8**, 261-266. Dynamical problems of diffusion in solids.

12.W.DUDZIAK, S.J. KOWALSKI 1980 *Int. J. Heat And Mass Transfer* **32**, 2005-2013.Theory of thermodiffusion for solid.

13. Z. S. OLESIAK, Y.A. PYRYEV 1995 *Int. J. Engg. Sci*. **33**, 773- 780. A coupled quasi- stationary problem of thermodiffusion for an elastic cylinder.

14. H. H. SHERIEF, F. HAMZA, H. SALEH 2004 Int. J. Engg. Sci. **42**, 591-608. The theory of generalized thermoelastic diffusion.

15. B. SINGH 2005 *J. Earth. Syst. Sci*. **114**, 2, 159-168. Reflection of P and SV waves from the free surface of an elastic solid with generalized thermodiffusion.

16. B. SINGH 2006 *Journal of Sound and Vibration* **291**, 764-778. Reflection of P and SV waves from the free surface of an elastic solid in generalized thermoelastic diffusion.

Dr. Lakhbir Singh
Associate Professor,
Department of Mathematics,
Post Graduate Government College,
Hisar (Haryana), India.
Email: lsingh27@rediffmail.com
Mob.: 94161-07033

102

Effect of Water pollution on aquatic Biodiversity

Dr. Manish Kumar Singh, Desh Deepak Srivasava

Abstract

Water pollution is known to be a growing problem of 21st century all over the world. As a result of water pollution, pure water is transferred to less scare day by day. The most unique advantage of aquatic environment is the existence of life, and the most special feature of life is its biodiversity. There are many reasons for water pollution that affected negatively biodiversity. The planet's biological diversity is affected greatly by any human activity. Six threats affect aquatic biodiversity, climate change, overexploitation, water pollution, habitat degradation, flow modification and exotic species invasion. Biodiversity maintenance is considered one of the leading keys to ecosystem services retention. So it can be said that the ultimate challenge nowadays is the protection of freshwater biodiversity.

Keywords: biodiversity, water pollution, threats, conservation

Introduction

Nowadays, water pollution is considered one of the most important universal challenges facing both developed and developing states, affecting greatly environmental health of people all over the world. While all globally focus on water quality, water conservation and distribution matters, bad dealing with wastewater resulted in severe problems in many countries, worsening the water crisis all over the world. The importance of water quality was admitted in the 2030 Agenda for Sustainable Development that stressed the future policies to ensure that control of water pollution will be elevated in national and international priorities.2 The major known sources of water pollution are: human settlements, agriculture and industries. Globally, about 80% of municipal wastewater is released untreated into water streams, also industrial activities are known by its responsibility on dumping millions of tons of pollutants every year (solvents, heavy metals, toxic sludge).3 Continuous population growth, increased economic movements in addition to climate change all participate in spoilage of natural water resources, so threatening aquatic systems and the whole ecosystem as well. Recently, it was noted that aquatic biodiversity faces many damages and consequently is subjected to severe decline in many countries. The most terrible issue is that almost primitive ecosystems are amongst the threatened ones.4 Although aquatic ecosystems are known to be from the wealthiest habitats by their diversity and number of species, the Millennium Ecosystem Assessment (MEA 5) announced in 2005 that biodiversity degradation in freshwater systems occur double the ratio of other ecosystems. Therefore, their capability to present ecosystem services decreases causing negative impacts on human health. The detected annually ratio of all species suffered from extinction (marine, avian, aquatic and terrestrial), that is considered an indicator of biodiversity loss, is over tenfold higher than that level considered by scientists as the acceptable upper limit. The main reason for such situation is that ecosystem services are known to be a free service long time ago, leading to massive destruction, with bad impacts on livelihoods and human health generally.4 Consequentl healthy ecosystem is an ultimate human centered goal that is a vital item in the Sustainable Development Goals (SDGs) adopted in September 2015. Freshwater ecosystems (streams, ponds, lakes and wetlands) cover about 15% of world's surface if all system sizes are considered. Previous estimates were incorrect as the small systems were neglected. A total of 300 million natural lakes occupy about 4.2 million km2, globally (small lakes less than 1 km2 were the most dominating). Moreover, constructed lakes occupy about 335,000 km2. Also, synthetic water bodies grow rapidly in volume and surface area. The universal network of all water streams cover approximately 500,000 km2. In the same time, wetlands cover a continental area of 12.8 to 15.8 million km2. The inland water bodies provide residence for more than 10% of all registered animals and also one third of the vertebrate species. The actual knowledge of registered freshwater species diversity differs widely among groups of organisms.5 The current loss of biodiversity has a primary reason related to ecological function's loss. In spite of the intensive research covering linkages between ecosystems functions and biodiversity, a significant gap was detected when researchers try to understand effect of biodiversity loss on ecosystem,6 specially in freshwater ecosystems.7-9 In the following review, the term freshwater is utilized broadly to include all inland water systems (fresh or saline) encompassing lakes, wetlands, rivers in addition to estuaries. Biodiversity is an

essential component of all water systems. In the following review, the relation between water pollution and biodiversity will be covered through the following topics; Importance of biodiversity and its relation to ecosystems then their main threats. Assessment of biodiversity impacts on ecosystems and communities is needed to be elucidated and finally what are the conservation challenges facing biodiversity.

What is water pollution?

Water quality issues are among major challenges that humanity is facing in the twenty-first century. Aquatic pollution is considered a great problem facing freshwater and marine environments; it causes negative impacts for human health in addition to other respective rganisms.10 Pollution affects fish immune system either directly or indirectly by changing water quality.11 There are many sources of aquatic pollutants: Industrial effluents, agriculture runoffs in addition to municipal sewage that are dumped in River Nile, gradually transferring water to be ineligible for human consumption. Agricultural wastewater contains many pollutants from herbicides and pesticides that have negative impacts on river and people using its water. Industrial effluents are highly toxic, including toxic heavy metals that may combine with suspended solids found in domestic wastewater form muck.12 Also water pollution in Egypt especially in Alexandria (El-Max bay and Bahary) affected fish biological responses and finally lead to food oxidation damage accompanied by environmental quality.13 Moreover water pollution also affected some immune-genes of seabream Pagrus auratus and seabass Dicentrarchus labrax fish samples. 14

Biodiversity importance

The term biodiversity is known to have a wide concept. Biodiversity is defined by the United Nations Convention on Biological Diversity as follows: "living species variations from sources that include terrestrial, marine, different aquatic ecosystems and also ecological groups to which they belong: including diversity among species and also ecosystems.15 So it can be seen that, biodiversity involves the whole range of species, genetic and ecosystem variation. It underlies the most processes of biotic ecosystem, for example: production and decaying. From the overall number of species estimated on earth that falls between 5-30 million, only around two million of species were described.5 Ecosystem serves human providing many economic benefits to the surrounding society. There are some roles of biodiversity in ecosystem serving summarized by The Millennium Ecosystem Assessment (MEA): Supporting: Boosting ecosystems by compositional, structural and practical diversity; Regulatory: Involves the impact of biodiversity on production, constancy, in addition to ecosystems resilience; Cultural: Comprises the spiritual, aesthetic and also some recreational advantages afforded by human from biodiversity; Supplying role: Involves direct and indirect food supply, fresh water, etc. Moreover, biodiversity includes some substantial values, away from any other benefits and cannot be quantified.5 As society endeavors to turn to more sustainable development paths, it is significant to duly conceptualize the joint between biodiversity (traits, species and genes) and human well-being (wealth, security, health). Data analysis from previous literature pointed out the increase engagement of the terms biodiversity, human well-being and sustainable development in public, but greatly as independent terms. It was suggested by some researchers that a suited framework for sustainable development should comprise biodiversity explicitly as a flank of internal variables that both affect and are affected by human well- being.16

Water pollution and biodiversity

Most of the aquatic organisms are very sensitive to any variation in the environment, they respond to any pollution by different ways. The most drastic responses are represented in death or migration to any other habitat. Fewer responses may include reduction in reproductive capacity and also suppression of some enzyme systems needed to conventional metabolism.17 Zooplankton and macrobenthic components importance in trophic dynamics of freshwater ecosystems were recognized. Such organisms not only modulate the aquatic productivity through occupying intermediate level in food chain, but also they indicate the environmental status in a definite period. 18 Moreover, their diversity raised importance especially in recent years due to their certain species capability for indication of any deterioration in water quality resulted from pollution and eutrophication. 19,20 Any disruption in food chain due to diversity loss or degradation resulted in decrease in fish numbers at top of food webs. During 1899-1902, Boulenger 21 recorded 85 fish species living in Egyptian Nile waters, while Bishai et al., 22 recorded only 71 fish species and 22 species are found in the catch, while 49 were rare. River Nile from Aswan to Cairo represents evidence of some reduced taxa richness and also involved severe polluted points resulting from sewage drains, industrial and agricultural sources. 23, 24 Lake Manzala is a considered to be a highly dynamic aquatic system that has been subjected to different

pollutants. Manzala Lake also suffers from environmental changes due to pollution that affects aquatic biota greatly. There is a great difference between the northern side of the lake and the southern side of the lake. The southern side of the lake receives waste water effluent containing high organic matter content from different drains.

Regarding biodiversity,

There has been a considerable diminishment recorded in the lake in the last few decades in both fish and bird species. The absolute most vital factor might be the decrease in water salinity, with the exception of the northwestern basin where a dam has result in a negative water balance, hyper salinity, and loss of different species variety. In the south east basin, water pollution and extreme eutrophication have caused the vanishing of numerous aquatic species. In a few areas of the Lake, the benthic fauna has been affected by pollutants from the waste water discharge. Fish deformation have been reported in recent studies as it was observed that several types of fish have showed abnormal shape and this could be attributed to pollution due to high eutrophication of the Lake as it is exposed to high domestic and industrial waste discharge and also due to predation.

Different aquatic pollutants found in the environment affected greatly biodiversity which appeared in different ways. For example pollution with heavy metals impacted the whole aquatic life. In 1992, a report was published denoting that 50% of industrial waste refers to the metallurgical industry while weaving, dyeing and spinning cause about 30% of industrial waste. In Egypt, approximately 250 of the industrial establishments in Greater Cairo represent 35% of the total industrial activity participate by 40% of heavy metals load dumped in water. Also there are about 150 industrial facilities responsible for exchange of about 25% of total heavy metals load in water streams. While in Alexandria there are about 175 facilities representing 25% of total industrial activity in Egypt, however it exchanges about 10% of heavy metals total loads in natural streams. Effects of heavy metals (Zn, Cu, Cd, Pb and Hg) were examined in some commercial fish species collected from the Egyptian costal region along the Mediterranean Sea. It was found that there are no significant differences in some metal concentrations such as lead referring to age or size of collected fish.

Moreover microbial contamination is considered from the most dangerous pollutants of water streams either freshwater or marine environments. Livestock excreta involve zoonotic microorganisms in addition to multicellular parasites which are harmful to all living organisms. Livestock pathogens which affect public health include bacteria such as Clostridium botulinum, Campylobacter spp, Salmonella spp. and Escherichia coli O157:H7. Also parasitic protozoa are considered from the important pathogens including for example: Microsporidia spp., Cryptosporidium parvum and Giardia lamblia, all may cause hundreds of thousands of infections every year to many organisms. Lake Qarun in Egypt receives huge mixture of crude agricultural, domstic and sewage effluents loaded with heavy metals contaminants. Unfavorable conditions in Lake lead to inhibition of fish immune defense mechanism. Thus, predisposes fish to various infections. Vibrio alginolyticus, Aeromonas hydrophila and parasitic Isopoda sp. were recorded in Lake Qarun and cause serious impacts on the population of fish. Conclusion and recommendations

Aquatic pollution is considered a great problem facing freshwater and marine environments; it causes negative impacts for human health in addition to other respective organisms. The freshwater ecosystems by their living biota are considered from the highly endangered globally among other ecosystems. hange, overexploitation, water pollution, habitat degradation, flow modification and exotic species invasion. Systematic conservation planning provides a strategic and scientifically defensible framework for biodiversity conservation.

References

1. FAO. Water pollution from agriculture: a global review, the Food and Agriculture Organization of the United Nations, Rome and the International Water Management Institute on behalf of the Water Land and Ecosystems research program Colombo. 2017.

2. United Nations. Report of the Inter-Agency and Expert Group on Sustainable Development Goal Indicators. 47th Session of the United Nations Statistical Commission. New York, USA. 2016.

3. WWAP. The United Nations World Water Development Report 2017: Wastewater, the untapped resource. United Nations World Water Assessment Programme (WWAP). Paris, United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. 2017.

4. UNEP. International water quality Guidelines for ecosystems (IWQGES). How to develop guidelines for healthy freshwater ecosystems. A policy oriented approach. 2016.

5. MEA. Ecosystems and Human Well-Being, 2005.

6. Hooper DU, Chapin III, FS Ewel JJ, et al. Effects of

biodiversity on ecosystem functioning: A consensus of current knowledge. Ecological Monographs. 2005;75(1):3-35.

7. Covich AP, Austen M, Barlocher F, et al. The role of biodiversity in the functioning of freshwater and marine benthic ecosystems. BioScience. 2004;54(8):767-775.

8. Gessner MO, Inchausti P, Persson L, et al. Biodiversity effects on ecosystem functioning: Emerging issues and their experimental test 2004;104(3):423-436. in aquatic environments. Oikos.

9. Dudgeon D, Arthington AH, Gessner MO, et al. Freshwater biodiversity: Importance, threats, status and conservation challenges. Biological Reviews. 2006;81(2):163-182.

10. Fent K. Ökotoxikologie. Georg Thieme Verlag, Stuttgart. 2007;14-18.

11. Poulin R. Toxic pollution and parasitism of freshwater fish. Parasitol Today. 1992;8(2):58-61.

12. Dakkak A. Egypt's Water Crisis - Recipe for Disaster. Middle East, Water. 2013.

13. Guerriero G, Bassem SM, Abdel Gawad FKh. Biological responses of white seabream (Diplodus sargus, linnaeus 1758) and sardine (Sardina pilchardus, walbaum 1792) exposed to heavy metal contaminated water. Emirates journal of food and agriculture. 2018;30(8):688-694.

14. Abdel Gawad FK, Osman O, Bassem SM, et al. Spectroscopic Analyses and Genotoxcity of Dioxins in the Aquatic Environment of Alexandria. Marine Pollution Bulletin 2018;127:618-625.

Supervisor
Dr. Manish Kumar Singh
Assistant Professor

Summitted by
Desh Deepak Srivasava
M.Sc. (Botany)

Reflection of plane waves in a temperature-dependent thermoelastic solid with diffusion under the effect of rotation

103

Dr. Lakhbir Singh

Abstract

The reflection of plane waves from the free surface of a rotating temperature-dependent thermoelastic solid half-space with diffusion is considered. The required boundary conditions are satisfied by particular solutions in the half-space to obtain a system of four non homogeneous equations in reflection coefficients. The reflection coefficients are found to depend upon the angle of incidence, thermal, diffusion and rotation parameters. A particular material is modeled as half-space to compute the reflection coefficients. Effects of temperature dependence and rotation parameters are shown graphically against angle of incidence of the plane wave.

Keywords: Thermoelasticity; plane wave; reflection; rotation; diffusion

1. Introduction

Lord and Shulman [1] and Green and Lindsay [2] extended the classical dynamical coupled theory of thermoelasticity to generalized thermoelasticity theories. These theories consider heat propagation as a wave phenomenon rather than a diffusion phenomenon and predict a finite speed of heat propagation. The reflection and refraction problems in generalized thermoelasticity are discussed by many authors [3-7].

Following the coupled thermoelastic model of Nowacki [8-10], Sherief et al. [11] presented the theory of generalized thermoelastic diffusion, which allow the finite speeds of propagation of waves.

Aoudai [13-14] studied various other problems on thermoelastic diffusion.

Waves and vibration problems become more significant in the field seismology, when we study the problems with additional parameters, e.g. viscosity, temperature, porosity, microrotation, anisotropy, diffusion, rotation etc. Recently, Othman and Kumar [15] studied the influence of temperature dependence on reflection of plane waves in magneto-thermoelasticity. In the present paper, the governing equation of temperature dependent thermoelasticity with rotation and diffusion are solved to show the existence of four plane waves in the medium. For incident plane wave, the reflection coefficients and energy ratios of the reflected waves are obtained at free surface of the half-space of medium. The influence of rotation and temperature dependence on the reflection coefficients and energy ratios of reflected waves are studied numerically.

2. Nomenclature

λ , μ	Lame's constants.
a_t	Coefficient of linear thermal expansion.
a_c	Coefficient of linear diffusion expansion.
T	Absolute temperature.
T_0	Reference temperature
T	$T - T_0$, the change in temperature such that $\|T/T_0\| << 1$.
σ_{ij}	Components of stress tensor.
e_{ij}	Components of strain tensor.
$\boldsymbol{u}_i$	Components of displacement vector.
ρ	Density.
S	Entropy per unit mass.
P	Chemical potential per unit mass
C	Mass concentration.
C_E	Specific heat at constant strain.
K	Coefficient of thermal conductivity.
D	Thermo-diffusion constant.
$E(T)$	Temperature dependent modulus of elasticity.
$f(T)$	Non-dimensional function of temperature.
α^*	Empirical material constant [$1/K$]
E_0	Constant of modulus of elasticity at $\alpha^*=0$
δ_0	Non-dimensional constant.
ν	Possion's ratio
τ_0	Thermal relaxation time.
Θ	Diffusion relaxation time
a	Constant to measure the thermo-diffusion effects.
b	Constant to measure the diffusive effects.
ϕ, Θ	Scalar and vector potentials respectively
δ_{ij}	Kronecker delta.
k	Wave number.
V	Phase speed.

3. Formulation of the problem

We consider a thermo-elastic half space ($z \geq 0$) rotating uniformly with an angular velocity $\vec{\Omega} = \Omega\vec{n}$ where $\vec{n}$ is a unit vector representing the direction of the axis of rotation .The displacement equation of motion has two additional terms centripetal acceleration **?** ×(**?** ×**u**) due to time varying motion only and Coriolis acceleration 2**?** ×$\dot{u}$ where **u** is the dynamic displacement vector, which are absent in the non-rotating media. Following Singh [12], the governing equations for an isotropic, homogenous elastic solid with generalized thermo-diffusion at constant temperature T_0 in

the absence of body forces are

(i) The constitutive equations

$$\sigma_{ij} = 2\mu e_{ij} + \delta_{ij}[\lambda e_{kk} - \beta_1(T - T_0) - \beta_2 C] \quad (1)$$

$$P = -\beta_2 e_{kk} + bC - a(T - T_0) \quad (2)$$

(ii) The equation of motion

$$\mu u_{i,jj} + (\lambda + \mu) u_{j,ij} - \beta_1 T_{,i} - \beta_2 C_{,i} = \rho[\ddot{u}_i + \mathbf{\Omega} \times (\mathbf{\Omega} \times \mathbf{u}) + 2\mathbf{\Omega} \times \dot{u}] \quad (3)$$

(iii) The equation of heat conduction

$$\rho C_E(\dot{T} + \tau_0 \ddot{T}) + \beta_1 T_0(\dot{e} + \tau_0 \ddot{e}) + aT_0(\dot{C} + \tau_0 \ddot{C}) = K T_{,ii} \quad (4)$$

(iv) The equation of mass diffusion

$$D\beta_2 e_{,ii} + Da T_{,ii} + (\dot{C} + \tau \ddot{C}) - DbC_{,ii} = 0 \quad (5)$$

where,

$$\beta_1 = (3\lambda + 2\mu)\alpha_t, \quad \beta_2 = (3\lambda + 2\mu)\alpha_c, \quad e_{ij} = \frac{1}{2}(u_{i,j} + u_{j,i})$$

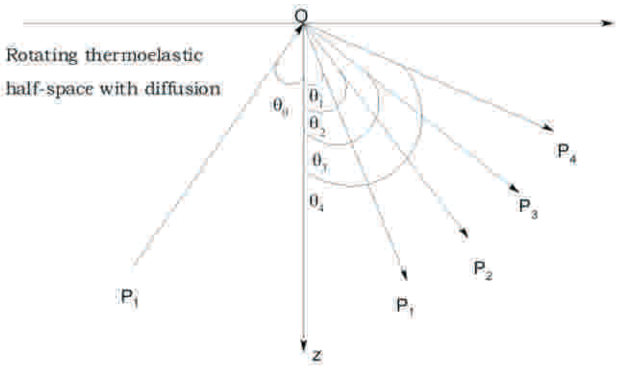

Geometry of the problem showing incident and reflected waves.

Now we consider temperature dependent mechanical properties. For that we assume,

$$E = E_0 f(T), \quad \lambda = E_0 \lambda_0 f(T), \quad \mu = E_0 \mu_0 f(T),$$

$$\beta_1 = \beta_{10} E_0 f(T), \quad \beta_2 = \beta_{20} E_0 f(T) \quad (6)$$

where,

$$\lambda_0 = \nu/(1+\nu)(1-2\nu), \quad \mu_0 = 1/2(1+\nu),$$

We also consider the following non-dimensional variables

$$x^* = C_0\eta_0 x, \quad z^* = C_0\eta_0 z, \quad u_i^* = C_0\eta_0 u_i, \quad t^* = C_0^2\eta_0 t,$$

$$\tau^* = C_0^2\eta_0 \tau, \quad \tau_0^* = C_0^2\eta_0 \tau_0, \quad T^* = \frac{\beta_{10}E_0(T - T_0)}{\rho C_0^2}, \quad C^* = \frac{\beta_{20}E_0 C}{\rho C_0^2}$$

$$\sigma_{ij}^* = \frac{\sigma_{ij}}{\rho C_0^2}, P^* = \frac{P}{\beta_{20}E_0}, C_0^2 = E_0(\lambda_0 + 2\mu_0)/\rho, \eta_0 = \rho C_E/K,$$

With the help of relations given by (6) and (7) and after dropping the asters over the non-dimensional variables for convenience, the equations (1) to (5) reduce to the following equations

$$\sigma_{ij} = [(2\beta - 1)e\delta_{ij} + (1-\beta)(u_{i,j} + u_{j,i}) - T\delta_{ij} - C\delta_{ij}]f(T)$$

$$P = -f(T)e + \alpha_3 C - \alpha_1 T$$

$$[\ddot{u}_i + \mathbf{\Omega} \times (\mathbf{\Omega} \times \mathbf{u}) + 2\mathbf{\Omega} \times \dot{u}] = [\beta e_{,i} + (1-\beta)\nabla^2 u_i - T_{,i} - C_{,i}]f(T) +$$

$$[(2\beta - 1)e f_{,i} + (1-\beta)(u_{i,j} + u_{j,i})f_{,j} - T f_{,i} - C f_{,i}]$$

$$\nabla^2 T = (\dot{T} + \tau_0 \ddot{T}) + \varepsilon\delta_0 f(T)(\dot{e} + \tau_0 \ddot{e}) + \varepsilon\delta_0\alpha_1(\dot{C} + \tau_0 \ddot{C})$$

$$f(T)D^2 e + \alpha_1 D^2 T + \alpha_2(\dot{C} + \tau\ddot{C}) - \alpha_3 D^2 C = 0$$

where

$$\alpha_1 = \frac{a\rho C_0^2}{E_0^2\beta_{10}\beta_{20}}, \alpha_2 = \frac{\rho C_0^2}{DE_0^2\beta_{20}^2 r_0}, \alpha_3 = \frac{b\rho C_0^2}{E_0^2\beta_{20}^2}, \ \varepsilon = \frac{\beta_{10}E_0}{\rho C_E}, \delta_0 = \frac{\beta_{10}E_0 T_0}{\rho C_0^2}$$

$$\beta = E_0(\lambda_0 + \mu_0)/\rho C_0^2 \qquad 1/2(1-\nu)$$

Making use of following displacement components u_1 and u_3 in terms of

$$u_1 = \frac{\partial\phi}{\partial x} - \frac{\partial\psi}{\partial z} \qquad u_3 = \frac{\partial\phi}{\partial z} + \frac{\partial\psi}{\partial x}$$

the equations (8) to (12) become

$$\sigma_{zz} = \frac{1}{\alpha}\left[\frac{\partial^2\varphi}{\partial z^2} + (2\beta - 1)\frac{\partial^2\varphi}{\partial x^2} - 2(\beta - 1)\frac{\partial^2\psi}{\partial x\partial z} - T - C\right]$$

$$\sigma_{zx} = \frac{(1-\beta)}{\alpha}\left[2\frac{\partial^2\varphi}{\partial x\partial z} + \frac{\partial^2\psi}{\partial x^2} - \frac{\partial^2\psi}{\partial z^2}\right]$$

$$(\alpha\frac{\partial^2}{\partial t^2} - \alpha\,\Omega^2 - \nabla^2)\varphi + T + C + (2\alpha\,\Omega\frac{\partial}{\partial t})\psi = 0$$

$$(2\alpha\,\Omega\frac{\partial}{\partial t})\varphi + 0\cdot T + 0\cdot C + [(1-\beta)\nabla^2 + \alpha\,\Omega^2 - \frac{\partial^2}{\partial t^2}]\psi$$

$$\nabla^2 T = \tau_m\frac{\partial T}{\partial t} + \varepsilon_1\tau_m\frac{\partial(\nabla^2\varphi)}{\partial t} + \varepsilon_2\tau_m\frac{\partial C}{\partial t}$$

$$\nabla^4\varphi + \alpha\alpha_1\nabla^2 T + \alpha\alpha_2\tau_n\frac{\partial C}{\partial t} - \alpha\alpha_3\nabla^2 C = 0$$

where $\alpha = 1/(1 - \alpha^* T_0)$.

The equations (15) to (18) are coupled in Φ, T, C and Ψ

For a harmonic wave popagating in x- direction, where wave normal lies in x-z plane, and makes an angle θ with z-axis, we consider the solution of the system of equations (15) to (18) in the following form

$$[\phi, T, C, \psi] = [\bar{\phi}_0, \bar{T}_0, \bar{C}_0, \bar{\psi}_0] \exp\{ik(x\sin\theta + z\cos\theta - Vt)\} \qquad (19)$$

Making use of equation (19) in equations (15) - (18), we obtain a homogenous system of four homogeneous equations in $\bar{\phi}_0, \bar{T}_0, \bar{C}_0$ and $\bar{\psi}_0$, which admits a non-trival solution if ξ satisfies the following biquadratic equation

$$J\xi^4 + L\xi^3 + M\xi^2 + N\xi + O = 0, \qquad (20)$$

where,

$$\xi = V^2,\ J = [4\frac{\Omega^2}{\omega^2} - \Omega_0^2]p_2,\ L = (\Omega_0^2 - 4\frac{\Omega^2}{\omega^2})\bar{p}(p_1\varepsilon_2 + p_2 + p_3) + \Omega_0 p_2(\varepsilon_1 - \beta + 2)$$

$$M = -[\bar{p}^2 p_3(\Omega_0^2 - 4\frac{\Omega^2}{\omega^2}) + (1-\beta)p_2(\varepsilon_1 + 1) + \bar{p}\Omega_0[p_1\{\varepsilon_1 + (2-\beta)\varepsilon_2\} +$$
$$p_2(2-\beta) + p_3(\varepsilon_1 + (2-\beta) + p_4(\varepsilon_2 - 1)/\bar{p}]]$$

$$N = (1-\beta)\bar{p}[p_1(\varepsilon_1 + \varepsilon_2) + p_2 + p_3(\varepsilon_1 + 1) + p_4(\varepsilon_2 - 1)/\bar{p}] + \bar{p}^2\Omega_0[p_3(2-\beta) + p_4/\bar{p}]$$

$$O = -(1-\beta)\bar{p}^2(p_3 - p_4/\bar{p}) \quad d_1 = \frac{K}{C_E\tau_m^1},\ d_2 = \frac{\rho Db}{\tau_n^1},\ d_3 = \frac{Da^2T_0}{C_E\tau_n^1}\ \ d_4 = \frac{\rho Da}{\tau_n^1},\quad \varepsilon_1 = \frac{\beta_1\beta_2T_0}{\rho C_E},$$

$$\varepsilon_2 = \frac{\rho D\beta_2^2}{\tau_n^1},\quad \tau_m^1 = \frac{i}{\omega} + \tau_0,\quad \tau_n^1 = \frac{i}{\omega} + \tau,\ \bar{p} = \frac{\alpha}{\tau_m^1},\ p_1 = \frac{\alpha_1}{\tau_n^1},$$

$$p_2 = \frac{\alpha_2}{\tau_m^1},\ p_3 = \frac{\alpha_3}{\tau_n^1},\ p_4 = \frac{1}{\tau_m^1\tau_n^1},\ \Omega_0 = 1 + \frac{\Omega^2}{\omega^2}.$$

Equation (20) is a bi-quadratic equation in ξ. Each root corresponds to a wave velocity if V^2 is real and positive. The four values of ξ correspond to four coupled plane waves P_1, P_2, P_3 and P_4 propagating with velocities V_1, V_2, V_3 and V_4, respectively.

4. Boundary conditions and Reflection coefficients

We consider the stress-free surface of a thermoelastic solid half-space with diffusion as shown in Fig.1. For an incident coupled plane wave P_1, the boundary conditions at the free surface $z = 0$ are satisfied, if the incident wave P_1 gives rise to four reflected coupled plane waves P_1, P_2, P_3 and P_4. The appropriate displacement potentials and ψ, temperature Θ and concentration C are taken in the following form

$= A_0 \exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0 - iV_1t)] + A_1\exp[ik_1(x\sin\theta_1 + z\cos\theta_1 - iV_1t)] + A_2\exp[ik_2(x\sin\theta_2 + z\cos\theta_2 - iV_2t)] + A_3\exp[ik_3(x\sin\theta_3 + z\cos\theta_3 - iV_3t)] + A_4\exp[ik_4(x\sin\theta_4 + z\cos\theta_4 - iV_4t)]$, (21) $T = {}_1A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0 - iV_1t)] + {}_1A_1\exp[ik_1(x\sin\theta_1 + z\cos\theta_1 - iV_1t)] + {}_2A_2\exp[ik_2(x\sin\theta_2 + z\cos\theta_2 - iV_2t)] + {}_3A_3\exp[ik_3(x\sin\theta_3 + z\cos\theta_3 - iV_3t)] + {}_4A_4\exp[ik_4(x\sin\theta_4 + z\cos\theta_4 - iV_4t)]$, (22) $C = {}_1A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0 - iV_1t)] + {}_1A_1\exp[ik_1(x\sin\theta_1 + z\cos\theta_1 - iV_1t)] + {}_2A_2\exp[ik_2(x\sin\theta_2 + z\cos\theta_2 - iV_2t)] + {}_3A_3\exp[ik_3(x\sin\theta_3 - iV_3t)] + {}_4A_4\exp[ik_4(x\,\mathrm{si}\theta_4 + z\cos\theta_4 - iV_4t)]$ (23) $= {}_1A_0\exp[ik_1(x\sin\theta_0 + z\cos\theta_0 - iV_1t)] + {}_1A_1\exp[ik_1(x\sin\theta_1 + z\cos\theta_1 - iV_1t)] + {}_2A_2\exp[ik_2(x\sin\theta_2 + z\cos\theta_2 - iV_2t)] + {}_3A_3\exp[ik_3(x\sin\theta_3 + z\cos\theta_3 - iV_3t)] + {}_4A_4\exp[ik_4(x\sin\theta_4 + z\cos\theta_4 - iV_4t)]$, (24)

where wave normal of the incident wave P_1 makes an angle $_0$ with the positive direction of z- axis and reflected waves P_1, P_2, P_3 and P_4 make angles θ_1, θ_2, θ_3 and θ_4 with z- axis, and

$$\varsigma_i = \left[\frac{\xi_i(\varepsilon_2 p_4 + \varepsilon_1\bar{p}p_3 - \varepsilon_1\xi_i p_2)}{\xi_i(\varepsilon_2\bar{p}p_1 + \bar{p}p_3 - \xi_i p_2 + \bar{p}p_2) - \bar{p}^2 p_3}\right],\quad \eta_i = \left[\frac{-\xi_i p_4 + \bar{p}p_4 + \varepsilon\bar{p}p_1\xi_i}{\xi_i(\varepsilon_2\bar{p}p_1 + \bar{p}p_3 - \xi_i p_2 + \bar{p}p_2) - \bar{p}^2 p_3}\right]$$

$$\chi_i = -\frac{2i\xi_i\frac{\Omega}{\omega^2}}{(\Omega_0\xi_i - (1-\beta))},\ \omega = k_i v_i\ \ (i = 1,2,3,4)$$

The required boundary conditions at free surface $z = 0$ are the vanishing of normal and tangential stresses and vanishing of heat flux and mass flux across the free surface, i.e.

$$\sigma_{zz} = 0,\quad \sigma_{zx} = 0,\quad \frac{\partial T}{\partial z} = 0,\quad \frac{\partial P}{\partial z} = 0. \qquad (26)$$

where,

$$\sigma_{zz} = \frac{1}{\alpha}\left[\frac{\partial^2\varphi}{\partial z^2} + (2\beta - 1)\frac{\partial^2\varphi}{\partial x^2} - 2(\beta - 1)\frac{\partial^2\psi}{\partial x\partial z} - T - C\right]$$

$$\sigma_{zx} = \frac{(1-\beta)}{\alpha}\left[2\frac{\partial^2\varphi}{\partial x\partial z} + \frac{\partial^2\psi}{\partial x^2} - \frac{\partial^2\psi}{\partial z^2}\right]$$

$$\frac{\partial P}{\partial z} = -(\frac{\partial^3\phi}{\partial x^2\partial z} + \frac{\partial^3\phi}{\partial x^3}) - \alpha\alpha_1\frac{\partial T}{\partial z} + \alpha\alpha_3\frac{\partial C}{\partial z}$$

In order to satisfy the boundary conditions (26), the wave number k_1, k_2, k_3, k_4 and the incident and reflected angles are connected by the relation

$k_1\sin\theta_0 = k_1\sin\theta_1 = k_2\sin\theta_2 = k_3\sin\theta_3 = k_4\sin\theta_4$, (27)

which can also written as (extended Snell's law)

$$\frac{\sin\theta_0}{V_1} = \frac{\sin\theta_1}{V_1} = \frac{\sin\theta_2}{V_2} = \frac{\sin\theta_3}{V_3} = \frac{\sin\theta_4}{V_4}$$

In view of the relation (27), the potentials given by the equations (21) – (24) satisfy the boundary condition (26) to obtain the following system of four non-homogenous equations as

$$\sum a_{ij}Z_j = Y_i,\ (i = 1,2,3,4) \qquad (25)$$

$$a_{11}=[2\beta\sin^2\theta_1+\cos 2\theta_1+(\beta-1)\chi_1\sin 2\theta_1+\frac{\varsigma_1}{k_1^2}+\frac{\eta_1}{k_1^2}]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^2$$

$$a_{12}=[2\beta\sin^2\theta_2+\cos 2\theta_2+(\beta-1)\chi_2\sin 2\theta_2+\frac{\varsigma_2}{k_2^2}+\frac{\eta_2}{k_2^2}]\left(\frac{k_2}{k_1}\right)^2$$

$$a_{13}=[2\beta\sin^2\theta_3+\cos 2\theta_3+(\beta-1)\chi_3\sin 2\theta_3+\frac{\varsigma_3}{k_3^2}+\frac{\eta_3}{k_3^2}]\left(\frac{k_3}{k_1}\right)^2$$

$$a_{14}=[2\beta\sin^2\theta_4+\cos 2\theta_4+(\beta-1)\chi_4\sin 2\theta_4+\frac{\varsigma_4}{k_4^2}+\frac{\eta_4}{k_4^2}]\left(\frac{k_4}{k_1}\right)^2$$

$$a_{21}=[\sin 2\theta_1+\chi_1\cos 2\theta_1]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^2, \qquad a_{22}=[\sin 2\theta_2+\chi_2\cos 2\theta_2]\left(\frac{k_2}{k_1}\right)^2,$$

$$a_{23}=[\sin 2\theta_3+\chi_3\cos 2\theta_3]\left(\frac{k_3}{k_1}\right)^2, \qquad a_{24}=[\sin 2\theta_4+\chi_4\cos 2\theta_4]\left(\frac{k_4}{k_1}\right)^2,$$

$$a_{31}=\cos\theta_1\frac{\varsigma_1}{k_1^2}\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^3, \qquad a_{32}=\cos\theta_2\frac{\varsigma_2}{k_2^2}\left(\frac{k_2}{k_1}\right)^3,$$

$$a_{33}=\cos\theta_3\frac{\varsigma_3}{k_3^2}\left(\frac{k_3}{k_1}\right)^3, \qquad a_{34}=\cos\theta_4\frac{\varsigma_4}{k_4^2}\left(\frac{k_4}{k_1}\right)^3,$$

$$a_{41}=\cos\theta_1[1-\alpha\alpha_1\frac{\varsigma_1}{k_1^2}+\alpha\alpha_3\frac{\eta_1}{k_1^2}]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^3, \qquad a_{42}=\cos\theta_2[1-\alpha\alpha_1\frac{\varsigma_2}{k_2^2}+\alpha\alpha_3\frac{\eta_2}{k_2^2}]\left(\frac{k_2}{k_1}\right)^3,$$

$$a_{43}=\cos\theta_3[1-\alpha\alpha_1\frac{\varsigma_3}{k_3^2}+\alpha\alpha_3\frac{\eta_3}{k_3^2}]\left(\frac{k_3}{k_1}\right)^3, \qquad a_{44}=\cos\theta_4[1-\alpha\alpha_1\frac{\varsigma_4}{k_4^2}+\alpha\alpha_3\frac{\eta_4}{k_4^2}]\left(\frac{k_4}{k_1}\right)^3$$

$$b_1=-[2\beta\sin^2\theta_0+\cos 2\theta_0-(\beta-1)\chi_1\sin 2\theta_0+\frac{\varsigma_1}{k_1^2}+\frac{\eta_1}{k_1^2}]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^2$$

$$b_2=[\sin 2\theta_0-\chi_1\cos 2\theta_0]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^2,$$

$$b_3=\cos\theta_0\frac{\varsigma_1}{k_1^2}\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^3,$$

$$b_4=\cos\theta_1[1-\alpha\alpha_1\frac{\varsigma_1}{k_1^2}+\alpha\alpha_3\frac{\eta_1}{k_1^2}]\left(\frac{k_1}{k_1}\right)^3$$

5. Energy ratios

Following Achenback [17], the rate of energy transmission per unit area denoted by P is given as

$$P=\tau_{zz}\dot{u}_3+\tau_{zx}\dot{u}_1 \qquad (30)$$

The expression of energy ratios E_i $(i=1,2,3,4)$ of reflected P_1, P_2, P_3 and P_4 are obtained as

$$E_1=Q\Bigg[\Big\{-2\beta\sin^2\theta_1-(\beta-1)\chi_1\sin 2\theta_1-\frac{\varsigma_1}{k_1^2}-\frac{\eta_1}{k_1^2}\Big\}\{-\cos\theta_1+\chi_1\sin\theta_1\}$$
$$+(1-\beta)\{\chi_1\cos 2\theta_1+\sin 2\theta_1\}\{\sin\theta_1+\chi_1\cos\theta_1\}\Bigg]\left(\frac{k_1^4 v_1}{k_1^4 v_1}\right)Z_1^2, \qquad (31)$$

$$E_2=Q\Bigg[\Big\{-2\beta\sin^2\theta_2-(\beta-1)\chi_2\sin 2\theta_2-\frac{\varsigma_2}{k_2^2}-\frac{\eta_2}{k_2^2}\Big\}\{-\cos\theta_2+\chi_2\sin\theta_2\}$$
$$+(1-\beta)\{\chi_2\cos 2\theta_2+\sin 2\theta_2\}\{\sin\theta_2+\chi_2\cos\theta_2\}\Bigg]\left(\frac{k_2^4 v_2}{k_1^4 v_1}\right)Z_2^2, \qquad (32)$$

$$E_3=Q\Bigg[\Big\{-2\beta\sin^2\theta_3-(\beta-1)\chi_3\sin 2\theta_3-\frac{\varsigma_3}{k_3^2}-\frac{\eta_3}{k_3^2}\Big\}\{-\cos\theta_3+\chi_3\sin\theta_3\}$$
$$+(1-\beta)\{\chi_3\cos 2\theta_3+\sin 2\theta_3\}\{\sin\theta_3+\chi_3\cos\theta_3\}\Bigg]\left(\frac{k_3^4 v_3}{k_1^4 v_1}\right)Z_3^2, \qquad (33)$$

$$+(1-\beta)\{\chi_4\cos 2\theta_4+\sin 2\theta_4\}\{\sin\theta_4+\chi_4\cos\theta_4\}\Bigg]\left(\frac{k_4^4 v_4}{k_1^4 v_1}\right)Z_4^2, \qquad (34)$$

where,

$$Q=\Bigg[\Big\{-2\beta\sin^2\theta_0-(\beta-1)\chi_1\sin 2\theta_0-\frac{\varsigma_1}{k_1^2}-\frac{\eta_1}{k_1^2}\Big\}\{-\cos\theta_0+\chi_1\sin\theta_0\}$$
$$+(1-\beta)\{\chi_1\cos 2\theta_0+\sin 2\theta_0\}\{\sin\theta_0+\chi_1\cos\theta_0\}\Bigg]^{-1},$$

and each energy ratios E_i $(i=1,2,3,4)$ give the rate of energy trasmission at the free plane surface for the respective reflected wave to the rate of energy transmission for an incident set of coupled P_1, P_2, P_3 and P_4 waves

where, $Z_1=A_1/A$, $Z_2=A_2/A$, $Z_3=A_3/A$, $Z_4=A_4/A$ are the reflection coefficients

6. Numerical results and discussion

For numerical purpose, a particular example of the material is chosen with the following physical constants at $T_0=300$ K [18]

$\lambda=5.775\times 10^{10}\,Nm^{-2}$, $\mu=2.646\times 10^{10}\,Nm^{-2}$, $\rho=2700\,Kg\,m^{-3}$, $C_E=9.374\times 10^{2}\,J\,Kg^{-1}\,K^{-1}$,

$K=2.06\times 10^{2}\,W\,m^{-1}\,K^{-1}$, $\tau_1=0.05$ s, $\tau=0.04$ s, $\alpha_t=0.05\,K^{-1}$, $\alpha_c=0.06\,m^3K^{-1}$, $\omega=2\,s^{-1}$

$a=0.005\,m^2s^{-2}K^{-1}$, $b=0.03\,m^5s^{-2}K^{-1}$, $D=0.5\,Kgsm^{-3}$

A Fortran program of Gauss elimination method is used to solve numerically the system of equations (29) for a special case, when $|T-T_0|<<1$, $0\le\delta_0\le 1$, $f(T)=(1-\alpha^*T_0)$

6. Conclusions

The solution of the governing equations leads to the existence of four coupled plane waves in a rotating temperature-dependent thermo-elastic material with diffusion. The reflection of these plane waves from thermally insulated free surface is studied. The relation between the reflection coefficients and the expression for energy ratios of reflected waves are obtained for an obliquely incident wave. Numerical results show that the reflection coefficient and energy ratio of the reflected waves are affected significantly by rotation and temperature-dependence of material constants. The present theoretical results will provide interesting information for the experimental seismologist and researchers working on problem in the area of thermoelasticity.

References

[1] H. W. Lord, Y. Shulman, A generalized dynamical theory of thermoelasticity, *J. Mech. Phys. Solids* **15** (1967) 299-309.

[2] A. E. Green, A. Lindsay, Thermoelasticity, *J. Elasticity* **2** (1972) 1-7.

[3] A. N. Sinha, S. B. Sinha, Reflection thermoelastic waves at a solid half space with thermal relaxation, J. Phys. Earth **22** (1974) 237-244.

[4]S. B. Sinha, K. A. Elsibai, Reflection of thermo elasticwaves at a solid half space with two thermal relaxation times, *J. Thermal Stresses* **19** (1996) 763-777.

[5] S. B. Sinha, K. A. Elsibai, Reflection and refraction of thermoelastic wave at an interface of two semi-infinite media with two thermal relaxation times, *J. Thermal Stresses* **20** (1997) 129-146.

[6]A.N. Abd-alla, A.S. AL-Dawy, The reflection phenomena of SV waves in a generalized thermoelastic medium, *Int. J. Math. Math. Sci.* **23** (2000) 529-546.

[7] J. N. Sharma, V. Kumar, D. Chand, Reflection of generalized thermoelastic wave from the boundary of a

half space, *J. Thermal Stresses* **26** (2003) 925- 942.
[8] W. Nowacki, Dynamical problems of thermoelastic diffusion in solids I, *Bull. Acad. Pol. Sci. Ser. Tech*. **22** (1974) 55- 64.
[9] W. Nowacki, Dynamical problems of thermoelastic diffusion in solids II, *Bull. Acad. Pol. Sci. Ser. Tech*. **22** (1974) 129-135.
[10] W. Nowacki, Dynamical problems of diffusion in solids, *Engg. Frac. Mech*. **8** (1976) 261-266.
[11] H. H. Sherief, F. Hamza, H. Saleh, The theory of generalized thermoelastic diffusion, Int. J. Engg. Sci. **42** (2004) 591-608.
[12] B. Singh, Reflection of P and SV waves from the free surface of an elastic solid with generalized thermodiffusion, *J. Earth. Syst. Sci*. **114** (2005) 159- 168.
[13] M. Aouadi, Variable electrical and thermal conductivity in the theory of generalized thermoelastic diffusion, *Z. Angew. Math. Phys.* **57 (2006)** 350–366.
[14] M. Aouadi, A problem for an infinite elastic body with a spherical cavity in the theory of generalized thermoelastic diffusion, *Int. J. Solids Struct.* **44 (2007)** 5711–5722.
[15] M. Aouadi, Qualitative aspects in the coupled theory of thermoelastic diffusion, *J. Thermal Stresses* **31 (2008)** 706–727..
[16] M.I.A. Othman, R. Kumar, Reflection of magneto-thermoelasticity waves with temperature dependent properties in generalized thermoelsticity, *International communication in heat and mass transfer,* **36** (2009) 513-520.
[17] J.D. Achenbach, Wave Propagation in Elastic Solids, North-Holland Pub. Company, New York (1976).
[18] Eringen, A.C. and Suhubi, E.S., Elastodynamics, II, New York Academic Press, Harcourt Brace Jovanovich Publishers (1975).

Dr. Lakhbir Singh
Associate Professor
Department of Mathematics,
Post Graduate Government College, Hisar
(Haryana), India.
Email: lsingh27@rediffmail.com
Mob.: 94161-07033

104

Total Quality Management Impact on Organizational Efficiency

Dr. Ankita Gupta

Abstract

Doing business venture in a forceful and dynamic climate calls for organization to improve and upgrade their business execution and abilities constantly. One of the vital determinants of the endurance of the organization in such conditions is the utilization of absolute quality administration. From the past few years it has been found that Total Quality Management has a great impact on organizational performance. The aim of this paper is to find out the impact of total quality management on organization efficiency. Secondary method of data collection is used in the study. Total quality management is implemented in the organization in three ways quality control, quality assurance and continuously improvement. It was also discovered that for the TQM to be properly implemented, everybody in the organization must be involved from the management to the employees and even the customers The results of the study proved that total quality management has positive impact on the improving the organization efficiency which directly correlated to the customer satisfaction. It showed that TQM is an essential device for industry to remain competitive.

Key Words: Quality, Management, Efficiency, Competitive, Organization etc.

Introduction

Total Quality Management was started at the early 1950 in Japan. **Total quality management** (**TQM**) consists of organization-wide efforts to "install and make permanent climate where employees continuously improve their ability to provide on demand products and services that customers will find of particular value."TQM is an administration approach that tries to give long haul accomplishment by giving unrivaled consumer loyalty through the consistent conveyance of value IT administrations. TQM is an administration philosophy and practice intended to valorize the human and material assets, essential assets of each and every association, which lead, when generally effectively utilized, to the accomplishment of the hierarchical goals. The effect of the total quality control on the association includes the utilization of specialized exercises intended to carry out a client situated quality as an essential obligation of general administration and of the primary showcasing tasks, designing, creation, modern relations, money and administrations, as well as of the quality control capability itself (Livia, 2021). Considering viewpoint on quality is completely connected with the field of the management. Purchasers are mindful with the comprehension and evaluation of the nature of all items and administrations, since they are the ones who ought to totally figure out the quality prerequisites, while being likewise fit for conveying these necessities to the supplier.

- Total - Each individual from the association is involved (counting the client and the supplier).
- Quality - The clients' necessities are dependably tended to;
- Management - The managers are completely dedicated.

Following are the Benefits of Total Quality Management:

- Spotlights available to market need.
- In each circle of action it guarantees better quality execution.
- It distinguishes useful and non-useful exercises.
- Supportive in confronting contest.
- Foster a satisfactory correspondence framework Progress is ceaselessly inspected.
- Decrease guarantee and client service costs.
- Profoundly fulfilled clients.

TQM can be divided into four classes. This is likewise called PDCA cycle.

Planning Stage: TQM starts with period of arranging. Everything relies on arranging thusly; it is the most basic period of TQM. In this stage, workers need to come with their questions and issues which should be thought of. Then fundamental exploration is to be finished by the workers and they need to gather important information which would help them in tracking down answers for every one of the questions and issues.

DOING Stage: An answer for a specific issue should be figure out by the workers. After that techniques are made and executed to beat the difficulties which representatives are confronting. The methodologies and arrangements should be powerful and its viability is additionally estimated in this stage.

Checking Stage: In this checking stage, representatives do a relative examination of when information is to check the viability of the cycles followed and measure the outcomes.

ACTING Stage: In this stage, every one of the determined outcomes are recorded and workers set themselves up to deal with different issues.

Figure 1: TQM System

Employees management likewise imparts a superior comprehension of significance of the item quality in representatives and makes them focused on the quality improvement. The model shows a bunch of practices which permits an association to convey quality items and services. The term complete from the all out quality administration express features the way that everyone from the association ought to be engaged with the endeavors of persistent improvement in the divisions in general. The term quality is utilized, in its typical importance, while the term the board alludes to the arrangement of authority which includes arranging, sorting out, driving and quality affirmation. While TQM gives a possibility to associations to upgrade their seriousness there is proof that numerous associations have been frustrated in the degree to which TQM has been related with supported enhancements in hierarchical benefit. Customer is the king of the market and their satisfaction is the primary motive of every organization. With customer orientation, organizations will focus on gaining a market advantage where they can outperform their competitors in terms of attracting more customers with distinguished products and charge a premium price

Review of Literature:

Topalovic (2014) performed a study to find out the attitude of corporate clients on a variety of total quality management elements. Survey method was applied in the study. The data was analyzed through the correlation and regression. According to the results of the study total quality management has positive impact on production performance and customer satisfaction.

Sadikoglu (2014) studies about the topic named "The effect of total quality management practice on performance and the reasons of and the barriers to TQM practices in Turkey". he sample was chosen from the part firms to Turkish Quality Association and the organizations situated in the Kocaeli-Gebze Coordinated Modern Zone they got 242 usable polls, with a palatable reaction pace of 48.4 percent.In this study exploratory examination and regression technique was used. This study has shown that different TQM rehearses altogether influence different execution results. Results uncovered that essential deterrent that the organizations in Turkey face were needof representative inclusion, mindfulness and responsibility of the workers, improper firm construction, and absence of the assets. It is suggested that organizations ought to proceed with carry out TQM with all factors to further develop execution.

Al- Qahtoni (2015) conducted a study to know about the impact of total quality management on organizational performance. This study was conducted in Pakistan. According to the study there were five stages for implementing total quality management. Implementation of total quality management started from no customer focus to quality control, quality control to quality assurance, quality assurance to continuously quality improvement and at last to finally quality award.

Chitra (2018) try to figure out the idea of TQM and its components, standards and advantages in authoritative development. This study was conceptual in nature. According to the results of the study TQM is required in each association for its advantages whether it is an assembling organization or a service area. Advantages of TQM make its execution an unquestionable requirement in each space. It is obvious from the above conversation that association

without TQM including components, standards and advantages would be an incredible delinquent and would be fragmented as well. In this manner each organization ought to carry out TQM for their prosperity and development.

Yeng (2018) conducted a study "The Impact of Total Quality Management (TQM) on Competitive Advantages: A Conceptual Mixed Method Study in Malaysia Luxury Hotel Industries". Semi- Structure Interview method was used in the study to collected the data from 122 hotels (4 star and 5 star). In this study the research review various elements like leadership, strategic planning, suppliers quality management, process management, product and service design, employees management and customer relationship management.

Livia (2021) conducted a study on the topic "Total Quality Management- An Instruments for Improving Organizational Efficiency". The purpose for this paper is to dissect the feature components of Total Quality Management (TQM). TQM addresses an incorporated exertion intended to work on the nature of each level of the association. All Total Quality Management (TQM) is an approach to driving an association fixated on quality through the interest of its individuals. Through this model, consistent improvement is looked for, alongside the continuous presentation of the new cycles, to get a more significant level of greatness in associations.

Objective of the Study:

The aim of this paper is to find out the impact of total quality management on organization efficiency.

Research Methodology:

This study is descriptive in nature and used secondary method of data collection. For the secondary data collection journals, magazine, newspaper, internet etc is used.

Implementation of Total Quality Management:

An effective TQM execution requires a critical preparation for the representatives engaged with it. Since the preparation program can remove representatives from their everyday work, this at last can have a negative transient effect. Likewise, since Complete Quality Administration will in general bring about a predictable series of steady changes, it can prompt making a disagreeable reaction from those workers who favor the current framework, or representatives who fear losing their positions as a result of it. Total Quality Management works best in a climate where there is solid help and responsibility from the administration. Organization executes TQM to acquire upper hand as far as quality, efficiency, consumer loyalty, and productivity. Here is impressive narrative proof on the degree to which TQM upgrades the potential for firms to work on organization performance.

Total Quality Management Impact on Organizational Efficiency:

TQM is a comprehensive and moral methodology of associations to persistently foster their products/services or processes including all stakeholders to satisfy their clients and to further develop execution and maintainability. The outcomes give that by and large TQM rehearses emphatically affects all exhibition means. Quality practices had become so important that management accounting could no longer ignore TQM. Traditional accounting supports cost and production analysis, but not quality analysis. But in the modern time it is necessary for the organization to focus on total quality management if they want to stay in this competitive market for the longer time period. TQM is an administration approach of an association zeroed in on quality, in light of the interest of every one of its individuals and focusing on long haul accomplishment through consumer loyalty and advantages to all individuals of the association and society. While analyzing the issue, the market analysts accept that the customers are unsatisfied due to the total quality management (TQM) failure. The impact of Total Quality Management on customer satisfaction is positive and helps in sustainable development in the companies. TQM is a way to deal with working on the

intensity, adequacy and adaptability of an association to help consumer loyalty. Incredible assistance influences the maintenance of existing clients and actuation of new clients. As an outcome, it brings high client maintenance and fulfillment that helps them for practical improvement of the organization.

Conclusion:

The findings of this study discover that TQM has a strong positive effect on organizational performance and customer satisfaction. TQM capitalizes on the involvement of management, workforce, suppliers, and even customers, in order to meet or exceed customer expectations. TQM centers around persistent interaction improvement inside associations to give prevalent client worth and address client issues. TQM a famous rule for hierarchical administration is taken on for creating vital info maps and info charts for an Informative association.

References:

Al-Qahtani, N. D., Alshehri, S. S. A., & Aziz, A. A. (2015). The impact of Total Quality Management on organizational performance. *European Journal of Business and Management*, *7*(36), 119-127.

Chitra. (2018). **A Conceptual Study of Total Quality Management. *International Journal of Research and Analytical Review,* 5(4), 188-190.**

Livia, C. G. (2021). **Total Quality Management – An Instrument for Improving Organizational Efficiency. American Journal of Engineering Research (AJER), 10(5), 105-110.**

Sadikoglu, E., & Olcay, H. (2014). The effects of total quality management practices on performance and the reasons of and the barriers to TQM practices in Turkey. *Advances in Decision Sciences*, *2014*.

Topalović, S. (2015). The implementation of total quality management in order to improve production performance and enhancing the level of customer satisfaction. *Procedia Technology*, *19*, 1016-1022.

Yeng, S. K., Jusoh, M. S., & Ishak, N. A. (2018). The impact of Total Quality Management (TQM) On competitive advantage: A conceptual mixed method study in the Malaysia Luxury hotel industries. *Academy of Strategic Management Journal*, *17*(2), 1-9.

https://asq.org/quality-resources/total-quality-management
https://en.wikipedia.org/wiki/Total_quality_management
https://cleartax.in/s/total-quality-management

Dr. Ankita Gupta
Assistant Professor,
Department of Management Studies
The Technology Institute of Textile & Sciences, Bhiwani
guptaankita623@gmail.com
+9466276156(M)

105

: महिला किसानों का कृषि में योगदानः

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचाय

सारांश

कृषि क्षेत्र की इस चतुर्मुखी उन्नति के पीछे हमारी महिलाओं का बहुत बड़ा हाथ है। हमारे कृषि प्रधान देश में आज भी हमारी अर्थव्यवस्था का लगभग 70 प्रतिशत भाग कृषि या उससे सम्बन्धित उद्योगों पर निर्भर है। हमारे देश की कुल जनसंख्या का लगभग 48 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है, जिसमें से लगभग 75 प्रतिशत महिलायें ग्रामीण अंचलों में निवास करती हैं। आज भी ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन तथा उससे सम्बन्धित उद्योग ही ग्राम्य अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार हैं। हमारे देश में कुल कृषि कार्य का लगभग 70 प्रतिशत कार्य महिलाओं के द्वारा किया जाता है। वे फसल उगाने से पूर्व खेत की तैयारी खाद में बीजों की बुवाई, पौधों की रोपाई, खरपतवार नियंत्रण, फसल की कटाई, निंदाई, गुड़ाई आदि समस्त कार्यों में अपना पूर्ण योगदान देती हैं। अपनी स्वयं की जमीन पर कृषि कार्य करने वाली अथवा खेतिहर मजदूर के रूप में कार्य करने वाली अथवा खेतीहर मजदूर के रूप में कार्य करने वाली से महिला शक्ति चूंकि असंगठित, अशिक्षित शोषित, रूढ़िवादी तथा सामाजिक परम्पराओं से जकड़ी हुई है, अतः इनके कार्यों का मूल्यांकन न तो इनका परिवार करता है, न समाज और न राष्ट्र

प्रस्तावना :

भारत में कृषि को रीढ़ की हड्डी (Back bone) माना जाता है, देश की आर्थिक गतिविधियों का सर्वोपरि क्षेत्र माना जाता है। भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहती है। अनेक महिलाएँ अपने जीविकोपार्जन हेतु विभिन्न प्रकार के कृषि कार्य करती हैं। देश में कृषि को सबसे बड़ा असंगठित क्षेत्र माना जाता है जिसमें बड़ी संख्या में भारतीय ग्रामीण महिलाएँ नित्य सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। ये ग्रामीण महिलाएं अनेक कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी कार्य करती हैं। व्यक्तियों के साथ खेत में बड़ी तत्परता के साथ कृषि कार्य करने के अतिरिक्त घर एवं बच्चों का भी भली–भांति ध्यान रखती हैं। अतः ग्रामीण महिलाएँ दोहरी भूमिका निभाती हैं यथा 1. घर व बच्चों की देखभाल और 2. घर के बाहर कृषि के विभिन्न कार्यों को करने में भी शामिल रहती हैं। इन्हीं कारणों के आधार पर ग्रामीण महिलाएँ कृषि कार्य बल (Agrticultural work force) की रीढ़ की हड्डी मानी जाती हैं, परन्तु न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर इनके कठोर परिश्रम की अनदेखी की गयी है। कृषि में ग्रामीण महिलाएँ सबसे कठिन एवं कमर तोड़ने वाले कार्यों को पूरी निष्ठा के साथ करती हैं। ग्रामीण महिलाएँ कृषि से सम्बन्धित कार्यों, पशुपालन के कार्यों, घरेलू कार्य, पूर्ण रूप से लगन एवं निष्टा से करती हैं ।

भारत में महिला कार्य बल :

वर्ष 2011 में, भारत में सकल कामगारों की संख्या 481.90 मिलियन थी। इसमें कृषकों की संख्या 111.8 तथा कृषि श्रमिकों की संख्या 144.3 बिलियन थी। कुल 263 मिलियन लोग कृषि सेक्टर में लगे हुए हैं। वर्ष 2001 में इस कार्य बल में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों की महिलाएँ एवं पुरुष सम्मिलित हैं। इनमें पुरुष एवं महिलाओं की संख्या क्रमशः 275.46 एवं 127.05 मिलियन थी । शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरुष कामगारों की संख्या अधिक रही है। शहरों में सकल (पुरुष + महिला) कामगारों की संख्या (91.86 मिलियन) ग्रामीण की (310.66 मिलियन) तुलना में कम रही है।

भारत में ग्रामीण कार्य बल (310.66 मिलियन) से पुरुषों एवं महिलाओं की संख्या क्रमशः 114.20 व 101.46 है। इस कार्य बल में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों की महिलाएं एवं पुरुष शामिल हैं। इन कार्यों को विभिन्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे– कृषक, कृषि मजदूर, घरेलू उद्योगों में काम काज, अन्य कामगर आदि ।

भारतीय ग्रामीण कार्य बल में से सबसे अधिक लोग कृषि सम्बन्धित कार्यों में संलग्न रहते हैं। पुरुष कामगारों में से 42.19% लोग कृषि करते हैं जबकि 27.48% लोग कृषि मजदूर के रूप में कार्य करते हैं और लगभग इतने ही प्रतिशत लोग अन्य कार्यों में कार्यरत हैं। जहाँ तक महिला कार्य बल का प्रश्न है, सबसे अधिक (43.4%) ग्रामीण महिलाएँ कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। इसके बाद 36.46% महिलाएं कृषक के रूप में कार्य करती हैं। घरेलू उद्योगों में कामगारों के रूप में सबसे कम (5.44%) ग्रामीण महिलाएँ शामिल हैं, जबकि अन्य कार्यों में लगभग 15% महिलाएँ शामिल हैं।

शहरी कामगार महिलाओं में से मात्र 4.26% कृषि कार्य करती हैं जबकि 11.03% महिलाएँ कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। सबसे अधिक शहरी महिलाएँ (71.77%) अन्य कार्यों में

कार्यरत हैं। अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ कृषि व्यवसाय से जुड़ी हैं, या तो ये महिलाएं महिला कृषक की भूमिका निभाती हैं अथवा खेतों में महिला मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इनके जीविकोपार्जन का प्रमुख स्रोत या तो कृषि है अथवा कृषि मजदूरी ।

कृषि में महिलायें :

वर्ष 2011 की भारत की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की कुल संख्या 587.584 मिलियन थी। वर्ष 2001 में इनमें से 41.30 मिलियन महिला कृषक जबकि 50.09 मिलियन महिलाएं कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। लगभग 1.32 मिलियन महिलाएं पशुणलन, वानिकी, मत्स्यपालन, शिकार करने, रोपण फसलों, बागानों एवं अन्य गतिविधि में शामिल थी। सन् 1951 से 1991 की अवधि में उद्योग एवं सेवा में महिलाओं की भागीदारी लगभग 20 से 23% के आस–पास रह गयी।

महिलाओं की बहु–आयामी भूमिका एवं कार्य :

एक महिला की भूमिका जैविक एवं सामाजिक रूप से संयुक्त व विभिन्न कार्यों के लिए होती है। जिसमें माँ के रूप में, पत्नी के रूप में, एक घर संभालने वाली के रूप में और एक कामगार के रूप में। महिला की सभी भूमिकाओं का महत्ता (Importance) अपने स्थान पर सर्वोपरि है। कामगार के रूप में महिला की भूमिका, अन्य तीन के समान होती है, परन्तु उसकी एक सक्रिय कामगार एवं उत्पादक की भूमिका का कभी–कभी आभार माना जाता है जबकि एक परिवार के निर्वाहन हेतु यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। महिलाओं की कृषि में बहु आयामी भूमिका है।

कृषि में महिलाओं की भागीदारी :

भारतीय ग्रामीण महिलाएं कृषि कार्यों में विशेष रूप से शामिल रहती हैं। हालांकि उनके शामिल होने का स्वभाव एवं सीमा, कृषि उत्पादन पद्धतियों की विभिन्नता पर निर्भर करती है। कृषि उत्पादन प्रणाली में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी, भू–स्वामित्व (Land ownership) के स्तर पर निर्भर करती है। उनकी भूमिका प्रबंधक से भूमिहीन मजदूर की सीमा तक होती है। कृषि के समग्र उत्पादन की दृष्टि से उसमें कुल श्रम का लगभग 55–66% औसत योगदान महिलाओं का होता है, कुछ क्षेत्रों में यह योगदान और भी अधिक होता है। भारत में हिमालय के क्षेत्रों में एक हेक्टेयर खेती में प्रतिवर्ष एक बैल जोड़ी 1064 घण्टे, एक पुरुष 1212 घण्टे और एक महिला 3085 घण्टे कार्य करती है । ये आंकड़े महिलाओं की खेती में महत्त्वपूर्ण योगदान की व्याख्या करते हैं (विश्व खाद्य संगठन, 1991)

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ० एम०एस० स्वामीनाथन के अनुसार, "कुछ इतिहासकार मानते हैं कि वह एक महिला ही थी जिसने फसल के पौधों का सर्वप्रथम ग्राम्यन किया. इसलिए खेती की कला एवं विज्ञान का शुरुआत हुई। आदिकाल में जब मानव भोजन की खोज में शिकार करने जाते थे, उसी दौरान महिलाएँ वहाँ के मूल पौधों के बीज इकट्ठा करने का कार्य करती थी। इन्हीं बीजों में से भोजन, रेशा, चारा, पशु आहार एंव ईंधन की दृष्टि से उपयुक्त् पौधों को उगाना प्रारम्भ किया।"

कृषि के विकास में महिलाओं ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक भूमिका निभायी है। महिलाओं की मूल जीवन को सहारा देने वाली प्रणालियों जैसे मृदा, जल एवं पौध संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है और अभी भी निभा रही है और निकट भविष्य में निभाती रहेगी। उन्होंने न मृदा में कार्बनिक पदार्थों को पुनर्चक्रित कर मृदा के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा है और प्रजातीय विविधता (Varietal diversity) और आनुवंशिक रोधकता को बरकरार रखते हुए फसलों की सुरक्षा को प्रोत्साहित किया है। अतः महिलाओं की सुरक्षा को प्रोत्साहित किया है। अतः महिलाओं की बिना बौद्धिक एवं भौतिक सहभागिता के स्थानान्तरित खेती (Shifting cultivation) की विकल्पी पद्धतियों (Alternative systems) को प्रचलित करने, अनुवंश एवं मृदा कटाव (Soil erosion) को रोकने एवं आर्थिक उद्देश्यों हेतु महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी पौधों एवं पशुओं की देखरेख एवं उनके स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करना शायद सम्भव न हो पाता।

मुख्य फसल उत्पादन के साथ–साथ कृषि के सम्बन्धित क्षेत्रों, जैसे– पशुधन उत्पादन (Livestock production), बागवानी (Horticulture), कटाई के उपरान्त कार्य, कृषि–सामाजिक वानिकी (Agri & Social forestry), मत्स्यपालन (Fisheries) आदि में भी महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं के इस महत्त्वपूर्ण योगदान को वास्तव में माना तो गया परन्तु बहुत लम्बे समय से अनदेखी भी की गई। कृषि में महिलाओं की भागीदारी का स्वभाव एवं सीमा निःसंदेह एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बहुत परिवर्तनीय होती है। जिनमें पारिस्थितिकी उप क्षेत्र, खेती की पद्धतियाँ, जातियाँ, वर्ग एवं परिवार के चक्र में अवस्था आदि के कारण परिवर्तनीय होती है, परन्तु इन परिवर्तनों पर ध्यान न दें तब भी कृषिगत उत्पादन में जुताई को छोड़ कर ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसमें महिलाओं का सक्रिय रूप से योगदान न हो, महिलाओं की कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती ही है। इसके अतिरिक्त वे मूल रूप से पत्नियाँ, माताओं एवं घर की देखभाल करने के दायित्वों का भी भली–भांति निर्वाहन करती हैं ।

कृषि गतिविधियों गतिविधियों में महिलाओं की संलिप्तता (भागीदारी) :

प्रायः कृषि क्षेत्र की सभी गतिविधियों में महिलाएं शामिल होती हैं जिनमें पुरुषों की तुलना में महिलाओं का योगदान अधिक होता है। खेती के सभी चरणों में महिलाएं, पुरुषों के साथ मिलकर कार्य करती हैं जैसे खेत की तैयारी (Field preparation), बीजों की सफाई (Cleaning of seeds), बीजों की बोआई (Sowing of seeds), पौध रोपाई (Transplanting), अन्तः कृषि क्रियायें (Inter culture), कटाई (Harvesting), कटाई के उपरान्त के कार्य आदि कृषि क्रियाओं में महिलाओं की संलिप्तता निम्न तालिका में दर्शायी गई है।

तालिका : कृषि क्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी

गतिविधियाँ	महिलायें	पुरुष
घरेलू गतिविधियां	खाना बनाना (पीसना, कूटना, बनाना आदि)। झाड़ू लगाना, कपड़े धोना तथा बर्तन साफ करना। पानी लाना। गाय के गोबर से उपले पाथना।	– – – –
बच्चे की देखभाल	बच्चों को खिलाना। बच्चों की देखभाल करना।	– –
कृषि गतिविधियां	खुदाई करना बुआई बिनाई खेती से घास काट कर मूंगफली चुनना उड़ाई/ओसाई सब्जियाँ तोड़ना	जुताई, खुदाई करना खेतों की सिंचाई करना फसलों की कटाई, बुआई – सब्जियां तोड़ना उर्वरक डालना
विक्रय करना	सब्जियां, मूंगफली, धान्य या कभी–कभी जलाऊ लकड़ी बेचना	कभी–कभी
सम्बन्ध गतिविधियां	पशुओं को चारा–दाना खिलाना कभी–कभी पशुओं का नहलान, दूध दूहना गौशाला की साफ–सफाई	पशुओं को चारा–दाना खिलाना दूध दूहना, पशुओं को नहलाना, गौशाला की कभी–कभी सफाई

:: ग्रामीण महिलाओं द्वारा समय एवं ऊर्जा का वितरण ::

गतिविधियाँ	अवधि घण्टे / मिनट	ऊर्जा (कि० कैलोरी)	प्रतिशत
घरेलू गतिविधियाँ	7.55	903	40.53
कृषि एवं सम्बन्ध गतिविधियाँ	7.00	283	39.69
सोना	6.50	284	12.76
आराम व मनोरंजन	2.15	155	6.97
योग	23.20	2285	100.00

महिलाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य :

भारत में महिलाओं द्वारा विभिन्न कार्य किये जाते हैं। इन में से प्रमुख कार्य निम्नवत् हैं –

- मजदूरी एवं वेतन भोगी रोजगार ।
- भविष्य के लिए घर से बाहर स्व–रोजगार ।
- आय हेतु कृषि एवं घरेलू उद्योगों में स्व–रोजगार ।
- स्वयं के उपयोग के लिए खेती में स्व–रोजगार ।
- कृषि से सम्बन्धित समस्त क्षेत्रों में नवीन निर्वाहन की अन्य गतिविधियों, जैसे– डेयरी, पशुपालन, कुक्कुट पालन, भेड़–बकरी पालन, सुकर पालन, मत्स्य पालन, शिकार करना, फल एवं सब्जियों की खेती ।
- घरेलू कार्यों से सम्बन्धित गतिविधियों, जैसे– ईंधन, चारा, पानी एवं जंगल से सम्बन्धित कार्य। घर बनाने एवं उनके सुधार और रख–रखाव के कार्य, पशुओं के गोबर से उपले बनाना, खाद्य परिरक्षण इत्यादि ।
- घरेलू कार्य, जैसे– भोजन बनाना, साफ–सफाई, बुजुर्गों एवं बीमार लोगों की देखभाल इत्यादि ।

कृषक महिलाओं को आने वाली प्रमुख बाधायें :

- ग्रामीण महिलाओं में निरक्षरता (Illiteracy) की उच्च दर ।
- नेतृत्व की कमी एवं ग्रामीण कार्यक्रमों के संगठनात्मक एवं आर्थिक मामलों में अनुपयुक्त भागीदारी (Unproductive partnership)
- घरेलू एवं खेती की विभिन्न क्रियाओं हेतु अनुपयुक्त जल प्रदायगी।
- विकास कार्यक्रमों की सदस्यता लेने में बंदिश ।
- ग्रामीण महिलाओं के शारीरिक कार्य को कम करने के उद्देश्य से उपयुक्त प्रौद्योगिकी (Technology) का अभाव।
- ऋण एवं अन्य आदानों एवं सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच।
- यहाँ तक कि घरेलू मामलों (Domestic matters) में भी निर्णय – निर्माण में कम सहभागिता।
- पुरुषों का शहरों की ओर पलायन जो महिलाओं पर दबाव बढ़ाता है।
- नेतृत्व एवं प्रबंधन विकास में कौशल एवं इच्छा शक्ति की कमी।
- सहकारी संगठनों में महिलाओं के संगठनों एवं उनके लिए राशि के आबंटन में शासकीय सहायता की कमी।

महिलाओं के विकास में प्रमुख बाधायें :

भारतीय कृषि के दृष्टिकोण से महिलाओं के समग्र विकास के मार्ग की कुछ प्रमुख बाधायें निम्नवत् हैं :–

- मृदा के संसाधनों तक सीमित पहुँच।
- कृषि के आदानों एवं ऋण तक सीमित पहुँच।
- अपर्याप्त तकनीकी सामर्थ्य ।
- निर्णय–निर्धारण में कम सहभागिता।
- वर्तमान अनुसंधान एवं विस्तार पद्धति की खराबी।
- लिंग का कम या बिल्कुल ध्यान न रखना।
- जन–माध्यम के साधनों तक कम पहुँच।

रणनीतिक हस्तक्षेप :

महिलाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की बाधाएँ एवं रुकावटों/समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन कारकों के कारण महिलाओं का समग्र विकास नहीं हो पाता है। इन्हें कम करने या दूर करने के लिए रणनीतिक हस्तक्षेप अनिवार्य है। रणनीति बनाने से पूर्व इन समस्याओं का आंकलन एवं पहचान आवश्यक है। ये

समस्याएं तुरन्त समाप्त नहीं होती हैं। अतः इन्हें दूर करने हेतु अल्पावधि, मध्यावधि एवं दीर्घावधि रणनीतियाँ बनाई जाती हैं। उक्त बाधाओं के मूल्यांकन एवं पहचानी गई बाधाओं हेतु निम्न रणनीतिक सुझाव दिये जा सकते हैं

अल्पावधि रणनीतियाँ (Short term strategies) : इन रणनीतियों में महिलाओं की मूल समस्याओं की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम पर जोर दिया जाता है। ये कल्याणकारी योजनाएं निम्नवत् हो सकती हैं—सेवाएं योजना।

साक्षरता कार्य हेतु योजना।

कृषि उत्पादन तकनीक कृषक महिलाओं तक पहुँच बनाना।

गृह संचालन कार्य हेतु आर्थिक योजना।

आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण योजना ।

मध्यावधि रणनीतियाँ (Mid term strategies) :

इस रणनीति में महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों एवं उनके आर्थिक आधार को सूदृढ़ बनाने के कार्यक्रम में सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाता है। ऐसा होने से किसान महिलाओं के समाजिक एवं समाज की राजनैतिक मुख्य धारा में प्रवेश करने में सहायता मिलेगी। इस चरण के प्रमुख रणनीतिक हस्तक्षेप निम्नवत् हैं –

उपयुक्त एवं वित्तीय साधनों तक पहुँच बनाना।

उपयुक्त संपत्तियों का स्वामित्व ।

उत्पादकता सम्पत्तियों का स्वामित्व ।

आय बढ़ाने वाली योजनाओं के माध्यम से महिलाओं की आय सुरक्षित करना ।

संचार एवं मध्यस्तता के फैसलों को सुधारने हेतु संचार माध्यमों तक महिलाओं की पहुँच बढ़ाना।

उन्नति के लिए सभी प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा, जैसे– विस्तार शिक्षा (Extension education) एवं व्यावसायिक, व्यापार एवं शिक्षा (Vocational, Bsiness & Education) तक पहुँच बनाना जिससे उद्यमिता के कौशलों में सुधार हो सके।

कृषि बीमा योजना

महिला कृषक बीमा योजना

दीर्घावधि रणनीतियाँ (Long term strategies) :

महिलाओं के उच्च स्तर पर सशक्तिकरण हेतु सामाजिक एवं राजनैतिक मुख्य धारा महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इस सन्दर्भ में कुछ रणनीतियाँ जो इसमें लागू की जा सकती हैं वे निम्नलिखित हैं –

सामुदायिक कार्यों में संगठनात्मक एवं सामाजिक नेतृत्व क्षमता कौशल को बढ़ाना।

राजनैतिक शक्ति, नीति निर्धारण एवं महिलाओं के लिए रणनीतिक प्रशिक्षण योजनाओं तक पहुँच बढ़ाना।

समूह बनाकर महिलाओं के स्वयं के लिए तंत्र एवं सशक्तिकरण हेतु संगठन एवं स्वयं–सहायता समूहों (Self Help Groups) की स्थापना करना।

दूरस्थ शिक्षा (Distance Education) एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों की शिक्षा उपलब्ध कराना।

लिंग आधारित मुद्दों की पहचान कर सामाजिक आर्थिक बदलावों को प्रोत्साहित करना ।

ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं का विकास एवं विस्तार

कृषि संसाधनों का विकास एवं प्रशिक्षण

मनोरंजन के साधन

निष्कर्ष :

राज्य में खेतों से अन्न उपजाने में महिलाओं की संख्या पुरूषों से ज्यादा है। ई–श्रम पोर्टल 2022 के अनुसार राजस्थान में कुल 1.25 करोड़ किसान हैं, इनमें 51.01 फीसदी महिलाऐं और 48. 99 फीसदी पुरूष किसान हैं। खास बात यह है कि अब राजस्थान की महिला किसान अंगूठा छाप नहीं बल्कि उच्च शिक्षा लेकर खेती में नवाचार कर रही है। यही नहीं, राज्य व नेशनल स्तर पर सम्मानित भी हो रही हैं। तमाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अब महिला किसानों के जैविक उत्पाद सीधे खेतों से खरीद कर दिल्ली, मुम्बई व गुरूग्राम के बड़े स्टोर व पांच सितारा होटलों में बेच रही है।

कृषि गणना 2015–16 में कुल महिला प्रचालित भूमि जातों की संख्या 7.75 लाख रही, जबकि 2010–11 में यह संख्या 5. 46 लाख थी। इस लिहाज से इसमें 41.9 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। वहीं वर्ष 2022 के ताजा आंकड़ों के अनुसार कुल किसानों में महिलाओं की संख्या 51.01 फीसदी है।

महिलाऐं अब खेती में नई तकनीक अपना रही है। कम पानी में भी अच्छी पैदावार ले रही हैं। वे ट्रेनिंग में भी उत्साह दिखा रही हैं और पुरस्कार भी जीत रही हैं। महिलाऐं खेती में अपनी अलग पहचान बना रही हैं।

संदर्भ :

1. Audichy R. Malo, H. Acharya S.K, Somani L.L. and Malo S.R. 2015. Text book of Agribusiness Management, Udaipur, Agrotech Publishing Academy.

2. Bahal R. 2008. Agripreneurship Development in India, in Dynamics of Entrepreneurship Developmentg in Agriculture: Basics to Advances, (eds) Diapk De nd B.

Jirli, Ganga Kaveri Publishing HOuse,Varanasi, Uttar Pradesh.

3. Chandra Shekara PO, Balasubramani N, Charyulu A.S. 2010. Public Private Partnership in Agricultural Extension Management : A case study of Hoshngabad Mode; Hyderabad, MANAGE.
4. Dutt R. and Sundaram K.P.M. 2007. Indian Economy, New delhgi, S. Chand and Company Ltd.
5. Kumar P. 2006. Contract Farming through Agribusiness Farm and State Corporation. A case Study in Punjab. Economic and Political Weekly, December 30.
6. Kumar S.A., Purnima S.C., Abraham M.K.,m Jayashree K. 2003. Entrepreneurship Development. New delhi, New Age International (P) Ltd.
7. Mohanty, S.K. 2005. Fundamentals of Entrepreneurship, New Delhi, PHI Learning Pvt. Ltd.
8. Rao N.H. 2009. Framework for Implementing Public Private Partnership in Agricultural Research, Rajendranagar, Hyderabad, NAARM.
9. Singh A.K. 2007. Perceived Constraints at Rural Entrepreneurs related with their Income Generating Enterprises; A Perspective of Bihar State, in Developmental Aspects of Entrepreneurship, (ed.) S. Bhargava, New Delhi, Response (Sage.)
10. Singh S. 2000. Changing Structure nd Organisation of Agriculture and Small Farmers in India. Social Change Vol. 35 No. 4

डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य
सह–आचार्य (कृषि–प्रसार)
श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा
मो. 9460545836
Email : gpacharya.6@gmail.com

Women Empowerment And Social Work

106

Dr. Dinesh Kumar Singh

Introduction :

"Empowering a woman, is like empowering a country"

The first and foremost question which comes in our mind is "what is empowerment". Sociological empowerment often addresses members of groups that social discrimination processes have excluded from decision-making processes. Empowerment is the process of obtaining basic opportunities for marginalized people, either directly by those people, or through the help of non-marginalized others who share their own access to these opportunities. Empowerment also includes encouraging, and developing the skills for, self- sufficiency, with a focus on eliminating the future need for charity or welfare in the individuals of the group. This process can be difficult to start and to implement effectively.

Coming on to women empowerment, In the simplest of words it is basically the creation of an environment where women can make independent decisions on their personal development as well as shine as equals in society. According to UN definition: women's sense of self-worth, their right to have and determine choice, their right to have access to opportunities and resources, their right to have power to control their own lives both within and outside the home, and their ability to influence and direction of social change to create just more social and economic order, nationally and internationally.

WOMEN EMPOWERMENT: NEED OF THE HOUR

Women want to be treated as equals so much so that if a woman rises to the top of her field it should be a commonplace occurrence that draws nothing more than a raised eyebrow at the gender. This can only happen if there is a channelized route for the empowerment of women.

Two acts have been enacted to emancipate women in India. These are: Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 and the Compulsory Registration of Marriage Act, 2006. The Domestic Violence Act recognizes that abuse be physical as well as mental. Anything that makes a woman feel inferior and takes away her self-respect is abuse. Compulsory Registration of Marriage Act can be beneficial in preventing the abuse of institution of marriage and hindering social justice especially in relation to women.

It would help the innumerable women in the country who get abandoned by their husbands and have no means of proving their marital status. It would also help check child marriages, bigamy and polygamy, enable women to seek maintenance and custody of their children and widows can claim inheritance rights. The Act is applicable on all women irrespective of caste. creed or religion. It would truly empower Indian women to exercise their rights. The subject of empowerment of women has becoming a burning issue all over the world including India since last few decades. Many agencies of United Nations in their reports have emphasized that gender issue is to be given utmost priority. It is held that women now cannot be asked to wait for any more for equality. Inequalities between men and women and discrimination against women have also been age-old issues all over the world. Thus, women's quest for equality with man is a universal phenomenon. What exists for men is demanded by women?

They have demanded equality with men in matters of education, employment, inheritance, marriage, and politics and recently in the field of religion also to serve as cleric (in Hinduism and Islam). Women want to have for themselves the same strategies of change which menfolk have had over the centuries such as equal pay for equal work. Their quest for equality has given birth to the formation of many women's associations and launching of movements. The position and status of women all over the world has risen Incredibly in the 20th century. We find that it has been very low in 18th and 19th centuries in India and elsewhere when they were treated like 'objects' that can be bought and sold. For a long time women in India remained within the four of their household. Their dependence on menfolk was total.

A long struggle going back over a century has brought women the property rights, voting rights, an in civil rights before the law in matters of marriage and employment (in India women had not to struggle for voting rights as we find in other countries).In addition to the above rights, in India, the customs of purdah (veil system), female infanticide, child marriage, sati system (self-immolation by the women with their husbands), dowry system and the state of permanent widowhood were either totally removed or checked to an appreciable extent after independence through legislative measures.

There was a time when women's education was not a priority even among the elite. Since the last quarter of the

20th century and more so after the opening up of die economy, post-1991, a growing number of women have been entering into the economic field, seeking paid work (remunerative jobs) outside the family. Women are playing bigger and bigger role in economic field as workers, consumers, entrepreneurs, managers and investors. According to a report of The Economist, 'Women and the World Economy, in 1950, only one-third of American women of working age had a paid job. The rapid pace of economic development has increased the demand for educated female labor force almost in all fields. Women are earning as much as their husbands do, their employment nonetheless adds substantially to family and gives family an economic advantage over the family with only one breadwinner.

This new phenomenon has also given economic power in the hands of women for which they were earlier totally dependent on males. Economically independent women feel more confident about their personal lives. Hence, they are taking more personal decisions, for instance, about their further education, marriage, etc. More and more women want freedom of work and control their own reproduction, freedom of mobility and freedom to define one's own style of life. It is contended that freedom leads to greater openness, generosity and tolerance.

This new pattern of working wives and mothers has affected the status of women in many ways. Women's monetary independence leads them to the way to empowerment. Sociologist Robert Blood (1965) observes, 'Employment emancipates women from domination by their husbands and secondarily, raises their daughters from inferiority to their brothers' (Blood and Wolfe, 1965). In brief, economic independence of women is changing their overall equations, perspective and outlook.

CHALLENGES

There are several challenges that are currently plaguing the issues of women's rights in India. A few of these challenges are presented below. While a lot of these are redundant and quite basic issues faced across the country, these are contributory causes to the overarching status of women in India. Targeting these issues will directly benefit the empowerment of women in India.

EDUCATION

While the country has grown from leaps and bounds since its independence where education is concerned, the gap between women and men is severe. While 82.14% of adult men are: educated, only 65.46% of adult women are known to be literate in India. Not only is an illiterate women at the mercy of her husband or father, she also does not know that this is not the way of life for women across the world. Additionally, the norms of culture that state that the man of the family is the be-all and end-all of family decisions is slowly spoiling the society of the country. Eradicating the gap and educating women about their real place in the world is a step that will largely set this entire movement rolling down the hill to crash and break the wall of intolerance, negligence and exploitation.

POVERTY IN THE COUNTRY

About a third of the country's population lives on less than 1.25USD per day. The GINI index keeps rising slowly over the years, indicating that the inequality in the distribution of wealth in the country is increasing, currently hovering a little close to 33.9.

Poverty is considered the greatest threat to peace in the world, and eradication of poverty should be a national goal as important as the eradication of illiteracy. Due to abject poverty, women are exploited as domestic helps and wives whose incomes are usurped by the man of the house. Additionally, sex slaves are a direct outcome of poverty. In a study it have been seen that, Andhra Pradesh accounts for nearly half of all sex trafficking cases in India, the majority involving adolescent girls. According to police estimates, a shocking 300,000 women and girls have been trafficked for exploitative sex work from Andhra Pradesh; of these just 3,000 have been rescued so far.

The state is relatively prosperous, ranking fourth in terms of per capita GDP in India, but it is also home to some of the poorest people in the country.

If poverty were not a concern, then the girl child will be able to follow her dreams without concerns of sexual exploitation, domestic abuse.

HEALTH & SAFETY

The health and safety concern of women are paramount for the wellbeing of a country, and is an important factor in gauging the empowerment of women in a country. However there are alarming concerns where maternal healthcare is concerned.

In a study, UNICEF came up with shocking figures on the status of new mothers in India. The maternal mortality report of India stands at 301 per 1000, with as many as 78,000 women in India dying of childbirth complications in that year. Today, due to the burgeoning population of the country, that number is sure to have multiplied considerably.

The main causes of maternal mortality are:-
Haemorrhage: 30%
Anaemia: 19%
Sepsis: 16%
Obstructed Labour: 10%
.Abortion: 8%

Toxaemia: 8%

While there are several programmes that have been set into motion by the Government and several NGOs in the country, there is still a wide gap that exists between those under protection and those not.

Poverty and illiteracy add to these complications with local quacks giving ineffective and downright harmful remedies to problems that women have. The empowerment of women begins with a guarantee of their health and safety.

ACTIONS TAKEN TO EMPOWER WOMEN

MILLENNIUM DEVELOPMENT GOAL

The United Nations Development Programme constituted eight Millennium Development Goals (MDG) for ensuring equity and peace across the world. The third MDG is directly related to the empowerment of women in India. The MDGs are agreed-upon goals to reduce certain indicators of disparity across the world by the year 2015. The third MDG is centered towards promoting gender equality and empowering women:

"Eliminate gender disparity in primary and secondary education, preferably by 2005, and in all levels of education by no later than 2015"

While India's progress in this front has been brave, there are quite a few corners that it needs to cut before it can be called as being truly revolutionary in its quest for understanding what women empowerment is. As UNDP says:-

India missed the 2005 deadline of eliminating gender disparity in primary and secondary education. However, the country has hastened progress and the Gender Parity Index (GPI) for Gross Enrolment Ratios (GER) in primary and secondary education has risen. Given current trends, India is moderately or almost nearly on track. However, as the Government of India MDG Report 2009 notes, "participation of women in employment and decision-making remains far less than that of men, and the disparity is not likely to be eliminated by 2015." GPI in tertiary education also remains a challenge. In addition, the labor market openness to women in industry and services has only marginally increased from 13-18 percent between 1990-91 and 2004-05.

MINISTRY FOR WOMEN & CHILD DEVELOPMENT

The Ministry for Women & Child Development was established as a department of the Ministry of Human Resource Development in the year 1985 to drive the holistic development of women and children in the country. In 2006 this department was given the status of a Ministry, with the powers to:-

Formulate plans, policies and programs; enacts/ amends legislation, guiding and coordinating the efforts of both governmental and non-governmental organizations working in the field of Women and Child Development.

It delivers such initiatives such as the Integrated Child Development Services (ICDS) which is a package of services such as supplementary nutrition, health check-ups and immunization. As mentioned earlier, the empowerment of women begins with their safety and health and this Ministry is committed to providing them.

ECONOMIC EMPOWERMENT OF WOMEN

Poverty Eradication

Since women comprise the majority of the population below the poverty line and are very often In situations of extreme poverty, given the harsh realities of intra-household and social discrimination, macro-economic policies and poverty eradication programs will specifically address the needs and problems of such women. There will be improved implementation of programs which are already women oriented with special targets for women. Steps will be taken for mobilization of poor women and convergence of services, by offering them a range of economic and social options, along with necessary support measures to enhance their capabilities

Micro Credit

In order to enhance women's access to credit for consumption and production, the establishment of new and strengthening of existing micro-credit mechanisms and micro-finance Institution will be undertaken so that the outreach of credit is enhanced. Other supportive measures would be taken to ensure adequate flow of credit through extant financial institutions and banks, so that all women below poverty line have easy access to credit.

Globalization

Globalization has presented new challenges for the realization of the goal of women's equality, the gender impact of which has not been systematically evaluated fully. However, from the micro-level studies that were commissioned by the Department of Women & Child it is evident that there is a need for re-framing policies for access to employment and quality of employment. Benefits of the growing global economy have been unevenly distributed leading to wider economic disparities, the feminization of poverty, increased gender inequality through often deteriorating working conditions and unsafe working environment especially in the informal economy and rural areas. Strategies will be designed to enhance the capacity of women and empower them to meet the negative social and economic impacts, which may flow from the globalization process.

SOCIAL EMPOWERMENT OF WOMEN

Education

Equal access to education for women and girls will be ensured. Special measures will be taken to eliminate discrimination, universalize education, eradicate illiteracy, create a gender- sensitive educational system, increase enrolment and retention rates of girls and improve the quality of education to facilitate life-long learning as well as development of occupation/vocation/technical skills by women. Reducing the gender gap in secondary and higher education would be a focus area Sectorial time targets in existing policies will be achieved, with a special focus on girls and women, particularly those belonging to weaker sections the Scheduled Castes/Scheduled Tribes/Other Backward Classes/Minorities. Gender sensitive curricula would be developed at all levels of educational system in order to address sex stereotyping as one of the causes of gender discrimination.

Health

A holistic approach to women's health which includes both nutrition and health services will be adopted and special attention will be given to the needs of women and the girl at all stages of the life cycle. The reduction of infant mortality and maternal mortality, which are sensitive Indicators of human development, is a priority concern. This policy reiterates the national demographic goals for Infant Mortality Rate (IMR), Maternal Mortality Rate (MMR) set out in the National Population Policy 2000. Women should have access to comprehensive, affordable and quality health care. Measures will be adopted that take into account the reproductive rights of women to enable them to exercise informed choices, their vulnerability to sexual and health problems together with endemic, infectious and communicable diseases such as malaria, TB, and water borne diseases as well as hypertension and cardio-pulmonary diseases. The social, developmental and health consequences of HIV/AIDS and other sexually transmitted diseases will be tackled from a gender perspective.

Conclusion

India as a country is still recovering from years of abuse in the time of the Raj and more years of economic suffering at the hands of the License Raj. It is only now that globalization, liberalization and other socio-economic forces have given some respite to a large proportion of the population. However, there are still quite a few areas where women empowerment in India is largely lacking.

To truly understand what women empowerment is, there needs to be a sea-change in the mind-set of the people in the country. Not just the women themselves, but the men have to wake up to a world that is moving towards equality and equity. It is better that this is embraced earlier rather than later, for our own good.

Swami Vivekananda once said "arise away and stop not until the goal is reached". Thus our country should thus be catapulted into the horizon of empowerment of women and revel in its glory.

We have a long way to go, but we will get there someday. We shall overcome.

According to Diane Mariechild...

"A woman is the full circle. Within her is the power to create, nurture and transform."

References:

- "Empowerment Takes More Than a Minute" by Ken Blanchard, John P. Carlos, and Alan Randolph.
- UNICEF. 2007. "Equality in Employment," In The State of the World's Children. New York: United Nations Children's Fund.
- World Survey on the Role of Women in Development. 2009. Women's Control over Economic Resources and Access to Financial Resources, including Microfinance. New York: United Nations.
- Wilkinson, A. 1998. Empowerment: theory and practice. Personnel Review. [online]. Vol. 27, No. 1, 40-56. Accessed February 16, 2004
- Blanchard, Kenneth H., John P. Carlos, and Alan Randolph. Empowerment Takes More than a Minute. San Francisco: Berrett-Koehler, 1996.
- Thomas, K. W. and Velthouse, B. A. (1990) "Cognitive Elements of Empowerment: An 'Interpretive' Model of Intrinsic Task Motivation". Academy of Management Review, Vol 15, No. 4, 666-681.
- Sutton, J., & Pollock, S. (2000). Online Activism for Women's Rights. Cyber Psychology & Behavior, 3(5),699-706.

Dr. Dinesh Kumar Singh
Assistant Professor
Deptt. of Social Work
Dr. RML Avadh University, Ayodhya

वाल्मीकि रामायण में कौसल्या का चरित (वाल्मीकि रामायण के आलोचनात्मक संस्करण के आधार पर)

107

डॉ० सुनीता सैनी

सारांश

आदिकवि वाल्मीकि की कृति 'रामायण' भारतीय आचार–व्यवहार का आधारभूत ग्रन्थ है। 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् न रावणादिवत्' इस प्रसिद्ध सूक्ति में भी रामायण के पात्रों के माध्यम से ही लोकव्यवहार का उपदेश दिया गया है। रामायण के अनेकानेक पात्र वर्तमान में भी आदर्श सम्बन्धों के प्रतीक माने जाते हैं, यथा–पिता–पुत्रसम्बन्ध, पति–पत्नी सम्बन्ध, भाई–भाई सम्बन्ध, मित्रों का सबन्ध आदि। कौसल्या रामायण के नायक 'राम' की जननी है। अयोध्यापति दशरथ की ज्येष्ठा रानी है। पति दशरथ व सपत्नी कैकेयी के कारण उसे पुत्र का वियोग सहना पड़ता है।

वाल्मीकि रामायण में 24000 श्लोक माने जाते हैं परन्तु विश्वभर में उपलब्ध वाल्मीकि रामायणों की समस्त प्रतियों में उपलब्ध श्लोकों के आधार पर बडौदा से एक आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित हुआ। जिसमें 18000 श्लोक हैं। शोध कीदृष्टि से यह आलोचनात्मकसंस्करण ही प्रामाणिक माना जाता है। संस्कृत वाङ्मय में कुल सात 'कौशल्या/कौसल्या'नाम वाली स्त्रियों का परिचय प्राप्त होता है, वे सभी भिन्न देश, काल से सम्बन्ध रखती थी, अर्थात् कथाके आधार पर सभी भिन्न–भिन्न स्त्रियाँ है।

वाल्मीकि रामायण में कौसल्या अयोध्या के राजादशरथ की ज्येष्ठा पत्नी है–

'कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा।'

ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यांसदृश्यां सदृशः सुतः।

कौसल्या राम की माता है–

कौसल्यासुप्रजाराम पूर्वासंध्या प्रवर्तते।

इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी।

वा० रा० के विविध स्थलों पर कौसल्या का परिचय राम कीमाता के रूप में होता है।

राम को कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाला पुत्र कहा गया है।

कौसल्या को प्रमदोत्तमा कहा गया है। वे मनस्विनी नारी और पुत्र वत्सला माता है।

रानी होने के कारण वे रेशमी वस्त्र धारण करती हैं–

मातरम् क्षौमवासिनीम्, सा क्षौमवसना

राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया था, तब रानी कौसल्या नै यज्ञीय पशु 'अश्व' की परिचिर्या की थी तथा एक रात्रिअश्व के समीप निवास भी किया था–

कौसल्यातं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः।

कृपाणैः विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा।।

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा।

अवसद्रजनीं एकां कौसल्या धर्मकाम्यया।।

दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ से प्राप्त पायस प्रसाद में से आधा भाग सर्वप्रथम कौसल्या को दिया था–

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।

जिसके पश्चात् समय आने पर कौसल्या ने तेजस्वी व दिव्यलक्षण सम्पन्न पुत्र 'राम' को जन्म दिया–

'कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसम्युतम्।

राम के राज्याभिषेक की सूचना राम के मित्र कौसल्या तकपहुँचाते हैं–

''तत् श्रुत्वा सुहृदः तस्य रामस्य प्रियकारिणः।

त्वरिता शीघ्रंमभ्येत्य कौसल्यायै न्यवेदयन्।।

प्रिय समाचार सुनाने वाले सुहृदों को कौसल्या ने विविध आभूषण पुरस्कार स्वरूप प्रदान किए थें–

''सा हिरण्यं च गाः चैव रत्नानिविविधानि च।

व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा।।''

राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलते ही कौसल्या देवालयमें बैठकर पुत्र के लिए राजलक्ष्मी की याचना करते हुए जनार्दन विष्णु भगवान् का ध्यान करती हैं और अपने पुत्र के मंगल की प्रार्थना करती हैं।

इसी अवसर पर मंथरा कैकेयी को भडकाते हुए कहती हैकि दशरथ राम का अभिषेक करके कौसल्या को धनसम्पन्न कर रहे हैं और कौसल्या भी अपने पुत्र के राज्याभिषेक से सौभाग्यवती हो जाएगी और कैकेयी को कौसल्या की दासी होना पडेगा।

जब कौसल्या को कैकेयी के दो वर मांगने के पश्चात् राम के वन गमन की सूचना मिलती है तो वे अचेत हो जाती है तथा अत्यंत दीन दशा को प्राप्त हो जाती है।

इसी अवसर पर कौसल्या के जीवन का गूढ़ सत्य भी ज्ञान होता है।

राम के युवराज न बनने पर तथा वन गमन पर कौसल्या आर्तनाद करती हुए राम के समक्ष अपनी पीड़ा को व्यक्त कर देती हैं–

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुशे।
अपि पुत्रे विपश्येमिति रामस्थितं मया।।
सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम्।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां वरा सती।।
अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविश्यति।।
त्वयि संनिहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे।।
यो हि मां सेवते कश्चिदथ वाप्यनुवर्तते।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते।।

कौसल्या का कथन है कि उसे पति के प्रभुत्वकाल में कल्याण अथवा सुख की प्राप्ति नहीं हुई। उसे अब अवरसपत्नियों से अप्रिय वाक्यसुनने पड़ेगे। राम जैसे पुत्र के रहते हुए भी कौसल्या को तिरस्कृत होना पड़ता था, राम के वन चले जाने पर तो मृत्यु–तुल्य दुःख सहना पड़ेगा। जो कोई भी कौसल्या की सेवा करता या अनुकरण करता है,वह भी कैकेयी पुत्र को देखकर चुप हो जाता है। उपर्युक्तप्रसङ्ग में अन्तःपुर के वातावरण में कटूता की झलक मिलती है। बहुपत्नीप्रथा के कारण राजा की प्रिय पत्नी का व्यवहार अन्य सपत्नियों के साथ अच्छा नहीं होता था। साथ ही यह सत्य भी समक्ष उपस्थित होता है कि राजमाता का पद गौरवशाली व सम्मानसूचक होता था। राजा की माता न बनते देख कौसल्या भी अपने भविष्य के प्रति निराश हो जाती है तथा सपत्नियों से तिरस्कार की संभावना करने लगती है। यद्यपि लोग में प्रचलित 24000 श्लोकों वाली वाल्मीकि रामायण के कुछ अन्य श्लोकों में स्पष्ट रूप से कैकेयी से प्रताड़ना का विवरण भी मिलता है, यथा–

'अत्यन्त निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता।
परिवारेण कैकेय्याः समावाप्यथवावरा।।
(वा० रा० गीता प्रेस स० 2/20/42)

परन्तु वा० रा० के आलोचनात्मक संस्करण में उपर्युक्त पंक्तियों का अभाव है।

कौसल्या राम को वन में न जाने को कहती है और मातृसेवा को धर्म बतलाते हुए रुकने को कहती है।

वह राम को वन जाने से रोकने हेतु करुण विलाप करते हुए अपनी भावी मृत्यु से भी राम को भयभीत करने का प्रयास करती हैं–

''यदि त्वं यास्यसि वनं व्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
अहं प्रायमिहासिश्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम्।।''

परंतु राम वनवास के लिए अड़िग थे, ऐसा देखकर कौसल्या उनके रहने व भोजन के विषय में चिंता करने लगती है–

''यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते।
कथं स भोक्ष्यते नाथो वने मूलफलान्ययम्।''

कौसल्या अपने पुत्र के वियोग की कल्पनामात्र से ही सिहर उठती है अतएव राजसी सुखों को त्यागकर राम के साथ वन जाने की धोशणा कर देती हैं–

''कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति
अहं त्वानुगमिश्यामि यत्र पुत्र गमिश्यसि।।''

राम अपनी माता कौसल्या को विविध भांति समझाते है तथा अन्त में कौसल्या उन्हें वन में जाने की आज्ञा प्रदान कर देती हैं–

''कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत्।
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो।।''

वह अपने पुत्र की वन यात्रा के लिए मंगल कामना पूर्वक स्वस्तिवाचन करती है तथा समस्त देवताओं से उनके सुख की प्रार्थना करती हैं।

इसी अवसर पर उल्लेख है कि कौसल्या ने मन्त्रोच्चारण करते हुए विशल्यकारणी नामक औशधी को रक्षार्थ राम को समर्पित किया–

''औशधीं चापि सिद्धधार्था विशल्यकरणीं शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च।''

इस प्रसङ्ग से कौसल्या का औशधियों से परिचय एवं आनुश्ठानिक क्रियाओं के ज्ञान का बोध होता है।

राम को भी अपनी माता की चिन्ता थी अतएव जब सीता व लक्ष्मण राम के साथ वन जाने की बात करते है तब राम दोनों से कौसल्या की सेवा हेतु वहीं (अयोध्या में) रहने को कहते हैं–

''माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वतः संमानमर्हति।''

लक्ष्मण के प्रति रामोक्ति–

''क भरिश्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम्।''

राम को भी आशंका है कि राजमाता बनने के बाद कैकेयी कौसल्यादि सपत्नियों से शोभन व्यवहार नहीं करेगी–

''सा हि राज्यमिदं प्राप्य नृपस्याश्वपतेः सुता।

दुःखितानां सपत्नीनां न करिश्ंयति शोभनम्।।''

कौसल्या के अधिक दुःखी हाने के कारण राम दशरथ से भी कहते हैं कि वे कौसल्या को अधिक सम्मान दें क्योंकि वे पुत्र वियोग से पीडित हो जाएगी।''

कौसल्या वियोगग्रस्त है तथापि वन में जाती हुई सीता को पतिव्रत धर्म पालन का उपदेश देती हैं।''

कौसल्या एक महारानी है परन्तु उनका चरित्र एक सामान्य नारी की पीडा का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हुए उपस्थित होता है। पति एवं पुत्र दोनों ही अपने कर्तव्य से बंधे है परन्तु विवश कौसल्या वन की ओर प्रस्थान करते हुए राम के रथ के पीछे भागती है। परंतु इसी अवसर पर दशरथ के मूर्च्छित हो जाने पर अपने पति को राजभवन में लेकर जाती हैं।

दशरथ भी अन्तसमय में कौसल्या के महल में ही जाते हैं–

''कौसल्याया गृहं शीघ्रं राम मातुः नयन्तु माम्''

वहीं पर दशरथ राम के वियोग में प्राण छोड़ देते हैं। कौसल्या को 'कोसलेन्द्र दुहिता'कहकर सम्बोधित किया गया है और दशरथकी मृत्यु पर वह ऐसी शोभाविहीन हो गई थी मानो आकाश से टूटकर गिरी हुई कोई तारा धूल में लोट रही हो। जिस पति के कारण कौसल्या मौन थी, पति के स्वर्ग वासी होते हीकौसल्या का रुदन कैकेयी के प्रति क्रोध एवं भर्त्सना से युक्त हो गया। वह कैकेयी को दुष्टचारिणि कहती हैं जिसने कुब्जा के साथ मिलकर, लोभवश होकर रघुकुल का विनाश कर दिया।

लक्ष्मण को माता कौसल्या के दुःख का भाव है, उन्हें लगता है कि राम के वियोग में कौसल्या का जीवन धारण करना कठिन है।

राम को भी माताओं के प्रति ऐसा ही बोध होता है इसीलिए राम भरद्वाज आश्रम से पूर्व लक्ष्मण को अयोध्या लौटने को कहते हैं जिससे माताओं को सम्बल मिल सके।कौसल्या से वियुक्तहोने पर राम स्वयं को भी धिक्कारते है। राम के वनगमन एवं दशरथ के देहावसान के पश्चात् भरत जब ननिहाल से वापिस आते हैं तो कौसल्या से मिलने उनके महल में जाते हैं। कौसल्या कादुःख फिर से कटु भाषण के रूप में उनके मुख से प्रवाहित होने लगता है, वे भरत को व्यङ्ग्य पूर्वक निष्कण्टक राज्य संभालने को कहती है परन्तु भरत के शपथ पूर्वक विलाप करने पर वे ममतामयी माता के रूप में भरत को गले लगाकर रोने लगती है। विचित्र मनोदशा से युक्त होने पर भी कौसल्या का ममतामयी स्वरूपही प्रकट होता है। जब कौसल्या, भरत आदि के साथ चित्रकूट जाती है तब मार्ग में गुरू से राम की दशा सुनकर भरत मूर्च्छित हो जाते हैं। तब कौसल्या ही उन्हें सांत्वना देती है।

कौसल्या चित्रकूट में राम से मिलती है, राम उनकी चरण वंदना करते हैं। माता भी सीता का पुत्री के समान आलिंगन करती हैं और सीता के कष्ट भोगने पर संतप्त होती हैं।

रावण का विनाश करने पर व वनवास की अवधिसमाप्त होने पर राम अयोध्या लौटते हुए नन्दिग्राम रूकते हैं। वहाँ उनसे मिलने अन्य स्त्रियों के साथ कौसल्या भी नन्दिग्राम जाती हैं। राम अयोध्या पहुँच कर कौसल्या का अभिवादन करते हैं।

वस्तुतः वाल्मीकि रामायण का आलोचनात्मक संस्करण उपलब्ध समस्त वाल्मीकि रामायणों के आधार पर तैयार किया गया है जिसमें प्रचलित रामायण से 6000 श्लोक कम हैं। इसमें वहीं श्लोक सम्मिलित किए गए हैं जो अधिकतम प्रतिलिपियों में उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार आलोचनात्मक संस्करण को वाल्मीकि रामायण का विशुद्ध संस्करण भी कहा जा सकता है। इस संस्करण में उपलब्ध कौसल्या से संबंधित वृत्तांत का आद्योपान्त अध्ययन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि कौसल्या का चरित रामायण के प्रथम दो काण्डों (बालकाण्ड व अयोध्याकाण्ड) में ही मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होता है। ये अयोध्याधिपति राजा दशरथ की ज्येश्ठा रानी व नायक राम की माता है। इनके पितृ गृह से सम्बन्धित कोई जानकारी आलोचनात्मक संस्करण में प्राप्त नहीं होती। यद्यपि एक स्थान पर इन्हें 'कोसतेन्द्र दुहिता' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि कोसल जनपद के ही किसी अन्य राजा की ये पुत्री रही होगी। ज्येश्ठा रानी होते हुए भी तत्कालीन बहुपत्नी व्यवस्था की पीड़ाओं को इन्हें झेलना पड़ा। दशरथ की अन्य प्रिय कैकेयी से प्राप्त कटू वचन व दशरथ की अवहेलना का संताप कौसल्या अनुभव करती थी परन्तु फिर भी ज्येश्ठा रानी होने का लाभ भी उन्हें मिला। पुत्रेश्टि यज्ञ से प्राप्त चरू का आधा भाग दशरथ ने सर्वप्रथम कौसल्या को ही भेट किया था। कौसल्या को ऐसा लगता था कि कैकेयी के मोहवश दशरथ उनका तिरस्कार करते थे। कैकेयी के द्वारा राम को वनवास दिए जाने पर दशरथ का कैकेयी से मोह भंग हुआ और वे कौसल्या के महल में रहने के लिए चले गए। राम के वियोग को सहन न करते हुए दशरथ का अंत समय कौसल्या के समीप ही व्यतीत हुआ। श्रवण कुमार की मृत्यु से सम्बन्धित अपने पाप कर्म का व्याख्यान भी दशरथ ने कौसल्या को ही सुनाया था। कौसल्या एक सामान्य आर्य महिला का प्रतिनिधित्व करते हुए दृष्टिगत होती है जब वे राम के वनगमन के समय स्वयं संतप्त हो रही हैं फिर भी दशरथ के मुर्च्छित होने पर

उन्हें संभालकर वह महल में ले जाती है। वे एक आदर्श भारतीय नारी की सहनशीलता की प्रतीक है। भरत के अवसादग्रस्त होने पर कौसल्या उन्हें भी ढाढ़स बंधाती है जबकि कौसल्या को लगता है कि भरत के कारण ही कैकेयी ने राम को वनवास दिलवाया।

यद्यपि बाल काण्ड में अयोध्या काण्ड के अतिरिक्त अन्य काण्डों में कौसल्या का अंत्यंत अल्प ही उपलब्ध होता है परन्तु वे सदैव गौरवमयी, ममतामयी स्त्री के रूप में दृश्टिगत होती हैं।

संदर्भ

1. संस्कृत वाङ्मय में नारी : एक परिचयात्मक कोश, शिप्रा बैनर्जी, पृ० 427—428
2. वाल्मीकि रामायण (आलोचनात्मक संस्करण) 1/76/8
3. वही, 2/3/23
4. वही – 1/22/2
5. वही – 2/33/17
6. वही – 2/14/11, 2/46/28, 2/54/1, 2/68/13, 27, 2/86/21, 2/104/20,5/3/17, 5/36/42, 5/62/30, 6/23/11
7. वही – 1/67/15, 1/72/17, 2/66/33, 2/84/11, 3/35/9, 6/31/67, 6/69/25, 6/115/40
8. वही – 2/3/30, 2/39/1
9. वही – 5/36/42, 6/107/4, 6/109/19
10. वही – 2/21/15, 6/116/18
11. वही – 2/4/30
12. वही – 2/17/7
13. वही – 1/13/25, 26
14. वही – 1/15/25
15. वही – 1/17/6
16. वही – 2/3/29
17. वही – 2/3/30
18. वही – 2/4/30—31, 2/17/6—7
19. वही – 2/7/21
20. वही – 2/8/3
21. वही – 2/8/4
22. वही – 2/17/17—33, 2/38/1, 2/51/24, 28, 29, 2/54/1—3, 2/67/5, 2/68/8
23. वही – 2/17/22—26
24. वही – 2/18/18—22
25. वही – 2/18/23
26. वही – 2/21/3
28. वही – 2/21/24
29 वही – 2/22 सर्ग सम्पूर्ण
30. वही – 2/22/15
31. वही –2/23/28
32. वही – 2/28/2
33. वही – 2/28/4
34. वही – 2/33/17—19
35. वही – 2/34/20—21
36. वही – 2/35/32, 2/37/70
37. वही – 2/37/23
38. वही – 2/59/11
39. वही – 2/60/2—7
40. वही – 2/45/14—15, 2/80/15—16
41. वही – 2/47/15, 17
42. वही – 2/47/20, 24
43. वही – 2/69 सर्ग
44. वही – 2/81/6—11
45. वही – 2/96/15—23
46. वही – 6/115/10
47. वही – 6/116/39

डॉ० सुनीता सैनी

असोसिएट प्रोफेसर

संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक।